* श्री *

~: ग्रन्थानुक्रम :~

॥ श्री ॥

व्याख्याता का वक्तव्य

यह परम प्रसन्नता की बात है कि आजकल दिन प्रतिदिन प्राकृत-भाषा के अध्ययन-अध्यापन की वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है। किसी भी भाषा के अध्ययन में व्याकरण का पठन करना सर्व प्रथम आवश्यक होता है ।

आचार्य हेमचन्द्र प्रणीत प्राकृत-व्याकरण प्राकृत भाषा के लिये सर्वाधिक प्रामाणिक और परिपूर्ण मानी जाती है। इसका पूरा नाम "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" है। यह आठ अध्यायों में विभक्त हैं, जिनमें से सात अध्यायों में तो सस्कृत-व्याकरण की संयोजना है और आठवें अध्याय में प्राकृत-व्याकरण की विवेचना है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत-व्याकरण को चार पादों में विभाजित किया है, जिनमें से प्रथम और द्वितीय पाद में तो वर्ण-विकार तथा स्वर-व्यञ्जन से सम्बंधित नियम प्रदान किये हैं तथा अव्ययों का भी वर्णन किया है। तृतीय पाद में व्याकरण सम्बधी शेष सभी विषय संगुंफित कर दिये हैं। चतुर्थ-पाद मे सर्व प्रथम धातुओं का बयान करके तत्पश्चात् निम्नोक्त भाषाओं का व्याकरण समझाया गया है.-(१) शौरसेनी (२) मागधी (३) पैशाचो (४) चूलिका पैशाची और (५) अपभ्रंश।

ग्रन्थकर्त्ता ने पाठकों एवं अध्येताओं की सुगमता के लिये सर्व प्रथम संक्षिप्त रूप से सार गर्भित सूत्रों की रचना की है, एवं तत्पश्चात् इन्हीं सूत्रों पर "प्रकाशिका" नामक स्वोपज्ञ वृत्ति अर्थात् सस्कृत-टीका की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्र कृत यह प्राकृत व्याकरण भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिये तथा आधुनिक अनेक भारतीय भाषाओं का मूल स्थान ढूंढने के लिये अत्यन्त उपयोगी है; इसीलिये आजकल भारत की अनेक युनीवरसीटीज्ञ याने सरकारी विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम में इस प्राकृत-व्याकरण को स्थान दिया गया है। ऐसी उत्तम और उपादेय कृति की विस्तृत किन्तु सरल हिन्दी व्याख्या की अति आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है, मेरे समीप रहने वाले श्री मेघराजजी म०, श्री गणेशमुनिजी, श्री उदयमुनिजी आदि सन्तों ने जब इस प्राकृत-व्याकरण का अध्ययन करना प्रारम्भ किया था तब इन्होंने ने भी आग्रह किया था कि ऐसे उच्च कोटि के ग्रन्थ की सरल हिन्दी व्याख्या होना नितान्त आवश्यक है, जिससे कि अनेक व्यक्तियों को और भाषा प्रेमियों को प्राकृत-व्याकरण के अध्ययन का मार्ग सुलभ तथा सरल हो जाय।

संयोजक का प्राक्-कथन

मेरे गुरुदेव परम पूज्य पं रत्न उपाध्याय मुनि श्री १००८ श्री प्यारचंदजी म० सा० का मेरे ऊपर अनन्त उपकार है, मोक्ष-मार्ग का सम्यक् पथिक बनाकर मुझे आप श्री ने जो रत्न त्रय याने सम्यक् ज्ञान, सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-चारित्र प्रदान किया है, उसका प्रतिफल मैं अनेकानेक जन्मों में भी शायद ही पुनः प्रदान कर सकूं। हमारी विनीत प्रार्थना पर महती कृपा करके आपने इस प्राकृत व्याकरण की सरल तथा सरस हिन्दी व्याख्या रूप इस ग्रन्थ का निर्माण करके प्राकृत-भाषा-प्रेमियों के लिये एव हमारे लिये परम प्रशस्त मार्ग को निर्माण कर दिया है।

विक्रम संवत् २०१६ के रायचूर-चातुर्मास काल मे आपने इस व्याख्या ग्रंथ को तैयार किया था; दैव-दुर्विपाक से उसी साल के पौष शुक्ला दशमी शुक्रवार को दिन के ६॥ बजे पूर्ण सथारे के साथ आपका स्वर्गवास हो गया। इस दारुण एवं असहनीय आघात को सहन करने के सिवाय अन्य उपाय ही क्या था ? आपका पार्थिव-शरीर तो इस प्रकार नाम-शेष हो गया परन्तु आपका यश-शरीर चिरकाल तक देदीप्यमान रहेगा, इसके साथ ही साथ आपकी साहित्यिक-कृतियाँ भी भारतीय जनता के हृदय में दीर्घकाल तक ज्ञान का आलोक प्रकाशित करती रहेंगी। उन्हीं बहुमूल्य कृतियों में से एक कृति यह प्राकृत व्याकरण की व्याख्या रूप ग्रन्थ भी है, इसे अत्यन्त उपयोगी समझकर जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसकी मैं जैसी भी संयोजना कर सका हूँ; वह पाठकों के सामने है। आशा है कि इस व्याख्या ग्रन्थ का जनता अधिक से अधिक उपयोग करके स्वर्गीय गुरुदेव उपाध्यायजी महाराज सा० के परिश्रम को सार्थक करेंगे इसीमें मैं भी अपने द्वारा किये गये यत्किंचित् परिश्रम को सार्थक समझूंगा। इति शुभम्।

विजया दशमी
विक्रमाब्द २०१८
करमाला

उदयमुनि सिद्धांत शास्त्री

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधान आचार्य श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज, शास्त्रज्ञ पं० रत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज पं० मुनि श्री प्रतापमलजी महा० श्री मन्नालालजी महा० एवं श्री पन्नालालजी महा० आदि सन्त-मुनिराजों की भी प्रेरणा सम्मति, उद्बोधन एवम् सहयोग प्राप्त हुआ कि प्राकृत व्याकरण सरीखे ग्रन्थ को राष्ट्रभाषा में समुपस्थित करना अत्यंत आवश्यक तथा हितावह प्रमाणित होगा। तदनुसार विक्रम संवत् २०१६ के रायचूर (कर्णाटक-प्रान्त) के चातुर्मास में इस हिन्दी व्याख्या ग्रन्थ को तैयार किया।

आशा है कि जनता के लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें मैंने ऐसा क्रम रखा है कि सर्व प्रथम मूल-सूत्र तत्पश्चात् मूल ग्रन्थकार की ही संस्कृत-वृत्ति प्रदान की है, तदनन्तर मूल-वृत्ति पर पूरा २ अर्थ बतलाने वाली विस्तृत हिन्दी व्याख्या लिखी है, इसके नीचे ही मूल वृत्ति में दिये गये सभी प्राकृत शब्दों का संस्कृत पर्यायवाची शब्द देकर तदनन्तर उस प्राकृत-शब्द की रचना में आने वाले सूत्रों का क्रम पाद-संख्या पूर्वक प्रदान करते हुए शब्द-साधनिका की रचना की गई है। यों ग्रन्थ में आये हुए हजारों की संख्या वाले सभी प्राकृत शब्दों की अथवा पदों का प्रामाणिक रूप से सूत्रों का उल्लेख करते हुए विस्तृत एवं उपादेय साधनिका की संरचना की गई है। इससे प्राकृत-शब्दों की रचना-पद्धति एवम् इनकी विशेषता सरलता के साथ समझ में आ सकेगी। पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया है, इसीलिये अन्त में प्राकृत-रूपावलि तथा शब्द-कोष की भी संयोजना करदी गई है, इससे शब्द के अनुसंधान में अत्यन्त सरलता का अनुभव होगा।

श्री पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित और श्री भांडारकर ओरिएन्टल रीसर्च इंस्टीट्यूट, पूना नं० ४ द्वारा प्रकाशित प्राकृत-व्याकरण के मूल संस्कृत-भाग के आधार से मैंने "प्रियोदय हिन्दी-व्याख्या" रूप वृत्ति का इस प्रकार निर्माण किया है; एतदर्थ उक्त महानुभाव का तथा उक्त संस्था का मैं विशेष रूप से आभार-प्रदर्शन करता हूं।

आशा है कि सहृदय सज्जन इस कृति का सदुपयोग करेंगे। विशेषु किम् बहुना ?

दीप मालिका
विक्रमाब्द २०१६
रायचूर (कर्णाटक)

प्रस्तुतकर्ता
उपाध्याय मुनि प्यारचन्द

सहायता-दाता-सूची

इस ग्रन्थ के सम्पादन में और प्रकाशन में होने वाले व्यय के लिये निम्नोक्त दानी-मानी सज्जनों ने उदारता पूर्वक जो सहायता प्रदान की है; एतदर्थ उन्हें धन्यवाद है तथा प्रदत्त सहायता रकम की एवं दानी सज्जनों की शुभ नामावली निम्न प्रकार से है:—

४०१) श्रीमान् सेठ चौथमलजी सा. बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, नेमिचन्दजी हीरालालजी, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, चतरभुजजी तेजकरणजी मूथा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, लालचन्दजी कोमलचन्दजी बागमार, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, चुन्नीलालजी पीरचन्दजी बोहरा रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, मुकनचन्दजी कुशलदासजी भडारी, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, जसराजजी शान्तिलालजी बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१००) ,, ,, नगराजजी बलवन्तराजजी मूथा, राजेन्द्रगंज (रायचूर)
१००) ,, ,, केवलचन्दजी मोहनलालजी बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, हजारीमलजी मुल्तानमलजी मरलेचा, शूलेबाजार, बेंगलोर
१०१) ,, ,, दुलराजजी मोहनलालजी बोहरा, अलसुर बाजार, बेंगलोर
१०१) ,, ,, गुलाबचन्दजी भवरलालजी सकलेचा, मलेश्वरं, बेंगलोर
१०१) ,, ,, शम्भुमलजी माणकचन्दजी वैद, मैलापुर (मद्रास)
१०१) ,, ,, जेठमलजी मोतीलालजी तांतेड़, वालटेक्सरोड, (मद्रास)
१०१) ,, ,, गाड़मलजी तेजराजजी सुराना, मैलापुर, (मद्रास)
१०१) ,, ,, हीराचन्दजी सीयाल की धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाई, गोविंद अप्पा नायक स्ट्रीट, मद्रास।

(नोट –उपरोक्त ४०४) मद्रास से के जी. कोठारी हस्ते प्राप्त हुए है)

१०१) श्रीमान सेठ एच. चन्दनमलजी एण्ड कंपनी, ६७ नया नापास्ट्रीट मद्रास ३
१०१) ,, ,, माणकचन्दजी मोतीलालजी गांधी (के. एम. गांधी) बबई नं. २

सहायता-दाता-सूची

इस ग्रन्थ के सम्पादन में और प्रकाशन में होने वाले व्यय के लिये निम्नोक्त दानी-मानी सज्जनों ने उदारता पूर्वक जो सहायता प्रदान की है; एतदर्थ उन्हें धन्यवाद है तथा प्रदत्त सहायता रकम की एवं दानी सज्जनों की शुभ नामावली निम्न प्रकार से है:—

४०१) श्रीमान् सेठ चौथमलजी सा. बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, नेमिचन्दजी हीरालालजी, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, चतरभुजजी तेजकरणजी मूथा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, लालचन्दजी कोमलचन्दजी बागमार, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, चुन्नीलालजी पीरचन्दजी बोहरा रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, मुकनचन्दजी कुशलदासजी भंडारी, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, जसराजजी शान्तिलालजी बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१००) ,, ,, नगराजजी बलवन्तराजजी मूथा, राजेन्द्रगंज (रायचूर)
१००) ,, ,, केवलचन्दजी मोहनलालजी बोहरा, रायचूर (कर्णाटक)
१०१) ,, ,, हजारीमलजी मुल्तानमलजी मरलेचा, शूलेबाजार, बेंगलोर
१०१) ,, ,, दुलराजजी मोहनलालजी बोहरा, अलसुर बाजार, बेंगलोर
१०१) ,, ,, गुलाबचन्दजी भवरलालजी सकलेचा, मलेश्वरं, बेंगलोर
१०१) ,, ,, शम्भुमलजी माणकचन्दजी वैद, मैलापुर (मद्रास)
१०१) ,, ,, जेठमलजी मोतीलालजी तांतेड, वालटेक्सरोड़, (मद्रास)
१०१) ,, ,, गाड़मलजी तेजराजजी सुराना, मैलापुर, (मद्रास)
१०१) ,, ,, हीराचन्दजी सीयाल की धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाई, गोविंद अप्पा नायक स्ट्रीट, मद्रास।

(नोट—उपरोक्त ४०४) मद्रास से के जी. कोठारी हस्ते प्राप्त हुए है)

१०१) श्रीमान सेठ एच चन्दनमलजी एण्ड कंपनी, ६७ नया नापास्ट्रीट मद्रास ३
१०१) ,, ,, माणकचन्दजी मोतीलालजी गांधी (के. एम. गांधी) बंबई न २

१०१) श्रीमान् सेठ वंकटलालजी मन्दरामजी सोलापुर।
२००) ,, मोहनलालजी सा बोहरा, शोरापुर मेवाड़,
१००) ,, धनराजजी कन्हैयालालजी डांगेड़, शोरापुर मेवाड़,
१०१) ,, ,, हीरालालजी लालचन्दजी मोका, यादगिरि।
१०१) ,, ,, केवलचन्दजी पेजराजजी शैशापुर, (जिला गुलबर्गा)
१०१) ,, ,, इन्द्रचन्दजी मोका, अपीली।
१२५ श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रावक संघ, सीरपुर।
१००) श्रीमान् सेठ मिट्ठालालजी जैन मुनीराबाद।
१००) श्री लक्ष्मी ट्रेडिंग कंपनी कोप्पल (जिला रायचूर)
१००) श्रीमान सेठ कमलचन्दजी नेमिचन्दजी मेहता, कोप्पल (रायचूर)
१०१) ,, सरपंच गिरधारीलालजी उदयचन्दजी भंडारी इलकल बीजापुर
१०१) श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ मुद्गल हस्ते श्री मुल्तानमलजी सुखलालजी
१००) श्रीमान सेठ कन्हैयालालजी केशरीमलजी सुराणा बागलकोट।
१००) ,, प्रतापचन्दजी गुन्देचा की धर्म पत्नी सौभाग्यवती श्री नेमिबाई, गुलेदगड़ (बीजापुर)
१००) श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सिंधनूर (रायचूर)
२५०) श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, करमाला (जिला शोलापुर)
१०६) श्रीमान् सेठ भारसीभाई जीवनभाई देसाई; बार्शी।
१०१) ,, , सुखलालजी शिवलालजी कठिड़ कोरेगांव (कराड)
१११) , , स्वर्गीय मेरूलालजी बाफना की धर्मपत्नी श्रीमती कमु बाई, भुसावल।
१००) श्रीमती मैनाबाई मार्फत श्री नेमिचन्दजी गेलड़ा, भुसावल।
१००) श्रीमान् सेठ सरूपचन्दजी पद्माबाद।

४५२० कुल-योग

सम्पादकीय-निवेदन

स्वर्गीय उपाध्याय पं रत्न श्री १००८ श्री प्यारचन्दजी महाराज सा० के परम अनुग्रह से मुझे प्राकृत-व्याकरण का इस प्रकार से कार्य करने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है; एतदर्थ में आप श्री का परम आभारी हू।

पुस्तक के संपादन करने में, परिपूर्ण रीति से प्रेस कॉपी लिखने में एवं शब्द-कोषनिर्माण करने में तथा पुस्तकीय अन्य निर्मीति करने में मुझे जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसका प्रतिफल प्रेमी पाठकों के हाथों में मूर्त्त रूप से उपस्थिन है, आशा है कि प्राकृत्-भाषा के प्रेमी इससे लाभ उठाने की कृपा करेंगे।

पुस्तक का स्वरूप वृहत् काय वाला हो जाने के कारण से तृतीय पाद और चतुर्थपाद की सामग्री इस प्रथम भाग से पृथक् ही रखनी पड़ी है; आशा है कि उसका उपयोग द्वितीय भाग के रूप में किया जा सकेगा।

परिशिष्ट-भाग में प्राकृत शब्द रूपावलि तथा धातु रूपावलि भी इसी कारण से नहीं दी जा सकी है तथा "प्राकृत-साहित्य की समीक्षा" नामक अनुसंधान पूर्ण निबन्ध भी संयोजित करने में सकोच करना पड़ा है; आशा है कि उक्त सामग्री द्वितीय-भाग में दी जा सकेगी।

शब्द-कोप मी प्रथम, द्वितीय पाद में आये हुए शब्दों का ही दिया जा सका है। तृतीय, चतुर्थ पाद के शब्दों का कोष द्वितीय-भाग में यथा स्थान पर दिया जायगा।

रायचूर निवासी, भद्र प्रकृति वाले सेठ श्री चौथमलजी सा बोहरा आदि सज्जनों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में अच्छी सहायता प्रदान करके इस कार्य को मूर्त्त रूप प्रदान किया है; एतदर्थ मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

ग्रन्थ-प्रकाशन में श्री देवराजजी सा, श्री अभयराजजी सा. नहार आदि प्रमुख कार्य कर्त्ता श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कर्यालय ब्यावर ने जो सुन्दर प्रयत्न किया है; इसके लिये उन्हे धन्यवाद है।

अन्त में सहृदयी पाठकों से यही निवेदन है कि वे ग्रन्थ का अधिक से अधिक उपयोग करें।

मेरे परम मित्र, सरल स्वभावी विद्वान्, पं श्री बसतीलालजी सा. नलवाया ने प्रूफ-संशोधन करके अपनी जो आत्मीयता प्रकट की है; इसके लिये आप विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रूफ-सबधी अशुद्धियों के लिये पुस्तकान्त में दिये जाने वाले शुद्धि-पत्र के प्रारभ में जो 'ज्ञातव्य' शीर्षक नोट दिया गया है, कृपया उस पर ध्यान देकर पुस्तक का अध्ययन करें। सुज्ञेपु किम् बहुना ?

दीप मालिका
विक्रमाब्द २०२०

विनीत
रतनलाल संघवी
छोटी सादड़ी, (राजस्थान)।

हिन्दी-व्याख्याता

पं० रत्न उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज साहब

आचार्य हेमचन्द्र रचित प्राकृत-व्याकरण के ऊपर सरल और प्रसाद गुण संपन्न हिन्दी टीका के प्रणेता उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज म० हैं। आप श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन संप्रदाय के प्रख्यात मुनिराज हो गये हैं। आपकी संगठन-शक्ति, व्यवस्था-कौशल, समयज्ञता एवं विचक्षणता तो आदर्श ही थी; किन्तु आपके हृदय की विशालता, प्रकृति की मधुरता, गुणों की मोहकता, विद्याभिरुचि, साहित्य-प्रेम और साहित्य-रचना-शक्ति भी महान् थी। आप अपने गुरुदेव श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज सा० के प्रधान और योग्य सम्मति दाता शिष्य थे। आपने विक्रम संवत् १९६१ के फाल्गुन शुक्ला पंचमी तिथि पर जैन-मुनि-दीक्षा अंगीकार की थी। यह दीक्षा-समारोह भारतीय-इतिहास में सुप्रसिद्ध वीर-भूमि चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में सुसंपन्न हुआ था। आपने अपने पूज्य गुरुदेव की जैसी सेवा की और जैसा उनका यश-सौरभ प्रसारित किया वह स्थानकवासी मुनियों के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों से लिखने योग्य घटना है।

आप बाल-ब्रह्मचारी थे, आपने सतरह वर्ष जैसी प्रथम यौवन-अवस्था में ही दीक्षा ग्रहण करली थी। आपका जन्म स्थान रतलाम (मध्य-प्रदेश) है और आपके माता-पिता का शुभ नाम क्रम से श्री मानकुंवरबाई और श्री पूनमचन्दजी सा० बोथरा-(ओसवाल-ज्ञाति) है। आपका जन्म संवत् विक्रम १९४२ है। जिस दिन से आपने जैन मुनि की दीक्षा-ग्रहण की थी उसी दिन से आपने अपने गुरुदेव की अनन्य-भक्ति-भाव से सेवा-शुश्रूषा करना प्रारंभ कर दिया था। गुरुदेव की भक्ति के पीछे आपने अपने व्यक्तित्व को भी विस्मरण सा कर दिया था।

आप स्पष्ट वक्ता थे और निर्भीक उपदेशक भी। इसी प्रकृति-विशेषता के कारण से अपनी संप्रदाय में चले आ रहे दो दलों में से अपने सामने वाले दल से विवाद में सफलता प्राप्त करना आपकी असाधारण बुद्धि का ही अनुपम फल है। तत्पश्चात् अखिल भारतीय स्थानकवासी समाज के सभी मुनियों को एक सूत्र में बांधने के शुभ प्रयत्न में उल्लेखनीय सहयोग प्रदान करके अपनी कुशाग्र-बुद्धि का जैसा प्रदर्शन किया वह जैन-मुनि-इतिहास का एक अत्यन्त उज्ज्वल अंश है।

स्थानकवासी समाज के विद्वान् मुनिवरों ने तथा सद्-गृहस्थ नेताओं ने आपकी विद्वत्ता और सच्चारित्र-शीलता को देख करके ही "गणी मंत्री और उपाध्याय" जैसी गौरव-पूर्ण पदवियों से आपको

विभूपित किया था। आप "हिन्दी, गुजराती, प्राकृत, संस्कृत, मराठी और कन्नड़" यों छह भाषाओं के ज्ञाता थे। आपने अनेक साहित्यिक पुस्तकों की रचना की है; जिनमें यह प्राकृत-व्याकरण, जैन-जगत के उज्ज्वल तारे और जैन जगत् की महिलाऐं आदि प्रमुख हैं।

आपके उपदेशो से प्रेरित होकर जैन-सद् गृहस्थों ने छोटी बड़ी अनेक संस्थाओं को जन्म दिया है। आपने अपने जीवन-काल में पैदल ही पैदल हजारों माइलों की पद-यात्रा की है तथा सैंकड़ों हजारों श्रोताओं को सन्मार्ग पर प्रेरित कियो। "दिल्ली-यु. पी. राजस्थान, मेवाड़, मालवा, मध्य-प्रदेश, बरार, खानदेश, बम्बई, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र प्रदेश और कर्णाटक प्रान्त आदि विविध भारतीय क्षेत्र आपके चरण-रज से गौरवान्वित हुए हैं।

नित नूतन पढ़ने में और सर्व ग्राह्य-भाग को सग्रह करने में तथा कल्याण मय पाठ्य-सामग्री को प्रकाशित करने में आपकी हार्दिक अभिरुचि थी। इस सबंध मे इतना ही पर्याप्त होगा कि चौंसठ वर्ष जैसी पूर्ण वृद्धावस्था में भी रायचूर के चातुर्मास में आप कन्नड़-भाषा का नियमित रूप से प्रतिदिन अध्ययन किया करते थे एवं कन्नड़-भाषा के वाक्यों को एक बाल विद्यार्थी के समान उच्च स्वर से कंठस्थ· याद किया करते थे। आगन्तुक दर्शनार्थी और उपस्थित श्रोता-वृन्द आपके मधुर, कोमल कान्त पदावलि से आनन्द-विभोर हो जाया करते थे। आप जैन-दर्शन के अगाध विद्वान् थे और इसलिये जैन-दर्शन पर आपके अधिकोर पूर्ण व्याख्यान होते थे। यह लिखना सर्व-साधरण जनता की दृष्टि से उचित ही समझा जायगा कि जैन-मुनि पाँच महाव्रतों के धारक होते हैं; तदनुसार आप "अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निष्परिग्रह" व्रत के मन, वचन एवं काया से सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में भी प्रतिपालक थे।

हमारे चरित्र-नायक श्री उपाध्यायजी महाराज अखिल भारतीय स्थानकवासी समाज में अत्यंत श्रद्धा पात्र तथा प्रतिष्ठा-पात्र मुनिवर थे, यही कारण है कि स्थानकवासी समाज के सभी मुनिराजों ने आपके स्वर्गारोहण हो जाने पर हार्दिक श्रद्धाजलि प्रकट की थी; आपके यशो-पूत गुणों का अभिनंदन किया था और आपके अभाव में उत्पन्न समाज की क्षति को अपूरणीय बतलाई थी। इसी प्रकार से सैंकडों गाँवों, कस्बों तथा शहरों के जैन श्री संघों ने शोक-सभाऐं करके आपके गुणानुवाद गाये थे, और हार्दिक खिन्नता-सूचक शोक प्रस्ताव पारित किये थे। उन शोक-प्रस्तावों का सारांश "उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज के जीवन-चरित्र" से नीचे उद्धृत किया जा रहा है—
"आप गभीर, शान्त स्वभावी, सरल प्रकृति के सन्त थे। सौजन्य, सादगी एवं भव्यता की आप प्रतिमूर्ति थे। आप की मंगल-वाणी हृदय में अमृत उडेल देती थी। आपके सजीव व्याख्यानों का श्रोताओं के हृदय पर तल-स्पर्शी प्रभाव पडता था। आप प्रभाव-शाली एवं महान उपकारी सन्त थे। वाणी, व्यवहार और विचार की समन्वयात्मक त्रिवेणी से उपाध्याय जी महाराज का व्यक्तित्व सदैव भरापूरा रहता था। उपाध्याय जी महाराज आगम-ज्ञाता थे, पण्डित थे, मिलनसार, शान्त, गम्भीर प्रतिज्ञावान् और विचक्षण प्रतिभा-सपन्न थे। आप अनुभवो, निस्पृह, त्यागी, उदार और चारित्रवान् मुनिराज थे। वे एक महान् सत थे, उनका जीवन-आदर्श तथा उच्च था। यथा नाम तथा गुण के

अनुसार वे प्यार की मूर्ति थे। वे सरल स्वभावी और पर उपकारी थे। उपाध्याय जी महाराज अपने जीवन से समाज को स्नेह का सौरभ और विचारों का प्रकाश निरन्तर देते रहे थे आप जैन-समाज में एक चमकते हुए सितारे थे। आपका दिव्य जीवन प्रकाश-स्तम्भ समान था। आप बहुत ही मिलनसार तथा प्रेम-मूर्ति थे। समाज के आप महान् मूक सेवक थे। "स्वकृत सेवा के फल से प्राप्त होने वाले यश से दूर रहना' यह आपके सुन्दर जीवन की एक विशिष्ट कला थी। आपका जीवन ज्योतिर्मय, विकसित और विश्व-प्रेम की सुवासना से सुवासित एक अनूठा जीवन था। आप समाज में एक आदर्श कार्य-कर्ता थे" इत्यादि इत्यादि रूप से उक्त शोक सभाओं में आपके मौलिक एवं सहजात गुणों पर प्रकाश डाला गया था।

विक्रम संवत २०१६ के पौष शुक्ला दशमी शुक्रवार को दिन के ६.३ बजे आपने भावना पूर्वक सहर्ष 'व्रत के रूप में आहार पानी ग्रहण करने का सर्वथा ही परित्याग कर दिया था, ऐसे व्रत को जैन-परिभाषा में 'संथारा-व्रत' कहा जाता है। ऐसे इस महान् व्रत को अंतिम समय आदर्श साधना के रूप में ग्रहण करके आप ईश-चिन्तन में संलग्न हो गये थे, धर्म-ध्यान और उत्कृष्ट आत्म चिन्तन में ही आप तल्लीन हो गये थे। यह स्थिति आधे घंटे तक रही एवं उसी दिन ६.३ बजे जैन समाज तथा अपने प्रिय शिष्यों से एवं मुनिवरों से सभी प्रकार का भौतिक संबंध परित्याग करके स्वर्ग के लिये अन्तर्धान हो गये।

आपकी अंतिम रथ-यात्रा में लग भग बीस हजार की मानव-मेदिनी उपस्थित थी, जो कि अनेक गाँवों से आ आकर एकत्र हुई थी। इस प्रकार इस प्राकृत-व्याकरण के हिन्दी-व्याख्याता अपने भौतिक-शरीर का परित्याग करके तथा अपनी अमर यशो-गाथा की 'चारित्र-साहित्य-सेवा-और त्याग" के क्षेत्र में परिस्थापना करके परलोकवासी हो गये।

आशा है कि प्राकृत-व्याकरण के प्रेमी पाठक आपकी शिक्षा-प्रद यशो-गाथा से कुछ न कुछ शिक्षा अवश्यमेव ग्रहण करेंगे। इति शुभम्—

उदय मुनि (सिद्धान्त शास्त्री)

आचार्य हेमचन्द्र
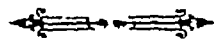
भारतीय साहित्य के प्रागण में समुत्थित श्रेष्ठतम विभूतियों मे से आचार्य हेमचन्द्र भी एक पवित्र एवं दिव्य विभूति हैं। सन १०८८ तदनुसार विक्रम सवत ११४५ को कार्तिक पूर्णिमा बुधवार ही इन लोकोत्तर प्रतिभा सपन्न महापुरुष का पवित्र जन्म दिन है। इनकी अगाध बुद्धि, गंभीर ज्ञान और अलौकिक प्रतिभा का अनुमान करना हमारे जैसे के लिये अत्यत कठिन है। आपकी प्रकर्ष प्रतिभा से उत्पन्न महान् मंगल-मय ग्रन्थ राशि गत साढे आठ सौ वर्षों से ससार के सहृदय विद्वानों को आनन्द-विभोर करती रही है; तथा असाधारण दीर्घ तपस्वी भगवान् महावीर स्वामी के गूढ और शान्तिप्रद आदर्श सिद्धान्तों का सुन्दर रीति से सम्यक् परिचय कराती रही है।

साहित्य का एक भी ऐसा अग अछूता नहीं छूटा है, जिस पर कि आपकी अमर और अलौकिक लेखनी नहीं चली हो, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, रस, अलकार, नीति, योग, मन्त्र, कथा, चरित्र, आदि लौकिक, अध्यात्मिक, और दार्शनिक सभी विषयों पर आपकी ज्ञान-परिपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध हैं। सस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में आप द्वारा लिखित महत्वपूर्ण एव भावमय साहित्य अस्तित्व में है। कहा जाता है कि अपने बहुमूल्य जीवन में आपने साढे तीन करोड श्लोक प्रमाण जितने साहित्य की रचना की थी।

महान प्रतापी राजा विक्रमादित्य की राज-सभा में जो स्थान महाकवि कालिदास का था, एव गुणज्ञ राजा हर्ष के शासन-काल में जो स्थान गद्य-साहित्य के असाधारण लेखक पडित-प्रवर बाण-भट्ट का था, वही स्थान और वैसी ही प्रतिष्ठा आचार्य हेमचन्द्र को चौलुक्य वशी राजा सिद्धराज जयसिंह की राज्य-सभा में थी। अमारिपडह के प्रवर्तक परिमार्हत महाराज कुमारपाल के तो आचार्य हेमचन्द्र साक्षात् राजगुरु, धर्म-गुरु और साहित्य गुरु थे।

आपका जन्म स्थान गुजरात प्रदेश के अन्तर्गत अवस्थित "धधुका" नामक गाँव है। इनके माता पिता का नाम क्रमश "श्री पाहिनी देवी" और 'श्री चाचदेव" था। ये जाति के मोढ़ महाजन थे। आपका जन्म-नाम 'चगदेव" था। आश्चर्य की बात है कि जिस समय में आपकी आयु केवल पाँच वर्ष की ही थी, तभी श्री देवचन्द्र सूरि ने इन्हें "जैन-साधु" को दीक्षा प्रदान करके अपना शिष्य बना लिया था। यह शुभ प्रसग वि० सवत् ११५० के माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार के दिन सपन्न हुआ था। उस समय में आपका नाम "चगदेव" के स्थान पर सोमचन्द्र निर्धारित किया गया था।

दीक्षा-ग्रहण करने के पश्चात् आपके जन्म-जात गुण तथा सहजात प्रतिभा और सर्वतोमुखी बुद्धि स्वयमेव दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होती गई। जिस संयम में आपकी आयु केवल इक्कीस वर्ष की ही थी तभी आप एक परिपक्व प्रकांड पंडित के रूप में प्रख्यात हो गये थे। आपकी असाधारण विद्वत्ता एवं अनुपम प्रतिभा से आकर्षित होकर श्री देवचन्द्र सूरि ने वि० संवत् ११६६ के वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन मध्याह्नकाल में खंभात शहर में चतुर्विध श्री संघ के समक्ष आपको आचार्य पदवी प्रदान की और आपका शुभ नाम उस समय में 'आचार्य हेमचन्द्र सूरि' ऐसा जाहिर किया।

गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह के आग्रह से आपने संस्कृत प्राकृत भाषा का एक आदर्श और सरल किन्तु परिपूर्ण तथा सर्वांग संपन्न व्याकरण बनाया जो कि 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' के नाम से विख्यात है। आप ने उक्त व्याकरण के नियमों की सोदाहरण-सिद्धि हेतु "संस्कृत द्वयाश्रय' और 'प्राकृत-द्वयाश्रय' नामक दो महाकाव्यों की रचना की है। जो कि काव्य और व्याकरण दोनों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। ये काव्य वर्णन विचित्रता और काव्य-चमत्कृति के सुन्दर उदाहरण हैं। बड़ी खूबी के साथ कथा-भाग का निर्वाह करते हुए व्याकरण-गत नियमों का क्रमश: समावेश इनमें कर दिया गया है। दोनों काव्यों का परिमाण क्रमश: २८२८ और १२०० श्लोक संख्या प्रमाण है। संस्कृत काव्य पर अभय तिलक गणि की टीका और प्राकृत काव्य पर पूर्ण कलश गणि की टीका उपलब्ध है। दोनों ही काव्य सटीक रूप से बम्बई संस्कृत सीरीज (सरकारी प्रकाशन) द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

'व्याकरण और काव्य' रूप ज्ञान-मन्दिर के स्वर्ण कलश समान चार कोष ग्रन्थों का भी आचार्य हेमचन्द्र ने निर्माण किया है। जिनके क्रमश: नाम इस प्रकार हैं:—(१) अभिधान चिन्तामणि, (२) अनेकार्थ संग्रह; (३) देशी नाममाला और (४) शेष नाम माला। भाषा विज्ञान की दृष्टि से 'देशी नाम माला' कोष का विशेष महत्व है। यह कोष पूना से प्रकाशित हो चुका है।

रस और अलंकार जैसे विषयों का विवेचन करने के लिये आपने काव्यानुशासन नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पर दो टीका ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। जो कि क्रमश: 'अलंकार चूड़ामणि' और 'अलंकार-वृत्ति-विवेक' के नाम से विख्यात हैं। छन्द शास्त्र में "छन्दानुशासन' नामक आपकी कृति पाई जाती है। इसमें संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के छन्दों का अनेक सुन्दर उदाहरणों के साथ विवेचन किया गया है।

आध्यात्मिक विषय में आपकी रचना 'योग-शास्त्र' अपर नाम 'अध्यात्मोपनिषद्' है। यह ग्रन्थ मूल रूप से १२०० श्लोक प्रमाण है। इस पर भी बारह हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध है। स्तोत्र ग्रन्थों में 'वीतराग स्तोत्र" और 'महादेव-स्तोत्र' नामक दो स्तुति ग्रन्थ आप द्वारा रचित पाये जाते हैं। अति-विस्तृत और अति गंभीर 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' तथा परिशिष्ट पर्व ग्रन्थ आपकी कथात्मक कृतियाँ हैं। इन ग्रन्थों की कथा-वस्तु की दृष्टि से उपयोगिता है। इतिहास के तत्त्व भी इनमें

न्याय-विषय में "प्रमाण-मीमांसा" नामक अधूरा ग्रन्थ पाया जाता है। इनकी न्याय-विषयक बत्तीसियों मे से एक "अन्ययोग व्यवच्छेद" है और दूसरी "अयोग व्यवच्छेद" है। दोनों में प्रसाद गुण संपन्न ३२-३२ श्लोक हैं। उदयनाचार्य ने कुसुमांजलि में जिस प्रकार ईश्वर की स्तुति के रूप मे न्याय-शास्त्र का संग्रथन किया है; उसी तरह से इनमें भी भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति के रूप में षट्-दर्शनों की मान्यताओ का विश्लेषण किया गया है। श्लोकों की रचना महाकवि कालिदास और स्वामी शकराचार्य की रचना-शैली का स्मरण कराती है। दार्शनिक श्लोकों में भी स्थान स्थान पर जो विनोद-मय अश देखा जाता है, उससे पता चलता है कि आचार्य हेमचन्द्र हसमुख और प्रसन्न प्रकृति वाले होंगे। "अन्य-योग-व्यवच्छेद" बत्तीसी पर मल्लिषेण सूरि कृत तीन हजार श्लोक प्रमाण "स्याद्वाद मञ्जरी" नामक प्रसाद गुण सपन्न भाषा में सरल, सरस और ज्ञान-वर्धक व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध है। इस व्याख्या ग्रन्थ से पता चलता है कि मूल कारिकाऐं कितनी गंभीर, विशद अर्थ वाली और उच्च कोटि की है।

इस प्रकार हमारे चरित्र-नायक की प्रत्येक शास्त्र में अव्याहत गति दूरदर्शिता, व्यवहारज्ञता, एव साहित्य-रचना-शक्ति को देख करके विद्वान्तों ने इन्हें "कलिकाल-सर्वज्ञ" जैसी उपाधि से विभूषित किया है। पीटर्सन आदि पाश्चिमात्य विद्वानों ने तो आचार्य श्री को Ocean of Knowledge अर्थात् ज्ञान के महा सागर नामक जो यथा तथ्य रूप वाली उपाधि दी है; वह पूर्ण रूपेण सत्य है।

कहा जाता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रशंसनीय जीवन-काल में लगभग डेढ़ लाख मनुष्यों को अर्थात् तैंतीस हजार कुटुम्बों को जैन-धर्मावलम्बी बनाये थे।

अन्त में चौरासी वर्ष की आयु में आजन्म अखड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए और साहित्य-ग्रन्थों की रचना करते हुए सवत् १२२६ में गुजरात प्रान्त के ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारत के असाधारण तपोधन रूप इन महापुरुष का स्वर्गवास हुआ। आपके अनेक शिष्य थे; जिनमें श्री रामचन्द्र आदि सात शिष्य विशेष रूप से प्रख्यात हैं। अन्त में विशेष भावनाओं के साथ में यही लिखना है कि आचार्य हेमचन्द्र की श्रेष्ठ कृतियाँ, प्रशस्त जीवन और जिन-शासन-सेवा यही प्रमाणित करते हैं कि आप असाधारण विद्वान्, महान जिन-शासन-प्रभावक और भारत की दिव्य विभूति थे।

अनन्त चतुर्दशी
विक्रमाब्द २०१६

रतनलाल संघवी
छोटी सादड़ी, (राजस्थान)

पुरुषे रोः। १-१११। ई. क्षुते। १-११२। ऊत्सुभग-मुसले वा। १-११३। अनुत्साहोत्सन्ने त्सच्छे। १-११४ ।लुंकि-दुरो वा। १-११५ ।ओत्संयोगे। १-११६ ।कुतूहले वा ह्रस्वश्च। १-११७ ।अदूतः सूक्ष्मे वा। १-११८ ।दुकूले वाल्लश्चद्विः। १-११९ ।ईर्वोद्व्यूढे। १-१२० ।उर्भ्रू-हनुमत्कण्डूयवातूले। १-१२१ ।मधूके वा। १-१२२ ।इदेतौनूपुरे वा। १-१२३ ।ओतकूष्माण्डी-तूणीर-कूर्पर-स्थूल-ताम्बूल गुडूचीमूल्ये। १-१२४ ।स्थूणा-तूणे वा। १-१२५ ।ऋतोत्। १-१२६ ।आत्कृशा-मृदुक-मृदुत्वे वा। १-१२७ ।इत्कृपादौ। १-१२८। पृष्ठेवानुत्तरपदे। १-१२९ ।मसृण-मृगाङ्क मृत्यु-शृङ्ग-धृष्टे वा। १-१३० ।उदृत्वादौ। १-१३१।निवृत्त-वृन्दारके वा। १-१३२ ।वृषभे वा। १-१३३ ।गौणान्त्यस्य। १-१३४ ।मातुरिद्वा। १-१३५ ।उदूदोन्मृषि। १-३६ ।इदुतौ वृष्ट-वृष्टि-पृथङ्-मृदङ्ग-नप्तृके। १-१३७ ।वा बृहस्पतौ। १-१३८ ।इदेदोद्वृन्ते। १-१३९ ।रि केवलस्य। १-१४० ।ऋणर्ज्वृषभत्वृषौ वा। १-१४१ ।दृशः क्विप्-टक्सक। १-१४२ ।आदृते ढि। १-१४३ ।अरिर्दृप्ते। १-१४४ ।लृत इलिः क्लृप्तक्लृन्ने। १-१४५। एत इद्वावेदना-चपेटा-देवर-केसरे। १-१४६ ।ऊः स्तेने वा। १-१४७ ।ऐत एत्। १-१४८ ।इत्सैन्धव-शनैश्चरे। १-१४९ ।सैन्ये वा। १-१५० ।अइर्दैत्यादौ च। १-१५१ ।वैरादौ वा। १-१५२ ।एच्च दैवे। १-१५३ ।उच्चैर्नीचस्यैअः। १-१५४ ।ईर्धैर्ये। १-१५५ ओतोद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य शिरोवेदना-मनोहर-सरोरुहे क्तोश्च वः। १-१५६ ।ऊत्सोच्छ्वासे। १-१५७ ।गव्यउ-आअः। १-१५८ ।औत ओत्। १-१५९ ।उत्सौन्दर्यादौ। १-१६० ।कौक्षेयके वा। १-१६१ ।अउ पौरादौ च। १-१६२ ।आच्च गौरवे। १-१६३ ।नाव्याव। १-१६४ ।एत्त्रयोदशादौ स्वरस्य सस्वरव्यञ्जनेन। १-१६५ ।स्थविर-विचकिलायस्कारे। १-१६६ ।वा कदले। १-१६७ ।वेतः कर्णिकारे। १-१६८ अयौ वैत्। १-१६९ ।ओत्पूतर-बदर-नवमालिका-नवफलिका-पूगफले। १-१७० ।न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले। १-१७१ ।अवापोते। १-१७२ ।ऊच्चोपे। १-१७३ ।उमो निषण्णे। १-१७४ ।प्रावरणे अङ्गवाऊ। १-१७५ ।स्वरादसंयुक्तस्यानादे। १-१७६ ।क-ग-च-ज त-द-प-य-वां प्रायो लुक्। १-१७७ ।यमुना-चामुण्डा-कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च। १-१७८ ।नावर्णात्पः। १-७९ ।अवर्णो यश्रुतिः। १-१८० ।कुब्ज-कर्पर-कीले क. खोपुष्पे। १-१८१ ।मरकत-मदकले गः कन्दुके त्वादे। १-१८२ ।किराते चः। १-१८३ ।शीकरे भ-हौ वा। १-१८४ ।चन्द्रिकायां म.। १-१८५ ।निकष-स्फटिक-चिकुरे ह.। १-१८६ । ख-घ-थ-ध-भाम्। १-१८७। पृथकि धो वा। १-१८८। शङ्खले ख.क। १-१८९। पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः। १-१९०। छागे ल.। १-१९१। ऊत्वे दुर्भग-सुभगेवः। १-१९२। खचित-पिशाचयोश्चः स-ल्लौ वा। १-१९३। जटिले जो झो वा। १-१९४। टो ड। १-१९५। सटा-शकट-कैटभे ढः। १-१९६। स्फटिके ल। १-१९७। चपेटा-पाटौ वा। १-१९८। ठो ढ। १-१९९। अङ्कोठ ल्लः। १-२००। पिठरे हो वा रश्च ड। १-२०१। डो ल। १-२०२। वेणौ णो वा। १-२०३। तुच्छेतश्च छौ वा। १-२०४। तगर-त्रसर-तूवरे ट। १-२०५। प्रत्यादौ ड। १-२०६। इत्वे वेतसे। १-२०७। गर्भितातिमुक्तके ण। १-२०८। रुदिते दिना ण्णः। १-२०९। सप्ततौ र। १-२१०। अतसी-सातवाहने लः। १-२११। पलिते वा। १-२१२। पीते वो ले वा। १-२१३। वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङ्गे ह.। १-२१४। मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढ। १-२१५। निशीथ-पृथिव्योर्वा। १-२१६ दशन-दष्ट-दग्ध दोला-[illegible] दाह-दम्भ दर्भ-कदन दोहदे दो वा ड। १-२१७। दश-दहो.। १-२१८। सख्या-गद्गदे र। १-२१९। [illegible]णे। २-१८३। १-२२०। प्रदीपि-दोहदे ल। १-२२१। कदम्बे वा। १-२२२। दीपौ धो वा। १-२२३। कदर्थिते [illegible]हर किलार्थे वा ककुदे ह.। १-२२५। निषधे धो ढ.। १-२२६। वौषधे। १-२२७। नो णः। १-२२८। वादौ। १-२[illegible]। अण णाइं नन्वर्थे

ं च आमन्त्रणे

श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः ।२-७५। ह्लो ल्हः ।२-७६। क ग-ट ड त-द प श ष स-≍-क ≍ पामूर्ध्वं लुक् ।२-७७। अधो म न-याम् ।२-७८। सर्वत्र ल ब रामवन्द्रे ।२-७९। द्रे रो न वा ।२-८०। धात्र्याम् ।२-८१। तीक्ष्णे णः ।२-८२। ज्ञो ञः ।२-८३। मध्याह्ने हः ।२-८४। दशार्हे ।२-८५। आदे श्मश्रु-श्मशाने ।२-८६। श्चो हरिश्चन्द्रे ।२-८७। रात्रौ वा ।२-८८। अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् ।२-८९। द्वितीय तुर्ययोरुपरि पूर्वः ।२-९०। दीर्घे वा ।२-९१। न दीर्घानुस्वारात् ।२-९२। र होः ।२-९३। धृष्टद्युम्ने णः ।२-९४। कर्णिकारे वा ।२-९५। दृप्ते ।२-९६। समासे वा ।२-९७। तैलादौ ।२-९८। सेवादौ वा ।२-९९। शार्ङ्गे ङात्पूर्वोत् ।२-१००। क्ष्मा श्लाघा-रत्नेन्त्यव्यञ्जनात् ।२-१०१। स्नुहाग्नयोर्वा ।२-१०२। प्लक्षे लात् ।२-१०३। र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्टयास्वित् ।२-१०४। र्श र्ष-तप्त वज्रे वा ।२-१०५। लात् ।२-१०६। स्याद भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात् ।२-१०७। स्वप्नेनात् ।२-१०८। स्निग्धे वादितौ ।२-१०९। कृष्णे वर्णे वा ।२-११०। उच्चार्हति ।२-१११। पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा ।२-११२। तन्वातुल्येषु ।२-११३। एकस्वरे-श्व -स्वे ।२-११४। ज्यायामीत् ।२-११५। करेणू-वाराणस्यो र-णोर्व्य-त्यय ।२-११६। आलाने लनो ।२-११७। अचलपुरे च-लोः ।२-११८। महाराष्ट्रे ह-रो. ।२-११९। ह्रदे ह-दो. ।२-१२०। हरिताले र-लोर्न वा ।२-१२१। लघुके ल हो ।२-१२२। ललाटे ल-डोः ।२-१२३। ह्ये ह्योः ।२-१२४। स्तोकस्य थोक्क-थोव-थेवा ।२-१२५। दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ ।२-१२६। वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ ।२-१२७। ओद्वा ।२-१२८। गोणस्येपत कूर ।२-१२९। स्त्रिया इत्थी ।२-१३०। धृतेर्दिहि ।२-१३१। मार्जारस्य ... ।२-१३२। ... स्येस्य वेरुलिअ ।२-१३३। एण्हि एत्ताहे इदानीमः ।२-१३४। पूर्वस्य पुरिमः ।२-१३५। ... ।२-१३६। बृहस्पतौ वहो भयः ।२-१३७। मलिनोभय शक्ति-छुप्तारब्ध-पदातेर्म-... त-पाइक्क ।२-१३८। दंष्ट्राया दाढा ।२-१३९। बहिसो बाहिंबाहिरौ ।२-१४०। अधसो ... ।२-१४१। मातृ-पितु स्वसु. सिआ-छौ ।२-१४२। तिर्यचस्तिरिच्छिः ।२-१४३। गृहस्य घरोपतौ ।२-१४४। शीलाद्यर्थस्येरः ।२-१४५। क्त्वस्तुमत्तूणतुआणा. ।२-१४६। इदमर्थस्य केर ।२-१४७। पर-राजभ्या क्क-डिक्कौ च ।२-१४८। युष्मदस्मदोञ एच्चय ।२-१४९। वर्तेर्व्वः ।२-१५०। सर्वाङ्गदीनस्येकः ।२-१५१। पथो णस्येकट् ।२-१५२। ईयस्यात्मनो णय ।२-१५३। त्वस्य डिमा-त्तणौ वा ।२-१५४। अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्ल ।२-१५५। यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक च ।२-१५६। इदंकिमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहा ।२-१५७। कृत्वसो हुत्त ।२-१५८। आल्विल्लोल्लालवन्त मन्ते त्तेर-मणा मत्तो ।२-१५९। त्तो दो तसो वा ।२-१६०। त्रपो हि-ह-त्था ।२-१६१। वैकाद सि सिअ इआ ।२-१६२। डिल्ल डुल्लौ भवे ।२-१६३। स्वार्थे कश्च वा ।२-१६४। ल्लो नवैकाद्वा ।२-१६५। उपरे सव्याने ।२-१६६। भ्रुवो मया डमया ।२-१६७। शनैसो डिअम् ।२-१६८। मनाको न वा डयं च ।२-१६९। मिश्राड्डालिअ ।२-१७०। रो दीर्घात् ।२-१७१। त्वादे स ।२-१७२। विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः ।२-१७३। गोणादय. ।२-१७४। अव्ययम् ।२-१७५। त वाक्योपन्यासे ।२-१७६। आम अभ्युपगमे ।२-१७७। णवि वैपरीत्ये ।२-१७८। पुणरुत्त कृतकरणे ।२-१७९। हन्दि विषाद-विकल्प-पश्चात्ताप-निश्चय-सत्ये ।२-१८०। हन्द च गृहाणार्थे ।२-१८१। मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा ।२-१८२। जेण तेण लक्षणे ।२-१८३। णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे ।२-१८४। बले निर्धारण-निश्चययोः ।२-१८५। किरेर हिर किलार्थे वा ।२-१८६। णवर केवले ।२-१८७। आनन्तर्ये णवरि ।२-१८८। अलाहि निवारणे ।२-१८९। अण णाइ नञर्थे ।२-१९०। माइ मार्थे ।२-१९१। हद्धी निर्वेदे ।२-१९२। वेव्वे भय-वारण-विषादे ।२-१९३। वेव्व च आमन्त्रणे

तुव तुह तुमं मिना ।३-९०। भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुय्हे उय्हे-जसा ।३-९१। तं तु तुमं तुवं तुह तुमे तुए अमा ।३-९२। वो तुज्झ तुब्भे तुय्हे उय्हे भे शसा ।३-९३। भे दि दे ते तइ तए तुम तुमइ तुमए तुमे तुमाइ टा ।३-९४। भे तुब्भेहिं उज्झेहि उम्हेहिं तुय्हेहिं उय्हेहि भिसा ।३-९५। तइ-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङसौ ।३-९६। तुय्ह तुब्भ तहिन्तो ङसिना ।३-९७। तुब्भ-तुय्होय्होम्हा भ्यसि ।३-९८। तइ-तु-ते-तुम्हं-तुह-तुहं-तुव-तुम-तुमे-तुमो-तुमाइ-दि-दे-इ-ए-तुब्भोब्भोय्हा ङसा ।३-९९। तु वो भे तुब्भ तुब्भ तुब्भाण तुवाण तुमाण तुहाण उम्हाण आमा ।३-१००। तुमे तुमए तुमाइ तइ तए ङिना ।३-१०१। तु-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङौ ।३-१०२। सुपि ।३-१०३। ब्भो म्ह-ज्झौ वा ।३-१०४ अस्मदो म्मि अम्मि अम्हि हं अहं अहयं सिना ।३-१०५। अम्ह अम्हे अम्हो मो वय भे जसा ।३-१०६। णे ण मि अम्मि अम्ह मम्ह म मम मिम अह अमा ।३-१०७। अम्हे अम्हो अम्ह णे शसा ।३-१०८। मि मे मम ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे टा ।३-१०९। अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे भिसा ।३-११०। मइ-मम-मह-मज्झा ङसौ ।३-१११। ममाम्हौ भ्यसि ।३-११२। मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं ङसा ।३-११३। णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे-अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण आमा ।३-११४। मि मइ ममाइ मए मे ङिना ।३-११५। अम्ह-मम-मह-मज्झा ङौ ।३-११६। सुपि ।३-११७। त्रेस्ती तृतीयादौ ।३-११८। द्वेर्दो वे ।३-११९। दुवे दोण्णि वेण्णि च जस्-शसा ।३-१२०। त्रेस्तिण्णि. ।३-१२१। चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि ।३ १२२। सङ्ख्याया आमो ण्ह ण्हं ।३ १२३। शेषे दन्तवत् ।३-१२४। न दीर्घो णो ।३-१२५। ङसेर्लुक् ।३-१२६। भ्यसश्च हि ।३-१२७। ङेर्डे. ।३-१२८। एत् ।३-१२९। द्विवचनस्य बहुवचनम् ।३ १३०। चतुर्थ्याः षष्ठी ।३-१३१। तादर्थ्यङेर्वा ।३-१३२। वधाड्डाइश्च वा ।३-१३३। क्वचिद् द्वितीयादे ।३-१३४। द्वितीया-तृतीययो सप्तमी ।३-१३५। पञ्चम्यास्तृतीया च ।३-१३६। सप्तम्या द्वितीया ।३-१३७। क्यङोर्यलुक् ।३-१३८। त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ ।३-१३९। द्वितीयस्य सि से ।३-१४०। तृतीयस्य मि. ।३-१४१। बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे ।३-१४२। मध्यम-स्येत्था-हचौ ।३-१४३। तृतीयस्य मो-मु-मा. ।३-१४४। अत एवै च् से ।३-१४५। सिनास्ते सिः ।३-१४६। मि-मो-मैर्म्हि-म्हो-म्हा वा ।३-१४७। अस्थिस्त्यादिना ।३-१४८। णेरदेदावावे ।३-१४९। गुर्वादेरविर्वा ।३-१५०। भ्रमे राडो वा ।३-१५१। लुगावी क्त-भाव-कर्मसु ।३-१५२। अदेल्लुक्यादेरत आः ।३-१५३। मौ वा । ३-१५४। इच्च मो-मु-मे वा ।३-१५५। क्ते ।३-१५६। एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु ।३-१५७। वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा ।३-१५८। ज्जा-ज्जे ।३-१५९। ईअ-इज्जौक्यस्य ।३-१६०। दृशि-वचेर्डीस-डुच ।३-१६१। सी ही हीअ भूतार्थस्य ।३-१६२। व्यञ्जनादीअ ।३-१६३। तेनास्तेरास्यहेसी ।३-१६४। ज्जात्सप्तम्या इर्वा ।३-१६५। भविष्यति हिरादि. ।३-१६६। मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा ।३-१६७। मो-मु-माना हिस्सा हित्था ।३-१६८। मे. स्सं ।३-१६९। कृ-दो हं ।३-१७०। श्रु-गमि-रुदि-विदि-दृशि-मुचि-वचि-छिदि-भिदि-भुजा सोच्छं गच्छं रोच्छं वेच्छं दच्छं मोच्छं वोच्छं छेच्छं भेच्छं भोच्छं ।३-१७१। सोच्छादय इजादिषु हिलुक् च वा ।३-१७२। दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाणाम् ।३-१७३। सोर्हिर्वा ।३-१७४। अत इज्जस्विज्जहीज्जे-लुको वा ।३-१७५। बहुषु न्तु ह मो ।३-१७६। वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ज्ज ज्जा वा ।३-१७७। मध्ये च स्वरान्ताद्वा ।३-१७८। क्रियातिपत्ते ।३-१७९। न्त माणौ ।३-१८०। शत्रानशः ।३-१८१। ई च स्त्रियाम ।३-१८२।

जुञ्ज जुज्ज-जुप्पा ।४-१०६। भुजो भुञ्ज-जिम-जेम-कम्माण्ह-चमढ-समाण-चड्डाः ।४-११०। वोपेन कम्मवः ।४-१११। घटेर्गढ. ।४-११२। समो गलः ।४-११३। हासेन स्फुटेर्मुरः ।४-११४। मण्डोश्चिञ्च-चिञ्चअ-चिञ्चि-ल्ल-रीड टिविडिक्का: ।४-११५। तुडेस्तोड तुट्ट-खुट्ट-खुडोक्खुडो-ल्लूक्क-णिलुक्क-लुक्कोल्लूराः ।४-११६। घूर्णो घुल-घोल-घुम्म-पहल्लाः ।४-११७। विवृते-र्ढंस ।४-११८। क्वथेरट्टः ।४-११६। ग्रन्थेर्गण्ठः ।४-१२०। मन्थे-र्घुसल-विरोलौ ।४-१२१। ह्लादेरवअच्छः ।४-१२२। नेः सदो मज्जः ।४-१२३। छिदेर्दुहाव णिच्छल्ल-णिज्झोड-णिव्वर-णिल्लूर लूराः ।४-१२४। आङा ओअन्दोद्दालौ ।४-१२५। मृदो मल-मढ-परिहट्ट-खड्ड-चड्ड-मड्ड-पन्नाडाः ।४-१२६। स्प-न्देश्चुलुचुलः ।४-१२७। निर पदेर्वल. ।४-१२८ विसंवदेर्विअट्ट-विलोट्ट-फंसाः ।४-१२६। शदो झड-पक्खोडौ ।४ १३०। आक्रन्देर्णीहरः ।४-१३१। खिदेर्जूर.-विसूरौ ।४-१३२। रुधेरुत्थङ्घ. ।४-१३३। निपेधेर्हक्कः ।४-१३४। क्रुधेर्जूरः ।४-१३५। जनो जा जम्मौ ।४-१३६। तनेस्तड-तड्ड-तड्डव-विरल्ला. ।४-१३७। तृपस्थिप्पः ।४-१३८। उपसर्पेरल्लिअ. ।४-१३६। सतपेर्झङ्खः. ।४-१४०। व्यापेरोअग्ग ।४-१४१। समापे. समाणः ।४-१४२। क्षिपेर्गलत्थाड्डक्ख-सोल्ल-पेल्ल-णोल्ल-छुह-हुल-परी घत्ताः ।४-१४३। उत्क्षिपेर्गुलगुञ्छोत्थघाल्लत्थोब्भुत्तो-स्सिक्क हक्खुवा ।४-१४४। माक्षिपेर्णीरवः ।४-१४५। स्वपेः कमवस-लिस-लोट्टाः ।४-१४६। वेपेरायम्बायज्झौ ।४-१४७। विलपेर्झङ्ख-वडवडौ ।४-१४८। लिपो लिम्पः ४-१४६। गुप्येर्विर-णडौ ।४-१५०। क्रपोवहोणि ।४-१५१। प्रदीपेस्तेअव-सन्दुम-सन्धुक्काब्भुत्ता ।४-१५२। लुभे सभाव ।४-१५३। क्षुभे खउर-पड्डुहौ ।४-१५४। आङो रभे रम्भ ढवौ ।४-१५५। उपालम्भेर्झङ्ख-पच्चार-वेलवा. ।४-१५६। अवेर्जृम्भो जम्भा ।४-१५७। भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढ. ।४-१५८। विश्रमेर्णिव्वा ।४-१५६। आक्रमेरोहा-वोत्थारच्छुन्दाः ।४-१६०। भ्रमेष्टिरिटिल्ल-ढुण्ढु-ल्ल-ढण्ढल्ल-चक्कम्म-भम्मड-भमड-भमाड-तल-अण्ट-झण्ट-झम्प-भुम-गुम-फुम-फुस-ढुम-ढुस-परी-पराः ।४-१६१। गमेरई-अइच्छाणुवज्जावज्जसोक्कुमाक्कुस-पच्चड्ड पच्छन्द-णिम्मह-णी-णीण-णीलुक्क-पदअ-रम्भ-परिअ-ल्ल-वोल-परिअल णिरिणास-णिवहावसेहावहराः ।४-१६२। आङा अहिपच्चुअ ।४-१६३। समा अब्भिडः ।४-१६४। अभ्याङोम्मत्थ ।४-१६५। प्रत्याङा पलोट्टः ।४-१६६। शमेः पडिसा-परिसामौ ।४-१६७। रमे संखुड्ड-खेड्डोब्भाव-किलिकिञ्च-कोट्टुम-मोट्टाय-णीसर-वेल्ला। ।४-१६८। पूरेरग्घाडाग्घवोद्धुमाङ्गुमाहिरेमाः ।४-१६६। त्वरस्तुवर-जअडौ ।४-१७०। त्यादिशत्रोस्तूरः ।४-१७१। तुरोत्यादौ ।४-१७२। क्षरः खिर झर-पज्झर-पच्चड्ड-णिच्चल-णिट्टुआ ।४-१७३। उच्छल उत्थल्ल ।४-१७४। विगलेस्थिप्प-णिट्टुहौ ।४-१७५। दलि-वल्योर्विसट्ट-वम्फौ ।४-१७६। भ्रंशे फिड-फिट्ट-फुड-फुट्ट-चुक्क-भुल्ला ।४-१७७। नशेर्णिरणास-णिवहावसेह-पडिसा-सेहावहरा. ।४-१७८। अवात्काशो वास ।४-१७६। सदिशेरप्पाह. ।४-१८०। दृशो निअच्छपेच्छा-वयच्छावयज्झ — वज्ज — सव्वव — देक्खो — अक्खावक्खावअक्ख — पुलोअ — पुलअ — निआवआस-पासाः । ४-१८१ । स्पृश फास—फस—फरिस—छिव—छिहालुङ्खालिह । ४-१८२ । प्रविशे रिअ. ।४-१८३। प्रान्मृश-मुषोर्म्हुस ।४-१८४। पिषेर्णिवह-णिरिणास-णिरिणज्ज-रोञ्चचड्डाः ।१-१८५। भषेर्भुक्क ।४-१८६। कृषेः कड्ड-साअड्डाञ्चाणच्छायञ्छाइञ्छाः ।४-१८७। असावक्खोड । ४-१८८। गवेषेर्ढुण्ढुल्ल-ढण्ढोल-गमेस-घत्ता ।४-१८६। श्लिषे सामग्गावयास-परिअन्ता. ।४-१६०। म्रक्षेश्चोप्पड ।४-१६१। काङ्क्षेराहाहिलङ्घाहिलङ्घ-वच्च वम्फ-मह-सिह-विलुम्पा ।४ १६२। प्रतीक्षे सामय-विहीर-विर-माला. ।४-१६३। तक्षेस्तच्छ-चच्छ-रम्प-रम्फाः ४-१६४। विकसे. कोआस-वोसट्टौ ।४-१६५। हसेर्गुञ्जः

द्वितीये ।३-३२५। रस्य लो वा ।४-३२६। नादि-युज्योरन्येषाम् ।४-३२७। शेषं प्राग्वत् ।४-३२८। स्वराणां स्वराः प्रायोपभ्रंशे ।४-३२९। स्यादौ दीर्घ-ह्रस्वौ ।४-३३०। स्यमोरस्योत् ।४-३३१। सौ पुंस्योद्वा ।४-३३२। एट्टि ।४-३३३। ङिनेच्च ।४-३३४। भिस्येद्वा ।४-३३५। ङसेर्हे-हू ।४-३३६। भ्यसो हुं ।४-३३७। ङसः सु-हो-स्सवः ।४-३३८। आमो हं ।४-३३९। हुं चेदुद्भ्याम् ।४-३४०। ङसि-भ्यस्ङीनां हे-हुं-हयः ।४-३४१। आट्टो णानुस्वारौ ।४-३४२। एं चेदुतः ।४-३४३। स्यम्-जस्-शसा लुक् ।४-३४४। षष्ठ्याः ।४-३४५। आमन्त्र्ये जसो होः ।४-३४६। भिस्सुपोर्हि ।४-३४७। स्त्रिया जस्-शसोरुदोत् ।४-३४८। ट ए ।४-३४९। ङस्-ङस्योर्हे ।४-३५०। भ्यसामोर्हुः ।४-३५१। ङेर्हि ।४-३५२। क्लीबे जस्-शसोरिं ।४-३५३। कान्तस्यात उं स्यमोः ।४-३५४। सर्वादेर्ङसेर्हां ।४-३५५। किमो डिहे वा ।४-३५६। ङेर्हिं ।४-३५७। यत्तत्किंभ्यो ङसो डासुर्न वा ।४-३५८। स्त्रिया डहे ।४-३५९। यत्तदः स्यमोर्ध्रुं त्रं ।४-३६०। इदम इमुः क्लीबे ।४-३६१। एतदः स्त्री-पुं-क्लीबे एह एहो एहु ।४-३६२। एइर्जस्-शसोः ।४-३६३। अदस ओइ ।४-३६४। इदम आयः ।४-३६५। सर्वस्य साहो वा ।४-३६६। किमः काइं-कवणौ वा ।४-३६७। युष्मदः सौ तुहुं ।४-३६८। जस्-शसोस्तुम्हे तुम्हइं ।४-३६९। टा-ङ्यमा पइं तइं ।४-३७०। भिसा तुम्हेहिं ।४-३७१। ङसि-ङस्भ्यां तउ तुज्झ तुध्र ।४-३७२। भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं ।४-३७३। तुम्हासु सुपा ।४-३७४। सावस्मदो हउं ।४-३७५। जस्-शसोरम्हे अम्हइं ।४-३७६। टा-ङ्यमा मइं ।४-३७७। अम्हेहिं भिसा ।४-३७८। महु मज्झु ङसि-ङस्भ्याम् ।४-३७९। अम्हहं भ्यसाम्भ्याम् ।४-३८०। सुपा अम्हासु ।४-३८१। त्यादेराद्य-त्रयस्य सबन्धिनो हिं न वा ।४-३८२। मध्य-त्रयस्याद्यस्य हिः ।४-३८३। बहुत्वे हु. ।४-३८४। अन्त्य-त्रयस्याद्यस्य उं ।४-३८५। बहुत्वे हुं ।४-३८६। हि-स्वयोरिदुदेत् ।४-३८७। वर्त्स्यति-स्यस्य सः ।४-३८८। क्रियेः कीसु ।४-३८९। भुवः पर्याप्तौ हुच्चः ।४-३९०। ब्रूगो ब्रुवो वा ।४-३९१। व्रजेर्वुञः ।४-३९२। दृशेः प्रस्सः ।४-३९३। ग्रहेर्गृण्हः ।४-३९४। तक्ष्यादीनां छोल्लादयः ।४-३९५। अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां ग-घ-द-ध-ब-भाः ।४-३९६। मोनुनासिको वो वा ।४-३९७। वाधो रो लुक् ।४-३९८। अभूतोपि क्वचित् ।४-३९९। आपद्विपत्संपदां द इः ।४-४००। कथं-यथा-तथा-थादेरेमेहेधाडितः ।४-४०१। यादृक्तादृक्कीदृगीदृशां दादेर्डेहः ।४-४०२। अतां डइसः ।४-४०३। यत्र तत्र-योस्त्रस्य डिदेत्थ्वत्तु ।४-४०४। एत्थुकुत्रात्रे ।४-४०५। यावत्तावतोर्वादेर्मउं महिं ।४-४०६। वा यत्तदोतोर्डेवडः ।४-४०७। वेदं-किमोर्यादेः ।४-४०८। परस्परस्यादिरः ।४-४०९। कादि-स्थैदोतो-रुच्चार-लाघवम् ।४-४१०। पदान्ते उं-हुं-हिं-हंकाराणाम् ।४-४११। म्हो म्भो वा ।४-४१२। अन्यादृशो-न्नाइसावराइसौ ।४-४१३। प्रायस प्राउ-प्राइव-प्राइम्व-पग्गिम्वाः ।४-४१४। वान्यथोनुः ।४-४१५। कुतसः कउ कहन्तिहु ।४-४१६। ततस्तदोस्तोः ।४-४१७। एव-पर-सम-ध्रुव-मा-मनाक-एम्व पर समाणु ध्रुवु मं मणाउं ।४-४१८। किलाथवा-दिवा सह नेहः किराहवइ दिवे सहुं नाहिं ।४-४१९। पश्चादेवमेवैवेदानीं-प्रत्युतेतसः पच्छइ एम्वइ जि एम्वहिं पच्चलिउ एत्तहे ।४-४२०। विषण्णोक्त-वर्त्मनो वुन्न-वुत्त-विच्च ।४-४२१। शीघ्रादीनां वहिल्लादयः ।४-४२२। हुहुरु-घुग्गादयः शब्द चेष्टानुकरणयोः ।४-४२३। घइमादयोनर्थकाः ।४-४२४। तादर्थ्ये केहिं-तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः ।४-४२५। पुनर्विनः स्वार्थे डुः ।४-४२६। अवश्यमोर्डे-डौ ।४-४२७। एकशसो डिः ।४-४२८। अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक कलुक् च ।४-४२९। योगजाश्चैषाम् ।४-४३०। स्त्रियां तदन्ताड्डीः ।४-४३१। आन्तान्ताड्डाः ।४-४३२। अस्येदे ।४-४३३। युष्मदादेरीयस्य डारः ।४-४३४। अतोर्डेत्तुलः ।४-४३५। त्रस्य

डेत्तहे ४-४३६। त्व तलोः प्पणः ४-४३७। तव्यस्य इएव्वउं एव्वउं एवा ४-४३८। क्त्व इ इउ-इवि-अवयः ४-४३९। एप्प्येप्पिण्वेव्येविणवः ४-४४०। तुम एवमणाणहमणहिं च ४-४४१। गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेर्लुग् वा ४-४४२। तृनोऽणअः ४-४४३। इवार्थे नं-नउ-नाइ-नावइ जणि-जणवः ४-४४४। लिङ्गमतन्त्रम् ४-४४५। शौरसेनीवत् ४-४४६। व्यत्ययश्च ४-४४७। शेषं संस्कृतवत्सिद्धम् ४-४४८।

प्राकृत-व्याकरण
की
सूत्रानुसार--विषयानुक्रमणिका

प्रथम पादः

॥ ॐ श्री अर्हत्-सिद्धेभ्यो नम ॥

आचार्य हेमचन्द्र रचितम्

(प्रियोदय हिन्दी-व्याख्यया समलंकृतम्)

प्राकृत-व्याकरणम्
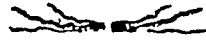
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ।
ब्रम्हाणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ॥
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ।
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अथ प्राकृतम् ॥ १-१ ॥

अथ शब्द आनन्तर्यार्थोऽधिकारार्थश्च ॥ प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् । संस्कृतानन्तरं प्राकृतमधिक्रियते ॥ संस्कृतानन्तरंच प्राकृतस्यानुशासनं सिद्धसाध्यमानभेदसंस्कृतयोनेरेव तस्य लक्षणं न देश्यस्य इति ज्ञापनार्थम् । संस्कृतसमं तु संस्कृत लक्षणेनैव गतार्थम् । प्राकृते च प्रकृति-प्रत्यय-लिंग कारक-समाससंज्ञादयः संस्कृत वद् वेदितव्याः । लोकाद् इति च वर्तते । तेन ऋ-ॠ-ऌ-ॡ ऐ-औ-ङ-ञ-श-ष-विसर्जनीयप्लुत-वर्ज्यो वर्ण-समाम्नायो लोकाद् अवगन्तव्यः । ङ-ञौ स्व-वर्ग्य संयुक्तौ भवत एव । ऐदौतौ च केषांचित् । कैतवम् । कैअवं ॥ सौन्दर्यम् । सौंअरिअं ॥ कौरवाः ॥ कौरवा ॥ तथा अस्वरं व्यञ्जनं द्विवचनं चतुर्थी--बहु वचनं च न भवति ॥

अर्थ —"अथ" शब्द के दो अर्थ होते हैं -(१) पश्चात् वाचक और (२) "अधिकार" या "आरंभ" अथवा "मंगलाचरण" वाचक । यहाँ पर "प्रकृति" शब्द का तात्पर्य "संस्कृत" है, ऐसा मूल ग्रंथकार का मन्तव्य है । तदनुसार संस्कृत से आया हुआ अथवा संस्कृत से उत्पन्न

कौरवा होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त 'जस्, प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *कौरवा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१॥

बहुलम् ॥१-२॥

बहुलम् इत्यधिकृतं वेदितव्यम् आशास्त्रपरिसमाप्तेः॥ ततश्च। क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिद् अन्यदेव भवति। तच्च यथास्थानं दर्शयिष्यामः॥

अर्थ—प्राकृत-भाषा में अनेक ऐसे शब्द होते हैं, जिनके एकाधिक रूप पाये जाते हैं; इनका विधान इस सूत्र से किया गया है। तदनुसार इस व्याकरण के चारों पाद पूर्ण होवें, वहां तक इस सूत्र का अधिकार क्षेत्र जानना इस सूत्र की कहीं पर प्रवृत्ति होगी, कहीं पर अप्रवृत्ति होगी; कहीं पर वैकल्पिक प्रवृत्ति होगी और कहीं पर कुछ नवीनता होगी। यह सब हम यथास्थान पर बतलावेंगे ॥१-२॥

आर्षम् ॥१-३॥

ऋषीणाम् इदम् आर्षम्। आर्षं प्राकृतं बहुलं भवति। तदपि यथास्थानं दर्शयिष्यामः। आर्षे हि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते॥

अर्थ—जो शब्द ऋषि-भाषा से संबंधित होता है, वह शब्द 'आर्ष' कहलाता है। ऐसे आर्ष शब्द प्राकृत भाषा में बहुतायत रूप से होते हैं। उन सभी का दिग्दर्शन हम यथा स्थान पर आगे ग्रंथ में बतलावेंगे। आर्ष-शब्दों में सूत्रों द्वारा साधनिका का विधान वैकल्पिक रूप से होता है। तदनुसार कभी कभी तो आर्ष-शब्दों की साधनिका सूत्रों द्वारा हो सकती है और कभी नहीं भी हुआ करती है। अत इस सम्बन्ध में वैकल्पिक-विधान जानना ॥१-३॥

दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ ॥१-४॥

वृत्तौ समासे स्वराणां दीर्घ ह्रस्वौ बहुलं भवतः। मिथः परस्परम्॥ तत्र ह्रस्वस्य दीर्घः॥ अन्तर्वेदिः। अन्तावेई॥ सप्तविंशतिः। सत्तावीसा॥ क्वचिन्न भवति। जुवई-अणो॥ क्वचिद् विकल्पः। वारी-मई वारि-मई॥ भुज-यन्त्रम्। भुआ-यन्तं भुअ-यन्तं॥ पतिगृहम्। पई हरं पइ हरं॥ वेलू-वणं वेलु-वणं॥ दीर्घस्य ह्रस्वः। निअम्ब सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स॥ क्वचिद् विकल्पः। जउँण-यड जउँणा-यडं। नइ-सोत्तं नई-सोत्तं। गोरि-हरं गोरी-हरं। वहु-मुहं वहू-मुहं॥

अर्थ—समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व अक्सर हो जाया करते हैं। ह्रस्व स्वर के दीर्घ स्वर में परिणत होने के उदाहरण इस प्रकार हैं—

अन्तर्वेदिः = अन्तावेई । सप्तविंशतिः = सत्तावीसा ।। किसी किसी समास में ह्रस्व स्वर से दीर्घ-स्वर में परिणति नहीं भी होती है । जैसे-युवति-जन = जुवइ-अणो ।। किसी किसी समास में ह्रस्व स्वर से दीर्घ-स्वर में परिणति वैकल्पिक रूप से भी होती है । जैसे-वारि-मति = वारी-मई वारिमई । भुज-यन्त्रम् = भुआ-यन्तं अथवा भुअ-यन्तं ।। पति-गृहम् = पई-हरं अथवा पइ-हरं ।। वेणु-वनम् = वेलू-वणं अथवा वेलु-वणं ।। दीर्घ स्वर से ह्रस्व स्वर में परिणत होने का उदाहरण इस प्रकार है:-नितम्ब-शिला-स्खलित-वीचि-मालस्य = निअम्ब-सिल-क्खलिअ-वीइ-मालस्स । इस उदाहरण में 'शिला' के स्थान पर 'सिल' की प्राप्ति हुई है । किसी किसी समास में दीर्घ स्वर से ह्रस्व स्वर में परिणति वैकल्पिक रूप से भी होती है । उदाहरण इस प्रकार है:-

यमुना-तटम् = जउँण-यडं अथवा जउँणा-यडं ।। नदी-स्रोतम् = नइ-सोत्तं अथवा नई-सोत्तं ।। गौरी गृहम् = गोरि-हरं अथवा गोरी-हरं । वधू-मुखम् = वहु-मुहं अथवा वहू-मुहं ।। इन उपरोक्त सभी उदाहरणों में दीर्घ स्वरों की और ह्रस्व स्वरों की परस्पर में व्यत्यय-स्थिति समझ लेनी चाहिये ।

अन्तर्वेदिः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप अन्तावेई होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-४ से 'त' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *अन्तावेई* रूप सिद्ध हो जाता है ।

सप्तविंशतिः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप सत्तावीसा होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'प्' का लोप; १-४ से 'त' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ता' के पूर्व में 'त्' का लोप होने से द्वित्व 'त्ता' की प्राप्ति; १-२८ से 'विं' पर स्थित अनुस्वार का लोप; १-९२ से शेष 'वि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर 'ति' का लोप करते हुए दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य 'स' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सत्तावीसा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

युवति-जन संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप जुवइ-अणो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का और (द्वितीय) 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जुवइ-अणो* रूप सिद्ध हो जाता है । *वारि-मति* संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप वारीमई और वारि-मई होते हैं । इसमें सूत्र-संख्या १-४ से 'रि' में स्थित 'इ' को वैकल्पिक रूप से दीर्घ 'ई' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *वारी-मई* और *वारि-मई* सिद्ध हो जाते हैं । *भुज-यन्त्रम्* संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप भुआ-यन्तं और भुअ-यन्तं होते हैं । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-४ से शेष 'अ' को वैकल्पिक रूप से 'आ' की

प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति क एक वचन में अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *भुआ-यन्तं भुअ-यन्तं* सिद्ध हो जाते हैं।

पतिगृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पई-हरं और पइ-हरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त' का लोप, १-४ से शेष 'इ' को वैकल्पिक रूप से 'ई' की प्राप्ति, २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; १-१८७ से आदेश प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *पई-हरं* और *पइ-हरं* सिद्ध हो जाते हैं। *वेणु-वनम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेलू-वणं और वेलु-वणं होते है। इनमें सूत्र-संख्या १-२०३ से 'ण' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-४ से 'उ' को वैकल्पिक रूप से 'ऊ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *वेलू-वणं* और *वेलु-वणं* सिद्ध हो जाते हैं।

नितम्ब-शिला-स्खलित-वीचि-मालस्य संस्कृत वाक्यांश रूप है। इसका प्राकृत रूप निअम्ब-सिल खलिअ-वीइ-मालस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से दोनों 'त्' वर्णो का लोप; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन प्रथम 'स्' का लोप १-१७७ से 'च' का लोप, और ३-१० से षष्ठी-विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' के स्थानीय प्रत्यय 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्राकृत रूप *निअम्ब-सिल-खलिय-वीइ-मालस्स* सिद्ध हो जाता है।

यमुनातटम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जउँण यड और जउँणा-यड होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, १-१७८ से प्रथम 'म्' का लोप होकर शेष स्वर 'उ' पर अनुनासिक की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-४ से प्राप्त 'णा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपु सक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप जउँण-यडं और जउँणा-यडं सिद्ध हो जाते हैं।

नदी-स्रोतम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नइ-सोत्तं और नई-सोत्तं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द् का लोप, १-४ से शेष दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप, २-९८ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार

होकर क्रम से दोनों रूप नई-सोत्तं और नई-सोत्तं सिद्ध हो जाते हैं। गौरीगृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गोरि-हरं और गोरी-हरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; १-४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; १-१८७ से आदेश प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दोनों रूप *गोरि-हरं* और *गोरी-हरं* सिद्ध हो जाते हैं।

वधू-मुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वहु-मुहं और वहू-मुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ध' और 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-४ से प्राप्त 'हु' में स्थित ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप वहु-मुहं और वहू-मुहं सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-४ ॥

पदयोः संधिर्वा ॥ १-५ ॥

संस्कृतोक्तः संधिः सर्वः प्राकृते पदयोर्व्यवस्थित-विभाषया भवति ॥ वासेसी वास-इसी। विसमायवो विसम-आयवो। दहि-ईसरो दहीसरो। साऊअयं साउ-उअयं ॥ पदयोरिति किम्। पाओ। पई। वच्छाओ। मुद्धाइ। मुद्धाए। महइ। महए। बहुलाधिकारात् क्वचिद् एक-पदेपि। काहिइ काही। बिइओ बीओ ॥

अर्थ-संस्कृत-भाषा में जिस प्रकार से दो पदों की संधि परस्पर होती है; वही सम्पूर्ण संधि प्राकृत-भाषा में भी दो पदों में व्यवस्थित रीति से किन्तु वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे-व्यास-ऋषिः=वासेसी अथवा वास-इसी। विषम+आतपः=विषमातपः=विसमायवो अथवा विसम-आयवो। दधि+ईश्वरः=दधीश्वरः=दहि-ईसरो अथवा दहीसरो। स्वादु-उदकम्=स्वादूदकम् साऊअयं अथवा साउ-उअयं ॥

प्रश्न-संधि दो पदों की होती है ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर-क्योंकि एक ही पद में संधि-योग्य स्थिति में रहे हुए स्वरों की परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है; अतः दो पदों का विधान किया गया है। जैसे-पादः=पाओ। पतिः=पई। वृक्षात्=वच्छाओ। मुग्धया=मुद्धाइ अथवा मुद्धाए। कांक्षति=महइ अथवा महए। इन (उदाहरणों में) प्राकृत-रूपों में संधि-योग्य स्थिति में ही दो स्वर पास में आये हुए हैं; किन्तु ये संधि-योग्य स्वर एक ही पद में रहे हुए हैं; अतः इनकी परस्पर में
[illegible]

'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से किसी किसी एक ही पद में भी दो स्वरों की संधि होती हुई देखी जाती है। जैसे –करिष्यति = काहिइ अथवा काही। द्वितीयः = बिइओ अथवा बीओ। इन उदाहरणों में एक ही पद में दो की परस्पर में व्यवस्थित रूप से किन्तु वैकल्पिक रूप से संधि हुई है। यह 'बहुलम्' सूत्र का ही प्रताप है।

व्यास-ऋषिः–संस्कृत रूप वासेसी अथवा वास-इसी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या–२–७८ से 'य्' का लोप; १–१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से ष् के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और १-५ से 'वास' में स्थित 'स' में रहे हुए 'अ' के साथ 'इसी' के 'इ' की वैकल्पिक रूप से संधि होकर दोनों रूप क्रम से *वास इसी* और *वासेसी* सिद्ध हो जाते हैं।

विषम + आतपः = *विषमातपः* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विसमायवो अथवा विसम-आयवो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या–१-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १–५ से 'विसम' में स्थित 'म' में रहे हुए 'अ' के साथ 'आयव' के 'आ' की वैकल्पिक रूप से संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *विसमायवो* और *विसम–आयवो* सिद्ध हो जाते है,

दधि + ईश्वर *दधीश्वरः* संस्कृत रूप है, इसके प्राकृत रूप दहि + ईसरो और दहीसरो होते हैं; इनमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, २-७९ से 'व' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; १-५ से 'दहि' में स्थित 'इ' के साथ 'ईसर' के 'ई' की वैकल्पिक रूप से संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *दहि-ईसरो* और *दहीसरो* सिद्ध हो जाते हैं।

स्वादु + उदकम् = *स्वादूदकम* संस्कृत रूप हैं। इसके प्राकृत रूप साऊअयं और साउ-ऊअयं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'व' का लोप; १-१७७ से दोनों 'द्' का तथा 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-५ से 'साउ' में स्थित 'उ' के साथ 'उ अय' के 'उ' की वैकल्पिक रूप से संधि होने से दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति और ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *साउअयं* और *साउ–उअयं* सिद्ध हो जाते हैं।

पादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पति संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर पई रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षात् संस्कृत पञ्चम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर छ की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; ३-८ से संस्कृत पंचमी प्रत्यय 'ङसि' के स्थानीय रूप 'त्' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१२ से प्राकृत में प्राप्त प्रत्यय 'ओ' के पूर्व में 'वच्छ' के अन्त्य 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *वच्छाओ* रूप सिद्ध होता है।

मुग्धया संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसके प्राकृत रूप मुद्धाए और मुद्धाइ होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ग्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध् ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; ३-२९ से संस्कृत तृतीया-विभक्ति के एक वचन के प्रत्यय 'टा' के स्थानीय रूप 'या' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'ए' और 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-२९ से ही प्राप्त प्रत्यय 'ए' और 'इ' के पूर्व में अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *मुद्धाए* एवं *मुद्धाइ* सिद्ध हो जाते हैं।

कांक्षति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप महइ और महए होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या ४-१९२ से 'कांक्ष' धातु के स्थान पर 'मह्' का आदेश; ४-२३९ से प्राप्त 'मह्' में हलन्त 'ह्' को 'अ' की प्राप्ति; ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'इ' और 'ए' की प्राप्ति होकर दोनों रूप क्रम से *महइ* और *महए* सिद्ध हो जाते हैं।

करिष्यति —क्रिया पद का संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप काहिइ और काही होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१४ से मूल धातु 'कृ' के स्थान पर 'का' का आदेश, ३-१६६ से संस्कृत भविष्यत्-कालीन संस्कृत प्रत्ययांश 'ष्य' के स्थान पर 'हि' की प्राप्ति; एवं ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में इ की प्राप्ति और १-५ से 'हि' में स्थित 'इ' के साथ आगे रही हुई 'इ' की संधि वैकल्पिक रूप से होकर दोनों रूप क्रम से *काहिइ* और *काही* सिद्ध हो जाते हैं।

द्वितीयः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप बिइओ और बीओ होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का और 'य्' का लोप; १-९४ से द्वितीय दीर्घ 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; १-५ से प्रथम इ के साथ द्वितीय 'इ' की वैकल्पिक रूप से संधि होकर दीर्घ 'ई' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *बिइओ* और *बीओ* सिद्ध हो जाते हैं। १-५॥

न युवर्णस्यास्वे ॥ १-६ ॥

इवर्णस्य उवर्णस्य च अस्वे वर्णे परे संधिर्न भवति। न वेरि-वग्गे वि अवयासो। वन्दामि अज्ज-वइरं ॥

दणु इन्द रुहिर-लित्तो सहइ उइन्दो नह-प्पहावलि-अरुणो ।
संझा-वहु-अवऊढो णव-वारिहरोव्व विज्जुला-पडिभिन्नो ॥ युवर्णस्येति किम् ।
गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमर-पन्तिव्व । अस्व इति किम् । पुहवीसो ॥

अर्थः—प्राकृत में 'इवर्ण' अथवा 'उवर्ण' के आगे विजातीय स्वर रहे हुए हों तो उनकी परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है। जैसे—न वैरिवर्गेऽपि अवकाश = न वेरि-वग्गे वि अवयासो। इस उदाहरण में 'वि' में स्थित 'इ' के आगे 'अ' रहा हुआ है, किन्तु संस्कृत के समान होने योग्य संधि का भी यहां निषेध कर दिया गया है, अर्थात् संधि का विधान नहीं किया गया है। यह 'इ' और 'अ' विषयक संधि निषेध का उदाहरण हुआ। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—वन्दामि आर्य-वैर = वन्दामि अज्ज-वइर। इस उदाहरण में 'वन्दामि' में स्थित अन्त्य 'इ' के आगे 'अ' आया हुआ है, परन्तु इनमें संधि नहीं की गई है। इस प्रकार प्राकृत में 'इ' वर्ण के आगे विजातीय-स्वर की प्राप्ति होने पर संधि नहीं हुआ करती है। यह तात्पर्य है। उपरोक्त गाथा की संस्कृत छाया निम्न है।

दनुजेन्द्ररुधिरलिप्तः राजते उपेन्द्रो नखप्रभावल्यरुणः ।
सन्ध्या-वधूपगूढो नव वारिधर इव विद्युत्प्रतिभिन्नः ॥

इस गाथा में संधि-विषयक स्थिति को समझने के लिये निम्न शब्दों पर ध्यान दिया जाना चाहिये—'दणु + इन्द,' 'उ + इन्दो,' 'प्पहावलि + अरुणो,' 'वहु + अवऊढो,' इन शब्दों में क्रम से 'उ' के पश्चात् 'इ,' 'इ' के पश्चात् 'अ,' एवं 'उ' के पश्चात् 'अ' आये हुए हैं, ये स्वर विजातीय स्वर हैं, अतः प्राकृत में इस सूत्र (१-६) में विधान किया गया है कि 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण के आगे विजातीय स्वर आने पर परस्पर में संधि नहीं होती है। जबकि संस्कृत भाषा में संधि हो जाती है। जैसा कि इन्हीं शब्दों के संबंध में उपरोक्त श्लोक में देखा जा सकता है।

प्रश्न—'इवर्ण' और 'उवर्ण' का ही उल्लेख क्यों किया गया है ? अन्य स्वरों का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है ?

उत्तर—अन्य स्वर 'अ' अथवा 'आ' के आगे विजातीय स्वर आ जाय तो इनकी संधि हो जाया करती है; अतः 'अ' 'आ' की पृथक् संधि-व्यवस्था होने से केवल 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण का ही मूल-सूत्र में उल्लेख किया गया है। उदाहरण इस प्रकार है—(संस्कृत-छाया)—गूढोदर-तामरसानुसारिणी-भ्रमरपङ्क्तिरिव = गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमर-पन्ति व्व, इस वाक्यांश में 'गूढ + उअर' और 'रस + अणुसारिणी' शब्द संधि-योग्य-दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। इनमें 'अ + उ' की संधि करके 'ओ' लिखा गया है, इसी प्रकार से 'अ + अ' की संधि करके 'आ' लिखा गया है। यों सिद्ध होता है कि 'अ' के पश्चात् विजातीय स्वर 'उ' के आ जाने पर भी संधि होकर 'ओ' की प्राप्ति हो गई। अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि 'इ' अथवा 'उ' के आगे रहे हुए विजातीय स्वर के साथ इनकी संधि नहीं होती है, जबकि 'अ' अथवा 'आ' के आगे विजातीय स्वर रहा हुआ हो तो इनकी संधि हो जाया करती है।

उपेन्द्रः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उ इन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-८४ शेष 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उइन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नख-प्रभावलि-अरुणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नह-प्पहावलि-अरुणो होता है। होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नह-प्पहा-वलि-अरुणो* रूप हो जाता है।

सन्ध्या-वधु + उपगूढो संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संझा-वहु-अवऊढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२५ से हलन्त 'न्' को अनुस्वार की प्राप्ति, २-२६ से ध्य के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-१०७ से 'उप' के 'उ' को 'अ' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के में स्थान 'व' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग म 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संझा-वहु-अवऊढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नव वारिधरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णव-वारिहरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रप्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णव-वारिहरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत-रूप व्व होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'व्व' आदेश की प्राप्ति होकर *व्व* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्युत-प्रतिभिन्नः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विज्जुला-पडिभिन्नो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से 'द्य्' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; २-१७३ से प्राप्त रूप 'विज्जु' में 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३१ की वृत्ति में वर्णित (हे० २-४) के उल्लेख से स्त्रीलिंग रूप मे आ' की प्राप्ति से 'विज्जुला' की प्राप्ति; १-११ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'ति' के 'त्' को 'ड्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्जुला-पडिभिन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गूढोदर तामरसानुसारिणी संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप गूढोअर-तामरसाणुसारिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; और १-२८८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर गूढोअर ताम-रसाणुसारिणी रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमर-पंक्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भमर-पन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे 'त्' होने से 'न्' की प्राप्ति; २-७७ से 'क्' का लोप और १-११ से अन्त्य विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होकर *भमर-पन्ति* सिद्ध हो जाता है।

एव अव्यय रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर करदी गई है। पृथिवी + ईश = पृथ्वीश:) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहवीसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-८८ से प्रथम 'इ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-५ से द्वितीय 'ई' की सजातीय स्वर होने से संधि; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुहवीसो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-६॥

एदोतो स्वरे ॥ १-७ ॥

एकार-ओकारयोः स्वरे परे संधिर्न भवति ॥

वहुआइ नहुल्लिहणे आबन्धन्तीए कञ्चुअं अङ्गे।
मयरद्धय-सर धोरणि धारा-छेअ व्व दीसन्ति ॥ १ ॥
उवमासु अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्तावहासमूरुजुअं।
तं चेअ मलिअ बिस-दण्ड विरस मालक्खिमो एण्हिं ॥ २ ॥

अहो अच्छरिअं। एदोतोरिति किम् ॥

अत्थालोअण-तरला इअर कईणं भमन्ति बुद्धीओ।
अत्थच्चेअ निरारम्भमेन्ति हिअअं कइन्दाणं ॥ ३ ॥

अर्थ—प्राकृत-शब्दों में अन्त्य 'ए' अथवा 'ओ' के पश्चात् कोई स्वर आ जाय तो परस्पर में इन 'ए' अथवा 'ओ' के साथ आगे आये हुए स्वर की संधि नहीं होती है। जैसा कि उपरोक्त गाथाओं में कहा गया है—

'नहुल्लिहणे आबन्धन्तीए' में 'ए' के पश्चात् 'आ' आया हुआ है तथा 'मालक्खिमो एण्हिं' में 'ओ' के पश्चात् 'ए' आया हुआ है। परन्तु इनकी संधि नहीं की गई है। यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये। उपरोक्त गाथाओं की संस्कृत-छाया इस प्रकार है।

वध्वाः (वधू कायाः) नखोल्लेखने आबध्नत्या कञ्चुकमङ्गे।
मकरध्वज-शर-धोरणि धारा छेदा इव दृश्यन्ते ॥ १ ॥
उपमासु अपर्याप्तेभ कलभदन्तावभासमूरुयुगम्।
तदेव मृदित बिस दण्ड विरसमालक्षयामहे इदानीम् ॥ २ ॥

'ओ' के पश्चात् 'अ' आने पर भी इनकी परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है। जैसे:-अहो आश्चर्यम् = अहो अच्छरिअ।

प्रश्न-'ए' अथवा 'ओ' के पश्चात् आने वाले स्वरों की परस्पर में संधि नहीं होती है'- ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर.--अन्य सजातीय स्वरों की संधि हो जाती है एवं 'अ' अथवा 'आ' के पश्चात् आने वाले 'इ' अथवा 'उ' की संधि भी हो जाया करती है। जैसे--गाथा द्वितीय में आया है कि-'अवज्जत + इभ' = अवज्जतेभ, दन्त अवहास = दन्तावहास। गाथा तृतीय में आया है कि-अत्थ + आलोअण = अत्थालोअण, इत्यादि। यों अन्य स्वरों की संधि-स्थिति एवं 'ए' अथवा 'ओ' की संधि-स्थिति का अभाव बतलाने के लिये 'ए' अथवा 'ओ' का मूल-सूत्र में उल्लेख किया गया है।

तृतीय गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार है -

अर्थालोचन-तरला इतरकवीनां भ्रमन्ति बुद्धयः।
अर्था एव निरारम्भं यन्ति हृदयं कवीन्द्राणाम् ॥ ३ ॥

वधूकाया --संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वहुआइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, १-४ से दीर्घ 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व 'उ' ३-२९ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में उकारान्त स्त्रीलिंग में 'या.' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर वहुआई रूप सिद्ध हो जाता है।

नखोल्लेखने संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप नहुल्लिहणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से दोनों 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-८४ से 'ओ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, १-१४६ से प्रथम 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'इ' के स्थान पर प्राकृत में भी 'ए' की प्राप्ति होकर *नहुल्लिहणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

आबध्नत्याः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आवन्धन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'व' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के आगे 'ध' व्यञ्जन होने से अनुस्वार; के स्थान पर 'न्' की प्राप्ति; ३-१८१ से संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी वर्तमान कृदन्त के अर्थ में 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१८२ से प्राप्त 'न्त' प्रत्यय में स्त्रीलिंग होने से 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति, तदनुसार 'न्ती' की प्राप्ति; और षष्ठी विभक्ति के एक वचन में ईकारान्त स्त्रीलिंग में ३-२९ से संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवन्धन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उरुजुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तदेव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप त एव होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से (संस्कृत मूल रूप तत में स्थित) अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार और 'एव' की स्थिति संस्कृत वत् ही होकर त एव रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदित बिस दण्ड विरसम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मलिअ-बिस-दण्ड-विरसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१२६ से 'मृद्' धातु के स्थान पर 'मल्' आदेश, ३-१५६ से प्राप्त रूप 'मल' में विकरण प्रत्यय रूप 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मलिअ-बिस-दण्ड-विरसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आलक्षयामहे सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप आलक्खिमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति, ४-२३९ से हलन्त 'धातु' अलक्खे में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५५ से 'ख' में प्राप्त 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, और ३-१४४ से उत्तम पुरुष यान तृतीय पुरुष के बहु-वचन में वर्तमान काल में 'मह' के स्थान पर 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आलक्खिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इदानीम् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप एण्हि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३४ से संपूर्ण 'अव्यय रूप' 'इदानीम्' के स्थान पर प्राकृत में 'एण्हि' आदेश की प्राप्ति होकर *'एण्हि'* रूप सिद्ध हो जाता है।

अहो! संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'अहो' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१७ की वृत्ति से 'अहो' रूप की यथा-स्थिति संस्कृत वत् ही होकर *'अहो'* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

आश्चर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अच्छरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति, २-६७ से 'र्य' के स्थान पर 'रिअं' आदेश और १-२३ से हलन्त अन्त्य 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्राकृत रूप *'अच्छरिअं'* सिद्ध हो जाता है।

अर्थालोचन-तरला संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अत्यालोअण-तरला होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से रेफ रूप हलन्त 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ्' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति, १-५ से प्राप्त 'अत्थ' के अन्त्य 'अ' को आगे रहे हुए 'आलोचन = आलोअण' के आदि 'आ' के साथ संधि होकर 'अत्था' रूप की प्राप्ति, १-१७७ से

'र्' का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थ में मूल प्राकृत विशेषण रूप 'सरल' में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्' का प्राकृत में लोप होकर '*अत्थालोअण-सरला*' रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमर-कवीनाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *भमर-कईणं* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' और 'व' का लोप; ३-१२ से मूल रूप कुवि में स्थित अन्त्य ह्रस्व 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति; ३-६ से संस्कृतीय षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'आम' के स्थानीय रूप 'नाम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की आदेश-प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर '*भमर-कईणं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमन्ति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप भमन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; ४-२३९ से हलन्त धातु 'भम' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहुवचन में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भमन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुद्धयः' संस्कृत प्रथमान्त बहुवचन रूप है। इसका प्राकृत रूप बुद्धीओ होता है। इसमें सूत्र संख्या-३-२७ से मूल रूप 'बुद्धि' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर इ को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति एवं ३-२७ से ही संस्कृतीय प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्' अस् के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बुद्धीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्थाः संस्कृत प्रथमान्त बहुवचन रूप है। इसका प्राकृत रूप (यहाँ पर) अत्थ है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति; ३-१२ से प्राप्त रूप 'अत्थ' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्' का प्राकृत में लोप; और १-४ प्राकृत में प्राप्त बहुवचनान्त रूप 'अत्था' में स्थित अन्त्य दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर 'अत्थ' रूप सिद्ध हो जाता है।

'एव' संस्कृत निश्चय वाचक अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'च्चेम' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'चेम' आदेश और २-९९ से प्राप्त 'चेम' में स्थित 'च्' का द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होकर 'च्चेम' रूप सिद्ध हो जाता है।

निरारम्भम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन रूप है। इसका प्राकृत रूप भी निरारम्भम् ही होता है। इसमें एकरूपता होने के कारण से साधनिका की आवश्यकता न होकर अथवा ३-५ से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्राकृत में भी द्वितीया-विभक्ति के एक वचन में *निरारम्भम* रूप ही सिद्ध करते हैं क्योंकि

इयन्ति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप एन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या (हेम०) १-३-६ से मूल धातु 'इण्' की प्राप्ति; संस्कृतीय विधानानुसार मूल धातु 'इण्' में स्थित अन्त्य हलन्त 'ण्' की इत्संज्ञा होकर लोप, ४-२३७ से प्राप्त धातु 'इ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, और ३-१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहु वचन में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एन्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *हिअयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कवीन्द्राणाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कइन्दाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप, ३-१२ से प्राप्त प्राकृत रूप 'कइन्द' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति, ३-६ से संस्कृतीय षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में 'आम्' प्रत्यय के स्थानीय रूप 'णाम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कइन्दाणं* रूप सिद्ध हो जाता है। १-७ ॥

स्वरस्योद्वृत्ते ॥ १-८ ॥

व्यञ्जन-संपृक्तः स्वरो व्यञ्जने लुप्ते योवशिष्यते स उद्वृत्त इहोच्यते।
स्वरस्य उद्वृत्ते स्वरे परे संधिर्न भवति ॥
विससिज्जन्त महा-पसु-दंसण-संभम-परोप्परारूढा।
गयणे च्चिअ गन्ध-उडिं कुणन्ति तुह कउल-णारीओ ॥
निसा-अरो। निसि-अरो। रयणी-अरो। मणुअत्तं ॥
बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः। कुम्भ-आरो कुम्भारो। सु-उरिसो सूरिसो ॥
क्वचित् संधिरेव सालाहणो चक्काओ ॥
अतएव प्रतिषेधात् समासे पि स्वरस्य संधौ भिन्नपदत्वम् ॥

अर्थ—व्यञ्जन में मिला हुआ स्वर उस समय में 'उद्वृत्त-स्वर' कहलाता है, जबकि वह व्यञ्जन लुप्त हो जाता है और केवल 'स्वर' ही शेष रह जाता है। इस प्रकार अवशिष्ट 'स्वर' की संज्ञा 'उद्वृत्त स्वर' होती है। ऐसे उद्वृत्त स्वरों के साथ में पूर्वस्थ स्वरो की संधि नहीं हुआ करती है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्वृत्त स्वर अपनी स्थिति को ज्यों की त्यों बनाये रखते है और पूर्वस्थ रहे हुए स्वर के साथ संधि-योग नहीं करते है। जैसे कि मूल गाथा में ऊपर 'गन्ध-पुटीम्' के प्राकृत रूपान्तर में 'गन्ध-उडिं' होने पर 'ध' में स्थित 'अ' की 'पुटीम्' में स्थित 'पु' का

लोप होने पर उद्वृत्त स्वर रूप 'उ' के साथ संधि का अभाव प्रदर्शित किया गया है। यों 'उद्वृत्त-स्वर' की स्थिति को जानना चाहिये।

ऊपर सूत्र की वृत्ति में उद्धृत प्राकृत गाथा का संस्कृत-रूपान्तर इस प्रकार है:—

विशस्यमान-महा पशु-दर्शन-संभ्रम-परस्परारूढा ॥
गगन एव गन्ध-कुटीम् कुर्वन्ति तव कौल-नार्यः ॥

अर्थ:—कोई एक दर्शक अपने निकट के व्यक्ति को कह रहा है कि—तुम्हारी ये कौल-संस्कारों वाली स्त्रियाँ इन बड़े बड़े पशुओं को मारे जाते हुए देख कर घबराई हुई एक दूसरे की गोद में याने परस्पर में छिपने के लिये प्रयत्न करती हुई (और अपने चित्त को इस घृणामय बीभत्स कार्य से हटाने के लिये) आकाश में ही (अर्थात् निराधार रूप से ही मानों) गन्ध-धाम (की रचना करने जैसा प्रयत्न) करती है (अथवा कर रही है) काल्पनिक-चित्रों की रचना कर रही है।

उद्वृत्त-स्वरों की संधि-अभाव-प्रदर्शक कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—निशाचरः = निसा-अरो; निशाचरः = निसि-अरो; रजनी-चरः = रयणी-अरो; मनुजत्वम् = मणुअत्तं। इन उदाहरणों में 'च्' और 'ज्' का लोप होकर 'अ' स्वर को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त हुई है और इसी कारण से प्राप्त उद्वृत्त स्वर 'अ' की संधि पूर्वस्थ स्वर के साथ नहीं होकर उद्वृत्त-स्वर अपने स्वरूप में ही यथा वत रहा है; यों सर्वत्र उद्वृत्त स्वर की स्थिति को समझ लेना चाहिए। 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से कभी कभी किसी किसी शब्द में उद्वृत्त स्वर की पूर्वस्थ स्वर के साथ वैकल्पिक रूप से संधि होती हुई देखी जाती है। जैसे—कुम्भकारः = कुम्भ-आरो = अथवा कुम्भारो। सु-पुरुषः = सु-उरिसो = अथवा सूरिसो। इन उदाहरणों में उद्वृत्त स्वर की वैकल्पिक रूप से संधि प्रदर्शित की गई है। किन्हीं किन्हीं शब्दों में उद्वृत्त स्वर की संधि नित्य रूप से भी पाई जाती है। जैसे—शातवाहनः = साल + आहणो = सालाहणो और चक्रवाकः = चक्क + आओ = चक्काओ। इन उदाहरणों में उद्वृत्त स्वर की संधि हो गई है। परन्तु सर्व-सामान्य सिद्धान्त यह निश्चित किया गया है कि उद्वृत्त स्वर की संधि नहीं होती है; तदनुसार यदि अपवाद रूप से कहीं कहीं पर उस उद्वृत्त स्वर की संधि हो जाय तो ऐसी अवस्था में भी उस उद्वृत्त स्वर का पृथक-अस्तित्व अवश्य समझा जाना चाहिये और इस अपेक्षा से उस उद्वृत्त स्वर को भिन्नत्व पद वाला ही समझा जाना चाहिये।

विशस्यमान संस्कृत विशेषण-रूप है। इसका प्राकृत रूप विससिज्जन्त होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-१६ से संस्कृत की भाव-कर्म-विधि में प्राप्तव्य प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१८१ से संस्कृत में प्राप्तव्य वर्तमान-कृदन्त-विधि के प्रत्यय 'मान' के स्थान पर प्राकृत में 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विससिज्जन्त* रूप सिद्ध हो जाता है।

महा-पशु-दर्शन संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप महा-पसु-दंसण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से प्रथम 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२६ से 'द' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से

रेफ रूप 'र्' का लोप, १-२६० से द्वितीय 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *'सहा-पसु-दंसण'* रूप सिद्ध हो जाता है।

संभ्रम-परम्परारूढा संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सभम-परोप्पराख्ढा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप, १-६२ से द्वितीय 'र' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-१२ से अन्त्य शब्द 'रूढ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत में प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस् = अस्' का प्राकृत में लोप होकर-*संभव-परोप्परा रूढा* रूप सिद्ध हो जाता है।

गगने संस्कृत सप्तम्यन्त एक वचन रूप है। इसका प्राकृत रूप गयणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-११ से संस्कृतीय सप्तमी विभक्ति के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'ङि = इ' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति, तदनुसार प्राप्त प्रत्यय 'ङे' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ पद 'गयण' में स्थित अन्त्य 'ण' के 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप एवं तत्पश्चात् शेष हलन्त 'ण्' में पूर्वोक्त 'ए' प्रत्यय की संयोजना होकर *'गयणे'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एव' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'च्चिअ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'चिअ' आदेश और २-९९ से प्राप्त 'चिअ' में स्थित 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होकर *च्चिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गन्ध-पुटीम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप-'गंध-उडिं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-८ से पूर्वोक्त 'प्' का लोप होने से शेष 'उ' की उद्वृत्त स्वर के रूप में प्राप्ति और संधि का अभाव, १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-३६ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *गन्ध-उडिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुर्वन्ति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप कुणन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या-४-६५ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' के स्थानापन्न रूप 'कुर्व' के स्थान पर प्राकृत में 'कुण' आदेश, और ३-१४२ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुष के बहु वचन में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुणन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

तव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से संस्कृतीय सर्वनाम 'युष्मत्' के षष्ठी विभक्ति के एक वचन में प्राप्त रूप 'तव' के स्थान पर प्राकृत में तुह आदेश-प्राप्ति होकर 'तुह' रूप सिद्ध हो जाता है।

में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप-*पु-उरिसो* और *सूरिसो* सिद्ध हो जाते हैं।

शात-वाहनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप-(साल + आहणो =) सालाहणो होता है । इसमें सूत्र-संख्या-१-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति, १-१७७ से 'व्' का लोप, १-८ की वृत्ति से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' की उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने पर भी पूर्वस्थ 'ल' में स्थित 'अ' के साथ संधि, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सालाहणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्रवाकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चक्काओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति, १-१७७ से 'व्' और द्वितीय-(अन्त्य)-'क्' का लोप, १-८ की वृत्ति से लोप हुए 'व्' के पश्चात शेष रहे हुए 'आ' को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने पर भी १-५ से पूर्वस्थ 'क्क' में स्थिति 'अ' के साथ उक्त 'आ' की सन्धि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर चक्काओ रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-८ ॥

त्यादेः ॥ १-९ ॥

तिवादीनां स्वरस्य स्वरे परे संधि र्न भवति ॥ भवति इह । होइ इह ॥

अर्थः-धातुओं में अर्थात् क्रियाओं में संयोजित किये जाने वाले काल बोधक प्रत्यय 'तिव्' 'त' और 'अन्ति' आदि के प्राकृतीय रूप 'इ', 'ए' 'न्ति', 'न्ते' और 'इरे' आदि में स्थित अन्त्य 'स्वर' का आगे रहे हुए सजातीय स्वरो के साथ भी संधि नहीं होती है । जैसे —भवति इह। होइ इह। इस उदाहरण में प्रथम 'इ' तिवादि प्रत्यय सूचक है और आगे भी सजातीय स्वर इ' की प्राप्ति हुई, परन्तु फिर भी दोनो 'इकारो' की परस्पर में संधि नहीं हो सकती है। यों संधि-गत विशेषता को ध्यान में रखना चाहिये।

भवति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप होइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६० से संस्कृत धातु 'भू' के स्थानीय रूप विकरण-प्रत्यय सहित 'भव' के स्थान पर प्राकृत में 'हो' आदेश और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *होइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इह संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी इह ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-४४८ से सावनिका की आवश्यकता नहीं होकर 'इह' रूप ही रहता है। १-९॥

लुक् ॥ १-१० ॥

स्वरस्य स्वरे परे बहुलं लुग् भवति ॥ त्रिदशेशः । तिअसीसो ॥
निःश्वासोच्छ्वासौ । नीसासूसासा ॥

अर्थ—प्राकृत भाषा में (संधि-योग्य) स्वर के आगे स्वर रहा हुआ हो तो पूर्व के स्वर का अवसर करके लोप हो जाया करता है। जैसे—त्रिदश + ईशः = त्रिदशेशः = तिअस + ईसो = तिअसीसो और निःश्वास + उच्छ्वासः निश्वासोच्छ्वासौ=नीसासो + ऊसासो = नीसासूसासा । इन उदाहरणों में से प्रथम उदाहरण में 'अ + ई' में से 'अ' का लोप हुआ है और द्वितीय उदाहरण में 'ओ + ऊ' में से ओ का लोप हुआ है। यों 'स्वर के बाद स्वर आने पर पूर्व स्वर के लोप' की व्यवस्था समझ लेनी चाहिये।

त्रिदश + ईशः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिअसीसो होता है इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'त्रि' में स्थित 'र्' का लोप; १-१७७ से द् का लोप; १-२६० से दोनों 'श' कारों के स्थान पर क्रम से दो 'स' कारों की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त प्रथम 'स' में स्थित अन्त्य अ स्वर के आगे 'ई' स्वर की प्राप्ति होने से लोप; तत्पश्चात् प्राप्त हलन्त 'स्' में आगे रही हुई 'ई' स्वर की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तिअसीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःश्वास + उत् + श्वासः=निश्वासोच्छ्वासौ संस्कृत द्विवचनात्त रूप है। इसका प्राकृत रूप (द्विवचन का अभाव होने से) बहुवचनान्त रूप—नीसासो + ऊसासो = नीसासूसासा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३ से 'निः' में स्थित विसर्ग के स्थानीय रूप 'र्' का लोप; १-९३ से लोप हुए 'र' के पश्चात् शेष 'नि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ प्राप्ति; १-२६० से श् के स्थान पर स् की प्राप्ति; २-७९ से 'व' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होने से प्रथम पद 'नीसासो' की प्राप्ति; द्वितीय पद में १-११ की वृत्ति से 'उत्' में स्थित हलन्त 'त्' का लोप; १-४ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होने से द्वितीय पद 'ऊसासो' की प्राप्ति; १-१० से प्रथम पद 'नीसासो' के अन्त्य व्यञ्जन 'सो' में स्थित 'ओ' स्वर के आगे 'ऊसासो' का 'ऊ' स्वर रहने से लोप; तत्पश्चात् प्राप्त हलन्त व्यञ्जन 'स्' में 'ऊ' स्वर की संधि संयोजना; ३-१३० से द्विवचन के स्थान पर बहु वचन की प्राप्ति; तदनुसार ३-४ से प्राप्त रूप 'नीसासूसास' में प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'जस्' का प्राकृत में लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर समासात्मक नीसासूसासा रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१० ॥

अन्त्यव्यञ्जनस्य ॥ १-११ ॥

शब्दानां यद् अन्त्यव्यञ्जनं तस्य लुग् भवति ॥ जाव । ताव । जसो । तमो । जम्मो ॥ समासे तु वाक्य-विभक्त्यपेक्षायाम् अन्त्यत्वम् अनन्त्यत्वं च । तेनोभयमपि भवति । सद्भिक्षुः । सभिक्खू ॥ सज्जनः । सज्जणो ॥ एतद्गुणाः । एअ-गुणा ॥ तद्गुणाः । तग्गुणा ॥

अर्थ.—संस्कृत-शब्दों में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे-यावत् = जाव, तावत् = ताव, यशस् = यश = जसो, तमस् = तम = तमो, और जन्मन् = जन्म = जम्मो, इत्यादि। समास-गत शब्दों में मध्यस्थ शब्दों के विभक्ति-बोधक प्रत्ययो का लोप हो जाता है; एव मध्यस्थ शब्द गौण हो जाते हैं तथा अन्त्य शब्द मुख्य हो जाता है, तब मुख्य शब्द में ही विभक्ति-बोधक प्रत्यय संयोजित किये जाते हैं; तदनुसार मध्यस्थ शब्दों में स्थित अन्तिम हलन्त व्यञ्जन को कभी कभी तो 'अन्त्य व्यञ्जन' की संज्ञा प्राप्त होती है और कभी कभी 'अन्त्य व्यञ्जन' की संज्ञा नहीं भी प्राप्त होती है, ऐसी व्यवस्था के कारण से समास गत मध्यस्थ शब्दों के अन्तिम हलन्त व्यञ्जन 'अन्त्य' और 'अनन्त्य' दोनों प्रकार से कहे जा सकते हैं। तदनुसार सूत्र-संख्या १-११ के अनुसार जब समास-गत मध्यस्थ शब्दों में स्थित अन्तिम हलन्त व्यञ्जन को 'अन्त्य-व्यञ्जन' की संज्ञा प्राप्त हो तो उस 'अन्त्य-व्यञ्जन' का लोप हो जाता है और यदि उस व्यञ्जन को 'अन्त्य व्यञ्जन' नहीं मानकर 'अनन्त्य व्यञ्जन' माना जायगा तो उस हलन्त व्यञ्जन का लोप नहीं होगा। जैसे—सद्-भिक्षु = सभिक्खू इस उदाहरण में 'सद्' शब्द में स्थित 'द' को 'अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन' मानकर के इसका लोप कर दिया गया है। सत् + जन = सज्जन. = सज्जणो, इसमें 'सत्' के 'त्' को 'अनन्त्य' मान करके 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' के रूप में परिणत किया है। अन्य उदाहरण इस प्रकार है—एतद्गुणा = एअ-गुणा और तद्-गुणा = तग्गुणा, इन उदाहरणों में क्रम से अन्त्यत्व और अनन्त्यत्व माना गया है, तदनुसार क्रम से लोप-विधान और द्वित्व-विधान किया गया है। यों समास-गत मध्यस्थ शब्दों के अन्तिम हलन्त व्यञ्जन की 'अन्त्य-स्थिति' तथा 'अनन्त्य स्थिति' समझ लेनी चाहिये।

यावत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जाव होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त' का लोप होकर *'जाव'* रूप सिद्ध हो जाता है।

तावत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप ताव होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *'ताव'* रूप सिद्ध हो जाता है।

यशस् (= यश) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'जस' को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तमस् (= तम) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तमो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'तम' को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हु कर *तमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जन्मन् = (जन्म) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से प्रथम हलन्त 'न्' का लोप २-८९ से लोप हुए 'न्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'जम्म' को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्मो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सम्यग्भिक्षु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप समिक्खू होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'ग्' का लोप; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *समिक्खू* रूप सिद्ध हो जाता है।

सज्जम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्जयो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-११ की वृत्ति से प्रथम हलन्त 'म्' को अनन्त्यत्व की संज्ञा प्राप्त होने से इस प्रथम हलन्त 'म्' की लोपाभाव की प्राप्ति १-२२८ से 'म' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सज्जयो* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतद्गुणा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एअ- गुणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'त्' का लोप; १-११ से हलन्त 'द्' को अन्त्य-व्यञ्जन की संज्ञा प्राप्त होने से 'द्' का लोप; ३-४ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'एअ-गुण' में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय-प्रत्यय 'जस्' की प्राप्ति होकर लोप और ३-१२ से प्राप्त तथा लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *एअ-गुणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

तद्गुणा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत-रूप तग्गुणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से नहीं किन्तु २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् से रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और साधनिका उपरोक्त 'एअ-गुणा' के समान ही ३-४ तथा ३-१२ से होकर *तग्गुणा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-११॥

•न श्रदुदो ॥ १-१२ ॥

श्रद् उद् इत्येतयोरन्त्य व्यञ्जनस्य लुग् न भवति ॥ सद्दहिअं । सद्धा । उग्गयं । उन्नयं ॥

अर्थः—'श्रद्' और 'उद्' में रहे हुए अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'द्' का लोप नहीं होता है। जैसेः-श्रद्+दधितम्=सद्दहिअं, श्रद्+धा=श्रद्धा=सद्धा; उद्+गतम्=उग्गय और उद्+नतम्=उन्नय। प्रथम दो उदाहरणों में 'श्रद्' में स्थित 'द्' यथावत् अवस्थित है; और अन्त के दो उदाहरणों में 'उद्' में स्थित 'द्' अक्षरान्तर होता हुआ अपनी स्थिति को प्रदर्शित कर रहा है, यों लोपाभाव की स्थिति 'श्रद्' और उद् में व्यक्त की गई है।

श्रद्धितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दहिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'श' 'श्र' में स्थित 'र्' का लोप, १-२६० से श् के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१२ से प्रथम 'द्' का लोपाभाव, १-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सद्दहिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। *श्रद्धा* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्धा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'श्र' में स्थित 'र्' का लोप, १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-१२ से 'द्' का लोपाभाव होकर *सद्धा* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्+*गतम्* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उग्गय होता है इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का (प्रच्छन्न रूप से) लोप, २-८९ से (प्रच्छन्न रूप से) लुप्त 'द्' के पश्चात् आगे रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उग्गयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्+*नतम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उन्नय होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का (प्रच्छन्न रूप से) लोप, २-८९ से (प्रच्छन्न रूप से) लुप्त 'द्' के स्थान पर आगे रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उन्नयं* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१२॥

निर्दुरोर्वा ॥ १-१३ ॥

निर् दुर् इत्येतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य वा लुग् भवति। निस्सहं नीसहं। दुस्सहो दूसहो। दुक्खिओ दुहिओ ॥

अर्थः-'निर्' और 'दुर्' इन दोनों उपसर्गों में स्थित अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन 'र्' का वैकल्पिक रूप से लोप होता है। जैसे-निर्+सह (नि सह) के प्राकृत रूपान्तर निस्सह और नीसह होते हैं। दुर्+सह (=दुस्सह.) के प्राकृत रूपान्तर दुस्सहो और दूसहो होते हैं। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि 'निस्सह' और 'दुस्सहो' में 'र्'

का (प्रच्छन्न रूप से) सद्भाव है; जबकि 'नीसहं' और 'दूसहो' में 'र्' का लोप हो गया है। दुःखित = दुक्खिओ और दुहिओ। इन उदाहरणों में से प्रथम में 'विसर्ग' के पूर्व रूप 'र्' का प्रच्छन्न रूप से 'क' वर्ण में सद्भाव है और द्वितीय उदाहरण में उक्त 'र्' का लोप हो गया है। यों वैकल्पिक रूप से 'दुर्' और 'निर्' में स्थित 'र्' का लोप हुआ करता है।

निःसहं (= निर् + सहं) संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप निस्सहं और नीसहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' के स्थान पर लोपाभाव होने से 'विसर्ग' की प्राप्ति; ४-४४८ से प्राप्त 'विसर्ग' के स्थान पर आगे 'स' होने से 'स्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *निस्सहं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(निर् + सहं =) नीसहं में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' का लोप; १-९३ से 'नि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *नीसहं* भी सिद्ध हो जाता है।

दुर् + सहः (= दुःसहः) संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप दुस्सहो और दूसहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' का लोपाभाव; ४-४४८ से अन्त्य 'र' के स्थानीय रूप 'विसर्ग' के स्थान पर आगे 'स' वर्ण होने से 'स्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दुस्सहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दुर् + सहः =) दूसहो में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' का लोप; १-११५ से ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय-रूप *दूसहो* भी सिद्ध हो जाता है।

दुःखितः (= दुर् + खितः) संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुक्खिओ और दुहिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' के स्थानीय रूप विसर्ग का लोपाभाव; ४-४४८ से प्राप्त 'विसर्ग' के स्थान पर जिह्वामूलीय रूप हलन्त 'क' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दुक्खिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दुःखितः =) दुहिओ में सूत्र-संख्या १-११ से 'र्' के स्थानीय रूप विसर्ग का लोप; १-१८७ से 'ख्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *दुहिओ* सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१३ ॥

स्वरेन्तरश्च ॥ १–१४ ॥

अन्तरो निर्दुरोश्चान्त्य व्यञ्जनस्य स्वरे परे लुग् न भवति ॥ अन्तरप्पा । निरन्तरं । निरवसेसं ॥ दुरुत्तरं । दुरवगाहं ॥ क्वचिद् भवत्यपि । अन्तोवरि ॥

अर्थ–'अन्तर्', 'निर्' और 'दुर्' उपसर्गो में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'र्' का उस अवस्था में लोप नहीं होता है जब कि इस अन्त्य 'र्' के आगे 'स्वर' रहा हुआ हो। जैसे–अन्तर्+आत्मा=अन्तरप्पा । निर्+अन्तरं निरन्तर । निर्+अवशेषम्=निरवसेसं । 'दुर्' के उदाहरण –दुर्+उत्तर=दुरुत्तर और दुर्+अवगाह=दुरवगाह कभी कभी उक्त उपसर्गो में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'र्' के आगे स्वर रहने पर भी लोप हो जाया करता है। जैसें–अन्तर+उपरि=अन्तरोपरि=अन्तोवरि । अन्तर्+आत्मा अन्तरात्मा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अन्तरप्पा होता है। इसमें सूत्र-संख्या- १–१४ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोपाभाव; १–८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १–५ से हलन्त 'र्' के साथ प्राप्त 'अ' की संधि; २–५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २–८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १–११ से मूल संस्कृत शब्द–आत्मन् के अन्त्य न्' का लोप, ३–४९ तथा ३–५६ की वृत्ति से मूल संस्कृत शब्द 'आत्मन्' में 'न्' के लोप हो जाने के पश्चात् शेष अकारान्त रूप में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर *अन्तरप्पा* रूप सिद्ध हो जाता है।

निरन्तरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निरन्तर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१४ से 'निर' में स्थित अन्त्य 'र्' का लोपाभाव; १–५ से हलन्त 'र्' के साथ आगे रहे हुए 'अ' की संधि, ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरन्तरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्+अवशेषम्=*निरवशेषम्* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निरवसेसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१४ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोपाभाव; १–५ से हलन्त 'र्' के साथ आगे रहे हुए 'अ' की संधि १–२६० से 'श' और 'ष' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति, ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरवसेसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर्+उत्तरं=*दुरुत्तरम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुरुत्तरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१४ से 'र्' का लोपा भाव, १–५ से हलन्त 'र' के साथ 'उ' की संधि और शेष साधनिका ३–२५ और १–२३ से 'निरवसेस' के समान ही होकर *दुरुत्तरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर्+अवगाहम्=*दुरवगाहम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भी दुरवगाहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१४ से 'र्' का लोपा भाव; १–५ से हलन्त 'र्' के साथ 'अ' की संधि और शेष साधनिका ३–२५ तथा १–२३ से निरवसेस के समान ही होकर *दुरवगाहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अन्तरोपरि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अन्तोवरि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ की वृत्ति से प्रथम 'र्' का लोप; १-१० से 'त' में स्थित 'अ' के आगे 'ओ' आ जाने से लोप; १-५ से हलन्त 'त्' के साथ आगे रहे हुए 'ओ' की संधि; और १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होकर *अन्तोवरि* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-१४ ॥

स्त्रियामादविद्युतः ॥ १-१५ ॥

स्त्रियां वर्तमानस्य शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य आत्वं भवति विद्युच्छब्दं वर्जयित्वा। लुगपवादः॥ सरित्। सरिआ॥ प्रतिपद्। पाडिवआ॥ संपद्। संपआ॥ बहुलाधिकाराद् ईषत्स्पृष्टतर य श्रुतिरपि। सरिया। पाडिवया। संपया॥ अविद्युत इति किम्॥ विज्जू॥

अर्थ—विद्युत शब्द को छोड़ करके शेष 'अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन वाले संस्कृत स्त्री लिंग (वाचक) शब्दों के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर 'आत्व = आ' की प्राप्ति होती है। यों व्यञ्जनान्त स्त्री लिंग वाले संस्कृत शब्द प्राकृत में आकारान्त हो जाते हैं। यह सूत्र पूर्वोक्त (१-११ वाले) सूत्र का अपवाद रूप सूत्र है। उदाहरण इस प्रकार है—सरित् = सरिआ; प्रतिपद् = पाडिवआ; संपद् = संपआ इत्यादि। 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'आ' स्वर के स्थान पर 'सामान्य स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने वाले' ऐसे 'या' की प्राप्ति भी होती हुई पाई जाती है। जैसे—सरित् = सरिआ अथवा सरिया; प्रतिपद् = पाडिवआ अथवा पाडिवया और संपद् = संपआ अथवा संपया इत्यादि।

प्रश्न—'विद्युत्' शब्द का परित्याग क्यों किया गया है?

उत्तर—चूंकि प्राकृत-साहित्य में 'विद्युत्' का रूपान्तर 'विज्जू' पाया जाता है; अतः परम्परा का उल्लंघन कैसे किया जा सकता है? साहित्य की मर्यादा का पालन करना सभी वैयाकरणों के लिये अनिवार्य है; तदनुसार 'विद्युत्-विज्जू' को इस सूत्र-विधान से पृथक् ही रक्खा गया है इसकी साधनिका अन्य सूत्रों से की जायगी।

सरित् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप सरिआ और सरिया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५ से प्रथम रूप में हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति होकर क्रम से *सरिआ* और *सरिया* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिपद् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप पाडिवआ और पाडिवया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से प्रथम 'प' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' आदेश; १-२३१ से द्वितीय 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और १-१५ से हलन्त अन्त्य व्यञ्जन 'द्' के स्थान पर क्रम से दोनों रूपों में 'आ' और 'या' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप-*पाडिवआ* तथा *पाडिवया* सिद्ध हो जाते हैं।

संपद् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप संपआ और संपया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५ से हलन्त अन्त्य व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर क्रम से दोनों रूप *संपआ* और *संपया* सिद्ध हो जाते हैं।

विद्युत् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *विज्जू* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१५ ॥

रो रा ॥ १-१६ ॥

स्त्रियां वर्तमानस्यान्त्यस्य रेफस्य रा इत्यादेशो भवति ॥ आत्त्रापवादः ॥ गिरा। धुरा। पुरा ॥

अर्थः-संस्कृत-भाषा में स्त्रीलिंग रूप से वर्तमान जिन शब्दों के अन्त में हलन्त रेफ 'र्' रहा हुआ है, उन शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में उक्त हलन्त रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' आदेश-प्राप्ति होती है। जैसे:-गिर्=गिरा, धुर्=धुरा और पुर्=पुरा। इस सूत्र को सूत्र-संख्या १-१५ का अपवाद रूप विधान समझना चाहिये। क्योंकि सूत्र-संख्या १-१५ में अन्त्य व्यञ्जन के स्थान पर 'आ' अथवा 'या' की प्राप्ति का विधान है; जबकि इसमें अन्त्य व्यञ्जन सुरक्षित रहता है और इस सुरक्षित रेफ रूप 'र' में 'आ' की संयोजना होती है; अत यह सूत्र १-१५ के लिये अपवाद रूप है।

गिर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र' के स्थान पर 'रा' आदेश होकर *गिरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

धुर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' की आदेश-प्राप्ति होकर *धुरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' आदेश होकर *पुरा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१६ ॥

क्षुधो हा ॥ १-१७ ॥

क्षुध् शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हादेशो भवति ॥ छुहा ॥

अर्थ-संस्कृत भाषा के 'क्षुध्' शब्द के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ध्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'हा' आदेश-प्राप्ति होती है। जैसे:-क्षुध्=छुहा ॥

क्षुध् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छुहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति और १-१७ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ध्' के स्थान पर 'हा' आदेश होकर छुहा रूप सिद्ध हो जाता है। १-१७॥

शरदादेरत् ॥ १-१८ ॥

शरदादेरन्त्य व्यञ्जनस्य अत् भवति ॥ शरद् । सरओ ॥ भिषक् । भिसओ ॥

अर्थ-संस्कृत भाषा के 'शरद्' 'भिषक्' आदि शब्दों के अन्त्यस्थ हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होती है जैसे-शरद् = सरओ और भिषक् = भिसओ इत्यादि ॥

शरद् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१८ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'द्' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' की प्राप्ति; 'ओ' के पूर्वस्थ 'अ' की इत्संज्ञा होकर लोप होकर *सरओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भिषक् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिसओ होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१८ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर उपरोक्त 'सरओ' के समान ही 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिसओ* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१८॥

दिक्-प्रावृषोः सः ॥ १-१९ ॥

एतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य सो भवति ॥ दिसा । पाउसो ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'दिक्' और 'प्रावृष्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर 'स' का आदेश होता है जैसे-दिक् = दिसा और प्रावृष् = पाउसो।

दिक् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप दिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क' के स्थान पर प्राकृत में 'स' आदेश-प्राप्ति और ३-३१ की वृत्ति से स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रावृष् (=प्रावृट्) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाउसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१३१ से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१९ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ट' (अथवा 'ष्') के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-३१ से प्राप्त

रूप 'पाउस' को प्राकृत में पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पाउसो रूप सिद्ध हो जाता है । १-१९॥

आयुरप्सरसोर्वा ॥ १-२० ॥

एतयोरन्त्य व्यंजनस्य सो वा भवति ॥ दीहाउसो दीहाऊ । अच्छरसा अच्छरा ॥

अर्थ.-संस्कृत शब्द 'आयुष्' और 'अप्सरस्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' और 'स्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'स' की प्राप्ति होती है । जैसे-दीर्घायुष्=दीहाउसो अथवा दीहाऊ और अप्सरस्=अच्छरसा और अच्छरा ।

दीर्घायुष् संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप दीहाउसो और दीहाऊ होते हैं । इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-२० से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग रूप 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दीहाउसो* सिद्ध हो जाता है । द्वितीय रूप-(दीर्घायुष्) दीहाऊ में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य्' का लोप, १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'ष्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप-*दीहाऊ* भी सिद्ध हो जाता है ।

अप्सरस् संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप अच्छरसा और अच्छरा होते हैं । इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-२१ से संयुक्त व्यञ्जन 'प्स' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति, १-२० से अन्त्य हलन्त व्यंजन 'स्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-३१ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'अच्छरस' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अच्छरसा* सिद्ध हो जाता है ।

द्वितीय-रूप-(अप्सरस्=) अच्छरा में 'अच्छरस्' तक की साधनिका उपरोक्त रूप के समान, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और ३-३१ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'अच्छर' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अच्छरा* सिद्ध हो जाता है । १-२० ॥

ककुभो हः ॥ १-२१ ॥

ककुभ् शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हो भवति ॥ कउहा ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'ककुभ्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'भ्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'ह' की प्राप्ति होती है । जैसे-ककुभ्=कउहा ।

ककुम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप १-२१ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और १-११ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'कउह्' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कउहा रूप सिद्ध हो जाता है। १-२१ ॥

धनुषो वा ॥ १-२२ ॥

धनु शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हो वा भवति ॥ धणुहं । धणू ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'धनुष्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'ह्' की प्राप्ति होती है। जैसे-धनु = (धनुष =) धणुहं = और धणू ॥

धनुष् =(धनु =) संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप धणुहं और धणू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२२ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप धणुहं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(धनुष् =) धणू में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' का लोप १-३२ से प्राप्त रूप 'धणु' को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप धणू भी सिद्ध हो जाता है। १-२२ ॥

मोनुस्वार ॥ १-२३ ॥

अन्त्य मकारस्यानुस्वारो भवति । जलं फलं वच्छं गिरिं पेच्छ ॥ क्वचिद् अनन्त्यस्यापि । वणम्मि । वणंमि ॥

अर्थ-पद के अन्त में रहे हुए हलन्त 'म्' का अनुस्वार हो जाता है। जैसे-जलम् = जलं फलम् = फलं वृक्षम् = वच्छं और गिरिम् पश्य = गिरिं पेच्छ। किसी किसी पद में कभी कभी अनन्त्य-याने पद के अन्तर्भाग में रहे हुए हलन्त 'म' का भी अनुस्वार हो जाता है। जैसे-वने-वणम्मि अथवा वणंमि। इस उदाहरण में अन्तर्भाग में रहे हुए हलन्त 'म' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। यों अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

जलम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप जलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म' प्रत्यय और १-२३ से 'म' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर जलं रूप सिद्ध हो जाता है।

फलम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप फलं होता है। इसमें उपरोक्त 'जलं' के समान ही सूत्र-संख्या ३-५ और १-२३ से साधनिका की प्राप्ति होकर फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *वच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गिरिम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप गिरिं होता है। इसमें उपरोक्त 'जल' के समान ही सूत्र-संख्या ३-५ और १-२३ से साधनिका की प्राप्ति होकर *गिरिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्य संस्कृत आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८१ से मूल संस्कृत धातु 'दृश्' के स्थानीय रूप 'पश्य्' के स्थान पर प्राकृत में 'पेच्छ्' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'पेच्छ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत मे 'प्रत्यय-लोप' की प्राप्ति होकर *पेच्छ* क्रियापद-रूप सिद्ध हो जाता है।

वने संस्कृत सप्तम्यन्त एक वचन का रूप है। इसके प्राकृत रूप वणम्मि और वणंमि होते है। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ङि इ' प्रत्यय के स्थान पर संयुक्त 'म्मि' और १-२३ से 'म्मि' में स्थित हलन्त 'म्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *'वणम्मि'* और *'वणंमि'* सिद्ध हो जाते है। १-२३ ॥

वास्वरे मश्च ॥ १--२४ ॥

अन्त्य मकारस्य स्वरे परेऽनुस्वारो वा भवति। पक्षे लुगपवादो मस्य मकारश्च भवति ॥ वन्दे उसभं अजिअं। उसभमजिअं च वन्दे ॥ बहुलाधिकाराद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः ॥ साक्षात्। सक्खं ॥ यत्। जं ॥ तत्। तं ॥ विष्वक्। वीसुं ॥ पृथक पिहं ॥ सम्यक्। सम्मं इहं। इहयं। आलेट्ठु अं। इत्यादि ॥

अर्थ-यदि किसी पद के अन्त में रहे हुए हलन्त 'म्' के पश्चात् कोई स्वर रहा हुआ हो तो उस पदान्त हलन्त 'म्' का वैकल्पिक रूप से अनुस्वार होता है। वैकल्पिक पक्ष होने से यदि उस हलन्त 'म्' का अनुस्वार नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में सूत्र-संख्या १-११ से 'म्' के लिये प्राप्तव्य लोप-अवस्था का भी अभाव ही रहेगा, इसमें कारण यह है कि आगे 'स्वर' रहा हुआ है, तदनुसार उक्त हलन्त 'म्' की स्थिति 'म्' रूप में ही कायम रहकर उस हलन्त 'म्' में आगे रहे हुए 'स्वर' की संधि हो जाती है। यों पदान्त हलन्त 'म्' के लिये प्राप्तव्य 'लोप-प्रक्रिया' के प्रति यह अपवाद-रूप स्थिति जानना। जैसे:-वन्दे ऋषभम् अजितम् = वन्दे उसभ

साक्षात् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप सक्खं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'सा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; १-४ से अथवा १-८४ से पदस्थ द्वितीय 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और १-२४ की वृत्ति से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सक्खं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

यत् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप जं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *जं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

तत् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप तं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *तं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

विष्वक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप वीसुं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-४३ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप, १-२६० से लोप हुए 'व्' के पश्चात शेष रहे हुए 'ष' को 'स' की प्राप्ति, १-५२ से प्राप्त व्यञ्जन 'स' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *वीसुं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

पृथक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप पिहं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *पिहं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

सम्यक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप सम्मं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति, १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ऋधक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप इहं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२४ से अन्त्य 'क्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से म् के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *इहं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कंचुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लाञ्छनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लंछणं होता। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'ला' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *लंछणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्मुखः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छंमुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से 'ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छंमुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कण्ठा संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उक्कंठा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *उक्कंठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सन्ध्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संझा होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और २-२६ से 'ध्य्' के स्थान पर 'झ्' की प्राप्ति होकर *संझा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्ध्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विंझो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, २-२६ से 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंझो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२५ ॥

वक्रादावन्तः ॥ १-२६ ॥

वक्रादिषु यथा दर्शनं प्रथमादेः स्वरस्य अन्त आगम रूपोऽनुस्वारो भवति ॥ वंकं । तंसं । अंसुं । मंसू । पुंछं । गुंछं । मुंढा । पंसू । बुंधं । कंकोडो । कुंपलं । दंसणं । विंछिओ । गिंठी । मंजारो । एष्वाद्यस्य ॥ वयंसो । मणंसी । मणंसिणी । मणंसिला । पडंसुआ एषु द्वितीयस्य ॥ अवरिं । अणिउंतयं । अइमुंतयं । अनयोस्तृतीयस्य ॥ वक्र । त्र्यस्र । अश्रु । श्मश्रु । पुच्छ । गुच्छ । मूर्द्धन् । पर्शु । बुध्न । कर्कोट । कुड्मल । दर्शन ।

त्र्यस्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तंसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र्' और 'स्र' में स्थित दोनो 'र्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६ से 'त' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *तंसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्रु-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अंसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'अ' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से 'श्रु' में स्थित 'र्' का लोप, १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' के 'श्' को 'स्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *अंसुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्मश्रु-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मंसू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८६ से प्रथम हलन्त 'श्' का लोप; १-२६ से 'म' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से श्र में स्थित 'र्' का लोप, १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुंल्लिग में संस्कृत-प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मंसू* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुच्छम्-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुंछं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'पु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, १-१७७ की वृत्ति से हलन्त 'च्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर पुंछं रूप सिद्ध हो जाता है।

गुच्छम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गुंछं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'गु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, १-१७७ की वृत्ति से हलन्त 'च' का लोप और शेष साधनिका उपरोक्त 'पुंछं' के समान ३-२५ तथा १-२३ से होकर *गुंछं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्द्धा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुंढा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, १-२६ से प्राप्त 'मु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप २-४१ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति, १-११ से मूल संस्कृत रूप 'मूर्द्धन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-४९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'नकारान्त-शब्द' में अन्त्य 'न्' लोप होने के पश्चात् शेष अन्त्य 'अ' को 'आ' की प्राप्ति होकर मुंढा रूप सिद्ध हो जाता है।

पर्शुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पंसू होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'प' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *पंसू* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुध्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बुंधं होता है इसमें सूत्र संख्या १-२६ से 'बु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७८ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *बुंधं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्कोटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंकोडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से प्रथम 'क' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप; १-१९५ से 'ट्' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कंकोडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुड्मलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुंपलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'कु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-५२ से 'ड्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कुंपलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दर्शनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दंसणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'द' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *दंसणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विंछिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'वि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंछिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृष्टिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गिंठी और गिट्ठी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'गि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गिंठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गृष्टिः =) गिट्ठी में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *गिट्ठी* भी सिद्ध हो जाता है।

मार्जार—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मंजारो और मज्जारो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से "मा" में स्थित "आ" के स्थान पर "अ" की प्राप्ति; १-२६ से "म" पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से रेफ रूप हलन्त "र्" का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मंजारो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मार्जारः=) मज्जारो में सूत्र-संख्या १-८४ से "मा" में स्थित "आ" के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से रेफ रूप हलन्त "र्" का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए "ज्" को द्वित्व "ज्ज" की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *मज्जारो* भी सिद्ध हो जाता है।

वयस्य—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वयंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से प्रथम 'य" पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७८ से द्वितीय 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वयंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनस्वी—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणंसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप; १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'मनस्विन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मणंसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनस्विनी—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणंसिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से 'व्' का लोप और १-२२८ से द्वितीय 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *मणंसिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनः शिला संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मणंसिला, मणसिला, मणासिला और (आर्ष-प्राकृत में) मणोसिला होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, १-११ से 'मनस्=मन' शब्द के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मणंसिला* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२६ के अतिरिक्त शेष सूत्रो की 'प्रथम-रूप के समान ही' प्राप्ति होकर द्वितीय रूप '*मण-सिला*' सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या १-४३ से प्राप्त द्वितीय रूप 'मण-सिला' में स्थित 'ण' के 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *मणा-सिला* सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थ रूप-में सूत्र-संख्या १-३ से प्राप्त द्वितीय रूप 'मण-सिला' में स्थित 'ण' के 'अ' को वैकल्पिक रूप से ओ' की प्राप्ति होकर चतुर्थ आर्ष रूप '*मणो-सिला*' भी सिद्ध हो जाता है।

प्रतिश्रुत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडंसुआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'प्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२०६ से 'ति' में स्थित 'त्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति; १-८८ से प्राप्त 'डि' में स्थित 'इ' के के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'ड' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'श्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से प्राप्त 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और १-१५ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर स्त्री-लिंग-अर्थक 'आ' की प्राप्ति होकर *पडंसुआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपरि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवरिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०८ से 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और १-२६ से अन्त्य 'रि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *अवरिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अतिमुक्तकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अणिउंतयं अइमुंतयं और अइमुत्तयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२०८ से 'ति' में स्थित 'त्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-१७८ से 'मु' का लोप होकर शेष रहे हुए स्वर 'उ' पर अनुनासिक की प्राप्ति; २-७७ से 'क्त' में स्थित हलन्त 'क' का लोप; १-१७७ से अंतिम 'क' का लोप; १-१८० से अंतिम 'क' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *अणिउंतयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(अतिमुक्तकम् =) अइमुंतयं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ति' में स्थित 'त्' का लोप; १-२६ से 'मु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७७ से 'क्त' में स्थित 'क' का लोप; १-१७७ से अंतिम 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका की प्राप्ति प्रथम रूप के समान ही ३-५ और १-२३ से होकर द्वितीय रूप *'अइमुंतयं'* सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(अतिमुक्तकम् =) अइमुत्तयं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ति' में स्थित 'त्' का लोप; २-७७ से 'क्त' में स्थित 'क' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से अंतिम 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका की प्राप्ति प्रथम रूप के समान ही ३-५ और १-२३ से होकर तृतीय रूप *अइमुत्तयं* सिद्ध हो जाता है।

देव-नाग-सुवर्ण संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप देवं-नाग-सुवण्ण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'देव' में स्थित 'व' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से अंतिम संयुक्त व्यञ्जन 'र्ण' में स्थित रेफ रूप हलन्त 'र्' का लोप और २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति होकर प्राकृत-भाषा-अंश *'देवं-नाग-सुवण्ण'* सिद्ध हो जाता है। १-२६ ॥

क्त्वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा ॥ १-२७ ॥

क्त्वायाः स्यादीनां च यौ णसुतयोरनुस्वारोन्तो वा भवति ॥ क्त्वा ॥ काऊणं काउण काउआणं काउआण ॥ स्यादि । वच्छेणं वच्छेण । वच्छेसुं वच्छेसु ॥ णस्वोरितिकिम् । करिअ । अग्गिणो ॥

अर्थः—संस्कृत-भाषा में सबंध भूत कृदन्त के अर्थ में क्रियाओं में 'क्त्वा' प्रत्यय की संयोजना होती है; इसी 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में सूत्र-संख्या–२-१४६ से 'तूण' और 'तुआण' अथवा 'ऊण' और 'उआण' प्रत्ययों की प्राप्ति का विधान है; तदनुसार इन प्राप्तव्य प्रत्ययों में स्थित अंतिम 'ण' व्यञ्जन पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-कृत्वा=काऊणं अथवा काऊण, और काउआणं; अथवा काउआण इसी प्रकार से प्राकृत-भाषा में संज्ञाओं में तृतीया विभक्ति के एक वचन में, षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में तथा सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में क्रम से 'ण' और 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति का विधान है; तदनुसार इन प्राप्तव्य प्रत्ययों पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होती है। जैसे-वृक्षेण = वच्छेणं अथवा वच्छेण; वृक्षाणाम् = वच्छाणं अथवा वच्छाण और वृक्षेषु=वच्छेसुं अथवा वच्छेसु; इत्यादि।

प्रश्न—प्राप्तव्य प्रत्यय 'ण' और 'सु' पर ही वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होती है, ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—प्राप्तव्य प्रत्यय 'ण' और 'सु' के अतिरिक्त यदि अन्य प्रत्यय रहे हुए हों उन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का कोई विधान नहीं है; तदनुसार अन्य प्रत्ययों के सम्बन्ध में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का अभाव ही समझना चाहिये। जैसे—कृत्वा = करिअ; यह उदाहरण सम्बन्ध भूत कृदन्त का होता हुआ भी इसमें 'ण' संयुक्त प्रत्यय का अभाव है; अतएव इसमें आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का भी अभाव ही प्रदर्शित किया गया है। विभक्ति बोधक प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है-अग्नयः = अथवा अग्नीन अग्गिणो, इस उदाहरण में प्रथमा अथवा द्वितीया के बहुवचन का प्रदर्शक प्रत्यय संयोजित है; परन्तु इस प्रत्यय में 'ण' अथवा 'सु' का अभाव है; तदनुसार इसमें आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का भी अभाव ही प्रदर्शित किया गया है; यों 'ण' अथवा 'सु' के सद्भाव में ही इन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति वैकल्पिक रूप से हुआ करती है, यह तात्पर्य ही इस सूत्र का है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है, इसके प्राकृत रूप काऊणं काऊण, काउआणं, काउआण और करिअ होते हैं। इन में से प्रथम चार रूपों में सूत्र संख्या-४–२१४ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' के स्थान पर प्राकृत में 'का' की प्राप्ति; २-१४६ से कृदन्त अर्थ में संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'तूण' और 'तूआण' के क्रमिक स्थानीय रूप 'ऊण' और 'ऊआण' प्रत्ययों की प्राप्ति, १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ऊण' और 'ऊआण' में स्थित अन्त्य व्यञ्जन 'ण' पर वैकल्पिक रूप से आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से चारों रूप-*काऊणं*, *काऊण*, *काऊआणं*, और *काऊआण* सिद्ध हो जाते है।

पाँचवें रूप (कृत्वा=) करिअ में सूत्र-संख्या-४-२१४ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'कर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५७ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१४६ से संबंध भूत कृदन्त सूचक प्रत्यय 'क्त्वा' के स्थान पर प्राकृत में 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से प्राप्त प्रत्यय 'अत्' के अन्त में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *करिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षेण संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वच्छेणं और वच्छेण होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा=आ' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्वस्थ 'वच्छ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *वच्छेणं* और *वच्छेण* सिद्ध हो जाते हैं।

वृक्षेषु संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वच्छेसुं और वच्छेसु होते हैं। इसमें 'वच्छ' रूप मूल अंग की प्राप्ति उपरोक्त रीति अनुसार; तत्पश्चात् सूत्र-संख्या ४-४४८ से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'सु' के पूर्वस्थ 'वच्छ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'सु' पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *वच्छेसुं* और *वच्छेसु* सिद्ध हो जाते हैं।

अग्नयः और *अग्नीन्* संस्कृत के प्रथमान्त द्वितीयान्त बहुवचन अर्थक रूप हैं। इसका प्राकृत रूप अग्गिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'न्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२२ से प्रथमा विभक्ति तथा द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'जस्=अस्' और 'शस्' प्रत्यय के स्थान पर 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अग्गिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-२७।

विंशत्यादेर्लुक् ॥ १-२८ ॥

विंशत्यादीनाम् अनुस्वारस्य लुग् भवति। विंशतिः। वीसा॥ त्रिंशत्। तीसा। संस्कृतम्। सक्कयं॥ संस्कारः। सक्कारो इत्यादि॥

अर्थः—विंशति आदि संस्कृत शब्दों का प्राकृत-रूपान्तर करने पर इन शब्दों में आदि अक्षर पर स्थित अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे—विंशतिः=वीसा; त्रिंशत्=तीसा; संस्कृतम्=सक्कयं और संस्कारः=सक्कारो; इत्यादि।

विंशतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२८ से अनुस्वार का

लोप, १-९२ से 'यि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति तथा १-९२ से ही स्वर सहित 'ति' व्यञ्जन का लोप अथवा अभाव, १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप और ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थक प्रत्यय 'आ' की प्राप्त रूप 'वीस' में प्राप्ति होकर *वीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रिंशत् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तीसा होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप, २-७९ से 'त्रि' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोप, १-९२ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति, १-२६० से श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप और ३ ३१ से स्त्रीलिंग-अर्थक प्रत्यय 'आ' की प्राप्त रूप 'तीस' में प्राप्ति होकर *तीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्कृतम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कय होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप, २-७७ से द्वितीय 'स्' का लोप, १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-८९ से पूर्वोक्त लोप हुए 'स्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सक्कयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्कारः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कारो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप, २-७७ से द्वितीय हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'स्' के पश्चात शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सक्कारो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-२८ ॥

मांसादेर्वा ॥ १--२९ ॥

मांसादीनामनुस्वारस्य लुग् वा भवति। मासं मंसं। मासलं मंसलं। कासं कंसं। पासू पंसू। कह कहं। एव एवं। नूण नूणं। इआणि इआणिं। दाणि दाणिं। कि करेमि किं करेमि। समुहं संमुहं। केसुअं किंसुअं। सीहो सिंघो॥ मांस। मांसल। कांस्य। पांसु। कथम्। एवम्। नूनम्। इदानीम्। किम्। संमुख। किंशुक। सिंह। इत्यादि॥

अर्थ—मांस आदि अनेक सस्कृत शब्दों का प्राकृत-रूपान्तर करने पर उनमें स्थित अनुस्वार का विकल्प से लोप हो जाया करता है। जैसे—मांसम् = मास अथवा मस, मांसलम् = मासल अथवा मंसल, कास्यम् = कास अथवा कस, पांसु = पासू अथवा पसू, कथम् = कह अथवा कहं, एवम् = एव अथवा एवं, नूनम् = नूण अथवा नूणं, इदानीम् = इआणि अथवा इआणिं, इदानीम् = (शौर-सेनी में—) दाणि अथवा दाणिं, किम् करोमि = कि

करेमि अथवा किं करेमि; सम्मुखम् = समुहं अथवा संमुहं; किंशुकम् = केसुअं अथवा किंसुअं और सिंहः = सीहो अथवा सिंघो इत्यादि।

मांसम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासं और मंसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'मां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मासं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मांसम् =) मंसं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'मां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *मंसं* भी सिद्ध हो जाता है।

मांसलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासलं और मंसलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'मां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मासलं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (मांसलम् =) मंसलं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'मां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर *मंसलं* भी सिद्ध हो जाता है।

कांस्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कासं और कंसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'कां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कासं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(कांस्यम् =) कंसं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'कां' में स्थित दीर्घ-स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *कंसं* भी सिद्ध हो जाता है।

पांसुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पासू और पंसू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'पां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पासू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पांसुः =) पंसू में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'पां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पंसू* भी सिद्ध हो जाता है।

कथम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कह और कहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या–१-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और १-२९ से अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *कह* और *कहं* सिद्ध हो जाते हैं।

एवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप एव और एवं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *एव* और *एवं* सिद्ध हो जाते हैं।

नूनम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप नूण और नूणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिकरूप से लोप होकर क्रम से दोनो रूप *नूण* और *नूणं* सिद्ध हो जाते हैं।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इआणि और इआणिं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घस्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *इआणि* और *इआणिं* सिद्ध हो जाते हैं।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके शौर-सेनी भाषा में दाणि और दाणिं रूप होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-४-२७७ से 'इदानीम्' के स्थान पर 'दाणि' आदेश और १-२९ से अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *दाणि* और *दाणिं* सिद्ध हो जाते हैं।

किम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कि और किं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *कि* और *किं* सिद्ध हो जाते हैं।

करोमि संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप करेमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३४ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर्' आदेश ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'कर्' में विकरण प्रत्यय 'ए' की संधि और ३-१४१ से वर्तमान काल के तृतीय पुरुष के एक वचन में 'मि' प्रत्यय की संयोजना होकर *करेमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

संमुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप समुहं और संमुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२९ से 'स' पर स्थित अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप, १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनो रूप *समुहं* और *संमुहं* सिद्ध हो जाते हैं।

किंशुकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केसुअं और किंसुअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८६ से 'इ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति; १-२९ से 'किं' पर स्थित अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप;

उत्तर–यदि अनुस्वार के आगे वर्गीय अक्षर नहीं होकर कोई स्वर अथवा अवर्गीय–व्यञ्जन आया हुआ होगा तो उस अनुस्वार के स्थान पर किसी भी वर्ग का–('न्' के अतिरिक्त) पचम अक्षर नहीं होगा, इसलिये 'वर्ग' शब्द का भार-पूर्वक उल्लेख किया गया है। उदाहरण इस प्रकार हैं–संशय=संसओ और संहरति=संहरइ, इत्यादि। किन्ही किन्ही-व्याकरणाचार्यों का मत है कि प्राकृत-भाषा के शब्दो में रहे हुए अनुस्वार की स्थिति नित्य 'अनुस्वार रूप ही रहती है एव उनके स्थान पर वर्गीय पचम-अक्षर की प्राप्ति जैसी अवस्था नहीं प्राप्त हुआ करती है।

पंकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पङ्को और पंको होते है। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ङ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर 'ङ्' वैकल्पिक रुप से और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनो पद पङ्को तथा *पंको* सिद्ध हो जाते है।

शंखः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सङ्खो और संखो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'पङ्को–पंको' के अनुसार ही १-२५, १-३० और ३-२ से प्राप्त होकर क्रम से दोनों रुप सङ्खो और *संखो* सिद्ध हो जाते हैं।

अङ्गणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अङ्गण और अंगण होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ङ' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १ ३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रुप से, हलन्त 'ङ' व्यजन की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *अङ्गणं* और *अंगणं* सिद्ध हो जाते है।

लङ्घनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लङ्घण और लंघण होते हैं। इन में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त अङ्गण-अंगण, के अनुसार ही १-२५, १-३०, ३-२५ और १-२३ से प्राप्त होकर क्रमश दोनों रूप लङ्घण और लंघणं सिद्ध हो जाते हैं।

कञ्चुकः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप कञ्चुओ और कंचुओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ञ' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ' व्यञ्जन की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ स प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कञ्चुओ* और *कंचुओ* सिद्ध हो जाते हैं।

लाञ्छनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लञ्छणं और लंछणं होते है। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'ला' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२५ से हलन्त 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की

प्राप्ति; १-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *लञ्छणं* और *लंछणं* सिद्ध हो जाते हैं।

अञ्चितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अञ्चिअं और अंचिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' व्यञ्जन का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *अञ्चिअं* और *अंचिअं* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

सन्ध्या संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सञ्झा और संझा होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति और १-३० से पूर्व में प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *सञ्झा* और *संझा* सिद्ध हो जाते हैं।

कण्टकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्टओ और कंटओ होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क' व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कण्टओ* और *कंटओ* सिद्ध हो जाते हैं।

उत्कण्ठा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उक्कण्ठा और उक्कंठा होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *उक्कण्ठा* और *उक्कंठा* सिद्ध हो जाते हैं।

काण्डम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्डं और कंडं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कण्डं* और *कंडं* सिद्ध हो जाते हैं।

षण्ढः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सण्ढो और संढो होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त

अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *सण्ढो और संढो* सिद्ध हो जाते हैं।

अन्तरम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्तर और अंतर होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *अन्तरं* और *अंतरं* सिद्ध हो जाते हैं।

पन्थः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पन्थो और पंथो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *पन्थो* और *पंथो* सिद्ध हो जाते हैं।

चन्द्रः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चन्दो और चंदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति, २-८० से हलन्त 'र्' व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *चन्दो और चंदो* सिद्ध हो जाते हैं।

बान्धवः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बन्धवो और बंधवो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'बा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *बन्धवो* और *बंधवो* सिद्ध हो जाते हैं।

कम्पते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसके प्राकृत-रूप कम्पइ और कंपइ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ की वृत्ति से हलन्त " म,, व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त "म" व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कम्पइ* और *कंपइ* सिद्ध हो जाते हैं।

कांक्षति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत (आदेश-प्राप्त) रूप वम्फइ और वंफइ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ४-१९२ से संस्कृत धातु 'कांक्ष्' के स्थान पर प्राकृत में 'वम्फ्' की आदेश प्राप्ति, १-२३ की वृत्ति से हलन्त 'म्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक

'पाउसो' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१९ में की गई है।
'सरओ' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१८ में की गई है।

'एषा' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप-(पुल्लिंग में) एस होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में मूल-संस्कृत सर्वनाम रूप 'एतत्' के स्थान पर 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'एस' आदेश होकर 'एस' रूप सिद्ध हो जाता है।

तरणिः संस्कृत स्त्रीलिंग वाला रूप है। इसका प्राकृत (पुल्लिंग में) रूप तरणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-३१ से 'तरणि' शब्द को स्त्रीलिंगत्व से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर तरणी रूप सिद्ध हो जाता है। १-३१ ॥

स्नमदाम-शिरो-नभः ॥ १-३२ ॥

दामन् शिरस् नभस् वर्जितं सकारान्तं नकारान्तं च शब्दरूपं पुंसि प्रयोक्तव्यम् ॥ सान्तम्। जसो। पओ। तमो। तेओ। उरो ॥ नान्तम्। जम्मो। नम्मो। मम्मो ॥ अदाम शिरो नभ इति किम्। दामं। सिरं। नहं ॥ यच्च सेयं वयं सुमणं सम्मं चम्ममिति दृश्यते तद् बहुलाधिकारात् ॥

अर्थः—दामन्, शिरस् और नभस् इन संस्कृत शब्दो के अतिरिक्त जिन संस्कृत शब्दों के अन्त में हलन्त 'स' अथवा हलन्त 'न्' है, ऐसे सकारान्त अथवा नकारान्त संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूपान्तर करने पर इनके लिंग में परिवर्तन हो जाता है, तदनुसार ये नपुंसक लिंग से पुल्लिंग बन जाते हैं। जैसे—सकारान्त शब्दों के उदाहरण यशस्=जसो, पयस्=पओ, तमस्=तमो, तेजस्=तेओ, उरस्=उरो, इत्यादि। नकारान्त शब्दो के उदाहरण—जन्मन्=जम्मो, नर्मन्=नम्मो और मर्मन्=मम्मो, इत्यादि।

प्रश्न—दामन्, शिरस् और नभस् शब्दों का लिंग परिवर्तन क्यों नहीं होता है?

उत्तर—ये शब्द प्राकृत-भाषा में भी नपुंसक लिंग वाले ही रहते हैं, अतएव इनको उक्त 'लिंग-परिवर्तन वाले विधान से पृथक ही रखना पड़ा है। जैसे—दामन्=दामं, शिरस्=सिरं और नभस्=नहं। अन्य शब्द भी ऐसे पाये जाते हैं, जिनके लिंग में परिवर्तन नहीं होता है, इसका कारण 'बहुलं' सूत्रानुसार ही समझ लेना चाहिये। जैसे-श्रेयस्=सेयं, वयस्=वयं, सुमनस्=सुमणं; शर्मन्=सम्मं और चर्मन्=चम्मं, इत्यादि। ये शब्द सकारान्त अथवा नकारान्त हैं और संस्कृत-भाषा में इनका लिंग नपुंसक लिंग है, तदनुसार प्राकृत-रूपान्तर में भी इनका लिंग नपुंसक लिंग हो रहा है; इनमें लिंग का परिवर्तन नहीं हुआ है, इसका कारण 'बहुलम्' सूत्र ही जानना चाहिये। भाषा के प्रचलित और बहुमान्य प्रवाह को व्याकरणकर्त्ता पलट नहीं सकते हैं।

जसो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

'पाउसो' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१९ में की गई है।
'सरओ' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१८ में की गई है।

'एषा' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप-(पुल्लिग में) एस होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में मूल-संस्कृत सर्वनाम रूप 'एतत्' के स्थान पर 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'एस' आदेश होकर 'एस' रूप सिद्ध हो जाता है।

तरणिः संस्कृत स्त्रीलिंग वाला रूप है। इसका प्राकृत (पुल्लिग में) रूप तरणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-३१ से 'तरणि' शब्द को स्त्रीलिंगत्व से पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *तरणी* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३१ ॥

स्नमदाम-शिरो-नभः ॥ १-३२ ॥

दामन् शिरस् नभस् वर्जितं सकारान्तं नकारान्तं च शब्दरूपं पुंसि प्रयोक्तव्यम् ॥ सान्तम्। जसो। पओ। तमो। तेओ। उरो ॥ नान्तम्। जम्मो। नम्मो। मम्मो ॥ अदाम शिरो नभ इति किम्। दाम। सिरं। नहं ॥ यच्च सेयं वयं सुमणं सम्मं चम्ममिति दृश्यते तद् बहुलाधिकारात् ॥

अर्थः-दामन्, शिरस् और नभस् इन संस्कृत शब्दो के अतिरिक्त जिन संस्कृत शब्दों के अन्त में हलन्त 'स' अथवा हलन्त 'न्' है, एसे सकारान्त अथवा नकारान्त संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूपान्तर करने पर इनके लिंग में परिवर्तन हो जाता है, तदनुसार य नपुंसक लिंग से पुल्लिग बन जाते है। जैसे-सकारान्त शब्दों के उदाहरण यशस् = जसो, पयस्=पओ, तमस्=तमो, तेजस् तेओ, उरस् = उरो, इत्यादि। नकारान्त शब्दों के उदाहरण-जन्मन् = जम्मो, नर्मन् = नम्मो और मर्मन् = मम्मो, इत्यादि।

प्रश्न—दामन्, शिरस् और नभस् शब्दों का लिंग परिवर्तन क्यों नहीं होता है ?

उत्तर-ये शब्द प्राकृत-भाषा में भी नपुंसक लिंग वाले ही रहते है, अतएव इनको उक्त 'लिंग-परिवर्तन वाले विधान से पृथक ही रखना पड़ा है। जैसे —दामन् = दाम, शिरस् = सिर और नभस् = नह। अन्य शब्द भी ऐसे पाये जाते है, जिनके लिंग में परिवर्तन नहीं होता है, इसका कारण 'बहुल' सूत्रानुसार ही समझ लेना चाहिय। जैसे-श्रेयस् = सेय, वयस् = वय, सुमनस् = सुमण, शर्मन् = सम्म और चर्मन् = चम्म; इत्यादि। ये शब्द सकारान्त अथवा नकारान्त है और संस्कृत-भाषा में इनका लिंग नपुंसक लिंग है, तदनुसार प्राकृत-रूपान्तर में भी इनका लिंग नपुंसक लिंग ही रहा है; इनमें लिंग का परिवर्तन नहीं हुआ है, इसका कारण 'बहुलम्' सूत्र ही जानना चाहिये। भाषा के प्रचलित और बहुमान्य प्रवाह को व्याकरणकर्त्ता पलट नहीं सकते है।
जसो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

पयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'पओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; १-३२ से नपुंसक लिंगत्व से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'पओ' रूप सिद्ध होता है।

जसो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

तेजस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'तेओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'तेओ' रूप सिद्ध होता है।

उरस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'उरो' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'उरो' रूप सिद्ध होता है।

जम्मो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

नर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'नम्मो' रूप सिद्ध होता है।

मर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-११ से 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'मम्मो' रूप सिद्ध होता है।

दामन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दामं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर दामं रूप सिद्ध होता है।

शिरस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर सिरं रूप सिद्ध होता है।

नभस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर 'नहं' रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रेयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सेयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर 'सेयं' रूप सिद्ध हो जाता है।

वयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'स्' का लोप; -२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का नुस्वार होकर '*वयं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

सुमनस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुमण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; -११ से अन्त्य 'स' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १ २३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *सुमणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सम्म होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म', १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म' का अनुस्वार होकर '*सम्मं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

चर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चम्म होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से 'न्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म' का अनुस्वार होकर *चम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ३२॥

वाद्यर्थ-वचनाद्याः ॥ १-३३ ॥

अक्षिपर्याया वचनादयश्च शब्दाः पुंसि वा प्रयोक्तव्याः॥ अच्यर्थाः। अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं॥ अञ्जल्यादिपाठादक्षिशब्दः स्त्रीलिङ्गे पि। एसा अच्छी। चक्खू चक्खुइं। नयणा नयणाइं। लोअणा लोअणाइं॥ वचनादि। वयणा वयणाइं। विज्जुणा विज्जूए। कुलो कुलं। छन्दो छन्दं। माहप्पो माहप्पं। दुक्खा दुक्खाइं। भायणा भायणाइं। इत्यादि॥ इति वचनादयः॥ नेत्ता नेत्ताइं। कमला कमलाइं इत्यादि तु संस्कृतवदेव सिद्धम्॥

अर्थ—आंख के पर्यायवाचक शब्द और वचन आदि शब्द प्राकृत भाषा में विकल्प से पुंल्लिग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे कि आँख अर्थक शब्द—अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी अर्थात् वह (स्त्री) आज भी तुम्हारी (दोनों) आखों को श्राप देती है, अथवा सौगध देती है। यहां पर 'अच्छी' को पुंल्लिग मानकर द्वितीया बहुवचन का प्रत्यय जोड़ा गया है। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं अर्थात् उसके द्वारा मेरी आँखें नचाई गई। यहा पर 'अच्छीइं' लिखकर 'अच्छी' शब्द को नपुंसक में प्रयुक्त किया गया है। अजली आदि के पाठ से 'अक्षि' शब्द स्त्री-लिंग में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। जैसे—एसा अच्छी अर्थात् यह आँख। यहा पर अच्छी शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया गया है।

चक्खू चक्खूइं = आँखें। प्रथम रूप प्रथमा बहुवचन के पुल्लिंग का है; जबकि दूसरा रूप प्रथमा बहुवचन के नपुंसक लिंग का है। इसी प्रकार नयणा और नयणाई; लोअणा और लोअणाइं; ये शब्द भी नेत्र वाचक हैं। इनमें प्रथम रूप तो प्रथमा बहुवचन में पुल्लिंग का है; और द्वितीय रूप प्रथमा बहुवचन में नपुंसक लिंग का है।

वचन आदि के उदाहरण इस प्रकार हैं—वयणा और वयणाइं अर्थात् वचन। प्रथम रूप पुल्लिंग में प्रथमा बहुवचन का है और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में प्रथमा बहुवचन का है। विज्जुणा विज्जूए अर्थात् बिजुली से। प्रथम रूप पुल्लिंग में तृतीया एक वचन का है; और द्वितीय रूप स्त्रीलिंग में तृतीया एक वचन का है। कुलो कुलं अर्थात् कुटुम्ब। प्रथम रूप पुल्लिंग में प्रथमा एक वचन का है और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में प्रथमा एक वचन का है। छन्दो-छन्दं अर्थात् छन्द। यह भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है; तथा प्रथमा एक वचन के रूप हैं।

माहप्पो माहप्पं अर्थात् माहात्म्य। यहाँ पर भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसक लिंग है तथा प्रथमा एक वचन के रूप हैं। दुक्खा दुक्खाइं अर्थात् विविध दुःख। ये भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसक लिंग में लिखे गये हैं; तथा प्रथमा बहुवचन के रूप हैं। भायणा भायणाइं = भाजन बर्तन। प्रथम रूप पुल्लिंग में और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में है। दोनों की विभक्ति प्रथमा बहुवचन है। यों उपरोक्त वचन आदि शब्द विकल्प से पुल्लिंग भी होते हैं और नपुंसक लिंग भी। किन्तु नेत्ता और नेत्ताइं अर्थात् आँख तथा कमला और कमलाइं अर्थात् कमल इत्यादि शब्दों के लिंग संस्कृत के समान ही होते हैं; अतः यहाँ पर वचन आदि के साथ इनकी गणना नहीं की गई है।

अद्य संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप अज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से 'द्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर '*अज्ज*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

सा संस्कृत सर्वनाम स्त्रीलिंग शब्द है। इसका प्राकृत रूप सा ही होता है। 'सा' सर्वनाम का मूल शब्द तद् है। इसमें सूत्र-संख्या १-८६ से 'तद्' को 'स' आदेश हुआ। १-८७ की वृत्ति में उल्लिखित हैम व्याकरण २-४-१८ से आत् सूत्र से स्त्रीलिंग में 'स' का सा होता है। तत्पश्चात् १-११ से प्रथमा के एक वचन में सि प्रत्यय के योग से '*सा*' रूप सिद्ध होता है।

शपति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप सवइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-१३९ से ति के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर प्रथम पुरुष के एक वचन में वर्तमान काल का रूप '*सवइ*' सिद्ध हो जाता है।

तव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप ते होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से 'तव' के स्थान पर 'ते' आदेश होकर *ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्भिणी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गब्भिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का 'लोप'; २-८९ से प्राप्त 'भ' का द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति; १-११ से

'पाउसो' रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१९ में की गई है।
'सरओ' रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१८ में की गई है।

'एषा' सस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप-(पुल्लिग में) एस होता है। इसमें सूत्र-सख्या ३-८५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में मूल-सस्कृत सर्वनाम रूप 'एतत्' के स्थान पर 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'एस' आदेश होकर 'एस' रूप सिद्ध हो जाता है।

तरणि: सस्कृत स्त्रीलिंग वाला रूप है। इसका प्राकृत (पुल्लिग में) रूप तरणी होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-३१ से 'तरणि' शब्द को स्त्रीलिंगत्व से पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *तरणी* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३१ ॥

स्नमदाम-शिरो-नभः ॥ १-३२ ॥

दामन् शिरस् नभस् वर्जितं सकारान्तं नकारान्तं च शब्दरूपं पुंसि प्रयोक्तव्यम् ॥ सान्तम् । जसो । पओ । तमो । तेओ । उरो ॥ नान्तम् । जम्मो । नम्मो । मम्मो ॥ अदाम शिरो नभ इति किम् । दाम । सिरं । नहं ॥ यच्च सेयं वयं सुमणं सम्मं चम्ममिति दृश्यते तद् बहुलाधिकारात् ॥

अर्थः-दामन्, शिरस् और नभस् इन सस्कृत शब्दो के अतिरिक्त जिन संस्कृत शब्दों के अन्त में हलन्त 'स' अथवा हलन्त 'न्' है, एसे सकारान्त अथवा नकारान्त सस्कृत शब्दों का प्राकृत रूपान्तर करने पर इनके लिंग में परिवर्तन हो जाता है, तदनुसार य नपु सक लिंग से पुल्लिग बन जाते है। जैसे-सकारान्त शब्दों के उदाहरण यशस् = जसो, पयस्=पओ, तमस्=तमो, तेजस् तेओ, उरस् = उरो, इत्यादि। नकारान्त शब्दों के उदाहरण-जन्मन् = जम्मो, नर्मन् = नम्मो और मर्मन् = मम्मो, इत्यादि।

प्रश्न—दामन्, शिरस् और नभस् शब्दों का लिंग परिवर्तन क्यों नहीं होता है ?

उत्तर—ये शब्द प्राकृत-भाषा में भी नपु सक लिंग व से ही रहते है, अतएव इनको उक्त 'लिंग-परिवर्तन वाले विधान से पृथक ही रखना पडा है। जैसे —दामन् = दाम, शिरस् = सिर और नभस् = नहं। अन्य शब्द भी ऐसे पाये जाते है, जिनके लिंग में परिवर्तन नहीं होता है; इसका कारण 'बहुल' सूत्रानुसार ही समझ लेना चाहिय। जैसे-श्रेयस् = सेय, वयस् = वय, सुमनस् = सुमण; शर्मन् = सम्म और चर्मन् = चम्मं; इत्यादि। ये शब्द सकारान्त अथवा नकारान्त है और सस्कृत-भाषा में इनका लिंग नपु सक लिंग है, तदनुसार प्राकृत-रूपान्तर में भी इनका लिंग नपु सक लिंग ही रहा है; इनमें लिंग का परिवर्तन नहीं हुआ है, इसका कारण 'बहुलम्' सूत्र ही जानना चाहिये। भाषा के प्रचलित और बहुमान्य प्रवाह को व्याकरणकर्ता पलट नहीं सकते है।
जसो शब्द की सिद्धि सूत्र-सख्या १-११ में की गई है।

पयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'पओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; १-३२ से नपुंसक लिंगत्व से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'पओ'* रूप सिद्ध होता है।

तमो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

तेजस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'तेओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'तेओ'* रूप सिद्ध होता है।

उरस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'उरो' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'उरो'* रूप सिद्ध होता है।

जम्मो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

नर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'नम्मो'* रूप सिद्ध होता है।

मर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मम्मो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-११ से 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'मम्मो'* रूप सिद्ध होता है।

दामन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दामं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर दामं रूप सिद्ध होता है।

शिरस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *सिरं* रूप सिद्ध होता है।

नभस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *'नहं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रेयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सेयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *'सेयं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

वयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वय होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *'वयं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुमनस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुमण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', १-११ से अन्त्य 'स' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *सुमणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सम्मं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स', २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म' का अनुस्वार होकर *'सम्मं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

चर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चम्म होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से 'न्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म' का अनुस्वार होकर *चम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ३२॥

वाद्यर्थ-वचनाद्याः ॥ १-३३ ॥

अक्ष्यर्थपर्याया वचनादयश्च शब्दाः पुंसि वा प्रयोक्तव्याः॥ अक्ष्यर्थाः। अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं॥ अञ्जल्यादिपाठादक्षिशब्दः स्त्रीलिङ्गेपि। एसा अच्छी। चक्खू चक्खूइं। नयणा नयणाइं। लोअणा लोअणाइं॥ वचनादि। वयणा वयणाइं। विज्जुणा विज्जूए। कुलो कुलं। छन्दो छन्दं। माहप्पो माहप्पं। दुक्खा दुक्खाइं। भायणा भायणाइं। इत्यादि॥ इति वचनादयः॥ नेत्ता नेत्ताइं। कमला कमलाइं इत्यादि तु संस्कृतवदेव सिद्धम्॥

अर्थः—आँख के पर्यायवाचक शब्द और वचन आदि शब्द प्राकृत भाषा में विकल्प से पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे कि आँख अर्थक शब्द—अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी अर्थात् वह (स्त्री) आज भी तुम्हारी (दोनों) आंखों को श्राप देती है, अथवा सौगन्ध देती है। यहाँ पर 'अच्छी' को पुल्लिग मानकर द्वितीया बहुवचन का प्रत्यय जोड़ा गया है। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं अर्थात् उसके द्वारा मेरी आँखें नचाई गई। यहा पर 'अच्छीइं' लिखकर 'अच्छी' शब्द को नपुंसक में प्रयुक्त किया गया है। अंजली आदि के पाठ से 'अक्षि' शब्द स्त्रीलिंग में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। जैसे—एसा अच्छी अर्थात् यह आँख। यहा पर अच्छी शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया गया है।

से 'अच्छि' शब्द को पुल्लिंग पद की प्राप्ति, ३-४ से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् प्रत्यय की प्राप्ति होकर उसका लोप, और ३-१८ से अंतिम स्वर को दीर्घता की प्राप्ति होकर *अच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

नर्त्तित संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नच्चाविअइँ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ', ८ २२५ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'च्च', यहां पर प्रेरक अर्थ होने से 'इत' के स्थान पर सूत्र संख्या ३-१५२ से 'आवि' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१० से 'च्च' में स्थित 'अ' का लोप, १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप, ३-१३० से द्विवचन के स्थान पर बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति, ३-२६ से 'जस्' प्रत्यय स्थान पर 'इँ' का आदेश, तथा पूर्व के स्वर 'अ' को दीर्घता प्राप्त होकर नच्चाविआइँ रूप सिद्ध हो जाता है।

तेन संस्कृत सर्वनाम है, इसका प्राकृत रूप तेण होता है इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल शब्द 'तद्' के 'द्' का लोप; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'ण' की प्राप्ति, ३-१४ से 'त' में स्थित 'अ का ए' होकर *तेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्माकम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप अम्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-११४ से मूल शब्द अस्मद् को षष्ठी बहुवचन के 'आम्' प्रत्यय के साथ अम्ह आदेश होता है। यों 'अम्ह' रूप सिद्ध हो जाता है। वाक्य में स्थित 'तेण अम्ह' में 'ण' में स्थित 'अ' के आगे 'अ' आने से सूत्र संख्या १-१० से 'ण' के 'अ' का लोप होकर संधि हो जाने पर तेणम्ह सिद्ध हो जाता है।

अक्षीणि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छीइं होता है, इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च', ३-२६ से द्वितीया बहुवचन में 'शस्' प्रत्यय के स्थान पर 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति और इसी सूत्र से अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *अच्छीइँ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एषा संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप एसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल शब्द एतत् के अंतिम 'त्' का लोप, ३-८६ से 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर प्रथमा एक वचन में 'एत' का एस' रूप होता है। २-४-१८ से लौकिक सूत्र से स्त्रीलिंग का 'आ' प्रत्यय जोड़कर संधि करने से '*एसा*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अक्षि, संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्', १-३५ से इसका स्त्रीलिंग निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'इ' को 'दीर्घ ई' प्राप्त होकर *अच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्षुष् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चक्खू चक्खूइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' को 'ख', २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्', १-११ से 'ष्' का लोप, १-३३ से 'चक्खु' शब्द को विकल्प से पुल्लिंगता प्राप्त होने पर ३-१८ से 'सि' प्रथमा एक वचन के प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व उ' को दीर्घ 'ऊ' होकर *चक्खू* रूप सिद्ध होता है। एवं पुल्लिंग नहीं होने पर याने नपुंसक लिंग होने पर

अर्थ—गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे गुणाइं और गुणा से रयणाइं और रयणा तक जानना। इनमें पूर्व पद नपुंसक लिंग में है और उत्तर पद पुल्लिंग में प्रयुक्त किया गया है। 'गुणा' पद की १-११ में सिद्धि की गई है। और १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसक लिंगत्व होने पर ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विभवैः संस्कृत पद है। इसका प्राकृत रूप विहवेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; ३-७ से तृतीया बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर 'हिं' होता है। ३-१५ अन्त्य 'व' के 'अ' का 'ए' होकर *विहवेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुणाइँ शब्द की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। विशेषता यह है कि 'इं' के स्थान पर यहां पर 'इँ' प्रत्यय है। जो कि सूत्र संख्या ३-२६ से समान स्थिति वाला ही है।

मृग्यन्ते संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप मग्गन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग्' का द्वित्व 'ग्ग'; ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन के प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय का आदेश होकर *मग्गन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवाः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप देवाणि और देवा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देवाणि* रूप सिद्ध होता है। जब देव शब्द पुल्लिंग में होता है तब ३-४ से 'जस्-शस्' का लोप होकर एवं ३-१२ से अन्त्य स्वर की दीर्घता प्राप्त होकर *देवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिन्दवः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बिन्दूइं और बिन्दुणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में अन्त्य स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिन्दूइं* रूप सिद्ध होता है। जब बिन्दु शब्द पुल्लिंग में होता है; तब ३-२२ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस् शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'णो' आदेश होकर *बिन्दुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

खड्गः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खग्गं और खग्गो होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ड्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२५ से प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग में 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खग्गं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंग में होता है; तब ३-२ से प्रथमा एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *खग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मण्डलाग्रः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मण्डलग्गं और मण्डलग्गो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ला' के 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-३४ से विकल्प रूप से [illegible] की प्राप्ति होने से ३-२५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त

प्रश्नः-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पण्हा और पण्हो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-७५ से 'श्न' का 'ण्ह' आदेश, १-३५ से स्त्रीलिंग विकल्प से होने पर प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के सूत्रानुसार 'आ' प्रत्यय प्राप्त होकर *पण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है। एवं लिंग में वैकल्पिक विधान होने से पुल्लिग में ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चौर्यम्:-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चोरिआ और चोरिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१५९ से "औ' का ओ', २-१०७ से 'इ' का आगम होकर 'र्' में मिलने पर 'रि' हुआ। १-१७८ से 'य्' का लोप, सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग वाचक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति १-११ से अन्त्य 'म्' का लोप; होकर *चोरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है। दूसरे रूप में सूत्र १-३५ में जहाँ स्त्रीलिंग नहीं गिना जायगा, अर्थात् नपुंसक लिंग में ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग का 'म्' प्रत्यय, १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुक्षिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुच्छी है। इसमें सूत्रसंख्या-२-१७ से 'क्ष्' का "छ्"; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्' १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *कुच्छी* रूप सिद्ध हो जाना है।

बलिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बली होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घस्वर 'ई' होकर *बली* रूप सिद्ध हो जाता है।

निधिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप निही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से ''ध का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *निही* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का 'ई' होकर *विही* रूप सिद्ध हो जाता है।

रश्मि.-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप रस्सी हो जाता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'म् का लोप, १-२६० से 'श्' का 'स्', २-८९ से 'स्' का द्वित्व 'स्स', ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *रस्सी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रन्थिः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गण्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१२० से ग्रंथि के स्थान

१ २६ से प्रथमा बहुवचन के 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति के साथ पूर्व ह्रस्व स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *चक्खूइं* रूप सिद्ध होता है।

नयनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नयणा और नयणाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ २२८ से 'न' का 'ण'; १ ३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगता की प्राप्ति; ३ ४ से 'जस्-शस्' प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३ १२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *नयणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिंग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३ २६ से प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन के 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नयणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोचनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लोअणा और लोअणाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'च्' का लोप; १ २२८ से 'न' का 'ण'; १ ३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगता की प्राप्ति; ३ ४ से 'जस्-शस्' प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३ १२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *लोअणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिंग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३ २६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के जस्-शस् प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोअणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वचनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वयणा और वयणाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'च्' का लोप; १ १८० से शेष 'अ' का 'य'; १ २२८ से 'न' का 'ण'; १ ३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगता की प्राप्ति; ३ ४ से 'जस्-शस्' प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३ १२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *वयणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिंग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३ २६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय होकर *वयणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्युत् मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप विज्जुणा और विज्जूए होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २ २४ से 'द्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; १ ११ से अन्त्य 'त्' का लोप; १ ३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगता की प्राप्ति; ३ २४ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'णा' की प्राप्ति होकर *विज्जुणा* शब्द की सिद्धि हो जाती है। एवं स्त्रीलिंग होने की दशा में ३ २९ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' आदेश एवं 'ज्जु' के ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति होकर *विज्जूए* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुल मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुलो और कुलं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *कुलो* रूप सिद्ध हो जाता है। और १ ३३ से नपुंसक होने पर ३ २५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १ २३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *कुलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छन्दस् मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप छन्दो और छन्दं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ ११ से 'स्' का लोप; १ ३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगता की प्राप्ति; ३ २ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *छन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है। और नपुंसक होने पर ३ २५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १ २३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *छन्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।
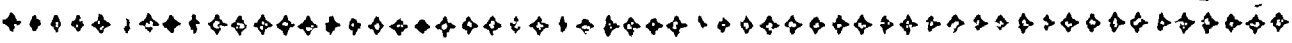
माहात्म्य मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप माहप्पो और माहप्पं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'हा' के 'आ' का 'अ', २-७८ से 'य्' का लोप; २-५१ से 'त्म' का आदेश 'प', २-८९ से प्राप्त 'प' का द्वित्व 'प्प', १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगता का निर्धारण, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *माहप्पो* रूप सिद्ध हो जाता है। और जब १-३३ से नपुंसक विकल्प रूप से होने पर ३-२५ से 'सि' के स्थान पर 'म' प्रत्यय, एवं १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *माहप्पं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुःख मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दुक्खा और दुक्खाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१३ से दुर् के 'र' का अर्थात विसर्ग का लोप, २-८९ से 'ख' का द्वित्व 'ख्ख', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्', १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्-शस्' का लोप, ३-१२ से दीर्घता प्राप्त होकर *दुक्खा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकता के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर का दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुक्खाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भाजन मूल संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भायणा और भायणाइं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज' का लोप, १-१८० से 'अ' का 'य', १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' 'शस्' का लोप, ३-१२ से अंतिम स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *भायणा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भायणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नेत्र मूल संस्कृत शब्द है, इसके प्राकृत रूप नेत्ता और नेत्ताइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त', १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' शस्' का लोप, ३-१२ से अंतिम स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *नेत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर नेत्ताइं रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कमला और कमलाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' और 'शस्' का लोप; ३-१२ से अंतिम स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *कमला* रूप सिद्ध हो जाता है १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमलाइं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३३ ॥

गुणाद्याः क्लीबे वा ॥ १-३४ ॥

गुणादयः क्लीबे वा प्रयोक्तव्याः ॥ गुणाइं गुणा ॥ विहवेहिं गुणाइँ मग्गन्ति। देवाणि देवा। बिन्दूइं। बिन्दुणो। खग्गं खग्गो। मण्डलग्गं मण्डलग्गो। कररुहं कररुहो। रुक्खाइं रुक्खा। इत्यादि ॥ इति गुणादयः ॥

अर्थ—गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये जैसे गुणाइं और गुणा से रुक्खाइं और रुक्खा तक जानना। इनमें गुण पद नपुंसक लिंग में है और उत्तर पद पुल्लिंग में प्रयुक्त किया गया है। 'गुणा' पद की १ ११ में सिद्धि की गई है। और १ ३४ से विकल्प करके नपुंसकत्व होने पर ३ २६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विभवैः संस्कृत पद है। इसका प्राकृत रूप विहवेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १८७ से भ का 'ह'; ३-७ से तृतीया बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर 'हिं' होता है। ३ १५ अन्त्य 'व' के अ का ए होकर *विहवेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुणाइं शब्द की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। विशेषता यह है कि 'इ' के स्थान पर यहां पर 'इं' प्रत्यय है। जो कि सूत्र संख्या ३ २६ से समान स्थिति वाला ही है।

मृग्यन्ते संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप मग्गन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग्' का द्वित्व ग्ग ३ १४२ से वर्तमान काल के बहुवचन के प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय का आदेश होकर *मग्गन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवाः संस्कृत शब्द है इसके प्राकृत रूप देवाणि और देवा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३ २६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति; होकर *देवाणि* रूप सिद्ध होता है। जब देव शब्द पुल्लिंग में होता है तब ३ ४ से 'जस्-शस्' का लोप होकर एवं ३ १२ से अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *देवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिन्दवः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बिन्दूइं और बिन्दुणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३ २६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में अन्त्यस्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिन्दूइं* रूप सिद्ध होता है। जब बिन्दु शब्द पुल्लिंग में होता है; तब ३ २२ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस् शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'णो' आदेश होकर *बिन्दुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

खड्ग संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खग्गं और खग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ७७ से 'ड्' का लोप २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३ २५ से प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग में 'म्' की प्राप्ति १ २३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खग्गं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंग में होता है तब ३ २ से प्रथमा एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *खग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मंडलाग्र संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मण्डलग्गं और मण्डलग्गो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ला के आ' का 'अ' २-७९ से 'र' का लोप २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १ ३४ से विकल्प करके नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३ २५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति १ २३ से प्राप्त

प्रश्न:–सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पण्हा और पण्हो होते हैं। इनमें सूत्र सख्या २-७९ से 'र' का लोप, २-७५ से 'श्न' का 'ण्ह' आदेश, १-३५ से स्त्रीलिंग विकल्प से होने पर प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के सूत्रानुसार 'आ' प्रत्यय प्राप्त होकर *पण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है। एव लिंग में वैकल्पिक विधान होने से पुल्लिग में ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चौर्यम्'–सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चोरिआ और चोरिअ होते हैं। इसमें सूत्र-सख्या–१–१५९ से "औ' का ओ', २–१०७ से 'इ' का आगम होकर 'र्' में मिलने पर 'रि' हुआ। १–१७८ से 'य्' का लोप, सिद्ध हेम व्याकरण के २–४–१८ से स्त्रीलिंग वाचक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति १–११ से अन्त्य 'म्' का लोप; होकर *चोरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है। दूसरे रूप में सूत्र १–३५ में जहां स्त्रीलिंग नहीं गिना जायगा; अर्थात् नपुंसक लिंग में ३–२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग का 'म् प्रत्यय, १–२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुक्षि:–सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुच्छी है। इसमें सूत्रसख्या–२–१७ से 'क्ष्' का "छ्"; २–८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ् छ्', २–९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्'१–३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३–१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *कुच्छी* रूप सिद्ध हो जाना है।

बलि:–सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बली होता है। इसमें सूत्र सख्या–१–३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३–१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घस्वर 'ई' होकर *बली* रूप सिद्ध हो जाता है।

निधि:–सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप निही होता है। इसमें सूत्र सख्या–१–१८७ से ''ध का 'ह्'; १–३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३–१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *निही* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधि:–सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विही होता है। इसमें सूत्र सख्या–१–१८७ से 'ध' का 'ह्'; १–३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३–१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का 'ई' होकर *विही* रूप सिद्ध हो जाता है।

रश्मि:–सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप रस्सी हो जाता है। इसमें सूत्र-सख्या–२–७८ से 'म् का लोप, १–२६० से 'श्' का 'स्', २–८९ से 'स्' का द्वित्व 'स्स', ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *रस्सी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रन्थि: सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गण्ठी होता है। इसमें सूत्र सख्या ४-१२० से ग्रथि के स्थान

अर्थ—गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये जैसे गुणाई और गुणा से खग्गाई और खग्गा तक जानना। इनमें पूर्व पद नपुंसक लिंग में है और उत्तर पद पुल्लिंग में प्रयुक्त किया गया है। 'गुणा' पद की १ ११ में सिद्धि की गई है। और १ ३४ से विकल्प रूप से नपुंसक लिंगत्व होने पर १ २६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ ई प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुणाई* रूप सिद्ध हो जाता है।

विभवैः संस्कृत पद है। इसका प्राकृत रूप विहवेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १८७ से भ का 'ह' ३-७ से तृतीया बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर 'हिं' होता है। ३ १५ अन्त्य 'अ' के अ का 'ए' होकर *विहवेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुणाई शब्द की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। विशेषता यह है कि 'इं' के स्थान पर यहां पर 'ई' प्रत्यय है। जो कि सूत्र संख्या १ २६ से समान स्थिति वाला ही है।

मृग्यन्ते संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप मग्गन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १२६ से 'ऋ' का 'अ' २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग्' का द्वित्व 'ग्ग' ३ १४२ से वर्तमान काल के बहुवचन के प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय का आदेश होकर *मग्गन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवा संस्कृत शब्द है इसके प्राकृत रूप देवाणि और देवा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३ २६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देवाणि* रूप सिद्ध होता है। जब देव शब्द पुल्लिंग में होता है तब ३-४ से 'जस्-शस्' का लोप होकर एवं ३ १२ से अन्त्य स्वर की दीर्घता प्राप्त होकर *देवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिन्दवः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बिन्दूई और बिन्दुणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में अन्त्यस्वर की दीर्घता के साथ 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिन्दूई* रूप सिद्ध होता है। जब बिन्दु शब्द पुल्लिंग में होता है तब ३ २२ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस् शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'णो' आदेश होकर *बिन्दुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

खड्ग संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खग्गं और खग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ७७ से 'ड्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' १ ३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२५ से प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग में 'म्' की प्राप्ति १ २३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खग्गं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंग में होता है; तब ३-२ से प्रथमा एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *खग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मंडलाग्र संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मण्डलग्गं और मण्डलग्गो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ला' के 'आ' का 'अ' २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' १ ३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३ २५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति १ २३ से प्राप्त

प्रश्नः-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पण्हा और पण्हो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप, २-७५ से 'श्न' का 'ण्ह' आदेश, १-३५ से स्त्रीलिंग विकल्प से होने पर प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के सूत्रानुसार 'आ' प्रत्यय प्राप्त होकर *पण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है। एवं लिंग में वैकल्पिक विधान होने से पुल्लिंग में ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चौर्यम्:-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चोरिआ और चोरिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१५९ से "औ' का ओ', २-१०७ से 'इ' का आगम होकर 'र्' में मिलने पर 'रि' हुआ। १-१७७ से 'य्' का लोप, सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग वाचक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति १-११ से अन्त्य 'म्' का लोप; होकर *चोरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है। दूसरे रूप में सूत्र १-३५ में जहाँ स्त्रीलिंग नहीं गिना जायगा; अर्थात् नपुंसक लिंग में ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग का 'म् प्रत्यय, १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुक्षिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुच्छी है। इसमें सूत्रसंख्या-२-१७ से 'क्ष्' का "छ्"; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ् छ्', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्'१-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *कुच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

बलिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बली होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घस्वर 'ई' होकर *बली* रूप सिद्ध हो जाता है।

निधिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप निही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से ' 'ध का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण, ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *निही* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का 'ई' होकर *विही* रूप सिद्ध हो जाता है।

रश्मिः-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप रस्सी हो जाता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'म् का लोप, १-२६० से 'श्' का 'स्', २-८९ से 'स्' का द्वित्व 'स्स', ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *रस्सी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रन्थि' संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गण्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१२० से ग्रथि के स्थान

पर पष्ठि आदेश होता है। १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३ १९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का दीर्घ 'ई' होकर *गण्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्तो संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप गड्डा और गड्डो बनते हैं। इसमें सूत्र संख्या २ ३५ से संयुक्त 'र्त' का 'ड' २-८९ से प्राप्त 'ड' का द्वित्व 'ड्ड' १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण सिद्ध हेम व्या के २ ४ १८ से 'आ प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*गड्डा*' रूप सिद्ध हो जाता है। और पुल्लिंग होने पर प्रथमा एक वचन में ३-२ से सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्राप्त होकर गड्डो रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

बाहोरात् ॥ १ ३६ ॥

बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारान्तादेशो भवति ॥ बाहाए जेण धरिओ एक्काए ॥ स्त्रियामित्येव । वामेअरो बाहू ॥

अर्थ —बाहु शब्द के स्त्रीलिंग रूप में अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ' आदेश होता है। जैसे बाहु का बाहा रूप स्त्रीलिंग में ही होता है। और पुल्लिंग में बाहु का बाहू ही रहता है।

बाहुना संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बाहाए होता है। इसमें सूत्र संख्या १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; और अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ का आदेश; ३ २९ से तृतीया के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'टा प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर '*बाहाए*' रूप सिद्ध होता है।

येन संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप जेण होता है। संस्कृत मूल शब्द 'यत्' है इसमें १ ११ से 'त्' का लोप; १ २४५ से 'य' का 'ज'; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण'; ३- ४ से प्राप्त 'ण' से स्थित 'अ' का 'ए' होकर *जेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृत संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप धरिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४ २३४ से ऋ का 'अर्' ४-२३९ से हलन्त 'र्' में 'अ का आगम; सिद्ध हेम व्याकरण के ४ ३२ से त प्रत्यय के होने पर पूर्व में 'इ' का आगम १ १ से प्राप्त इ के पहिले रहे हुए 'अ का लोप १ १७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ होकर *धरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एकेन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप स्त्रीलिंग में एक्काए होता है। इसमें सूत्र संख्या २ ९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; सिद्ध हेम व्याकरण के २ ४ १८ से स्त्रीलिंग में अकारान्त का 'आकारान्त'; और ३-२९ से तृतीया के एक वचन में 'टा प्रत्यय के स्थान पर ए प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एक्काए* रूप सिद्ध हो जाता है।

वामेतर संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वामेअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप; ३ २ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ होकर *वामेअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

'म्' का अनुस्वार होकर *मण्डलग्गं* रूप सिद्ध होता है। जब पुल्लिंगत्व होता है तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *मण्डग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कररुहः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कररुहं और कररुहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३-२५ प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कररुहं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंगत्व होता है, तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *कररुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षाः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप रुक्खाइं और रुक्खा होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से वृक्ष का आदेश 'रुक्ख' हो जाता है, १ ३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति, ३-२६ से प्रथमा-द्वितीय के बहुवचन में 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इ' का आदेश सहित अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर यात 'ख' का 'खा' होकर *रुक्खाइं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंगत्व होता है, तब ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्-शस्' की प्राप्ति और इनका लोप; ३-१२ से अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर *रुक्खा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम् ॥ ३५ ॥

इमान्ता अञ्जल्यादयश्च शब्दाः स्त्रियां वा प्रयोक्तव्याः ॥ एसा गरिमा एस गरिमा एसा महिमा एस महिमा। एसा निल्लज्जिमा एस निल्लज्जिमा। एसा धुत्तिमा एस धुत्तिमा ॥ अञ्जल्यादि। एसा अञ्जली एस अञ्जली। पिट्ठी पिट्ठं। पृष्ठमित्वे कृते स्त्रियामेवेत्यन्ये ॥ अच्छी अच्छिं। पण्हा पण्हो। चोरिआ चोरिअं। एवं कुच्छी। बली। निही। विही। रस्सी गण्ठी। इत्यञ्जल्यादयः ॥ गड्डा गड्डो इति तु संस्कृतवदेव सिद्धम्। इमेति तन्त्रेण त्वा देशस्य डिमा इत्यस्य पृथ्वादीम्नश्च संग्रहः। त्वादेशस्य स्त्रीत्वमेवेच्छन्त्येके ॥

अर्थः—जिन शब्दों के अंत में "इमा" है, वे शब्द और अञ्जली आदि शब्द प्राकृत में विकल्प रूप से स्त्री लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे—एसा गरिमा एस गरिमा से लगा कर एसा धुत्तिमा—एस धुत्तिमा तक जानना। अंजली आदि शब्द भी विकल्प से स्त्री लिंग में होते हैं। जैसे—एसा अञ्जली एस अञ्जली। पिट्ठी पिट्ठं। लेकिन कोई कोई "पृष्ठम्" के रूप पिट्ठ में 'इत्व' करने पर इस शब्द को स्त्रीलिंग में ही मानते हैं। इसी प्रकार अच्छी से गण्ठी तक "अंजल्यादय" के कथनानुसार विकल्प से इन शब्दों को स्त्रीलिंग में जानना। गड्डा और गड्डो शब्दों की लिंग सिद्धि संस्कृत के समान ही जान लेना। "इमा" तन्त्र से युक्त इमान्त शब्द और "त्व" प्रत्यय के आदेश में प्राप्त "इमा" अन्त वाले शब्द; यों दोनों ही प्रकार के "इमान्त" शब्द यहां पर विकल्प रूप से स्त्रीलिंग में माने गये हैं। जैसे—पृथु + इमा = प्रथिमा आदि शब्दों को यहां पर इस सूत्र की विधि अनुसार जानना। अर्थात् इन्हें भी विकल्प से स्त्रीलिंग में जानना। किन्हीं किन्हीं का मत ऐसा है कि "त्व" प्रत्यय के स्थान पर आदेश रूप से प्राप्त होने वाले "डिमा" के "इमान्त" वाले शब्द नित्य स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त किये जांय ॥

पर गण्ठि आदेश होता है। १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण १ १९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का दीर्घ 'ई' होकर *गण्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्तो संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप गड्डा और गड्डो बनते हैं। इसमें सूत्र संख्या २ ३५ से संयुक्त 'र्त' का 'ड' २-८९ से प्राप्त 'ड' का द्वित्व 'ड्ड' १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; सिद्ध हेम व्या के २ ४ १८ से 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*गड्डा*' रूप सिद्ध हो जाता है। और पुल्लिंग होने पर प्रथमा एक वचन में ३-२ से 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्राप्त होकर *गड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ३५॥

बाहोरात्॥ १ ३६॥

बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारान्तादेशो भवति॥ बाहाए जेण धरिओ एक्काए॥ स्त्रियामित्येव। वामेअरो बाहू॥

अर्थ—बाहु शब्द के स्त्रीलिंग रूप में अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ' आदेश होता है। जैसे बाहु का बाहा यह रूप स्त्रीलिंग में ही होता है। और पुल्लिंग में बाहु का बाहु ही रहता है।

बाहुना संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बाहाए होता है। इसमें सूत्र संख्या १ ३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; और अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ' का आदेश ३ २९ से तृतीया के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर '*बाहाए*' रूप सिद्ध होता है।

येन संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप जेण होता है। संस्कृत मूल शब्द 'यत्' है इसमें १ ११ से 'त्' का लोप; १ २४५ से 'य' का 'ज'; ३ ६ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण'; ३ १४ से प्राप्त 'ज' में स्थित 'अ' का 'ए' होकर *जेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृत संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप धरिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४ २३४ से धृ का 'धर्'; ४ २३९ से हलन्त 'र्' में 'अ' का आगम; सिद्ध हेम व्याकरण के ४ ३२ से त प्रत्यय के होने पर पूर्व में इ का आगम ११ से प्राप्त इ के पहिले रहे हुए 'अ' का लोप १ १७७ से 'त्' का लोप ३ २ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *धरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एकेन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप स्त्रीलिंग में एक्काए होता है। इसमें सूत्र संख्या २ ९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; सिद्ध हेम व्याकरण के २ ४ १८ से स्त्रीलिंग में अकारान्त का आकारान्त; और ३ २९ से तृतीया के एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एक्काए* रूप सिद्ध हो जाता है।

वामेतर संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वामेअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप; ३ २ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *वामेअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

'म्' का अनुस्वार होकर *मण्डलग्गं* रूप सिद्ध होता है। जब पुल्लिंगत्व होता है तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *मण्डग्गो* रूप सिद्ध हो जाता हैं।

कररुहः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कररुहं और कररुहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३-२५ प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कररुहं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंगत्व होता है, तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *कररुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षाः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप रुक्खाइं और रुक्खा होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से वृक्ष का आदेश 'रुक्ख' हो जाता है, १ ३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति, ३-२६ से प्रथमा-द्वितीय के बहुवचन में 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' का आदेश सहित अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर यान 'ख' का 'खा' होकर *रुक्खाइं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंगत्व होता है, तब ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्-शस्' की प्राप्ति और इनका लोप, ३-१२ से अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर *रुक्खा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम् ॥ ३५ ॥

इमान्ता अञ्जल्यादयश्च शब्दाः स्त्रियां वा प्रयोक्तव्याः ॥ एसा गरिमा एस गरिमा एसा महिमा एस महिमा। एसा निल्लज्जिमा एस निल्लज्जिमा। एसा धुत्तिमा एस धुत्तिमा ॥ अञ्जल्यादि। एसा अञ्जली एस अञ्जली। पिट्ठी पिट्ठं। पृष्ठमित्वे कृते स्त्रियामेवेत्यन्ये ॥ अच्छी अच्छिं। पण्हा पण्हो। चोरिआ चोरिअं। एवं कुच्छी। बली। निही। विही। रस्सी गण्ठी। इत्यञ्जल्यादयः ॥ गड्डा गड्डो इति तु संस्कृतवदेव सिद्धम्। इमेति तन्त्रेण त्वादेशस्य डिमाइत्यस्य पृथ्वादीम्नश्चसंग्रहः। त्वादेशस्य स्त्रीत्वमेवेच्छन्त्येके ॥

अर्थः—जिन शब्दों के अंत में "इमा" है, वे शब्द और अञ्जली आदि शब्द प्राकृत में विकल्प रूप से स्त्री लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे—एसा गरिमा एस गरिमा से लगा कर एसा धुत्तिमा—एस धुत्तिमा तक जानना। अंजली आदि शब्द भी विकल्प से स्त्री लिंग में होते हैं। जैसे—एसा अञ्जली एस अञ्जली। पिट्ठी पिट्ठं। लेकिन कोई कोई "पृष्ठम्" के रूप पिट्ठ में 'इत्व' करने पर इस शब्द को स्त्रीलिंग में ही मानते हैं। इसी प्रकार अच्छी से गण्ठी तक "अंजल्यादय" के कथनानुसार विकल्प से इन शब्दों को स्त्रीलिंग में जानना। गड्डा और गड्डो शब्दों की लिंग सिद्धि संस्कृत के समान ही जान लेना। "इमा" तन्त्र से युक्त इमान्त शब्द और "त्व" प्रत्यय के आदेश में प्राप्त "इमा" अन्त वाले शब्द, यों दोनों ही प्रकार के "इमान्त" शब्द यहां पर विकल्प रूप से स्त्रीलिंग में माने गये है। जैसे—पृथु + इमा = प्रथिमा आदि शब्दों को यहां पर इस सूत्र की विधि अनुसार जानना। अर्थात् इन्हें भी विकल्प से स्त्रीलिंग में जानना। किन्हीं किन्हीं का मत ऐसा है कि "त्व" प्रत्यय के स्थान पर आदेश रूप से प्राप्त होने वाले "डिमा" के "इमान्त" वाले शब्द नित्य स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त किये जांय ॥

बाहुः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बाहू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'विसर्ग' का लोप होकर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *बाहू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३६ ॥

अतो डो विसर्गस्य ॥ १-३७ ॥

संस्कृतलक्षणोत्पन्नस्यातः परस्य विसर्गस्य स्थाने डो इत्यादेशो भवति। सर्वतः। सव्वओ ॥ पुरतः। पुरओ ॥ अग्रतः। अग्गओ ॥ मार्गतः। मग्गओ ॥ एवं सिद्धावस्था पेक्षया। भवतः। भवओ ॥ भवन्तः। भवन्तो ॥ सन्तः। सन्तो ॥ कुतः। कुदो ॥

अर्थः—संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्राप्त हुए 'त' में स्थित विसर्ग के स्थान पर 'डो' अर्थात् 'ओ' आदेश हुआ करता है। जैसे-सर्वतः में सव्वओ। यों आगे के शेष उदाहरण मार्गतः में मग्गओ तक जान लेना। अन्य प्रत्ययों से सिद्ध होने वाले शब्दों में भी यदि 'त' प्राप्त हो जाय, तो उस 'त' में स्थित विसर्ग के स्थान पर 'डो' अर्थात् 'ओ' आदेश हुआ करता है। जैसे-भवतः में भवओ। भवन्तः में भवन्तो। यों ही सन्तो और कुदो भी समझ लेना।

सर्वतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व', १-१७७ से 'त्' का लोप, १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' का आदेश होकर *सव्वओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुरओ होता है। इसमें सूत्र संख्या -१७७ से त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *पुरओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अग्रतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अग्गओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र्' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', १-१७७ से 'त्' का लोप, और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर अग्गओ रूप सिद्ध हो जाता है।

मार्गतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मग्गओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'मा' के 'आ' का 'अ', २-७९ से 'र' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', १-१७७ से 'त्' का लोप, और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *मग्गओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भवओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *भवओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवन्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भवन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *भवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सन्त संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १० से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर सन्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

कुस संस्कृत शब्द है। इसका शौरसेनी भाषा में कुशो रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या ४ २६ से 'स' का 'श' और १ १० से विसर्ग के स्थान पर ओ आदेश होकर कुशो रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्पती ओत्परी माल्य स्थोर्वा ॥ १-३८ ॥

निर् प्रति इत्येतौ माल्य शब्दे स्थाधातौ च परे यथा संख्यम् ओत् परि इत्येवं रूपौ वा भवतः। अभेदनिर्देश सर्वादेशार्थ। ओमालं। निम्मल्लं॥ ओमालय वहइ। परिट्ठा। पइट्ठा। परिट्ठिअं पइट्ठिअं॥

अर्थ—माल्य शब्द के साथ में यदि निर् उपसर्ग आवे तो निर् उपसर्ग के स्थान पर आदेश रूप से विकल्प से 'ओ' होता है। तथा स्था धातु के साथ में यदि 'प्रति' उपसर्ग आवे तो 'प्रति' उपसर्ग के स्थान पर आदेश रूप से विकल्प से 'परि' होता है। इस सूत्र में दो उपसर्गों की जो बात एक ही साथ कही गई है; इसका कारण यह है कि संपूर्ण उपसर्ग के स्थान पर आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे-निर्माल्यम् का ओमालं और निम्मल्लं। प्रतिष्ठा का परिट्ठा और पइट्ठा प्रतिष्ठितम् का परिट्ठिअं और पइट्ठिअं।

निर्माल्यम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ओमालं और निम्मल्लं दोनों होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १ १८ से विकल्प से 'निर्' का 'ओ' २-७८ से 'य्' का लोप १ २५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर ओमालं रूप सिद्ध होता है। द्वितीय रूप में १-८४ से 'मा' में स्थित 'आ' का 'अ' २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म' २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; १-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से 'म्' का अनुस्वार होकर निम्मल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्माल्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ओमालयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १८ से (विकल्प से) 'निर्' का 'ओ'; २-७८ से 'य्' का लोप १ १७७ से 'क्' का लोप; १ १८० से 'क' के 'अ' का 'य'; १ २५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति; और १ २३ से 'म' का अनुस्वार होकर ओमालयं रूप सिद्ध हो जाता है।

वहति संस्कृत धातु रूप है। इसका प्राकृत रूप वहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३ १३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर इ होकर वहइ रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठा और पइट्ठा होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १ ३८ से 'प्रति' के स्थान पर विकल्प से 'परि' आदेश; २-७७ से 'ष्' का लोप २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' ९ ९ से

प्राप्त 'पूर्व ठ्' का 'ट्', सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'आ' की प्राप्ति होकर *परिट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में जहां 'परि' आदेश नहीं होगा; वहां पर सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप, २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'आ, की प्राप्ति होकर *पइट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठिअं और पइट्ठिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-३८ से विकल्प से 'प्रति' के स्थान पर 'परि' आदेश, २-७७ से 'ष' का लोप, २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'परिट्ठिअं'* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में जहां 'परि' आदेश नहीं होगा, वहां *पइट्ठिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आदेः ॥ १-३९ ॥

आदेरित्यधिकारः कगचज (१-१७७) इत्यादि सूत्रात् प्रागविशेषे वेदितव्यः ॥

अर्थः—यह सूत्र आदि अक्षर के संबंध में यह आदेश देता है कि इस सूत्र से प्रारंभ करके आगे १-१७७ सूत्र से पूर्व में रहे हुए सभी सूत्रों के सम्बन्ध में यह विधान है कि जहां विशेष कुछ भी नहीं कहा गया है; वहां इस सूत्र से शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर के सम्बन्ध में 'कहा हुआ उल्लेख' समझ लेना। अर्थात् सूत्र संख्या १-३९ से १-१७६ तक में यदि किसी शब्द के सम्बन्ध में कोई उल्लेख हो, और उस उल्लेख में आदि-मध्य अन्त्य अथवा उपान्त्य जैसा कोई उल्लेख न हो तो समझ लेना कि यह उल्लेख आदि अक्षर के लिये है; न कि शेष अक्षरों के लिये।

त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् ॥ १-४० ॥

त्यदादेरव्ययाच्च परस्य तयोरेव त्यदाद्यव्यययोरादेः स्वरस्य बहुलं लुग् भवति ॥ अम्हेत्थ अम्हे एत्थ। जइमा जइ इमा। जइहं जइ अहं ॥

अर्थः—सर्वनाम शब्दों और अव्ययों के आगे यदि सर्वनाम शब्द और अव्यय आदि आ जांय; तो इन शब्दों में रहे हुए स्वर यदि पास-पास में आ जांय, तो आदि स्वर का बहुल करके लोप हो जाया करता है।

वयम् संस्कृत शब्द है। इसका मूल 'अस्मद्' के प्रथमा के बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय सहित सूत्र-संख्या ३-१०६ 'अम्हे' आदेश होता है। यों *अम्हे* रूप सिद्ध हो जाता है।

अत्र संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप एत्थ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-५७ से 'अ' का 'ए', और २-१६१ से 'त्र' के स्थान पर 'त्थ' होकर *एत्थ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ; यहाँ पर सूत्र संख्या १-४० से एत्थ के आदि 'ए' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर अम्हेत्थ रूप सिद्ध हुआ। तथा जहाँ लोप नहीं होता है वहाँ पर अम्हे एत्थ होगा। *यदि* संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जइ होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-२४५ से 'य' का 'ज'; और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर जइ रूप सिद्ध हो जाता है।

इयम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप इमा होता है। इसमें सूत्र संख्या-३-७२ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के परे रहने पर मूल शब्द इदम् का 'इम' आदेश होता है। तत्पश्चात् सिद्ध हेम व्याकरण के ४-४-१८ से स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय लगा कर '*इमा*' रूप सिद्ध हो जाता है।

जइ + *इमा* = जइमा यहाँ पर सूत्र संख्या १-४० से 'इमा' के आदि स्वर 'इ' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर *जइमा* रूप सिद्ध हो जाता है। तथा जहाँ लोप नहीं होता है; वहाँ पर जइ *इमा* होगा।

अहम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप भी अहं ही होता है। अस्मद् मूल शब्द में सूत्र संख्या ३-१०५ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय परे रहने पर अस्मद् का अहं आदेश होता है। यों *अहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जइ + अहं = जइहं; यहाँ पर सूत्र-संख्या १-४० से 'अहम्' के आदिस्वर 'अ' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर जइहं रूप सिद्ध हो जाता है। तथा जहाँ लोप नहीं होता है, वहाँ पर जइ *अहं* होगा ॥ ४० ॥

पदादपेर्वा ॥ १-४१ ॥

पदात् परस्य अपेरव्ययस्यादे र्लुग् वा भवति ॥ तं पि तमवि। किं पि किमवि। केण वि। केणावि। कहं पि कहमवि ॥

अर्थ—पद के आगे रहने वाले अपि अव्यय के आदि स्वर 'अ' का विकल्प से लोप हुआ करता है। जैसे-तं पि तमवि। इत्यादि रूप से शेष उदाहरणों में भी समझ लेना। इन उदाहरणों में एक स्थान पर तो लोप हुआ है; और दूसरे स्थान पर लोप नहीं हुआ है। लोप नहीं होने की दशा में संधि-योग्य स्थानों पर संधि भी हो जाया करती है।

'तं' की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

अपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप यहाँ पर 'पि' है। इसमें सूत्र संख्या १-४१ से 'अ' का लोप होकर '*पि*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप अवि है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *अवि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'कि' शब्द की सिद्धि १-२९ में की गई है।

केन संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप केण होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-७१ से 'किम्' का 'क'; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण', ३-१४ से 'क' के 'अ' का 'ए'; होकर 'केण' रूप सिद्ध हो जाता है। इसी के साथ में 'अपि' अव्यय है, अतः 'ण' में स्थित 'अ' और 'अपि' का 'अ' दोनों की संधि १-५ से होकर केणावि रूप सिद्ध हो जाता है।

कथमपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप कहमवि होता है। इसकी सिद्धि १-२९ में करदी गई है ॥ ४१ ॥

इतेः स्वरात् तश्च द्विः ॥ १-४२ ॥

पदात् परस्य इतेरादे र्लुग् भवति स्वरात् परश्च तकारो द्विर्भवति ॥ किं ति । जं ति । दिट्ठं ति । न जुत्तं ति ॥ स्वरात् । तह त्ति । झ त्ति । पिओ त्ति । पुरिसो त्ति ॥ पदादित्येव । इअ विञ्झ-गुहा-निलयाए ॥

अर्थ.-यदि 'इति' अव्यय किसी पद के आगे हो तो इस 'इति' की आदि 'इ' का लोप हो जाया करता है। और यदि 'इ' लोप हो जाने के बाद शेष रहे हुए 'ति' के पूर्व-पद के अंत में स्वर रहा हुआ हो तो इस 'ति' के 'त' का द्वित्व 'त्त' हो जाता है। जैसे-'किम् इति' का 'किं ति', 'यत् इति' का 'जं ति', 'दृष्टम् इति' का 'दिट्ठं ति' और 'न युक्तम् इति' का 'न जुत्तं ति'। इन उदाहरणों में 'इति' अव्यय पदों के आगे रहा हुआ है, अतः इनमें 'इ' का लोप देखा जा रहा है। स्वर-संबंधित उदाहरण इस प्रकार है-'तथा इति' का 'तह त्ति', 'झग् इति' का 'झ त्ति', 'प्रिय इति' का 'पिओ त्ति', 'पुरुष इति' का 'पुरिसो त्ति' इन उदाहरणों में 'इति' के शेष रूप 'ति' के पूर्व पदों के अंत में स्वर है, अतः 'ति' के 'त्' का द्वित्व 'त्त' हो गया है।

'पदात्' ऐसे शब्द का उल्लेख करने का तात्पर्य यह है कि यदि 'इति' अव्यय किसी पद के आगे न रह कर वाक्य के आदि में ही आ जाय तो 'इ' का लोप नहीं होता जैसा कि इअ विञ्झ-गुहा-निलयाए' में देखा जासकता है।

'किं' शब्द की सिद्धि-१-२९ में की गई है।

(किम्) इति संस्कृत अव्यय है। इनका प्राकृत रूप 'किं ति' होता है। सूत्रसंख्या १-४२ से 'इति' के 'इ' का लोप होकर 'ति' रूप हो जाता है। 'यद् इति' संस्कृत अव्यय है। इनका प्राकृत रूप 'जं ति' होता है। 'जं' की सिद्धि-१-२४ में कर दी गई है। और 'इति' के 'ति' की सिद्धि भी इसी सूत्र में ऊपर दी गई है।

दृष्ट इति संस्कृत शब्द है। इनका प्राकृत रूप दिट्ठं ति होता है। इनमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' का 'इ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ् ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्', ३-५ से द्वितीया के एक वचन में 'अम्' प्रत्यय के अ' का लोप १-२३ 'म्' का अनुस्वार होकर दिट्ठं रूप सिद्ध हो जाता है। और १-४२ से 'इति' के 'इ' का लोप होकर दिट्ठंति सिद्ध हो जाता है।

(न) युक्तम् (इति) संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'न जुत्तं ति' है। इसमें से 'न' की सिद्धि १-६ में की गई है। और 'ति' की सिद्धि भी इसी सूत्र में की गई है। जुत्तं की साधनिका इस प्रकार है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; २-७७ से क् का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से म् का अनुस्वार होकर जुत्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

तथा इति संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप तह त्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-८७ से 'थ' का ह; १-४२ से इति के 'इ' का लोप और 'ति' के 'त' का द्वित्व त्त; १-८४ से हा के 'आ' का 'अ' होकर तह त्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

झय इति संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप झत्ति होते है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'य्' का लोप; १-४२ से इति के 'इ' का लोप तथा 'ति' के 'त' का द्वित्व 'त्त' होकर झत्ति रूप बन जाता है।

प्रिय (इति) संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पिओ त्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से य् का लोप; ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर पिओ रूप सिद्ध हो जाता है। त्ति की सिद्धि इसी सूत्र में की गई है।

पुरुष इति संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पुरिसो त्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'रु' के 'उ' को 'इ'; १-२६ से ष का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर पुरिसो रूप सिद्ध हो जाता है। त्ति की सिद्धि इसी सूत्र में की गई है।

इति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'इअ' है। इसमें सूत्र संख्या-१-९१ से 'ति'-में रही हुई 'इ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; होकर 'इअ' रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्मय संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विम्हस होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२६ से 'श्म' का 'म्ह'; १-१ से अनुस्वार का 'म्' होकर विम्हस रूप सिद्ध हो जाता है।

गुहा शब्द का रूप संस्कृत और प्राकृत में 'गुहा' होता है। विश्मयाया संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विम्हयाए होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२९ से ङस् यानी षष्ठी एक वचन के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर विम्हयाए रूप सिद्ध हो जाता है॥ ४२॥

लुप्त-य-र-व-श-ष-सां श-ष-सां दीर्घः ॥ १-४३ ॥

प्राकृतलक्षणवशाल्लुप्ता याद्या उपरि अधो वा येषां शकारषकारसकाराणां तेषामादेः स्वरस्य दीर्घो भवति ॥ शस्य य लोपे। पश्यति। पासइ। कश्यपः। कासवो॥ आवश्यकं। आवासयं॥ रलोपे। विश्राम्यति। वीसमइ। विश्रामः। वीसामो॥ मिश्रम्। मीसं॥ संस्पर्शः। संफासो॥ वलोपे। अश्वः। आसो। विश्वसिति। वीससइ॥ विश्वासः। वीसासो॥ शलोपे।
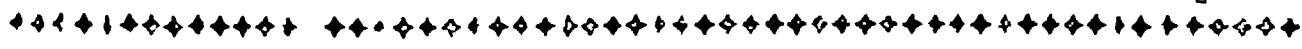
दुश्शासनः । दूसासणो ।। मनः शिला । मणासिला ।। षस्य यलोपे । शिष्यः । सीसो ।। पुष्यः । पूसो ।। मनुष्यः । मणूसो ।। रलोपे । कर्षकः । कासओ ।। वर्षाः । वासा ।। वर्षः वासो ।। वलोपे । विष्वाणः । वीसाणो ।। विष्वक् । वीसुं ।। षलोपे । निष्षिक्तः । नीसित्तो ।। सस्य यलोपे । सस्यम् । सासं ।। कस्यचित् कासइ रलोपे । उस्रः । ऊसो ।। विस्रम्भः । वीसम्भो ।। वलोपे । विकस्वरः । विकासरो ।। निःस्वः नीसो ।। सलोपे । निस्सहः । नीसहो ।। नदीर्घानुस्वरात् (२-९२) इति प्रतिषेधात् सर्वत्र अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् (२-८९) इति द्वित्वाभावः ।।

अर्थ – प्राकृत-व्याकरण' के कारण से शकार, षकार, और सकार से सबधित य, र, व, श, ष, स, का पूर्व में अथवा पश्चात् में लोप होने पर शकार, षकार और सकार के आदि स्वर का दीर्घ स्वर हो जाता है । जैसे-शकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण = इसमें 'श' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ होता है । जैसे-पश्यति = पासइ । कश्यप = कासवो । आवश्यक = आवासय । यहाँ पर 'य' का लोप होकर 'श्' के पूर्व स्वर का दीर्घ हुआ है ।

शकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण । जैसे-विश्राम्यति = वीसमइ ।। विश्राम = वीसामो ।। मिश्रम् = मीस ।। सस्पर्श = सफासो ।। इनमें 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

शकार के साथ म रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण । जैसे अश्व = आसो ।। विश्वसिति = वीससइ ।। विश्वास = वीसासो ।। इनमें 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

शकार के साथ में रहे हुए 'श' के लोप के उदाहरण । जैसे-दुश्शासन = दूसासणो । मन शिला = मणा-सिला । इनमें भी 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

षकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण । जैसे-शिष्य. = सीसो । पुष्य = पूसो ।। मनुष्य = मणूसो ।। इनमें 'ष्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण । जैसे-कर्षक = कासओ । वर्षा = वासा ।। वर्ष = वासो । यहाँ पर 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण । जैसे-विष्वाण = वीसाणो ।। विष्वक् = वीसु ।। इनमें 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'ष' के लोप के उदाहरण । जैसे-निष्षिक्त = नीसित्तो ।। यहां पर 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

सकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण । जैसे-सस्यम = सास । कस्यचित् = कासइ ।। यहाँ पर 'स' के पूर्व मे रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है ।

सकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे-उस्रः = ऊसो। विस्रम्भः = वीसम्भो॥ यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर को दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे विकस्वरः = विकासरो। निःस्वः = नीसो। यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर को दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'स' के लोप के उदाहरण। जैसे निस्सहः = नीसहो। यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर को दीर्घ हुआ है।

यहाँ पर वर्ण के लोप होने पर इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र संख्या ८९ के अनुसार शेष वर्ण को द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होनी चाहिए थी; किन्तु इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र-संख्या ९२ के अनुसार द्वित्व प्राप्ति का निषेध कर दिया गया है; अतः द्वित्व का अभाव जानना।

पश्यति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप पासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४३ से 'प' के 'अ' का 'आ'; १-२६ से 'श्' का 'स'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *पासइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कश्यप संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'विसर्ग' अथवा 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवश्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आवासयं होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; १-२६ से 'श' का 'स'; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'क' का लोप; १-१८ से 'क' के शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *आवासयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राम्यति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीसमइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-२६ से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' को दीर्घ 'ई'; १-८४ से 'सा' के 'आ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीसमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्रामः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसामो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६ से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' को दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिश्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मीसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'इ' को दीर्घ 'ई'; १-२६ से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *मीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्पर्शः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सफासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'फ' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर '*संफासो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्वः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-४३ से आदि 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा पुल्लिंग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर 'आसो रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वसिति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीससइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई', ४-२३९ से 'सि' के 'इ' का अ'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वासः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुश्शासनः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दूसासणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा पुल्लिंग एक वचन में 'ति' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *दूसासणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मणासिला की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

शिष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'श' और 'ष' का 'स'; १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर सीसो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पूसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मणूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन मे पुल्लिंग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर मणूसो रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्षकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४३ से आदि 'क' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'ष' का 'स', १-१७७ से 'क' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्पर्शः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सफासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'फ' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *'संफासो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्वः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-४३ से आदि 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा पुल्लिंग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर 'आसो रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वसिति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीससइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई', ४-२३९ से 'सि' के 'इ' का अ'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वासः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुश्शासनः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दूसासणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा पुल्लिंग एक वचन में 'ति' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *दूसासणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मणासिला की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

शिष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'श' और 'ष' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर सीसो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पूसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मणूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन मे पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर मणूसो रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्षकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४३ से आदि 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स', १-१७७ से 'क' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे—उस्र = ऊसो। विस्रम्भ = वीसम्भो॥ यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे विकस्वर = विकासरो। निःस्व = नीसो। यहाँ पर स के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'स' के लोप के उदाहरण। जैसे निस्सह = नीसहो यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

यहाँ पर वर्णों के लोप होने पर इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र संख्या ८९ के अनुसार शेष वर्ण को द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होनी चाहिये थी; किन्तु इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र-संख्या ९२ के अनुसार द्वित्व प्राप्ति का निषेध कर दिया गया है अतः द्वित्व का अभाव जानना।

पश्यति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप पासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-४३ से प के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *पासइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कश्यप संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या—२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'विसर्ग' अथवा 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवश्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आवासयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या—२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से 'क' के शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *आवासयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राम्यति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीसमइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या—२-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-८४ से 'श्रा' के 'आ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीसमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्रामः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसामो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिश्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मीसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *मीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्पर्शः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सफासो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'फ' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर '*संफासो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्वः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-४३ से आदि 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर 'असो रूप सिद्ध हो जाना है।

विश्वसिति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीससइ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई', ४-२३९ से 'सि' के 'इ' का अ'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वासः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसासो* रूप सिद्ध हा जाता है।

दुश्शासनः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दूसासणो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७७ से 'श्' का लोप; १-४३ से 'उ' का दीर्घ ऊ'; १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण', ३ २ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'ति' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *दूसासणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मणासिला की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२६ में की गई है।

शिष्यः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सीसो होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'श' और 'ष' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर सीसो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्यः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पूसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पूसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनुष्यः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मणूसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन मे पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर मणूसो रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्षकः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासओ होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४३ से आदि 'क' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१७७ से 'क' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे—उस्र = ऊसो। विस्रम्भ = वीसम्भो॥ यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे विकस्वर = विकासरो। निस्व = नीसो। यहाँ पर स के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए स' के लोप के उदाहरण। जैसे निस्सह = नीसहो यहाँ पर स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

यहाँ पर वर्ण के लोप होने पर इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र संख्या ८९ के अनुसार शेष वर्ण को द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होनी चाहिये थी; किन्तु इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र संख्या ९२ के अनुसार द्वित्व प्राप्ति का निषेध कर दिया गया है अतः द्वित्व का अभाव जानना।

पश्यति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप पासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-४३ से प के 'अ' का 'आ' १-२६ से 'श्' का 'स' ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *पासइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कश्यप संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या—२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से श' का 'स' १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२३१ से 'प' का 'व' ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'विसर्ग' अथवा 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवश्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आवासयं होता है। इसमें सूत्र संख्या—२-७८ से 'य' का लोप १-२६ से 'श' का स' १-४३ से 'व के अ' का 'आ'; १-१७७ से 'क' का लोप १-१८ से 'क के शेष अ का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *आवासयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राम्यति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीसमइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या—२-७९ से 'र्' का लोप १-२६ से 'श' का 'स' १-४३ से 'वि' की इ को दीर्घ 'ई' १-८४ से 'श्रा के 'आ' का 'अ' २-७८ से' य् का लोप ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति के स्थान पर इ होकर *वीसमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राम संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसामो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप १-२६ से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि की इ की दीर्घ 'ई' ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि अथवा विसर्ग के स्थान पर ओ' होकर *वीसामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिश्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मीसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'इ' को दीर्घ 'ई'; १-२६ से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर म्; १-२३ से म् का अनुस्वार होकर *मीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्पर्शः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सफासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'फ' के 'अ' का 'आ', १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *'संफासो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्वः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-४३ से आदि 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर 'आसो रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वसिति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीससइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई', ४-२३९ से 'सि' के 'इ' का अ'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वासः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुश्शासनः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दूसासणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; १-४३ से 'उ' का दीर्घ ऊ'; १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'ति' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *दूसासणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मणासिला की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

शिष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'श' और 'ष' का 'स', १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर सीसो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पूसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मणूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर मणूसो रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्षकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से आदि 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१७७ से 'क' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्षाः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वासा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-४ से प्रथमा बहुवचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति तथा लोप और ३-१२ से 'स' के 'अ' का 'आ' होकर *वासा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्षः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *'वासो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राणः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसाणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान 'ओ' होकर *वीसाणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वीसु शब्द की सिद्धि १-२४ में की गई है।

निष्षिक्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसित्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; १-४३ से 'नि' के 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'ष' का 'स'; २-७७ से 'क' का लोप; ३-२ से प्रथमा में पुल्लिंग के एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *नीसित्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सस्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सासं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४३ से आदि 'स' के 'अ' का 'आ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्'; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *'सासं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

कस्यचित् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप कासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'च्' का लोप; १-११ से 'त्' का लोप होकर *'कासइ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

उस्रः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ऊसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से ह्रस्व 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; ३-२ से प्रथमा एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *ऊसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विस्रम्भः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसम्भो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'वि' के ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकस्वरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विकासरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *विकासरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःस्व' संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'निः' में रहे हुए विसर्ग अर्थात् 'स' का लोप, १-४३ से 'नि' के ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-१७७ से 'व' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'ओ' की प्राप्ति होकर *नीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निस्सह संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से आदि 'स्' का लोप, १-४३ से 'नि' में रही हुई ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई', ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *नीसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अतः समृद्धयादौ वा ॥ १-४४ ॥

समृद्धि इत्येवमादिषु शब्देषु आदेरकारस्य दीर्घो वा भवति। सामिद्धी समिद्धी। पासिद्धी पसिद्धी। पायडं पयडं। पाडिवआ पडिवआ। पासुत्तो पसुत्तो। पाडिसिद्धी पडिसिद्धी। सारिच्छो सरिच्छो। माणंसी मणंसी। माणंसिणी मणंसिणी। आहिआई अहिआई। पारोहो परोहो। पावासू पवासू। पाडिप्फद्धी पडिप्फद्धी॥ समृद्धि। प्रसिद्धि। प्रकट। प्रतिपत। प्रसुप्त। प्रतिसिद्धि। सदृक्ष। मनस्विन्। मनस्विनी। अभियाति। प्ररोह। प्रवासिन्। प्रतिस्पर्द्धिन्॥ आकृतिगणोयम्। तेन। अस्पर्शः। आफंसो। परकीयम्। पारकेरं। पारक्कं॥ प्रवचन। पावयणं॥ चतुरन्तम्। चाउरन्तं इत्याद्यपि भवति॥

अर्थ.—समृद्धि आदि इन शब्दों में आदि में रहे हुए 'अ' का विकल्प से दीर्घ अर्थात् 'आ' होता है जैसे-समृद्धि = सामिद्धी और समिद्धी॥ प्रसिद्धि = पासिद्धि और पसिद्धी॥ प्रकट = पायड और पयड॥ प्रतिपत् = पाडिवआ और पडिवआ। यों आगे भी शेष शब्दों में समझ लेना चाहिये।

वृत्ति में 'आकृति गणोऽयम्' कह कर यह तात्पर्य समझाया है कि जिस प्रकार ये उदाहरण दिये गये हैं, वैसे ही अन्य शब्दों में भी आदि 'अ' का दीर्घ 'आ' आवश्यकतानुसार समझ लेना। जैसे कि-अस्पर्श = आफसो। परकीयम्=पारकेर और पारक्क॥ प्रवचनम् = पावयण॥ चतुरन्तम् = चाउरन्त इत्यादि रूप से 'अ' का 'आ' जान लेना।

समृद्धि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सामिद्धी और समिद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ 'ऋ' की 'इ', १-४४ से विकल्प से आदि 'अ' का 'आ', ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' दीर्घ 'ई' होकर *सामिद्धी* और *समिद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रसिद्धिः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पासिद्धी और पसिद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४४ से आदि 'अ' का 'आ' विकल्प से होता है। ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व-इ' दीर्घ 'ई' होकर *पासिद्धी* और *पसिद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्ररोहः-सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारोहो और परोहो होते है। इनमें सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; ३-२ से प्रथमा में पुल्लिग के एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पारोहो* और *परोहो* रूप सिद्ध हो जाते है।

प्रवासी सस्कृत शब्द है। इसका मूल प्रवासिन् ह। इसके प्राकृत रूप पावासू और पवासू होते हैं। इनमें सूत्र सख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; १-९५ से 'इ' का 'उ'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप, और ३-१९ से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *पावासू* और *पवासू* रूप सिद्ध हो जाते है।

प्रतिस्पर्द्धी सस्कृत शब्द है। इसका मूल रूप प्रतिस्पर्द्धिन् है। इसके प्राकृत रूप पाडिप्फद्धी पडिप्फद्धी होते हैं। इनमें सूत्र सख्या-२-७९ से दोनों 'र्' का लोप, १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से दीर्घ आ; १-२०६ से 'त' का 'ड'; २-५३ से 'स्प' का 'फ', २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फफ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप; और ३-१९ से अन्त्य 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *पाडिप्फद्धी* और *पडिप्फद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अस्पर्शः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आफसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४४ की वृत्ति से आदि 'अ' का 'आ', ४-१८२ से स्पर्श के स्थान पर 'फस' का आदेश; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आफंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परकीयम् सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारकेर और पारक्क होते है। इनमें सूत्र सख्या १-४४ की वृत्ति से 'आदि-अ' का 'आ'; २-१४८ से कीयम् के स्थान पर केर और क्क की प्राप्ति, ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *पारकेरं* और *पारक्कं* रूप सिद्ध हो जाते है।

प्रवचनम् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पावयण होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४४ से आदि 'अ' का आ', १-१७७ से 'च्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ का 'य', १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से नपु सक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *पावयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चतुरन्तम् सस्कृत शब्द है। इमका प्राकृत रूप चाउरन्त होता है। इसमें सूत्र सख्या १-४४ से आदि 'अ' का आ', १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से नपु सक लिंग में प्रथमा के एक वचन में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चाउरन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ४४॥

दक्षिणे हे ॥ १-४५ ॥

दक्षिण शब्दे आदेरतो हे परे दीर्घो भवति ॥ दाहिणो ॥ ह इति किम् । दक्खिणो ॥

अर्थः—दक्षिण शब्द में यदि नियमानुसार 'क्ष' का 'ह' हो जाय तो ऐसा 'ह' आगे रहने पर 'द' में रहे हुए 'अ' का 'आ' होता है। जैसे कि-दक्षिणः = दाहिणो। 'ह' ऐसा क्यों कहा? क्योंकि यदि 'ह' नहीं होगा तो 'द' के 'अ' का 'आ' नहीं होगा। जैसे कि-दक्षिणः=दक्खिणो ॥

दक्षिणः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दाहिणो और दक्खिणो दोनों होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७२ से विकल्प से 'क्ष' का 'ह'; १-४५ से आदि 'अ' का 'आ'; ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दाहिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' का 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दक्खिणो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ४५ ॥

इः स्वप्नादौ ॥ १-४६ ॥

स्वप्न इत्येवमादिषु आदेरस्य इत्वं भवति ॥ सिविणो । सिमिणो ॥ आर्षे उकारोपि । सुमिणो ॥ ईसि । वेडिसो । विलिअं । विअणं । मुइङ्गो । किविणो । उत्तिमो । मिरिअं । दिण्णं ॥ बहुलाधिकाराण्णत्वाभावे न भवति । दत्तं । देवदत्तो ॥ स्वप्न । ईषत् । वेतस । व्यलीक । व्यजन । मृदङ्ग । कृपण । उत्तम । मरिच । दत्त इत्यादि ॥

अर्थः—स्वप्न आदि इन शब्दों में आदि 'अ' की 'इ' होती है। जैसे—स्वप्नः = सिविणो और सिमिणो ॥ आर्ष रूप में 'उ' भी होता है—जैसे-सुमिणो ॥ ईषत् = ईसि ॥ वेतसः = वेडिसो ॥ व्यलीकम् = विलिअं ॥ व्यजनम् = विअणं ॥ मृदङ्गः = मुइंगो ॥ कृपणः = किविणो ॥ उत्तमः = उत्तिमो ॥ मरिचम् = मिरिअं ॥ दत्तम् = दिण्णं ॥

'बहुलम्' के अधिकार से जब दत्तम् में 'ण्ण' नहीं होता है; अर्थात् दिण्णं रूप नहीं होता है; तब दत्तम् में आदि 'अ' की 'इ' भी नहीं होती है। जैसे—दत्तम् = दत्तं ॥ देवदत्तः = देवदत्तो ॥ इत्यादि ॥

स्वप्नः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सिविणो, सिमिणो और आर्ष में सुमिणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४६ से 'व' के 'अ' की 'इ'; २-७९ से 'व्' का लोप; २-१०८ से 'न' से पूर्व 'प' में 'इ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *सिविणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सिमिणो में सूत्र संख्या १-२५९ से 'व्' के स्थान पर 'म्' होता है; तब *सिमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या १-४६ की वृत्ति के अनुसार आर्ष में आदि 'अ' का 'उ' भी हो जाता है। यों *सुमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। शेष सिद्धि ऊपर के समान जानना।

ईषत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप ईसि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४६ से 'स' के 'अ' की 'इ'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *'ईसि'* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेतसः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वेडिसो होता है। इसम सूत्र सख्या–१–४६ से 'त' के 'अ' की 'इ'; १–२०७ से 'त' का 'ड'; ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *'वेडिसो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यलीकस् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विलीअ होता है। इसमें सूत्र सख्या–२–७८ से 'य्' का लोप; १–४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' की इ', १–८४ से 'ली' के दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १–१७७ से 'क्' का लोप; ३–२५ से प्रथमा के एक वचन में नपु सक लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यजनम् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विअण होता है इसमें सूत्र संख्या २–७८ से 'य्' का लोप; १–४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' की 'इ'; १–१७७ से 'ज्' का लोप; १–२२८ से 'न' का 'ण', ३–२५ से प्रथमा में एक वचन में नपु सकलिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'विअणं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदङ्ग' सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मुइङ्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या–१–१३७ से 'ऋ' का 'उ', १-४६ से 'द' के 'अ' की 'इ'; १–१७७ से 'द्' का लोप, ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर मुइङ्गो रूप सिद्ध हो जाता है।

कृपणः सस्कृत शब्द है। इसका रूप किविणो होता है। इसमें सूत्र संख्या–१–१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १४६ से 'प' के 'अ' की 'इ'; १–२३१ से 'प' का 'व', ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्ययन के स्थान पर 'ओ' होकर *किविणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्तमः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप उत्तिमो होता है। इसमें सूत्र सख्या १–४६ से 'त्त' के 'अ' की 'इ', और ३–२ से प्रथमा के एक वचन म पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *उत्तिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मरिचम् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मिरिअं होता है। इसमें सूत्र सख्या १-४६ से 'म' के 'अ' की 'इ'; १-१७७ से 'च्' का लोप, ३-२५ से नपु सक लिग में प्रथमा के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दत्तम् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिण्ण बनता है। इसमें सूत्र सख्या १-४६ 'द' के 'अ' की 'इ' २-४३ से 'त्त' के स्थान पर 'ण' का आदेश, २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; ३-२५ से नपु सक लिग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवदत्तः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप देवदत्तो होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-२ से पुल्लिग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *देवदत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-४६॥

अर्थ—दक्षिण शब्द में यदि नियमानुसार 'क्ष' का 'ह' हो जाय तो ऐसा 'ह' आगे रहने पर 'द' में रहे हुए 'अ' का 'आ' होता है। जैसे कि—दक्षिणः = दाहिणो। 'ह' ऐसा क्यों कहा? क्योंकि यदि 'ह' नहीं होगा तो 'द' के 'अ' का 'आ' नहीं होगा। जैसे कि—दक्षिणः = दक्खिणो॥

दक्षिणः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दाहिणो और दक्खिणो दोनों होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७२ से विकल्प से 'क्ष' का 'ह'; १-४५ से आदि 'अ' का 'आ'; ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दाहिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' का 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दक्खिणो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ४५॥

इः स्वप्नादौ ॥ १-४६ ॥

स्वप्न इत्येवमादिषु आदेरस्य इत्वं भवति ॥ सिविणो । सिमिणो ॥ आर्षे उकारोपि । सुमिणो ॥ ईसि । वेडिसो । विलिअं । विअणं । मुइङ्गो । किविणो । उत्तिमो । मिरिअं । दिण्णं ॥ बहुलाधिकाराण्णत्वाभावे न भवति । दत्तं । देवदत्तो ॥ स्वप्न । ईषत् । वेतस । व्यलीक । व्यजन । मृदङ्ग । कृपण । उत्तम । मरिच । दत्त इत्यादि ॥

अर्थ—स्वप्न आदि इन शब्दों में आदि 'अ' की 'इ' होती है। जैसे—स्वप्नः = सिविणो और सिमिणो॥ आर्ष-रूप में 'उ' भी होता है—जैसे—सुमिणो॥ ईषत् = ईसि॥ वेतसः = वेडिसो॥ व्यलीकम् = विलिअं। व्यजनम् = विअणं। मृदङ्गः = मुइंगो॥ कृपणः = किविणो॥ उत्तमः = उत्तिमो॥ मरिचम् = मिरिअं॥ दत्तम् = दिण्णं॥

'बहुलम्' के अधिकार से जब दत्तम् में 'ण्ण' नहीं होता है अर्थात् दिण्णं रूप नहीं होता है तब दत्तम् में आदि 'अ' की 'इ' भी नहीं होती है। जैसे—दत्तम् = दत्तं॥ देवदत्तः = देवदत्तो॥ इत्यादि॥

स्वप्नः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सिविणो, सिमिणो और आर्ष में सुमिणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४६ से 'व' के 'अ' की 'इ'; २-७९ से 'व्' का लोप; २-१०८ से 'न' से पूर्व 'प' में 'इ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *सिविणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सिमिणो में सूत्र संख्या १-२५९ से 'व्' के स्थान पर 'म्' होता है; तब *सिमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या १-४६ की वृत्ति के अनुसार आर्ष में आदि 'अ' का 'उ' भी हो जाता है। यों *सुमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। शेष सिद्धि ऊपर के समान जानना।

ईषत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप ईसि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४६ से 'स' के 'अ' की 'इ'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *ईसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेतसः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वेडिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-४६ से 'त' के 'अ' की 'इ', १-२०७ से 'त' का 'ड'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर '*वेडिसो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यलीकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विलीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-७८ से 'य्' का लोप; १-४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' की इ', १-८४ से 'ली' के दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथवा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यजनम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विअण होता है इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' की 'इ'; १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा में एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*विअणं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदङ्गः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मुइङ्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३७ से 'ऋ' का 'उ', १-४६ से 'द' के 'अ' की 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर मुइङ्गो रूप सिद्ध हो जाता है।

कृपणः संस्कृत शब्द है। इसका रूप किविणो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १४६ से 'प' के 'अ' की 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्ययन के स्थान पर 'ओ' होकर *किविणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्तमः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप उत्तिमो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ से 'त्त' के 'अ' की 'इ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन म पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *उत्तिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मरिचम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मिरिअ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ से 'म' के 'अ' की 'इ', १-१७७ से 'च्' का लोप, ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दत्तम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिण्ण बनता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ 'द' के 'अ' की 'इ' २-४३ से 'त्त' के स्थान पर 'ण' का आदेश, २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवदत्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप देवदत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से पुल्लिग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *देवदत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-४६ ॥

सप्तपर्णे वा ॥ १-४९ ॥

सप्तपर्णे द्वितीयस्यात इत्वं वा भवति ॥ छत्तिवण्णो । छत्तवण्णो ॥

अर्थ-सप्तपर्ण शब्द में द्वितीय 'अ' की 'इ' विकल्प से होती है। जैसे-सप्तपर्ण.= छत्तिवण्णो और छत्तवण्णो ।।

सप्तपर्णः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप छत्तिवण्णो और छत्तवण्णो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१-२६५ से 'स' का 'छ', २-७७ से 'प' का लोप, २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त', १-४९ से द्वितीय 'अ' की याने 'त' के 'अ' की 'इ' विकल्प से; १-२३१ से 'प' का 'व', २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण', और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *छत्तिवण्णो* और *छत्तवण्णो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ ४९ ॥

मयट्यइर्वा ॥ १-५० ॥

मयट् प्रत्यये आदेरतः स्थाने अइ इत्यादेशो भवति वा ॥ विषमयः । विसमइओ । विसमओ ।

अर्थः-'मयट्' प्रत्यय में आदि 'अ' के स्थान पर 'अइ' ऐसा आदेश विकल्प से हुआ करता है। जैसे-विषमय = विसमइओ और विसमओ ।।

विषमय. संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप विसमइओ और विसमओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स', १-५० से 'मय' में 'म' के 'अ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की विकल्प से प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप, और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *विसमइओ* और *विसमओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ई र्हरे वा ॥ १-५१ ॥

हर शब्दे आदेरत ईर्वा भवति । हीरो हरो ॥

अर्थः-हर शब्द में आदि के 'अ' की 'ई' विकल्प से होती है। जैसे-हरः = हीरो और हरो ॥

हरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हीरो और हरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-५१ से आदि 'अ' की विकल्प से 'ई', और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *हीरो* और *हरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

ध्वनि-विष्वचोरुः ॥ १-५२ ॥

अनयोरादेरस्य उत्वं भवति ॥ झुणी । वीसु ॥ कथं सुणओ । शुनक इति प्रकृत्यन्तरस्य ॥ श्वन् शब्दस्य तु साणो इति प्रयोगौ भवतः ॥

खण्डितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खुडिओ और खण्डिओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-५३ से आदि-'अ' का 'ण्' सहित विकल्प से 'उ', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *खुडिओ* और *खण्डिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥५३॥

गवये वः ॥ १-५४ ॥

गवय शब्दे वकाराकारस्य उत्वं भवति ॥ गउओ । गउआ ॥

*अर्थः*गवय शब्द में 'व' के 'अ' का उ' होता है। जैसे-गवय = गउओ और गउआ ॥

गवयः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गउओ होता है इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप, १-५४ से लुप्त 'व' के 'अ' का 'उ', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर '*गउओ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

गवया संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गउआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप, १-५४ से लुप्त 'व' के 'अ' का 'उ', और सिद्ध-हेम-व्याकरण के २-४-१८ से सूत्र 'आत्' से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *गउआ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ५४ ॥

प्रथमे प-थो वा ॥ १-५५ ॥

प्रथम शब्दे पकार थकारयोरकारस्य युगपत् क्रमेण च उकारो वा भवति ॥ पुढुमं पुढमं पढुमं पढमं ॥

अर्थ.-प्रथम शब्द में 'प' के और 'थ' के 'अ' का 'उ' विकल्प से एक साथ भी होता है और क्रम से भी होता है। जैसे-प्रथमम् = (एक साथ का उदाहरण) पुढुम। (क्रम के उदाहरण) पुढम और पढुम। (विकल्प का उदाहरण-) पढम।

प्रथमम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चार होते हैं। पुढुम, पुढम, पढुम और पढम। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२१५ से 'थ' का 'ढ', १-५५ से 'प' और प्राप्त 'ढ' के 'अ' का 'उ' विकल्प से, युगपद् रूप से और क्रम से; ३-२५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *पुढुमं*, *पुढमं*, *पढुमं*, और *पढमं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥५५॥

ज्ञो णत्वेभिज्ञादौ ॥ १-५६ ॥

अभिज्ञ एवं प्रकारेषु ज्ञस्य णत्वे कृते ज्ञस्यैव अत उत्वं भवति ॥ अहिण्णू । सव्वण्णू । कयण्णू । आगमण्णू ॥ णत्व इति किम् । अहिज्जो । सव्वज्जो ॥ अभिज्ञादाविति किम् । प्राज्ञः । पण्णो ॥ येषां ज्ञस्य णत्वे उत्वं दृश्यते ते अभिज्ञादयः ॥

अर्थः-अभिज्ञ आदि इस प्रकार के शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करने पर 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' होता है। जैसे-अभिज्ञः = अहिण्णू। सर्वज्ञः = सव्वण्णू। कृतज्ञः = कयण्णू। आगमज्ञः = आगमण्णू। 'ण' ऐसा ही क्यों कहा गया है? क्योंकि यदि 'ज्ञ' का 'ण' नहीं करेंगे तो वहां पर 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' नहीं होगा। जैसे-अभिज्ञः = अहिज्जो। सर्वज्ञः = सव्वज्जो॥ अभिज्ञ आदि में ऐसा क्यों कहा गया है? क्योंकि जिन शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करने पर भी 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' नहीं किया गया है; उन्हें 'अभिज्ञ-आदि' शब्दों की श्रेणी में मत गिनना। जैसे-प्राज्ञः = पण्णो॥ अतएव जिन शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करके 'ज्ञ' के 'अ' का 'उ' देखा जाता है; उन्हें ही अभिज्ञ आदि की श्रेणी वाला जानना।

अभिज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहिण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण्ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *'अहिण्णू'* रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण्ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *'सव्वण्णू'* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कयण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से 'त' के 'अ' का 'य'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण्ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *कयण्णू* रूप सिद्ध हो जाता है।

आगमज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आगमण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण्ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *आगमण्णू* रूप सिद्ध हो जाता है।

अभिज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहिज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; २-८३ से 'ज्ञ' में रहे हुए 'ञ्' का लोप; २-८९ से शेष 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *अहिज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; २-८३ से 'ज्ञ' में रहे हुए 'ञ्' का लोप; २-८९ से शेष 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *सव्वज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्राज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'पण्णो' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से 'पा' के 'आ' का 'अ', २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण', २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *'पण्णो'* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ५६ ॥

एच्छय्यादौ ॥ १-५७ ॥

शय्यादिषु आदेरस्य एत्वं भवति ॥ सेज्जा । सुन्देरं । गेन्दुअं । एत्थ ॥ शय्या । सौन्दर्यं । कन्दुक । अत्र ॥ आर्षे पुरे कम्मं ।

अर्थः—शय्या आदि शब्दों में आदि 'अ' का 'ए' होता है। जैसे—शय्या = सेज्जा। सौन्दर्यम् = सुन्देरं। कन्दुकम् = गेन्दुअं। अत्र=एत्थ ॥ आर्ष में आदि 'आ' का 'ए' भी देखा जाता है। जैसे—पुरा कर्म = पुरे कम्मं ॥

शय्या संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सेज्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५७ से 'श' के आदि 'अ' का 'ए', १-२६० से 'श' का 'स'; २-२४ से 'य्य' का 'ज', २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; और सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से आकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *सेज्जा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौन्दर्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुन्देरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' का 'उ'; १-५७ से 'द' के 'अ' का 'ए', २-६३ से 'र्य' का 'र', ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुन्देरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कन्दुकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गेन्दुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८२ से आदि 'क' का 'ग', १-५७ से प्राप्त 'ग' के 'अ' का 'ए'; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप, ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गेन्दुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एत्थ' की सिद्धि १-४० में की गई है।

पुराकर्म संस्कृत शब्द है। इसका आर्ष प्राकृत रूप पुरे कम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५७ की वृत्ति से 'आ' का 'ए'; २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'पुरेकम्मं' रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ५७ ॥

वल्ल्युत्कर-पर्यन्ताश्चर्ये वा ॥ १-५८ ॥

एषु आदेरस्य एत्वं वा भवति ॥ वेल्ली वल्ली । उक्केरो उक्करो । पेरन्तो पज्जन्तो । अच्छेरं अच्छरिअं अच्छअरं अच्छरिज्जं अच्छरीअं ॥

तोन्तरि ॥ १-६० ॥

अन्तर शब्दे तस्य अत एत्वं भवति ॥ अन्तः पुरम् । अन्ते उरं ॥ अन्तश्चारी । अन्ते आरी । क्वचिन्न भवति । अन्तग्गयं । अन्ता-वीसम्भ-निवेसिआणं ॥

अर्थः—अन्तर्-शब्द मे 'त' के 'अ' का 'ए' होता है । जैसे-अन्त पुरम् = अन्ते उर । अन्तश्चारी = अन्ते आरी ॥ कहीं कहीं पर 'अन्तर' के 'त' के 'अ' का 'ए' नहीं भी होता है । जैसे-अन्तर्गतम् = अन्तग्गयं ॥ अन्तर-विश्रम्भ-निवेसितानाम् = अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआण ॥

अन्तःपुरम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्ते उरं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'र्' अथवा 'विसर्ग' का लोप १-६० से 'त' के 'अ' का 'ए', १-१७७ से 'प्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *'अन्तेउरं'* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तश्चारी संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तेआरी होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'श्' का लोप, १-६० से 'त' के 'अ' का 'ए'; १-१७७ से 'च्' का लोप, ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर *अन्तेआरी* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तर्गतम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तग्गय होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', १-१७७ से द्वितीय त' का लोप, १-१८० से 'त्' के शेष 'अ' का 'य', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अन्तग्गयं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तर-विश्रम्भ-निवेसितानाम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआण होता है । इसमें सूत्र संख्या १-३७ से 'अन्तर्' के 'र्' का 'ओ , २-७९ से 'श्र' के 'र्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-६ से षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय 'आम्' याने 'नाम्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-१२ से प्राप्त 'ण' के पहिले के स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ'; १-२७ से 'ण' पर अनुस्वार का आगम होकर *अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ओत्पद्मे ॥ १-६१ ॥

पद्म शब्दे आदेरत ओत्वं भवति ॥ पोम्मं ॥ पद्म-छद्म-(२-११२) इति विश्लेषे न भवति । पउमं ॥

अर्थ—पद्म शब्द में आदि 'अ' का 'ओ' होता है । जैसे-पद्मम् = पोम्मं । किन्तु सूत्र संख्या २-११२ से विश्लेष अवस्था में आदि 'अ' का 'ओ' नहीं होता है । जैसे-पद्मम् = पउम ॥

पद्मम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पोम्मं और पउमं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६१ से आदि 'अ' का 'ओ'; २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पोम्मं रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में २-७७ से 'द्' का लोप; २-११२ से 'द्' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छद्म की सिद्धि आगे २-११२ में की जायगी ॥ ६१ ॥

नमस्कार-परस्परे द्वितीयस्य ॥ १-६२ ॥

अनयोर्द्वितीयस्य अत ओत्वं भवति ॥ नमोक्कारो । परोप्परं ॥

अर्थः— नमस्कार और परस्पर इन दोनों शब्दों में 'द्वितीय-अ' का 'ओ' होता है। जैसे—नमस्कारः = नमोक्कारो। परस्परम् = परोप्परं ॥

नमस्कारः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नमोक्कारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६२ से द्वितीय 'अ' का 'ओ'; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *नमोक्कारो* सिद्ध हो जाता है।

परस्परम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप परोप्परं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६२ से 'द्वितीय-अ' का 'ओ'; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *परोप्परं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्पौ ॥ १-६३ ॥

अर्पयतौ धातौ आदेरस्य ओत्वं वा भवति ॥ ओप्पेइ अप्पेइ । ओप्पिअं अप्पिअं ॥

अर्थः— 'अर्पयति' धातु में आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे—अर्पयति = ओप्पेइ और अप्पेइ। अर्पितम् = ओप्पिअं और अप्पिअं ॥

अर्पयति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रिया पद है। इसके प्राकृत रूप ओप्पेइ और अप्पेइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६३ से आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-४९ से प्रेरणार्थक में 'णि' प्रत्यय के स्थान पर यहाँ पर प्राप्त 'अय' के स्थान पर 'ए'; और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष में एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' होकर *ओप्पेइ* और *अप्पेइ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अर्पितम् संस्कृत भूत कृदन्त विशेषण है। इसके प्राकृत रूप ओप्पिअं और अप्पिअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६३ से आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; १-१५६

से भूत कृदन्त के 'त' प्रत्यय के पहिले आने वाली 'इ' की प्राप्ति मौजूद ही है; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ओप्पिअं अप्पिअं* रूप सिद्ध हो जाते है ।। ६३ ।।

स्वपावुच्च ।। १-६४ ।।

स्वपितौ धातौ आदेरस्य ओत् उत् च भवति ।। सोवइ सुवइ ।।

अर्थः-स्वपिति' धातु में आदि 'अ' का 'ओ' होता है और 'उ' भी होता है । जैसे-स्वपिति = सोवइ और सुवइ ।।

स्वपिति संस्कृत क्रियापद है; इसका धातु स्वप् है । इसका प्राकृत रूप सोवइ और सुवइ होता है । इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से हलन्त 'प्' में 'अ' का संयोजन, १-२६० से 'व्' का 'स्'; २-७९ से 'व' का लोप; १-२३१ से प्' का 'व्', १-६४ से आदि 'अ' का 'ओ' और 'उ' क्रम से ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर क्रम से *सोवइ* और *सुवइ* रूप सिद्ध हो जाते है ।। ६४ ।।

नात्पुनर्यादाई वा ।। १-६५ ।।

नञः परे पुनः शब्दे आदेरस्य 'आ' 'आइ' इत्यादेशौ वा भवतः ।। न उणा ।। न उणाइ । पक्षे न उण । न उणो ।। केवलस्यापि दृश्यते । पुणाइ ।।

अर्थः-नञ् अव्यय के पश्चात् आये हुए 'पुनर्' शब्द में आदि 'अ' को 'आ' और 'आइ' ऐसे दो आदेश क्रम से और विकल्प से प्राप्त होते हैं । जैसे-न पुनर् = न उणा और न उणाइ । पक्ष में-न उण और न उणो भी होते हैं । कहीं कहीं पर 'न' अव्यय नहीं होने पर भी 'पुनर्' शब्द में विकल्प रूप से उपरोक्त आदेश 'आइ' देखा जाता है । जैसे-पुनर = पुणाइ ।।

न पुनः संस्कृत अव्यय है । इसके प्राकृत रूप न उणा, न उणाइ; न उण, न उणो होते हैं । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप, १-२२८ से पुनर् के न' का 'ण', १-११ से विसर्ग याने 'र्' का लोप, १-६५ से प्राप्त ण' के 'अ' को क्रम से और विकल्प से 'आ' एवं 'आइ' आदेशों की प्राप्ति होकर *न उणा, न उणाइ,* और *न उण* रूप सिद्ध हो जाते हैं । एवं पक्ष में १-११ के स्थान पर १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *न उणो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

पुनः का रूप पक्ष में पुणाइ भी होता है । इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', १-११ से विसर्ग अर्थात् 'र्' का लोप, और १-६५ से 'अ' को केवल 'आइ' आदेश की प्राप्ति होकर *'पुणाइ'* रूप सिद्ध हो जाता है ।। ६५ ।।

वालाब्वरण्ये लुक् ॥१-६६॥

अलाब्वरण्य शब्दयोरादेरस्य लुग् वा भवति। लाउं अलाउं। लाऊ, अलाऊ। रण्णं अरण्णं॥ अत इत्येव। आरण्ण कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो॥

अर्थ:—अलाबू और अरण्य शब्दों के आदि 'अ' का विकल्प से लोप होता है। जैसे—अलाबुम्=लाउं और अलाउं। अरण्यम्=रण्णं और अरण्णं॥ 'अरण्य' के आदि में अ हो; तभी उस 'अ' का विकल्प से लोप होता है। यदि 'अ' नहीं होकर अन्य स्वर हो तो उसका लोप नहीं होता। जैसे—आरण्य कुञ्जर-इव रममाणः=आरण्ण कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो-इस उदाहरण में 'आरण्य' में 'आ' है; अतः इसका लोप नहीं हुआ।

अलाबुम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लाउं और अलाउं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; १-६६ से आदि 'अ' का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से लाउं और अलाउं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अलाबु संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लाऊ और अलाऊ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; १-६६ से आदि-अ-का विकल्प से लोप और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर क्रम से लाऊ और *अलाऊ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अरण्यम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप रण्णं और अरण्णं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-६६ से आदि 'अ' का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *रण्णं* और *अरण्णं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आरण्य संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आरण्ण होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; और २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण' होकर *आरण्ण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुञ्जरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुञ्जरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *कुञ्जरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

'व्व' की सिद्धि १-६ में की गई है।

रममाणः संस्कृत वर्तमान कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वेल्लन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१६८ से रम् धातु को वेल्ल आदेश; ३-१८१ से मान-माण-आनश् प्रत्यय के स्थान पर 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेल्लन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ६६॥

वाऽव्ययोत्खातादावदातः ॥ १-६७ ॥

अव्ययेषु उत्खातादिषु च शब्देषु आदेराकारस्य अद् वा भवति ॥ अव्ययम् । जह जहा । तह तहा । अहव अहवा । व वा । ह हा । इत्यादि ॥ उत्खातादि । उक्खयं उक्खायं । चमरो चामरो । कलओ कालओ ठविओ ठाविओ । परिट्ठविओ परिट्ठाविओ । संठविओ संठाविओ । पययं पाययं । तलवेण्टं तालवेण्टं । तल वोण्ट ताल वोण्ट । हलिओ हालिओ । नराओ नाराओ । वलया वलाया । कुमरो कुमारो । खइरं खाइरं ॥ उत्खात । चामर । कालक । स्थापित । प्राकृत । ताल वृन्त । हालिका । नाराच । वलाका । कुमार । खादिर । इत्यादि ॥ केचिद् ब्राह्मण पूर्वाह्णयोर- पीच्छन्ति । बम्हणो बाम्हणो । पुव्वण्हो पुव्वाण्हो ॥ दवग्गी । दावग्गी ॥ चडू चाडू । इति शब्द-भेदात् सिद्धम् ॥

अर्थः-कुछ अव्ययों में और उत्खात आदि शब्दो में आदि में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है। अव्ययों के दृष्टान्त इस प्रकार है-यथा=जह और जहा। तथा=तह और तहा। अथवा=अहव और अहवा। वा=व और वा। हा=ह और हा ॥ इत्यादि।

उत्खात आदि के उदाहरण इस प्रकार हैं-

उत्खातम्=उक्खयं और उक्खायं। चामर=चमरो और चामरो। कालक=कलओ और कालओ। स्थापित=ठविओ और ठाविओ। प्रति स्थापित=परिट्ठविओ और परिट्ठाविओ। संस्थापित=संठविओ और संठाविओ। प्राकृतम्=पययं और पाययं।

तालवृन्तम्=तलवेण्टं और तालवेण्टं। तलवोण्ट, तालवोण्ट। हालिक=हलिओ और हालिओ। नाराच=नराओ और नाराओ। बलाका=वलया और वलाया। कुमार=कुमरो और कुमारो। खादिरम्=खइरं और खाइरं ॥ इत्यादि रूप से जानना। कोई २ ब्राह्मण और पूर्वाण्ह शब्दों के आदि 'आ' का विकल्प से 'अ' होना मानते हैं। जैसे-ब्राह्मण=बम्हणो और बाम्हणो। पूर्वाण्ह=पुव्वण्हो और पुव्वाण्हो ॥ दवाग्नि-दावाग्नि दवग्गी और दावग्गी। चटु और चाटु=चडू और चाडू। अंतिम चार रूपों में-(दवग्गी से चाडू तक में)-भिन्न भिन्न शब्दों के आधार से परिवर्तन होता है, अत: इनमें यह सूत्र १-६७ नहीं लगाया जाना चाहिये। अर्थात् इनकी सिद्धि शब्द-भेद से-याने अलग अलग शब्दों से होती है। ऐसा जानना।

यथा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप जह और जहा होते है। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज', १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *जह* और *जहा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तथा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप तह और तहा होते है। इनमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' का 'ह', और १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *तह* और *तहा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अथवा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप अहव और अहवा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १८७ से 'थ' का 'ह' और १ ६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *अहव* और *अहवा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप व और वा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ ६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर 'व' और 'वा' रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ह और हा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ ६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर 'ह' और 'हा' रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उत्खातम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप उक्खयं और उक्खायं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७७ से आदि 'त्' का लोप २-८९ से 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २ ९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क'; १ ६७ से आ का विकल्प से 'अ' १ १७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; १ १८० से 'त्' के 'अ' का 'य'; ३ २५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *उक्खयं* और *उक्खायं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चामरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चमरो और चामरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१ ६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *चमरो* और *चामरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

कालकः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कलओ और कालओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१ ६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १ १७७ से 'क्' का लोप; और ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *कलओ* और *कालओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

स्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ठविओ और ठाविओ होते हैं। इन में सूत्र संख्या-४ १६ से 'स्था' का 'ठा' १ ६७ से प्राप्त 'ठा' के 'आ' का विकल्प से "अ"; १ २३१ से 'प' का "व" १ १७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रमसे *ठविओ* और *ठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिस्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठविओ और परिट्ठाविओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१ ३८ से "प्रति" के स्थान पर "परि" ४ १६ से "स्था" का "ठा"; २-८९ से "प्राप्त ठ" को द्वित्व 'ठ्ठ' २ ९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' १ २३१ से "प" का "व"; १ ६७ से प्राप्त "ठा" के 'आ' का विकल्प से 'अ'; १ १७७ से 'त्' का लोप; ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" होकर *परिट्ठविओ* और *परिट्ठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

संस्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप संठविओ और संठाविओ होते हैं; इनमें सूत्र-संख्या ४ १६ से "स्था" का "ठा"; १ ६७ से प्राप्त "ठा" के 'आ' का विकल्प से 'अ'; १ २३१ से "प" का "व"

१-१७७ से "त्" का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुंल्लिग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" होकर क्रम से *सठविओ* और *संठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्राकृतम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पययं और पाययं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-६७ से 'पा' के 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप, १-१८० से 'क्' और 'त्' के शेष दोनों 'अ' को क्रम से 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पययं* और *पाययं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तालवृन्तम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप तलवेण्टं, तालवेण्टं, तलवोण्टं और तालवोण्टं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१३९ से 'ऋ' का 'ए' और 'ओ' क्रम से, २-३१ से 'न्त' का 'ण्ट', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *तलवेण्टं, तालवेण्टं, तलवोण्टं* और *तालवोण्टं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हालिकः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलिओ और हालिओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *हलिओ* और *हालिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नाराचः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नराओ और नाराओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१७७ से 'च्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *नराओ* और *नाराओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बलाका संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बलया और बलाया होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से शेष-'अ' का 'य', और सिद्ध-हेम व्याकरण के २-४-१८ से आकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर क्रम से *बलया* और *बलाया* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

कुमारः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुमरो और कुमारो होते हैं। इन में सूत्र-संख्या १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ', और ३-२ से पुंल्लिग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कुमरो* और *कुमारो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खादिरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खइरं और खाइरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ', १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *खइरं* और *खाइरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ब्राह्मण संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बम्हणो और बाम्हणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७४ से 'ह्म' का 'म्ह'; १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *बम्हणो* और *बाम्हणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पूर्वाह्ण संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पुव्वण्हो और पुव्वाण्हो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; २-७५ से 'ह्ण' का 'ण्ह'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पुव्वण्हो* और *पुव्वाण्हो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दवाग्नि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दवग्गी होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-८४ से 'वा' के 'आ' का 'अ'; ३-१९ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *दवग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दावाग्नि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दावग्गी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से 'ग्' का द्वित्व 'ग्ग'; १-८४ से 'वा' के 'आ' का 'अ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *दावग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

चाटु संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चडू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *चडू* रूप सिद्ध हो जाता है।

चाटु संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चाडू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *चाडू* रूप सिद्ध हो जाता है।

घञ् वृद्धेर्वा ॥ १-६८ ॥

घञ् निमित्तो यो वृद्धि रूप आकारस्तस्यादिभूतस्य अद् वा भवति ॥ पवहो पवाहो । पहरो पहारो । पयरो पयारो । प्रकारः प्रचारो वा । पत्थवो पत्थावो ॥ क्वचिन्न भवति । रागः राओ ॥

अर्थः—घञ् प्रत्यय के कारण से वृद्धि प्राप्त आदि 'आ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे—प्रवाहः = पवहो और पवाहो ॥ प्रहारः = पहरो और पहारो ॥ प्रकारः अथवा प्रचारः = पयरो और पयारो ॥ प्रस्तावः = पत्थवो और पत्थावो ॥ कहीं कहीं पर 'आ' का 'अ' नहीं भी होता है। जैसे—रागः = राओ

प्रवाह: संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पवहो और पवाहो होते हैं। इनमे सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *पवहो* और *पवाहो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रहार: संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पहरो और पहारो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *पहरो* और *पहारो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रकार: संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पयरो और पयारो होते हैं। इन में सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ', ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *पयरो* और *पयारो* सिद्ध हो जाते हैं। *प्रचार:* के प्राकृत रूप पयरो और पयारो की सिद्धि ऊपर लिखित 'प्रकार' शब्द की सिद्धि के समान ही जानना।

प्रस्ताव: संस्कृत शब्द हैं। इसके प्राकृत रूप पत्थवो और पत्थावो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप, २-४५ से 'स्त' का 'थ', २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; १-६८ से 'आ' का 'अ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से पत्थवो और *पत्थावो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

राग: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप राओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या- -१७७ से 'ग्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *'राओ'* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ६८ ॥

महाराष्ट्रे ॥ १-६९ ॥

महाराष्ट्र शब्दे आदेराकारस्य अद् भवति ॥ मरहट्ठं। मरहट्ठो ॥

अर्थ: महाराष्ट्र शब्द में आदि 'आ' का 'अ होता है। जैसे–महाराष्ट्रम् = मरहट्ठं। महाराष्ट्र = मरहट्ठो ॥

महाराष्ट्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मरहट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६९ से आदि 'आ' का 'अ', १-८४ से 'रा' के 'आ' का 'अ', २-७९ से 'ट्र' के 'र्' का लोप, २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', २-११९ से 'ह' और 'र' वर्णों का व्यत्यय ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मरहट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महाराष्ट्र = 'मरहट्ठो' शब्द पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनों लिंग वाला होने से पुल्लिंग में १-२ से सि के स्थान पर ओ प्रत्यय होकर *मरहट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मांसादिष्वनुस्वारे ॥ १-७० ॥

मांसप्रकारेषु अनुस्वारे सति आदेरात अद् भवति। मंस। पंसू। पसणो। कंस। कंसिओ। वंसिओ। पंडवो। संसिद्धिओ। संजत्तिओ॥ अनुस्वार इति किम्। मास। पासू॥ मांस। पांसु। पांसन। कांस्य। कांसिक। वांशिक। पाण्डव। सांसिद्धिक। सांयात्रिक। इत्यादि॥

अर्थ—मांस आदि जैसे शब्दों में अनुस्वार रहने पर आदि 'आ' का 'अ' होता है। जैसे-मांसम् = मंसं। पांसुः = पंसू॥ पांसनः = पंसणो। कांस्यम् = कंसं। कांसिकः = कंसिओ। वांशिकः = वंसिओ। पाण्डवः = पंडवो। सांसिद्धिकः = संसिद्धिओ। सांयात्रिकः = संजत्तिओ। सूत्र में अनुस्वार का उल्लेख क्यों किया ?

उत्तर—यदि अनुस्वार नहीं किया जायगा तो 'आदि आ' का 'अ' भी नहीं होगा। जैसे-मांसम् = मासं। पांसुः = पासू॥ इन उदाहरणों में आदि 'आ' का 'अ' नहीं किया गया है। क्योंकि अनुस्वार नहीं है।

मंसं शब्द की सिद्धि १-२९ में की गई है।

पंसू शब्द की सिद्धि १-२६ में की गई है।

पांसनः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पंसणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-७० से 'आ' का 'अ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पंसणो* रूप सिद्ध होता जाता है।

कंसं की सिद्धि १-२९ में की गई है।

कांसिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कंसिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप; १-७० से आदि 'आ' का 'अ'; १-२ से प्रथमा के वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *कंसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वांशिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वंसिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२६० से 'श' का 'स'; १-७० से आदि-'आ' का 'अ'; १-१७७ से 'क' का लोप और १-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *वंसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाण्डवः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पंडवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-७० से आदि-'आ' का 'अ'; १-२५ से 'ण्' का अनुस्वार और १-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *पंडवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सांसिद्धिक: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संसिद्धिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७० से आदि 'आ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *संसिद्धिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सांयात्रिक: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संजत्तिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७० से आदि 'आ' का 'अ', १-२४५ से 'य' का 'ज', १-८४ से द्वितीय 'आ' का 'अ', २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *संजत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मास और पासू शब्दों की सिद्धि भी १-२९ में की गई है ।७०॥

श्यामाके मः ॥ १-७१

श्यामाके मस्य आतः अद् भवति ॥ सामओ ॥

अर्थ:-श्यामाक में 'मा' के 'आ' का 'अ' होता है। जैसे श्यामाक =सामओ ॥

श्यामाक: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सामओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' का 'स'; २-७८ से 'य' का लोप, १-७१ से 'मा' के 'आ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *सामओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ७१ ॥

इः सदादौ वा ॥ १-७२ ॥

सदादिषु शब्देषु आत इत्वं वा भवति ॥ सइ सया । निसिअरो निसा-अरो । कुप्पिसो कुप्पासो ॥

अर्थ:-सदा आदि शब्दों में 'आ' की 'इ' विकल्प से होती है। जैसे-सदा =सइ और सया। निशाचर = निसिअरो और निसाअरो।। कूर्पास् =कुप्पिसो और कुप्पासो ॥

सदा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप सइ और सया होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'द' का लोप, और १-७२ से शेष 'आ' की 'इ' विकल्प से होकर 'सइ' रुप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में-१-१७७ से 'द' का लोप, और १-१८० शेष अ' अर्थात् आ का 'या' होकर *सया* रुप सिद्ध हो जाता है।

निसिअरो और निसाअरो शब्दो की सिद्धि १-८ में की गई है।

कूर्पास-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुप्पिसो और कुप्पासो होते है। इनमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'कू' के 'ऊ' का 'उ', २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प', १-७२ से 'आ' की विकल्प से 'इ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर कुप्पिसो *कुप्पासो* रूप सिद्ध हो जाते है ॥७२॥

आचार्ये चोच्च ॥ १-७३ ॥

आचार्य शब्दे चस्य आत इत्वम् अत्वं च भवति ॥ आइरिओ, आयरिओ ॥

अर्थ—आचार्य शब्द में 'चा' के 'आ' की 'इ' और 'अ' होता है। जैसे आचार्य =आइरिओ और आयरिओ ॥

आचार्य—संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप आइरिओ और आयरिओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-७३ से 'चा' के 'आ' की 'इ' और 'अ', २-१०७ से 'य' के पूर्व में 'इ' का आगम होकर 'रिय' रूप १-१७७ से 'च' और 'य्' का लोप; द्वितीय रूप में १-१८० से प्राप्त 'च' के 'अ' का 'य' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थानपर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आइरिओ* और *आयरिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ ७३ ॥

ई स्त्यान-खल्वाटे ॥ १-७४ ॥

स्त्यान खल्वाटयोरादेरात ईर्भवति॥ ठीणं। थीणं। थिण्णं॥ खल्लीडो॥ संखायं इति तु सम स्त्य खा (४-१५) इति खादेशे सिद्धम्॥

अर्थ—स्त्यान और खल्वाट शब्दों के आदि 'आ' की 'ई' होती है। जैसे-स्त्यानम्=ठीणं थीणं थिण्णं॥ खल्वाटः=खल्लीडो॥ संखायं-ऐसा प्रयोग तो सम् उपसर्ग के बाद में आने वाली स्त्यै धातु के स्थान पर (४-१५) से होने वाले 'खा' आदेश से सिद्ध होता है।

स्त्यानम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप ठीणं थीणं और थिण्णं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप २-३३ से 'स्त' का 'ठ' १-७४ से 'आ' की 'ई', १-२२८ से 'न' का 'ण', यों ठीण हुआ। द्वितीय रूप में 'स्त' का २-४५ से 'थ' यों थीण हुआ। तृतीय रूप में २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण' और १-८४ से 'थी' के 'ई' की ह्रस्व 'इ' यों थिण्ण" हुआ। बाद में ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *ठीणं थीणं* और *थिण्णं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खल्वाट संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप खल्लीडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से व् का लोप २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल' १-७४ से 'आ' की ई १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *खल्लीडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्त्यानम्, संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप संखायं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१५ से स्त्या के स्थान पर 'खा' का आदेश २-७८ से 'न्' का लोप १-१८० से शेष 'अ' का 'य' ३-२५ से

प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर *संखायं* रूप सिद्ध हो जाता है । ॥ ७४ ॥

उः सास्ना-स्तावके ॥ १-७५ ॥

अनयोरादेरात उत्वं भवति ॥ सुण्हा । थुवओ ॥

अर्थः-सास्ना और स्तावक शब्दो में आदि 'आ' का 'उ' होता है । जैसे-सास्ना=सुण्हा । स्तावक =थुवओ ।

सास्नाः सस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप सुण्हा होता है । इसमे सूत्र-संख्या-२-७५ से 'स्ना' का 'ण्हा', १-७५ से आदि आ' का 'उ', सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग आकारान्त शब्दों में प्रथमा के एक वचन में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

स्तावकः सस्कृत विशेषण है । इसका प्राकृत रूप थुवओ होता । इसमें सूत्र-सख्या-२-४५ से 'स्त' का 'थ', १-७५ से आदि 'आ' का 'उ', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थुवओ* रूप सिद्ध हो जाता है । ॥ ७५ ॥

ऊद्वासारे ॥ १-७६ ॥

आसार शब्दे आदेरात ऊद् वा भवति । ऊसारो । आसारो ॥

अर्थः-आसार शब्द में आदि 'आ' का विकल्प से 'ऊ' होता है । जैसे-आसार.=ऊसारो और आसारो ॥

आसारः संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप ऊसारो और आसारो होते है । इनमें सूत्र सख्या १ ७६ से आदि 'आ' का विकल्प से 'ऊ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *ऊसारो* और *आसारो* रूप सिद्ध हो जाते है ॥ ७६ ॥

आर्यायां र्यः श्वश्र्वाम् ॥१-७७ ॥

आर्या शब्दे श्वश्र्वां वाच्यायां र्यस्यात ऊर्भवति ॥ अज्जू ॥ श्वश्र्वामिति किम् । अज्जा ॥

अर्थः-आर्या शब्द का अर्थ जब 'सासु' होवे तो आर्या के 'र्या' के 'आ' का 'ऊ' होता है । जैसे-आर्या=अज्जू-(सासु) । श्वश्रु-याने सासु ऐसा क्यों कहा गया है ? उत्तर-जब आर्या का अर्थ सासु नहीं होगा, तब 'र्या' के 'आ' का 'ऊ' नहीं होगा । जैसे-आर्या=अज्जा ॥ (साध्वी) ।

द्वेरं रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में-२-११२ से विकल्प से 'द्' मे उ' का 'आगम'; १-१७७ से 'व्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुआरं* सिद्ध हो जाता है। तृतीय रूप में-१-१७७ से 'व्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दारं* सिद्ध हो जाता है। चतुर्थ रूप मे-२-७७ से 'द्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*वारं*' सिद्ध हो जाता है।

नैरयिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नेरइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' १-१७७ से 'य्' और 'क' का लोप, ३-२१ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नेरइओ* रुप सिद्ध हो जाता है।

नारकिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नारइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'क' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नारइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्चात कर्म सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पच्छे कम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'श्च' का 'छ', २-८६ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्' १-७९ की वृत्ति से 'आ' का 'ए', १-११ से 'त्' का लोप, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पच्छे कम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है।

असहाय्य संस्कृत विशेपण है। इसका प्राकृत रूप असहेज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या—१-७९ की वृति से 'आ' का 'ए', २-२४ से 'य्य' का 'ज' २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज', यों *असहेज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवासुरी का संस्कृत और प्राकृत रूप सामान ही होता है॥ ७९॥

पारापते रो वा ॥ १-८० ॥

पारापत शब्दे रस्थस्यात एद् वा भ्-ति ॥ पारेवओ पारावओ ॥

अर्थ—पारापत शब्द में 'र' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-पारापत=पारेवओ और पारावओ॥ *पारापतः* सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारेवओ और पारावओ होते हैं। इनमें सूत्र सख्या-१-८० से 'रा' के 'आ' को विकल्प से 'ए', १-२३१ से 'प' का 'व', १-१७७ से 'त्' का

आर्या–संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अज्जू होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-७७ से 'र्या' के 'आ' का 'ऊ', २-२४ से 'र्य' का 'ज' २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज' १-८४ से आदि 'आ' का 'अ' ३-११ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर अर्थात् 'ऊ' का 'ऊ' ही रहकर अज्जू रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्या संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अज्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२४ से 'र्य' का 'ज' २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज' १-८४ से आदि 'आ' का 'अ' सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के अनुसार स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में आकारान्त शब्द में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अज्जा रूप सिद्ध हो जाता है॥ ७७॥

एद् ग्राह्ये ॥ १-७८ ॥

ग्राह्य शब्दे आदेरात् एद् भवति ॥ गेज्झं।

अर्थ–ग्राह्य शब्द में आदि 'आ' का 'ए' होता है। जैसे–ग्राह्यम्=गेज्झं।

ग्राह्यम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गेज्झं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप १-७८ से आदि 'आ' का 'ए' २-२६ से 'ह्य' का 'झ' २-८९ से प्राप्त 'झ' का द्वित्व 'झ्झ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर गेज्झं रूप सिद्ध हो जाता है॥ ७८॥

द्वारे वा ॥ १-७९ ॥

द्वार शब्दे आत एद् वा भवति ॥ देरं। पक्षे। दुआरं दार वार ॥ कथं नेरइओ नारइओ। नैरयिक नारयिक शब्दयो र्भविष्यति ॥ आर्षे अन्यत्रापि। पच्छेकम्मं। असहेज्ज देवासुरी ॥

अर्थ–द्वार शब्द में 'आ' का 'ए' विकल्प से होता है। जैसे–द्वारम्=देरं। पक्ष में–दुआरं दारं और वारं जानना। नरइओ और नारइओ कैसे बने हैं? उत्तर 'नैरयिक' ऐसे मूल संस्कृत शब्द से नरइओ बनता है और 'नारयिक' ऐसे मूल संस्कृत शब्द से 'नारइओ' बनता है। आर्ष प्राकृत में अन्य शब्दों में भी 'आ' का 'ए' देखा जाता है। जैसे—पश्चात् कर्म=पच्छेकम्मं। यहां पर 'चा' के 'आ' का 'ए' हुआ है। इसी प्रकार से असहाय्य देवासुरी=असहेज्ज देवासुरी। यहां पर 'हा' के 'आ' का 'ए' देखा जाता है।

द्वारम्–संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप देरं, दुआरं दारं और वारं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या २-७७ से 'व्' का लोप १-७९ से 'आ' का 'ए' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर

देरं रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप मे-२-११२ से विकल्प से 'द्' में उ' का 'आगम'; १-१७७ से 'व्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुआरं* सिद्ध हो जाता है। तृतीय रूप मे-१-१७७ से 'व्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दारं* सिद्ध हो जाता है। चतुर्थ रूप में-२-७७ से 'द्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंमक लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*वारं*' सिद्ध हो जाता है।

नैरयिकः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नेरइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' १-१७७ से 'य्' और 'क' का लोप, ३-२१ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नेरइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नारकिकः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नारइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'क' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नारइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्चात कर्म सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पच्छे कम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'श्च' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्' १-७९ की वृत्ति से 'आ' का 'ए', १-११ से 'त्' का लोप, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपु सक लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पच्छे कम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है।

असहाय्य संस्कृत विशेपण है। इसका प्राकृत रूप असहेज्ज होता है। इसमें सूत्र सख्या—१-७९ की वृति से 'आ' का 'ए', २-२४ से 'य्य' का 'ज' २-८९ से प्राप्त ज' का द्वित्व 'ज्ज', यों *असहेज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवासुरी का सस्कृत और प्राकृत रूप सामान ही होता है ॥ ७९ ॥

पारापते रो वा ॥ १-८० ॥

पारापत शब्दे रस्थस्यात एद् वा भवति ॥ पारेवओ पारावओ ॥

अर्थ—पारापत शब्द में 'र' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे–पारापत =पारेवओ और पारावओ ॥ *पारापतः* संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारेवओ और पारावओ होते हैं। इनमें सूत्र सख्या-१-८० से 'रा' के 'आ' को विकल्प से 'ए', १-२३१ से 'प' का 'व', १-१७७ से 'त्' का

लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से पारेवओ और पारावओ रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ८० ॥

मात्रटि वा ॥ १-८१ ॥

मात्रट्प्रत्यये आत एद् वा भवति ॥ एत्तिअमेत्तं । एत्तिअमत्तं ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्मात्रशब्दे पि । भोअण-मेत्तं ॥

अर्थ—मात्रट् प्रत्यय के 'मा' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-एतावत्-मात्रं =एत्तिअमेत्तं और एत्तिअमत्तं ॥ बहुलाधिकार से कभी कभी 'मात्र' शब्द में भी 'आ' का 'ए' देखा जाता है। जैसे-भोजन-मात्रम् भोअण-मेत्तं ॥

एतावत्-मात्रम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअमेत्तं और एत्तिअमत्तं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२ १५७ में एतावत् के स्थान पर 'एत्तिअ' आदेश २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त', १-८१ से 'मा' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए'; द्वितीय रूप में-१-८४ से 'मा' के 'आ' का 'अ', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर एत्तिअमेत्तं और एत्तिअमत्तं दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

भोजन-मात्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भोअण-मेत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'ज्' का लोप १-२२८ से 'न' का 'ण' १-८१ की वृत्ति से 'आ' का 'ए' २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त', और ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर भोअण-मेत्तं रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥

उदोद्वार्द्रे ॥ १-८२ ॥

आर्द्र शब्दे आदेरात उद् ओच्च वा भवतः ॥ उल्लं । ओल्लं ॥ पक्षे । अल्लं । अद्दं ॥ बाह-सलिल-पवहेण उल्लेइ ॥

अर्थ-आर्द्र शब्द में रहे हुए 'आ' का 'उ' और 'ओ' विकल्प से होते हैं। जैसे-आर्द्रम्=उल्लं ओल्लं पक्ष में अल्लं और अद्दं ॥ बाष्प-सलिल-प्रवाहेण आर्द्रयति=बाह-सलिल-पवहेण उल्लेइ॥ अर्थात् अश्रुरूप जल के प्रवाह से गीला करता है।

आर्द्रम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप उल्लं ओल्लं, अल्लं और अद्दं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८२ से आदि 'आ' का विकल्पसे 'उ' और 'ओ' २-७९ से ऊर्ध्व 'र्' का लोप २-७७ से 'द्' का लोप १ २५४ से शेष 'र' का 'ल' २-८९ से प्राप्त 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा के एक

वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *उल्लं* और *ओल्लं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। तृतीय रूप में १-८४ से 'आ' का 'अ', और शेप साधनिका ऊपर के समान ही जानना। यो *अल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्द्रम्ः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अद्दं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ', २-७६ से दोनों 'र्' का लोप, २-८६ शेष 'द' का द्वित्व 'द्द'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' अनुस्वार होकर *द्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाष्पः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'बाह' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७० से 'ष्प' का 'ह' होकर *बाह* रूप सिद्ध हो जाता है।

सलिलः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *सलिल* ही होता है।

प्रवाहेन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पवहेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७६ से 'र्' का लोप, १-६८ से 'आ' का 'अ'; ३-६ से तृतीया विभक्ति के पुल्लिंग में एक वचन के प्रत्यय 'टा' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति, और ३-१४ से 'ण' प्रत्यय के पूव में रहे हुए 'ह' के 'अ' का 'ए' होकर *पवहेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्द्रयतिः संस्कृत अकर्मक क्रिया पद है, इसका प्राकृत रूप 'उल्लेइ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८२ से 'आ' का 'उ'; २-७७ से 'द्' का लोप, १-२५४ से 'र' का 'ल', २-८६ से प्राप्त 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', १-१७७ से 'य्' का लोप, ३-१५८ से शेष विकरण 'अ' का 'ए', ३-१३६ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *उल्लेइ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥८२॥

ओदाल्यां पंक्तौ ॥ १-८३ ॥

आली शब्दे पङ्क्ति वाचिनि आत ओत्वं भवति ॥ ओली ॥ पङ्क्ताविति किम् । आली सखी ॥

अर्थः-'आली' शब्द का अर्थ जब पंक्ति हो, तो उस समय में आली के 'आ' का 'ओ' होता है। जैसे आली=(पक्ति-अर्थ में-) ओली। 'पंक्ति' ऐसा उल्लेख क्यों किया? उत्तर-जब 'आली' शब्द का अर्थ पक्तिवाचक नहीं होकर 'सखी' वाचक होता है, तब उसमें 'आ' का 'ओ' नहीं होता है। जैसे-आली=(सखी अर्थ में) आली ॥

आली संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'ओली' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८३ से 'आ' का 'ओ' होकर *ओली* रूप सिद्ध हो जाता है।

माली संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *माली* ही होता है।

ह्रस्वः संयोगे ॥ १-८४ ॥

दीर्घस्य यथादर्शनं संयोगे परे ह्रस्वो भवति ॥ आत् । आम्रम् । अम्बं ॥ ताम्रम् । तम्बं ॥ विरहाग्निः । विरहग्गी ॥ आस्यम् । अस्सं ॥ ईत् । मुनीन्द्रः । मुणिन्दो ॥ तीर्थम् । तित्थं ॥ ऊत् । गुरूल्लापा गुरुल्लावा ॥ चूर्णः । चुण्णो ॥ एत् । नरेन्द्रः । नरिन्दो ॥ म्लेच्छः । मिलिच्छो ॥ दिट्ठिक्क- थण-वट्टं ॥ ओत् अधरोष्ठः । अहरुट्ठं ॥ नीलोत्पलम् । नीलुप्पलं ॥ संयोग इतिकिम् आयासं । ईसरो । ऊसवो ॥

अर्थ —दीर्घ स्वर के आगे यदि संयुक्त अक्षर हो तो उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाया करता है। 'आ' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों का उदाहरण जिनमें कि 'आ' का 'अ' हुआ है। उदाहरण इस प्रकार है— आम्रम् = अम्बं ॥ ताम्रम् = तम्बं ॥ विरहाग्निः = विरहग्गी ॥ आस्यम् = अस्सं ॥ इत्यादि ॥

'ई' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण जिनमें कि 'ई' की 'इ' हुई है। जैसे कि-मुनीन्द्र = मुणिन्दो ॥ तीर्थम् = तित्थं ॥ इत्यादि ॥ "ऊ" स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण जिनमें कि ऊ का 'उ' हुआ है। जैसे कि-गुरूल्लापा = गुरुल्लावा ॥ चूर्ण = चुण्णो ॥ इत्यादि। 'ए' स्वरके आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण जिनमें कि 'ए' का 'इ' हुआ है। जैसे कि नरेन्द्र = नरिन्दो ॥ म्लेच्छ = मिलिच्छो ॥ दृष्टैक स्तन = वृत्तम् दिट्ठिक्क-थण-वट्टं ॥

'ओ' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण जिनमें कि 'ओ' का 'उ' हुआ है। जैसे कि—अधरोष्ठ = अहरुट्ठं ॥ नीलोत्पलम् = नीलुप्पलं ॥

संयोग अर्थात् 'संयुक्त अक्षर' ऐसा क्यों कहा गया है ? उत्तर-यदि दीर्घ स्वर के आगे संयुक्त अक्षर नहीं होगा तो उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर नहीं होगा। जैसे-आकाशम् = आयासं । ईश्वर = ईसरो। और उत्सव = ऊसवो। वृत्ति में यथा दर्शनं शब्द लिखा हुआ है जिसका तात्पर्य यह है कि यदि शब्दों में दीर्घ का ह्रस्व किया हुआ देखा जावे तो ह्रस्व कर देना और यदि दीर्घ का ह्रस्व नहीं किया हुआ देखा जावे तो ह्रस्व नहीं करना जैसे-ईश्वर = ईसरो और उत्सव = ऊसवो। इनमें 'ई' और 'ऊ' दीर्घ है, किन्तु इन्हें ह्रस्व नहीं किया गया है।

आम्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अम्बं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'आ' का 'अ' २-५६ से 'म्र' का 'म्ब' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अम्बं रूप सिद्ध हो जाता है।

ताम्रम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तम्ब्र होता है । इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ता' के 'आ' का 'अ', २-५६ से 'म्र' का 'म्ब्र', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तम्बं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विरहाग्नि' संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विरहग्गी होता है। इसमे सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ,' २-७८ से 'न' का लोप, २-८६ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' और ३-१६ से प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर दीर्घ होकर *विरहग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

आस्यम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अस्स होता है। इसमे सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ', २-७८ से 'य्' का लोप, २-८६ से 'स' का द्वित्व 'स्स', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अस्सं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुनीन्द्रः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मुणिन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ई' की 'इ', १-२२८ से 'न' का 'ण', २-७९ से 'र्' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुणिन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तीर्थम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तित्थं होता है । इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ई' की 'इ', २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'थ' का द्वित्व 'थ्थ', २-९० से प्राप्त 'थ्' का 'त्', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तित्थं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुरूल्लापाः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गुरूल्लावा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ऊ' का 'उ', १-२३१ से 'प' का 'व', ३-४ से प्रथमा के बहुवचन में पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय का लोप, ३-१२ से लुप्त 'जस्' के पूर्व में रहे हुए 'अ' का 'आ' होकर *गुरूल्लावा* रूप सिद्ध हो जाता है।

चूर्णः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ऊ' का 'उ', २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ण' का 'ण्ण', ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *चुण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नरेन्द्रः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नरिन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ए' की 'इ',२-७९ से 'र्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नरिन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लेच्छः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मिलिच्छो होता है। इस में सूत्र-संख्या-२-१०६ से 'ल' के पूर्व में याने 'म्' में 'इ' की प्राप्ति, १-८४ से 'ए' की 'इ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन

में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिलिच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दृष्टैक (दृष्ट+एक) संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठिक्क होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ' २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' १-८४ से 'ए' की 'इ' २-९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क' १-१० से 'ठ' में रहे हुए 'अ' का लोप और 'ठ्' में 'इ' की संधि होकर *दिट्ठिक्क* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तन संस्कृत शब्द है, इसका प्राकृत रूप थण होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-४५ से 'स्त' का 'थ' और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर '*थण*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वट्टं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ' २-२९ से 'त्त' का 'ट', २-८९ से शेष 'ट' का द्वित्व 'ट्ट' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वट्टं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अधरोष्ठ संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहरुट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से 'ध' का 'ह' १-८४ से 'ओ' का 'उ' २-३४ 'ष्ठ' का 'ठ' २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*अहरुट्ठं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

नीलोत्पलम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीलुप्पलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ओ' का 'उ' २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नीलुप्पलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकाशम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आयासं होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'क्' का लोप १-१८० से शेष 'अ' का 'य' १-२६० से 'श' का 'स' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*आयासं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

ईश्वर संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ईसरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ईसरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्सव संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ऊसवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११४ से 'उ' का 'ऊ' २-७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ऊसवो रूप सिद्ध होता है ॥ ८४ ॥

इत एद्वा ॥ १-८५ ॥

संयोग इति वर्तते। आदेरिकारस्य संयोगे परे एकारो वा भवति ॥ पेण्डं पिण्डं। धम्मेल्लं धम्मिल्लं। सेन्दूरं सिन्दूरं। वेण्हू विण्हू। पेट्ठं पिट्ठं। बेल्लं बिल्लं॥ क्वचिन्न भवति। चिन्ता ॥

अर्थः-'सयोग' शब्द ऊपर के १-८४ सूत्रसे ग्रहण कर लिया जाना चाहिये। संयोग का तात्पर्य 'सयुक्त अक्षर' से है। शब्द में रही हुई आदि ह्रस्व 'इ' के आगे यदि सयुक्त अक्षर आजाय, तो उस आदि 'इ' का 'ए' विकल्प से हुआ करता है। जैसे-पिण्डम्=पेण्ड और पिण्ड। धम्मिल्लम्=धम्मेल्ल और धम्मिल्ल। सिन्दूरम्=सेन्दूर और सिन्दूरं ॥ विष्णु=वेण्हू और विण्हू॥ पिष्टम्=पेट्ठं और पिट्ठं॥ बिल्वम्=वेल्ल और विल्लं॥ कहीं कहीं पर ह्रस्व 'इ' के आगे संयुक्त अक्षर होने पर भी उस ह्रस्व 'इ' का 'ए' नहीं होता है। जैसे-चिन्ता=चिन्ता॥ यहाँ पर 'इ' का 'ए' नहीं हुआ है।

पिण्डम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेण्ड और पिण्ड होते है। इन में सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए', ३-२५ से प्रथमा के एव वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रमसे *पेण्डं* और *पिण्डं* रूप सिद्ध हो जाते है।

धम्मिल्लम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप धम्मेल्लं और धम्मिल्लं होते है। इन में सूत्र-सख्य-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *धम्मेल्लं* और *धम्मिल्लम्* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सिन्दूरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सेन्दूरं और सिन्दूरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रमसे *सेन्दूरं* और *सिन्दूरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विष्णुः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वेण्हू और विण्हू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; २-७५ से 'ष्ण' का 'ण्ह', और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ स्वर याने ह्रस्व 'उ' का 'दीर्घ ऊ' होकर क्रम से *वेण्हू* और *विण्हू* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पिष्टम् सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेट्ठ और पिट्ठं होते हैं इनमें सूत्र संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का

'द्' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पेट्ठं* और *पिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बिल्वम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बेल्लं और बिल्लं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए' १-१७७ से 'व' का लोप २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *बेल्लं* और *बिल्लं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

धिम्मा संस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *धिम्मा* ही होता है ॥८५॥

किंशुके वा ॥ १-८६ ॥

किंशुक शब्दे आदेरित एकारो वा भवति ॥ केसुअं किंसुअं ॥

अर्थ–किंशुक शब्द में आदि 'इ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-किंशुकम् = केसुअं और किंसुअं ॥ केसुअं और किंसुअं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

मिरायाम् ॥ १-८७ ॥

मिरा शब्दे इत एकारो भवति ॥ मेरा ॥

अर्थ–मिरा शब्द में रही हुई 'इ' का 'ए' होता है। जैसे मिरा = मेरा ॥

मिरा देशज शब्द है। इसका प्राकृत रूप मेरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८७ से 'इ' का 'ए' होकर *मेरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुन्मूषिक-हरिद्रा-बिभीतकेष्वत् ॥ १-८८ ॥

एषु आदेरितोकारो भवति ॥ पहो । पुहई । पुढवी । पडंसुआ । मूसओ । हलद्दी । हलद्दा । बहेडओ ॥ पन्थं किर देसित्तेति तु पथि शब्द समानार्थस्य पन्थ शब्दस्य भविष्यति ॥ हरिद्रायां विकल्प इत्यन्ये । हलिद्दी हलिद्दा ॥

अर्थ–पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुत्-मूषिक-हरिद्रा और बिभीतक; इन शब्दों में रही हुई 'आदि इ' का 'अ' होता है। जैसे-पथिन् (पन्था) = पहो पृथिवी = पुहई और पुढवी। प्रतिश्रुत = पडंसुआ ॥ मूषिक = मूसओ ॥ हरिद्रा = हलद्दी और हलद्दा ॥ बिभीतक = बहेडओ ॥ पन्थ शब्द का जो उल्लेख किया गया है, वह पथिन् शब्द का नहीं बना हुआ है। किन्तु 'मार्ग-वाचक' और यही अर्थ रखने वाले 'पन्थ' शब्द से बना हुआ है। ऐसा जानना। कोई २ आचार्य 'हरिद्रा' शब्द में रही हुई 'इ' का 'अ' विकल्प रूप से मानते हैं। जैसे-हरिद्रा = हलिद्दी और हलद्दा ये दो रूप उपरोक्त हलिद्दी और हलद्दा से

अधिक जानना। इन चारो रूपो में से दो रूपों मे तो 'इ' है और दो रूपो में 'अ' है। यो वैकल्पिक-व्यवस्था जानना।

पन्था सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पहो होता है। इसका मूल शब्द पथिन् है। इसमे सूत्र संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ', १-१८७ से 'थ' का 'ह', १-११ से 'न्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथिवी सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुहई होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ', १-८८ से आदि 'इ' का 'अ', १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-१७७ से 'व्' का लोप, और ३-१६ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ याने 'ई' का 'ई' होकर पुहई रूप सिद्ध होता है।

पृथिवी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुढवी होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-२१६ से 'थ' का 'ढ', १-८८ से आदि 'इ' का 'अ', और ३-१६ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ-याने 'ई' का 'ई' ही रह कर *पुढवी* रूप सिद्ध हो जाता है। *पडंसुआ* रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-२६ में की गई है।

मूषिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मूसओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ', १-२६० से 'ष' का 'स';१-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मूसओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हारिद्रा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलदी और हलद्दा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ'; १-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल' २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'द' का द्वित्व 'द्द' ३-३४ से 'आ' की विकल्प से 'ई'; और ३-२८ से प्रथमा के एक वचन मे स्त्री लिंग में *हलद्दी* रुप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में हे०२-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *हलद्दा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिभीतकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बहेडओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८८ से आदि 'इ' का 'अ', १-१८७ से 'भ' का 'ह', १-१०५ से 'ई' का 'ए'; १-२०६ से 'त' का 'ड', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *बहेडओ* रुप सिद्ध हो जाता है।

हरिद्रा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलिद्दी और हलिद्दा होते हैं। इनमे सूत्र-संख्या-१-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल', २-७६ से द्र के 'र्' का लोप; २-८६ से 'द' का द्वित्व 'द्द'; और ३-३४ से 'आ' की विकल्प से 'ई' और ३-२८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में *हलिद्दी* रूप सिद्ध हो जाता

९। द्वितीय रूप में ३-७-४ १८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर इसका रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिलेङ्गुदे वा ॥ १-८९ ॥

अनयोरादेरितोद् वा भवति ॥ सढिलं । पसढिलं । सिढिलं । पसिढिलं ॥ अङ्गुअं इङ्गुअं ॥ निर्मित शब्दे तु वा आत्वं न विधेयम् । निर्मात निर्मित शब्दाभ्यामेव सिद्धेः ॥

अर्थ—शिथिल और इंगुद शब्दों में आदि 'इ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे-शिथिलम् = सढिलं और सिढिलं। प्रशिथिलम् = पसढिलं और पसिढिलं। इंगुदम् = अंगुअं और इंगुअं ॥ निर्मित शब्द में तो विकल्प रूप से 'इ' का 'आ' करने की आवश्यकता नहीं है। निर्मात संस्कृत शब्द से निम्माओ होगा; और निर्मित शब्द से निम्मिओ होगा। अतः इसमें 'आदि 'इ' का 'अ' ऐसे सूत्र की आवश्यकता नहीं है।

शिथिलम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप सढिलं और सिढिलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८९ से आदि 'इ' का विकल्प से 'अ' १-२६० से 'श' का 'स', १-२१५ से 'थ' का 'ढ' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *सढिलं* और *सिढिलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रशिथिलम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पसढिलं और पसिढिलं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-८९ से आदि 'इ' का विकल्प से 'अ' १-२६० से 'श' का 'स', १-२१५ से 'थ' का 'ढ', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पसढिलं* और *पसिढिलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इंगुदम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप अंगुअं और इंगुअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१-८९ से 'इ' का विकल्प से 'अ' १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अंगुअं* और *इंगुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तित्तिरौ रः ॥ १-९० ॥

तित्तिरिशब्दे रस्येतोद् भवति ॥ तित्तिरो ॥

अर्थ—तित्तिरि शब्द में 'र' में रही हुई 'इ' का 'अ' होता है। जैसे-तित्तिरिः = तित्तिरो ॥

तित्तिरिः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तित्तिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-९० से 'रि' में रही हुई 'इ' का 'अ', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *तित्तिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इतौ तो वाक्यादौ ॥ १-९१ ॥

वाक्यादिभूते इति शब्दे यस्तस्तत्संबन्धिन इकारस्य अकारो भवति ॥ इअ जम्पिअावसाणे। इअ विअसिअ-कुसुमसरो ॥ वाक्यादाविति किम्। पिओत्ति। पुरिसो त्ति ॥

अर्थः—यदि वाक्य के आदि मे 'इति' शब्द हो तो, 'ति' में रही हुई 'इ' का 'अ' होता है। जैसे इति कथितावासाने=इअ जम्पिअावसाणे। इति विकसित-कुसुमशर =इअ विअसिअ-कुसुम-सरो ॥ मूल-सूत्र में 'वाक्य के आदि में' ऐसा क्यो लिखा गया है? उत्तर-यदि यह 'इति' अव्यय वाक्य की आदि में नहीं होकर वाक्य में अन्य स्थान पर हो तो, उस अवस्था में 'ति' की 'इ' का 'अ' नहीं होता है। जैसे-प्रिय इति=पिओत्ति। पुरुष इति=पुरिसोत्ति ॥ 'इअ' की सिद्धि सूत्र-संख्या-१-४२ में की गई है।

कथितावसाने संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप जम्पिआवसाणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२ से 'कथ्' धातु के स्थान पर 'जम्प' का आदेश, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-११ सप्तमी विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्पिआवसाणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकसित-कुसुम-शरः संस्कृत शब्द है। इनको प्राकृत रूप विअसिअ-कुसुम-सरो होते हैं। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ 'विकसित' के 'क' और 'त्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *विआसिस-कुसुम-सरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिओत्ति और पुरिसोत्ति की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

ईर्जिह्वा-सिंह-त्रिंशद्विंशतौ त्या ॥ १-९२ ॥

जिह्वादिषु इकारस्य तिशब्देन सह ईर्भवति ॥ जीहा। सीहो। तीसा। वीसा ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति। सिंह-दत्तो। सिंह-राओ ॥

अर्थः—जिह्वा सिंह और त्रिंशत् शब्द में रही हुई 'इ' की 'ई' होती है। तथा विंशति शब्द मे 'ति' के साथ याने 'ति' का लोप होकर के 'इ' की 'ई' होती है। जैसे-जिह्वा=जीहा। सिंह =सीहो। त्रिंशत्=तीसा। विंशतिः=वीसा ॥ बहुलाधिकार से कहीं कहीं पर सिंह' आदि शब्दों में 'इ' की 'ई' नहीं भी होती है। जैसे-सिंह-दत्त =सिंह-दत्तो। सिंह-राज =सिंह-राओ ॥ इत्यादि ॥

निद्रा संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-९३ से 'इ' को 'ई', १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-३१ से स्त्रीलिंग आकारान्त में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नीहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सीहा शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या ७-९ में की गई है। तीसा और बीसा शब्दों की सिद्धि सूत्र संख्या १-२८ में की गई है।

सिंह-दत्त संस्कृत विशेषण है, इसका प्राकृत रूप सिंह-दत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय आकर *सिंह-दत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिंह-राज संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिंह राओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *सिंह-राओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ९२ ॥

लुकि निरः ॥ १ ९३ ॥

निर् उपसर्गस्य रफलोपे सति इत ईकारो भवति ॥ नीसरइ । नीसासो ॥ लुकीति किम् । निण्णओ । निस्सहाइँ अङ्गाइं ॥

अर्थ: जिस शब्द में 'निर्' उपसर्ग हो और उस 'निर्' के 'र्' का यानि रेफ का लोप होने पर 'नि' में रही हुई 'इ' की दीर्घ 'ई' हो जाती है। जैसे-निस्सरति=नीसरइ। निश्वास=नीसासो॥ लुक् ऐसा क्यों कहा गया है। उत्तर जिन शब्दों में इस सूत्र का उपयोग नहीं किया जायगा; वहाँ पर 'नि' में रही हुई 'इ' की दीर्घ 'ई' नहीं होकर 'नि' के पर-वर्ती व्यञ्जन का अन्य सूत्रानुसार द्वित्व हो जायगा। जैसे निर्णय=निण्णओ। निस्सहानि अङ्गानि=निस्सहाइँ अङ्गाइं। इन उदाहरणों में व्यञ्जन का द्वित्व हो गया है।

निस्सरति संस्कृत क्रिया है। इसका प्राकृत रूप नीसरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३ से 'निर्' के 'र्' का लोप १-९३ से बाकी 'इ' की दीर्घ 'ई' ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' होकर *नीसरइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्वास संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप नीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३ से 'निर्' के 'र्' का लोप; १-९३ से 'इ' की दीर्घ ई; १-१७७ से 'व' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्णयः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'निएणओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'ण' का द्वित्व 'एण', १-१७७ से 'य्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय लगकर *निण्णओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्सहानि सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निस्सहाइँ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'स' का द्वित्व 'स्स', ३-२६ से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में नपुंसकलिंग मे 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इँ' प्रत्यय की प्राप्ति, और इसी सूत्र से प्रत्यय के पूर्व स्वर को दीर्घता होकर '*निस्सहाइँ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अंगाणि सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अङ्गाइं होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-२६ से प्रथमा और द्वितीया के बहु वचन मे नपुंसक लिंग में 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययो के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति, और इसी सूत्र से प्रत्यय के पूर्व स्वर को दीर्घता होकर '*अंगाइ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विन्योरुत् ॥ १-९४ ॥

द्विशब्दे नावुपसर्गे च इत उद् भवति ॥ द्वि । दुमत्तो । दुआई । दुविहो । दुरेहो । दु-वयणं ॥ बहुलाधिकारात् क्वचित् विकल्पः ॥ दु-उणो । बि उणो ॥ दुइओ । बिइओ ॥ क्वचिन्न भवति । द्विजः । दिओ ॥ द्विरदः दिरओ ॥ क्वचिद् ओत्वमपि । दो वयणं ॥ नि । णुमज्जइ । णुमन्नो ॥ क्वचिन्न भवति । निवडइ ॥

अर्थः—'द्वि' शब्द मे और 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' होता है। जैसे—'द्वि' के उदाहरण—द्विमात्र =दुमत्तो। द्विजाति =दुआई। द्विविध =दुविहो। द्विरेफ =दुरेहो। द्विवचनम्=दु–वयण॥ 'बहुलम्' के अधिकार से कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द की 'इ' का उ' विकल्प से भी होता है। जैसे कि—द्विगुण =दु–उणो और बि–उणो॥ द्वितीय =दुइओ और बिइओ॥ कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द में रही हुई 'इ' में किसी भी प्रकार का कोई रूपान्तर नहीं होता है, जैसे कि–द्विज =दिओ। द्विरद =दिरओ॥ कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द में रही हुई 'इ' का 'ओ' भी होता है। जैसे कि–द्वि–वचनम्=दो वयण। 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं –निमज्जति=णुमज्जइ। निमग्न = णुमन्नो। कहीं कहीं पर 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' नहीं होता है। जैसे–निपतति=निवडइ॥

द्विमात्रः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुमत्तो होता है। इसमे सूत्र सख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप, १-९४ से 'इ' का 'उ', १-८४ से 'आ' का 'अ', २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'त' का द्वित्व 'त्त', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर **दुमत्तो** रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विजाति संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुआई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७७ से 'द्' और 'ज्' एवं 'त्' का लोप' १-९४ से 'इ' का 'उ' ३ १९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *दुआई* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विविध संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुविहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' का लोप' १-९४ से आदि 'इ' का 'उ' १ १८७ से 'ध' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दुविहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विरेफ संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुरेहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' का लोप' १ ९४ से 'इ' का 'उ' १ २३६ से 'फ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दुरेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विवचन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुवयणं होता है, इसमें सूत्र संख्या १ १-७७ से आदि 'व्' और 'च्' का लोप' १-९४ से 'इ' का 'उ' १ १८० से 'च' के शेष 'अ' का 'य', १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुवयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विगुण संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दु-उणो और बि-उणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' का लोप' १-९४ से 'इ' का 'उ' १ १७७ से 'ग्' का लोप' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दु-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ १७७ से 'द्' और 'ग्' का लोप' 'व' का 'ब' समान श्रुति से' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *बि-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दुइओ और बिइओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'व्' 'त्' और 'य्' का लोप' १-९४ से आदि 'इ' का विकल्प से 'उ' १ १०१ से द्वितीय 'ई' की 'इ' और ३-२ से प्रथमा के वचन से पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय का 'ओ' होकर *दुइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*बिइओ*' की सिद्धि सूत्र संख्या १-५ में करदी गई है।

द्विज संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' और 'ज्' का लोप' और ३ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विरद संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिरओ' होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' और द्वितीय 'द्' का लोप' और ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दिरओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विवचनम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दो वयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'आदि व्' और 'च्' का लोप, १-९४ की वृत्ति से 'इ' का 'ओ', १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'दो-वयणं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

निमज्जति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप णुमज्जइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण', १-९४ से आदि 'इ' का 'उ', और ३-१३९ से वर्तमान-काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *णुमज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निमग्नः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप णुमन्नो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से न्' का 'ण्', १-९४ से 'इ' का 'उ', २-७७ से 'ग्' का लोप,२ ८९ से 'न्' का द्वित्व'न्न ,और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णुमन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निपतति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप निवडइ होता है। इसमें सूत्र-सख्या-१-२३१ से 'प' का 'व' ४-२१९ से पत् धातु के 'त' का 'ड्', और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *निवडइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवासीक्षौ ॥ १-९५ ॥

अनयोरादेरित उत्वं भवति। पावासुओ। उच्छू॥

अर्थ:—प्रवासी और इक्षु शब्दो में आदि 'इ' का 'उ' होता है। जैसे-प्रवासिक=पावासुओ। इक्षु=उच्छू॥

प्रवासिक ' संस्कृत विशेषण शब्द है। इसका प्राकृत रूप पावासुओ होता है। इसमें सूत्र-सख्या-२-७९ से 'र्' का लोप, १-४४ से 'प के 'अ' का 'आ'; १-९५ से 'इ' का 'उ'; १-१७७ से 'क' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *पावासुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इक्षु' संस्कृत शब्द है इसका प्राकृत रूप उच्छू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९५ से 'इ' का 'उ', २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ का 'च्', और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर उच्छू रूप सिद्ध हो जाता है।

सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *दोहा-इअं* और *दुहा-इअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विधा-गतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दिहा-गयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व' और 'त्' का लोप, १-१८७ से 'ध' का 'ह', १-१८० से 'त्' के शेष 'अ' का 'य', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग मे 'सि' के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिहा-गयं*, रूप सिद्ध हो जाता है।

'दुहा' की सिद्धि इसी सूत्र मे ऊपर की गई है।
'वि' की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

सः संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप सो होता है। इसमे सूत्र-संख्या ३-८६ से *'सो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुर-वधू-सार्थः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुर-वहू-सत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ध' का 'ह', १-८४ से 'सा' के 'आ' को 'अ', २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'थ' का द्वित्व 'थ्थ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्', ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुर-वहू-सत्थो* रूप सिद्ध हो जाता हैं।

वा निर्झरे ना ॥ १-९८ ॥

निर्झर शब्दे नकारेण सह इत ओकारो वा भवति ॥ ओज्झरो निज्झरो ॥

अर्थः—निर्झर शब्द में रही हुई 'नि' याने 'न्' और 'इ' दोनों के स्थान पर 'ओ' का विकल्प से आदेश हुआ करता है। जैसे-निर्झर =ओज्झरो और निज्झरो। विकल्प से दोनों रूप जानना।

निर्झरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ओज्झरो और निज्झरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-९८ से 'नि' का विकल्प से 'ओ', २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'झ' का द्वित्व 'झ्झ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *ओज्झरो* और *निज्झरो* रूप सिद्ध हो जाते है। ॥ ९८ ॥

हरीतक्यामीतोत् ॥ १-९९ ॥

हरीतकीशब्दे आदेरीकारस्य अद् भवति ॥ हरडई ॥

अर्थः—'हरीतकी' शब्द में 'आदि 'ई' का 'अ' होता है। जैसे-हरीतकी=हरडई॥

हरीतकी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप हरडई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९९ से आदि 'ई' का 'अ'; १-२०६ से 'त' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप होकर हरडई रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्कश्मीरे ॥ १-१०० ॥

कश्मीर शब्दे ईत आद् भवति ॥ कम्हारा ॥

अर्थ—कश्मीर शब्द में रही हुई 'ई' का 'आ' होता है। जैसे-कश्मीरा = कम्हारा ॥

कश्मीरा संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कम्हारा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७४ से श्म का 'म्ह'; १-१०० से 'ई' का 'आ'; ३-४ से प्रथमा के बहु वचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं लोप; ३-१२ से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर कम्हारा रूप सिद्ध हो जाता है।

पानीयादिष्वित् ॥ १-१०१ ॥

पानीयादिषु शब्देषु ईत इद् भवति ॥ पाणिअं। अलिअं। जिअइ। जिअउ। विलिअं। करिसो। सिरिसो। दुइअं। तइअं। गहिरं। उवणिअं। आणिअं। पलिविअं। ओसिअन्तं। पसिअ। गहिअं। वम्मिओ। तयाणिं॥ पानीय। अलीक॥ जीवति। जीवतु। व्रीडित। करीष। शिरीष। द्वितीय। तृतीय। गभीर। उपनीत। आनीत। प्रदीपित। अवसीदत्। प्रसीद। गृहीत। वल्मीक। तदानीम् इति पानीयादयः॥ बहुलाधिकारादेषु क्वचिन्नित्यं क्वचिद् विकल्पः। तेन। पाणीअं। अलीअं। जीअइ। करीसो। उवणीओ। इत्यादि। सिद्धम्॥

अर्थ—पानीय आदि शब्दों में रही हुई 'ई' की 'इ' होती है। जैसे-पानीयम् = पाणिअं। अलीकम् = अलिअं। जीवति = जिअइ। जीवतु = जिअउ। व्रीडितम् = विलिअं। करीष = करिसो। शिरीष = सिरिसो। द्वितीयम् = दुइअं। तृतीयम् = तइअं। गभीरम् = गहिरम्। उपनीतम् = उवणिअं। आनीतम् = आणिअं। प्रदीपितम् = पलिविअं। अवसीदतम् = ओसिअन्तं। प्रसीद = पसिअ। गृहीतम् गहिअं। वल्मीक = वम्मिओ। तदानीम् = तयाणिं। इस प्रकार ये सब पानीय आदि जानना। बहुल का अधिकार होने से इन शब्दों में कहीं कहीं पर तो 'ई' की 'इ' नित्य होती है, और कहीं कहीं पर 'ई' की 'इ' विकल्प से हुआ करती है। इस कारण से पानीयम् = पाणीअं और पाणिअं। अलीकम् = अलीअं और अलिअं। जीवति = जीअइ और जीअइ; करीष = करीसो और करिसो। उपनीत = उवणीओ और उवणिओ। इत्यादि स्वरूप ज्ञात होते हैं।

पानीयम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पाणिअं और पाणीअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' का ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा

के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पाणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में-१-२ के अधिकार से सूत्र सख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यो की त्यों ही रह कर *पाणीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अलीकम् सस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप अलिअं और अलीअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'क्' का लोप, १-१०१ से 'दीर्घ ई' का ह्रस्व 'इ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-२ के अधिकार से सूत्र-संख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यो की त्यो ही रह कर *अलीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीवति सस्कृत अकर्मक क्रिया है; इसके प्राकृत रूप जिअइ और जीअइ होते है। मूल धातु 'जीव्' है। इसमें सूत्र-सख्या ४-२३९ से 'व्' में 'अ' की प्राप्ति, १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-१७७ से 'व्' का लोप, ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिअइ* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-२ के अधिकार से सूत्र-संख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यो की त्यों ही रहकर *जीअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीवतु सस्कृत अकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप 'जिअउ' होता है। इसमें 'जिअ' तक सिद्धि ऊपर के अनुसार जानना और ३-१७३ से आज्ञार्थ मे प्रथम पुरुष के एक वचन में 'तु' प्रत्यय के स्थान पर 'उ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिअउ* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्रीडितम् सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विलिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२ ७९ से 'र्' का लोप, १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-२०२ से 'ड' का 'ल' १-१७७ से 'त' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

करीषः सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप करिसो और करीसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-२६० से 'ष' का 'स', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *करिसो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप मे १-२ के अधिकार से सूत्र-सख्या-१-१०१ का निषेध करके दीर्घ ई' ज्यों की त्यो ही रह कर *करीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिरीषः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-२६० से 'श' तथा 'ष' का 'स,' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुइअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द', त् और 'य' का लोप १-९४ से आदि 'इ' का 'उ', १-१०१ से दीर्घ 'ई' की 'इ', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तइअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ' १-१७७ से 'त्' और 'य' का लोप १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गभीरम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गहिरम् होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह' १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गहिरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपनीतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उवणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व्' १-२२८ से 'न' का 'ण' १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उवणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आनीतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप आणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण' १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीपितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पलिविअं होता है। इस में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप १-२२१ से 'द' का 'ल' १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-२३१ से 'प' का 'व' १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पलिविअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवसीदत्तम् संस्कृत वर्तमान कृदन्त है। इसका प्राकृत रूप ओसिअन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७२ से 'अव' का 'ओ' १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-१७७ से 'द्' का लोप ३-१८१ से 'शतृ' प्रत्यय के स्थान पर 'न्त' प्रत्यय का आदेश ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ओसिअन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रसीद संस्कृत अकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप पसिअ होता है। इसमे सूत्र-संख्या-२-७६ से 'र' का लोप, १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-१७७ से 'द्' का लोप, होकर *पसिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृहीतम् सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गहिअं होता है। इसमे सूत्र सख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गहिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

...है। इसका प्राकृत रूप वम्मिओ होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७६ से ... द्वित्व 'म्म'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-१७७ से 'क' का लोप, ...न में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ...।

...य है। इसका प्राकृत रूप तयाणिं होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से ... 'आ' का 'या', १-२२८ से 'न' का 'ण', १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' ...र होकर *'तयाणिं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

...अइ, करीसो शब्दों की सिद्धि ऊपर की जा चुकी है।

...षण है। इसके प्राकृत रूप उवणीओ और उवणिओ होते हैं। इनमें सूत्र-... , १-२२८ से 'न' का 'ण', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२ से प्रथमा के एक ... के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'उवणीओ'* रूप सिद्ध हो जाता ... दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' होकर *उवणिओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ० ॥

उज्जीर्णे ॥ १-१०२ ॥

...द् भवति ॥ जुण्ण सुरा ॥ क्वचिन्न भवति । जिण्णे भोअणमत्ते ॥

...शब्द में रही हुई 'ई' का 'उ' होता है। जैसे-जीर्ण-सुरा = जुण्ण-सुरा। कहीं कहा पर इस ... रही हुई 'ई' का 'उ' नहीं होता है। किन्तु दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' देखी जाती है। जैसे-जीर्णे भोजन-मात्रे = जिण्णे भोअणमत्ते ॥

जीर्ण सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जुण्ण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०२ से 'ई' का 'उ', २-७६ से 'र्' का लोप, और २-८६ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण' होकर *'जुण्ण'* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुरा सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भी सुरा ही होता है।

जीर्णे संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जिण्णे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ई' को इ; २-७९ से र् का लोप; २-८९ से 'ण का द्वित्व 'ण्ण', और ३-११ से सप्तमी के एक वचन में नपुंसक लिंग में ङि प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'जिण्णे'* रूप सिद्ध हो जाता है।

भोजन-मात्रे संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भोअण-मत्ते होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज् का लोप' १-२२८ से 'न का 'ण' १-८४ से 'मा का 'म', २-७९ से 'र् का लोप, २-८९ 'त का द्वित्व 'त्त', और ३-११ से सप्तमी के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर ए प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भोअण-मत्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊर्हीन विहीने वा ॥ १-१०३ ॥

अनयोरीत ऊत्वं वा भवति ॥ हूणो, हीणो। विहूणो विहीणो ॥ विहीन इति किम्। पहीण-जर-मरणा ॥

अर्थ—हीन और विहीन इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ई' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे- हीन=हूणो और हीणो ॥ विहीन=विहूणो और विहीणो ॥ विहीन-इस शब्द का उल्लेख क्यों किया? उत्तर-यदि विहीन शब्द में 'वि' उपसर्ग नहीं होकर अन्य उपसर्ग होगा तो 'हीन' में रही हुई ई का 'ऊ' नहीं होगा। जैसे-प्रहीन-जर-मरणाः=पहीण-जर-मरणा। यहाँ पर 'प्र' अथवा 'प' उपसर्ग है और 'वि' उपसर्ग नहीं है, अतः 'ई' का 'ऊ' नहीं हुआ है।

हीन संस्कृत विशेषण है इसके प्राकृत रूप हूणो और हीणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१०३ से ई का विकल्प से 'ऊ', १-२२८ से न का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय होकर क्रम से *हूणो* और *हीणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विहीन संस्कृत विशेषण है; इसके प्राकृत रूप विहूणो और विहीणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१०३ से 'ई' का विकल्प से 'ऊ' १-२२८ से 'न का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *विहूणो* और *विहीणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रहीण संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पहीण होता है। इसमें-सूत्र-संख्या २-७९ से 'र् का लोप' और १-२२८ से 'न का 'ण' होकर *पहीण* रूप सिद्ध हो जाता है।

जरा-मरणाः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप जर-मरणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-४ से आदि 'आ' का 'अ' ३-४ से प्रथमा के बहुवचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं लोप; और ३-१२ से 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *जर-मरणा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १०३ ॥

तीर्थे हे ॥ १-१०४ ॥

तीर्थ शब्दे हे सति ईत ऊत्वं भवति ॥ तूहं ॥ हइति किम् । तित्थं ॥

अर्थ:—तीर्थ शब्द में 'र्थ' का 'ह' करने पर तीर्थ' में रही हुई 'ई' का 'ऊ' होता है। जैसे-तीर्थम् =तूहं। 'ह' ऐसा कथन क्यो किया गया है ? उत्तर-जहां पर तीर्थ मे रहे हुए 'र्थ' का 'ह' नहीं किया जायगा, वहां पर 'ई' का 'ऊ' नहीं होगा। जैसे-तीर्थम्=तित्थ।

तीर्थम् सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तूहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१०४ से 'ई' का 'ऊ', २-७२ से 'र्थ' का 'ह', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तूहं रूप सिद्ध हो जाता है।

'तित्थ' शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ मे की गई है।

एत्पीयूषापीड-बिभीतक-कीदृशेदृशे ॥ १-१०५ ॥

एषु ईत एत्वं भवति ॥ पेऊसं। आमेलो। बहेडओ। केरिसो। एरिसो ॥

अर्थ:—पीयूष, अपीड, बिभीतक, कीदृश, और ईदृश शब्दों में रही हुई 'ई' की 'ए' होती है। जैसे पीयूपम्=पेऊस; आपीड.=आमेलो, बिभीतक=बहेडओ, कीदृश=केरिसो, ईदृशः=एरिसो ॥

पीयूषम्=सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पेऊसं होता है। इसमे सूत्र-सख्या १-१०५ से 'ई' की 'ए'; १-१७७ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पेऊसं रूप सिद्ध हो जाता है।

आपीड' सस्कृत शब्द है। इस का प्राकृत रूप आमेलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३४ से 'प' का 'म', १-१०५ से 'ई' की 'ए', १-२०२ से 'ड' का 'ल', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आमेलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहेडओ की सिद्धि सूत्र-सख्या १-८८ में की गई है।

कीदृश: सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप केरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०५ से 'ई' की 'ए', १-१४२ से 'दृ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स', और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *केरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईदृश: सस्कृत विशेषण है इसका प्राकृत रूप एरिसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१०५ से

'इ की 'ए, १ १४७ से ह की रि । २६० से 'श का 'स और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *परिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीड-पीठे वा ॥ १ १०६ ॥

अनयोरीत एत्वं वा भवति ॥ नेडं नीडं । पेढं पीढं ॥

अर्थ—नीड और पीठ इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ई' की 'ए विकल्प से होती है। जैसे-नीडम्=नेडं और नीडं । पीठम्=पेढं और पीढं ।

नीडम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नेडं और नीडं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १०६ से 'ई की विकल्प से 'ए' और ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *नेडं* और *नीडं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पीठम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेढं और पीढं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १०६ से 'ई की विकल्प से 'ए', १ १९९ से 'ठ का 'ढ ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर क्रम से *पेढं* और *पीढं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १०६ ॥

उतो मुकुलादिष्वत् ॥ १ १०७ ॥

मुकुल इत्येवमादिषु शब्देषु आदेरुतोत्वं भवति ॥ मउलं । मउलो । मउरं मउडं । अगरुं । गरुई । जहुट्ठिलो । जहिट्ठिलो । सोअमल्लं । गलोई ॥ मुकुल । मुकुर । मुकुट । अगुरु । गुर्वी । युधिष्ठिर । सौकुमार्य । गुडूची । इति मुकुलादयः । क्वचिदाकारोऽपि । विद्रुतः । विद्दाओ ॥

अर्थ—मुकुल इत्यादि इन शब्दों में रहे हुए आदि 'उ का 'अ होता है। जैसे-मुकुलम्=मउलं और मउलो । मुकुरम्=मउरं । मुकुटम्=मउडं । अगुरुम्=अगरुं । गुर्वी=गरुई । युधिष्ठिरः=जहुट्ठिलो और जहिट्ठिलो । सौकुमार्यम्=सोअमल्लं । गुडूची=गलोई । इस प्रकार इन शब्दों को मुकुल आदि में जानना। किन्हीं किन्हीं शब्दों में आदि 'उ का 'आ' भी हो जाया करता है। जैसे-विद्रुतः=विद्दाओ। इस विद्दाओ शब्द में आदि 'उ का 'आ हुआ है। ऐसा ही अन्यत्र भी जानना।

मुकुलम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मउलं और मउलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १०७ से आदि 'उ' का 'अ १ १७७ से 'क का लोप ३ २५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'मउलं' रूप

सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में लिंग के भेद से पुल्लिंग मान लेने पर ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कउलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुकुरं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मउरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुकुटं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मउडं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१९५ से 'ट' का 'ड', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अगुरुं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'अगरुं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अगरुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुर्वी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गरुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से 'उ' का 'अ', २-११३ से 'र्वी' का 'रुवी', १-१७७ से प्राप्त 'रुवी' में से 'व्' का लोप होकर *गरुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

जहुट्ठिलो और जहिट्ठिलो शब्दों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९६ में की गई है।

सौकुमार्यं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सोअमल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से 'उ' का 'अ', १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१५९ से 'औ' का 'ओ'; १-८४ से 'आ' का 'अ', २-६८ से 'र्य' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोअमल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुडूची संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गलोई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ', १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ', १-२०२ से 'ड' का 'ल', १-१७७ से 'च्' का लोप होकर *गलोई* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्रुतः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विद्दाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१०७ की वृत्ति से 'उ' का 'आ', २-८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विद्दाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१०७॥

वोपरौ ॥ १-१०८॥

उपरावुतोद् वा भवति ॥ अवरिं । उवरिं ॥

अर्थ —उपरि शब्द में रहे हुए उ का विकल्प से 'अ' हुआ करता है। जैसे-उपरि = अवरिं और उवरिं ॥

अवरिं शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १ ६ में की गई है

उपरि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप उवरिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ २३१ से प का व, और १ २६ से अनुस्वार की प्राप्ति होकर उवरिं रूप सिद्ध हो जाता है।

गुरौ के वा ॥ १ १०९ ॥

गुरौ स्वार्थे के सति आदेरुतोद् वा भवति ॥ गरुओ गुरुओ ॥ क इति किम् ? गुरू ॥

अर्थ —गुरु शब्द में स्वार्थ-वाचक 'क' प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'गुरु' के आदि में रहे हुए 'उ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे—गुरुक = गरुओ और गुरुओ। 'क' ऐसा क्यों लिखा है ?

उत्तर—यदि स्वार्थ वाचक क प्रत्यय नहीं लगा हुआ हो तो 'गुरु' के आदि 'उ' का 'अ' नहीं होगा। जैसे-गुरु = गुरू ॥

गुरुक संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप गरुओ और गुरुओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ १०९ से आदि 'उ' का विकल्प से 'अ', १ १७७ से क् का लोप और ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय होकर क्रम से गरुओ और गुरुओ रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गुरु संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गुरू होता है। इस में सूत्र संख्या ३ १९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर होकर गुरू रूप सिद्ध हो जाता है।

इर्भ्रुकुटौ ॥ १ ११० ॥

भ्रुकुटावादेरुत इर्भवति ॥ भिउडी ॥

अर्थ —भ्रुकुटि शब्द में रहे हुए आदि 'उ' की 'इ' होती है। जैसे-भ्रुकुटि = भिउडी ॥

भ्रुकुटि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भिउडी होता है। इसमें सूत्र संख्या २ ७९ से 'र्' का लोप १ ११० से आदि 'उ' की 'इ' १ १७७ से 'क' का लोप १ १९५ से 'ट' का 'ड' और ३ १९ से

प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *भिउडी* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११० ॥

पुरुषे रोः ॥ १-१११ ॥

पुरुषशब्दे रोरुत इर्भवति ॥ पुरिसो । पउरिसं ॥

अर्थः—पुरुष शब्द में 'रु' में रहे हुए 'उ' की 'इ' होती है। जैसे-पुरुष.=पुरिसो। पौरुषम्=पउरिसं ॥

पुरिसो शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

पौरुषं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पउरिस होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' का 'अउ', १-१११ से 'रु' के 'उ' की 'इ', १-२६० से 'ष' का 'स', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउरिसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईः क्षुते ॥ १-११२ ॥

क्षुतशब्दे आदेरुत ईत्वं भवति ॥ छीअं ॥

अर्थ.—क्षुत शब्द में रहे हुए आदि 'उ' की 'ई' होती है। जैसे-क्षुतम्=छीअं।

क्षुतमं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप छीअ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ', १ ११२ से 'उ' की 'ई', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*छीअं*' रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११२ ॥

ऊत्सुभग-मुसले वा ॥ १-११३ ॥

अनयोरादेरुत ऊद् वा भवति ॥ सूहवो सुहओ । मूसलं मुसलं ॥

अर्थः—सुभग और मुसल इन दोनों शब्दों में रहे हुए आदि 'उ' का विकल्प से दीर्घ 'ऊ' होता है। जैसे-सुभगः=सूहवो और सुहओ। मुसलम्=मूसलं और मुसलं॥

सुभगः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सूहवो और सुहओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११३ से आदि 'उ' का विकल्प से 'ऊ', १-१८७ से 'भ' का 'ह', १-१९२ से प्रथम रूप में 'ऊ' होने पर 'ग' का

'व' और द्वितीय रूप में 'ऊ' नहीं होने पर १-१७७ से 'ग' का लोप और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *सूहवो* और *सुहओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुसलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत-रूप मूसलं और मुसलं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११३ से आदि 'उ' का विकल्प से दीर्घ 'ऊ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *मूसलं* और *मुसलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ११३ ॥

अनुत्साहोत्सन्ने त्सच्छे ॥ १-११४ ॥

उत्साहोत्सन्नवर्जिते शब्दे यौ त्सच्छौ तयोः परयोरादेरुत ऊद् भवति ॥ त्स । ऊसुओ । ऊसवो । ऊसित्तो । ऊसरइ ॥ च्छ । उद्गताः शुका यस्मात् सः ऊसुओ । ऊससइ ॥ अनुत्साहोत्सन्न इति किम् । उच्छाहो । उच्छन्नो ॥

अर्थः—उत्साह और उत्सन्न इन दो शब्दों को छोड़ करके अन्य किसी शब्द में 'त्स' अथवा 'च्छ' आवे तो इन 'त्स' अथवा 'च्छ' वाले शब्दों के आदि 'उ' का 'ऊ' होता है। 'त्स' के उदाहरण इस प्रकार हैं—

उत्सुकः = ऊसुओ। उत्सवः = ऊसवो। उत्सिक्तः = ऊसित्तो। उत्सरति = ऊसरइ। 'च्छ' के उदाहरण इस प्रकार हैं—जहाँ से तोता—(पक्षी विशेष) निकल गया हो वह 'उच्छुक' होता है। इस प्रकार उच्छुकः = ऊसुओ ॥ उच्छ्वसति = ऊससइ ॥ उत्साह और उत्सन्न इन दोनों शब्दों का निषेध क्यों किया? उत्तर—इन शब्दों में 'त्स' होने पर भी आदि 'उ' का 'ऊ' नहीं होता है अतः दीर्घ 'ऊ' की उत्पत्ति का इन शब्दों में अभाव ही जानना। जैसे—उत्साहः = उच्छाहो। उत्सन्नः = उच्छन्नो ॥

उत्सुकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊसुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊसुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊसवो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है।

उत्सिक्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊसित्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; २-८९ से शेष द्वितीय 'त' का द्वित्व 'त्त' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *ऊसित्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्सरति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद है, इसका प्राकृत रूप ऊसरइ होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ', २-७७ से 'त्' का लोप, और ३-१३६ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ऊसरइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छुक =(उत् + शुक)–संस्कृत विशेषण है, इसका प्राकृत रूप ऊसुओ होता है। इसमे सूत्र-संख्या-१-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स',१-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊसुओ* रुप सिद्ध हो जाता है।

उच्छ्वसति (उत्श्वसति)=संस्कृत सकर्मक क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप ऊससइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ', २-७७ से 'त्' का लोप, १-१७७ से 'व्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', और ३–१३६ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्साहः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप उच्छाहो होता है। इसमें-सूत्र-संख्या २–२१ से 'त्स' का 'छ', २–८६ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-६० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्', और ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उच्छाहो* रुप सिद्ध हो जाता है।

उत्सन्नः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उच्छन्नो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२–२१ से 'त्स' का 'छ'; २–८६ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-६० से प्राप्त पूर्व 'छ', का 'च्', और ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उच्छन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ११४॥

लुंकि दुरो वा ॥ १-११५ ॥

दुरुपसर्गस्य रेफस्य लोपे सति उत ऊत्वं वा भवति ॥ दूसहो दुसहो। दूहवो दुहओ ॥ लुंकीति किम्। दुस्सहो विरहो ॥

अर्थः—'दुर्' उपसर्ग मे रहे हुए 'र्' का लोप होने पर 'दु' में रहे हुए 'उ' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे-दु सह =दूसहो और दुसहो ॥ दुर्भग =दूहवो और दुहओ 'र्' का लोप होने पर ऐसा उल्लेख क्यों किया ?

उत्तर —यदि 'दुर्' उपसर्ग में रहे हुए 'र्' का लोप नहीं होगा तो 'दु' में रहे हुए 'उ' का भी दीर्घ 'ऊ' नहीं होगा। जैसे–दुस्सह. विरह =दुस्सहो विरहो। यहाँ पर 'र्' का स् हो गया है और उसका लोप नहीं हुआ है, अत 'दु' मे स्थित 'उ' का भी 'ऊ' नहीं हुआ है। ऐसा जानना।

दूसहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १३ में की गई है।

दुस्सह (दुस्सह) संस्कृत विशेषण है इसका प्राकृत रूप दुसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १३ से 'र् का लोप' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर दुसहो रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर्भग संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दूहवो और दुहओ होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १ १३ से र् का लोप १ ११५ से आदि 'उ का विकल्प से 'ऊ १ १८७ से 'भ' का 'ह १ १९२ से आदि दीर्घ 'ऊ वाले प्रथम रूप में 'ग का 'व और १ १७७ से ह्रस्व 'उ' वाले द्वितीय रूप में 'ग् का लोप' और ३ २ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग म 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दूहवो और दुहओ रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दुसमहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १३ में की गई है।

विरह संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विरहो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर विरहो रूप सिद्ध हो जाता है॥ ११५॥

ओत्संयोगे ॥ १ ११६ ॥

संयोगे परे आदेरुत ओत्वं भवति ॥ तोण्डं। मोण्डं। पोक्खरं कोट्टिमं पोत्थओ। लोद्धओ। मोत्था। मोग्गरो पोग्गलं। कोण्ढो। कोन्तो। वोक्कन्तं॥

अर्थ —शब्द में रहे हुए आदि 'उ के आगे यदि संयुक्त अक्षर आ जाय तो उस 'उ' का 'ओ' हो जाया करता है। जैसे–तुण्डम्=तोण्डं। मुण्ड =मोण्डं। पुष्करम्=पोक्खरं। कुट्टिमम्=कोट्टिमम्। पुस्तक=पोत्थओ। लुब्धक=लोद्धओ। मुस्ता=मोत्था। मुद्गर=मोग्गरो। पुद्गल=पोग्गलं। कुण्ठ=कोण्ढो। कुन्त=कोन्तो। व्युत्क्रान्तम्=वोक्कन्तं॥

तुण्डम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तोण्डं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ ११६ से आदि 'उ का 'ओ ३-५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर तोण्डम् रूप सिद्ध हो जाता है।

मुण्डम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मोण्डं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ ११६ से आदि 'उ का 'ओ [illegible] से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और [illegible] से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर मोण्डं रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्करं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोक्खरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-४ से 'ष्क' का 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पोक्खरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुट्टिमं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कोट्टिमं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कोट्टिमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुस्तकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोत्थओ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-४५ से 'स्त' का 'थ', २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पोत्थओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लुब्धकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'लोद्धओ' होता है। इसमे सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-७९ से 'ब्' का लोप, २-८९ से शेष 'ध' का द्वित्व 'ध्ध', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध' का 'द्', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोद्धओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुस्ता संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मोत्था होता है। इसमे सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-४५ से 'स्त' का 'थ'; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' होकर *मोत्था* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुद्गरः संस्कृत शब्द है, इसका प्राकृत रूप मोग्गरो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से शेष 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मोग्गरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुद्गलं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोग्गलं होता है। इस में सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', २-७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पोग्गलं* रूप सिद्ध हो जाता है

कुण्ठः संस्कृत शब्द है, इसका प्राकृत रूप कोण्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ', १-१९९ से 'ठ' का 'ढ', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *कोण्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुन्त संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कोन्तो होता है' इसमें सूत्र संख्या १ ११६ से आदि 'उ का 'ओ और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन से पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्य की प्राप्ति होकर कोन्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

व्युत्क्रान्तं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वोक्कन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य का लोप' १ ११६ से आदि 'उ' का 'ओ २-७९ से र्' का लोप' २-७७ से त् का लोप; २-८९ से 'क का द्वित्व 'क्क, १-८४ से 'का में रहे हुए 'आ का 'अ' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वोक्कन्तं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥११६॥

कुतूहले वा ह्रस्वश्च ॥ १-११७ ॥

कुतूहल शब्दे उत ओद् वा भवति तत्संनियोगे ह्रस्वश्च वा॥ कोउहलं कुऊहलं कोउहल्लं ॥

अर्थ —कुतूहल शब्द में रहे हुए आदि 'उ का विकल्प से 'ओ होता है। और जब 'ओ होता है तब 'तू' में रहा हुआ दीर्घ 'ऊ' विकल्प से ह्रस्व हो जाया करता है। जैसे—कुतूहलम्=कोउहलं कुऊहलं और कोउहल्लं। तृतीय रूप में आदि 'उ का 'ओ हुआ है, अत उसके पास वाले-वाले संनियोग वाले 'त् में रहे हुए दीर्घ 'ऊ का ह्रस्व 'उ हो गया है।

कुतूहलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कोऊहलं कुऊहलं, कोउहल्लं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ ११७ से आदि 'उ' का विकल्प से 'ओ १ १७७ से 'त् का लोप' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर क्रम से कोऊहलं और कुऊहलं रूप सिद्ध हो जाते हैं। तृतीय रूप में सूत्र संख्या १ ११७ से आदि 'उ का 'ओ १ १७७ से 'त् का लोप १ ११७ से 'ओ की संनियोग अवस्था होने के कारण से द्वितीय दीर्घ 'ऊ का ह्रस्व 'उ' २-९९ से ल का द्वित्व 'ल्ल ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति' और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कोउहल्लं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥११७॥

अदूत सूक्ष्मे वा ॥ १-११८ ॥

सूक्ष्म शब्दे ऊतोद् वा भवति ॥ सण्हं सुण्हं ॥ आर्षे । सुहुमं ॥

अर्थ —सूक्ष्म शब्द में रहे हुए 'ऊ का विकल्प से 'अ होता है। जैसे-सूक्ष्मम्=सण्हं और सुण्हं ॥ आर्ष प्राकृत में सुहुमं रूप भी पाया जाता है।

सूक्ष्मं संस्कृत विशेषण है; इसके प्राकृत रूप सण्हं और सुण्हं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११८ से 'ऊ' का विकल्प से 'अ'; २-७५ से 'क्ष्म' का 'ण्ह', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सण्हं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-११८ के वैकल्पिक विधान के अनुस्वार 'ऊ' का 'अ' नहीं होने पर १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होकर *सुण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूक्ष्मं संस्कृत विशेषण है। इसका आर्ष में प्राकृत रूप सुहुमं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष्' का 'ख्', १-१८७ से प्राप्त 'ख्' का 'ह्', २-११३ से प्राप्त 'ह्' में 'उ' की प्राप्ति, १-८४ से 'सू' मे रहे हुए 'ऊ' का 'उ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुहुमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुकूले वा लश्च द्विः ॥ १-११९ ॥

दुकूल शब्दे ऊकारस्य अत्वं वा भवति। तत्संनियोगे च लकारो द्विर्भवति ॥ दुअल्लं, दुऊलं ॥ आर्षे दुगुल्लं ॥

अर्थः—दुकूल शब्द मे रहे हुए द्वितीय दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से 'अ' होता है, इस प्रकार 'अ' होने पर आगे रहे हुए 'ल' का द्वित्व 'ल्ल' हो जाता है, जैसे—दुकूलम्=दुअल्लं और दुऊलं ॥ आर्ष-प्राकृत में दुकूलम् का दुगुल्लं रूप भी होता है।

दुकूलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दुअल्ल और दुऊलं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'क' का लोप, १-११९ से 'ऊ' का विकल्प से 'अ', और 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *दुअल्लं* और *दुऊलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दुकूलम् संस्कृत शब्द है। इसका आर्ष-प्राकृत में दुगुल्ल रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३ से 'दुकूल' का 'दुगुल्ल', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुगुल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११९ ॥

ईर्वोद्व्यूढे ॥ १-१२० ॥

उद्व्यूढशब्दे ऊत ईत्वं वा भवति ॥ उव्वीढं। उव्वूढं ॥

अर्थः—उद्व्यूढ शब्द में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' की विकल्प से दीर्घ 'ई' होती है। जैसे—उद्व्यूढम् =उव्वीढं और उव्वूढं ॥

उदूयूढम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप उव्वीढं और उव्वूढं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'व्' का द्वित्व 'व्व्'; १-१२० से दीर्घ 'ऊ' को विकल्प से दीर्घ 'ई'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *उव्वीढं* और *उव्वूढं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उर्भ्रू-हनुमत्कण्डूय-वातूले ॥ १-१२१ ॥

एषु ऊत उत्वं भवति ॥ भुमया । हणुमन्तो । कण्डुअइ । वाउलो ॥

अर्थः—भ्रू, हनुमत्, कण्डूयति, और वातूल इन शब्दों में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होता है। जैसे—भ्रूमया = भुमया। हनूमान = हणुमन्तो। कण्डूयति = कण्डुअइ। वातूलः = वाउलो।

भ्रूमया संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भुमया होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होकर भुमया रूप सिद्ध हो जाता है।

हनुमान् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप हणुमन्तो होता है। इसका मूल शब्द हनूमत् है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; २-१५९ से 'स्वार्थ में मत्' प्रत्यय के स्थान पर 'मन्त' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हणुमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कण्डूयति संस्कृत सकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप कण्डुअइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; १-१७७ से 'य्' का लोप; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर *कण्डुअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वातूलः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वाउलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाउलो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१२१॥

मधूके वा ॥ १-१२२ ॥

मधूक शब्दे ऊत उत् वा भवति ॥ महुअं महूअं ॥

अर्थः—मधूक शब्द में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से ह्रस्व 'उ' होता है। जैसे-मधूकम् = महुअं और महूअं।

मधूकं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप महुअं और महूअं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१८७

से 'घ' का 'ह', १-१२२ मे दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से ह्रस्व 'उ', १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *महुअं* और *महूअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१२२॥

इदेतौ नूपुरे वा ॥ १-१२३ ॥

नूपुर शब्दे ऊत इत् एत् इत्येतौ वा भवतः ॥ निउरं नेउरं। पक्षे नूउरं ॥

अर्थः—नूपुर शब्द में रहे हुए आदि दीर्घ 'ऊ' के विकल्प से 'इ' और 'ए' होते हैं। जैसे–नूपुरम् =निउरं, नेउर और पक्ष में नूउर। प्रथम रूप में 'ऊ' की 'इ'; द्वितीय रूप में 'ऊ' का 'ए', और तृतीय रूप में विकल्प-पक्ष के कारण से 'ऊ' का 'ऊ' ही रहा।

नूपुरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप निउरं, नेउर और नूउर होते हैं। इनमे सूत्र संख्या १-१२३ से आदि दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से 'इ' और 'ए', और पक्ष मे 'ऊ', १-१७७ से 'प्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *निउरं, नेउरं,* और *नूउरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १२३ ॥

ओत्कूष्माण्डी-तूणीर-कूर्पर-स्थूल-ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये ॥ १-१२४ ॥

एषु ऊत ओद् भवति ॥ कोहण्डी कोहली। तोणीरं कोप्परं। थोरं। तम्बोलं। गलोई मोल्लं ॥

अर्थः—कूष्माण्डी, तूणीर, कूर्पर, स्थूल, ताम्बूल, गुडूची, और मूल्य में रहे हुए 'ऊ' का 'ओ' होता है। जैसे–कूष्माण्डी=कोहण्डी और कोहली। तूणीरम्=तोणीरं। कूर्परम्=कोप्पर। स्थूलम्= थोर। ताम्बूलम्=तम्बोल। गुडूची=गलोई। मूल्य=मोल्ल॥

कूष्माण्डी संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कोहण्डी और कोहली होते हैं। इनमे सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ', २-७३ से 'ष्मा' का 'ह'; और इसी सूत्र से 'ण्ड' का विकल्प से 'ल', होकर क्रम से *कोहण्डी* और *कोहली* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तूणीरम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तोणीर होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तोणीरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कूर्परम् संस्कृत शब्द है इसका प्राकृत रूप कोप्पर होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ', २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे

नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कोप्परं रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थूलं संस्कृत विशेषण है, इसका प्राकृत रूप थोरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ' १-२५४ से 'ल' का 'र', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर थोरं रूप सिद्ध हो जाता है।

ताम्बूलं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तम्बोलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४से आदि 'आ' का 'अ' १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तम्बोलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गलोई शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-१०७ में की गई है।

मूल्यं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मोल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ' २-७८ से 'य्' का लोप २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मोल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १२४ ॥

स्थूणा-तूणे वा ॥१-१२५॥

अनयोरूत ओत्वं वा भवति। थोणा थूणा। तोणं तूणं॥

अर्थ—स्थूणा और तूण शब्दों में रहे हुए 'ऊ' का विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे-स्थूणा=थोणा और थूणा। तूणम्=तोणं और तूणं॥

स्थूणा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप थोणा और थूणा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७७ से स् का लोप १-१२५ से 'ऊ' का विकल्प से 'ओ' होकर *थोणा* और *थूणा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तूणं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तोणं और तूणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२५ से 'ऊ' का विकल्प से 'ओ' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तोणं* और *तूणं* रूप सिद्ध हो जाते हैं॥ १२५॥

ऋतोत् ॥ १-१२६ ॥

आदेर्ऋकारस्य अत्वं भवति॥ घृतम्। घयं॥ तृणम्। तणं॥ कृतम्। कयं॥ वृषभः। वसहो॥ मृगः। मओ॥ घृष्टः। घट्ठो॥ दुहाइअमिति कृपादिपाठात्॥

अर्थः—शब्द में रही हुई आदि 'ऋ' का 'अ' होता है। जैसे-घृतम्=घयं ॥ तृणम्=तणं ॥ कृतम्=कय ॥ वृषभ =वसहो ॥ मृग =मओ ॥ घृष्ट = घट्ठो ॥ द्विधा-कृतम्=दुहाइअं इत्यादि शब्दों की सिद्धि 'कृपादि' के समान अर्थात् सूत्र संख्या १-१२८ के अनुसार जानना।

घृतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतक रूप घयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *घयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तणं होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतम् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप कय होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य', और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *कय* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृषभः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वसहो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-२६० से 'ष' का 'स', १-१८७ से 'भ' का 'ह', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'ग्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप घट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८६ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुहाइअं शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९७ में की गई है ॥१२७॥

आत्कृशा-मृदुक-मृदुत्वे वा ॥ १-१२७ ॥

एषु आदेॠत आद् वा भवति ॥ कासा किसा । माउक्कं मउअं । माउक्कं मउत्तणं ॥

अर्थः—कृशा, मृदुक, और मृदुत्व; इन शब्दों में रही हुई आदि 'ऋ' का विकल्प से 'आ'

होता है। जैसे-कृशा=कासा और किसा ॥ मृदुकम्=माउक्कं और मउअं ॥ मृदुत्वम्=माउक्कं और मउत्तणं ॥

कृशा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कासा और किसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ', १-२६० से 'श' का 'स' होकर प्रथम रूप कासा सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' और शेष पूर्ववत् होकर *किसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुकम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ', १-१७७ से 'द्' का लोप, २-९८ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप और शेष पूर्व रूपवत् होकर *मउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुत्वं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउत्तणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का 'आ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-२ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'क्' का आदेश; २-९८ से प्राप्त 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'त्तण' का आदेश; और शेष पूर्व रूप वत् होकर *मउत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इत्कृपादौ ॥ १-१२८ ॥

कृपाइत्यादिषु शब्देषु आदेर् ऋत इत्वं भवति ॥ किवा । हिययं । मिट्ठं रसे एव । अन्यत्र मट्ठं । दिट्ठं । दिट्ठी । सिट्ठं सिट्ठी गिण्ठी । पिच्छी । भिऊ । भिङ्गो । भिङ्गारो । सिङ्गारो । सिआलो । घिणा । घुसिणं । विद्ध-कई । समिद्धी । इद्धी । गिद्धी । किसो । किसाणू । किसरा । किच्छं । तिप्पं । किसिओ । निवो । किच्चा । किई । धिई । किवो । किविणो । किवाणं । विञ्चुओ । वित्तं । वित्ती हिअं । वाहित्तं । बिंहिओ । विसी । इसी । विइण्हो । छिहा । सइ । उक्किट्ठं । निसंसो ॥ क्वचिन्न भवति । रिद्धी ॥ कृपा । हृदय । मृष्ट । दृष्ट । दृष्टि । सृष्ट । सृष्टि । गृष्टि । पृथ्वी । भृगु । भृङ्ग । भृङ्गार । शृङ्गार । शृगाल । घृणा । घुसृण । वृद्ध कवि । समृद्धि । ऋद्धि । गृद्धि । कृश । कृशानु । कृसरा । कृच्छ्र । तृप्त । कृषित । नृप । कृत्या । कृति । धृति । कृप । कृपण । कृपाण । वृश्चिक । वृत्त । वृत्ति । हृत । व्याहृत । बृंहित । वृसी । ऋषि । वितृष्ण । स्पृहा । सकृत् । उत्कृष्ट । नृशंस ॥

अर्थः—कृपा आदि शब्दों मे रही हुई आदि 'ऋ' की 'इ' होती है। जैसे-कृपा = किवा। हृदयम् = हियर्य। मृष्टम् = (रस वाचक अर्थ में ही) मिट्ठं। मृष्टम् = (रस से अतिरिक्त अर्थ मे) मट्ठं। दृष्टम् = दिट्ठं। दृष्टिः = दिट्ठी। मृष्टम् = सिट्ठ। सृष्टि = सिट्ठी। गृष्टि = गिट्ठी और गिण्ठी। पृथ्वी = पिच्छी। भृगु = भिऊ। भृङ्ग = भिङ्गो। भृङ्गारः = भिङ्गारो। शृङ्गार = सिङ्गारो। शृगाल = सिआलो। घृणा = घिणा। घुसृणम् = घुमिणम्। वृद्ध कविः = विद्ध-कई। समृद्धिः = समिद्धी। ऋद्धिः = इद्धि। गृद्धिः = गिद्धी। कृशः = किसो। कृशानु = किसाणू। कृसरा = किसरा। कृच्छ्रम् = किच्छं। तृप्तम् = तिप्प। कृपित. = किमिओ। नृप = निवो। कृत्या = किचा। कृतिः = किई। धृति. = धिई। कृप. = किवो। कृपण. = किविणो। कृपाणम् = किवाणं। वृश्चिक = विञ्चुओ। वृत्तम् = वित्तं। वृत्ति. = वित्ती। हृतम् = हिअं। व्याहृतम् = वाहित्तं। बृंहित = बिंहिओ। वृसी = विसी। ऋषि = इसी। वितृष्णा = विइण्हो। स्पृहा = छिहा। सकृत् = सइ। उत्कृष्टम् = उक्किट्ठं। नृशस. = निससो। किसी किसी शब्द मे ऋ' की 'इ' नहीं भी होती है। जैसे-ऋद्धिः = रिद्धी।

कृपा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से आदि 'ऋ' की 'इ', और १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *किवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हियर्य होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हियर्य* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मिट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार *मिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृष्टम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिट्ठ रूप की सिद्धी सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

दृष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठी होता है, इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग से 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *दिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

होता है। जैसे-कृशा=कासा और किसा॥ मृदुकम्=माउक्कं और मउअं॥ मृदुत्वम्=माउक्कं और मउत्तणं॥

कृशा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कासा और किसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ', १-२६० से 'श' का 'स' होकर प्रथम रूप *कासा* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' और शेष पूर्ववत् होकर *किसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुकम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ', १-१७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप और शेष पूर्व रूपवत् होकर *मउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुत्वं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउत्तणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का 'आ', १-१७७ से 'द्' का लोप; २-२ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'क्' का आदेश; २-८९ से प्राप्त 'क' का द्वित्व 'क्क', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'द्' का लोप, २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'त्तण' का आदेश; और शेष पूर्व रूप वत् होकर *मउत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इत्कृपादौ ॥ १-१२८ ॥

कृपा इत्यादिषु शब्देषु आदेर् ऋत इत्वं भवति ॥ किवा। हिययं। मिट्ठं रसे एव। अन्यत्र मट्ठं। दिट्ठं। दिट्ठी। सिट्ठं सिट्ठी गिट्ठी गिण्ठी। पिच्छी। भिऊ। भिङ्गो। भिङ्गारो। सिङ्गारो। सिआलो। घिणा। घुसिणं। विद्ध-कई। समिद्धी। इद्धी। गिद्धी। किसो। किसाणू। किसरा। किच्छं। तिप्पं। किसिओ। निवो। किच्चा। किई। धिई। किवो। किविणो। किवाणं। विञ्चुओ। वित्तं। वित्ती हिअं। वाहित्तं। बिंहिओ। विसी। इसी। विइण्हो। छिहा। सइ। उक्किट्ठं। निसंसो॥ क्वचिन्न भवति। रिद्धी कृपा। हृदय। मृष्ट। दृष्ट। दृष्टि। सृष्ट। सृष्टि। गृष्टि। पृथ्वी। भृगु। भृङ्ग। भृङ्गार। शृङ्गार। शृगाल। घृणा। घुसृण। वृद्ध कवि। समृद्धि। ऋद्धि। गृद्धि। कृश। कृशानु। कृसरा। कृच्छ्र। तृप्त। कृषित। नृप। कृत्या। कृति। धृति। कृप। कृपण। कृपाण। वृश्चिक। वृत्त। वृत्ति। हृत। व्याहृत। बृंहित। बृसी। ऋषि। वितृष्ण। स्पृहा। सकृत्। उत्कृष्ट। नृशंस॥

की 'इ'; १-२६० से 'श्' का 'स्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सिङ्गारो रूप सिद्ध हो जाता है।

शृगालः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआलो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १- २८ से 'ऋ' की 'इ', १-२६० से 'श' का 'स्', १-१७७ से 'ग्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक-वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिआलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

घृणा सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घिणा होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; होकर *घिणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

घुसृणं सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घुसिणं होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *घुसिणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्ध-कविः सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विद्ध कई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-१७७ से 'व्' का लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *विद्धकई* रूप सिद्ध हो जाता है।

समिद्धी शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ मे की गई है। *ऋद्धिः* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इद्धी हो जाता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *इद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृद्धिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिद्धी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *गिद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप किसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृशानुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किसाणू होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किसाणू* रूप सिद्ध हो जाता है।

सृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सिट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ', २ ३४ से 'ष्ट' का 'ठ' २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सृष्टि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ', २ ३४ से 'ष्ट' का 'ठ्', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २ ९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *सिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृष्टि संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गिट्ठी और गिण्ठी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ' २ ३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *गिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ'; २ ३४ से 'ष्ट' का 'ठ' १-२६ से प्रथम आदि स्वर 'इ' के आगे आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *गिण्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २ १५ से 'थ्व' का 'छ' २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्' होकर *पिच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृगु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ' १ १७७ से 'ग्' का लोप और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *भिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृंगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिङ्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ' और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिङ्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृंगार संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिङ्गारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' की 'इ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिङ्गारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शृङ्गार संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिङ्गारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १२८ से 'ऋ'

किंकिणी शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है।

कृपाणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवाणं होता है। इसमें-सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२३१ से 'प्' का 'व्' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किवाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विञ्चुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ', २-१६ से स्वर सहित 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश, १-१७७ से क् का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्चुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वित्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *वित्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याहृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वाहित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', २-९९ से 'त्' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-१२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वाहित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृंहितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप बिंहिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक-वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिंहिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' होकर *विसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृसरा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किसरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की इ, होकर किसरा रूप सिद्ध हो जाता है।

कृच्छ्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किच्छं होता है। इसमें संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २-७९ से अन्त्य 'र' का लोप; २-८९ से शेष 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर किच्छं रूप सिद्ध हो जाता है।

तृप्तं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तिप्पं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की इ, २-७७ से 'त्' का लोप २-८९ से शेष 'प' का द्वित्व 'प्प', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर तिप्पं रूप सिद्ध हो जाता है।

कृषितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप किसिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' १-२६० से 'ष्' का 'स्' १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर किसिओ रूप सिद्ध हो जाता है।

नृपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर निवो रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्या स्त्री लिंग शब्द है। इसका प्राकृत रूप किच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २-१३ से 'त्य' का 'च' और २-८९ से प्राप्त 'च' का द्वित्व 'च्च' होकर किच्चा रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर किई रूप सिद्ध होता है।

धृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धिई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर धिई रूप सिद्ध हो जाता है।

कृपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर किवो रूप सिद्ध हो जाता है।

किंशिणो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ से की गई है।

कृपाणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवाणं होता है। इसमें-सूत्र-सख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-२३१ से 'प्' का 'व्' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किवाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विञ्चुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ', २-१६ से स्वर सहित 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश; १-१७७ से क् का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्चुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तम् संस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप वित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तिः संस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप वित्ती होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे स्त्रीलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *वित्ती* रुप सिद्ध हो जाता है।

हृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हिअं होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याहृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वाहित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', २-९९ से 'त्' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-१२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वाहित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृंहित संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप बिंहिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिंहिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसी होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' होकर *विसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋषि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इसी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-२६० से 'ष्' का 'स्', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *इसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

वितृष्ण संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विइण्हो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २-७५ से 'ष्ण' का 'ण्ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विइण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पृहा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छिहा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२३ से 'स्प्' का 'छ' और १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' होकर छिहा रूप सिद्ध हो जाता है।

सकृत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप सइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप १-१२८ से 'ऋ' की 'इ', १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर सइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उक्किट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से 'क्' का द्वित्व 'क्क्'; २-३४ से 'ष्ट्' का 'ठ्', २-८९ से प्राप्त 'ठ्' का द्वित्व 'ठ्ठ्' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उक्किट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नृशंस संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निसंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निसंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋद्धिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिद्धी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *रिद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१२८ ॥

पृष्ठे वानुत्तरपदे ॥ १-१२९ ॥

पृष्ठ शब्देऽनुत्तर पदे ऋत इद् भवति वा ॥ पिट्ठी पट्ठी ॥ पिट्ठि परिट्ठविअं ॥ अनुत्तर पद इति किम् । महिवट्ठं ॥

अर्थ—यदि पृष्ठ शब्द किसी अन्य शब्द के अन्त में नहीं जुड़ा हुआ हो अर्थात् स्वतंत्र रूप से रहा हुआ हो अथवा संयुक्त शब्द में आदि रूप से रहा हुआ हो तो 'पृष्ठ' शब्द में रही हुई 'ऋ' की 'इ' विकल्प से होती है। जैसे-पृष्ठिः=पिट्ठी और पट्ठी। पृष्ठ-परिस्थापितम्=पिट्ठि परिट्ठविअं।
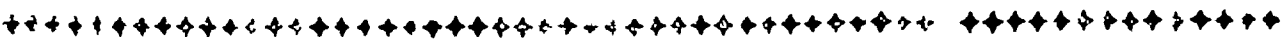
सूत्र मे 'अनुत्तर पद' ऐसा क्यो लिखा गया है ? उत्तर—यदि 'पृष्ठ' शब्द आदि मे नही होकर किसी अन्य शब्द के साथ मे पीछे जुडा हुआ होगा तो पृष्ठ शब्द मे रही हुई 'ऋ' की 'इ' नही होगी। जैसे—मही पृष्ठम्=महिवट्ठ ॥ यहाँ पर 'ऋ' की 'इ' नही होकर 'अ' हुआ है ॥

पिट्ठी शब्द की सिद्धि सूत्र-सख्या १-३५ मे की गई है।

पृष्ठि सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पट्ठी होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-३४ से 'ष्ठ', का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *पट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृष्ठ-परिस्थापितम् सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पिट्ठि-परिट्ठविअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ठ' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', १-४६ से प्राप्त 'ट्ठ' मे रहे हुए 'अ' की 'इ', ४-१६ से 'स्था' धातु के स्थान पर 'ठा' का आदेश, १-६७ से 'ठा' मे रहे हुए 'आ' का 'अ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', १-२३१ से 'प्' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिट्ठि-परिट्ठविअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महीपृष्ठम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महिवट्ठं होता है। इसमे सूत्र सख्या १-४ से 'ई' की 'इ', १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-२३१ से 'प्' का 'व्', २-३४ से 'ष्ठ' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *महिवट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१२९॥

मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु-शृंग-धृष्टे वा ॥ १-१३० ॥

एषु ऋत इद् वा भवति ॥ मसिणं मसणं। मिअङ्को मयङ्को। मिच्चू। मच्चू। सिङ्गं संगं। धिट्ठो ॥ धट्ठो।

अर्थः—मसृण, मृगाङ्क, मृत्यु, शृङ्ग, और धृष्ट, इन शब्दो मे रही हुई 'ऋ' की विकल्प से 'इ' होती है। तदनुसार प्रथम रूप मे तो 'ऋ' की 'इ' और द्वितीय वैकल्पिक रूप मे 'ऋ' का 'अ' होता है। जैसे—मसृणम्=मसिणं और मसणं। मृगाङ्क=मिअङ्को और मयङ्को ॥ मृत्यु=मिच्चू और मच्चू ॥ शृङ्गम्=सिङ्गं और सङ्गं ॥ धृष्ट=धिट्ठो और धट्ठो ॥

मसृणम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप मसिणं और मसणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की विकल्प से 'इ' और १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से मसिणं और मसणं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मृगांक: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मियङ्को और मयङ्को होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की विकल्प से 'इ', १-१७७ से 'ग्' का लोप, १-८४ से शेष 'आ' का 'अ', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप मियङ्को सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-१७७ से 'ग्' का लोप, १-८४ से शेष 'आ' का 'अ', १-१८० से प्राप्त 'अ' का 'य' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर मयङ्को रूप सिद्ध हो जाता है।

मृत्यु: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मिच्चू और मच्चू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की विकल्प से 'इ', २-१३ से 'त्य्' के स्थान पर 'च्' का आदेश, २-८९ से आदेश प्राप्त 'च्' का द्वित्व 'च्च्', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर मिच्चू रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ' और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर मच्चू रूप सिद्ध हो जाता है।

शृंगम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिङ्गं और सङ्गं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की विकल्प से 'इ', और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', १-२६० से 'श्' का 'स्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से सिङ्गं और सङ्गं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

धृष्ट: संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप धिट्ठो और धट्ठो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की विकल्प से 'इ' और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से धिट्ठो और धट्ठो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१-१२८॥

उदृत्वादौ ॥ १-१३१ ॥

ऋत्वादिषु शब्देषु आदेर्ऋत उद् भवति ॥ ऋतुः। उऊ। परामुट्ठो। पुट्ठो। पउट्ठो। पुहई। पउत्ती। पाउसो। पाउओ। भुई। पहुडि। पाहुडं। परहुओ। निहुअं। निउअं। विउअं। संवुअं। वुत्तन्तो। निव्वुअं। निव्वुइ। वुन्दं। वुन्दावणो। वुड्ढो। वुड्ढी। उसहो।

मुणालं । उज्जू । जामाउओ । माउओ । माउआ । भाउओ । पिउओ । पुहुवी ॥ ऋतु । परामृष्ट । स्पृष्ट । प्रवृष्ट । पृथिवी । प्रवृत्ति । प्रावृष् । प्रावृत । भृति । प्रभृति । प्राभृत । परभृत । निभृत । निवृत । विवृत । संवृत । वृत्तान्त निर्वृत । निर्वृति । वृन्द । वृन्दावन । वृद्ध । वृद्धि । ऋषभ । मृणाल । ऋजु । जामातृक । मातृक । मातृका । भ्रातृका । पितृक । पृथ्वी । इत्यादि ॥

अर्थः—ऋतु इत्यादि शब्दों में रही हुई आदि 'ऋ' का 'उ' होता है। जैसे-ऋतु =उऊ। परामृष्ट =परामुट्ठो। स्पृष्ट =पुट्ठो। प्रवृष्ट =पउट्ठो। पृथिवी=पुहई। प्रवृत्ति =पउत्ती। प्रावृष्= (प्रावृट)=पाउसो। प्रावृत =पाउओ। भृति =भुई। प्रभृति=पहुडि। प्राभृतम्=पाहुडं। परभृत.= परहुओ। निभृतम्=निहुअं। निवृतम्=निउअं। विवृतम्=विउअं। सवृतम्=सवुअं। वृत्तान्त =वुत्तन्तो। निर्वृतम=निव्वुअं। निर्वृत्ति =निव्वुई। वृन्दम्=वुन्दं। वृन्दावनो=वुन्दावणो। वृद्ध =वुड्ढो। वृद्धि =वुड्ढी। ऋषभ =उसहो। मृणालम्=मुणालं। ऋजु =उज्जू। जामातृक =जामाउओ। मातृक =माउओ। मातृका=माउआ। भ्रातृक =भाउओ। पितृक =पिउओ। पृथ्वी=पुहुवी। इत्यादि इन ऋतु आदि शब्दों मे आदि 'ऋ' का 'उ' होता है, ऐसा जानना।

ऋतु. संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उऊ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे स्त्री लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ 'ऊ' होकर उऊ रूप सिद्ध हो जाता है।

परामृष्ट संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप परामुट्ठो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ का द्वित्व 'ठ्ठ'. २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *परामुट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पृष्ट संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पुट्ठो होता है। इसमें सूत्र-सख्या-२-७७ से आदि 'स्' का लोप, १-१३१, से 'ऋ' का 'उ, २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवृष्ट : संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पउट्ठो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७९ से 'र' का लोप, १-१७७ से 'व्' का लोप, १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विवृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विउअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'व्' और 'त्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संवुअं होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संवुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तांतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुत्तन्तो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', १-८४ से 'आ' का 'अ', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वुत्तन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वुअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-७६ से र्' का लोप; २-८६ से 'व्' का द्वित्व 'व्व', १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपु सकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निव्वुअं* रुप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृतिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निव्वुई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'व्' का द्वित्व 'व्व', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *निव्वुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुन्दं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वुन्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दावनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुन्दावणो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वुन्दावणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्धः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रुप वुड्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ'

का 'उ', २-७९ से 'र्' का 'ड', २-८९ से प्राप्त 'ड' का द्वित्व 'ड्ड', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ड्' का 'द्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बुड्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्धि का प्राकृत रूप *वुड्ढी* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' का 'ढ्', २-८९ से प्राप्त 'ढ्' का द्वित्व 'ढ्ढ्', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' का 'ड्', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *वुड्ढी* रूप सिद्ध हो जाता है।

'वृषभ' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *वसहो* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', १-२६० से 'ष' का 'स', १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृणाल संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *मुणालं* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुणालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋजु संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप *उज्जू* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-९८ से 'ज्' का द्वित्व 'ज्ज्' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *उज्जू* सिद्ध हो जाता है।

जामातृक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *जामाउओ* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामाउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप *माउओ* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *माउआ* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप और १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' होकर *माउआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रातृक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *भाउओ* होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भाउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पिउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ', २-११३ से अन्त्य व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में 'उ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ्' का 'ह्' होकर *पुहुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवृत्त-वृन्दारके वा ॥ १-१३२ ॥

अनयोर्ऋत उद् वा भवति ॥ निवुत्तं निअत्तं । वुन्दारया वन्दारया ॥

अर्थः-निवृत्त और वृन्दारक इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऋ' का विकल्प से 'उ' होता है। जैसे निवृत्तम् = निवुत्तं अथवा निअत्तं। वृन्दारकाः = वुन्दारया, अथवा वन्दारया ॥

निवृत्तम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप निवुत्तं और निअत्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या-१-१३२ 'ऋ' का विकल्प से 'उ', ३-२५ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निवुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'व्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर *निअत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दारकाः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप वुन्दारया और वन्दारया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या-१-१३२ से 'ऋ' का विकल्प से 'उ', १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य', ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और प्राप्त प्रत्यय का लोप, तथा-३-१२ से अन्त्य स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर *वुन्दारया* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १२६ से 'ऋ' का 'अ', और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर *वन्दारया* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१३२ ॥

वृषभे वा वा ॥ १-१३३ ॥

वृषभे ऋतो वेन सह उद् वा भवति ॥ उसहो वसहो ॥

अर्थः—वृषभ शब्द में रही हुई 'ऋ' का विकल्प से 'व्' के साथ 'उ' होता है। अर्थात् 'व्' व्यञ्जन सहित 'ऋ' का विकल्प से 'उ' होता है। जैसे-वृषभ = उसहो और वसहो। इस प्रकार विकल्प पक्ष होने से प्रथम रूप में 'वृ' का 'उ' हुआ है और द्वितीय रूप में केवल 'ऋ' का 'अ' हुआ है।

प्रसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १३१ में की गई है। वसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १२६ में की गई है। ॥ १ १३३ ॥

गौणान्त्यस्य ॥ १ १३४ ॥

गौण शब्दस्य योन्त्य ऋत् तस्य उद् भवति ॥ माउ-मण्डलं । माउ-हरं । पिउ-हरं । माउ-सिआ । पिउ सिआ । पिउ-वणं । पिउ-वई ॥

अर्थ—दो अथवो अधिक शब्दों से निर्मित संयुक्त शब्द में गौण रूप से रहे हुए शब्द के अन्त में यदि 'ऋ' हो तो उस 'ऋ' का 'उ' होता है। जैसे-मातृ-मण्डलम्=माउ-मण्डलं। मातृ-गृहम्= माउ हरम्। पितृ-गृहम्=पिउ-हरं। मातृ-ष्वसा=माउ-सिआ। पितृ-ष्वसा=पिउ-सिआ। पितृ-वनम्=पिउ वणं। पितृ-पति=पिउ-वई ॥

मातृ मण्डलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-मण्डलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप १ १३४ से 'ऋ' का 'उ' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउ-मण्डलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-हरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप १ १३४ से आदि 'ऋ' का 'उ' २,१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' का आदेश १ १८७ से प्राप्त 'घ' का 'ह', ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउ-हरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *पिउ-हरं* होता है। इसकी साधनिका ऊपर वर्णित 'मातृ-गृहम्=माउ-हरं' रूप के समान ही जानना।

मातृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-सिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप १ १३४ से 'ऋ' का 'उ' २-१४२ से 'ष्वसा' शब्द के स्थान पर 'सिआ' का आदेश होकर *माउसिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *पिउ-सिआ* होता है। इसकी साधनिका ऊपर वर्णित मातृ-ष्वसा=माउ-सिआ ॥ रूप के समान ही जानना।

पितृ-वनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउ-वणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप १ १३४ 'ऋ' का 'उ' १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिउ-वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउ-वई होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'त्' का लोप, १-१३४ से 'ऋ' का 'उ', १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *पिउवई* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१३४॥

मातुरिद्वा ॥ १-१३५ ॥

मातृ शब्दस्य गौणस्य ऋत इद् वा भवति ॥ माइ-हरं । माउ-हरं ॥ क्वचिदगौणस्यापि । माईणं ॥

अर्थः-किसी संयुक्त शब्द मे गौण रूप से रहे हुए 'मातृ' शब्द के 'ऋ' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे-मातृ-गृहम्=माइ-हरं अथवा माउ-हरं ॥ कहीं कहीं पर गौण नहीं होने की स्थिति में भी 'मातृ' शब्द के 'ऋ' की 'इ' हो जाती है। जैसे-मातृणाम्=माइण ॥

मातृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माइ-हरं और माउ-हरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१३५ से आदि 'ऋ' की विकल्प से इ', और शेष 'हरं' की साधनिका सूत्र संख्या १-१३४ में वर्णित 'हरं' रूप के अनुसार जानना। द्वितीय रूप 'माउ-हरं' की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३४ में की गई है।

मातृणाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माईणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१३५ से 'ऋ' की 'इ', ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में स्त्रीलिंग में 'आम्' प्रत्यय के स्थानपर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति, ३-१२ से 'आम्' प्रत्यय अर्थात् 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति होने के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' और १-२७ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय पर विकल्प से अनुस्वार की प्राप्ति होकर *माईणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१३५॥

उदूदोन्मृषि ॥ १-१३६॥

मृषा शब्दे ऋत उत् ऊत् ओच्च भवति ॥ मुसा । मूसा । मोसा । मुसा-वाओ । मूसा-वाओ मोसा-वाओ ॥

अर्थः—मृषा शब्द मे रही हुई 'ऋ' का 'उ' अथवा 'ऊ' अथवा 'ओ' होता है। जैसे-मृषा= मुसा अथवा मूसा अथवा मोसा। मृषा-वादः=मुसा-वाओ अथवा मूसा-वाओ अथवा मोसा-वाओ ॥

मृषा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप क्रम से मुसा, मूसा और मोसा होता है। इनमें सूत्र-संख्या १-१३६ से 'ऋ' का क्रम से 'उ' 'ऊ'; और 'ओ' और १-२६० से 'ष्' का 'स्' होकर क्रम से मुसा मूसा और *मोसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृषावाद संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मसावाओ मुसावाओ, और मोसा-वाओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३६ से 'ऋ' के क्रम से और विकल्प से 'अ' 'उ' और 'ओ', १-२६० से 'ष्' का 'स्', १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से और विकल्प से *मुसावाओ, मसावाओ* और *मोसा-वाओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-१३६ ॥

इदुतौवृष्ट-वृष्टि-पृथङ् मृदङ्ग-नप्तृके ॥ १-१३७ ॥

एषु ऋत इकारोकारौ भवतः ॥ विट्ठो वुट्ठो। विट्ठी वुट्ठी। पिहं पुहं मिइंगो मुइंगो। नत्तिओ नत्तुओ ॥

अर्थ—वृष्ट, वृष्टि, पृथक्, मृदङ्ग और नप्तृक में रही हुई 'ऋ' की 'इ' और 'उ' क्रम से होते हैं। जैसे-वृष्टः=विट्ठो और वुट्ठो। वृष्टिः=विट्ठी और वुट्ठी। पृथक्=पिहं और पुहं। मृदङ्ग=मिइंगो और मुइंगो। नप्तृकः=नत्तिओ और नत्तुओ ॥

वृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप विट्ठो और वुट्ठो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' की विकल्प से अथवा क्रम से 'इ' और 'उ', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विट्ठो* और *वुट्ठो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वृष्टिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विट्ठी और वुट्ठी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' की विकल्प से अथवा क्रम से 'इ' और 'उ' २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ' २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *विट्ठी* और *वुट्ठी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पिहं अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

पृथक् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप पुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' का 'उ' १-१८७ से 'थ' का 'ह' १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'क्' का लोप और १-२४ से आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *पुहं* रूप सिद्ध होता है।

मइंगो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है।

मृदङ्गः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिइंगो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१ १३७ से 'ऋ' का 'इ' १-१७७ से 'द्' का लोप १-४६ से शेष 'अ' की 'इ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिइंगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नप्तृकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नत्तिओ और नत्तुओ होते हैं। इनमे सूत्र-संख्या-२-७७ से 'प्' का लोप, १-१३७ से 'ऋ' की क्रम से और विकल्प से 'इ' और 'उ', २-८९ से 'त्' का द्वित्व त्त', १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नत्तिओ* एवं *नत्तुओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥१-१३७॥

वा बृहस्पतौ ॥ १-१३८ ॥

बृहस्पति शब्दे ऋत इदुतौ वा भवतः ॥ बिहप्फई बुहप्फई । पक्षे बहप्फई ॥

अर्थः—बृहस्पति शब्द में रही हुई 'ऋ' की विकल्प से एवं क्रम से 'इ' और 'उ' होते हैं। जैसे-बृहस्पतिः=बिहप्फई और बुहप्फई। पक्ष में बहप्फई भी होता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बिहप्फई, बुहप्फई और बहप्फई होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ १३८ से 'ऋ' की क्रम से और विकल्प से 'इ' और 'उ'; तथा पक्ष में १-१२६ से 'ऋ' को 'अ'; २-५३ से 'स्प' का 'फ' २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्', १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर क्रम से बिहप्फई, बुहप्फई और पक्ष में वैकल्पिक रूप से बहप्फई रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-१३८ ॥

इदेदोद्वृन्ते ॥ १-१३९ ॥

वृन्त शब्दे ऋत इत् एत् ओच्च भवन्ति ॥ विण्टं वेण्टं वोण्टं ॥

अर्थः-वृन्त शब्द में रही हुई 'ऋ' की 'इ'; 'ए', और 'ओ' क्रम से ~~एवं विकल्प से~~ होते हैं। जैसे-वृन्तम्=विण्टं, वेण्टं अथवा वोण्टं।

वृन्तम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विण्टं, वेण्टं और वोण्टं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-१-१३९ से 'ऋ' की क्रम से और वैकल्पिक रूप से 'इ' 'ए' और 'ओ'; २-३१ से सयुक्त 'न्त का 'ण्ट, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से तथा वैकल्पिक रूप से *विण्टं वेण्टं* और *वोण्टं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-१३९ ॥

रिः केवलस्य ॥ १-१४० ॥

केवलस्य व्यञ्जनेनासंपृक्तस्य ऋतो रिरादेशो भवति ॥ रिद्धी । रिच्छो ॥

अर्थः-किसी भी शब्द में यदि 'ऋ' किसी अन्य व्यञ्जन के साथ जुड़ी हुई नहीं हो, अर्थात् स्वतंत्र

मे अथवा स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर ऊ' होकर *रिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

ऋषिः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिसी और इसी होते हैं। इनमें सूत्र सख्या १-१४१ से 'ऋ' की विकल्प से 'रि'; १-२६० से 'ष्' का 'स्', और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *रिसी* रूप सिद्ध हो जाता है। इसी रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-१२८ में की गई है। ॥ १-१४१ ॥

दृशः क्विप्-टक्-सकः ॥ १-१४२ ॥ ०

क्विप् टक् सक् इत्येतदन्तस्य दृशे र्धातो ऋतो रिरादेशो भवति ॥ सदृक्। सरि-रूवो। सरि-वन्दीणं ॥ सदृशः। सरिसो। सदृक्षः। सरिच्छो ॥ एवम् एआरिसो। भवारिसो। जारिसो। तारिसो। केरिसो। एरिसो। अन्नारिसो। अम्हारिसो। तुम्हारिसो ॥ टक्सक्साहचर्यात् त्यदाद्यन्यादि [हे० ५-१] सूत्र-विहितः क्विबिह गृह्यते ॥

अर्थः—यदि दृश् धातु में 'क्विप्', 'टक्', और 'सक्' कृदन्त प्रत्ययों में से कोई एक प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'दृश्' धातु में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का आदेश होता है। जैसे-सदृक्=सरि ॥ सदृश्-वर्ण=सरि-वण्णो। सदृश्-रूप=सरि-रूवो। सदृश्-बन्दीनाम्=सरि-वन्दीणं ॥ सदृश = सरिसो ॥ सदृक्ष=सरिच्छो ॥ इसी प्रकार से अन्य उदाहरण यों हैं:—एतादृश=एआरिसो। भवादृश=भवारिसो। यादृशः=जारिसो। तादृशः=तारिसो। कीदृश=केरिसो। ईदृश=एरिसो। अन्यादृश=अन्नारिसो। अस्मादृश=अम्हारिसो। युष्मादृश=तुम्हारिसो ॥ इस सूत्र में 'टक्' और 'सक्' प्रत्ययों के साथ 'क्विप्' प्रत्यय का उल्लेख किया गया है, इस पर से यह समझा जाना चाहिये कि इस सत्र को 'त्यदाद्यन्यादि-(हे० ५-१-१५२) सूत्र के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये। जिसका तात्पर्य यह है कि तत्' आदि सर्वनामों के रूपों के साथ 'में यदि दृश् धातु रही हुई हो और उस स्थिति में 'दृश्' धातु में क्विप् प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'दृश्' धातु की 'ऋ' के स्थानपर 'रि' का आदेश होता है। ऐसा तात्पर्य समझना।

सदृक् सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सरि होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१४२ से 'ऋ' की 'रि' और १-११ से 'क्' का लोप होकर *सरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्णः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वण्णो होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृक्-रूपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरि-रूवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरि-रूवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृग्-बन्दीनाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरि-बन्दीणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; बन्दीनाम् का मूल शब्द बन्दिन् (चारण गायक) (न कि बन्दी यानि कैदी) होने से सूत्र संख्या १-११ से 'न्' का लोप; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन के प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१२ से प्राप्त 'ण' के पूर्व ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सरि-बन्दीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सरिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सरिच्छो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ में की गई है।

एतादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप एआरिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एआरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भवारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भवारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

यादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

केरिसो रुप की सिद्धि सूत्र-सख्या१-१०५ में की गई है।

एरिसो रुप की सिद्धि सूत्र संख्या१-१०५ की गई है।

अन्यादृशः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अन्नारिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य्' का लोप, २-८६ से 'न्' का द्वित्व 'न्न्', १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१४२ से 'ऋ' की 'रि', १-२६० से 'श' का 'स्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अन्नारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्मादृशः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अम्हारिसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७४ से 'स्म्' के स्थान पर 'म्ह्' का आदेश; १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अम्हारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

युष्मादृशः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तुम्हारिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२४६ से 'य्' के स्थान पर 'त्' का आदेश २-७४ से 'ष्म्' के स्थान पर 'म्ह्' का आदेश, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तुम्हारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १४२॥

आदृते ढिः॥ १-१४३॥

आदृत शब्दे ऋतो ढिरादेशो भवति॥ आढिओ॥

अर्थः—आदृत शब्द में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'ढि' आदेश होता है। जैसे—*आदृतः* का आढिओ॥

आदृतः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप आढिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द् का लोप, १-१४३ से 'ऋ' की 'ढि', १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आढिओ* रूप सिद्ध हो जाता है॥१४३॥

अरिर्दृप्ते॥ १-१४४॥

दृप्त शब्दे ऋतो रिरादेशो भवति॥ दरिओ। दरिअ-सीहेण॥

अर्थः—दृप्त शब्द में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'अरि' आदेश होता है।

दृप्तः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दरिओ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१४४ से 'ऋ' के स्थान पर 'अरि' का आदेश, २-७७ से 'प्' का लोप, १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *हरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हस्त–सिंहेन संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरिअ–सीहेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४४ से ऋ के स्थान पर 'अरि' का आदेश; २-७७ से 'प्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-९२ से ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२५ से अनुस्वार का लोप; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की आदेश रूप से प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'ह' के 'अ' को 'ए' होकर *हरिअ–सीहेण* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४४ ॥

लृत इलिः क्लृप्त क्लृन्ने ॥ १-१४५ ॥

अनयोर्लृत इलिरादेशो भवति ॥ किलित्त–कुसुमोवयारेसु ॥ धारा किलिन्न–वत्तं ॥

अर्थ—क्लृप्त और क्लृन्न इन दोनों शब्दों में रही हुई 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश होता है। जैसे—क्लृप्त–कुसुमोपचारेषु = किलित्त–कुसुमोवयारेसु ॥ धारा–क्लृन्न–पात्रम् = धारा–किलिन्न–वत्तं ॥

क्लृप्त–कुसुमोपचारेषु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किलित्त–कुसुमोवयारेसु होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४५ से 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'आ' का 'या'; १-२६० से 'ष्' का 'स्' और ३-१५ से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त 'सु' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'र' के 'अ' का 'ए' होकर *किलित्त–कुसुमोवयारेसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

धारा क्लृन्न–पात्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धारा–किलिन्न–वत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४५ से 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *धारा किलिन्न–वत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४५ ॥

एत इद्वा वेदना–चपेटा देवर–केसरे ॥ १-१४६ ॥

वेदनादिषु एत इत्वं वा भवति ॥ विअणा वेअणा। चविडा। विअड–चवेडा विनोआ। दिअरो देवरो ॥ मह महिअ दसण किसरं। केसरं ॥ महिला महेला इति तु महिला महेलाभ्यां शब्दाभ्यां सिद्धम् ॥

अर्थ—वेदना, चपेटा, देवर, और केसर इन शब्दों में रही हुई 'ए' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे–वेदना = विअणा और वेअणा ॥ चपेटा = चविडा ॥ विकट–चपेटा विनोदा = विअड–चवेडा

विणोआ ॥ देवर:=दिअरो और देवरो ॥ मह महित-दशन केसरम्=मह महिअ-दसण-किसरं ॥ अथवा केसर ॥ महिला और महेला इन दोनो शब्दो की सिद्धि क्रम से महिला और महेला शब्दो से ही जानना। इसका तात्पर्य यह है कि 'महेला' शब्द मे रही हुई 'ए' की 'इ' नहीं होती है। दोनो ही शब्दों की सत्ता पारस्परिक रूप से स्वतंत्र ही है।

वेदना संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विअणा और वेअणा होते हैं। इसमे सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ', १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर क्रम से *विअणा* और *वेअणा* रूप सिद्ध हो जाते है।

चपेटा सस्कृत रूप हैं। इसका प्राकृत रूप चविडा होता है। इसमे सूत्र सख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ', १-२३१ से 'प्' का 'व्'; और १-१९५ से 'ट्' का 'ड्' होकर *चविडा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकट-चपेटा-विनोदा सस्कृत रूप हैं। इसका प्राकृत-रूप विअड-चवेडा-विणोआ होता हैं। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१९५ से 'ट्' का 'ड्', १-२३१ से 'प्' का 'व्', १-१९५ से 'ट्' का 'ड्'; १-२२८ से 'न' का 'ण', और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *विअड-चवेडा-विणोआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवरः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दिअरो और देवरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ'; १-१७७ से 'व्' का विकल्प से लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *दिअरो* और *देवरो* रूप सिद्ध हो जाते है।

मह महित सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मह महिअ होता हैं। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *मह महिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

दशन सस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दसण होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२६० से 'श' का 'स' और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *दसण* रूप सिद्ध हो जाता है।

केसरम् सस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप किसर और केसरं होते हैं। इनमे सूत्र सख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ', ३-५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *किसरं* और *केसरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

महिला संस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *महिला* ही होता है। इसी प्रकार से *महेला* भी सस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *महेला* होता है। अतएव इन शब्दों मे 'ए' का 'इ' होना आवश्यक नहीं है। ॥ १४६ ॥

ऊः स्तेने वा ॥ १-१४७ ॥

स्तेने एत ऊद् वा भवति ॥ थूणो थेणो ।

अर्थ-'स्तेन' शब्द में रहे हुए 'ए' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे-स्तेन=थूणो और थेणो ॥

स्तेन संस्कृत पुल्लिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप थूणो और थेणो होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त' का 'थ', १-१४७ से 'ए' का विकल्प से 'ऊ', १-२२८ से 'न' का 'ण', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से थूणो और थेणो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १४७ ॥

ऐत एत् ॥ १-१४८ ॥

ऐकारस्यादौ वर्तमानस्य एत्वं भवति ॥ सेला । तेलोक्कं । एरावणो । केलासो । वेज्जो । केढवो । वेहव्वं ॥

अर्थ-यदि संस्कृत शब्द में आदि में 'ऐ' हो तो प्राकृत रूपान्तर में उस 'ऐ' का 'ए' हो जाता है। जैसे-शैला=सेला । त्रैलोक्यम्=तेलोक्कं । ऐरावण=एरावणो । कैलास=केलासो । वैद्य=वेज्जो । कैटभ=केढवो । वैधव्यम्=वेहव्वं ॥ इत्यादि ॥

शैला का प्राकृत रूप सेला होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-१४८ से 'ऐ' का 'ए', ३-४ प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का 'आ' होकर सेला रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रैलोक्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तेलोक्कं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप, १-१४८ से 'ऐ' का 'ए', २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से शेष 'क' का द्वित्व 'क्क', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तेलोक्कं रूप सिद्ध हो जाता है।

ऐरावण संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एरावणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एरावणो रूप सिद्ध हो जाता है।

कैलास संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केलासो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर केलासो रूप सिद्ध हो जाता है।

वैद्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए', २-२४ से 'द्य' का 'ज', २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कैटभः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केढवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए; १-१९६ से 'ट' का 'ढ', १-२४० से 'भ' का 'व'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *केढवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैधव्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेहव्वं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए', १-१८७ से 'ध' का 'ह', २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' का द्वित्व 'व्व'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वेहव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४८ ॥

इत्सैन्धव-शनैश्चरे ॥ १-१४९ ॥

एतयोरैत इत्त्वं भवति ॥ सिन्धवं । सणिच्छरो ॥

अर्थः—सैन्धव और शनैश्चर इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऐ' की 'इ' होती है। जैसे—सैन्धवम् =सिन्धवं और शनैश्चरः = सणिच्छरो ॥

सैन्धवम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिन्धवं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४९ से 'ऐ' की 'इ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिन्धवं* रूप सिद्ध जाता है।

शनैश्चरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सणिच्छरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण', १-१४९ से 'ऐ' की 'इ', २-२१ से 'श्च' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सणिच्छरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ४९ ॥

सैन्ये वा ॥ १-१५० ॥

सैन्य शब्दे ऐत इद् वा भवति ॥ सिन्नं सेन्नं ॥

अर्थ—सैन्य शब्द में रही हुई 'ऐ' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे—सैन्यम् = सिन्नं ॥

सैन्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिन्न और सेन्न होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१५० से 'ऐ' की विकल्प से 'इ' और १-१४८ से 'ऐ' की 'ए', २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व

'मं' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *सिन्नं* और *सेन्नं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१५०॥

अइर्दैत्यादौ च ॥ १-१५१ ॥

सैन्य शब्दे दैत्य इत्येवमादिषु च ऐतो अइ इत्यादेशो भवति । एत्वापवादः ॥ सइन्नं । दइच्चो । दइन्नं । अइसरिअं । भइरवो । वइजवणो । दइवअं । वइआलीअं । वइएसो । वइएहो । वइदब्भो । वइस्साणरो । कइअवं । वइसाहो । वइसालो । सइरं । चइत्तं ॥ दैत्य । दैन्य । ऐश्वर्य । भैरव । वैजवन । दैवत । वैतालीय । वैदेश । वैदेह । वैदर्भ । वैश्वानर । कैतव । वैशाख । वैशाल । स्वैर । चैत्य । इत्यादि । विश्लेषे न भवति । चैत्यम् । चेइअं ॥ आर्षे । चैत्य वन्दनम् । ची-वन्दणं ॥

अर्थ—सैन्य शब्द में और दैत्य, दैन्य, ऐश्वर्य, भैरव, वैजवन, दैवत, वैतालीय, वैदेश, वैदेह, वैदर्भ, वैश्वानर, कैतव, वैशाख, वैशाल, स्वैर, चैत्य इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' ऐसा आदेश होता है। यह सूत्र सूत्र-संख्या १-१४८ का अपवाद है। जैसे-सैन्यम्=सइन्नं। दैत्य=दइच्चो। दैन्यम्=दइन्नं। ऐश्वर्यम्=अइसरिअं। भैरव=भइरवो। वैजवन=वइजवणो। दैवतम्=दइवअं। वैतालीयम्=वइआलीअं। वैदेश=वइएसो। वैदेह=वइएहो। वैदर्भ=वइदब्भो। वैश्वानर=वइस्साणरो। कैतवम्=कइअवं। वैशाख=वइसाहो। वैशाल=वइसालो। स्वैरम्=सइरं। चैत्यम्=चइत्तं। इत्यादि॥ जिस शब्द में संधि-विच्छेद करके शब्द को स्वर-संयुक्त कर दिया जाय तो उस शब्द में रहे हुए 'ऐ' को 'अइ' नहीं होता है। जैसे-चैत्यम्=चेइअं॥ यहाँ पर "चैत्यम्" शब्द में संधि-विच्छेद करके 'चतियम्' बना दिया गया है; इसलिये चैत्यम् में रहे हुए 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश नहीं करके सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' ही किया गया है। आर्ष-प्राकृत में 'चैत्य वन्दनम्' का 'ची-वन्दणं' भी होता है॥

सैन्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सइन्नं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व 'न्न'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सइन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैत्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइच्चो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-१३ से 'त्य' का 'च'; २-८९ से प्राप्त 'च' का द्वित्व 'च्च'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दइच्चो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैन्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइन्नं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व 'न्न', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दइन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऐश्वर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अइसरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर 'अइ" का आदेश; २-७९ से "व्" का लोप, १-२६० से शेष "श" का "स"; २-१०७ से 'र्' में "इ" का आगम; १-१७७ से "य्" का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्" का अनुस्वार होकर *अइसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। *भैरव* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भइरवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भइरवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैजवनः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइजवणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश, १-२२८ से "न" का 'ण", और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइजवणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैवतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइवअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से 'ऐ" के स्थान पर "अइ' का आदेश, १-१७७ से "त्" का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में "सि' प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर *दइवअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैतालीयम् संस्कृत रूप है। इसका प्रकृत रूप वइआलीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश, १-१७७ से 'त्' और 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वइआलीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैदेशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइएसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइएसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैदेहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइएहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थानपर 'अइ' का आदेश, १-१७७ से 'द्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइरम्मो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५२ से 'ए' के स्थान पर 'अइ' का आदेश २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म', २-९० से प्राप्त पूर्व 'म्' का 'म्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइरम्मो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैश्वानर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइस्साणरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश २-७९ से 'व्' लोप १-२६० से 'श' का 'स' २-८९ से प्राप्त 'स' का द्वित्व 'स्स' १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइस्साणरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कैतवम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कइअवं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कइअवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैशाख संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइसाहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश १-२६० से 'श' का 'स' १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैशाल संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइसालो होता है इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वैरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सइरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप, १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *सइरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चैत्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चइत्तं और चेइअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश २-७८ से 'य्' का लोप २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *चइत्तं* प्रथम रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (चेइअ) मे सूत्र सख्या १-१४८ से 'ऐ' की 'ए', २-१०७ से 'य्' के पूर्व में 'इ' का आगम; १-१७७ से न्' और 'य्' का लोप, ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'मि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर चइअं भी सिद्ध हो जाता है।

चैत्य वन्दनम् सस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में ची-वन्दणं रूप भी होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १५१ की वृत्ति मे आर्ष-दृष्टि से 'चैत्य के स्थान पर 'ची' का आदेश, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'मि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ची-वन्दणं* आर्ष-रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ -१५१॥

वैरादौ वा ॥ १-१५२ ॥

वैरादिषु ऐतः अइरादेशो वा भवति ॥ वइरं वेरं । कइलासो केलासो । कइरवं केरवं । वइसवणो वेसवणो । वइसम्पायणो वेसम्पायणो । वइआलिओ वेआलिओ । वइसिअं वेसिअं । चइत्तो चेत्तो ॥ वैर । कैलास । कैरव । वैश्रवण । वैशम्पायन । वैतालिक । वैशिक । चैत्र । इत्यादि ॥

अर्थ—वैर, कैलास, कैरव, वैश्रवण, वैशम्पायन, वैतालिक, वैशिक और चैत्र इत्यादि शब्दों में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर विकल्प से 'अइ' आदेश भी होता है। आदेश के अभाव में शब्द के द्वितीय रूप मे 'ऐ' के स्थान पर 'ए' भी होता है। जैसे-वैरम्=वइर और वेर। कैलास.=कइलासो और केलासो। कैरवम्=कइरव और केरव। वैश्रवण=वइसवणो और वेसवणो। वैशम्पायन.=वइसम्पायणो और वेसम्पायणो। वैतालिक=वइआलिओ और वेआलिओ। वैशिकम्=वइसिअ और वेसिअ। चैत्र=चइत्तो और चेत्तो॥ इत्यादि॥

वइर रूप की सिद्ध सूत्र संख्या १-६ मे की गई है।

वैरम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेर होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से ऐ' का 'ए', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वेरं रूप सिद्ध हो जाता है।

कैलास' सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइलासो और केलासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कइलासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *केलासो* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४८ में की गई है।

कैरवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइरवं और केरवं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *'कइरवं'* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप केरवं में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *केरवं* सिद्ध हो जाता है।

वैश्रवणः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसवणो और वेसवणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन से पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसवणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेसवणो में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष सिद्धि उपरोक्त वइसवणो के अनुसार होकर *वेसवणो* भी सिद्ध हो जाता है।

वैशम्पायन संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसम्पायणो और वेसम्पायणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वइसम्पायणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेसम्पायणो में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *वेसम्पायणो* रूप सिद्ध हुआ। शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना।

वैतालिकः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप वइआलिओ और वेआलिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश, १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वइआलिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेआलिओ में सूत्र-संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *वेआलिओ* रूप सिद्ध हुआ।

वैशिकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसिअं और वेसिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश, १-२६० से 'श्' का 'स्' १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान

पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वइसिअं* सिद्ध हो जाता है

द्वितीय रूप (वेसिअ) में सूत्र-संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यो *वेसिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चैत्रः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चइत्तो और चेत्तो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *चइत्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (चेत्तो) में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यो *चेत्तो* रूप सिद्ध हुआ ॥ १-१५२ ॥

एच्च दैवे ॥ १-१५३ ॥

दैव शब्दे ऐत एत् अइश्चादेशो भवति ॥ देव्वं दइव्वं दइवं ॥

अर्थः—'दैव' शब्द में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'अइ' का आदेश हुआ करता है। जैसे-दैवम्=देव्व और दइव्व। इसी प्रकार से दैवम्=दइव ॥

दैवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप देव्वं, दइव्व और दइवं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५३ से ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, २-९९ से 'व' को विकल्प रूप से द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *देव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप दइव्व' में सूत्र संख्या १-१५३ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' की प्राप्ति और शेष सिद्ध प्रथम रूप के समान ही जानना। वो *दइव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप दइव में सूत्र संख्या १-१५३ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दइवं* रूप भी सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१५३॥

उच्चैर्नीचस्यैअः ॥ १-१५४ ॥

अनयोरैतः अअ इत्यादेशो भवति । उच्चअं। नीचअ। उच्चनीचाभ्याम् के सिद्धम्। उच्चैर्नीचैसोस्तु रूपान्तर निवृत्त्यर्थं वचनम् ॥

अर्थ—उच्चै और नीचै इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर 'अअ' का आदेश होता है। जैसे-उच्चै=उच्चअं और नीचै=नीचअं ॥ उच्चै और नीचै शब्दों की सिद्धि कैसे होती है ? इस प्रश्न के दृष्टि कोण से ही यह बतलाया है कि इन दोनों शब्दों के अन्य रूप नहीं होते हैं; क्योंकि ये अव्यय हैं अतः अन्य विभक्तियों में इन के रूप नहीं बनते हैं।

उच्चैस् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप उच्चअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १५४ से 'ऐ के स्थान पर अअ' का आदेश १ २४ की वृत्ति से 'स्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उच्चअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीचैस् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप नीचअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५४ से 'ऐ के स्थान पर 'अअ' का आदेश १-२४ की वृत्ति से 'स्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नीचअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईर्धैर्ये ॥ १-१५५ ॥

धैर्य शब्दे ऐत ईद् भवति ॥ धीरं हरइ विसाओ ॥

अर्थ—धैर्य शब्द में रही हुई 'ऐ' की 'ई' होती है। जैसे-धैर्यं हरति विषाद=धीरं हरइ विसाओ ॥

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धीरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १५५ से 'ऐ' की 'ई' २-६४ से 'र्य' का विकल्प से 'र' ३-५ से द्वितीय विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'अम्' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *धीरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हरति संस्कृत सकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप हरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१३९ से वर्तमान-काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विषाद संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष्' का 'स्' १ १७७ से 'द्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१५५ ॥

ओतोद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य शिरोवेदना मनोहर सरोरुहेक्तोश्च वः ॥ १-१५६ ॥

एषु ओतोत्त्वं वा भवति तत्संनियोगे च यथा संभवं ककार तकारयोर्वादेशः ॥ अन्नम्'

न्नुन्नं । पवट्ठो पउट्ठो । आवज्जं आउज्जं । सिर विअणा सिरो-विअणा । मणहर मणोहरं । सररुह सरोरुहं ॥

अर्थः-अन्योन्य, प्रकोष्ठ, आतोद्य, शिरोवेदना, मनोहर और सरोरुह मे रहे हुए 'ओ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है, और अ' होने की दशा में यदि प्राप्त हुए उस 'अ' के साथ 'क्' वर्ण अथवा 'त्' वर्ण जुडा हुआ हो तो उस 'क्' अथवा उस 'त्' के स्थान पर 'व्' वर्ण का आदेश हो जाया करता है जैसे-अन्योन्यम्=अन्नन्न अथवा अन्नुन्न। प्रकोष्ट=पवट्ठो और पउट्ठो। आतोद्यं=आवज्ज और आउज्ज। शिरोवेदना=सिर-विअणा और सिरो-विअणा। मनोहरम्=मणहरं और मणोहरं। सरोरुहम्=सर-रुह और सरोरुह॥

अन्योन्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नन्न और अन्नुन्नं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७८ से दोनों 'य्' का लोप, २-८९ से शेष दोनों 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; १-१५६ से 'ओ' का विकल्प से 'अ', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *अन्नन्नं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (अन्नुन्नं) में सूत्र-संख्या १-१५६ के अभाव में वैकल्पिक-पक्ष होने से १-८४ से "ओ" के स्थान पर "अ" नहीं होकर "ओ" को "उ" की प्राप्ति; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *अन्नुन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रकोष्ठः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पवट्ठो और पउट्ठो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से "र्" का लोप; १-१५६ से "ओ" का "अ"; १-१५६ से ही "क्" को "व्" की प्राप्ति, २-३४ से "ष्ट" का "ठ"; २-८९ से प्राप्त "ठ" को द्वित्व "ठ्ठ" की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व "ठ्" को "ट्" की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पवट्ठो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (पउट्ठो) में सूत्र-संख्या १-१५६ के अभाव में वैकल्पिक पक्ष होने से १-८४ से "ओ" को "उ" की प्राप्ति; १-१७७ से "क्" का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *पउट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आतोद्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आवज्जं और आउज्ज होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५६ से "ओ" को "अ" की प्राप्ति और इसी सूत्र से "त्" के स्थान पर "व्" का आदेश, २-२४ से "द्य" को "ज" की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त "ज" को द्वित्व "ज्ज" की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर प्रथम रूप आवज्जं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आउज्जं) में सूत्र संख्या १ १५६ के अभाव में वैकल्पिक पक्ष होने से १-८४ से "ओ" को 'उ' की प्राप्ति १ १७७ से 'त्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *आउज्जं* सिद्ध हुआ।

शिरोवेदना संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिरविअणा और सिरोविअणा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ १५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" को 'अ' की प्राप्ति १ २६० से 'श" का 'स", १ १४६ से 'ए" को 'इ" की प्राप्ति, १ १७७ से 'द्' का लोप' १ २२८ से 'न' का "ण", संस्कृत-विधान से स्त्रीलिंग में प्रथमा-विभक्ति के एक वचन में "सि" प्रत्यय की प्राप्ति, इस 'सि' में स्थित "इ" की इत् संज्ञा और सूत्र-संख्या १ ११ से शेष 'स्' का लोप होकर *सिरविअणा* और *सिरोविअणा* दोनों ही रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

मनोहरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मणहरं और मणोहरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १ १५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" को 'अ' की प्राप्ति १-२२८ से 'न" का "ण", ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि" प्रत्यय के स्थान पर "म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त म्" का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *मणहरं* और *मणोहरं* सिद्ध हो जाते हैं।

सरोरुहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सररुहं और सरोरुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १ १५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" का 'अ' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि" प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *सररुहं* और *सरोरुहं* सिद्ध हो जाते हैं। ॥१ १५६॥

ऊत्सोच्छ्वासे ॥१ १५७॥

सोच्छ्वास शब्दे ओत ऊत् भवति ॥ सोच्छ्वासः। सूसासो।

अर्थ—सोच्छ्वास शब्द में रहे हुए 'ओ' को "ऊ" की प्राप्ति होती है। जैसे-सोच्छ्वासः= सूसासो ॥

सोच्छ्वासः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सूसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १५७ से "ओ" को "ऊ" की प्राप्ति 'च्छ्वा" शब्दांश का निर्माण संस्कृत-व्याकरण की संधि के नियमों के अनुसार "श्वा' शब्दांश से हुआ है; अतः २-७९ से व् का लोप १-२६० से "श" का 'स', और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सूसासो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१ १५७॥

गव्यउ आअः ॥१-१५८॥

गो शब्दे ओत अउ आअ इत्यादेशौ भवतः ॥ गउओ। गउआ। गाओ ॥ हरस्स एसा गाई ॥

अर्थः—गो शब्द मे रहे हुए "ओ" के स्थान पर क्रम से "अउ" और "आअ" का आदेश हुआ करता है। जैसे-गवय =गउओ और गउआ तथा गाओ ॥ हरस्य एषा गौ =हरस्स एसा गाई ॥ गउओ और गउआ इन दोनो शब्द-रूपो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५४ में की गई है।

गौः संस्कृत रूप (गो + सि) है। इसका प्राकृत रूप गाओ होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१५८ से 'ओ' के स्थान पर 'आअ' का आदेश, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हरस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरस्स होता है। इसमें 'हर' मूल रूप के साथ सूत्र संख्या ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन का पुल्लिंग का 'स्स' प्रत्यय संयोजित होकर *हरस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एसा' सर्व नाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३३ में की गई है।

गा' संस्कृत (गो + सि) रूप है। इसका प्राकृत रूप गाई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५८ से 'ओ' के स्थान पर 'आअ' आदेश की प्राप्ति, ३-३१ से पुल्लिंग शब्द को स्त्रीलिंग मे रूपान्तर करने पर 'अन्तिम-अ' के स्थान पर 'ई' की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्-संज्ञा, और १-११ से शेष 'स्' का लोप, होकर *गाई* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१५८ ॥

औत ओत ॥ १-१५९ ॥

औकारस्यादेरोद् भवति ॥ कौमुदी कोमुई ॥ यौवनम् जोव्वणं ॥ कौस्तुभः कोत्थुहो ॥ कौशाम्बी कोसम्बी ॥ क्रौञ्चः कोञ्चो ॥ कौशिकः कोसिओ ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द के आदि में 'औ' रहा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में उस 'औ' का 'ओ' हो जाता है। जैसे-कौमुदी =कोमुई ॥ यौवनम् =जोव्वण ॥ कौस्तुभ =कोत्थुहो ॥ कौशाम्बी = कोसम्बी ॥ क्रौञ्च कोञ्चो ॥ कौशिक =कोसिओ ॥ इत्यादि ॥

कौमुदी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोमुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ', और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *कोमुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

यौवनं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोव्वण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; १-२४५ से 'य' का 'ज', २-९८ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जोव्वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौसुम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोत्थुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' २ ४५ से 'स्त' का 'थ' २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व थ्थ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ' का 'त्' १ १८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोत्थुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशाम्बी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोसम्बी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' १-२६० से 'श' का स, और १-८४ से 'आ' का 'अ' होकर *कोसम्बी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौञ्च संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोञ्चो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १५९ से औ के स्थान पर ओ २-७९ से 'र्' का लोप' और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोञ्चो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशिक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोसिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' १-२६० से श का 'स' १ १७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१ १५९॥

उत्सौन्दर्यादौ ॥ १ १६० ॥

सौन्दर्यादिषु शब्देषु औत उद् भवति ॥ सुन्देरं सुन्दरिअं, मुञ्जायणो। सुण्डो। सुद्धोअणी। दुवारिओ। सुगन्धत्तणं। पुलोमी। सुवण्णिओ ॥ सौन्दर्य। मौञ्जायन। शौण्ड। शौद्धोदनि। दौवारिक। सौगन्ध्य। पौलोमी। सौवर्णिक ॥

अर्थ —सौन्दर्य' मौञ्जायन' शौण्ड; शौद्धोदनि' दौवारिक' सौगन्ध्य' पौलोमी' और सौवर्णिक इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'उ' होता है। जैसे—सौन्दर्यम्=सुन्देरं और सुन्दरिअं' मौञ्जायन=मुञ्जायणो' शौण्ड'=सुण्डो' शौद्धोदनि'=सुद्धोअणी दौवारिक'=दुवारिओ; सौगन्ध्यम्=सुगन्धत्तणं' पौलोमी=पुलोमी' और सौवर्णिक=सुवण्णिओ ॥ इत्यादि ॥

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ ५७ में की गई है।

सौन्दर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुन्दरिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति १ १०७ से 'य' के पूर्व में इ का आगम' २-७८ से 'य्' का लोप' ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुन्दरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौञ्जायनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुञ्जायणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुञ्जायणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शौण्डः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुण्डो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुण्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शौद्धोदनिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुद्धोअणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्', १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२२८ से 'न्' का 'ण', और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *सुद्धोअणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दौवारिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुवारिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचच में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकह *दुवारिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौगन्ध्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुगन्धत्तणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, २-१५४ से सस्कृत 'त्व' प्रत्यय वाचक 'य्' के स्थान पर 'त्तण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुगन्धत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पौलोमी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलोमी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति होकर *पुलोमी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौवर्णिक' सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सुवण्णिओ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१६० से 'औ के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुवण्णिओ* रूप की सिद्धि हो जाती है॥ १-१६०॥

कौक्षेयके वा ॥ १-१६१ ॥

कौक्षेयक शब्दे औत उद् वा भवति ॥ कुच्छेअयं । कोच्छेअयं ॥

अर्थ —कौक्षेयक शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। जैसे- कौक्षेयकम्=कुच्छेअयं और कोच्छेअय ॥

कौक्षेयकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कुच्छेअयं और कोच्छेअयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १ १६१ से वैकल्पिक रूप से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ' का आदेश, २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २ ९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; १ १७७ से 'य्' और 'क' का लोप, १ १८० से शेष अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *कुच्छेअयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कोच्छेअयं) में सूत्र संख्या १ १५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना यों *कोच्छेअयं* रूप सिद्ध हुआ॥ १६१॥

अउः पौरादौ च ॥ १ १६२ ॥

कौक्षेयके पौरादिषु च औत अउरादेशो भवति॥ कउच्छेअयं॥ पौरः। पउरो। पउर-जणो॥ कौरवः। कउरवो॥ कौशलम्। कउसलं। पौरुषम्। पउरिसं॥ सौधम्। सउहं॥ गौडः। गउडो॥ मौलिः। मउली॥ मौनम्। मउणं॥ सौराः। सउरा॥ कौलाः। कउला॥

अर्थः—कौक्षेयक, पौर-जन, कौरव, कौशल, पौरुष, सौध, गौड़ और कौल इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश होता है। जैसे—कौक्षेयकम्=कउच्छेअयं, पौरः=पउरो; पौर-जनः=पउर-जणो; कौरवः=कउरवो; कौशलम्=कउसलं; पौरुषम्=पउरिसं; सौधम्=सउहं, गौडः=गउडो; मौलिः=मउली; मौनम्=मउणं; सौराः=सउरा और कौलाः=कउला इत्यादि॥

कौक्षेयकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउच्छेअयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और शेष-सिद्धि सूत्र संख्या १ १६१ में लिखित नियमानुसार जानना। यों *कउच्छेअयं* रूप सिद्ध होता है।

पौरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पउरो होता है। इस में सूत्र संख्या १ १६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पौर-जनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पउर-जणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की प्राप्ति; १ २२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउर-जणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौरवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउरवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कउरवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउसलं होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश, १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कउसलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पउरिसं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१११ में की गई है।

सौधम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउहं होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश, १-१८७ से 'ध' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सउहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गौडः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गउडो होता है। इस में सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गउडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौलिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मउली होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *मउली* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौनम् : सस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रुप मउणं होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौराः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की आदेश प्राप्ति, ३-४८ से प्रथमा विभक्ति के वहु वचन में पुल्लिग में में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप, ३-१२ से प्राप्त और लुप्त जस् प्रत्यय की प्राप्ति के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'आ' होकर *सउरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौलाः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउला होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की आदेश प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप, ३-१२ से प्राप्त और लुप्त जस् प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर *कउला* रूप सिद्ध हो जाता है।

आच्च गौरवे ॥ १-१६३ ॥

गौरव शब्दे औत आत्वम् अउश्च भवति ॥ गारवं गउरवं ॥

अर्थ—गौरव शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर क्रम से 'आ' अथवा 'अउ' की प्राप्ति होती है। जैसे-गौरवम्=गारवं और गउरवं ॥

गौरवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गारवं और गउरवं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १ १६३ से क्रमिक पक्ष होने से 'औ' के स्थानपर 'आ' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गारवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (गउरवं) में सूत्र संख्या १ १६३ से ही क्रमिक पक्ष होने से 'औ' के स्थानपर 'अउ' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। इस प्रकार द्वितीय रूप *गउरवं* भी सिद्ध हो जाता है। ॥१ १६३॥

नाव्यावः ॥ १ १६४ ॥

नौ शब्दे औत आवादेशो भवति ॥ नावा ॥

अर्थ—नौ शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर आव आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे-नौ=नावा ॥

नौ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नावा होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६४ से 'औ' के स्थान पर 'आव' आदेश की प्राप्ति ३ ३१ स्त्री लिंग रूप-रचना में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १ ११ से शेष अन्त्य व्यञ्जन 'स्' का लोप होकर *नावा* रूप सिद्ध हो जाता है।

एत् त्रयोदशादौ स्वरस्य सस्वर व्यञ्जनेन ॥ १ १६५ ॥

त्रयोदश इत्येवंप्रकारेषु संख्या शब्देषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वरेण व्यञ्जनेन सह एत् भवति ॥ तेरह । तेवीसा । तेतीसा ॥

अर्थ—त्रयोदश इत्यादि इस प्रकार के संख्या वाचक शब्दों में आदि में रहे हुए 'स्वर' का पर वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' हो जाता है। जैसे-त्रयोदश=तेरह, त्रयोविंशति=तेवीसा और त्रयस्त्रिंशत्=तेतीसा। ॥ इत्यादि ॥

त्रयोदश संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तेरह होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र

में स्थित 'र्' का लोप; १-१६५ से शेष 'त' में स्थित 'अ' का और 'यो' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति, १-२१६ से 'द' के स्थान पर 'र' का आदेश, और १-२६२ से 'श' के स्थान पर 'ह' को आदेश होकर तेरह रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रयोविंशति संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तेवीसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप, १-१६५ से शेष 'त' में स्थित 'अ' का और 'यो' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति, १-२८ से अनुस्वार का लोप, १-९२ से ह्रस्व इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति और इसी सूत्र से 'ति' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स'; ३-१२ से 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने से अन्त्य 'अ' का 'आ', और ३-४ से प्राप्त 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एवं इनका लोप हो जाने से *तेवीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रयस्त्रिंशत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तेत्तीसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप, १-१६५ से शेष 'त' मे स्थित 'अ' का और 'य' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति २-७७ से 'स्' का लोप, १-२८ से अनुस्वार का लोप, २-७९ से द्वितीय 'त्र' मे स्थित 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति, १-९२ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' को 'स', १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप, ३-१२ से 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने से अन्त्य 'अ' का 'आ' और ३-४ से प्राप्त 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एवं इनका लोप हो जाने से *तेत्तीसा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१६५ ॥

स्थविर-विचकिलायस्कारे ॥ १-१६६ ॥

एषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह एद् भवति ॥ थेरो वेइल्लं। मुद्ध-विअइल्ल-पसूण पुञ्जा इत्यपि दृश्यते। एक्कारो ॥

अर्थ.—स्थविर, विचकिल और अयस्कार इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर को पर-वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-स्थविरः=थेरो; विचकिलम्=वेइल्ल, अयस्कारः=एक्कारो ॥ मुग्ध-विचकिल-प्रसून-पुञ्जा=मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुञ्जा इत्यादि उदाहरणों में इस सूत्र का अपवाद भी अर्थात् "आदि स्वर को परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' की प्राप्ति" का अभाव भी देखा जाता है।

स्थविरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप थेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-१६६ से 'थवि' का 'थे'; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के साथ 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विचकिलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेइल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६६ से

से 'विष' का 'व' १ १७७ से 'क्' का लोप २-८८ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वेइल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

मुग्ध संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मुद्ध होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'ग्' का लोप २-८९ से शेष 'ध' का द्वित्व 'धध्' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' का 'द्' होकर *मुद्ध* रूप सिद्ध हो जाता है।

विचकिल संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप विअइल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १.१७७ से 'च्' और 'क्' का लोप और २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *विअइल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रसून संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पसूण होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १ २२८ से 'न' का 'ण' होकर पसूण रूप सिद्ध हो जाता है।

पुञ्जाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुञ्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और इसका लोप तथा ३ १२ से 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं इसका लोप होने से पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' का 'आ' होकर *पुञ्जा* रूप सिद्ध हो जाता है।

नयस्कारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १६६ से 'अय' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति २-७७ से 'स' का लोप २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एक्कारो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१६६॥

वा कदले ॥१-१६७॥

कदल शब्दे आदे स्वरस्य परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह एद् वा भवति ॥ केलं कयलं। केली कयली ॥

अर्थ —कदल शब्द में रहे हुए आदि स्वर 'अ' को परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति होती है। जैसे-कदलम्=केलं और कयलं ॥ कदली=केली और कयली ॥

कदलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केलं और कयलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १ १६७ से 'कद' के स्थान पर 'के' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप केलं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कयलं) में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। इस प्रकार *कयलं* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

कदली संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केली और कयली होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६७ से 'कद' के स्थान पर 'के' की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति, और प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ' की इत् संज्ञा, तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर प्रथम रूप *केली* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कयली) में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' का 'य' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना॥ इस प्रकार *कयली* रूप भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१६८॥

वेतः कर्णिकारे ॥१-१६८॥

कर्णिकारे इतः सस्वर व्यञ्जनेन सह एद् वा भवति॥ कण्णेरो कण्णिआरो॥

अर्थः—कर्णिकार शब्द में रही हुई 'इ' के स्थान पर पर-वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति होती है। जैसे-कर्णिकार = कण्णेरो और कण्णिआरो॥

कर्णिकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्णेरो और कण्णिआरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण', १-१६८ से वैकल्पिक रूप से 'इ' सहित 'का' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम *कण्णेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कण्णिआरो) में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण', १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कण्णिआरो* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

अयौ वैत् ॥१-१६९॥

अयि शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ऐद् वा भवति। ऐ बीहेमि। अइ उम्मत्तिए। वचनादैकारस्यापि प्राकृते प्रयोगः॥

अर्थः—'अयि' अव्यय संस्कृत शब्द में आदि स्वर 'अ' और परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन 'यि' के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'अयि' अव्ययात्मक शब्द के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ऐ' की प्राप्ति होती है। जैसे-अयि! बिभेमि = ऐ बीहेमि॥ अयि! उन्मत्तिके = अइ उम्मत्तिए॥ इस सूत्र में 'अयि' अव्यय के स्थान पर 'ऐ' का आदेश किया गया है। यद्यपि प्राकृत भाषा में 'ऐ' स्वर नहीं होता है, फिर भी

इस अव्यय में सम्बोधन रूप वाक्य प्रयोग की स्थिति होने से प्राकृत भाषा में 'ऐ' स्वर का प्रयोग किया गया है ॥

अयि संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ऐ और अइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६९ से 'अयि' के स्थान पर 'ऐ' का आदेश, हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप होने से *अइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिभेमि संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप बीहेमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-५३ से 'भी' संस्कृत धातु के स्थान पर 'बीह' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से व्यञ्जनान्त धातु में पुरुष-बोधक प्रत्ययों की प्राप्ति के पूर्व में 'अ' की प्राप्ति; ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ए' का आदेश, और ३-१४१ से वर्तमानकाल में तृतीय पुरुष के अथवा उत्तम पुरुष के एक वचन में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बीहेमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

उन्मत्तिके संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उम्मत्तिए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'उन्-मत्तिके' संस्कृत मूल रूप होने से 'न्' का लोप, २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-१७७ से 'क्' का लोप होकर उम्मत्तिए रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१६९ ॥

ओत्पूतर-बदर नवमालिका नवफलिका पूगफले ॥ १-१७० ॥

पूतरादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ओद् भवति ॥ पोरो। बोरं। बोरी। नोमालिआ। नोहलिआ। पोप्फलं। पोप्फली ॥

अर्थ:—पूतर, बदर, नवमालिका, नवफलिका और पूगफल इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर के साथ परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—पूतरः = पोरो, बदरम् = बोरं, बदरी = बोरी, नवमालिका = नोमालिआ, नवफलिका = नोहलिआ, पूगफलम् = पोप्फलं और पूगफली = पोप्फली ॥

पूतरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'ऊ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति अर्थात् 'पूत' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति होकर पोरो रूप सिद्ध हो जाता है।

बदरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बोरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'द' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति अर्थात् 'बद' के स्थान पर 'बो' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर बोरं रूप सिद्ध हो जाता है।

बदरी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बोरी होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'द' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति, अर्थात 'बद' के स्थान पर 'बो' की प्राप्ति, संस्कृत विधान मे प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ' की इत्संज्ञा, और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर *बोरी* रूप सिद्ध हो जाता है

नवमालिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नोमालिआ होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति, (अर्थात् 'नव' के स्थान पर 'नो' की प्राप्ति), १-१७७ से 'क्' का लोप, संस्कृत-विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर नोमालिआ रूप सिद्ध हो जाता है। *नवफालिका* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नोहलिआ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति, (अर्थात 'नव' के स्थान पर 'नो' की प्राप्ति) १-२३६ से 'फ' का 'ह', १-१७७ से 'क् का लोप, संस्कृत-विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर *नोहलिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पूगफलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पोप्फल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'ग' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; (अर्थात् 'पूग' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति,) २-८९ से 'फ' का द्वित्व 'फ्फ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ् को 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पोप्फल* रूप सिद्ध हो जाता है।

पूगफली संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पोप्फली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'उ' सहित पर वर्ती स्वर सहित 'ग' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति, (अर्थात् 'पूग' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति,) २-८९ से 'फ' का द्वित्व 'फ्फ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति, संस्कृत-विधान के अनुसार स्त्रीलिंग के प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति, इस में 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से 'स्' का लोप होकर *पोप्फली* रूप सिद्ध हो जाता है।

न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले ॥ १-१७१ ॥

मयूखादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति ॥ मोहो मऊहो । लोणं । इअ लवणुग्गमा । चोग्गुणो । चउग्गुणो । चोत्थो चउत्थो । चोत्थी चउत्थी ॥ चोद्दह ।

चउद्दह ॥ चोद्दसी चउद्दसी । चोव्वारो चउव्वारो । सोमालो सुकुमालो । कोहलं कोउहल्लं । तह मन्ने कोहलिए । ओहलो उऊहलो । ओक्खलं । उलूहलं ॥ मोरो मऊरो इति तु मोर-मयूर शब्दाभ्यां सिद्धम् ॥

अर्थ—मयूख; लवण, लवणोद्गमा, चतुर्गुण चतुर्थ चतुर्थी, चतुर्दश चतुर्दशी चतुर्वार सुकुमार, कुतूहल, कुतूहलिका और उदूखल इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर का परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे-मयूख=मोहो और मऊहो। लवणम्=लोणं और लवणं। चतुर्गुण=चोग्गुणो और चउग्गुणो। चतुर्थ=चोत्थो और चउत्थो। चतुर्थी=चोत्थी और चउत्थी। चतुर्दश=चोद्दहो और चउद्दहो। चतुर्दशी=चोद्दसी और चउद्दसी। चतुर्वार=चोव्वारो और चउव्वारो। सुकुमार=सोमालो और सुकुमालो। कुतूहलम्=कोहलं और कोउहल्लं। कुतूहलिके=कोहलिए और कुऊहलिए। उदूखल=ओहलो और उऊहलो। उदूखलम्=ओक्खलं और उलूहलं। इत्यादि॥ प्राकृत शब्द मोरो और मऊरो संस्कृत शब्द मोर और मयूर इन अलग अलग शब्दों से रूपान्तरित हुए हैं, अतः इन शब्दों में सूत्र संख्या १-१७१ का विधान नहीं होता है।

मयूख संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मोहो और मऊहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'य' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अयू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप मोहो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मऊहो में वैकल्पिक-विधान होने से सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप मऊहो भी सिद्ध हो जाता है।

लवणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लोणं और लवणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप लोणं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप लवणं में वैकल्पिक-विधान होने से सूत्र संख्या १-१७१ की प्राप्ति का अभाव और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप लवणं भी सिद्ध हो जाता है।

इति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप इअ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९१ से 'ति' में स्थित 'इ' का 'अ' और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर इअ रूप सिद्ध हो जाता है।

लवणोद्गमाः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप लवणुग्गमा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ओ' का 'उ'; २-७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; ३-२७ से स्त्री लिंग में प्रथमा-विभक्ति और द्वितीया-विभक्ति मे 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययों के स्थान पर वैकल्पिक-पक्ष में प्राप्त प्रत्ययों का लोप होकर *लवणुग्गमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

चतुर्गुणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोग्गुणो और चउग्गुणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप चोग्गुणो मे सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' को लोप, २-८९ से 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोग्गुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउग्गुणो में वैकल्पिक-स्थिति होने से १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *चउग्गुणो* भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोत्थो और चउत्थो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र' का लोप, २-८९ से 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *चोत्थो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउत्थो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *चउत्थो* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थी संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोत्थी और चउथी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'थ' को द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' और ३-३१ से संस्कृत मूल-शब्द 'चतुर्थ' के प्राकृत रूप चोत्थ में स्त्रीलिंग वाचक स्थिति में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोत्थी* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउत्थी में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्ध प्रथम रूप के समान ही होकर *चउत्थी* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्दशः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोद्दहो और चउद्दहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप,

२-८६ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति १-२६२ से 'श' को 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप चोद्दहो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप 'चउद्दहो' में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप चउद्दहो भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्दशी संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोद्दसी और चउद्दसी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति १-२६० से 'श्' का 'स्' और ३-३१ से संस्कृत के मूल-शब्द चतुर्दश के प्राकृत रूप चोद्दस में स्त्री लिंग वाचक स्थिति में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप चोद्दसी सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउद्दसी में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप चउद्दसी भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्वार संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चोव्वारो और चउव्वारो होते हैं। इसके प्रथम रूप चोव्वारो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'व्' को द्वित्व 'व्व्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर चोव्वारो रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउव्वारो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप चउव्वारो भी सिद्ध हो जाता है।

सुकुमार संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सोमालो और सुकुमालो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सोमालो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'कु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उकु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति १-२५४ से 'र' को 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप सोमालो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुकुमालो में सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' को 'ल' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप सुकुमालो भी सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कोहलं और कोउहल्लं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप कोहलं में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तू' व्यञ्जन

के स्थान पर अर्थात् 'उतू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप कोहलं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कोउहल्लं की सिद्धि सूत्र संख्या १-११७ में की गई है।

तह अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १ ६७ में की गई है।

मन्ये संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप मन्ने होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति होकर मन्ने रूप सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलिके संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप कोहलिए और कुऊहलिए होते हैं। इनमें से प्रथम रूप कोहलिए में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात 'उतू शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-४१ से मूल संस्कृत शब्द कुतूहलिका के प्राकृत रूपान्तर कुऊहलिआ में स्थित अन्तिम 'आ' का सबोधन के एक वचन में 'ए' होकर प्रथम रूप *कोहलिए* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप कुऊहलिए में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्ध प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *कुऊहलिए* भी सिद्ध हो जाता है।

उदूखलः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओहलो और उऊहलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओहलो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'दू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उदू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओहलो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उऊहलो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *उऊहलो* भी सिद्ध हो जाता है।

उलूखलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओक्खलं और उलूहलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओक्खलं में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'लू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् उलू शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *ओक्खलं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उलूहलं में सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' को 'ह' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *उलूहलं* भी सिद्ध हो जाता है।

मोर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'मोरो' रूप सिद्ध हो जाता है।

मयूर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मऊरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर मऊरो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १—१७१ ॥

अवापोते ॥ १-१७२ ॥

अवापयोरुपसर्गयोरुत इति विकल्पार्थ—निपाते च आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति ॥ अव । ओअरइ । अवयरइ । ओआसो अवयासो ॥ अप । ओसरइ अवसरइ । ओसारिअं अवसारिअं ॥ उत । ओ वणं । ओ घणो । उअ वणं । उअ घणो ॥ क्वचिन्न भवति । अवगयं । अवसद्दो । उअ रवी ॥

अर्थ —'अव' और 'अप' उपसर्गों के तथा विकल्प—अर्थ सूचक 'उत' अव्यय के आदि स्वर सहित परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अव', 'अप' और 'उत' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति होती है। जैसे—'अव' के उदाहरण इस प्रकार है —अवतरति = ओअरइ और अवयरइ। अवकाश = ओआसो और अवयासो। 'अप' उपसर्ग के उदाहरण इस प्रकार हैं—अपसरति= ओसरइ और अवसरइ। अपसारितम् = ओसारिअं और अवसारिअं॥ उत अव्यय के उदाहरण इस प्रकार हैं—उतवनम् = ओ वणं। और उअ वणं। उतघन = ओ घणो और उअ घणो॥ किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'अव' तथा 'अप' उपसर्गों के और 'उत' अव्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति नहीं हुआ करती है। जैसे अवगतम् = अवगयं। अपशब्द = अवसद्दो। उत रविः = उअ रवी॥

अवतरति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसके प्राकृत रूप ओअरइ और अवयरइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओअरइ में सूत्र-संख्या १—१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात 'अव' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत—प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप ओअरइ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवयरइ में सूत्र संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप १ १८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप अवयरइ भी सिद्ध हो जाता है।

अवकाश संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओआसो और अवयासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओआसो में सूत्र संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के

स्थान पर अर्थात् 'अव' उपसर्ग के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओआसो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *अवयासो* की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है। *अपसरति* संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसके प्राकृत रुप ओसरइ और अवसरइ होते हैं। इनमें से प्रथम रुप ओसरइ में सूत्र सख्या १-१७२ से आदिस्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अप' उपसर्ग के स्थान पर वैकलिपक रूप से 'ओ' की प्राप्ति और ३-१३६ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में सस्कृत-प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओसरइ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवसरइ में सूत्र सख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *अवसरइ* भी सिद्ध हो जाता है।

अपसारितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप ओसारिअं और अवसारिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओसारिअं में सूत्र संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अप' उपसर्ग के स्थान पर वैकलिपक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *ओसारिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवसारिअं में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रुप *अवसारिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

उतवनम् सस्कृत वाक्यांश है इसके प्राकृत रुप ओवणं और उअवणं होते हैं। इनमें से प्रथम रुप 'ओवणं' में सूत्र सख्या १-१७२ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उत' अव्यय के स्थान पर वैकल्पिक रुप से 'ओ' की प्राप्ति, द्वितीय शब्द वर्ण में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण' और १-२३ से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *"ओवणं"* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप 'उअ वणं' मे सूत्र-सख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रुप *'उअवणं'* भी सिद्ध हो जाता है।

'उतघन.' सस्कृत वाक्यांश है। इसके प्राकृत रुप 'ओ घणो' और 'उअघणो' होते हैं। इनमें से प्रथम रुप 'ओ घणो' में सूत्र-सख्या १-१७२ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' व्यञ्जन के स्थान पर वैकलिपक रूप से 'ओ' की प्राप्ति, द्वितीय शब्द 'घणो' में सूत्र-सख्या १—२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओघणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उअमण्णा में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *उअमण्णी* भी सिद्ध हो जाता है।

अवगतम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवगयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर *अवगयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अपशब्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवसद्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व', १-२६० से 'श' का 'स', २-७९ से 'ब्' का लोप २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवसद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत रविः संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप उअरवी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर उअ अव्यय रूप सिद्ध हो जाता है। रवी में सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्राकृत वाक्यांश *उअ रवी* सिद्ध हो जाता है॥ १-१७२॥

ऊच्चोपे ॥ १-१७३ ॥

उपशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ऊत् ओच्चादेशौ वा भवतः॥
ऊहसिअं ओहसिअं उवहसिअं। ऊज्झाओ ओज्झाओ उवज्झाओ। ऊआसो ओआसो उववासो॥

अर्थः—'उप' शब्द में आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'उप' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से और क्रम से 'ऊ' और 'ओ' आदेश हुआ करते हैं। तदनुसार 'उप' के प्रथम रूप में 'ऊ', द्वितीय रूप में 'ओ' और तृतीय रूप में 'उव' क्रम से वैकल्पिक रूप से और आदेश रूप से हुआ करते हैं। जैसे—उपहसितम् = ऊहसिअं, ओहसिअं और उवहसिअं। उपाध्यायः = ऊज्झाओ ओज्झाओ और उवज्झाओ। उपवासः = ऊआसो ओआसो और उववासो॥

उपहसितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ऊहसिअं ओहसिअं और उवहसिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ऊहसिअं में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *ऊहसिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ओहसिअं में सूत्र संख्या १-१७३ से वैकल्पिक रूप से 'उप' शब्दांश के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *ओहसिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रुप उवहसिअं में वैकल्पिक विधान की संगति होने से सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रुप के समान ही होकर तृतीय रुप *उवहसिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

उपाध्यायः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ऊज्झाओ, ओज्झाओ और उवज्झाओ होते हैं। इनमे से प्रथम रुप ऊज्झाओ में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्कि रुप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति; १-८४ 'पा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; २-२६ से 'ध्य्' के स्थान पर 'झ' का आदेश, २-८९ से प्राप्त 'झ्' को द्वित्व झ्झ् की प्राप्ति, २९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्'; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिंग में 'सि' प्रत्ययके स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ऊज्झाओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ओज्झाओ में सूत्र-सख्या १-१७३ से वैकल्पिक रुप से 'उप' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रुप के समान ही होकर द्वितीय रुप *ओज्झाओ* सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रुप उवज्झाओ में वैकल्पिक-विधान संगति होने से सूत्र-संख्या-१-२३१ 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान होकर तृतीय रूप *उवज्झाओ* भी सिद्ध हो जाता है।

उपवासः संस्कृत रुप है। इसके प्राकृत रूप ऊआसो, ओवआसो और उववासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ऊआसो में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर वैकल्पिक रुप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति, १-१७७ से 'व्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रुप *ऊआसो* सिद्ध हो जाता हैं।

द्वितीय रूप ओआसो में सूत्र-सख्या १-१७३ से वैकल्पिक रूप से 'उप' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रुप के समान ही होकर द्वितीय रुप *ओआसो* भी सिद्ध हो जाता है

तृतीय रूप उववासो में वैकल्पिक-विधान की संगति होने से सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *उववासो* भी सिद्ध हो जाता है॥ १-१७३॥

उमो निषण्णे ॥ १-१७४ ॥

निषण्ण शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह उम आदेशो वा भवति ॥ णुमण्णो णिसण्णो ॥

अर्थः—'निषण्ण' शब्द में स्थित आदि स्वर 'इ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'ष' व्यञ्जन के

स्थान पर अर्थात् 'इप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उम' आदेश की प्राप्ति हुआ करता है। जैसे—निषण्णः = णुमण्णो और णिसण्णो ॥

निषण्ण संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप णुमण्णो और णिसण्णो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप णुमण्णो में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण'; १-१७४ से आदि स्वर 'इ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'इप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उम' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *णुमण्णो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप णिसण्णो में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण्'; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *णिसण्णो* भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१७४॥

प्रावरणे अङ्ग्वाऊ ॥ १ १७५ ॥

प्रावरण शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह अङ्गु आउ इत्येतावादेशौ वा भवतः ॥ पङ्गुरणं पाउरणं पावरणं ॥

अर्थ—प्रावरणम् शब्द में स्थित आदि स्वर 'आ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से और क्रम से 'अङ्गु' और 'आउ' आदेशों की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-प्रावरणम्=पङ्गुरणं, पाउरणं और पावरणं ॥

प्रावरणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पङ्गुरणं पाउरणं और पावरणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप पङ्गुरणं में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १ १७५ से आदि स्वर 'आ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अङ्गु आदेश की प्राप्ति; ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *पङ्गुरणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप पाउरणं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १ १७५ से 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'आउ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पाउरणं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप पावरणं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पावरणं* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ १ १७५ ॥

स्वरादसंयुक्तस्यानादेः ॥१-१७६॥

अधिकारोयम्। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्भवतीति वेदितव्यम् ॥

अर्थः-यह सूत्र अधिकार-वाचक सूत्र है। अर्थात् इस सूत्र की सीमा और परिधि आगे आने वाले अनेक सूत्रों से संबंधित है। तदनुसार आगे आने वाले सूत्रों मे लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओं का जो विधान किया जाने वाला है, उनके संबंध मे यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओं से संबंध रखने वाले वे वर्ण किसी भी स्वर के पश्चात्वर्ती हो, असयुक्त हो अर्थात् हलन्त न होकर स्वरान्त हो और आदि मे भी स्थित न हों। स्वर से परवर्ती, असयुक्त और अनादि ऐसे वर्णों के संबंध में ही आगे के सूत्रो द्वारा लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओ की दृष्टि से विधान किया जाने वाला है। यही सूचना, संकेत और विधान इस सूत्र में किया गया है। अत. वृत्ति में इसको 'अधिकार-वाचक' सूत्र की संज्ञा प्रदान की गई है जो कि ध्यान में रक्खी जानी चाहिये ॥१-१७६॥

क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक् ॥१-१७७॥

स्वरात्परेषामनादिभूतानामसंयुक्तानां क ग च ज त द प य वा नां प्रायो लुग् भवति ॥ क। तित्थयरो। लोओ। सयढं ॥ ग। नओ। नयरं मयङ्को ॥ च। सई ॥ कय-ग्गहो ॥ ज। रययं। पयावई। गओ ॥ त। विआणं। रसा-यलं। जई ॥ द। गया। मयणो ॥ प। रिऊ। सुउरिसो ॥ य। दयालू। नयणं। विओओ ॥ व। लायण्णं। विउहो। वलयाणलो ॥ प्रायो ग्रहणात् क्वचिन्न भवति। सुकुसुमं। पयाग जलं। सुगओ। अगरू। सचावं। विजणं। सुतारं। विदुरो। सपावं। समवाओ। देवो। दाणवो ॥ स्वरादित्येव। संकरो। संगमो। नक्कंचरो। धणंजओ। विसंतवो। पुरंदरो। संवुडो। संवरो ॥ असंयुक्तस्येत्येव। अक्को। वग्गो। अच्चो। वज्जं। धुत्तो। उद्दामो। विप्पो। कज्जं। सव्वं ॥ क्वचित् संयुक्तस्यापि। नक्तंचरः = नक्कंचरो ॥ अनादेरित्येव। कालो। गन्धो। चोरो। जारो। तरू। दवो। पावं। पण्णो ॥ यकारस्य तु जत्वम् आदौ वक्ष्यते। समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षया भिन्न-पदत्वमपि विवक्ष्यते। तेन तत्र यथादर्शनमुभयमपि भवति। सुहकरो सुहयरो। आगमिओ आयमिओ। जलचरो जलयरो। बहुतरो बहुअरो। सुहदो। सुहओ। इत्यादि ॥ क्वचिदादे-रपि। स पुनः = स उण। स च = सो अ ॥ चिह्नं = इन्धं ॥ क्वचिच्चस्य जः। पिशाची। पिसाजी ॥ एकत्वम् = एगत्तं। एकः = एगो ॥ अमुकः = अमुगो ॥ असुकः = असुगो ॥ श्रावकः = सावगो ॥ आकारः = आगारो ॥ तीर्थंकरः = तित्थगरो ॥ आकर्षः = आगरिसो ॥ लोगस्सुज्जोअगरा इत्यादिषु तु व्यत्ययश्च (४-४४७) इत्येव कस्य गत्वम् ॥ आर्षे अन्यदपि दृश्यते। आकुञ्चनं = आउण्टणं ॥ अत्र चस्य टत्वम् ॥

अर्थ —यदि किसी भी शब्द में स्वर के पश्चात् क, ग, च, ज, त, द, प, य और व अनादि रूप से-(याने आदि में नहीं) और असंयुक्त रूप से (याने हलन्त रूप से नहीं) रहे हुए हों तो उनका प्रायः अर्थात् बहुत करके लोप हो जाता है। जैसे-'क' के उदाहरण—तीर्थंकर = तित्थयरो। लोकः=लोओ। शकटम्=सयढं। ग के उदाहरण =नगः=नओ। नगरम्=नयरं। मृगांकः=मयङ्को॥ 'च' के उदाहरण—शची=सई। कचग्रहः=कयग्गहो। 'ज' के उदाहरण—रजतम्=रययं। प्रजापतिः=पयावई गजः=गओ। 'त' के उदाहरण=वितानम्=विआणं। रसातलम्=रसायलं। यतिः=जई॥ 'द' के उदाहरण—गदा=गया। मदनः=मयणो। 'प' के उदाहरण—रिपुः=रिऊ। सुपुरुषः=सुउरिसो॥ 'य' के उदाहरण—दयालुः=दयालू। नयनम्=नयणं। वियोगः=विओओ॥ 'व' के उदाहरण=लावण्यम्=लायण्णं। विबुधः=विउहो। वडवानलः=वलयाणलो॥

सूत्र में 'प्रायः' अव्यय का ग्रहण किया गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि बहुत करके लोप होता है, तदनुसार किन्हीं किन्हीं शब्दों में क, ग, च, ज, त, प, य और व का लोप नहीं भी होता है। जैसे-'क' का उदाहरण—सुकुसुमं=सुकुसुमं 'ग' के उदाहरण प्रयाग जलम्=पयाग जलं। सुगतः=सुगओ। अगुरुः=अगुरू। 'च' का उदाहरण—सचापम्=सचावं। ज का उदाहरण—व्यजनम्=विजणं। 'त' का उदाहरण—सुतारम्=सुतारं। 'द' का उदाहरण—विदुरः=विदुरो। 'प' का उदाहरण—सपापम्=सपावं। 'व' के उदाहरण—समवायः=समवाओ। देवः=देवो। और दानवः=दाणवो॥ इत्यादि॥

प्रश्न—'स्वर के पर वर्ती हों'-ऐसा क्यों कहा गया?

उत्तर—यदि क, ग, च, ज, त, द, प, य और व स्वर के परवर्ती अर्थात् स्वर के बाद में रहे हुए नहीं हों तो उनका लोप नहीं होता है। जैसे- क का उदाहरण—शंकरः=संकरो। 'ग' का उदाहरण—संगमः=संगमो। 'च' का उदाहरण =नक्तंचरः=नक्कंचरो। 'ज' का उदाहरण—धनंजयः=धणंजओ। 'त' का उदाहरण—विसंतपः=विसंतवो। 'द' का उदाहरण—पुरंदरः=पुरंदरो। 'व' के उदाहरण—संवृतः=संवुडो और संवरः=संवरो॥

प्रश्न—'असंयुक्त याने पूर्ण-(हलन्त नहीं)-ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि 'क ग च ज त द प य और व हलन्त हैं, याने स्वरान्त रूप से नहीं हैं और अन्य वर्णों में संयुक्त रूप से स्थित हैं; तो इनका लोप नहीं होता है। जैसे- क का उदाहरण—अर्कः=अक्को। 'ग्' का उदाहरण—वर्गः=वग्गो। 'च्' का उदाहरण—अर्चः=अच्चो। 'ज्' का उदाहरण—वज्रम्=वज्जं। 'त्' का उदाहरण—धूर्तः=धुत्तो। 'द्' का उदाहरण =उद्दामः=उद्दामो। 'प्' का उदाहरण—विप्रः=विप्पो। य् का उदाहरण—कार्यम्=कज्जं। और 'व्' का उदाहरण—सर्वम्=सव्वं॥ इत्यादि॥ किन्हीं किन्हीं शब्दों में संयुक्त रूप से रहे हुए 'क्', 'ग्' आदि का लोप भी देखा जाता है। जैसे—नक्तंचरः=नक्कंचरो। यहां पर संयुक्त 'त्' का लोप हो गया है।

प्रश्नः—'अनादि रूप से रहे हुए हो' अर्थात् शब्द के आदि में नहीं रहे हुए हों; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि 'क, ग, च, ज त, द, प, य और व' वर्ण किसी भी शब्द के आदि भाग में रहे हुए हों तो इन का लोप नहीं होता है। जैसे-'क' का उदाहरणः-कालः=कालो। 'ग' का उदाहरणः-गन्धः=गन्धो। 'च' का उदाहरणः-चोरः=चोरो। 'ज' का उदाहरणः-जारः=जारो। 'त' का उदाहरणः-तरुः=तरू। 'द' का उदाहरणः-द्रवः=द्रवो। 'प' का उदाहरणः-पापम्=पावम्। 'व' का उदाहरणः-वर्णः=वण्णो॥ इत्यादि॥

शब्द में आदि रूप से स्थित 'य' का उदाहरण इस कारण से नही दिया गया है कि शब्द के आदि में स्थित 'य' का 'ज' हुआ करता है। इसका उल्लेख आगे सूत्र संख्या १-२४५ में किया जायगा। समास गत शब्दों में वाक्य और विभक्ति की अपेक्षा से पदों की गणना अर्थात् शब्दों की मान्यता पृथक् पृथक भी मानी जा सकती है, और इसी बात का समर्थन आगे भी किया जायगा, तदनुसार उन समास गत शब्दों में स्थित 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' का लोप होता है और नहीं भी होता है। दोनों प्रकार की स्थिति देखी जाती है। जैसे-'क' का उदाहरण-सुखकरः=सुहकरो अथवा सुहयरो। 'ग' का उदाहरण-आगमिकः=आगमिओ अथवा आयमिओ। 'च' का उदाहरणः जलचरः=जलचरो अथवा जलयरो 'त' का उदाहरण बहुतर=बहुतरो अथवा बहुअरो। 'द' का उदाहरणः-सुखदः=सुहदो अथवा सुहओ॥ इत्यादि॥

किन्हीं किन्हीं शब्दों में यदि 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' आदि में स्थित हों तो भी उनका लोप होता हुआ देखा जाता है। जैसे-'प' का उदाहरण-स पुनः=स उण॥ 'च' का उदाहरणः-स च=सो अ॥ चिह्नम्=इन्ध॥ इत्यादि॥

किसी किसी शब्द में 'च' का 'ज' होता हुआ भी पाया जाता है। जैसे—पिशाची=पिसाजी॥ किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति हो जाती है। जैसे—एकत्वम्=एगत्तं॥ एकः=एगो॥ अमुकः=अमुगो॥ असुकः=असुगो॥ श्रावकः=सावगो॥ आकारः=आगारो। तीर्थंकर,=तित्थगरो॥ आकर्षः=आगरिसो॥ लोकस्य उद्योतकराः=लोगस्स उज्जोअगरा॥ इत्यादि शब्दों में 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है। इसे व्यत्यय भी कहा जाता है। व्यत्यय का तात्पर्य है—वर्णों का परस्पर में एक के स्थान पर दूसरे की प्राप्ति हो जाना; जैसे—'क' के स्थान पर 'ग' का होना और 'ग' के स्थान पर 'क' का हो जाना। इसका विशेष वर्णन सूत्र-संख्या ४-४४७ में किया गया है। आर्ष प्राकृत में वर्णों का अव्यवस्थित परिवर्तन अथवा अव्यवस्थित वर्ण आदेश भी देखा जाता है। जैसे-आकुञ्चनम्=आउण्टणं॥ इस उदाहरण में 'च' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति हुई है। यों अन्य आर्ष-रूपों में भी समझ लेना चाहिये॥

तीर्थकर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्थयरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' को ह्रस्व 'इ' २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से थ का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्', १-१७७ से क् का लोप १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तित्थयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शकटम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयढं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से श को 'स' १-१७७ से 'क्' का लोप १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति १-१९६ से 'ट' को 'ढ' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार होकर *सयढं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नग संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नगरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नयरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से ग्' का लोप १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर *नयरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मयङ्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३० में की गई है।

शची संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' को 'स' १-१७७ से 'च्' का लोप और संस्कृत-विधान के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति इसमें अन्त्य 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर *सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

कचग्रहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कयग्गहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च' का लोप १-१८० से 'अ' को 'य' की प्राप्ति २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कयग्गहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रजतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रययं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' और 'त्' का लोप; १-१८० से शेष दोनों 'अ' 'अ' के स्थान पर 'य' 'य' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति

के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रययं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रजापतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप पयावई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का का लोप, १-१७७ से 'ज्' और 'त्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'ज्' के अवशिष्ट 'आ' को 'या' की प्राप्ति, १-२३१ से द्वितीय 'प' को 'व' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व ईकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *पयावई* रुप सिद्ध हो जाता है।

गजः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गओ होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वितानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विआणं होता है। इस में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपु सक लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विआणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

रसातलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रसायल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १ १८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रसायलं* सिद्ध हो जाता है।

यातिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जई होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज', १-१७७ से 'त' का लोप, ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *जई* रूप सिद्ध हो जोता है।

गदा सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति; सस्कृत विधान के अनुस्वार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्री लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्सञ्ज्ञा और १-११ से शेप अन्त्य 'स्' का लोप होकर *गया* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मयणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मयणो* रूप सिद्ध हो जातो है।

रिपु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *रिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुउरिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है। *श्यामु* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दयाऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'यु' का लोप १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति; और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *श्यामू* रूप सिद्ध हो जाता है।

नयनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति १-२२८ से द्वितीय 'न' को 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वियोग संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विओओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' और 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विओओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लावण्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लायण्णं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप, १-१८० से लुप्त 'व्' के अवशिष्ट 'अ' को 'य' की प्राप्ति १-८४ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लायण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विबुध संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विउहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३७ से 'ब' को 'व' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'व्' का लोप, १-१८७ से 'ध्' को 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विउहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वडवानल संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलयाणलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' को 'ल' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'व्' का लोप १-१८० से लुप्त द्वितीय 'व्' में से अवशिष्ट 'अ' को 'य्' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वलयाणलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुकुसुमम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुकुसुमं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुकुसुमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रयाग जलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पयागजल होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७६ से 'र्' का लोप, और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *पयाग जलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुगतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुगओ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुगओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अगुरुः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अगुरू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति होकर *अगुरू* रूप सिद्ध हो जाता है।

सचापम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सचावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सचावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यजनम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विजणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-४६ से शेष 'व' में स्थित 'अ' को 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विजणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुतारम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुतारं होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुतारं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विदुरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विदुरो होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विदुरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सपापम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सपावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सपावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समवायः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप समवाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समवाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वैरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दानव संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाणवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दाणवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शंकर' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संकरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से श का 'स' की प्राप्ति १-२५ से 'ङ' का अनुस्वार, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संकरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संगम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संगमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संगमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नक्तंचर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नक्कंचरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'त्' का लोप २-८९ से शेष 'क' का द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नक्कंचरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनञ्जय संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धणंजओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न को 'ण' की प्राप्ति १-२५ से 'ञ् को अनुस्वार की प्राप्ति १-१७७ से 'य् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणंजओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विषतप संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसंतवो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप १-२६० से 'ष' को 'स की प्राप्ति १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसंतवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरंदर' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरंदरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुरंदरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवृत' संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संवुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' को 'उ की प्राप्ति १-१७७ से 'त को 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संवुडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संवरो होता है। इसमे सूत्र सख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर संवरो रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्कः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अक्को होता है। इसमे सूत्र सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*अक्को*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्गः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वग्गो होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्चः सस्कृत रूप है। इमका प्राकृत रूप अच्चो होता है। इसमे सूत्र सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*अच्चो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वज्रम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वज्ज होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति-के एक वचन मे नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार होकर *वज्जं* रूप सिद्ध हो जाता है।

धूर्तः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुत्तो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ', २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्दामः सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उद्दामो होता है। इसमे सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उद्दामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विप्र संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विप्पो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विप्पो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कार्यम् सस्कृत विशेष रूप है। इसका प्राकृत रूप कज्जं होता है। इसमें सूत्र सख्या १-८४ से

दीर्घ 'आ' का ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति २-२४ से 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कज्जं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वम् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप सव्वं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नक्कंचरा रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

काल संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कालो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गन्ध संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गन्धो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गन्धो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चौर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चोरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोरो* रूप सिद्ध हो जाता है

जार संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जारो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तरू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'उ' का दीर्घ 'ऊ' होकर *तरू* रूप सिद्ध हो जाता है।

दव संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दवो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पापम् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप पावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वग्गो रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-१४१ मे की गई है।

सुखकर संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुहकरो और सुहयरो होते है। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सुहकरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुहयरो में सूत्र सख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुहयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आगमिकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आगमिओ और आयमिओ होते है। इनमे से प्रथम रूप आगमिओ में सूत्र सख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आगमिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप आयमिओ में सूत्र-सख्या १-१७७ की वृत्ति से वैकल्पिक-विधान के अनुसार 'ग्' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आगमिओ* भी सिद्ध हो जाता है।

जलचरः सस्कृत रुप है। इसके प्राकृत रूप जलचरो और जलयरो होते हैं। इनमे से प्रथम रूप जलचरो में सूत्र-सख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *जलचरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप जलयरो मे सूत्र-सख्या १-१७७ से 'च' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *जलयरो* भी सिद्ध हो जाता है।

बहुतर संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप बहुतरो और बहुअरो होते हैं। इनमे से प्रथम रूप बहुतरो मे सूत्र-सख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *बहुतरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप बहुअरो में सूत्र-सख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *बहुअरो* भी सिद्ध हो जाता है।

सुखदः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुहदो और सुहओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सुहदो में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे

पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मुक्खो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मुहओ में सूत्र-संख्या १ १८७से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति १-१७७ से 'ग्' का लोप, और ३ २ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *मुहओ* सिद्ध हो जाता है।

'स' *संस्कृत* सर्व नाम रूप है। इसके प्राकृत रूप सो और स होते हैं। इनमें सूत्र संख्या ३ ३ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में सि प्रत्यय की प्राप्ति होने पर वैकल्पिक रूप से 'सो' और 'स' रूप सिद्ध होते हैं। चण अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १ ६५ में की गई है।

सो सर्व नाम की सिद्धि सूत्र संख्या १ ९७ में की गई है।

च संस्कृत संबंध वाचक अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'अ' होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'च्' का लोप होकर *'अ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

चिह्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इन्धं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'च्' का लोप' २ ५० से 'ह' के स्थान पर 'न्ध' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपु सक लिंग में 'सि प्रत्यय क स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त म् को अनुस्वार होकर *इन्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिशाची संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पिसाजी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स्' १ १७७ की वृत्ति से 'च' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति होकर *पिसाजी* रूप सिद्ध हो जाता है।

एकत्वम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एगत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ की वृत्ति स अथवा ४ ३९६ स 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति २-७९ से 'व्' का लोप २-८९ स शेष त का द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपु सक लिंग में 'सि प्रत्यय क स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर *एगत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

एक संस्कृत सर्व नाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एगो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ की वृत्ति से अथवा ४ ३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अमुक संस्कृत सर्व नाम है। इसका प्राकृत रूप अमुगो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर ग की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अमुगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अमुक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अमुगो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से और ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अमुगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रावकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सावगो होता है। ~~इसमे~~ इसमे सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से शेष 'श्' का 'स्', १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सावगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकार संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आगारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३६६ से 'क के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आगारो* रूप सिद्ध होता है।

तीर्थंकर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्थगरो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र' का लोप, २-८९ से शेष 'थ' को द्वित्व 'थ्थ की प्राप्ति, २ ९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति, १-२९ से अनुस्वार का लोप, १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तित्थगरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकर्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आगरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग, की प्राप्ति २-१०५ से 'र्ष' के पूर्व में 'इ' का आगम होकर 'र्' को 'रि' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आगरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोकस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोगस्स होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१७७ की वृत्ति से और ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति, और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे "ङस्' प्रत्यय के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोगस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्योतकराः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उज्जोअगरा होता है। इसमे सूत्र-संख्या-२-२४ से 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज्' का द्वित्व 'ज्ज्', १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३६६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप एवं ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व 'अ' का दीर्घ 'आ' होकर *उज्जोअगरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकुञ्चनम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप आउण्टणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'क्' का लोप, १ १७७ की वृत्ति से 'च' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति १ १० से 'ञ्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति १ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर आउण्टणं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १—१७७ ॥

यमुना-चामुण्डा कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च ॥ १–१७८ ॥

एषु मस्य लुग् भवति, लुकि च सति मस्य स्थाने अनुनासिको भवति ॥ जउँणा। चाउँण्डा। काउँओ। अणिउँतयं ॥ क्वचिन्न भवति। अइमुत्तयं। अइमुंतयं ॥

अर्थ—यमुना, चामुण्डा, कामुक और अतिमुक्तक शब्दों में स्थित 'म्' का लोप होता है और लुप्त हुए 'म्' के स्थान पर 'अनुनासिक' रुप की प्राप्ति होती है। जैसे-यमुना=जउँणा। चामुण्डा=चाउँण्डा। कामुक=काउँओ। अतिमुक्तकम्=अणिउँतयं ॥ कभी कभी 'म्' का लोप नहीं होता है और तदनुसार अनुनासिक की भी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे—अतिमुक्तकम्=अइमुत्तयं और अइमुंतयं ॥ इस उदाहरण में अनुनासिक के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति हुई है।

जउँणा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४ में की गई है।

चामुण्डा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चाउँण्डा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७८ से 'म्' का लोप और इसी सूत्र से अनुनासिक की प्राप्ति होकर चाउँण्डा रुप सिद्ध हो जाता है।

कामुक संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप काउँओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७८ से 'म्' का लोप और इसी सूत्र से शेष उ पर अनुनासिक की प्राप्ति १ १७७ से 'क्' का लोप और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर काउँओ रूप सिद्ध हो जाता है।

अणिउँतयं अइमुत्तयं और अइमुंतयं रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १ २६ में की गई है। ॥१ १७८॥

नावर्णात्पः ॥ १ १७९ ॥

अवर्णात् परस्यानादेः पस्य लुग् न भवति ॥ सवहो। सावो ॥ अनादेरित्येव परउट्ठो ॥

अर्थ यदि किसी शब्द में प आदि रूप से स्थित नहीं हो तथा ऐसा वह प यदि अ स्वर के पश्चात् स्थित हो तो उस 'प' व्यञ्जन का लोप नहीं होता है। जैसे शपथः=सवहो। शापः=सावो।

प्रश्न—'अनादि रूप से स्थित हो ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्योंकि आदि रूप से स्थित 'प्' का लोप होता हुआ भी देखा जाता है। जैसे-पर-पुष्ट.=परउट्ठो ॥

शपथः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सवहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-२३१ से 'प' का 'व', १-१८७ से 'थ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सवहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शापः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सावो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पर-पुष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पर-उट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप, २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८६ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पर-उट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१७९ ॥

अवर्णो य श्रुतिः ॥ १-१८० ॥

क ग च जेत्यादिना लुकि सति शेषः अवर्णः अवर्णात् परो लघु प्रयत्नतर यकार श्रुतिर्भवति ॥ तित्थयरो। सयढं। नयरं। मयङ्को। कयग्गहो। कायमणी। रययं। पयावई रसायलं। पायालं। मयणो। गया। नयणं। दयालू। लायण्णं ॥ अवर्ण इति किम्। सउणो। पउणो। पउरं। राईवं। निहओ। निनओ। वाऊ। कई ॥ अवर्णादित्येव। लोअस्स। देअरो ॥ क्वचिद् भवति। पियइ।

अर्थ—क, ग, च, ज इत्यादि व्यञ्जन वर्णों के लोप होने पर शेष 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' रहा हुआ हो तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर लघुतर प्रयत्न वाला 'य' कार हुआ करता है। जैसे—तीर्थकर=तित्थयरो। शकटम्=सयढ। नगरम्=नयर। मृगाङ्क=मयङ्को। कच-ग्रह=कयग्गहो। काचमणि=कायमणी। रजतम=रयय। प्रजापति=पयावई। रसातलम्=रसायल। पातालम्=पायाल। मदन=मयणो। गदा=गया। नयनम्=नयणं। दयालु=दयालू। लावण्यम्=लायण्ण ॥

प्रश्न—लुप्त व्यञ्जन-वर्णों में से शेष 'अ' वर्ण का ही उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तर—क्यों कि यदि लुप्त व्यञ्जन वर्णों में 'अ' स्वर के अतिरिक्त कोई भी दूसरा स्वर हो, तो उन शेष किसी भी स्वर के स्थान पर लघुतर प्रयत्न वाला 'य' कार नहीं हुआ करता है। जैसे-शकुन=सउणो। प्रगुण=पउणो। प्रचुरम्=पउर। राजीवम्=राईवं। निहत=निहओ। निनद=निनओ। वायुः=वाऊ। कतिः=कई ॥

निहत और निनद में नियमानुसार लुप्त होने वाले 'त्' और 'द्' व्यञ्जन वर्णों के पश्चात् शेष 'अ' रहता है। न कि 'अ'। तदनुसार इन शब्दों में शेष 'अ' के स्थान पर 'य' कार की प्राप्ति नहीं हुई है।

प्रश्न–शेष रहने वाले 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' हो तो उस शेष 'अ' के स्थान पर 'य' कार होता है। ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—क्योंकि यदि शेष रहे हुए 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' स्वर नहीं होगा तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर 'य' कार की प्राप्ति नहीं होगी। जैसे-लोकस्य=लोअस्स। देवरः=देअरो। किन्तु किसी किसी शब्द में लुप्त होने वाले व्यञ्जन वर्णों में से शेष 'अ' वर्ण के पूर्व में यदि 'अ अथवा आ' नहीं हो कर यदि कोई अन्य स्वर भी रहा हुआ हो तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर 'य' कार भी होता हुआ देखा जाता है। जैसे-पिबति=पियइ॥ इत्यादि॥

तित्थयरो सयढं और नयरं रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

मयङ्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३० में की गई है।

कयग्गहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

काच-मणि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप काय-मणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर *काय-मणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

रययं पयावई, रसायलो और मयणो रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

पातालम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पायालं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पायालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'गया' 'नयणं' 'दयालू' और 'लायण्णं' रूपों की भी सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

शकुन संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सउणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रगुणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पउणो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से ग् का लोप और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रचुरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पउरं होता है। इसमे सूत्र- संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'च्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

राजीवम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राईवं होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति में एक वचन में नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय को प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *राईवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निहतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निहओ होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निहओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वायुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाऊ होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *वाऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कई रूप की सिद्धि सूत्र- संख्या १-१२८ में की गई है।

लोकस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोअस्स होता है। इसके सूत्र- संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' प्रत्यय के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोअस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप देअरो होता है। इसमे सूत्र- संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिबति संस्कृत सकर्मक क्रिया रूप है। इसका प्राकृत रूप पियइ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१७७ से 'व' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पियइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुब्ज-कर्पर-कीले कः खोऽपुष्पे ॥ १-१८१ ॥

एषु कस्य खो भवति पुष्प चेत् कुब्जाभिधेयं न भवति ॥ खुज्जो । खप्परं । खीलओ ॥ अपुष्प इति किम् । बंधेउं कुज्जय-पसूणं । आर्षेऽन्यत्रापि । कासितं । खासिअं । कसितं । खसिअं ॥

अर्थ:-कुब्ज' कर्पर' और कीलक शब्दों में रहे हुए 'क' वर्ण का 'ख' हो जाता है। किन्तु यह ध्यान में रहे कि कुब्ज शब्द का अर्थ पुष्प नहीं हो तभी 'कुब्ज में स्थित 'क' का 'ख' होता है, अन्यथा नहीं। जैसे-कुब्जः =खुज्जो। कर्परम्=खप्परं। कीलकः=खीलओ ॥

प्रश्न—कुब्ज का अर्थ फूल-पुष्प नहीं हो तभी कुब्ज में स्थित 'क' का 'ख' होता है ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—क्योंकि यदि कुब्ज का अर्थ पुष्प होता हो तो कुब्ज में स्थित 'क' का क ही रहता है। जैसे—बंधितुम् कुब्जक-प्रसूनम्=बंधेउं कुज्जय-पसूणं ॥ आर्ष-प्राकृत में उपरोक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों में भी क के स्थान पर 'ख' का आदेश होता हुआ देखा जाता है। जैसे-कासितम्=खासिअं। कसितम्=खसिअं ॥ इत्यादि ॥

कुब्ज संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खुज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८१ से 'क' को 'ख' की प्राप्ति २-७९ से 'ब्' का लोप' २-८९ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खुज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्परम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खप्परं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८१ से 'क' को 'ख' की प्राप्ति २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप' २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खप्परं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कीलकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खीलओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८१ से प्रथम 'क' को 'ख' की प्राप्ति' १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खीलओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बंधितुम् संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त का रूप है। इसका प्राकृत रूप बंधेउं होता है। संस्कृत मूल धातु बंध् है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से हलन्त 'ध्' में 'अ' की प्राप्ति' संस्कृत (हेमचन्द्र) व्याकरण के ५-१-१३ सूत्र से हेत्वर्थ कृदन्त में 'तुम्' प्रत्यय का प्राप्ति एवं सूत्र संख्या १-१५७ से 'ध' में प्राप्त 'अ' को

'ए' की प्राप्ति, १-१७७ से 'तुम्' प्रत्यय मे स्थित 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार हो कर *वंधेउं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुब्जक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुज्जय होता है। इसमें सूत्र- संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप, २-८९ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति होकर *कुज्जय* रूप सिद्ध हो जाता है।

कासितम् संस्कृत रूप है। आर्ष-प्राकृत मे इसका रूप खासिअं होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१८१ की वृत्ति से 'क्' के स्थान पर 'ख्' का आदेश, १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खासिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कासितम् संस्कृत रूप है। आर्ष- प्राकृत मे इसका रूप खसिअं होता है। इसमें सूत्र- संख्या १ १८१ की वृत्ति से 'क्' के स्थान पर 'ख्' का आदेश और शेष सिद्धि उपरोक्त *खासिअं* रूप के समान ही जानना ॥ १ - १८१ ॥

मरकत-मदकले गः कंदुके त्वादेः ॥ १-१८२ ॥

अनयोः कस्य गो भवति, कन्दुकेत्वाद्यस्य कस्य ॥ मरगयं । मयगलो । गेन्दुअं ॥

अर्थः-मरकत और मदकल शब्दों में रहे हुए "क" का तथा कन्दुक शब्द में रहे हुए आदि 'क' का "ग" होता है। जैसे -मरकतम्=मरगयं, मदकल =मयगलो और कन्दुकम्=गेन्दुअं ॥

मरकतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मरगयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १- १८२ से "क" के स्थान पर "ग" की प्राप्ति, १-१७७ से त् का लोप १-१८० से शेष 'अ' को य की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर *मरगयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदकल संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मयगलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द' का लोप, १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-१८२ से 'क' के स्थान पर 'ग' का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मयगलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गेन्दुअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ में की गई है। ॥ १-१८२ ॥

किराते चः ॥ १-१८३ ॥

किराते कस्य चो भवति ॥ चिलाओ ॥ पुलिन्द एवायं विधिः । कामरूपिणि तु नेष्यते । नमिमो हर किरायं ॥

अर्थ—'किरात' शब्द में स्थित 'क' का 'च' होता है। जैसे—किरातः=चिलाओ ॥ किन्तु इसमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जब 'किरात' शब्द का अर्थ 'पुलिन्द' याने भील जाति वाचक हो, तभी किरात में स्थित 'क' का 'च' होगा। अन्यथा नहीं। द्वितीय बात यह है कि जिसने स्वेच्छा पूर्वक 'भील' रूप धारण किया हो और उस समय में उसके लिये यदि 'किरात' शब्द का प्रयोग किया जाय तो प्राकृत भाषा के रूपान्तर में उस 'किरात' में स्थित 'क' का 'च' नहीं होगा। जैसे—नमामः हर किरातम्=नमिमो हर-किरायं ॥

किरातः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चिलाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८३ से 'क' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र्' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिलाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमामः संस्कृत सकर्मक क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप नमिमो होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से हलन्त 'नम्' धातु में 'अ' की प्राप्ति; ३-१५५ से प्राप्त 'अ' विकरण प्रत्यय के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; ३-१४४ से वर्तमानकाल के तृतीय पुरुष (उत्तम पुरुष) के बहु वचन में 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नमिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हर-*किरातम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हर-किरायं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'अम्' प्रत्यय में स्थित 'अ' का लोप और १-२३ से शेष 'म्' का अनुस्वार होकर हर *किरायं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८३ ॥

शीकरे भ-हौ वा ॥ १-१८४ ॥

शीकरे कस्य भहौ वा भवतः ॥ सीभरो सीहरो । पक्षे सीअरो ॥

अर्थ—शीकर शब्द में स्थित 'क' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से एवं क्रम से 'भ' अथवा 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे—शीकरः=सीभरो अथवा सीहरो ॥ पक्षान्तर में सीअरो भी होता है।

शीकरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सीभरो, सीहरो और सीअरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्'; १-१८४ से प्रथम रूप और द्वितीय रूप में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'क' के स्थान पर 'भ' अथवा 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से तृतीय रूप में पक्षान्तर के कारण से 'क्' का लोप और ३-२ से सभी रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर

'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *सीभरो*, *सीहरो* और *सीअरो* रूप सिद्ध हो जाते है ॥१-१८४ ॥

चंद्रिकायां मः ॥ १-१८५ ॥

चंद्रिका शब्दे कस्य मो भवति ॥ चंदिमा ॥

अर्थः—चन्द्रिका शब्द मे स्थित 'क्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति होती है। जैसे:- चंद्रिका=चन्दिमा ॥

चन्द्रिका सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चन्दिमा होता है। इसमे सूत्र- सख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-१८५ से 'क्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति होकर *चन्दिमा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१८५।

निकष-स्फटिक-चिकुरे हः ॥ १-१८६ ॥

एषु कस्य हो भवति ॥ निहसो। फलिहो चिहुरो। चिहुर शब्दः संस्कृतेपि इति दुर्गः ॥

अर्थ–निकष, स्फटिक और चिकुर शब्दो में स्थित 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे--निकष=निहसो। स्फटिक=फलिहो। चिकुर=चिहुरो ॥ चिहुर शब्द सस्कृत भाषा में भी होता है, ऐसा दुर्ग-कोष मे लिखा हुआ है ॥

निकष सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निहसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८६ से 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निहसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्फटिक, सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहो होता है। इसमें सूत्र-सख्या-२-७७ से 'स' का लोप, १-१९७ से 'ट्' के स्थान पर 'ल्' की प्राप्ति, १-१८६ से 'क' के स्थान पर 'ह की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर फलिहो रूप सिद्ध हो जाता है।

चिकुर' सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चिहुरो होता है। इसमे सूत्र-सख्या १-१८६ से 'क' के स्थान पर ह' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिहुरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८६ ॥

ख-घ-थ-ध-भाम् ॥ १-१८७ ॥

स्वरात् परेषामसंयुक्तानामनादिभूताना ख घ थ ध भ इत्येतेषां वर्णानां प्रायो हो भवति ॥ ख। साहा। मुह। मेहला। लिहइ ॥ घ। मेहो। जहणं। माहो। लाहइ। थ। नाहो। आवसहो। मिहुण। कहइ ॥ ध। साहू। वाहो। बहिरो। बाहइ। इन्द हणू ॥ भ।

सहा । सहावो । नहं । थणहरो । सोहइ ॥ स्वरादित्येव । सङ्खो । सङ्घो । कंथा । बन्धो । खम्भो ।
असंयुक्तस्येत्येव । अक्खइ । अग्घइ । कत्थइ । सिद्धओ । बन्धइ । लब्भइ ॥ अनादेरित्येव ।
गज्जन्ते खे मेहा । गच्छइ घणो । प्राय इत्येव । सरिसव खलो । पलय घणो । अधिरो । जिण
धम्मो । पणट्ठ भओ । नमो ॥

अर्थ—'ख' का 'घ' का 'थ' का 'ध' का और 'भ' का प्रायः 'ह' उस समय होता है, जब कि ये वर्ण किसी भी शब्द में स्वर से पीछे रहे हुए हों असंयुक्त याने हलन्त न हों तथा उस शब्द में आदि अक्षर रूप से नहीं रहे हुए हों ॥ जैसे-'ख' के उदाहरण शाखा=साहा, मुखम्=मुहं मेखला=मेहला और लिखति=लिहइ ॥ 'घ' के उदाहरण मेघः=मेहो जघनम्=जहणं माघः=माहो और श्लाघते=लाहइ ॥ 'थ' के उदाहरण—नाथः=नाहो आवसथः=आवसहो मिथुनम्=मिहुणं और कथयति=कहइ ॥ 'ध' के उदाहरण—साधुः=साहू, व्याधः=वाहो, बधिरः=बहिरो बाधते=बाहइ और इन्द्र-धनुः=इन्द-हणू ॥ 'भ' के उदाहरण—सभा=सहा स्वभावः=सहावो नभम्=नहं स्तन-भरः=थणहरो और शोभते=सोहइ ॥

प्रश्न—'ख' 'घ' आदि ये वर्ण स्वर के पश्चात् रहे हुए हों ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्योंकि यदि ये वर्ण स्वर के पश्चात् नहीं रहते हुए किसी हलन्त व्यञ्जन के पश्चात् रहे हुए हों तो उस अवस्था में इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी । जैसे—'ख' का उदाहरण—शंखः=संखो । 'घ' का उदाहरण—संघः=संघो । 'थ' का उदाहरण—कन्था=कंथा । 'ध' का उदाहरण—बन्धः=बन्धो और 'भ' का उदाहरण—स्तम्भः=खंभो ॥ इन शब्दों में 'ख' 'घ' आदि वर्ण हलन्त व्यञ्जनों के पश्चात् रहे हुए हैं, अतः इन शब्दों में 'ख' 'घ' आदि वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं हुई है ।

प्रश्न—'असंयुक्त याने हलन्त रूप से नहीं रहे हुए हों तभी इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्योंकि यदि ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण हलन्त रूप से अवस्थित हों तो इनके स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी । जैसे—'ख्' का उदाहरण—आख्याति=अक्खइ । 'घ्' का उदाहरण—अर्घति=अग्घइ । 'थ्' का उदाहरण—कथ्यते=कत्थइ । 'ध्' का उदाहरण—सिध्यकः=सिद्धओ । बध्यते=बन्धइ और 'भ' का उदाहरण—लभ्यते=लब्भइ ॥

प्रश्न—'शब्द में आदि अक्षर रूप से ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण नहीं रहे हुए हों तो इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्योंकि यदि ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण किसी भी शब्द में आदि अक्षर रूप से रहे हुए हों तो इनके स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होती है । जैसे-'ख' का उदाहरण—गर्जन्ति खे मेघाः=गज्जन्ते खे मेहा ॥ 'घ' का उदाहरण—गच्छति घनः=गच्छइ घणो ॥ [illegible]

प्रश्न.—'प्राय इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है' ऐसा 'प्राय. अव्यय' का उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तर —क्योंकि अनेक शब्दो में 'स्वर से परे, असंयुक्त और अनादि' होते हुए भी इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती हुई नही देखी जाती है। जैसे-'ख' का उदाहरण-सर्षप-खल'=सरिसव-खलो ॥ 'घ' का उदाहरण-प्रलय-घन =पलय-घणो ॥ 'थ' का उदाहरण-अस्थिर =अथिरो ॥ 'ध' का उदाहरण-जिन-धर्म =जिण-धम्मो ॥ तथा 'भ' का उदाहरण-प्रणष्ट-भय =पणट्ठ-भओ और नभम्=नभ ॥ इन उदाहरणों मे ख' 'घ' आदि वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नही हुई है ॥

शाखा सस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप साहा होता है। इसमें सूत्र सख्या १–२६० से 'श्' का 'स्', और १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *साहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुखम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुहं होता है। इसमें सूत्र सख्या १८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मेखला सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेहला होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *मेहला* रूप सिद्ध हो जाता है।

लिखति सस्कृत क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप लिहइ होता है। इसमे सूत्र सख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय को प्राप्ति होकर *लिहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मेघः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेहो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मेहो* रूप सिद्ध हा जाता है।

जघनम् सस्कृत रूप है। इसक प्राकृत रूप जहणं होता है। इसमें सूत्र- सख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १–२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *जहणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

माघः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माहो होता है। इसमें सूत्र- सख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लाघते सस्कृत सकर्मक क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप लाहइ होता है। इसमें सूत्र-सख्या

२-७७ से 'श' का लोप, १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम के पुरुष एक वचन में 'त' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छाहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नाथ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नाहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवसथ संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप आवसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिथुनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिहुणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिहुणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कथयति संस्कृत क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप कहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से कथ् धातु के हलन्त 'थ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति संस्कृत-भाषा में गण-विभाग होने से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अय' का प्राकृत-भाषा में गण-विभाग का अभाव होने से लोप १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

साधु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप साहू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *साहू* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याध-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बधिर संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बहिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाधते संस्कृत अकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप बाहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति ४-२३९ से 'ध्' हलन्त व्यञ्जन के स्थानापन्न व्यञ्जन 'ह्' में

विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल मे प्रथम पुरुष के एक वचन मे संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इन्द्र धनुः सस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप इन्दहणू होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे उकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति होकर *इन्दहणु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सभा सस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप सहा होता है। इसमे सूत्र- सख्या १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और सस्कृत-व्याकरण के विधानानुसार आकारान्त स्त्रीलिंग वाचक शब्द में, प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ' स्वर की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप, प्रथमा विभक्ति के एक वचन के रूप से *सहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वभावः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप सहावो होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-७९ से 'व्' का लोप, १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सहावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नहं रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-३२ में की गई है।

स्तन भरः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थणहरो होता है। इसमें सूत्र सख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थणहरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शोभते सस्कृत अकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप सोहइ होता है। इसमे सूत्र संख्या ४-२३९ से 'शोभ्' धातु में स्थित हलन्त 'भ्' में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति, १-२६० से 'श' का 'स', १-१८७ से 'भ' का 'ह', और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सोहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संखो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३० मे की गई है।

सङ्घः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संघो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ २५ 'ङ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संघो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कन्था सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंथा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और सस्कृत व्याकरण के विधानानुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन

में स्त्रीलिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष अन्त्य 'स्' का लोप होकर *कंधा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पन्थः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *पंथो* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पंथो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *खंभो* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८ से 'स्त' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; १-२५ की वृत्ति से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खंभो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आख्याति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप *अक्खइ* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से आदि 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ४-२३८ से 'खा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अक्खइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्घ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप *अग्घइ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'घ' को द्वित्व 'घ्घ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'घ्' को 'ग्' की प्राप्ति; ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अग्घइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कथ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत-रूप *कत्थइ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; ३-१६० से कर्म भाव-वाच्य प्रदर्शक संस्कृत प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्तव्य 'ईअ' अथवा 'इज्ज' प्रत्यय का लोप और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कत्थइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिध्रकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *सिद्धओ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिद्धओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बध्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप *बंधइ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१६० से कर्म भाव-वाच्य प्रदर्शक संस्कृत प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्तव्य 'ईअ

अथवा 'ज्जा' प्रत्यय का लोप, ४-२३६ से शेष हलन्त 'ध्' मे 'अ' की प्राप्ति और ३-१३६ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वन्धइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लभ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप लब्भइ होता है। इसमे सूत्र-सख्या ४-२४६ से कर्म-भाव-वाच्य 'य' प्रत्यय का लोप होकर शेष 'भ्' को द्वित्व भ्भ् की प्राप्ति, २-६० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति, ४-२३६ से हलन्त 'भ् मे 'अ' की प्राप्ति और ३-१३६ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुप के एक-वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लब्भइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्जन्ति सस्कृत अकर्मक क्रियापद रुप है। इमका प्राकृत रूप गज्जन्ते होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७६ मे 'र्' का लोप, २-८६ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' को प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के वहु वचन मे सस्कृत प्रत्यय 'न्ति' के स्थान पर 'न्ते' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गज्जन्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

खे सस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप भी खे; ही होता है। इसमें सूत्र-सख्या ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'खे' रुप सिद्ध हो जाता है।

मेघा सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप मेहा होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१८७ से 'घ' को 'ह' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप तथा ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त हुए जस प्रत्यय के कारण से अन्त्य 'अ' को 'आ' की प्राप्ति होकर *मेहा* रुप सिद्ध हो जाता है

गच्छति सस्कृत सकर्मक क्रियापद रुप है। इसका प्राकृत रुप गच्छइ होता है। इसमें सूत्र-सख्या ४-२३६ से गच्छ् धातु के हलन्त 'छ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, और ३-१३६ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घणो रुप की सिद्धि सूत्र-सख्या *१-१७२* मे की गई है।

सर्षप-खल. सस्कृत विशेषण रुप है। इसका प्राकृत रुप सरिसव-खलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०५ से 'र्ष' शब्दांश के पूर्व में अर्थात् रेफ रुप 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' का 'स', १-२३१ से 'प' का 'व', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरिसव-खलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रलय सस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप पलय होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७६ से 'र्' का लोप होकर *पलय* रूप सिद्ध हो जाता है।

पण्णो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७२* में की गई है।

अस्थिरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अथिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अथिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जिनधर्मः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जिण धम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'म्' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिण-धम्मो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रणष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पणट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति, २-८९ से 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पणट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मयः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *मओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

धम्मो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१६१* में की गई है॥ १-१८७॥

पृथकि धो वा ॥ १-१८८ ॥

पृथक् शब्दे थस्य धो वा भवति ॥ पिधं पुधं। पिहं पुहं ॥

अर्थ-पृथक् शब्द में रहे हुए 'थ' का विकल्प रूप से 'ध' भी होता है। अतः पृथक् शब्द के प्राकृत में वैकल्पिक पक्ष होने से चार रूप इस प्रकार होते हैं-पृथक्=पिधं, पुधं पिहं और पुहं॥

पृथक् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत पिधं पुधं पिहं और पुहं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' के स्थान पर विकल्प रूप से और क्रम से 'इ' अथवा 'उ' की प्राप्ति, १-१८८ से 'थ' के स्थान पर विकल्प रूप से प्रथम दो रूपों में 'ध' की प्राप्ति, तथा १-१८७ से तृतीय और चतुर्थ रूप में विकल्प से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप और १-२४ की वृत्ति से अन्त्य स्वर 'अ' को 'अनुस्वार' की प्राप्ति होकर क्रम से चारों रूप *पिधं, पुधं पिहं* और *पुहं* सिद्ध हो जाते हैं॥ १-१८८॥

शृङ्खले खः कः ॥ १-१८९ ॥

शृङ्खले खस्य को भवति ॥ सङ्कलं ॥ संकलं॥

अर्थः-शृङ्खल शब्द में स्थित 'ख' व्यञ्जन का 'क' होता है। जैसे-शृङ्खलम् =सङ्कल ॥

शृङ्खलम् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप सङ्कल अथवा संकल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' का 'स', १-३० और १-२५ से 'ङ्' व्यञ्जन का विकल्प से अनुस्वार अथवा यथा रूप की प्राप्ति, १-१८९ से 'ख' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सङ्कल अथवा *संकल* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८९ ॥

पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः ॥ १-१९० ॥

अनयोर्गस्य मो भवति ॥ पुन्नामाइं वसन्ते। भामिणी ॥

अर्थः-पुन्नाग और भागिनी शब्दों में स्थित 'ग' का 'म' होता है। जैसे-पुन्नागानि=पुन्नामाइं ॥ *भागिनी*=भामिणी ॥

पुन्नागानि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुन्नामाइँ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९० से 'ग' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, ३-२६ से प्रथमा विभक्ति के बहु-वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'इँ' प्रत्यय की प्राप्ति और अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति भी इसी सूत्र (३-२६) से होकर *पुन्नामाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वसन्ते संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वसन्ते होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वसन्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

भागिनी संस्कृत स्त्री लिंग रूप है। इसका प्राकृत रूप भामिणी होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१९० से 'ग्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण' और संस्कृत व्याकरण के विधानानुसार दीर्घ ईकारान्त स्त्री लिंग के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष अन्त्य 'स्' का लोप होकर *भामिणी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१९० ॥

छागे लः ॥ १-१९१ ॥

छागे गस्य लो भवति ॥ छालो छाली ॥

अर्थः-छाग शब्द में स्थित 'ग' का 'ल' होता है। जैसे-छाग=छालो ॥ छागी=छाली ॥

छाग संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छालो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९१ से 'ग' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर छालो रूप सिद्ध हो जाता है।

छागी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छाली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९१ से 'ग' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति होकर *छाली* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९१ ॥

ऊत्वे दुर्भग-सुभगे वः ॥ १-१९२ ॥

अनयोरूत्वे गस्य वो भवति ॥ दूहवो । सूहवो ॥ ऊत्व इति किम् । दुहओ ॥ सुहओ ॥

अर्थः—दुर्भग और सुभग शब्दों में स्थित 'ग' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होती है। जैसे—दुर्भगः= दूहवो। सुभगः=सूहवो॥ किन्तु इसमें शर्त यह है कि 'ग' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होने की हालत में 'दुर्भग' और 'सुभग' शब्दों में स्थित ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति भी होती है। यदि ह्रस्व 'उ' के स्थान पर दीर्घ 'ऊ' नहीं किया जायगा तो फिर 'ग' को 'व' की प्राप्ति नहीं होकर 'ग्' का लोप हो जायगा। इसीलिये सूत्र में और वृत्ति में 'ऊत्व' की शर्त का विधान किया गया है। अन्यथा 'ग्' का लोप होने पर 'दुर्भग' का 'दुहओ' होता है और 'सुभग' का 'सुहओ' होता है॥

दूहवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११५ में की गई है।

सूहवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११३ में की गई है।

दुहओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११५ में की गई है।

सुहओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११३ में की गई है। ॥ १-१९२ ॥

खचित पिशाचयोश्चः स-ल्लौ वा ॥ १-१९३ ॥

अनयोश्चस्य यथासंख्यं स ल्ल इत्यादेशौ वा भवतः ॥ खसिओ खइओ । पिसल्लो पिसाओ ।

अर्थः—खचित शब्द में स्थित 'च' का विकल्प से 'स' होता है। और पिशाच शब्द में स्थित 'च' का विकल्प से 'ल्ल' होता है। जैसे—खचितः= खसिओ अथवा खइओ और पिशाचः= पिसल्लो अथवा पिसाओ।

खचित संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप खसिओ और खइओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१९३ से विकल्प रूप से 'च्' के स्थान पर 'स्' आदेश की प्राप्ति और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; दोनों रूपों में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *खसिओ* तथा *खइओ* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

पिशाचः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पिसल्लो और पिसाओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२६० से 'श्' का 'स्', १-१९३ से 'च्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ल्ल्' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप 'पिसल्लो' सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप पिसाओ में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'च्' का लोप और ३-२ से प्रथम रूप के समान ही 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पिसाओ* भी सिद्ध हो जाता है।

जटिले जो झो वा ॥ १-१९४ ॥

जटिले जस्य झो वा भवति ॥ झडिलो जडिलो ॥

अर्थः जटिल शब्द में स्थित 'ज' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'झ' की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे – जटिल = झडिलो अथवा जडिलो ॥

जटिलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप झडिलो और जडिलो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१९४ में 'ज' के स्थान पर विकल्प रूप से 'झ' की प्राप्ति, १-१९५ से 'ट्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि- प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *झडिलो* और *जडिलो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-१९४ ॥

॥ टो डः १-१९५ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेष्टस्य डो भवति ॥ नडो । भडो । घडो । घडइ ॥ स्वरादित्येव । घंटा ॥ असंयुक्तस्येत्येव । खट्टा ॥ अनादेरित्येव । टक्को ॥ क्वचिन्न भवति । अटति ॥ अटइ ॥

अर्थ - यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ, असंयुक्त और अनादि रूप हो, अर्थात् हलन्त भी न हो तथा आदि में भी स्थित न हो, तो उस 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। जैसे नट = नडो ॥ भट = भडो ॥ घट = घडो ॥ घटति = घडइ ॥

प्रश्न - "स्वर से परे रहता हुआ हो" ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर - क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा, तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे घण्टा=घंटा ॥

प्रश्न - संयुक्त अर्थात् हलन्त नहीं होना चाहिये, याने असंयुक्त अर्थात् स्वर से युक्त होना चाहिये "ऐसा क्यों कहा गया है।

उत्तर- क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण संयुक्त होगा, तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे- खट्वा = खट्टा ॥

प्रश्न- अनादि रूप से स्थित हो' याने शब्द के आदि स्थान पर स्थित नहीं हो' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर- क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे- टक्कः = टक्को ॥

किसी किसी शब्द में ऐसा भी देखा जाता है कि 'ट' वर्ण शब्द में अनादि और असंयुक्त है तथा स्वर से परे भी रहा हुआ है, फिर भी 'ट' का 'ड' नहीं होता है। जैसे- अटति = अटइ।

नटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर नडो रूप सिद्ध हो जाता है।

भटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर भडो सिद्ध हो जाता है।

घटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घडो रूप सिद्ध हो जाता है।

घटति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप घडइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घडइ रूप सिद्ध हो जाता है।

घण्टा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घंटा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'ण्' का अनुस्वार होकर घंटा रूप सिद्ध हो जाता है।

खट्वा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खट्टा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व' का लोप; २-८९ से 'ट्' का द्वित्व 'ट्ट्' की प्राप्ति और संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' का इत्संज्ञानुसार लोप तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर खट्टा रूप सिद्ध हो जाता है।

टक्कः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर टक्को रूप सिद्ध हो जाता है।

अटति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप अटइ होता है। इसमे सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अटइ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९५ ॥

सटा-शकट-कैटभे ढः ॥ १-१९६ ॥

एपु टस्य ढो भवति ॥ सढा । सयढो । केढवो ॥

अर्थ —सटा, शकट और कैटभ में स्थित 'ट' का 'ढ' होता है। जैसे –सटा= सढा ॥ शकट= सयढो ॥ कैटभ = केढवो ॥

सटा सस्कृत स्त्री लिग रूप है। इसका प्राकृत रूप सढा होता है। इसमे सूत्र- सख्या १-१९६ से 'ट' का 'ढ', सस्कृत- व्याकरण के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त स्त्री लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय मे स्थित 'इ' का इ संज्ञानुसार लोप और १-११ से शेप 'स्' का लोप होकर *सढा* रूप सिद्ध हो जाता है।

शकट सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयढो होता है। इसमे सूत्र- संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से लुप्त हुए 'क्' में स्थित 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-१९६ से 'ट, का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सयढो* रूप सिद्ध हो जाता है। केढवो रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१४८ में की गई है। १-१९६ ॥

स्फटिके लः ॥ १–१९७ ॥

स्फटिके टस्य लो भवति ॥ फलिहो ॥

अर्थः—स्फटिक शब्द में स्थित 'ट' वर्ण का 'ल' होता है। जैसे – स्फटिक = फलिहो ॥

फलिहो रूप की सिद्धि सूत्र- सख्या १-१८६ मे की गई है ॥ १-१९७ ॥

चपेटा--पाटौ वा ॥ १ - १९८ ॥

चपेटा शब्दे ण्यन्ते च पटि धातो टस्य लो वा भवति ॥ चविला चविडा । फालेइ फाडेइ ।

अर्थ —चपेटा शब्द में स्थित 'ट' का विकल्प से 'ल' होता है। तदनुसार एक रूप मे तो 'ट' का 'ल' होगा और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट' का 'ड' होगा। जैसे- चपेटा= चविला अथवा चविडा ॥ इसी प्रकार से 'पटि' धातु में भी प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप होने की हालत मे 'ट' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। तदनुसार एक रूप में तो 'ट' का 'ल' होगा और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट' का 'ड' होगा ॥ जैसे - पाटयति= फालेइ और फाडेइ ॥

चपेटा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चविला और चविडा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१४६ से 'ए' का 'इ' की प्राप्ति; १-१९८ से 'ट' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ल' का आदेश होकर *चविला* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *चविडा* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४६ में की गई है।

पाटयति संस्कृत सकर्मक प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप फालेइ और फाडेइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-१९८ से वैकल्पिक रूप से 'ट' के स्थान पर 'ल्' का आदेश; ३-१४९ से प्रेरणार्थक में संस्कृत प्रत्यय 'णि' के स्थान पर अर्थात् 'णि' स्थानीय 'अय' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति से ल्+ए=ले; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप फालेइ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप फाडइ में सूत्र संख्या १-१९५ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप फाडेइ भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१९८॥

ठो ढः ॥ १-१९९ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेष्ठस्य ढो भवति ॥ मढो। सढो। कमढो। कुढारो। पढइ ॥ स्वरादित्येव। वेकुंठो ॥ असंयुक्तस्येत्येव। चिट्ठइ ॥ अनादेरित्येव। हिअए ठाइ ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् हलन्त भी न हो तथा आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'ठ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है। जैसे-मठः=मढो, शठः=सढो; कमठः=कमढो; कुठारः=कुढारो और पठति=पढइ ॥

प्रश्नः—'स्वर से परे रहता हुआ हो' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे-वैकुण्ठः=वेकुंठो ॥

प्रश्नः—संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये, याने स्वर से युक्त होना चाहिये ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण संयुक्त होगा-हलन्त होगा-स्वर से रहित होगा; तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे-तिष्ठति=चिट्ठइ ॥

प्रश्नः—शब्द के आदि स्थान पर स्थित नहीं हो; ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर —क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा, तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे –हृदये तिष्ठति=हिअए ठाइ ॥

मठः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप मढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शठः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमठः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमढो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुठारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुढारो होता है। इसमें सूत्र – संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुढारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पठति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पढइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पढइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैकुण्ठः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेकुंठो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, १-२५ से 'ण्' के स्थान पर 'अनुस्वार' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेकुंठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिष्ठति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चिट्ठइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१६ से संस्कृत धातु 'स्था' के आदेश रूप 'तिष्ठ' के स्थान पर चिट्ठ' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिट्ठइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदये संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअए होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' और 'य्' दोनों वर्णों का लोप, और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग में 'ङि'='इ' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हिअए* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिष्ठति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप ठाइ होता है। इसमें सूत्रसंख्या ४-१६ से संस्कृत धातु 'स्था' के आदेश रूप 'तिष्ठ' के स्थान पर 'ठा' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ठाइ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९९ ॥

अङ्कोठे ल्ल ॥ १-२०० ॥

अङ्कोठे ठस्य द्विरुक्तो लो भवति ॥ अङ्कोल्ल तेल्लतुप्पं ।

अर्थ —संस्कृत शब्द अङ्कोठ में स्थित 'ठ' का प्राकृत रूपान्तर में द्वित्व 'ल्ल' होता है। जैसे अङ्कोठ तैल घृतम् अङ्कोल्ल-तेल्ल-तुप्पं ॥

अंकोठ संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अङ्कोल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०० से ठ के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *अङ्कोल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

तैल संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तेल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *तेल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

घृतम् संस्कृत रूप है। इसका देश्य रूप तुप्पं होता है। इसमें सूत्र संख्या का अभाव है क्योंकि घृतम् शब्द के स्थान पर तुप्पं रूप की प्राप्ति देश्य रूप से है; अतः तुप्पं शब्द रूप देशज है, न कि प्राकृत ज ॥ तदनुसार तुप्प देश्य रूप में ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देश्य रूप *तुप्पं* सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२०० ॥

पिठरे हो वा रश्च ड ॥ १-२०१ ॥

पिठरे ठस्य हो वा भवति तत् संनियोगे च रस्य डो भवति ॥ पिहडो पिढरो ॥

अर्थ —पिठर शब्द में स्थित 'ठ' का वैकल्पिक रूप से 'ह' होता है। अतः एक रूप में 'ठ' का 'ह' होगा और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ठ' का 'ढ' होगा। जहाँ 'ठ' का 'ह' होगा वहाँ पर एक विशेषता यह भी होगी कि पिठर शब्द में स्थित 'र' का 'ड' हो जायगा। जैसे-पिठरः=पिहडो अथवा पिढरो।

पिठरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पिहडो और पिढरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२०१ से 'ठ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ह' की प्राप्ति और इसी सूत्रानुसार 'ह' की प्राप्ति होने से 'र' को 'ड' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पिहडो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मे सूत्र- सख्या १-१६६ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'ठ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पिढरो* भी सिद्ध हो जाता है ॥ १-२० ॥

डो लः ॥ २०२ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्डस्य प्रायो लो भवति ॥ वडवामुखम्। वलयामुहं ॥ गरुलो ॥ तलाय। कीलइ ॥ स्वरादित्येव। मोंडं। कोंडं ॥ असंयुक्तस्येत्येव। खग्गो ॥ अनादेरित्येव। रमइ डिम्भो ॥ प्रायो ग्रहणात् क्वचिद् विकल्पः। वलिसं वडिसं। दालिमं दाडिमं। गुलो गुडो। णाली णाडी। णलं णड। आमेलो आवेडो ॥ क्वचिन्न भवत्येव। निबिडं। गउडो। पीडिअं। नीडं। उडू तडी ॥

अर्थ:- यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो, अर्थात् हलन्त - (स्वर रहित) भी - न हो तथा आदि मे भी स्थित न हों, तो उस 'ड' वर्ण का प्रायः 'ल' होता है। जैसे- वडवामुखम्= वलयामुह ॥ गरुड = गरुलो ॥ तडागम् = तलाय। क्रीडति= कीलइ ॥

प्रश्नः—" स्वर से परे रहता हुआ हो " ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर -क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'ड' का 'ल' नहीं होगा। जैसे -- मुण्डम्= मोंड' और कुण्डम्= कोंड' इत्यादि ॥

प्रश्न --" सयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये, अर्थात् असयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये ' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर --क्योंकि यदि किसी शब्द मे 'ड वर्ण सयुक्त होगा - हलन्त होगा - स्वर से रहित होगा, तो उस 'ड' वर्ण का 'ल' नहीं होगा। जैसे - खड्ग = खग्गो ॥

प्रश्न -- " अनादि रूप से स्थित हो, शब्द के आदि स्थान पर स्थित नहीं हो, शब्द मे प्रारंभिक-अक्षर रूप से स्थित नहीं हो, ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर - क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा, तो उस 'ड' का 'ल' नहीं होगा। जैसे -- रमते डिम्भ = रमइ डिम्भो ॥

प्रश्न - " प्राय " अव्यय का ग्रहण क्यो किया गया है ?

उत्तर -" प्राय " अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ, असयुक्त और अनादि होता हुआ हो तो भी उस 'ड' वर्ण का 'ल' वैकल्पिक रूप से होता है। जैसे -- बडिशम् = वलिम अथवा वडिम ॥ दाडिमम् = दालिम अथवा दाडिम ॥ गुड =

गुळो अथवा गुडो ॥ नाडी= णाळी अथवा णाडी ॥ नडम्= णलं अथवा णडं ॥ आपीड= आमेळो अथवा आमेडो ॥ इत्यादि ॥

किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त एवं अनादि रूप हो तो भी उस 'ड' वर्ण का 'ल' नहीं होता है। जैसे— निबिडम्=निबिडं ॥ गौडः= गउडो ॥ पीडितम्= पीडिअं ॥ नीडम्= नीडं ॥ उडु = उडू ॥ तडित्= तडी ॥ इत्यादि ॥

वडवामुखम्—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलयामुहं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'व्' का लोप १-१८० से लुप्त 'व्' में से शेष 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति, १-१८७ से 'ख' का 'ह' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वलयामुहं* रूप सिद्ध हो जाता है। गरुडः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरुलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गरुलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तडागम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तलायं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति १-१७७ से 'ग्' का लोप १-१८० से लुप्त 'ग्' में से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तलायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रीडति संस्कृत अकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप कीलइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कीलइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

माई रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११६ में की गई है।

कुण्डम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोंडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति १-२५ से 'ण' के स्थान पर पूर्व व्यञ्जन पर अनुस्वार की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कोंडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

रग्गो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३४ में की गई है।

रमते संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप रमइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

डिम्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप डिम्भो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डिम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाडिशम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वलिसं और वडिसं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३७ से 'ब' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, १-२०२ से वैकल्पिक विधान के अनुसार 'ड' के स्थान पर विकल्प रूप से 'ल' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' का 'स', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वलिसं* और *वडिसं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दाडिमम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दालिमं और दाडिमं होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२०२ से वैकल्पिक विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *दालिमं* और *दाडिमं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गुडः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गुलो और गुडो होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुलो* और *गुलो* रूप सिद्ध हो जाते है।

नाडी संस्कृत रूप है। इसमें प्राकृत रूप णाली और णाडी होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति होकर *णाली* और *णाडी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नडम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णलं और णडं होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति,, १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णलं* और *णडं* रूप सिद्ध हो जाते है।

आमेलो रूप की सिद्धि सूत्र- संख्या १—१०५ मे की गई है।

आपीड संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आमेडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३४ से वैकल्पिक रूप से 'प्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति, १-१०५ से 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *आमेडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निबिडम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निबिडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ २ से 'म्' का अनुस्वार होकर *निबिडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गउडो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १६२ में की गई है।

पीडितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पीडिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'त्' का लोप, ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पीडिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीडं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १०६ में की गई है।

उडु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उडू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर उडू रूप सिद्ध हो जाता है।

तडित्—(अथवा तडित्) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तडी होता है। इसमें सूत्र संख्या १ ११ से 'द्' अथवा 'त्' का लोप और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *तडी* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२०२॥

वेणौ णो वा ॥ १–२०३ ॥

वेणौ णस्य लो वा भवति ॥ वेलू । वेणू ॥

अर्थ—वेणु शब्द में स्थित 'ण' का विकल्प से 'ल' होता है। जैसे—वेणुः=वेलू अथवा वेणू ॥

वेणु संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वेलू और वेणू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२०३ से 'ण' के स्थान पर विकल्प से 'ल' की प्राप्ति और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर वेलू और वेणू रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १–२०३ ॥

तुच्छे तश्च–छौ वा ॥ १–२०४ ॥

तुच्छ शब्दे तस्य च छ इत्यादेशौ वा भवतः ॥ चुच्छं । छुच्छं । तुच्छं ॥

अर्थ—तुच्छ शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से और क्रम से 'च' अथवा 'छ' का आदेश होता है। जैसे—तुच्छम्=चुच्छं अथवा छुच्छं अथवा तुच्छं ॥

तुच्छम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप चुच्छं छुच्छं और तुच्छं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२०४ से त् के स्थान पर क्रम से और वैकल्पिक रूप से 'च्' अथवा 'छ्' का आदेश ३ २५ से

प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से चुच्छं, छुच्छं और तुच्छं रूप सिद्ध हो जाते है। ॥ १-२०४ ॥

तगर-त्रसर-तूवरे टः ॥ १-२०५ ॥

एषु तस्य टो भवति ॥ टगरो । टसरो । टूवरो ॥

अर्थः-तगर, त्रसर और तूवर शब्दो मे स्थित 'त' का 'ट' होता है। जैसे -तगर = टगरो; त्रसरः= टसरो और तूवर = टूवरो ॥

तगरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टगरो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२०५ से 'त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टगरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रसर संस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप टसरो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' मे स्थित 'र्' का लोप, १-२०५ से शेष 'त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टसरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तूवर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टूवरो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२०५ से 'त' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टूवरो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२०५ ॥

प्रत्यादौ डः ॥ १—२०६ ॥

प्रत्यादिषु तस्य डो भवति ॥ पडिवन्नं । पडिहासो । पडिहारो । पाडिप्फद्धी । पडिसारो पडिनिअत्तं । पडिमा । पडिवया । पडंसुआ । पडिकरइ । पहुडि । पाहुडं । वावडो । पडाया । बहेडओ । हरडई । मडयं ॥ आर्षे । दुष्कृतम् । दुक्कड ॥ सुकृतम् । सुकडं ॥ आहृतम् । आहडं । अवहृतम् । अवहडं । इत्यादि ॥ प्राय इत्येव । प्रति समयम् । पइ समयं ॥ प्रतीपम् । पईवं ॥ संप्रति । संपइ ॥ प्रतिष्ठानम् । पइट्ठाणं ॥ प्रतिष्ठा । पइट्ठा ॥ प्रतिज्ञा । पइण्णा ॥ प्रति । प्रभृति । प्राभृत । व्यापृत । पताका । बिभीतक । हरीतकी । मृतक । इत्यादि ॥

अर्थ—प्रति आदि उपसर्गों मे स्थित 'त' का 'ड' होता है। जैसे -प्रतिपन्न=पडिवन्न ॥ प्रति-भास =पडिहासो ॥ प्रतिहार =पडिहारो ॥ प्रतिस्पर्द्धि =पाडिप्फद्धी ॥ प्रतिसार =पडिसारो ॥ प्रतिनिवृत्तम्=पडिनिअत्तं ॥ प्रतिमा =पडिमा ॥ प्रतिपदा=पडिवया ॥ प्रतिश्रुत्=पड सुआ ॥ प्रतिकरोति

पडिकरइ ॥ इस प्रकार 'प्रति' के उदाहरण जानना । प्रभृति = पहुडि ॥ प्राभृतम्=पाहुडं ॥ व्यापृत= वावडो ॥ पताका=पडाया ॥ बिभीतकः=बहेडओ ॥ हरीतकी=हरडइ ॥ मृतकम्=मडयं ॥ इन उदाहरणों में भी 'त' का 'ड' हुआ है ॥ आर्ष-प्राकृत में भी 'त' के स्थान पर 'ड' होता हुआ देखा जाता है। जैसे—दुष्कृतम्=दुक्कडं ॥ सुकृतम्=सुकडं । आहृतम्=आहडं ॥ अवहृतम्=अवहडं ॥ इत्यादि ॥ अनेक शब्दों में ऐसा भी पाया जाता है कि संस्कृत रूपान्तर से प्राकृत रूपान्तर में 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाती है। इसी नियम को आचार्य हेमचन्द्र ने इसी सूत्र की वृत्ति में 'प्रायः' शब्द का उल्लेख करके प्रदर्शित किया है। जैसे—प्रतिसमयम्=पइसमयं ॥ प्रतीपम्= पईवं ॥ संप्रति= संपइ ॥ प्रतिष्ठानम्=पइट्ठाणं ॥ प्रतिष्ठा=पइट्ठा ॥ प्रतिज्ञा=पइण्णा ॥ इत्यादि ॥

प्रतिपन्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिवन्नं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-२३१ से द्वितीय 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पडिवन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिभास संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिहासो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पडिहासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिहारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिहारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पडिहारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाडिप्फद्धी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १—४४ में की गई है।

प्रतिसार संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिसारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पडिसारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिनिवृत्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिनिअत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पडिनिअत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिमा संस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप पडिमा होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होकर *पडिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पडिवया रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४४ मे की गई है।

पडंतुआ रुप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ मे की गई है।

प्रति करोति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिकरइ होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप,, १-२०६ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, ४-२३४ से 'करो' क्रिया के मूल रुप 'कृ' धातु में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर्' की प्राप्ति, ४-२३९ से प्राप्त 'अर्' मे स्थित हलन्त 'र्' में 'अ' रूप आगम की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमान काल मे प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत मे 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पडिकरइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पहुडि रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-१३१ में की गई है।

पाहुडं रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-१३१ मे की गई है।

व्यापृतः संस्कृत विशेषण रुप है। इसका प्राकृत रूप वावडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वावडो* रुप सिद्ध हो जाता है।

पताका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडाया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०६ से 'त्' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क' का लोप और १-१८० से लुप्त 'क्' में से शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'या' होकर *पडाया* रुप सिद्ध हो जाता है।

बहेडओ रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-८८ मे की गई है।

हरडई रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-९९ में की गई है।

मृतकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मडय होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसक लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मडयं* रूप की सिद्धि हो जाती है।

दुष्कृतम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में दुक्कडं रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ की प्राप्ति, २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति,

१-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुकडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुकृतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुक्कडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुक्कडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आहृतं संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आहडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आहडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवहृतं संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवहडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवहडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिसमर्थं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइसमर्थं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पइसमर्थं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतीपम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पईवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२३१ से द्वितीय 'प' को 'व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पईवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संप्रति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप संपइ होता है। इस में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *संपइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइट्ठाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पइट्ठाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पइट्ठा रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या *१-३८* में की गई है।

प्रतिज्ञा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइण्णा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'त्' का लोप, २-४२ से ज्ञ् के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, और २-८९ से प्राप्त 'ण्' को द्वित्व ण्ण् की प्राप्ति होकर *पइण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२०६ ॥

इत्वे वेतसे ॥ १-२०७ ॥

वेतसे तस्य डो भवति इत्वे सति ॥ वेडिसो ॥ इत्व इति किम् । वेअसो ॥ इः स्वप्नादौ [१-४६] इति इकारो न भवति इत्व इति व्यावृत्तिवलात् ॥

अर्थः—वेतस शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति उस अवस्था में होती है, जबकि 'त' में स्थित 'अ' स्वर सूत्र-सख्या १-४६ से 'इ' स्वर में परिणत हो जाता हो। जैसे.—वेतस =वेडिसो ॥

प्रश्न —वेतस शब्द में स्थित 'त' में रहे हुए 'अ' को 'इ' में परिणत करने की अनिवार्यता का विधान क्यों किया है ?

उत्तर—वेतस शब्द में स्थित 'त' का 'ड' उसी अवस्था में होगा, जब कि उस 'त' में स्थित 'अ' स्वर को 'इ' स्वर में परिणत कर दिया जाय, तदनुसार यदि 'त' का 'ड' नहीं किया जाता है, तो उस अवस्था में 'त' में रहे हुए 'अ' स्वर को 'इ' स्वर में परिणत नहीं किया जायगा। जैसे:—वेतस =वेअसो ॥ इस प्रकार सूत्र-संख्या १-४६-(इ स्वप्नादौ)—के अनुसार 'अ' के स्थान पर प्राप्त होने वाली 'इ' का यहाँ पर निषेध कर दिया गया है। इस प्रकार का नियम 'व्याकरण की भाषा' में 'व्यावृत्तिवाचक' नियम कहलाता है। तदनुसार 'व्यावृत्ति के बल से' 'इत्व' की प्राप्ति नहीं होती है।

वेडिसोः—रूप की सिद्धि सूत्र सख्या *१-४६* में की गई है।

वेतसः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेअसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *वेअसो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२०७ ॥

गर्भितातिमुक्तके णः ॥ १-२०८ ॥

अनयोस्तस्य णो भवति ॥ गब्भिणो अणिउँतयं ॥ क्वचिन्नभवत्यपि । अइमुत्तयं ॥ कथम् एरावणो । ऐरावण शब्दस्य । एरावओ इति तु ऐरावतस्य ॥

अर्थः—गर्भित और अतिमुक्तक शब्दों में स्थित 'त' को 'ण' की प्राप्ति होती है। अर्थात् 'त' के स्थान पर 'ण' का आदेश होता है। जैसे.—गर्भित.—गब्भिणो ॥ अतिमुक्तकम्=अणिउँतयं ॥ कभी कभी

'अतिमुक्तक' शब्द में स्थित प्रथम 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाता है जैसे'- अतिमुक्तकम्=अइमुत्तयं ॥

प्रश्न—क्या 'एरावणो' प्राकृत शब्द संस्कृत 'एरावत' शब्द से रूपान्तरित हुआ है? और क्या इस शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति हुई है?

उत्तर—प्राकृत 'एरावणो' शब्द संस्कृत 'ऐरावण' शब्द से रूपान्तरित हुआ है अत इस शब्द में 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है। प्राकृत शब्द 'एरावओ' का रूपान्तर 'ऐरावत' संस्कृत शब्द से हुआ है। इस प्रकार एरावणो और एरावओ प्राकृत शब्दों का रूपान्तर क्रम से ऐरावण' और ऐरावत' संस्कृत शब्दों से हुआ है। तदनुसार एरावणो में 'त' के स्थान 'ण' की प्राप्ति होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है।

गर्भित संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप *गब्भिणो* होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'भ्' को द्वित्व 'भ्भ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ' को 'ब्' की प्राप्ति १-२०८ से 'त्' को 'ण्' की प्राप्ति और ३-२ से *प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में* 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गब्भिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अणिउँतयं और *अइमुत्तयं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२६* में की गई है।

एरावणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१४८* में की गई है।

ऐरावत संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एरावओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एरावओ* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२०८ ॥

रुदिते दिना ण्णः ॥ १-२०९ ॥

रुदिते दिना सह तस्य द्विरुक्तो णो भवति ॥ रुण्णं ॥ अत्र केचिद् ऋत्वादिषु द इत्यारब्धवन्तः स तु शौरसेनी मागधी विषय एव दृश्यत इति नोच्यते। प्राकृते हि। ऋतुः। रिऊ। उऊ ॥ रजतम्। रययं ॥ एतद्। एअं ॥ गतः। गओ ॥ आगतः। आगओ ॥ सांप्रतम्। संपयं ॥ यतः। जओ ॥ ततः। तओ ॥ कृतम्। कयं ॥ हतम्। हयं ॥ हताशः। हयासो ॥ श्रुतः। सुओ ॥ आकृतिः। आकिई ॥ निर्वृतः। निव्वुओ ॥ तातः। ताओ ॥ कतरः। कयरो ॥ द्वितीयः। दुइओ इत्यादयः प्रयोगा भवन्ति। न पुनः उदू रयदं इत्यादि ॥ क्वचित् भावे पि व्यत्ययश्च (४-४४७) इत्येव सिद्धम् ॥ दिही इत्येतदर्थं तु धृतेर्दिहिः (२-१३१) इति वक्ष्यामः ॥

अर्थः—'रुदित' शब्द मे रहे हुए 'दि' सहित 'त' के स्थान पर अर्थात् 'दित' शब्दांश के स्थान पर द्वित्व 'रण' की प्राप्ति होती है। याने 'दित' के स्थान पर 'रण' आदेश होता है जैसे -रुदितम्=रुण्णं ॥ 'त' वर्ण से संबंधित विधि-विधानों के वर्णन में कुछ एक प्राकृत-व्याकरणकार 'ऋत्वादिषु द' अर्थात् ऋतु आदि शब्दों मे स्थित 'त' का 'द' होता है' ऐसा कहते हैं, वह कथन प्राकृत-भाषा के लिये उपयुक्त नहीं है। क्योंकि 'त' के स्थान 'द' की प्राप्ति शौरसेनी और मागधी भाषाओं मे ही होती हुई देखी जाती है। न कि प्राकृत-भाषा मे ॥ अधिकृत-व्याकरण प्राकृत भाषा का है, अत. इसमे 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति नहीं होती है। उपरोक्त कथन के समर्थन में कुछ एक उदाहरण इस प्रकार है -ऋतुः=रिऊ अथवा 'उऊ' ॥ रजतम्=रययं ॥ एतद्=एअ ॥ गत=गओ ॥ आगत=आगओ ॥ सांप्रतम्=संपयं ॥ यत=जओ ॥ तत=तओ ॥ कृतम्=कय ॥ हतम्=हयं ॥ हताश.=हयासो ॥ श्रुत=सुओ ॥ आकृति.=आकिई ॥ निर्वृत=निव्वुओ ॥ तात,=ताओ ॥ कतर=कयरो ॥ और द्वितीय=दुइओ ॥ इत्यादि 'त' संबंधित प्रयोग प्राकृत-भाषा मे पाये जाते हैं ॥ प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' को प्राप्ति नहीं होती है। केवल शौरसेनी और मागधी भाषा में ही 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार है.-ऋतु=उदू अथवा रुदू ॥ रजतम्=रयद इत्यादि ॥

यदि किन्हीं किन्ही शब्दों में प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति होती हुई पाई जाय तो उसको सूत्र-संख्या ४-४४७ से वर्ण-व्यत्यय अर्थात् अक्षरो का पारस्परिक रूप से अदला-बदली का स्वरूप समझा जाय, न कि 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश माना जाय ॥ इस प्रकार से सिद्ध हो गया कि केवल शौरसेनी एवं मागधी भाषा में ही 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति होती है; न कि प्राकृत-भाषा में ॥ दिही' ऐसा जो रूप पाया जाता है, वह धृति शब्द का आदेश रूप शब्द है, और ऐसा उल्लेख आगे सूत्र संख्या २-१३१ में किया जायगा। इस प्रकार उपरोक्त स्पष्टीकरण यह प्रमाणित करता है कि प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश नहीं हुआ करता है, तदनुसार प्राकृत-प्रकाश नामक प्राकृत-व्याकरण में 'ऋत्वादिषु तोदः 'नामक जो सूत्र पाया जाता है। उस सूत्र के समान-अर्थक सूत्र-रचने की इस प्राकृत-व्याकरण में आवश्यकता नहीं है। ऐसा आचार्य हेमचन्द्र का कथन है।

रुदितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रुण्ण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०६ से 'दित' शब्दांश के स्थान पर द्वित्व 'ण्ण' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रुण्णं रूप सिद्ध हो जाता है।

रिऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४१ में की गई है।

उऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ मे की गई है।

रययं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १७७ में की गई है।

एतद् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एअं होता है। इस में सूत्र संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यन्जन 'द्' का लोप, १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर एअं रूप सिद्ध हो जाता है।

गत' संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर गओ रूप सिद्ध हो जाता है।

आगत' संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आगओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर आगओ रूप सिद्ध हो जाता है।

साम्प्रतम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संपयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'आ के स्थान पर 'अ की प्राप्ति, २-७९ से 'र् का लोप' १-१७७ से 'त् का लोप' १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ को 'य' की प्राप्ति' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर संपयं रूप सिद्ध हो जाता है।

यत संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य को 'ज' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त' का लोप और १-३७ से विसर्ग को 'ओ की प्राप्ति होकर जओ रूप सिद्ध हो जाता है।

तत संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और १-३७ से विसर्ग को 'ओ की प्राप्ति होकर तओ रूप सिद्ध हो जाता है।

कयं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२६ में की गई है।

हतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त' का लोप' १-१८० से लुप्त 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर हयं रूप सिद्ध हो जाता है।

हताश संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हयासो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त् का लोप' १-१८० से लुप्त 'त् में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स की

प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *हयासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुओ होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से 'श' को 'स की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय को प्राप्ति होकर *सुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आकिई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' को 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ-स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *आकिई* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृतः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१३१ से 'ऋ' को 'उ' की प्राप्ति, २-८९ से 'व्' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निव्वुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तातः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ताओ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'अ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ताओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कतरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कयरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुइओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९४ में की गई है।

ऋतुः संस्कृत रूप है। इसका शौरसेनी और मागधी भाषा में उदू रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' को 'उ' की प्राप्ति, ४-२६० से 'त्' को 'द्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *उदू* रूप सिद्ध हो जाता है।

रजतम् संस्कृत रूप है। इसका शौरसेनी और मागधी भाषा में रयदं रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ४-२६० से 'त' को 'द' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्तिः और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *एवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृति संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३१ से 'धृति' के स्थान पर 'दिहि' रूप का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *दिही* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२०९ ॥

सप्ततौ रः ॥ १-२१० ॥

सप्ततौ तस्य रो भवति ॥ सत्तरी ॥

अर्थ—सप्तति शब्द में स्थित द्वितीय 'त' के स्थान पर 'र्' का आदेश होता है। जैसे—सप्तति=सत्तरी ॥

सप्तति संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सत्तरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से प्रथम 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-२१० से द्वितीय 'त्' के स्थान पर 'र्' का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त रूप में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *सत्तरी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२१० ॥

अतसी सातवाहने लः ॥ १-२११ ॥

अनयोस्तस्य लो भवति ॥ अलसी । सालाहणो । सालवाहणो । सालाहणी भासा ॥

अर्थ—अतसी और सातवाहन शब्दों में रहे हुए 'त' वर्ण के स्थान पर 'ल' वर्ण की प्राप्ति होती है। जैसे—अतसी=अलसी ॥ शातवाहनः=सालाहणो और सालवाहणो ॥ शातवाहनी भाषा=सालाहणी भासा ॥

अतसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अलसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२११ से 'त्' के स्थान पर 'ल' का आदेश होकर *अलसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सालाहणी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

सातवाहन संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सालवाहणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' का आदेश; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सालवाहणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शातवाहनी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सालाहणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' का आदेश, १-१७७ से 'व्' का लोप १-५ से लोप हुए 'व्' मे से शेष रहे हुए 'आ' को पूर्व वर्ण 'ल' के साथ संधि होकर 'ला' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' को ण की प्राप्ति होकर *सालाहणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भाषा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भासा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स' होकर *भासा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२११ ॥

पलिते वा ॥ १-२१२ ॥

पलिते तस्य लो वा भवति ॥ पलिलं। पलिअं ॥

अर्थः—पलित शब्द में स्थित 'त' का विकल्प से 'ल' होता है।
जैसे.—पलितम्=पलिल अथवा पलिअ ॥

पलितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पलिल और पलिअ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१२ से प्रथम रूप में 'त' के स्थान पर विकल्प से 'ल' आदेश की प्राप्ति, और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से पलिल और पलिअ दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१-२१२ ॥

पीते वो ले वा ॥ १—२१३ ॥

पीते तस्य वो वा भवति स्वार्थलकारे परे ॥ पीवलं ॥ पीअलं ॥ ल इति किम्। पीअं ॥

अर्थ—'पीत' शब्द में यदि 'स्वार्थ-बोधक' अर्थात् 'वाला' अर्थ बतलाने वाला 'ल' प्रत्यय जुड़ा हुआ होतो 'पीत' शब्द में रहे हुए 'त' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'व' वर्ण का आदेश हुआ करता है। जैसे.—पीतलम्=पीवल अथवा पीअल=पीले रंग वाला ॥

प्रश्न—मूल-सूत्र में 'ल' वर्ण का उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तर—'ल' वर्ण संस्कृत-व्याकरण में 'स्वार्थ-बोधक' अवस्था में शब्दों में जोड़ा जाता है। तदनुसार यदि 'पीत' शब्द में स्वार्थ-बोधक 'ल' प्रत्यय जुड़ा हुआ हो; तभी 'पीत' में स्थित 'त' के स्थान पर 'व' वर्ण का वैकल्पिक रूप से आदेश होता है, अन्यथा नहीं। इसी तात्पर्य को समझाने के लिये मूल-सूत्र में 'ल' वर्ण का उल्लेख किया गया है। स्वार्थ-बोधक 'ल' प्रत्यय के अभाव में पीत शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'व' वर्ण का आदेश नहीं होता है। जैसे.-पीतम्=पीअं ॥

पीतलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पीवलं और पीअलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२१३ से वैकल्पिक रूप से 'त' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पीवलं* और *पीअलं* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

पीतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पीअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१३ ॥

वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङ्गे हः ॥ १-२१४ ॥

एषु तस्य हो भवति ॥ विहत्थी। वसही॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति। वसइ। भरहो। काहलो। माहुलिङ्गं। मातुलुङ्ग शब्दस्य तु माउलुङ्गम्॥

अर्थः—वितस्ति शब्द में स्थित प्रथम 'त' के स्थान पर और वसति, भरत, कातर तथा मातुलिङ्ग शब्दों में स्थित 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे—वितस्तिः=विहत्थी, वसतिः=वसही भरतः=भरहो, कातरः=काहलो, और मातुलिङ्गम्=माहुलिङ्गं॥ 'बहुलाधिकार' सूत्र के आधार से किसी किसी शब्द में 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे—वसतिः=वसइ॥ मातुलुङ्ग शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होती है। अतः मातुलुङ्गम् रूप का प्राकृत रूप माउलुङ्गं होता है।

वितस्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विहत्थी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१४ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *विहत्थी* रूप सिद्ध हो जाता है।

वसतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वसही और वसइ होते हैं। इनमें प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२ के अधिकार से तथा १-१७७ से 'त्' का लोप तथा दोनों रूपों में सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर क्रम से *वसही* और *वसई* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

भरतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भरहो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भरहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कातर संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप काहलो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२५४ से 'र' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *काहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातुलिंगम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माहुलिंग होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२१४ से 'त्' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माहुलिंगं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातुलुङ्गम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउलुङ्ग होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर माउलुङ्गम् रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१४ ॥

मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढः ॥ १-२१५ ॥

एषु थस्य ढो भवति। हापवादः॥ मेढी। सिढिलो। सिढिलो। पढमो॥

अर्थ सूत्र-संख्या १-१८७ मे यह विधान किया गया है कि संस्कृत-शब्दों में स्थित 'थ' का प्राकृत रूपान्तर में 'ह' होता है। किन्तु यह सूत्र उक्त सूत्र का अपवाद रूप विधान है। तदनुसार मेथि, शिथिर, शिथिल और प्रथम शब्दों में स्थित 'थ' का 'ढ' होता है। जैसे -मेथि=मेढी, शिथिर=सिढिलो, शिथिल=सिढिलो और प्रथम =पढमो॥ इस अपवाद रूप विधान के अनुसार उपरोक्त शब्दों में 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होकर 'ढ' की प्राप्ति हुई है।

मेथिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेढी होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मेढी* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिर संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सिढिलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति, १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिढिलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिल संस्कृत विशेषण रूप है इसका प्राकृत रूप सिढिलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १ २६० से 'श' का 'स', १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिढिलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रथम संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पढमो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पढमो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१५ ॥

निशीथ-पृथिव्यो र्वा ॥ १ २१६ ॥

अनयोस्थस्य ढो वा भवति ॥ निसीढो । निसीहो ॥ पुढवी ॥ पुहवी ॥

अर्थ —निशीथ और पृथिवी शब्दों में स्थित 'थ' का विकल्प से 'ढ' होता है। तदनुसार प्रथम रूप में 'थ' का 'ढ' और द्वितीय रूप में 'थ' का 'ह' होता है। जैसे-निशीथः=निसीढो अथवा निसीहो और पृथिवी=पुढवी अथवा पुहवी ॥

निशीथः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप निसीढो और निसीहो होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' १-२१६ से प्रथम रूप में 'थ' का 'ढ' और १-१८७ से द्वितीय रूप में 'थ' का 'ह' और ३-२ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *निसीढो* और *निसीहो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पुढवी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८८ में की गई है।

पृथिवी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' १-१८७ से 'थ' का 'ह' और १-८८ से 'थि' में स्थित 'इ' को 'अ' की प्राप्ति होकर *पुहवी* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२१६ ॥

दशन-दष्ट-दग्ध-दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा डः ॥ १-२१७ ॥

एषु दस्य डो वा भवति ॥ डसणं दसणं ॥ डट्ठो दट्ठो ॥ डड्ढो दड्ढो ॥ डोला दोला ॥ डण्डो दण्डो ॥ डरो दरो ॥ डाहो दाहो ॥ डम्भो दम्भो ॥ डब्भो दब्भो ॥ कडणं कयणं ॥ डोहलो दोहलो ॥ दर शब्दस्य च भयार्थवृत्तेरेव भवति । अन्यत्र दर-दलिअं ॥

अर्थ.—दशन, दष्ट, दग्ध, दोला, दण्ड, दर, दाह, दम्भ, दर्भ, कदन और दोहद शब्दों में स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' होता है। जैसे —दशनम्=डसण अथवा दसण ॥ दष्ट =डट्ठो अथवा दट्ठो ॥ दग्ध =डड्ढो अथवा दड्ढो ॥ दोला=डोला अथवा दोला ॥ दण्ड =डण्डो अथवा दण्डो ॥ दर =डरो अथवा दरो ॥ दाह =डाहो अथवा दाहो ॥ दम्भ =डम्भो अथवा दम्भो ॥ दर्भ = डब्भो अथवा दब्भो ॥ कदनम् = कडण अथवा कयण ॥ दोहद =डोहलो अथवा दोहलो ॥ 'दर' शब्द में स्थित 'द्' का वैकल्पिक रूप से प्राप्त होने वाला 'ड' उसी अवस्था में होता है, जबकि दर'शब्द का अर्थ 'डर' अर्थात् भय-वाचक हो, अन्यथा 'दर' के 'द' का ड' नहीं होता है। जैसे —दर–दलितम् = दर–दलिअं ॥ तदनुसार 'दर' शब्द का अर्थ भय नहीं होकर 'थोड़ा सा' अथवा 'सूक्ष्म' अर्थ होने पर 'दर' शब्द में स्थित 'द' का प्राकृत रूप में 'द' ही रहा है। न कि 'द' का 'ड' हुआ है। ऐसी विशेषता 'दर' शब्द के सम्बन्ध में जानना ॥

दशनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डसण और दसण होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड', १-२६० से 'श' का 'स', १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से डसणं और दसणं दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दष्ट. संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप डट्ठो और दट्ठो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड', २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से डट्ठो और दट्ठो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दग्धः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप डड्ढो और दड्ढो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड', २-४० से 'ग्ध' का 'ढ', २-८९ से प्राप्त 'ढ' का द्वित्व ढ्ढ, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डड्ढो* और *दड्ढो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दोला संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डोला और दोला होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' होकर क्रम से *डोला* और *दोला* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दंड. संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डण्डो और दण्डो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड', १-३० से अनुस्वार का आगे 'ड' होने से हलन्त 'ण्', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डण्डो* और *दण्डो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दर संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डरो और दरो होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के

स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से डरो और दरो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दाहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डाहो और दाहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डाहो* और *दाहो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दम्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डम्भो और दम्भो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डम्भो* और *दम्भो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दर्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डब्भो और दब्भो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'भ' का द्वित्व 'भभ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' का 'ब्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डब्भो* और *दब्भो* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

कदनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कडणं और कयणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप तथा १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से दोनों रूपों में 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कडणं* और *कयणं* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

दोहदः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डोहलो और दोहलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से प्रथम 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; १-२२१ से द्वितीय 'द' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डोहलो* और *दोहलो* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

दर-दलितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दर-दलिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दर-दलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२१७॥

दश-दहो ॥१-२१८॥

अनयो धात्वोर्दस्य डो भवति ॥ डसइ । डहइ ॥

अर्थः—दश और दह धातुओ में स्थित 'द' का प्राकृत रूपान्तर मे 'ड' हो जाता है। जैसे—दशति=डसइ ॥ दहति=डहइ ॥ *दशति* संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप डसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१८ से द का 'ड', १-२६० से 'श' का 'स' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन मे प्रथम पुरुष में संस्कृत मे प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर डसइ रूप सिद्ध हो जाता है।

दहति संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप डहइ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२१८ से 'द' का 'ड और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष मे संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर डहइ रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१८ ॥

संख्या-गद्गदे रः १-२१९ ॥

संख्यावाचिनि गद्गद् शब्दे च दस्य रो भवति ॥ एआरह । बारह ॥ तेरह । गग्गरं । अनादेरित्येव । ते दस ॥ असंयुक्तस्येत्येव ॥ चउद्दह ॥

अर्थ—संख्या वाचक शब्दो मे और गद्गद् शब्द मे रहे हुए 'द' का 'र' होता है। जैसे—एकादश=एआरह ॥ द्वादश=बारह ॥ त्रयोदश=तेरह ॥ गद्गदम्=गग्गर ॥

'सूत्र संख्या १-१७६ का विधान-क्षेत्र यह सूत्र भी है, तदनुसार संख्या-वाचक शब्दों में स्थित 'द' यदि अनादि रूप से ही हो, अर्थात् संख्या-वाचक शब्दों में आदि रूप से स्थित नहीं हो, तभी उस 'द' का 'र' होता है।

यदि संख्या-वाचक शब्दो मे 'द' आदि अक्षर रूप से स्थित है, तो उस 'द' का 'र' नहीं होता है। ऐसा बतलाने के लिये ही इस सूत्र की वृत्ति में 'अनादे' रूप शब्द का उल्लेख करना पड़ा है। जैसे—तव दश=ते दस ॥

सूत्र-संख्या १-१७६ के विधान-अन्तर्गत होने से यह विशेषता और है कि संख्या-वाचक शब्दों में स्थित 'द' का 'र' उसी अवस्था में होता है जबकि 'द' असंयुक्त हो, हलन्त नहीं हो, स्वर सहित हो, इसीलिये सूत्र की वृत्ति में 'असंयुक्त 'ऐसा विधान किया गया है। 'संयुक्त' होने की दशा मे 'द' का 'र' नहीं होगा। जैसे—चतुर्दश=चउद्दह ॥ इत्यादि ॥

एकादश संख्या वाचक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप एआरह होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, १-२१९ से 'द' का 'र', और १-२६२ से 'श' का 'ह' होकर *एआरह* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वादश संख्या वाचक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप बारह होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, २-१७४ से वर्ण-व्यत्यय के सिद्धान्तानुसार 'व' के स्थान पर 'ब' का आदेश,

१-२१९ से द्वितीय 'द' का 'र' और १-२६२ से 'श' का 'ह' होकर बारह रूप सिद्ध हो जाता है।

तेरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६५ में की गई है।

गद्गद्गम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गग्गरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप २-८९ से द्वितीय 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति, १-२१९ से द्वितीय 'द' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गग्गरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तव दश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ते दस होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से संस्कृत सर्वनाम 'युष्मद्' के षष्ठी विभक्ति के एक वचन के 'तव' रूप के स्थान पर 'ते' रूप का आदेश, और १-२६० से 'श' का 'स' होकर *ते दस* रूप सिद्ध हो जाता है।

पदारह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७१ में की गई है॥ १-२१९॥

कदल्यामद्रुमे ॥ १-२२० ॥

कदली शब्दे अद्रुम-वाचिनि दस्य रो भवति ॥ करली ॥ अद्रुम इति किम्। कयली केली ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द कदली का अर्थ वृक्ष-वाचक केला नहीं होकर मृग हरिण वाचक अर्थ हो तो उस दशा में कदली शब्द में रहे हुए 'द' का 'र' होता है। जैसे—कदली=करली अर्थात् मृग विशेष॥

प्रश्न—सूत्र में 'अद्रुम' याने वृक्ष अर्थ नहीं ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि 'कदली' का अर्थ पशु विशेष वाचक नहीं होकर केला-वृक्ष विशेष वाचक हो तो उस दशा में कदली में रहे हुए 'द' का 'र' नहीं होता है, ऐसा मतलान के लिये ही सूत्र में 'अद्रुम' शब्द का उल्लेख किया गया है। जैसे—कदली=कयली अथवा केली अर्थात् केला-वृक्ष विशेष॥

कदली संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप करली होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२० से 'द' का 'र' होकर *करली* रूप सिद्ध हो जाता है।

कयली और *केली* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६७ में की गई है॥ १-२२०॥

प्रदीपि-दोहदे लः ॥ १-२२१ ॥

प्रपूर्वे दीप्यतौ धातौ दोहद-शब्दे च दस्य लो भवति ॥ पलीवेइ। पलित्तं। दोहलो॥

अर्थ—'प्र' उपसर्ग सहित दीप् धातु में और दोहद शब्द में स्थित 'द' का 'ल' होता है। जैसे—प्रदीपयति=पलीवेइ॥ प्रदीप्तम्=पलित्तं॥ दोहदः=दोहलो॥

प्रदीपयाति संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप पलीवेइ होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप, १-२२१ से 'द' का 'ल', १-२३१ से 'प' का 'व', ३-१४९ से प्रेरणार्थक प्रत्यय 'णि' के स्थानीय प्रत्यय 'अय के स्थान पर 'ए' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलीवेइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीप्तम् सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पलित्त होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२२१ से 'द' का 'ल', १-८४ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ, २-७७ से 'प्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व त्त की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय को प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पलित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दोहलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२१७ में की गई है। ॥ १-२२१ ॥

कदम्बे वा ॥ १-२२२ ॥

कदम्ब शब्दे दस्य लो वा भवति ॥ कलम्बो । कयम्बो ॥

अर्थः—कदम्ब शब्द मे स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। जैसे—कदम्ब =कलम्बो अथवा कयम्बो ॥

कदम्ब संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कलम्बो अथवा कयम्बो होते हैं। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२२ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कलम्बो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *कयम्बो* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३० में की गई है ॥ १-२२२ ॥

दीपौ धो वा ॥ १-२२३ ॥

दीप्यतौ दस्य धो वा भवति ॥ धिप्पइ । दिप्पइ ॥

अर्थ—दीप धातु मे स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ध' होता है। जैसे—दीप्यते=धिप्पइ अथवा दिप्पइ ॥

दीप्यते संस्कृत अकर्मक क्रिया का रूप हैं। इसके प्राकृत रुप धिप्पइ और दिप्पइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-२२३ से 'द्' का वैकल्पिक रूप से 'ध्', २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प', और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में सस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर दोनों रूप धिप्पइ और *दिप्पइ* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२३ ॥
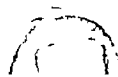
कदर्थिते वः ॥ १-२२४ ॥

कदर्थिते दस्य वो भवति ॥ कवट्टिओ ॥

अर्थ —कदर्थित शब्द में रहे हुए 'द' का 'व' होता है। जैसे-कदर्थितः=कवट्टिओ ॥

कदर्थितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कवट्टिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२४ से 'द' का 'व', २-२९ से संयुक्त 'र्थ' का 'ट' २-८९ से प्राप्त 'ट' का द्वित्व 'ट्ट', १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कवट्टिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-२२४॥

ककुदे हः ॥ १-२२५ ॥

ककुदे दस्य हो भवति ॥ कउहं ॥

अर्थ—ककुद् शब्द में स्थित 'द' का 'ह' होता है। जैसे-ककुद्=कउहं ॥

ककुद् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-२२५ से 'द्' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कउहं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-२२५॥

निषधे धो ढः ॥ १-२२६ ॥

निषधे धस्य ढो भवति ॥ निसढो ॥

अर्थ —निषध शब्द में स्थित 'ध' का 'ढ' होता है। जैसे—निषधः=निसढो ॥

निषधः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निसढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२२६ से 'ध' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निसढो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२२६ ॥

वौषधे ॥ १-२२७ ॥

औषधे धस्य ढो वा भवति ॥ ओसढं । ओसहं ॥

अर्थ —औषध शब्द में स्थित 'ध' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' होता है। जैसे —औषधम् = ओसढं अथवा ओसहं ॥

औषधम् संस्कृत रूप है। इनके प्राकृत रूप ओसढ और ओसहं होते है। इनमे सूत्र संख्या १-१५९ से 'औ' का 'ओ', १-२६० से 'ष' का 'स', १-२२७ से प्रथम रूप में वैकल्पिक रूप से 'ध' को 'ढ' तथा द्वितीय रूप मे १-१८७ से 'ध' का 'ह्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *ओसढं* और *ओसहं* सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२७ ॥

नो णः ॥ १-२२८ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्नस्य णो भवति ॥ कणयं । मयणो । वयणं । नयणं । माणइ ॥ आर्षे ॥ आरनालं । अनिलो । अनलो । इत्याद्यपि ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द मे 'न' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो, अर्थात् वह 'न' वर्ण हलन्त भी न हो याने स्वर रहित भी न हो, तथा आदि मे भी स्थित न हो, शब्द मे आदि अक्षर रूप से भी स्थित न हो, तो उस 'न' वर्ण का 'ण' हो जाता है। जैसे—कनकम्=कणयं। मदन=मयणो ॥ वचनम्=वयणं नयनम्=नयणं ॥ मानयति=माणइ ॥ आर्ष-प्राकृत में अनेक शब्द ऐसे भी पाये जाते हैं, जिनमें कि 'न' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप होता है, फिर भी उस 'न' वर्ण का 'ण' नहीं होता है। जैसे=आरनालम्=आरनालं ॥ अनिल=अनिलो ॥ अनल= अनलो ॥ इत्यादि ॥

कनकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' 'ण', १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'क्' मे से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कणयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मयणो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१७७* में की गई है।

वचनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'च्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नयणं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१७७* में की गई है।

मानयति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप माणइ होता है। इनमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', ४-२३९ से संस्कृत धातुओं मे प्राप्त होने वाले विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत धातु 'माण्' में स्थित हलन्त 'ण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, और ३-१३९ से

वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भायइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भारनालम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में भारनालं हो रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भारनालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आनिल और *अनल* संस्कृत रूप हैं। आर्ष-प्राकृत में इनके रूप क्रम से अनिलो और अनलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अनिलो* और *अनलो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२८ ॥

वादौ ॥ १-२२९ ॥

असंयुक्तस्यादौ वर्तमानस्य नस्य णो वा भवति । णरो नरो । णई नई । णेइ नेइ । असंयुक्तस्येत्येव । न्याय । नाओ ॥

अर्थ —किन्हीं किन्हीं शब्दों में ऐसा भी होता है कि यदि 'न' वर्ण आदि में स्थित हो और वह असंयुक्त हो' याने हलन्त न होकर स्वरान्त हो तो उस 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' हो जाया करता है। जैसे—नरः= णरो अथवा नरो। नदी=णई अथवा नई ॥ नेति=णेइ अथवा नेइ ॥

प्रश्न—'शब्द के आदि में स्थित 'न' असंयुक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि शब्द के आदि में स्थित होता हुआ भी 'न' वर्ण हलंत हुआ' संयुक्त हुआ तो उस 'न' वर्ण का 'ण' नहीं होता है ऐसा बतलाने के लिये 'असंयुक्त' विशेषण का प्रयोग किया गया है। जैसे— न्याय =नाओ ॥

नर संस्कृत रूप है इसके प्राकृत रूप णरो और नरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *णरो* और *नरो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नदी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णई और नई होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *णई* और *नई* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

नेति संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप णेइ और नेइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *णेइ* और *नेइ* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।
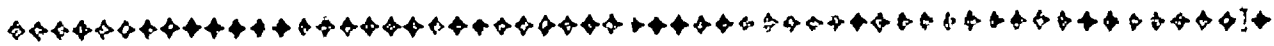
न्यायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नाओ होता है। इसमे सूत्र सख्या २-७८ से प्रथम 'य' का लोप, १-१७७ से द्वितीय 'य्' का भी लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नाओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२२९

निम्ब-नापिते-ल-ण्हं वा ॥ १-२३० ॥

अनयोर्नस्य ल ण्ह इत्येतौ वा भवतः ॥ लिम्बो निम्बो । ण्हाविओ नाविओ ॥

अर्थ —निम्ब' शब्द मे स्थित 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। तथा 'नापित' शब्द मे स्थित 'न का वैकल्पिक रूप से 'ण्ह' होता है। जैसे –निम्ब =लिम्बो अथवा निम्बो ॥ नापित =ण्हाविओ अथवा नाविओ ॥

निम्बः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लिम्बो और निम्बो होते हैं। इनमे सूत्र सख्या १-२३० से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लिम्बो* और *निम्बो* दोनो रूपो की क्रम से सिद्धि हो जाती है।

नापितः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ण्हाविओ और नाविओ होते हैं। इनमे सूत्र सख्या १-२३० से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण्ह'; १-२३१ से 'प' का 'व', १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ण्हाविओ* और *नाविओ* दोनो रूपो की क्रम से सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२३० ॥

पो वः ॥ १-२३१ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेः पस्य प्रायो वो भवति ।। सवहो । सावो । उवसग्गो । पईवो । कासवो । पावं । उवमा । कविलं । कुणवं । कलावो । कवालं महि–वालो । गो-वइ । तवइ ॥ स्वरादित्येव । कम्पइ ॥ असंयुक्तस्येत्येव । अप्पमत्तो ॥ अनादेरित्येव । सुहेण पढइ ॥ प्राय इत्येव । कई । रिऊ ॥ एतेन पकारस्य प्राप्तयो लोंप वकारयोर्यस्मिन् कृते श्रुति सुखमुत्पद्यते स तत्र कार्यः ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो, अर्थात् हलन्त (स्वर-सहित) भी न हो एव आदि मे भी स्थित न हो, तो उस 'प' वर्ण का प्रायः 'व' होता है। जैसेः–शपथः =सवहो ॥ शाप=सावो ॥ उपसर्गः=उवसग्गो ॥ प्रदीप =पईवो ॥ काश्यप =कासवो । पापम्=पाव ॥ उपमा=उवमा ॥ कपिलम=कविल ॥ कुणपम्=कुणव ॥ कलाप =कलावो ॥ कपालम्=कवाल ॥ महि-पाल'=महिवालो ॥ गोपायति=गोवइ ॥ तपति=तवइ ॥

प्रश्न— स्वर से परे रहता हुआ हो ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'प' का 'व' नहीं होगा। जैसे-कम्पते=कम्पइ॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं है, किन्तु हलन्त व्यञ्जन के परे रहा हुआ है, अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। यों अन्य उदाहरणों में भी जान लेना॥

प्रश्न— संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये किन्तु असंयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण संयुक्त होगा स्वर रहित होगा-हलन्त होगा' तो उस 'प' वर्ण का 'व' नहीं होगा। जैसे-अप्रमत्त=अप्पमत्तो॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण 'र' वर्ण में जुड़ा हुआ होकर संयुक्त है-स्वर रहित है हलन्त है अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। यही बात अन्य उदाहरणों में भी जान लेना॥

प्रश्न— अनादि रूप से स्थित हो' शब्द में प्रथम अक्षर रूप से स्थित नहीं हो' अर्थात् शब्द में आदि-स्थान पर स्थित नहीं हो' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर —क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा तो उस 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं होगा। जैसे-सुखेन पठति=सुहेण पढइ॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण 'पठति' क्रियापद में आदि अक्षर रूप से स्थित है, अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। इसी प्रकार से अन्य उदाहरणों में जान लेना॥

प्रश्न—'प्राय' अव्यय का ग्रहण क्यों किया गया है ?

उत्तर—'प्राय' अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं शब्दों में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप होता हुआ हो तो भी उस 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं होता है। जैसे—कपि=कइ और रिपु=रिऊ॥ इन उदाहरणों में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त भी है और अनादि रूप भी है फिर भी इन शब्दों में 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं हुआ है। यों अन्य शब्दों में भी समझ लेना चाहिये।

अनेक शब्दों में सूत्र संख्या १-१७७ से 'प' का लोप होता है और अनेक शब्दों में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होता है। इस प्रकार 'प' वर्ण की लोप-स्थिति एवं 'वकार स्थिति' दोनों अवस्थाएँ हैं, इन दोनों अवस्थाओं में से जिस अवस्था-विशेष से सुनने में आनंद आता हो: श्रुति-सुख उत्पन्न होता हो' उसी अवस्था का प्रयोग करना चाहिये ऐसा सूत्र की वृत्ति में ग्रंथकार का आदेश है। जो कि ध्यान रखने के योग्य है॥

रुवहो और *सावो* रूपो की सिद्धि सूत्र सख्या १ १७९ मे की गई है।

उपसर्गः सस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उवमग्गो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२३१ से 'प का 'व'; २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उवसग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीपः सस्कृत रूप है। इमका प्राकृत रूप पईवो होता है। इसमे सूत्र सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२३१ से द्वितीय 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पईवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कासवो रूप की सिद्धि सूत्र सख्या *१-४३* मे की गई है।

पावं रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-१७७ में की गई है।

उपमा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उवमा होता है। इस में सूत्र सख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *उवमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कपिलम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कविल होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२३१ से 'प' का 'व', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कविलं* रूप मिद्ध हो जता है।

कुणपम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कुणव होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२३१ से "प" को "व", ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग मे "सि" प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुणवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कलाप सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कलावो होता है। 'इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारात पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कलावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

महीपालः सस्कृत है। इसका प्राकृत रूप महिवालो होता है। इस मे सूत्र संख्या १-४ से 'ही' में स्थित दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ', १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *महिवालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गोपायति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गोवइ होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२३१ से 'प' का 'व', ४-२३९ से सस्कृत व्यञ्जनान्त धातु 'गोप्' में प्राप्त संस्कृत

धात्विक विकरण प्रत्यय आय के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गोवइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तपति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप तवइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तवइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कम्पइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३० में की गई है।

अप्रमत्तो संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पमत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पमत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुखेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सुहेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह' ३-६ से अकारान्त पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग वाले शब्दों में तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'अ' का 'ए' की प्राप्ति होकर *सुहेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पढइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९९ में की गई है।

कपि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *कई* रूप सिद्ध हो जाता है।

रिऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है। ॥ १-२३१ ॥

पाटि परुष-परिघ परिखा-पनस पारिभद्रे फः ॥ १-२३२ ॥

ण्यन्ते पटि धातौ परुषादिषु च पस्य फो भवति ॥ फालेइ फाडेइ। फरुसो फलिहो। फलिहा। फणसो। फालिहद्दो ॥

अर्थः—प्रेरणार्थक क्रिया वाचक प्रत्यय सहित पटि धातु में स्थित 'प' का और परुष परिघ, परिखा पनस एवं पारिभद्र शब्दों में स्थित 'प' का 'फ' होता है। जैसे-पाटयति=फालेइ अथवा फाडेइ ॥ परुषः=फरुसो। परिघः=फलिहो ॥ परिखा=फलिहा ॥ पनसः=फणसो। पारिभद्रः=फालिहद्दो ॥

फालेइ और [illegible] रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९८ में की गई है।

परुषः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप फरुसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ', १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फरुसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परिघः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ', १-२५४ से 'र' का 'ल', १-१८७ से 'घ का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फलिहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परिखा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहा होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ', १-२५४ से 'र' का 'ल' और १-१८७ से 'ख' का 'ह' होकर *फलिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पनसः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फणसो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ', १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फणसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पारिभद्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फालिहद्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३२ से "प" का "फ", १-२५४ से "र" का "ल", १-१८७ से "भ" का "ह", २-७६ से द्वितीय "र्" का लोप; २-८६ से "द" का द्वित्व "द्द" और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फालिहद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२३२ ॥

प्रभूते वः ॥ १-२३३ ॥

प्रभूते पस्य वो भवति ॥ वहुत्तं

अर्थः प्रभूत विशेषण में स्थित 'प' का 'व' होता है। जैसे:—प्रभूतम्=वहुत्तं ॥

प्रभूतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वहुत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३३ से 'प का 'व'; २-७६ से 'र्' का लोप, १-१८७ से 'भ' का 'ह', १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' को ह्रस्व स्वर 'उ'; २-८६ से 'त' का द्वित्व 'त्त', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२३३॥

नीपापीडे मो वा ॥१-२३४॥

अनयोः पस्य मो वा भवति ॥ नीमो नीवो ॥ आमेलो आवेडो ॥

अर्थः—नीप और आपीड शब्दों मे स्थित 'प' का विकल्प से 'म' होता है। तदनुसार एक रूप

में तो 'प' का 'म' होता है और द्वितीय रूप में 'प' का 'व' होता है। जैसे—नीप=नीमो अथवा नीवो और आपीड=आमेलो आवेडो ॥

नीप संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नीमो और नीवो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२३४ से 'प' का विकल्प से 'म' और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' तथा दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नीमो* और *नीवो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आमेलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१०५* में की गई है।

आवेडो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२०२* में की गई है। ॥ १-२३४ ॥

पापर्द्धौ रः ॥ १-२३५ ॥

पापर्द्धावपदादौ पकारस्य रो भवति ॥ पारद्धी ॥

अर्थ—पापर्द्धि शब्द में रहे हुए द्वितीय 'प' का 'र' होता है। जैसे—पापर्द्धिः=पारद्धी ॥ इस में विशेष शर्त यह कि 'पापर्द्धि' शब्द वाक्य के प्रारंभ में नहीं होना चाहिये' तभी द्वितीय 'प' का 'र' होता है यह बात वृत्ति में 'अपदादौ' से बतलाई है।

पापर्द्धिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पारद्धी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३५ से द्वितीय 'प' का 'र', २-७९ से रफ रूप 'र' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *पारद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

फो भ-हौ ॥ १-२३६ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेः फस्य भ-हौ भवतः ॥ क्वचिद् भः। रेफः। रेभो ॥ शिफा। सिभा। क्वचित्तु हः। मुक्ताफलं। मुत्ताहलं ॥ क्वचिदुभावपि। सभलं सहलं। सेफालिका सेभालिआ सेहालिआ। सफरी सभरी सहरी। गुफइ गुभइ गुहइ ॥ स्वरादित्येव। गुंफइ ॥ असंयुक्तस्येत्येव। पुप्फं ॥ अनादेरित्येव। चिट्ठइ फणी ॥ प्राय इत्येव। कसण-फणी ॥

अर्थ—यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् वह 'फ' वर्ण हलन्त याने स्वर रहित भी न हो' एवं आदि में भी स्थित न हो' तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' और 'ह' होता है। किसी किसी शब्द में 'भ' होता है। जैसे—रेफः=रेभो ॥ शिफा=सिभा ॥ किसी किसी शब्द में 'ह' होता है। जैसे—मुक्ताफलम्=मुत्ताहलं ॥ किसी किसी शब्द में 'फ' का 'भ'

और 'ह' दोनो ही होते है। जैसे–सफलम्=सभल अथवा सहल ॥ शेफालिका=सेभालिआ अथवा सेहालिआ ॥ शफरी=सभरी अथवा सहरी ॥ गुफति=गुभइ अथवा गुहइ ॥

प्रश्न –'स्वर से परे रहता हुआ हो' ऐसा क्यो कहा गया है ?

उत्तर –क्यो कि यदि किसी शब्द मे 'फ' वर्ण स्वर मे परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे.–गुम्फति=गु फइ । इस उदाहरण मे 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं है, किन्तु हलन्त व्यञ्जन 'म्' के परे रहा हुआ है, अत. यहाँ पर 'फ' का 'भ' अथवा 'ह' नहीं हुआ है। ऐसा ही अन्य उदाहरणो में भी समझ लेना ॥

प्रश्न,–'सयुक्त याने हलन्त नहो होना चाहिये, किन्तु असयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये' ऐसा क्यो कहा गया है ?

उत्तर.–क्यो कि यदि किसी शब्द मे 'फ' वर्ण सयुक्त होगा-स्वर रहित होगा-हलन्त होगा, तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे –पुष्पम्=पुप्फ ॥ (ग्रंथकार का यह दृष्टान्त यहाँ पर उपयुक्त नहीं है, क्यों कि अधिकृत विषय हलन्त 'फ' का है, न कि किसी अन्य वर्ण का, अत हलन्त 'फ' का उदाहरण अन्यत्र देख लेना चाहिये।)

प्रश्न –अनादि रूप से स्थित हो, शब्द में प्रथम अक्षर रूप से स्थित नहीं हो, अर्थात् शब्द में आदि स्थान पर स्थित नही हो', ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:–क्यो कि यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा, तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे –तिष्ठति फणी=चिट्ठइ फणी ॥ इस उदाहरण में 'फ' वर्ण 'फणी' पद में आदि अक्षर रूप से स्थित है, अत यहाँ पर 'फ' का 'भ' अथवा 'ह' नहीं हुआ है। इसी प्रकार से अन्य उदाहरणों में भी जान लेना चाहिये ॥

प्रश्न –वृत्ति में 'प्राय' अव्यय का ग्रहण क्यो किया गया है ?

उत्तर –'प्राय अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असयुक्त और अनादि रूप होता हुआ हो, तो भी उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होता है। जैसे –कृष्ण-फणी=कसण–फणी ॥ इस उदाहरण में 'फ' वर्ण स्वर से परे होता हुआ असयुक्त और अनादि रूप है, फिर भो 'फ' वर्ण का न तो 'भ' ही हुआ है, और न 'ह' ही। ऐसा ही अन्य शब्दों के सबध में भी जान लेना चाहिये ॥

रेफ' सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रेभो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२३६ से 'फ' को 'भ' और ३-२ मे प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *रेभो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिफा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिमा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' और १-२३६ से 'फ' का 'म' होकर *सिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुक्ताफलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुत्ताहलं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'क्' का लोप २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त', १-२३६ से 'फ' का 'ह' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुत्ताहलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सफलम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप समलं और सहलं होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२३६ से क्रम से प्रथम रूप में 'फ' का 'म' और द्वितीय रूप में 'फ' का 'ह', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *समलं* और *सहलं* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

शेफालिका संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सेमालिआ और सेहालिआ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' १-२३६ से 'फ' का क्रम से प्रथम रूप में 'म' और द्वितीय रूप में 'फ' का 'ह', और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर क्रम से *सेमालिआ* और *सेहालिआ* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

शफरी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप समरी और सहरी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' १-२३६ से क्रम से 'फ' का 'म' प्रथम रूप में और 'फ' का 'ह' द्वितीय रूप में होकर दोनों *समरी* और *सहरी* रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

गुफति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसके प्राकृत रूप गुमइ और गुहइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३६ से क्रम से 'फ' का 'म' प्रथम रूप में और 'फ' का 'ह' द्वितीय रूप में और ३-१३९ से वर्त्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *गुमइ* और *गुहइ* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

गुम्फति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है, इसका प्राकृत रूप गुंफइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार और ३-१३९ से वर्त्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुंफइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्पम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुप्फं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-५३ से 'ष्प' का 'फ', २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पुप्फं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चिंदइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२११ में की गई है।

कृष्ण संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कसण होता है। इसमे सूत्र सख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-११० से हलन्त 'ष्' मे 'अ' की प्राप्ति, और १-२६० से प्राप्त ष' का 'म' होकर *कसण* रूप सिद्ध हो जाता है।

बो वः ॥ १-२३७ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्बस्य वो भवति ॥ अलाबू। अलावू। अलाउ ॥ शबलः। सवलो ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द मे 'ब' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असयुक्त और अनादि रूप हो, अर्थात् वह 'ब' वर्ण हलन्त याने स्वर रहित भी न हो एव आदि में भी स्थित न हो, तो उस 'ब' वर्ण का 'व' हो जाता है। जैसे.-अलावू=अलाबू अथवा अलावू अथवा अलाऊ ॥ शबल=सवलो ॥

अलाबू सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अलाबू, और अलावू और अलाऊ होते हैं। इनमे से प्रथम रूप अलाबू में सूत्र सख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ऊकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य दीघ स्वर 'ऊ' एव विसर्ग का दीर्घ स्वर 'ऊ' ही रह कर *अलाबू* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र सख्या १-२३७ से 'ब' का 'व' और ३-१९ मे प्रथम रूप के समान ही प्रथमा विभक्ति का रूप सिद्ध होकर *अलावू* रूप भी सिद्ध हो जाता है। तृतीय रूप *अलाऊ* की सिद्धि सूत्र सख्या १-६६ में की गई है।

शबलः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सवलो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-२३७ से 'ब' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सवलो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२३७ ॥

बिसिन्यां भः ॥ १-२३८ ॥

बिसिन्यां बस्य भो भवति ॥ भिसिणी ॥ स्त्रीलिंगनिर्देशादिह न भवति। बिस-तन्तु-पेलवाण ॥

अर्थ.—बिसिनी शब्द में रहे हुए 'ब' वर्ण का 'भ' होता है। जैसे -बिसिनी=भिसिणी ॥ बिसिनी शब्द जहां स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होगा; वहीं पर ही बिसिनी में स्थित 'ब' का 'भ' होगा। किन्तु जहाँ पर 'बिस' रूप निर्धारित होकर नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होगा, वहाँ पर 'बिस' में स्थित 'ब' का 'भ' नहीं होगा। जैसे -बिस-तन्तु-पेलवानाम्=बिस-तन्तु-पेलवाणं ॥ इस उदाहरण में 'बिस' शब्द नपुसक लिंग में रहा हुआ है, अत. 'बिस में स्थित 'ब' का 'भ' नहीं हुआ है। यो लिंग-भेद से वर्ण-भेद जान लेना ॥

पिशिनी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिसिणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३८ से 'ब' का 'म' और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *मिसिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिस-तन्तु-पेलवानाम् संस्कृत षष्ठयन्त वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूपान्तर बिस-तन्तु-पेलवाणं होता है। इसमें केवल विभक्ति प्रत्यय का ही अन्तर है। तदनुसार सूत्र-संख्या ३-६ से संस्कृत षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय आम् के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति ३-१२ से प्राप्त ण प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'व' में रहे हुए 'अ' को 'आ' की प्राप्ति और १-२७ से 'ण' प्रत्यय पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *बिस-तन्तु पेलवाणं* रूप की सिद्धि हो जाती है॥ १-२३८॥

कबन्धे म-यौ ॥ १-२३९ ॥

कबन्धे बस्य मयौ भवतः॥ कमन्धो॥ कयन्धो॥

अर्थ—कबन्ध शब्द में स्थित 'ब' का कभी 'म' होता है और कभी 'य' होता है। तदनुसार कबन्ध के दो रूप होते हैं। जो कि इस प्रकार हैं—कमन्धो और कयन्धो॥

कबन्ध संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कमन्धो और कयन्धो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३९ से प्रथम रूप में 'ब' का 'म' और द्वितीय रूप में इसी सूत्रानुसार 'ब' का 'य' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कमन्धो* और *कयन्धो* की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२३९॥

कैटभे भो वः ॥ १-२४० ॥

कैटभे भस्य वो भवति॥ केढवो॥

अर्थ—कैटभ शब्द में स्थित 'भ' का 'व' होता है। जैसे-कैटभः=केढवो॥

केढवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१४८* में की गई है। ॥ १-२४०॥

विषमे मो ढो वा ॥ १-२४१ ॥

विषमे मस्य ढो वा भवति॥ विसढो। विसमो॥

अर्थ—विषम शब्द में स्थित 'म' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' होता है। जैसे-विषमः=विसढो अथवा विसमो॥

विषम संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप विसढो और विसमो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२४१ से 'म' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *विसढो* और विमसो की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२४१ ॥

मन्मथे वः ॥ १-२४२ ॥

मन्मथे मस्य वो भवति ॥ वम्महो ॥

अर्थः—मन्मथ शब्द मे स्थित आदि 'म' का 'व' होता है। जैसे.-मन्मथ =वम्महो ॥

मन्मथ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वम्महो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४२ से आदि 'म' का 'व', २-६१ से 'न्म' का 'म', २-८९ से प्राप्त 'म' का द्वित्व 'म्म', १-१८७ से 'थ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वम्महो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४२ ॥

वाभिमन्यौ ॥ १-२४३ ॥

अभिमन्यु शब्दे मो वो वा भवति ॥ अहिवन्नू अहिमन्नू ॥

अर्थ.—अभिमन्यु शब्द में स्थित 'म' का वैकल्पिक रूप से 'व' होता है।

अभिमन्यु =अहिवन्नू अथवा अहिमन्नू ॥

अभिमन्यु संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अहिवन्नू और अहिमन्नू होते हैं। इनमे सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ का 'ह', १-२४३ से 'म' का विकल्प से 'व', २-७८ से 'य' का लोप, २-८९ से शेष 'न्' का द्वित्व 'न्न्' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर क्रम से *अहिवन्नू* और *अहिमन्नू* दोनो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२४३ ॥

भ्रमरे सो वा ॥ १-२४४ ॥

भ्रमरे मस्य सो वा भवति ॥ भसलो भमरो ॥

अर्थः-भ्रमर शब्द में स्थित 'म' का विकल्प से 'स' होता है। जैसे -भ्रमर=भसलो अथवा भमरो ॥

भ्रमर संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भसलो और भमरो होते हैं। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप,१-२४४ से विकल्प से 'म' का स, १-२५४ से द्वितीय 'र' का 'ल और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भसलो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप,

और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *ममरो* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४४ ॥

आदेर्यो जः ॥ १-२४५ ॥

पदादेर्यस्य जो भवति ॥ जसो । जमो । जाइ ॥ आदेरिति किम् । अवयवो । विणओ ॥ बहुलाधिकारात् सोपसर्गस्यानादेरपि । संजमो संजोगो । अवजसो ॥ क्वचिन्न भवति । पओओ ॥ आर्षे लोपोपि । यथाख्यातम् । अहक्खायं ॥ यथाजातम् । अहाजायं ॥

अर्थ—यदि किसी पद अथवा शब्द के आदि में 'य' रहा हुआ हो तो उस 'य' का प्राकृत रूपान्तर में 'ज' हो जाता है। जैसे–यशः=जसो ॥ यमः=जमो ॥ याति=जाइ ॥

प्रश्न—'य' वर्ण पद के आदि में रहा हुआ हो तभी 'य' का 'ज' होता है; ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि 'य' वर्ण पद के आदि में नहीं होकर पद के मध्य में अथवा अन्त में रहा हुआ हो; अर्थात् 'य' वर्ण पद में अनादि रूप से स्थित हो तो उस 'य' का 'ज' नहीं होता है। जैसे–अवयवः=अवयवो ॥ विनयः=विणओ ॥ इन उदाहरणों में 'य' अनादि रूप है अतः इनमें 'य' का 'ज' नहीं हुआ है। यों अन्य पदों के सम्बन्ध में भी जान लेना ॥

'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से यदि कोई पद उपसर्ग सहित है, तो उस उपसर्ग सहित पद में अनादि रूप से रहे हुए 'य' का भी 'ज' हो जाया करता है। जैसे–संयमः=संजमो ॥ संयोगः=संजोगो ॥ अपयशः=अवजसो ॥ इन उदाहरणों में अनादि रूप से स्थित 'य' का भी 'ज' हो गया है। कभी कभी ऐसा पद भी पाया जाता है जो कि उपसर्ग सहित है और जिसमें 'य' वर्ण अनादि रूप से स्थित है; फिर भी उस 'य' का 'ज' नहीं होता है। जैसे–प्रयोगः=पओओ ॥ आर्ष-प्राकृत-पदों में आदि में स्थित 'य' वर्ण का लोप होता हुआ भी पाया जाता है। जैसे–यथाख्यातम्=अहक्खायं ॥ यथाजातम्=अहाजायं ॥ इत्यादि ॥

जसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-११* में की गई है।

यम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *जमो* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

याति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप *जाइ* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन के प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवयवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवयवो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवयवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विनयः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विणओ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विणओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संयम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संजमो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संजमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संयोगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संजोगो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संजोगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अपयशस् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवजसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व', १-२४५ से 'य' का 'ज', १-२६० से 'श' का 'स', १-११ से अन्त्य हलन्त 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *अवजसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रयोगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पओओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'य्' और 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *पओओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

यथाख्यातम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप अहक्खाय होता है। इस मे सूत्र संख्या १-२४५ से-(वृत्ति मे)-'य' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१८७ से 'थ' का 'ह', १-८४ से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अहक्खायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

यथाजातम् संस्कृत विशेषण है। इसका आर्ष-प्राकृत में अहाजाय रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ की वृत्ति से 'य' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१८७ से 'थ' का 'ह', १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के

एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अहाजायं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२४५ ॥

युष्मद्यर्थपरे तः ॥ १-२४६ ॥

युष्मच्छब्देर्थपरे यस्य तो भवति ॥ तुम्हारिसो । तुम्हकेरो ॥ अर्थ पर इति किम् । जुम्ह दम्ह-पयरणं ॥

अर्थ—जब 'युष्मद्' शब्द का पूर्ण रूप से 'तू-तुम' अर्थ व्यक्त होता हो तभी 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' वर्ण का 'त' हो जाता है। जैसे—युष्मादृशः=तुम्हारिसो ॥ युष्मदीयः=तुम्हकेरो ॥

प्रश्नः—'अर्थ पर' अर्थात् पूर्ण रूप से 'तू तुम' अर्थ व्यक्त होता हो तभी 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' वर्ण का 'त' होता है, ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि तू-तुम अर्थ 'युष्मद्' शब्द का नहीं होता हो एवं कोई अन्य अर्थ 'युष्मद्' शब्द का प्रकट होता हो तो उस 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' का 'त' नहीं होकर 'य' का 'ज' सूत्र-संख्या १-२४५ के अनुसार होता है। जैसे—युष्मदस्मत्प्रकरणम्=(अमुक-तमुक से संबंधित=अनिश्चित व्यक्ति से संबंधित=) जुम्ह दम्ह-पयरणं ॥ इस उदाहरण में स्थित 'युष्मद्' सर्वनाम 'तू-तुम' अर्थ का प्रकट नहीं करता है, अतः इस में स्थित 'य' वर्ण का 'त' नहीं होकर 'ज' हुआ है ॥

तुम्हारिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४२ में की गई है।

युष्मदीयः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तुम्हकेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४६ से 'य' का 'त'; २-७४ से 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; १-११ से 'युष्मद्' शब्द में स्थित अन्त्य व्यञ्जन 'द' का लोप; २-१४७ से 'सम्बन्ध वाला' अर्थद्योतक संस्कृत प्रत्यय 'ईय' के स्थान पर प्राकृत में 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तुम्हकेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

युष्मद्-अस्मद् संस्कृत सर्वनाम मूल रूप हैं। इनका (अमुक-तमुक अर्थ में) प्राकृत रूप जुम्ह दम्ह होता है। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' का 'ज्'; २-७४ से 'ष्म' और 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; १-५ से 'युष्मद्' में स्थित 'द्' की परवर्ती 'अ' के साथ संधि, और १-११ से 'अस्मद्' में स्थित अन्त्य 'द्' का लोप होकर *जुम्हदम्ह* रूप की सिद्धि हो जाती है।

प्रकरणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पयरणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-१७७ से 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पयरणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२४६॥

यष्ट्यां लः ॥ १-२४७ ॥

यष्ट्यां यस्य लो भवति ॥ लट्ठी । वेणु-लट्ठी । उच्छु-लट्ठी । महु-लट्ठी ॥

अर्थ —यष्टि शब्द मे स्थित 'य' का 'ल' होता है। जैसे.-यष्टि =लट्ठी ॥ वेणु-यष्टि =वेणु-लट्ठी ॥ इक्षु-यष्टि =उच्छु-लट्ठी ॥ मधु-यष्टि =महु-लट्ठी ॥

यष्ठि' =सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लट्ठी होता है। इसमे सूत्र सख्या १-२४७ से 'य' का 'ल, २-३४ से 'ष्ट' को 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्', और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे इकारान्त स्त्रीलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' एव विसर्ग को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *लट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेणु-यष्टि: सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *वेणु-लट्ठी* होता है। इस रूप की सिद्धि ऊपर सिद्ध किये हुए 'लट्ठी' रूप के समान ही जानना ॥

इक्षु-यष्टिः-सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उच्छु-लट्ठी होता है। इसमे सूत्र सख्या १-९५ से 'इ' को 'उ' की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष्' को 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' को 'च्' की प्राप्ति और शेष सिद्धि उपरोक्त लट्ठी के समान ही होकर *उच्छु-लट्ठी* रूप की सिद्धि हो जाती है।

मधु-यष्टिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महु-लट्ठी होता है। इसमे सूत्र सख्या १-१८७ से 'ध्' का 'ह्' और शेष सिद्धि उपरोक्त लट्ठी के समान ही होकर *महु-लट्ठी* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२४७ ॥

वोत्तरीयानीय-तीय-कृद्ये ज्जः ॥ १-२४८ ॥

उत्तरीय शब्दे अनीयतीय कृद्य प्रत्ययेषु च यस्य द्विरुक्तो जो वा भवति ॥ उत्तरिज्जं उत्तरीअं ॥ अनीय । करणिज्जं--करणीअं ॥ विम्हयणिज्ज विम्हयणीअं ॥ जवणिज्जं । जवणीअ ॥ तीय । बिइज्जो बीओ ॥ कृद्य । पेज्जा पेआ ॥

अर्थः—उत्तरीय शब्द में और जिन शब्दों में 'अनीय', अथवा 'तीय' अथवा कृदन्त वाचक 'य' प्रत्ययों में से कोई एक प्रत्यय रहा हुआ हो तो इनमें रहे हुए 'य' वर्ण का द्वित्व 'ज्ज' की वैकल्पिक रूप से प्राप्ति हुआ करती है। जैसे –उत्तरीयम्=उत्तरिज्ज अथवा उत्तरीअ ॥ 'अनीय' प्रत्यय से सबधित उदाहरण इस प्रकार हैं–करणीयम्=करणिज्ज अथवा करणीअं ॥ विस्मयनीयम्=विम्हयणिज्ज अथवा विम्हयणीअ ॥ यापनीयम्=जवणिज्ज अथवा जवणीअ ॥ 'तीय' प्रत्यय का उदाहरण –द्वितीय =बिइज्जो

अथवा पीओ ॥ कृदन्त वाचक 'य' प्रत्यय का उदाहरण–पेया=पेज्जा अथवा पेआ ॥ उपरोक्त सभी उदाहरणों में 'य' वर्ण को द्वित्व 'ज्ज' की विकल्प से प्राप्ति हुई है।

उत्तरीयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उत्तरिज्जं अथवा उत्तरीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, १-२४८ से विकल्प से 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *उत्तरिज्जं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१७७ से 'य्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *उत्तरीअं* रूप जानना।

करणीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप करणिज्जं अथवा करणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' का ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से विकल्प से 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *करणिज्जं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *करणीअं* में सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होती है॥

विस्मयनीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप विम्हयणिज्जं अथवा विम्हयणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७४ से 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' का 'ण', १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, १-२४८ से द्वितीय 'य' को विकल्प से द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *विम्हयणिज्जं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'य्' का विकल्प से लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *विम्हयणीअं* जानना।

यापनीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप जवणिज्जं अथवा जवणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से आदि 'य' को 'ज' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' का 'व' १-२२८ से 'न' का 'ण' १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति १-२४८ से वैकल्पिक रूप से द्वितीय 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जवणिज्जं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'य्' का विकल्प से लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान होकर *जवणीअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप विइज्जो और बीओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, ४-४४७ से 'व' के स्थान पर 'ब' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, १-२४८ से 'य' के स्थान पर द्वित्व 'ज्ज' की विकल्प से प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विइज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *बीओ* की सिद्धि सूत्र संख्या १-५ मे की गई है।

पेया संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप पेज्जा और पेआ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४८ से 'य' के स्थान पर विकल्प से द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर *पेज्जा* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप मे सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप हाकर *पेआ* रूप सिद्ध हो जाता है।१-२४८।

छायायां होऽकान्तौ वा ॥१-२४९॥

अकान्तौ वर्तमाने छाया शब्दे यस्य हो वा भवति ॥ वच्छस्स छाही। वच्छस्स छाया ॥ आतपाभावः। सच्छाहं सच्छायं ॥ अकान्ताविति किम् ॥ मुह-च्छाया। कान्ति रित्यर्थः ॥

अर्थः—छाया शब्द का अर्थ कांति नहीं होकर परछाई हो तो छाया शब्द में रहे हुए 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' होता है। जैसे—वृक्षस्य छाया=वच्छस्स-छाही अथवा वच्छस्स-छाया ॥ यहाँ पर छाया शब्द का तात्पर्य 'आतप अर्थात् धूप का अभाव' है। इसीलिये छाया मे रहे हुए 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' हुआ है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—सच्छायम्=(छाया सहित)=सच्छाहं अथवा सच्छायं ॥

प्रश्न—'छाया शब्द का अर्थ कांति नहीं होने पर ही 'छाया' में स्थित 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' होता है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—यदि छाया शब्द का अर्थ परछांई नहीं होकर कांति वाचक होगा तो उस दशा में छाया में रहे हुए 'य' वर्ण को विकल्प से होने वाले 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी, किन्तु उसका 'य' वर्ण ही रहेगा। जैसे—मुख-छाया=(मुख की कांति)=मुह-च्छाया ॥ यहाँ पर छाया शब्द का तात्पर्य कान्ति है। अत छाया शब्द में स्थित 'य' वर्ण 'ह' में परिवर्तित नहीं होकर ज्यों का त्यो ही—यथा रूप मे ही स्थित रहा है।

वृक्षस्य संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ', २-१७ से 'क्ष' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति, और ३-१० से संस्कृत में षष्ठी-विभक्ति-बोधक 'स्य' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वच्छस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

छाया संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छाही और छाया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२४९ से 'य' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति और ३-३४ से 'आ' में अर्थात् आदेश रूप से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ' को स्त्रीलिंग स्थिति में विकल्प से 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप छाही सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप छाया संस्कृत के समान ही होने से सिद्धवत् ही है।

सच्छायम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सच्छाहं और सच्छायं होता है। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४९ से 'य' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप सच्छाहं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार हो कर सच्छायं रूप सिद्ध हो जाता है।

मुख-च्छाया संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुह-च्छाया होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह', २-८९ से 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति होकर मुहच्छाया रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४९ ॥

डाह-वौ कतिपये ॥ १-२५० ॥

कतिपये यस्य डाह व इत्येतौ पर्यायेण भवतः ॥ कइवाहं। कइअवं ॥

अर्थ:—कतिपय शब्द में स्थित 'य' वर्ण का क्रम से एवं पर्याय रूप से 'आह' की और 'व' की प्राप्ति होती है। जो कि इस प्रकार है:—कइवाहं और कइअवं ॥ कतिपयम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत में कइवाहं और कइअवं दो रूप होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-२५० से 'य' का 'आह' की प्राप्ति; १-५ से 'व' में स्थित 'अ' के साथ प्राप्त 'आह' में स्थित 'आ' की संधि होकर 'वाह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप कइवाहं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कइअवं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' और 'प' का लोप; १-२५० से 'य' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर कइअवं रूप भी सिद्ध हो जाता है ॥ १-२५० ॥

किरि-भेरे रो डः ॥ १-२५१ ॥

अनयो रस्य डो भवति ॥ किडी। भेडो ॥

अर्थ:—किरि और भेर शब्द में रहे हुए 'र' का 'ड' होता है। जैसे:—किरि=किडी। भेरः=भेडो ॥

किरिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किडी होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२५१ से 'र' का 'ड' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *किडी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भरः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भेडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५१ से 'र' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भेडो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२५१ ॥

पर्याणे डा वा ॥ १-२५२ ॥

पर्याणे रस्य डा इत्यादेशो वा भवति ॥ पडायाणं । पल्लाणं ॥

अर्थ -पर्याण शब्द में रहे हुए 'र्' के स्थान पर विकल्प से 'डा' का आदेश होता है। जैसे-पर्याणम् = पडायाण अथवा पल्लाण ॥

पर्याणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पडायाण और पल्लाणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या १-२५२ से 'र्' के स्थान पर 'डा' का विकल्प से आदेश, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पडायाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से 'र्य' के स्थान पर 'ल्ल' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *पल्लाणं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२५२ ॥

करवीरे णः ॥ १-२५३ ॥

करवीरे प्रथमस्य रस्य णो भवति ॥ कणवीरो ॥

अर्थः—करवीर शब्द मे स्थित प्रथम 'र' का 'ण' होता है। जैसे -करवीरः =कणवीरो ॥

करवीरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कणवीरो होता हैं। इसमे सूत्र-संख्या १-२५३ से प्रथम 'र' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय को प्राप्ति होकर *कणवीरो* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥१-२५३॥

हरिद्रादौ लः ॥ १-२५४ ॥

हरिद्रादिषु शब्देषु असंयुक्तस्य रस्य लो भवति ॥ हलिद्दी दलिद्दाइ । दलिद्दो । दालिद्द । हलिद्दो । जहुट्ठिलो । सिढिलो । मुहलो । चलणो । वलुणो । कलुणो । इङ्गालो । सक्कालो ।

सोमालो । चिलाओ । फलिहा । फलिहो । फालिहद्दो । काहलो । लुक्को । अवद्दालं । भमलो । जढलं । बढलो । निट्ठुलो । बहुलाधिकाराच्चरण शब्दस्य पादार्थवृत्तेरेव । अन्यत्र चरण करणं ॥ भ्रमरे स संनियोगे एव । अन्यत्र भमरो । तथा । जढरं । बढरो । निट्ठुरो इत्याद्यपि ॥ हरिद्रा दरिद्राति । दरिद्र । दारिद्र्य । हारिद्र । युधिष्ठिर । शिथिर । मुखर । चरण । वरुण । करुण । अङ्गार । सत्कार । सुकुमार । किरात । परिखा । परिघ । पारिभद्र । कातर । रुग्ण । अपद्वार । भ्रमर । जठर । बठर । निष्ठुर । इत्यादि ॥ आर्षे दुवालसङ्गे इत्याद्यपि ॥

अर्थ—इसी सूत्र में नीचे लिखे हुए हरिद्रा, दरिद्राति इत्यादि शब्दों में रहे हुए असंयुक्त अर्थात् स्वरान्त 'र' वर्ण का 'ल' होता है । जैसे—हरिद्रा=हलिद्दी; दरिद्राति=दलिद्दाइ, दरिद्र=दलिद्दो; दारिद्र्यम्=दालिद्दं; हारिद्र=हलिद्दो; युधिष्ठिर=जहुट्ठिलो; शिथिर=सिढिलो; मुखर=मुहलो; चरण=चलणो; वरुण=वलुणो, करुण=कलुणो, अङ्गार=इङ्गालो; सत्कार=सक्कालो; सुकुमार=सोमालो; किरात=चिलाओ; परिखा=फलिहा; परिघ=फलिहो; पारिभद्र=फालिहद्दो; कातर=काहलो; रुग्ण=लुक्को; अपद्वारम्=अवद्दालं; भ्रमर=भसलो, जठरम्=जढलं, बठर=बढलो और निष्ठुर=निट्ठुलो ॥ इत्यादि ॥ इन उपरोक्त सभी शब्दों में रहे हुए असंयुक्त 'र' वर्ण का 'ल' हुआ है । इसी प्रकार से अन्य शब्दों में भी 'र' का 'ल' होता है, ऐसा जान लेना ॥ 'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से 'चरण' शब्द में रहे हुए असंयुक्त 'र' का 'ल' उसी समय में होता है जबकि 'चरण' शब्द का अर्थ 'पैर' हो; यदि 'चरण' शब्द का अर्थ चारित्र वाचक हो तो उस समय में 'र' का 'ल' नहीं होगा । जैसे—चरण-करणम्=चरण करणं अर्थात् चारित्र तथा गुण-संयम ॥ इसी प्रकार से 'भ्रमर' शब्द में रहे हुए 'र' का 'ल' उसी समय में होता है; जबकि इसमें स्थित 'म' का 'स' होता हो, यदि इस 'म' का 'स' नहीं होता है तो 'र' का भी 'ल' नहीं होगा । जैसे—भ्रमर=भमरो इसी प्रकार से 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से कुछ एक शब्दों में 'र' का 'ल' विकल्प से होता है; तदनुसार उन शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं—जठरम्=जढरं, जढलं; बठर=बढरो, बढलो और निष्ठुर=निट्ठुरो, निट्ठुलो इत्यादि ॥ आर्ष प्राकृत में 'द' का भी 'ल' होता हुआ देखा जाता है । जैसे—द्वादशाङ्गे=दुवालसंगे ॥ इत्यादि ॥

हलिद्दी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-८८ में की गई है ।

दरिद्राति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप दलिद्दाइ होता है । इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से प्रथम एवं असंयुक्त 'र' का 'ल', २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दलिद्दाइ रूप सिद्ध हो जाता है ।

दरिद्र संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप दलिद्दो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल'; २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय 'र' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से

शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दालिद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दारिद्र्यम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दालिद्दं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५४ से 'असयुक्त' 'र' का 'ल', २-७९ से अथवा २-८० से द्वित्व 'र्' का लोप, २-७८ से 'य' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' तथा 'य्' मे से शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसंकलिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हुए 'म' का अनुस्वार होकर *दालिद्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हारिद्र सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हलिद्दो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-८४ से आदि दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, १-२५४ से असयुक्त 'र' का 'ल', २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय सयुक्त 'र' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' मे से शेष रहे हुए 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हालिद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जहुट्ठिल्लो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९६ में की गई है।

सिढिलो रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-२१५ मे की गई है।

मुखर: सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मुहलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह', १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चरणः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चलणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चलणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वरुणः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलुणो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा बिभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वलुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

करुणः सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कलुणो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२५४ में 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कलुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इगालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४७ में की है।

सत्कार: सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कालो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'त्' का

लोप' २-८९ से 'फ' को द्वित्व 'फ' की प्राप्ति १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सप्फलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सोमालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७१ में की गई है।

पिसाजी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८९ में की गई है।

फलिहा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२३२ में की गई है।

फलिहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२३२ में की गई है।

फालिहद्दो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२३२ में की गई है।

फाहलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२१४ में की गई है।

रुग्ण संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप लुक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' २-२ से संयुक्त 'ग्ण' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लुक्को* रूप की सिद्धि हो जाती है।

अपद्वारम्—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवद्दालं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' २-७९ से 'व्' का लोप २-८९ से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'द' का द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति, १-२५४ से 'र' का 'ल' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवद्दालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भसलो—रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४४ में की गई है।

जठरम्—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जढलं और जढरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' १-२५४ से प्रथम रूप में 'र' का 'ल' और द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दोनों रूप *जढलं* तथा *जढरं* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

बठरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बढलो और बढरो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' १-२५४ से प्रथम रूप में 'र' का 'ल' तथा द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनों रूप *बढलो* और *बढरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

निष्ठुरः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप निट्ठुलो और निट्ठुरो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल' तथा द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनो रूप *निट्ठुलो* एवं *निट्ठुरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

चरण-करणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चरण-करणं ही होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२३ से 'म' का अनुस्वार होकर *चरण-करण* रूप सिद्ध हो जाता है।

भमरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४४* मे की गई है।

द्वादशाङ्गे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में दुवालसङ्गे रूप होता है। इसमे सूत्र सख्या १-९४ से 'द्वा' को पृथक् पृथक् करके हलन्त 'द्' में 'उ' की प्राप्ति, १-२५४ की वृत्ति से द्वितीय 'द्' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' का 'स', १-८४ से प्राप्त 'सा' मे स्थित दीर्घस्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति, और ३ ११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर आर्ष-प्राकृत मे *दुवालसंगे* रूप की सिद्धि हो जाती है। यदि 'द्वादशाङ्ग' ऐसा प्रथमान्त संस्कृत रूप बनाया जाय तो सूत्र सख्या ४-२८७ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर आर्ष-प्राकृत में प्रथमान्त रूप *दुवालसंगे* सिद्ध हो जाता है। १-२५४

स्थूले लो रः ॥ १-२५५ ॥

स्थूले लस्य रो भवति ॥ थोरं ॥ कथं थूलभद्दो ॥ स्थूरस्य हरिद्रादि लत्वे भविष्यति ॥

अर्थः—'स्थूल' शब्द में रहे हुए 'ल' का 'र' होता है। जैसे:-स्थूलम्=थोरं ॥

प्रश्न —'थूल भद्दो' रूप की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर.–'थूल भद्दो' में रहे हुए 'थूल' की प्राप्ति 'स्थूर' से हुई है, न कि 'स्थूल' से; तदनुसार सूत्र संख्या १-२५४ से 'स्थूर' में रहे हुए 'र' को 'ल' की प्राप्ति होगी, और इस प्रकार 'स्थूर' से 'थूल' की प्राप्ति हो जाने पर 'स्थूलम्=थोर' के समान 'स्थूर' में रहे हुए 'ऊ' को 'ओ' की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं है।

थोरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१२४* में की गई है।

स्थूर भद्रः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थूल भद्दो होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७७ से 'स्' का लोप, १-२५४ से प्रथम 'र' का 'ल', २-८० से द्वितीय 'र्' का लोप, २-८९ से 'द्' को द्वित्व 'द्द'

की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति क वचन में अकारान्त पुल्लिग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर शूल मक्रो रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२५५ ॥

लाहल लांगल लांगूले वादे र्णः ॥ १ २५६ ॥

एषु आदेर्लस्य णो वा भवति ॥ णाहलो लाहलो ॥ णङ्गलं लङ्गलं ॥ णङ्गूलं । लङ्गूलं ॥

अर्थ—लाहल लाङ्गल और लाङ्गूल शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर 'ल' का विकल्प से 'ण' होता है। जैसे-लाहल-णाहलो अथवा लाहलो ॥ लाङ्गलम्=णङ्गलं अथवा लङ्गलं ॥ लाङ्गूलम्=णङ्गूलं अथवा लङ्गूलं ॥

लाहल संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णाहलो और लाहलो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर ल का विकल्प से 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से णाहलो और लाहलो दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

लाङ्गलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णङ्गलं और लङ्गलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर 'ल का विकल्प से 'ण' १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ के स्थान पर 'अ की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर क्रम से णङ्गलं और लङ्गलं दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

लाङ्गूलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णङ्गूलं और लङ्गूलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर ल का विकल्प से 'ण' १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ के स्थान पर अ की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर क्रम से णङ्गूलं और लङ्गूलं दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। १-२५६ ॥

ललाटे च ॥ १-२५७ ॥

ललाटे च आदे र्लस्य णो भवति ॥ चकार आदेरनुवृत्त्यर्थः ॥ णिडालं । णडालं ॥

अर्थ—ललाट शब्द में आदि में रहे हुए 'ल का ण' होता है। मूल-सूत्र में 'च अक्षर लिखने का तात्पर्य यह है कि सूत्र-संख्या १-२५६ में 'आदि' शब्द का उल्लेख है उस 'आदि' शब्द का यहाँ पर भी समम लेना तदनुसार 'ललाट शब्द में जो दो लकार हैं; उनमें से प्रथम ल' का ही 'ण' होता है, न

कि द्वितीय 'लकार' का; इस प्रकार 'तात्पर्य-विशेष' को समझाने के लिये ही 'च' अक्षर को मूल सूत्र में स्थान प्रदान किया है। उदाहरण इस प्रकार है -ललाटम्=णिडाल और णडाल ॥

णिडालं और *णडालं* रूपों को सिद्धि सूत्र-संख्या १-४७ में की गई है ॥१-२५७॥

शबरे वो मः । १-२५८ ॥

शबरे बस्य मो भवति ॥ समरो ॥

अर्थ. शबर शब्द मे रहे हुए 'व' का 'म' होता है। जैसे-शबरः=समरो ॥

शबरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप समरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२५८ से 'ब' का 'म' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समरो* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥ १-५८ ॥

स्वप्न-नीव्यो वा ॥ १-२५९ ॥

अनयोर्वस्य मो वा भवति ॥ सिमिणो सिविणो ॥ नीमी नीवी ॥

अर्थः-स्वप्न और नीवी शब्दों में रहे हुए 'व' का विकल्प से 'म' होता है। जैसेः-स्वप्नः= सिमिणो अथवा सिविणो ॥ नीवी=नीमी अथवा नीवी ॥

सिमिणो और *सिविणो* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है।

नीवी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नीमी और नीवी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५९ से 'व' का विकल्प से 'म' होकर कम से *नीमी* और *नीवी* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२५९ ॥

श-षोः सः ॥ १-२६० ॥

शकार षकारयोः सो भवति ॥ श । सद्दो । कुसो । निसंसो । वंसो । सामा । सुद्धं । दस । सोहइ । विसइ ॥ ष ॥ सण्डो । निहसो । कसाओ । घोसइ ॥ उभयोरपि । सेसो । विसेसो ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द में रहे हुए 'शकार' का और 'षकार' का प्राकृत रूपान्तर में 'सकार' हो जाता है। 'श' से संबंधित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-शब्द=सद्दो। कुशः=कुसो ॥ नृशंसः=निससो ॥ वंश=वसो ॥ श्यामा=सामा ॥ शुद्धम्=सुद्ध ॥ दश=दस ॥ शोभते=सोहइ ॥ विंशति=विसइ ॥ इत्यादि ॥ 'ष' से संबंधित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—षण्डः=सण्डो ॥ निकषः=निहसो ॥ कषाय=कसाओ ॥ घोषयति=घोसइ ॥ इत्यादि ॥ यदि एक ही शब्द में आगे पीछे अथवा साथ साथ में 'शकार' एव 'षकार'

आ जाय तो भी उन 'शकार' और 'षकार' के स्थान पर सकार की प्राप्ति हो जाती है। जैसे:— शषः=ससो और विशेषः=विसेसो ॥ इत्यादि ॥

शब्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १–२६० से 'श' का 'स' २–७९ से 'ब' का लोप २–८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का स और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुसो* रूप सिद्ध हो जाता है। *निसंसो* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१२८ में की गई है।

वंश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्यामा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सामा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स', और २–७८ से 'य' का लोप होकर *सामा* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुभम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दस रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२१९ में की गई है।

सोहइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–१८७ में की गई है।

विशति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विसइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से श का स और ३–१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय ति के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्ढ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १–२६० से 'ष' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ... ८७ ॥] प्रत्यय के स्थान पर 'ओ

घोषयति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप घोसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से ष का 'स', ४ २३६ से संस्कृत धात्विक गण-बोधक विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घोसइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शेषः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'शकार' 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विशेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसेसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से दोनों 'शकार', 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसेसो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२६० ॥

स्नुषायां ण्हो न वा ॥ १-२६१ ॥

स्नुषा शब्दे षस्य ण्हः णकाराक्रान्तो हो वा भवति ॥ सुण्हा । सुसा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्नुषा' में स्थित 'ष' वर्ण के स्थान पर हलन्त 'ण्' सहित 'ह' अर्थात् 'ण्ह' की विकल्प से प्राप्ति होती है। जैसे:—स्नुषा=सुण्हा अथवा सुसा ॥

स्नुषा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुण्हा और सुसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'न' का लोप, १-२६१ से प्रथम रूप में 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ण्ह' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में १-२६० से 'ष' का 'स' होकर क्रम से *सुण्हा* और *सुसा* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६१ ॥

दश-पाषाणे हः ॥ १-२६२ ॥

दशन् शब्दे पाषाण शब्दे च शषोर्यथादर्शनं हो वा भवति ॥ दह-मुहो दस मुहो ॥ दह-बलो दस बलो । दह- रहो दस रहो । दह दस । एआरह । बारह । तेरह । पाहाणो पासाणो ॥

अर्थः—दशन् शब्द में और पाषाण शब्द में रहे हुए 'श' अथवा 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ह' होता है। ये शब्द दशन् और पाषाण चाहे समास रूप से रहे हुए हों अथवा स्वतंत्र रहे हुए हो, तो भी इनमें स्थित 'श' का अथवा 'ष का विकल्प से 'ह' हो जाता है। ऐसा तात्पर्य वृत्ति में उल्लिखित 'यथादर्शनं' शब्द से जानना ॥ जैसे —दश-मुख =दह-मुहो अथवा दस मुहो ॥ दश-बल =दह बलो अथवा दस बलो ॥ दशरथ =दहरहो अथवा दसरहो ॥ दश=दह अथवा दस ॥ एकादश=एआरह ॥ द्वादश=[illegible] पाषाण=पाहाणो पासाणो ॥

आ जाय, तो भी उन 'शकार' और 'षकार' के स्थान पर 'सकार' की प्राप्ति हो जाती है। जैसे— शेषः=सेसो और विशेषः=विसेसो ॥ इत्यादि ॥

शब्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १–२६० से 'श' का 'स', २–७९ से 'ब' का लोप, २–८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सद्दो रूप सिद्ध हो जाता है।

कुश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुसो* रूप सिद्ध हो जाता है। *निसंसो* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१२८ में की गई है।

वंश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्यामा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सामा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का स' और २–७८ से 'य' का लोप होकर *सामा* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुभम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दस रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–२१९ में की गई है।

सोहइ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१८७ में की गई है।

विशति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विसइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का स' और ३–१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्ढ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १–२६० से 'ष' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सण्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निहसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–१८६ में की गई है।

कषाय संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप कसाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १–२६० से 'ष' का स' १–१७७ से 'य' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घोषयति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप घोसइ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२६० से ष का 'स'; ४ २३६ से संस्कृत धात्विक गण-बोधक विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ मे वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत मे 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घोसइ रूप सिद्ध हो जाता है।

शेषः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सेसो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'शकार' 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सेसो रूप सिद्ध हो जाता है।

विशेष: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसेसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से दोनों 'शकार', 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विसेसो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२६० ॥

स्नुषायां ण्हो न वा ॥ १-२६१ ॥

स्नुषा शब्दे षस्य ण्हः णकाराक्रान्तो हो वा भवति ॥ सुण्हा । सुसा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्नुषा' में स्थित 'ष' वर्ण के स्थान पर हलन्त 'ण्' सहित 'ह' अर्थात् 'ण्ह' की विकल्प से प्राप्ति होती है। जैसे—स्नुषा=सुण्हा अथवा सुसा ॥

स्नुषा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुण्हा और सुसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'न' का लोप, १-२६१ से प्रथम रूप में 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ण्ह' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में १-२६० से 'ष' का 'स' होकर क्रम मे सुण्हा और सुसा दोनो रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६१ ॥

दश-पाषाणे हः ॥ १-२६२ ॥

दशन् शब्दे पाषाण शब्दे च शषोर्यथादर्शनं हो वा भवति ॥ दह-मुहो दस मुहो ॥ दह-बलो दस बलो । दह- रहो दस रहो । दह दस । एआरह । बारह । तेरह । पाहाणो पासाणो ॥

अर्थः—दशन् शब्द में और पाषाण शब्द में रहे हुए 'श' अथवा 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ह' होता है। ये शब्द दशन् और पाषाण चाहे समास रूप से रहे हुए हों अथवा स्वतंत्र रहे हुए हो, तो भी इनमें स्थित 'श' का अथवा 'ष का विकल्प से 'ह' हो जाता है। ऐसा तात्पर्य वृत्ति में उल्लिखित 'यथादर्शन' शब्द से जानना ॥ जैसे.—दश-मुख=दह-मुहो अथवा दस मुहो ॥ दश-बल=दह बलो अथवा दस बलो ॥ दशरथ=दहरहो अथवा दसरहो ॥ दश=दह अथवा दस ॥ एकादश=एआरह ॥ द्वादश=बारह ॥ पाषाण=पाहाणो पासाणो ॥

दश मुख संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दह-मुहो और दसमुहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६२ से विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से दोनों रूपों में 'ख' का 'ह' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की दोनों रूपों में प्राप्ति होकर क्रम से दह-मुहो और दस मुहो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

दश-बल संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दह बलो और दस बलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६२ से प्रथम रूप में विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स' तथा ३-२ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दह बलो एवं दस बलो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

दशरथ संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दहरहो और दसरहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६२ से विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से दोनों रूपों में 'थ' का 'ह' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम दहरहो और दसरहो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

एआरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१९ में की गई है।

बारह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१९ में की गई है।

तेरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६५ में की गई है।

पाषाण संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाहाणो और पासाणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६२ से विकल्प से 'ष' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'ष' का 'स' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम से पाहाणो एवं पासाणो रूपों की सिद्धि हो जाती है। १-२६२॥

दिवसे सः ॥ १-२६३ ॥

दिवसे सस्य हो वा भवति ॥ दिवहो । दिवसो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'दिवस' में रहे हुए 'स' वर्ण के स्थान पर विकल्प से 'ह' होता है। जैसे—दिवसः=दिवहो अथवा दिवसो ॥

दिवस संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दिवहो और दिवसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६३ से 'स' का विकल्प से 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनो रूपों में होकर क्रम से *दिवहो* और *दिवसो* रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२६३ ॥

हो घोनुस्वारात् ॥ १-२६४ ॥

अनुस्वारात् परस्य हस्य घो वा भवति ॥ सिंघो । सीहो ॥ संघारो । संहारो । क्वचिद्–ननुस्वारादपि । दाहः । दाघो ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द मे अनुस्वार के पश्चात् 'ह' रहा हुआ हो तो उस 'ह' का विकल्प से 'घ' होता है। जैसे.-सिंह =सिंघो अथवा सीहो ॥ संहार =संघारो अथवा संहारो ॥ इत्यादि ॥ किसी किसी शब्द में ऐसा भी देखा जाता है कि 'ह' वर्ण के पूर्व में अनुस्वार नहीं है, तो भी उस 'ह' वर्ण का 'घ' हो जाता है। जैसे –दाह =दाघो ॥ इत्यादि ॥ *सिंघो* और *सीहो* रूपों को सिद्धि सूत्र सख्या १-२९ में की गई है।

संहारः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप संघारो और संहारो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या १-२६४ से विकल्प से 'ह' का 'घ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों मे होकर क्रम से *संघारो* और *संहारो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

दाहः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाघो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२६४ की वृत्ति से 'ह का 'घ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दाघो* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६० ॥

षट्-शमी-शाव-सुधा-सप्तपर्णेष्वादेश्छः ॥ १-२६५ ॥

एषु आदेर्वर्णस्य छो भवति ॥ छट्ठो । छट्ठी । छप्पओ । छम्मुहो । छमी । छावो । छुहा । छत्तिवण्णो ॥

अर्थ.—षट्, शमी, शाव, सुधा और सप्तपर्ण आदि शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर का अर्थात सर्व प्रथम अक्षर का 'छ' होता है। जैसे —षष्ठ.=छट्ठो । षष्ठी=छट्ठी ॥ षट्पद =छप्पओ । षण्मुखः= छम्मुहो । शमी=छमी । शाव.=छावो । सुधा=छुहा और सप्तपर्ण.=छत्तिवण्णो इत्यादि ॥

षष्ठः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छट्ठो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ', २-७७ से द्वितीय 'ष्' का लोप, २-८६ से शेष 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

षष्ठी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छट्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ' २-७७ से द्वितीय 'ष' का लोप २-८९ से शेष 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' को 'ट्' की प्राप्ति होकर *छट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

षट्पदः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छप्पओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ' २-७७ से 'ट' का लोप २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छप्पओ* रूप की सिद्धि हो जाती है।

षण्मुखः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छम्मुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ', १-२५ से 'ण्' को पूर्व व्यञ्जन पर अनुस्वार की प्राप्ति एवं १-३० से प्राप्त अनुस्वार को परवर्ती 'म' के कारण से 'म्' की प्राप्ति १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छम्मुहो* रूप की सिद्धि हो जाता है।

शमी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से 'श' का 'छ' होकर *छमी* रूप सिद्ध हो जाता है।

शाप संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छावो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६५ से 'श' का 'छ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुहा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७ में की गई है।

छत्तिवण्णो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४९ में की गई। ॥ १-२६५ ॥

शिरायां वा ॥ १-२६६ ॥

शिरा शब्दे आदेश्छो वा भवति ॥ छिरा सिरा ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द शिरा में रहे हुए आदि अक्षर 'श' का विकल्प से 'छ' होता है। जैसे:— शिरा=छिरा अथवा सिरा ॥

शिरा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छिरा और सिरा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६६ से 'श' का विकल्प से 'छ' और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' होकर क्रम से *छिरा* और *सिरा* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६६ ॥

लुग भाजन-दनुज-राजकुले जः सस्वरस्य न वा ॥ १-२६७ ॥

एषु सस्वरजकारस्य लुग् वा भवति ॥ भाणं भायणं ॥ दणु-वहो । दणुअ-वहो । रा-उलं राय-उलं ॥

अर्थः—'भाजन, दनुज और राजकुल' मे रहे हुए 'स्वर सहित जकार का' विकल्प से लोप होता है। जैसे -भाजनम्=भाण अथवा भायण ॥ दनुज-वध.=दणु-वहो अथवा दणुअ-वहो और राजकुलम्=रा-उल अथवा राय-उल ॥ इन उदाहरणों के रूपो मे से प्रथम रूप मे स्वर सहित 'ज' व्यञ्जन का लोप हो गया है।

भाजनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भाणं और भायण होते हैं। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६७ से 'ज' का विकल्प से लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय का 'म्' और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *भाणं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *भायण* भी सिद्ध हो जाता है।

दनुज-वधः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दणु-वहो और दणुअ-वहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२२८ से न का 'ण', १-२६७ से विकल्प मे 'ज' का लोप, १-१८७ से 'ध' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दणु-वहो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१७७ से 'ज्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *दणुअ-वहो* भी सिद्ध हो जाता है।

राजकुलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रा उल और राय-उल होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या १-२६७ से विकल्प से 'ज' का लोप, १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *रा- उलं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *राय-उलं* भी सिद्ध हो जाता है ॥१-२६७॥

व्याकरण-प्राकारागते कगोः ॥१-२६८॥

एषु को गश्च सस्वरस्य लुग् वा भवति ॥ वारणं वायरणं। पारो पायारो ॥ आओ आगओ ॥

अर्थ —'व्याकरण' और 'प्राकार' में रहे हुए स्वर सहित 'क' का अर्थात् सम्पूर्ण 'क' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे—व्याकरणम्=वारणं अथवा वायरणं और प्राकार=पारो अथवा पायारो ॥ इसी प्रकार से 'आगत' में रहे हुए स्वर सहित 'ग' का अर्थात् सम्पूर्ण 'ग' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे —आगतः=आओ अथवा आगओ ॥

व्याकरणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वारणं और वायरणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६८ से स्वर सहित 'क' का अर्थात् संपूर्ण 'क' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वारणं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *वायरणं* भी सिद्ध हो जाता है।

प्राकार संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पारो और पायारो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-२६८ से स्वर सहित 'का' का अर्थात् संपूर्ण 'का' का विकल्प से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पारो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'आ' को 'या' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पायारो* भी सिद्ध हो जाता है।

आगत संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप आओ और आगओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या १-२६८ से 'ग' का विकल्प से लोप; १-१७७ से 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आओ* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *आगओ* की सिद्धि सूत्र संख्या १-२०९ में की गई है ॥१-२६८॥

किसलय-कालायस-हृदये यः ॥ १-२६९ ॥

एषु सस्वरयकारस्य लुग् वा भवति ॥ किसलं किसलयं ॥ कालासं कालायसं ॥ महण्णव-समासहिआ । जाला ते सहिअएहिं घेप्पन्ति ॥ निसमणुप्पिअ हिअस्स हिअयं ॥

अर्थ -'किसलय', 'कालायस' और 'हृदय' में स्थित स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे —किसलयम्=किसलं अथवा किसलयं ॥ कालायसम्=कालासं अथवा कालायसं और हृदयम्=हिअं अथवा हिअयं ॥ इत्यादि ॥ ग्रंथकार ने वृत्ति में हृदय रूप का समझाने के लिये काव्यात्मक उदाहरण दिया है; जो कि संस्कृत रूपान्तर के साथ इस प्रकार है:—

(१) महार्णवसमा सहृदया =महण्णव-समासहिआ ॥

(२) यदा ते सहृदयै गृह्णन्ते=जाला ते सहिअएहि घेप्पन्ति ॥

(३) निशमनार्पित हृदयस्य हृदयम्=निसमणुप्पिअ-हिअस्स हिअयं ॥

किसलयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप किसलं और किसलयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६६ से स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *किसलं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२६६ से वैकल्पिक पक्ष में 'य' का लोप नहीं होकर प्रथम रूप के समान ही शेष साधनिका से द्वितीय रूप *किसलयं* भी सिद्ध हो जाता है।

कालायसम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कालासं और कालायम होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६६ से स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *कालासं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२६६ से वैकल्पिक पक्ष में 'य' का लोप नहीं होकर प्रथम रूप के समान ही शेष साधनिका से द्वितीय रूप *कालायसं* भी सिद्ध हो जाता है।

महार्णव-समाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महण्णव-समा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर प्रथम 'आ' के स्थान पर ह्रस्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, ३ ४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त हुए 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *महण्णव-समा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सहृदया संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सहिआ होता है। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' का 'इ', १-१७७ से 'द्' का लोप, १-२६६ से स्वर सहित 'य का विकल्प से लोप, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर "अ', को दीर्घ स्वर "आ', की प्राप्ति होकर *सहिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

यदा संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जाला होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज', ३-६५ से कालवाचक संस्कृत प्रत्यय 'दा के स्थान पर 'आला' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जाला* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। यह रूप मूल सर्वनाम 'तद्'

से बनता है। इसमें सूत्र संख्या १ ११ से अन्त्य व्यञ्जन 'द्' का लोप, और ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' के स्थान पर 'ए' आदेश की प्राप्ति होकर ते रूप सिद्ध हो जाता है।

सहृदयैः संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सहिअएहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १२८ से 'ऋ' का 'इ' १ १७७ से 'द्' का लोप १ १७७ से ही 'य्' का भी लोप ३ १५ से लुप्त हुए 'य्' में से शेष बचे हुए 'अ' को (अपने आगे तृतीया विभक्ति के बहु वचन के प्रत्यय होने से) 'ए' की प्राप्ति और ३-७ से संस्कृत भाषा के तृतीया विभक्ति के बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर आदेश प्राप्त 'एस्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में हिं प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सहिअएहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह्यन्ते कर्मणि वाच्य क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप घेप्पन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२५६ से 'ग्रह्' धातु के स्थान पर 'घेप्प' का आदेश और इसी सूत्र की वृत्ति से संस्कृत भाषा में कर्मणि वाच्यार्थ बोधक 'य' प्रत्यय का लोप, ४-२३९ से 'घेप्प' धातु में स्थित हलन्त द्वितीय 'प' को 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के बहुवचन में न्ति प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घेप्पन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

निशमनार्पित हृदयस्य संस्कृत समासात्मक षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप निसमणुप्पिअ हिअस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स' १-२२८ से 'न' का 'ण' १-८४ से 'ना र्पण में संधि के कारण से स्थित आर्पित के आदि स्वर 'आ' का 'ओ' की प्राप्ति एवं १-८४ से प्राप्त इस 'आ' स्वर का अपने ह्रस्व स्वरूप 'अ' की प्राप्ति २-७९ से 'र' का लोप २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त' का लोप १-१२८ से 'ऋ' को 'इ' १ १७७ से 'द्' का लोप, १ २६९ से स्वर सहित संपूर्ण 'य' का लोप और ३-१ से संस्कृत में षष्ठी विभक्ति बोधक स्य प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में स्स प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निसमणुप्पिअ-हिअस्स* रूप की सिद्धि हो जाती है।

हिअयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है ॥ १-२६९ ॥

दुर्गादेव्युदुम्बर-पादपतन-पाद पीठन्तर्दः ॥१-२७०॥

एषु सस्वरस्य दकारस्य अन्तर्मध्ये वर्तमानस्य लुग् वा भवति ॥ दुग्गा-वी । दुग्गा एवी । उम्बरो उउम्बरो ॥ पा-वडणं पाय-वडणं । पा वीढं पाय-वीढं ॥ अन्तरिति किम् । दुर्गा देव्यामादौ मा भूत् ॥

अर्थ —दुर्गा देवी उदुम्बर पाद पतन और पाद पीठ के अन्तर्मध्य भाग में रहे हुए स्वर सहित 'द' का अर्थात् पूर्ण व्यञ्जन 'द' का विकल्प से लोप होता है। अन्तर्मध्य-भाग का तात्पर्य यह है कि विकल्प से लोप होने वाला 'द' व्यञ्जन न तो आदि स्थान पर होना चाहिये और न अन्त स्थान पर

ही, किन्तु शब्द के आन्तरिक भाग में अथवा मध्य भाग में होना चाहिये। जैसे —दुर्गा देवी=दुग्गा-वी अथवा दुग्गा-एवी ॥ उदुम्बर:=उम्बरो अथवा उउम्बरो ॥ पाद-पतनम्=पा वडण अथवा पाय वडणं और पाद-पीठम्=पा वीढ अथवा पाय वीढ ॥

प्रश्न —'अन्तर मध्य-भाग' में ही होना चाहिये' तभी स्वर सहित 'द' का विकल्प से लोप होता है। ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर —क्योंकि यदि 'द' वर्ण शब्द के आदि में अथवा अन्त में स्थित होगा तो उस 'द' का लोप नहीं होगा। इसीलिये 'अन्तर्मध्य' भाग का उल्लेख किया गया है। जैसे —दुर्गा-देवी में आदि में 'द' वर्तमान है, इसलिये इस आदि स्थान पर स्थित 'द्' का लोप नहीं होता है। जैसे —दुर्गा-देवी=दुग्गा-वी ॥ इत्यादि ॥

दुर्गा-देवी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुग्गा-वी और दुग्गा-एवी होता है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग', और १-२७० से अन्त-र्मध्यवर्त्ती स्वर सहित 'दे' का अर्थात् सम्पूर्ण 'दे' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होकर प्रथम रूप *दुग्गा-वी* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप होकर एवं शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *दुग्गा-एवी* भी सिद्ध हो जाता है।

उदुम्बरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उम्बरो अथवा उउम्बरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२७० से अन्तर्मध्य-वर्ती स्वर सहित 'दु' का अर्थात् सपूर्ण 'दु' व्यञ्जन का विकल्प से लोप और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *उम्बरो* और *उउम्बरो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

पाद-पतनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पा-वडण और पाय-वडण होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२७० से अन्तर्मध्यवर्त्ती स्वर सहित 'द' का अर्थात् सपूर्ण 'द' व्यञ्जन का विकल्प से लोप और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ १७७ से 'द' का लोप एव १-१८० से लोप हुए 'द में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, १-२३१ से दोनों रूपों मे द्वितीय 'प' का 'व', ४ २१९ से दोनो रूपों में स्थित 'त' का 'ड', १-२२८ से दोनों रूपों मे 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पा-वडणं* और *पाय-वडणं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

पाद-पीठम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पा-वीढ और पाय-वीढ होते हैं इनमे से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२७० से अन्तर्मध्यवर्ती स्वर सहित 'द' का विकल्प से लोप, द्वितीय रूप में सूत्र-सख्या १-१७७ से 'द' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'द' में से शेप रहे हुए 'अ' को 'य की प्राप्ति, १-२३१ से

दोनों रूपों में द्वितीय 'प' का 'व' १-१६६ से दोनों रूपों में 'ठ' का 'ढ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की दोनों रूपों में प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पा-वीढं* और *पाय-वीढं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥१-२७०॥

यावत्तावज्जीवितावर्तमानावट प्रावारक देवकुलैवमेवे वः ॥ १-२७१॥

यावदादिषु सस्वर वकारस्यान्तर्वर्तमानस्य लुग् वा, भवति ॥ जा जाव । ता ताव । जीअं जीविअं । अत्तमाणो आवत्तमाणो । अडो अवडो । पारओ पावारओ । दे उलं देव उलं । एमेव एवमेव ॥ अन्तरित्येव । एवमेवेन्त्यस्य न भवति ॥

अर्थ:—यावत्, तावत्, जीवित, आवर्तमान, अवट, प्रावारक, देवकुल और एवमेव शब्दों के मध्य-भाग में (अन्तर-भाग में) स्थित 'स्वर सहित-व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे:—यावत्=जा अथवा जाव ॥ तावत्=ता अथवा ताव ॥ जीवितम्=जीअं अथवा जीविअं ॥ आवर्तमानः=अत्तमाणो अथवा आवत्तमाणो ॥ अवटः=अडो अथवा अवडो ॥ प्रावारकः=पारओ अथवा पावारओ ॥ देवकुलम्=दे-उलं अथवा देव उलं और एवमेव=एमेव अथवा एवमेव ॥

प्रश्न—'अन्तर्-मध्य-भागी' 'व' का ही लोप होता है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—यदि 'अन्तर-मध्य भागी' नहीं होकर अन्त्य स्थान पर स्थित होगा तो उस 'व' का लोप नहीं होगा। जैसे-एवमेव में दो वकार हैं तो इनमें से मध्यवर्ती 'वकार' का ही विकल्प से लोप होगा; न कि अन्त्य 'वकार' का। ऐसा ही अन्य शब्दों के सम्बंध में जान लेना ॥

यावत् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत में जा और जाव रूप होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-२७१ से अन्तवर्ती 'व' का विकल्प से लोप और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर क्रम से *जा* और *जाव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तावत् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ता और ताव होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तवर्ती 'व' का विकल्प से लोप और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर क्रम से *ता* और *ताव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

जीवितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जीअं और जीविअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तवर्ती स्वर सहित 'वि' का अर्थात् संपूर्ण 'वि' व्यञ्जन का विकल्प से लोप, १-१७७ से दोनों रूपों में 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *जीअं* और *जीविअं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

आवर्तमानः संस्कृत वर्तमान कृदन्त का रूप है। इसके प्राकृत रूप अत्तमाणो और आवत्तमाणो होते है। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या १-८४ से आदि दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' को प्राप्ति, १-२७१ से अन्तवर्ती सस्वर 'व' का विकल्प से लोप, २-७६ से 'र' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अत्तमाणो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से सूत्र-संख्या १-२७१ का अभाव जानना और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान होकर द्वितीय रूप *आवत्तमाणो* भी सिद्ध हो जाता है।

अवटः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अडो और अवडो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तवर्ती सस्वर 'व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप, १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अडो* और *अवडो* दोनो की सिद्धि हो जाती है।

प्रावारकः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप पारओ और पावारओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप, १-२७१ से अन्तवर्ती सस्वर 'वा' का विकल्प से लोप, १-१७७ से दोनो रूपों में 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पारओ* और *पावारओ* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

देव-कुलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दे-उल और देव-उल होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तवर्ती सस्वर 'व' का अर्थात् सम्पूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप, १-१७७ से 'क्' का दोनो रूपों में लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *दे-उलं* और *देव-उलं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

एवमेव संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप एमेव और एवमेव होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तवर्ती (प्रथम) सस्वर 'व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होकर क्रम से *एमेव* और *एवमेव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है॥ १-२७१॥

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र-विरचितायां सिद्ध हेम-
चन्द्राभिधान स्वोपज्ञ शब्दानुशासन वृत्तौ
अष्टमस्याध्यायस्य प्रथम पादः॥

इस प्रकार आचार्य श्री हेमचन्द्र महाराज द्वारा रचित 'सिद्ध हेमचन्द्र नामावली और स्व-कृत टीकावली शब्दानुशासन रूप व्याकरण के आठवे अध्याय रूप प्राकृत-व्याकरण का प्रथम पाद (प्रथम चरण) पूर्ण हुआ॥

पादान्त मंगलाचरण

यद् दोर्मण्डल कुण्डली कृत धनुर्दण्डेन सिद्धाधिप !
क्रीतं वैरिकुलात् त्वया किल दलत् कुन्दावदातं यशः ॥
भ्रान्त्वा त्रीणि जगन्ति खेद विवशं तन्मालवीनां व्यधा-
दापाण्डौ स्तनमण्डले च धवले गण्डस्थले च स्थितिम् ॥

अर्थ –हे सिद्धराज ! आपने अपने दोनों भुज-दण्डों द्वारा गोलाकार बनाये हुए धनुष की सहायता से खिले हुए मोगरे के फूल के समान सुन्दर एवं निर्मल यश को शत्रुओं से (उनको हरा कर) खरीदा है-(एकत्र किया है) उस यश ने तीनों जगत् में परिभ्रमण करके अन्त में थकावट के कारण से विवश होता हुआ मालव देश के राजाओं की पत्नियों के (अंग राग नहीं लगाने के कारण से) फीके पड़े हुए स्तन-मण्डल पर एवं सफेद पड़े हुए गालों पर विश्रांति ग्रहण की है। आचार्य हेमचन्द्र ने मंगलाचरण के साथ महान् प्रतापी सिद्धराज की विजय-स्तुति भी शृंगारिक-ढंग से प्रस्तुत कर दी है। यह मंगलाचरण प्रशस्ति-रूप है, इसमें यह ऐतिहासिक तत्त्व बतला दिया है कि सिद्धराज ने मालव पर चढ़ाई का थी वहां के नरेशों को बुरी तरह से पराजित किया था एवं इस कारण से राज-रानियों ने शृंगार करना और अंग राग लगाना छोड़ दिया था जिससे उनका शरीर एवं उनके अंगोपांग फीके फीके प्रतीत होते थे तथा राज्यभ्रष्टता के कारण से दुःखी होने से उनके मुख-मण्डल भी सफेद पड़ गये थे यह फीकापन और सफेदी महाराज सिद्धराज के उस यश को मानों प्रति छाया ही थी, जो कि विश्व के तीनों लोक में फैल गया था। काव्य में लालित्य और वक्रोक्ति एवं उक्ति-वैचित्र्य अलंकार का कितना सुन्दर सामञ्जस्य है ?)

'मूल सूत्र और वृत्ति' पर लिखित प्रथम पाद संबंधी 'प्रियोदय चन्द्रिका नामक हिन्दी व्याख्या एवं शब्द-साधनिका भी समाप्त ॥

अथ द्वितीय-पादः

संयुक्तस्य ॥ २-१ ॥

अधिकारोऽयं ज्यायामीत् (२-११५) इति यावत् । यदित ऊर्ध्वम् अनुक्रमिष्यामस्तत् संयुक्तस्येति वेदितव्यम् ॥

अर्थः—इस पाद मे सयुक्त वर्णों के विकार, लोप, आगम और आदेश संबंधी नियमो का वर्णन किया जायगा, अत ग्रथकार ने 'सयुक्तस्य' अर्थात् 'सयुक्त वर्ग का' ऐसा सूत्र निर्माण किया है । वृत्ति में कहा गया है कि यह सूत्र अधिकार वाचक है, अर्थात् इसके पश्चात् बनाये जाने वाले सभी सूत्रों से इसका सबध समझा जायगा, तदनुसार इसका अधिकार-क्षेत्र सूत्र-सख्या २-११५ अर्थात् 'ज्यायामीत्' सूत्र-सख्या २-११५ तक जो भी वर्णन-उल्लेख होगा, वह सब 'सयुक्त वर्ण' के संबध में ही है, चाहे इन सूत्रों में 'सयुक्त' ऐसा उल्लेख हो अथवा न भी हो, तो भी 'सयुक्त' का उल्लेख समझा जाय एवं माना जाय ॥ २-१ ॥

शक्त-मुक्त-दष्ट-रुग्ण-मृदुत्वे को वा ॥ २-२॥

एषु संयुक्तस्य को वा भवति ॥ सक्को सत्तो । मुक्को मुत्तो । डक्को दट्ठो । लुक्को लुग्गो । माउक्कं माउत्तणं ॥

अर्थः—शक्त-मुक्त-दष्ट-रुग्ण और मृदुत्व शब्दों मे रहे हुए सपूर्ण सयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर विकल्प से 'क' होता है । जैसे —शक्त=सक्को अथवा सत्तो, मुक्त =मुक्को अथवा मुत्तो, दष्ट =डक्को अथवा दट्ठो, रुग्ण =लुक्को अथवा लुग्गो, और मृदुत्वम्=माउक्क अथवा माउत्तण ।

शक्तः सस्कृत विशेषण रूप है । इसके प्राकृत रूप सक्को और सत्तो होते हैं । इनमें सूत्र-सख्या १-२६० से 'श' का 'स', प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-२ से 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'क' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'क' का द्वित्व 'क्क', द्वितीय रूप में सूत्र सख्या २-७७ से क् का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *सक्को* और *सत्तो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ।

मुक्त संस्कृत विशेषण रूप है । इसके प्राकृत रूप मुक्को और मुत्तो होते हैं । इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या २-२ से 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'क', २-८९ से प्राप्त 'क्' का द्वित्व 'क्क', द्वितीय रूप में सूत्र-सख्या २-७७ 'क्', का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से

दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *सुक्को* और *सुग्गो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

इष्ट संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप *इक्को* और *इट्ठो* होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२१८ से 'इ' का 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'क' का द्वित्व 'क्क' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इक्को* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *इट्ठो* की सिद्धि सूत्र संख्या १-२१७ में की गई है।

रुग्ण संस्कृत विशेषण रूप है इसके प्राकृत रूप लुक्को और लुग्गो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप लुक्को की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२५४ में की गई है। द्वितीय रूप लुग्गो में सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल'; ४-२५८ से 'ण' प्रत्यय की विकल्प से प्राप्ति; तदनुसार यहाँ पर 'ण' का अभाव; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लुग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मारुक्कं और मारुत्तणं रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१-७ में की गई है॥ २-२॥

क्षः खः क्वचित्तु छ-झौ॥ २-३॥

क्षस्य खो भवति। खओ। लक्खणं॥ क्वचित्तु छझावपि खीणं। छीणं। झीणं। झिज्जइ॥

अर्थ:-'क्ष' वर्ण का 'ख' होता है। जैसे—क्षयः=खओ॥ लक्षणम्=लक्खणं॥ किसी किसी शब्द में 'क्ष' का 'छ' अथवा 'झ' भी हो जाता है। जैसे—क्षीणम्=खीणं अथवा छीणं अथवा झीणं॥ क्षीयते=झिज्जइ॥

क्षय संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' का 'ख'; १-१७७ से 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खओ* रूप की सिद्धि हो जाती है।

लक्षणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लक्खणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' को 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लक्खणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षीणम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप खीणं छीणं और झीणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर विकल्प से 'ख' की अथवा 'छ' की अथवा 'झ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति

और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *खीणं, छीणं* और *झीणं* रूप सिद्ध हो जाते है।

क्षीयते संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप झिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' का 'झ', ३-१६० से संस्कृत भाव कर्मणि प्रयोग में प्राप्त 'ईय' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर झिज्जइ रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-३॥

ष्क-स्कयोर्नाम्नि ॥ २-४ ॥

अनयोर्नाम्नि संज्ञायां खो भवति ॥ ष्क। पोक्खरं। पोक्खरिणी। निक्खं ॥ स्क। खन्धो। खन्धावारो। अवक्खन्दो ॥ नाम्नीति किम्। दुक्करं। निक्कम्पं। निक्कओ। नमोक्कारो। सक्कयं। सक्कारो। तक्करो ॥

अर्थ-यदि किसी नाम वाचक अर्थात् संज्ञा वाचक संस्कृत शब्दों में 'ष्क' अथवा 'स्क' रहा हुआ हो तो उस 'ष्क' अथवा 'स्क' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'ख' होता है। जैसे 'ष्क' के उदाहरण इस प्रकार हैं-पुष्कर=पोक्खर, पुष्करिणी=पोक्खरिणी, निष्कम्=निक्खं इत्यादि ॥ 'स्क' संबंधी उदाहरण इस प्रकार है-स्कन्धः=खन्धो, स्कन्धावार=खन्धावारो ॥ अवस्कन्द=अवक्खन्दो ॥ इत्यादि ॥

प्रश्न-'नाम वाचक' अथवा संज्ञा वाचक हो, तभी उसमें स्थित 'ष्क' अथवा 'स्क' का 'ख' होता है' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर-यदि 'ष्क' अथवा 'स्क' वाला शब्द नाम वाचक एवं संज्ञा वाचक नहीं होकर विशेषण आदि रूप वाला होगा तो उस शब्द में स्थित 'ष्क' के अथवा 'स्क' के स्थान पर 'क' होता है। अर्थात् 'ख' नहीं होगा। जैसे दुष्करम्=दुक्करं, निष्कम्पम्=निक्कम्पं, निष्क्रय=निक्कओ, नमस्कारः=नमोक्कारो; संस्कृतम्=सक्कयं, सत्कारः=सक्कारो और तस्करः=तक्करो ॥ पोक्खर रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ में की गई है।

पुष्करिणी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पोक्खरिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११६ से 'उ' को 'ओ' की प्राप्ति; २-४ से 'ष्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्' होकर *पोक्खरिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्कम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निक्खं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-४ से 'ष्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निक्खं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्कन्धः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खन्धो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४ से 'स्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खन्धो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्कन्धावारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खन्धावारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४ से 'स्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खन्धावारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवस्कन्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवक्खन्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४ से 'स्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवक्खन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुष्करम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दुक्करं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *दुक्करं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्कम्पम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निक्कम्पं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निक्कम्पं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्क्रपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निक्कओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-१७७ से 'प' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निक्कओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमोक्कारो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६२ में की गई है।
सक्कयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२८ में की गई है।
सक्कारो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२८ में की गई है।

तस्करः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तक्करो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तक्करो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-४ ॥

शुष्क-स्कन्दे वा ॥ २-५ ॥

अनयोः ष्क स्क-योः खो वा भवति ॥ सुक्खं सुक्कं । खन्दो कन्दो ॥

अर्थ —'शुष्क' और 'स्कन्द' मे रहे हुए 'ष्क' के स्थान पर एवं 'स्क' के स्थान पर विकल्प मे 'ख' होता है। जैसे —शुष्कम्=सुक्खं अथवा सुक्कं और स्कन्दः=खन्दो अथवा कन्दो ॥

शुष्कम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुक्खं और सुक्कं होते है। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', २-५ से 'ष्क' के स्थान पर विकल्प से 'ख', २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख', २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप सुक्खं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स', २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप सुक्कं भी सिद्ध हो जाता है।

स्कन्दः संस्कृत रूप है इसके प्राकृत रूप खन्दो और कन्दो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या २-५ से 'स्क' के स्थान पर विकल्प से 'ख' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *खन्दो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कन्दो में सूत्र-संख्या २-७७ से 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *कन्दो* भी सिद्ध हो जाता है। २-५।

क्ष्वेटकादौ ॥ २-६ ॥

क्ष्वेटकादिषु संयुक्तस्य खो भवति ॥ खेडओ ॥ क्ष्वेटक शब्दो विष-पर्यायः । क्ष्वोटकः । खोडओ ॥ स्फोटकः । खोडओ । स्फेटकः । खेडओ ॥ स्फेटिकः । खेडिओ ॥

अर्थः—विष-अर्थ वाचक क्ष्वेटक शब्द में एवं क्ष्वोटक, स्फोटक, स्फेटक और स्फेटिक शब्दों में आदि स्थान पर रहे हुए संयुक्त अक्षरों का अर्थात् 'क्ष्व्', तथा 'स्फ' का 'ख' होता है। जैसे:-क्ष्वेटक=खेडओ, क्ष्वोटक=खोडओ, स्फोटक=खोडओ, स्फेटक=खेडओ और स्फेटिक=खेडिओ ॥

क्ष्वेटक' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खेडओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६ से 'क्ष्व' के स्थान पर 'ख्' का प्राप्ति, १-१९५ से 'ट' का 'ड', १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खेडओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थाणुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खाणू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' का 'ख' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *खाणू* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थाणोः संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप थाणुणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'स' का लोप, ३-२३ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर थाणुणो रूप सिद्ध हो जाता है।

रेखा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *रेहा* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-७॥

स्तम्भे स्तो वा ॥ २-८ ॥

स्तम्भ शब्दे स्तस्य खो वा भवति ॥ खम्भो ॥ थम्भो । काष्ठादिमयः ॥

अर्थ.—'स्तम्भ' शब्द में स्थित 'स्त' का विकल्प से 'ख' होता है। जैसे.—स्तम्भ =खम्भो अथवा थम्भा ॥ स्तम्भ अर्थात् लकडी आदि का निर्मित पदार्थ विशेष ॥

स्तम्भ' संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप खम्भो और थम्भो होते है। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८ से 'स्त' का विकल्प से 'ख' और द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-९ से 'स्त' का 'थ' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *खम्भो* और *थम्भो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

थ-ठाव-स्पन्दे ॥ २-९ ॥

स्पन्दाभाववृत्तौ स्तम्भे स्तस्य थठौ भवतः ॥ थम्भो । ठम्भो ॥ स्तम्भ्यते । थम्भिज्जइ ठम्भिज्जइ ॥

अर्थ—'स्पन्दाभाव" अर्थात् हलन-चलन क्रिया से रहित-जडी भूत अवस्था की स्थिति में "स्तम्भ" शब्द प्रयुक्त हुआ हो तो उस "स्तम्भ" शब्द में स्थित "स्त' का 'थ' भी होता है और "ठ" भी होता है; यों स्तम्भ के प्राकृत रूपान्तर में दो रूप होते हैं। जैसे-स्तम्भ =थम्भो अथवा ठम्भो ॥ स्तम्भ्यते= (उससे स्तम्भ के समान स्थिर हुआ जाता है)=थम्भिज्जइ अथवा ठम्भिज्जइ ॥

थम्भो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-८ में की गई है।

स्तम्भः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ठम्भो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-९ से विकल्प से "स्त" का "ठ" और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ठम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भ्यते संस्कृत कर्मणि क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप थम्भिज्जइ और ठम्भिज्जइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-९ से स्त का विकल्प से 'थ'; ३-१६० से संस्कृत कर्मणिप्रयोग में प्राप्त 'य' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप थम्भिज्जइ सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में उसी सूत्र-संख्या २-९ से स्त का विकल्प से 'ठ' और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप ठम्भिज्जइ भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-९ ॥

रक्ते गो वा ॥ २-१० ॥

रक्त शब्दे संयुक्तस्य गो वा भवति ॥ रग्गो रत्तो ॥

अर्थ—रक्त शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'ग' होता है। जैसे—रक्तः=रग्गो अथवा रत्तो ॥ रक्तः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रग्गो और रत्तो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१० से 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'ग' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप रग्गो सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से 'क्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर रत्तो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१० ॥

शुल्के ङ्गो वा ॥ २-११ ॥

शुल्क शब्दे संयुक्तस्य ङ्गो वा भवति ॥ सुङ्गं सुक्कं ॥

अर्थ—'शुल्क' शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ल्क' के स्थान पर विकल्प से 'ङ्ग' की प्राप्ति होती है और इससे शुल्क के प्राकृत-रूपान्तर में दो रूप होते हैं। जो कि इस प्रकार है—शुल्कम्=सुङ्गं और सुक्कं ॥

शुल्कम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुङ्गं और सुक्कं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-११ से 'ल्क' के स्थान पर विकल्प से 'ङ्ग' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप 'सुङ्गं' सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुक्कं में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप सुक्कं भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-११ ॥

कृत्ति-चत्वरे चः ॥ २-१२ ॥

अनयोः संयुक्तस्य चो भवति ॥ किच्ची । चच्चरं ॥

अर्थ—'कृति' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' स्थान पर 'च' की प्राप्ति और 'चत्वर' शब्द मे रहे हुए सयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर भी 'च' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कृत्तिः=किच्ची और चत्वरम्=चच्चर ॥

कृत्तिः—सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर किच्ची होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१२ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च', ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *किच्ची* रूप सिद्ध हो जाता है।

चत्वरम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चच्चरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१२ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर चच्चरं रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१२ ॥

त्योऽचैत्ये ॥ २-१३ ॥

चैत्यवर्जिते त्यस्य चो भवति ॥ सच्चं । पच्चओ ॥ अचैत्य इति किम् । चइत्तं ॥

अर्थ—चैत्य शब्द को छोडकर यदि अन्य किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' रहा हुआ हो तो उस सयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' होता है। जैसे:—सत्यम्=सच्च। प्रत्यय =पच्चओ इत्यादि ॥

प्रश्न —'चैत्य में स्थित 'त्य' के स्थान पर 'च' का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तर — क्योंकि 'चैत्य' शब्द का प्राकृत रूपान्तर चइत्तं उपलब्ध है—परम्परा से प्रसिद्ध है, अतः चैत्य में स्थित 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे:—चैत्यम्=चइत्तं।

सत्यम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सच्च होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सच्चं रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रत्यय सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर पच्चओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-१३ से 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पच्चओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पइर्सं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५१ में की गई है। २-१३ ॥

प्रत्यूषे षश्च हो वा ॥२-१४॥

प्रत्यूषे त्यस्य चो भवति, तत्संनियोगे च षस्य हो वा भवति ॥ पच्चूहो । पच्चूसो ॥

अर्थ-'प्रत्यूष' शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' का 'च' होता है। इस प्रकार 'च' की प्राप्ति होने पर अन्तिम 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे—प्रत्यूषः=पच्चूहो अथवा पच्चूसो ॥

प्रत्यूषः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पच्चूहो और पच्चूसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१४ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; २-१४ से 'ष' का प्रथम रूप में विकल्प से 'ह' और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से १-२६० से 'ष' का 'स' एवं ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से पच्चूहो और पच्चूसो दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। २-१४॥

त्व-थ्व-द्व-ध्वां च-छ-ज-झाः क्वचित् ॥२-१५॥

एषां यथासंख्यमेते क्वचित् भवन्ति ॥ भुक्त्वा । भोच्चा ॥ ज्ञात्वा । णच्चा ॥ श्रुत्वा । सोच्चा ॥ पृथ्वी । पिच्छी ॥ विद्वान् । विज्जो ॥ बुद्ध्वा । बुज्झा ॥

> भोच्चा सयलं पिच्छिं विज्जं बुज्झा अणण्णय-ग्गामि ।
> चइऊण तवं काउं सन्ती पत्तो सिवं परमं ॥

अर्थ—यदि किसी शब्द में 'त्व' रहा हुआ हो तो कभी-कभी इस संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' होता है, 'थ्व' के स्थान पर 'छ' होता है, 'द्व' के स्थान पर 'ज' होता है और 'ध्व' के स्थान पर 'झ' होता है। मूल सूत्र में 'क्वचित्' लिखा हुआ है जिसका तात्पर्य यही होता है कि 'त्व' 'थ्व' 'द्व' और 'ध्व' के स्थान पर क्रम से च, छ, ज और झ की प्राप्ति कभी कभी हो जाती है। जैसे—'त्व' के उदाहरण-भुक्त्वा=भोच्चा ॥ ज्ञात्वा=णच्चा । श्रुत्वा=सोच्चा ॥ 'थ्व' का उदाहरण' पृथ्वी=पिच्छी ॥'द्व' का उदाहरण-विद्वान्=विज्जो ॥'ध्व' का उदाहरण-बुद्ध्वा=बुज्झा ॥ इत्यादि ॥ गाथा का हिन्दी अर्थ इस प्रकार है—दूसरों को प्राप्त हुए हैं—ऐसी-(अद्वितीय) हे शांतिनाथ ! (आपने) सम्पूर्ण पृथ्वी का (राज्य) भोग करके (सम्यक्) ज्ञान प्राप्त करके (एवं) तपस्या करने के लिये (राज्य को) छोड़ करके अंत में परम कल्याण रूप (मोक्ष-स्थान) को प्राप्त किया है। (अर्थात् आप सिद्ध स्थान को पधार गये हैं) ॥

भुक्त्वा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भोच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११६ से 'उ'

के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति, २-७७ से 'क्' का लोप; २-१५ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *भोच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्ञात्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इनका प्राकृत रूप णच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से आदि 'आ' को ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति, २-४२ से 'ज्ञ' को 'ण' की प्राप्ति; २-१५ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *णच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत्वा सस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोच्चा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से शेष 'श' का 'स', १-११६ से 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति, २-१५ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *सोच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिच्छी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

विद्वान् सस्कृत प्रथमान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' को ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-१५ से 'द्व' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुद्ध्वा सस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप है बुज्झा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, २-१५ से 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' होकर *बुज्झा* रूप सिद्ध हो जाता है।

भोच्चा रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

सकलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सयल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सयलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वीम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिच्छिं होता है। पिच्छि रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-१२८ में की गई है। विशेष इस रूप में सूत्र सख्या ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिच्छिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्याम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-३६ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज'

की प्राप्ति ३ ५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत के समान ही 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *चिंधं* रूप सिद्ध हो जाता है।

युग्मा रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है

अनन्यक-गामि संस्कृत तद्धित संबोधन रूप है। इसका प्राकृत रूप अणप्पण्ण-ग्गामि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ २२८ से दोनों 'न' के स्थान पर दो 'ण' की क्रम से प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति १ १७७ से 'क' का लोप १ १८ से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, २ ८७ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त में ह्रस्व इकारान्त की प्राप्ति होकर *अणप्पण्ण-ग्गामि* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्यक्त्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप चइऊण होता है। इसमें सूत्र संख्या ४ ८६ से 'त्यज्' संस्कृत धातु के स्थान पर 'चय्' आदेश की प्राप्ति, ४-२३९ से धात्विक विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति १ १७७ से 'य्' का लोप ३ १५७ से लोप हुए 'य्' में से शेष बचे हुए धात्विक विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति और २ १४६ से संस्कृत कृदन्त प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १ १७७ से 'त्' का लोप होकर *चइऊण* रूप सिद्ध हो जाता है।

तपः संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप तवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ २३१ से 'प' का 'व' ३ ५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्तुम् संस्कृत हत्वर्थ कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप काउं होता है। मूल संस्कृत धातु 'कृ' है। इसमें सूत्र-संख्या १ १२६ से 'ऋ' का 'अ' ४-२१४ से प्राप्त 'अ' को 'आ' की प्राप्ति १ १७७ से संस्कृत हत्वर्थ कृदन्त में प्राप्त 'तुम्' प्रत्यय के 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *काउं* रूप सिद्ध हो जाता है। अथवा ४-२१४ से 'अ' को 'आ' की प्राप्ति २ ७९ से 'र्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *कउं* रूप सिद्ध होता है।

शार्ङ्गी संस्कृत प्रथमान्त रूप है इसका प्राकृत रूप सग्गी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स' १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *सग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पार्श्वः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ७९ से 'र्' का लोप १ ८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७७ से द्वितीय 'प्' का लोप, २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिवम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सिव होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिवं* रूप सिद्ध हो जाता है। *परमम्* संस्कृत द्वितीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप परम होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *परमं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१५ ॥

वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा ॥ २--१६ ॥

वृश्चिके श्चेः सस्वरस्य स्थाने ञ्चुरादेशो वा भवति ॥ छापवादः ॥ विञ्चुओ विंचुओ। पक्षे। विञ्छिओ ॥

अर्थः-वृश्चिक शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन सहित और उस में स्वर रहे हुए के साथ 'श्चि' के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'श्चि' के स्थान पर विकल्प से 'ञ्चु' का आदेश होतो है। सूत्र-संख्या २-२१ में ऐसा विधान है कि 'श्च' के स्थान पर 'छ' होता है। जब कि इसमें 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश बतलाया गया है, अतः इस सूत्र को सूत्र-संख्या २-२१ का अपवाद समझना चाहिये ॥ उदाहरण इस प्रकार है:—

वृश्चिकः = विञ्चुओ या विंचुओ ॥ वैकल्पिक पक्ष होने से विञ्छिओ भी होता है ॥

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विञ्चुओ, विंचुओ और विञ्छिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *विञ्चुओ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, २-१६ से 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश, १-२५ से आदेश रूप से प्राप्त 'ञ्चु' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का अनुस्वार, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंचुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप विञ्छिओ में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, १-२६ से आदेश रूप से प्राप्त 'छ' के पूर्व में अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार को परवर्ती 'छ' होने के कारण से छवर्ग के पंचमाक्षर रूप हलन्त 'ञ्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्छिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

छोऽक्ष्यादौ ॥२-१७॥

अक्ष्यादिषु संयुक्तस्य छो भवति। खस्यापवादः ॥ अच्छि। उच्छू। लच्छी। कच्छो।

छीर्अं। छीर। सरिच्छो। वच्छो। मच्छिआ। छेत्तं। छुहा। दच्छो। कुच्छी। वच्छं। छुण्णो। कच्छा। छारो। कुच्छेअयं। छुरो। उच्छा। छयं। सारिच्छं॥ अक्षि। इक्षु। लक्ष्मी। कक्ष। क्षुत। क्षीर। सदृक्ष। वृक्ष। मक्षिका। क्षेत्र। क्षुध्। दक्ष। कुक्षि। वक्षस्। क्षुण्ण। कक्षा। क्षार। कौक्षेयक। क्षुर। उक्षन्। क्षत। सादृश्य॥ क्वचित् स्थगित शब्दे पि। छइअं॥ आर्षे। इक्खू। खीरं। सारिक्खमित्याद्यपि दृश्यते॥

अर्थ—इस सूत्र में उल्लिखित अक्षि आदि शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का 'छ' होता है। सूत्र-संख्या २-३ में कहा गया है कि 'क्ष' का 'ख' होता है। किन्तु इस सूत्र में कहा जा रहा है कि संयुक्त 'क्ष' का 'छ' होता है। अतः इस सूत्र को सूत्र-संख्या २-३ का अपवाद माना जाय। 'क्ष' के स्थान पर प्राप्त 'छ' सम्बन्धी उदाहरण इस प्रकार हैं—अक्षिम्=अच्छि। इक्षु=उच्छू। लक्ष्मीः=लच्छी। कक्षः=कच्छो। क्षुतम्=छीअं। क्षीरम्=छीरं। सदृक्षः=सरिच्छो। वृक्षः=वच्छो। मक्षिका=मच्छिआ। क्षेत्रम्=छेत्तं। क्षुधा=छुहा। दक्षः=दच्छो। कुक्षिः=कुच्छी। वक्षः=वच्छं। क्षुण्णः=छुण्णो। कक्षा=कच्छा। क्षारः=छारो। कौक्षेयकम्=कुच्छेअयं। क्षुरः=छुरो। उक्षा=उच्छा। क्षतम्=छयं। सादृश्यम्=सारिच्छं॥ कभी कभी 'स्थगित' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। जैसे—स्थगितम्=छइअं॥ आर्ष प्राकृत में इक्षु का इक्खु भी पाया जाता है। क्षीरम् का खीरं भी देखा जाता है और सादृश्यम् का सारिक्खम् रूप भी आर्ष प्राकृत में होता है। इस प्रकार के रूपान्तर स्वरूप वाले अन्य शब्द भी आर्ष प्राकृत में देखे जाते हैं।

अच्छि रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

उच्छू रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९५ में की गई है।

लक्ष्मी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-७८ से 'म्' का लोप; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होकर लच्छी रूप सिद्ध हो जाता है।

कक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कच्छो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कच्छो रूप सिद्ध हो जाता है।

छीअं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११२ में की गई है।

क्षीरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छीरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि'
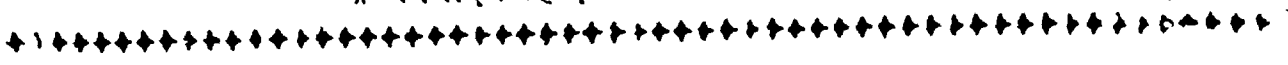
प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छारं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सरिच्छो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ मे की गई है।

वृक्ष: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को च्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मक्षिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मच्छिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति, २-८९ प्राप्त, 'छ्' को द्वित्व छ्छ् की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *मच्छिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षेत्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छेत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति, २-७९ से 'त्र' में 'स्थित' 'र्' का लोप, २-८९ से 'शेष' 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छेत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छुहा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७ में की गई है।

दक्षः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुच्छी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

वक्षः=वक्षस् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व छ्छ की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त, पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षुण्णः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में

सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छुण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कक्षा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कच्छा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति होकर *कच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत छारो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुच्छेअयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६१ में की गई है।

क्षुरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छुरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छुरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उक्षा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उच्छा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति होकर *उच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छयं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सादृक्ष्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सारिच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४२ से 'दृ' के स्थान पर 'रि' का आदेश २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ्' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' को 'च्' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सारिच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थगितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छइअं भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'छ' का आदेश १-१७७ से 'ग्' को और 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इक्षु' संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में इक्खू रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर इक्खू रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षीरम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप खीरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खीरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सादृक्ष्यम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप सारिक्खं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४२ से 'दृ' के स्थान पर 'रि' आदेश की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख' को 'क' की प्राप्ति, २-७८ से 'य' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सारिक्खं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१७॥

क्षमायां कौ ॥ २-१८ ॥

कौ पृथिव्यां वर्तमाने क्षमा शब्दे संयुक्तस्य छो भवति ॥ छमा पृथिवी ॥ लाक्षणिकस्यापि क्ष्मादेशस्य भवति। क्ष्मा। छमा ॥ काविति किम्। खमा क्षान्तिः ॥

अर्थः-यदि 'क्षमा' शब्द का अर्थ पृथिवी हो तो 'क्षमा' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। मूल-सूत्र में जो 'कु' लिखा हुआ है, उसका अर्थ 'पृथिवी' होता है। उदाहरण इस प्रकार है'—क्षमा=छमा अर्थात् पृथिवी ॥ पृथिवी में सहन-शीलता का गुण होता है। इसी सहन-शीलता वाचक गुण को संस्कृत-भाषा में 'क्ष्म' भी कहते हैं, तदनुसार जैसा गुण जिसमें होता है; उस गुण के अनुसार ही उसकी संज्ञा संस्थापित करना 'लाक्षणिक-तात्पर्य' कहलाता है। अतः पृथिवी में सहन-शीलता का गुण होने से पृथिवी की एक संज्ञा 'क्ष्मा' भी है। जो कि लाक्षणिक आदेश रूप है। इस लाक्षणिक-आदेश रूप शब्द 'क्ष्मा' में रहे हुए हलन्त संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्' के स्थान पर 'छ' होता है। जैसे:-क्ष्मा=छमा ॥

प्रश्न—मूल-सूत्रकार ने सूत्र में 'कौ' ऐसा क्यों लिखा है?

उत्तर.—चूंकि 'क्षमा' शब्द के संस्कृत भाषा में दो अर्थ होते हैं, एक तो पृथिवी अर्थ होता है और दूसरा क्षान्ति अर्थात् सहन-शीलता। अतः जिस समय में 'क्षमा' शब्द का अर्थ 'पृथिवी' होता है, तो

उस समय में प्राकृत-रूपान्तर में 'क्षमा' में स्थित 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होगी' और जब 'क्षमा' शब्द का अर्थ सहन-शीलता यानि क्षान्ति होता है तो उस समय में 'क्षमा' शब्द में रहे हुए 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति होगी। इस तात्पर्य-विशेष को बतलाने के लिए ही सूत्र-कार ने मूल-सूत्र में 'क्व' शब्द को जोड़ा है-अथवा लिखा है। जैसे—क्षमा=(क्षान्ति)=खमा अर्थात् सहन-शीलता ॥

क्षमा (पृथिवी) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमा होता है इसमें सूत्र-संख्या-२-१८ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होकर *छमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्ष्मा (पृथिवी) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१८ से हलन्त और संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्' के स्थान पर हलन्त 'छ्' की प्राप्ति' २-१०१ से प्राप्त हलन्त 'छ्' में 'अ' स्वर की प्राप्ति होकर *छमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षमा-(क्षान्ति) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति होकर *खमा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१८ ॥

ऋक्षे वा ॥ २-१९ ॥

ऋक्ष शब्दे संयुक्तस्य छो वा भवति ॥ रिच्छं । रिक्खं । रिच्छो । रिक्खो ॥ कथं छूढं क्षिप्तं । वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ (२-१२७) इति भविष्यति ॥

अर्थ—ऋक्ष शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का विकल्प से 'छ' होता है। जैसे-ऋक्षम्=रिच्छं अथवा रिक्खं ॥ ऋक्षः=रिच्छो अथवा रिक्खो ॥

प्रश्न—'क्षिप्तम्' विशेषण में रहे हुए स्वर सहित संयुक्त व्यञ्जन 'क्षि' के स्थान पर 'छू' कैसे हो जाता है? एवं 'क्षिप्तम्' का 'छूढं' कैसे बन जाता है?

उत्तर—सूत्र-संख्या २-१२७ में कहा गया है कि 'वृक्ष' के स्थान पर 'रुक्ख' आदेश होता है और 'क्षिप्त' के स्थान पर 'छूढ' आदेश होता है। ऐसा उक्त सूत्र में आगे कहा जायगा ॥

ऋक्षम् -संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिच्छं और रिक्खं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि' प्रथम रूप में २-१९ से 'क्ष' के स्थान पर विकल्प से 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *रिच्छं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति' २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *रिक्खं* सिद्ध हो जाता है।

रिच्छो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४० मे की गई है।

ऋक्ष' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिक्खो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि', २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय का प्राप्ति होकर *रिक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छूढ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से संपूर्ण 'क्षिप्त' के स्थान पर 'छूढ' का आदेश, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर छूढ रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रुक्खो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से 'वृक्ष' के स्थान पर 'रुक्ख' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रुक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छूढो रूप की सिद्धि इसी सूत्र से ऊपर कर दी गई है। अन्तर इतना सा है कि ऊपर नपुंसकात्मक विशेषण है और यहाँ पर पुल्लिगात्मक विशेषण है। अतः सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छूढो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९ ॥

क्षण उत्सवे ॥ २–२० ॥

क्षण शब्दे उत्सवाभिधायिनि संयुक्तस्य छो भवित ॥ छणो ॥ उत्सव इतिकिम् । खणो ।

अर्थः—क्षण शब्द का अर्थ जब 'उत्सव' हो तो उस समय में क्षण में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का 'छ' होता है। जैसेः—क्षण =(उत्सव)= छणो ॥

प्रश्नः—मूल-सूत्र मे 'उत्सव' ऐसा उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तर —क्षण शब्द के संस्कृत मे दो अर्थ होते हैं। उत्सव और काल वाचक सूक्ष्म समय विशेष। अतः जब 'क्षण' शब्द का अर्थ उत्सव हो तो उस समय में 'क्ष' का 'छ' होता है एवं जब 'क्षण' शब्द का अर्थ सूक्ष्म काल वाचक समय विशेष हो तो उस समय में 'क्षण' में रहे हुए 'क्ष' का 'ख' होता है। जैसे.— 'क्षण'. (समय विशेष)=खणो ॥ इस प्रकार की विशेषता बतलाने के लिये ही मूल-सूत्र मे 'उत्सव' शब्द जोड़ा गया है।

क्षण (उत्सव) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२० से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर छणो रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षण (काल वाचक) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर खणो रूप सिद्ध हो जाता है। २-२० ॥

ह्रस्वात् थ्य श्च त्स-प्सामनिश्चले ॥२-२१॥

ह्रस्वात् परयो थ्य श्च त्स प्सां छो भवति निश्चले तु न भवति ॥ थ्य । पच्छं । पच्छा । मिच्छा ॥ श्च । पच्छिमं । अच्छेरं । पच्छा ॥ त्स । उच्छाहो । मच्छलो । मच्छरो । संवच्छलो । संवच्छरो । चिइच्छइ ॥ प्स । लिच्छइ । जुगुच्छइ । अच्छरा । ह्रस्वादिति किम् । ऊसारिओ । अनिश्चल इति किम् । निच्चलो ॥ आर्षे तथ्ये चो पि । तच्चं ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में ह्रस्व स्वर के बाद में 'थ्य' 'श्च', 'त्स' अथवा 'प्स' में से कोई एक आया हो तो इनके स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। किन्तु यह नियम 'निश्चल' शब्द में रहे हुए 'श्च' के लिये नहीं है। यह ध्यान में रहे ॥ 'थ्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं—पथ्यम्=पच्छं ॥ पथ्या=पच्छा ॥ मिथ्या=मिच्छा इत्यादि ॥ 'श्च' के उदाहरण इस प्रकार हैं—पश्चिमम्=पच्छिमं । आश्चर्यम्=अच्छेरं ॥ पश्चात्=पच्छा ॥ 'त्स' के उदाहरण इस प्रकार हैं—उत्साहो=उच्छाहो । मत्सरः=मच्छलो अथवा मच्छरो ॥ संवत्सरः=संवच्छलो अथवा संवच्छरो ॥ चिकित्सति=चिइच्छइ ॥ 'प्स' के उदाहरण इस प्रकार हैं—लिप्सते=लिच्छइ ॥ जुगुप्सति=जुगुच्छइ ॥ अप्सरा=अच्छरा ॥ इत्यादि ॥

प्रश्न—'ह्रस्व स्वर' के पश्चात् ही रहे हुए हों तो 'थ्य' 'श्च' 'त्स' और 'प्स' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। 'ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—यदि 'थ्य' 'श्च' 'त्स' और 'प्स' दीर्घ स्वर के परचात रहे हुए हों तो इनके स्थान पर 'छ' की प्राप्ति नहीं होती है। अतः 'ह्रस्व स्वर' का उल्लेख करना पड़ा। जैसे—उत्सारितः=ऊसारिओ। इस उदाहरण में प्राकृत रूप में 'ऊ' दीर्घ स्वर है, अतः इसके परवर्ती 'त्स' का 'छ' नहीं हुआ है। यदि प्राकृत रूप में ह्रस्व स्वर होता तो 'त्स' का 'छ' हो जाता।

प्रश्न—'निश्चल' शब्द में ह्रस्व स्वर 'इ' के पश्चात् ही 'श्च' रहा हुआ है, तो फिर 'श्च' के स्थान पर प्राप्तव्य 'छ' का निषेध क्यों किया गया है ?

उत्तर—परम्परागत प्राकृत साहित्य में 'निश्चल' संस्कृत शब्द का प्राकृत रूप 'निच्चलो' ही उप

लब्ध है, अत परम्परागत रूप के प्रतिकूल अन्य रूप कैसे लिखा जाय ? इसीलिये 'निश्चल' का 'निच्छलो' नहीं होकर निच्चलो हा होता है। तदनुसार मूल-सूत्र मे 'निश्चल' शब्द को पृथक् कर दिया गया है। अर्थात् यह नियम 'निश्चल' में लागू नहीं होता है। अतएव संस्कृत रूप निश्चल' का प्राकृत रूप निच्चलो होता है।

आर्ष-प्राकृत में संस्कृत शब्द 'तथ्य' मे रहे हुए 'थ्य' के स्थान पर 'च' होता है। जैसे —तथ्यम = तच्च ॥

पथ्यम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पच्छं होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-२१ से 'थ्य' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पच्छं रूप सिद्ध हो जाता है।

पथ्या सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पच्छा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'थ्य' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व "छछ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' को 'च्' की प्राप्ति होकर *पच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिथ्या सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिच्छा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'थ्य' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति होकर *मिच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्चिमम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पच्छिम होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व छ' को 'च् की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पच्छिमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अच्छेरं रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-५-८ मे की गई है।

पश्चात् सस्कृत अव्यय रूप है। इस का प्राकृत रूप पच्छा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-२१ से 'श्च' के स्थन पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *पच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है। उच्छाहो रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-११४ में की गई है।

मत्सरं संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मच्छलो और मच्छरो होते हैं। इनमें सूत्र सख्या २-२१ से 'त्स' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति, १-२५४ से प्रथम रूप में 'र के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और द्वितीय

रूप में सूत्र संख्या १ २ से प्रथम रूप की अपेक्षा से र का 'र ही और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनों रूप *मच्छलो* एवं *मच्छरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

संवत्सर संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप संवच्छलो और संवच्छरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २ २१ से 'त्स के स्थान पर छ की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त छ' को द्वित्व 'छ्छ की प्राप्ति २ ९० से प्राप्त पूर्व 'छ को 'च्' की प्राप्ति, १ २५४ से प्रथम रूप में र के स्थान पर ल की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ २ से प्रथम रूप की अपेक्षा से 'र का 'र ही और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनों रूप *संवच्छलो* और *संवच्छरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

चिकित्सति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रुप चिइच्छइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ १७७ से 'क का लोप' २ २१ से 'त्स के स्थान पर 'छ की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति' २ ९० से प्राप्त पूर्व छ को च् की प्राप्ति, और ३ १३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिइच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लिप्सते संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप लिच्छइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २ २१ से 'प्स के स्थान पर 'छ की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ की प्राप्ति २ ९० से प्राप्त पूर्व 'छ को 'च् की प्राप्ति और ३ १३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'त के स्थान पर प्राकृत में 'इ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लिच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जुगुप्सति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जुगुच्छइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१ से प्स के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छ का द्वित्व 'छ्छ की प्राप्ति २ ९० से प्राप्त पूर्व 'छ् का 'च की प्राप्ति और ३ १३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जुगुच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अच्छरा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ २० में की गई है।

उत्सारित संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप ऊसारिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११४ से ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर ऊ की प्राप्ति २-७७ से प्रथम त् का लोप १ १७७ से द्वितीय 'त् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊसारिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चल संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निच्चलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श् का लोप २-८९ से 'च को द्वित्व 'च्च की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के

एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निच्चलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तथ्यम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में तच्चं रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१ की वृत्ति से 'थ्य' के स्थान पर 'च' का प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तच्चं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२१॥

सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा ॥२-२२॥

एषु संयुक्तस्य छो वा भवति ॥ सामच्छं सामत्थं । उच्छुओ ऊसुओ । उच्छवो ऊसवो ॥

अर्थः—सामर्थ्य उत्सुक और उत्सव शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर विकल्प से 'छ' होता है। जैसेः—सामर्थ्यम्=सामच्छं अथवा सामत्थं ॥ उत्सुकः=उच्छुओ अथवा ऊसुओ ॥ उत्सवः=उच्छवो अथवा ऊसवो ॥

सामर्थ्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सामच्छं और सामत्थं रूप होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-२२ से संयुक्त व्यञ्जन 'थ्य' के स्थान पर विकल्प से 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का च', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सामच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप 'सामत्थं' में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सामत्थं* भी सिद्ध हो जाता है।

उत्सुकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उच्छुओ और ऊसुओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-२२ से वैकल्पिक रूप से संयुक्त व्यञ्जन 'त्स्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व छ्' को च्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उच्छुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ऊसुओ की सिद्धि सूत्र संख्या १-११४ में की गई है।

उत्सवः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उच्छवो और ऊसवो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-२२ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति

के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप उच्छुओ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ऊसवो की सिद्धि सूत्र संख्या १-८४ में की गई है। ॥ २-२२ ॥

स्पृहायाम् ॥ २ २३ ॥

स्पृहा शब्दे संयुक्तस्य छो भवति । फस्यापवादः ॥ छिहा ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिदन्यदपि । निप्पिहो ॥

अर्थ —स्पृहा शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। आगे सूत्र-संख्या २-५३ में यह बतलाया जायगा कि सर्व-सामान्य रूप से 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। किन्तु इस सूत्र-संख्या २-२३ से यह कहा जाता है कि स्पृहा में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'छ' होता है अतः इस नियम को उस नियम का अपवाद माना जाय। उदाहरण इस प्रकार है—

स्पृहा=छिहा ॥ सूत्र-संख्या २-५३ के अनुसार 'स्पृहा' का प्राकृत रूप 'फिहा' होना चाहिये था किन्तु इस नियम के अनुसार 'छिहा' हुआ है। अतः सूत्र-संख्या २-२३ सूत्र-संख्या २-५३ का अपवाद रूप सूत्र है। यह ध्यान में रहे। सूत्र-संख्या १-२ के अनुसार बहुलाधिकार से कहीं कहीं पर 'स्पृहा' का दूसरा रूप भी पाया है। जैसे – निस्पृहः=निप्पिहो ॥ सूत्र-संख्या २ २२ के अनुसार 'निस्पृह' का प्राकृत रूप 'निच्छिहो' नहीं हुआ है। अतः यह रूप-भिन्नता बहुलाधिकार से जानना ॥

छिहा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १२८ में की गई है।

'निस्पृह' संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्पिहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ७७ 'स्' का लोप २-८९ से 'प्' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्पिहो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-२३॥

द्य-य्य र्यां जः ॥ २-२४ ॥

एषां संयुक्तानां जो भवति ॥ द्य । मज्जं । अवज्जं । वेज्जो । जुई । जोओ ॥ य्य । जज्जो सेज्जा ॥ र्य । भज्जा । चौर्य समत्वात् भारिआ । कज्जं । वज्जं पज्जाओ । पज्जत्तं मज्जाया ॥

अर्थ —यदि किसी शब्द में 'द्य' अथवा 'य्य' अथवा 'र्य' रहा हुआ हो तो इन संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति होती है 'द्य' के उदाहरण इस प्रकार है—मद्यम्=मज्जं। अवद्यम्=अवज्जं। वैद्यः=वेज्जो। द्युतिः=जुई। और द्योतः=जोओ ॥ 'य्य' के उदाहरण इस प्रकार है—जय्यः=जज्जो। शय्या

=सेज्जा। 'र्य' के उदाहरण'-भार्या=भज्जा। सूत्र-संख्या २-१०७ से भार्या का भरिआ रूप भी होता है। कार्यम्=कज्ज। वर्यम्=वज्ज। पर्याय=पज्जाओ। पर्याप्तम्=पज्जत्त और मर्यादा=मज्जाया ॥इत्यादि॥

मद्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर मज्जं रूप सिद्ध हो जाता है।

अवद्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवज्जं होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अवज्जं रूप सिद्ध हो जाता है।

वेज्जो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ मे की गई है।

द्युति' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर जुई रूप सिद्ध हो जाता है।

द्योतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जोओ रूप सिद्ध हो जाता है।

जय्य संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप जज्जो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'य्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जज्जो रूप सिद्ध हो जाता है।

सेज्जा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ मे की गई है।

भार्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भज्जा होता है। इस में सूत्र-संख्या १-८४ से 'भा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर भज्जा रूप सिद्ध हो जाता है।

भार्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत में वैकल्पिक रूप भारिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के र् में 'इ' की प्राप्ति और १-१७७ से य् का लोप होकर *भारिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कज्जं और *वज्जं* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८७ में की गई है।

पर्याय संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन र्य के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय य् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पज्जाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पर्याप्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जत्तं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से द्वितीय हलन्त 'प्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पज्जत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मर्यादा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मज्जाया होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; और १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति होकर *मज्जाया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२४॥

अभिमन्यौ ज ञ्जौ वा ॥ २-२५ ॥

अभिमन्यौ संयुक्तस्य जो ञ्जश्च वा भवति ॥ अहिमज्जू । अहिमञ्जू । पक्षे अहिमन्नू ॥ अभिग्रहणादिह न भवति । मन्नू ॥

अर्थ—'अभिमन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' और 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अभिमन्यु' संस्कृत शब्द के प्राकृत रूप तीन हो जाते हैं जो कि इस प्रकार हैं—अभिमन्युः=अहिमज्जू अथवा अहिमञ्जू अथवा अहिमन्नू ॥ मूल-सूत्र में 'अभिमन्यु' लिखा हुआ है' अतः जिस समय में केवल 'मन्यु' शब्द होगा' अर्थात् 'अभि' उपसर्ग नहीं होगा' तब 'मन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर सूत्र-संख्या २-२५ के अनुसार क्रम से 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि 'मन्यु' शब्द के साथ में 'अभि' उपसर्ग होने पर ही संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं। जैसे—मन्युः=मन्नू ॥

अभिमन्युः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत में तीन रूप होते है.– अहिमज्जू, अहिमञ्जू और अहिमन्नू ॥ इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-२५ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अहिमज्जू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-२५ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ञ्ज' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे प्रथम रूप के समान ही साधनिका की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अहिमञ्जू* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप *अहिमन्नू* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४३ में की गई है।

मन्युः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मन्नू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न्' की प्राप्ति, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मन्नू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२५ ॥

साध्वस-ध्य-ह्यां-झः ॥२-२६॥

साध्वसे संयुक्तस्य ध्य-ह्ययोश्च झो भवति ॥ सज्झसं ॥ ध्य । वज्झए । झाणं । उवज्झाओ । सज्झाओ सज्झं विञ्झो ॥ ह्य । सज्झो मज्झं ॥ गुज्झं । णज्झइ ॥

अर्थः—'साध्वस' शब्द मे रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है। जैसे–साध्वसम्=सज्झसं ॥ इसी प्रकार जिन शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' होता है अथवा 'ह्य' होता है; तो इन संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर और 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है। जैसे –'ध्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं–वध्यते=वज्झए। ध्यानम्=झाणं। उपाध्याय=उवज्झाओ। स्वाध्याय=सज्झाओ। साध्यम्=सज्झं और विंध्यः=विञ्झो ॥ 'ह्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—सह्य=सज्झो। मह्य=मज्झं। गुह्यम्=गुज्झं और नह्यति=णज्झइ इत्यादि ॥

साध्वसम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ् झ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सज्झसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मार्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत में वैकल्पिक रूप मारिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ १ ७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के 'र्' में 'इ' की प्राप्ति और १ १७७ से य् का लोप होकर मारिआ रूप सिद्ध हो जाता है।

कज्जं और *वज्जं* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८७ में की गई है।

पर्यायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ २४ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय य् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पज्जाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पर्याप्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जत्त होता है। इस में सूत्र-संख्या २ २४ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के स्थानपर 'ज' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त ज का द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति १-८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थानपर 'अ' की प्राप्ति २-७७ से द्वितीय हलन्त 'प्' का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'त' का द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पज्जत्तम्* रूप सिद्ध हो जाता है।

मर्यादा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मज्जाया होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २ ८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति १ १७७ से 'द' का लोप, और १ १८० से लोप हुए 'द' में से शेष रहे हुए 'आ' को 'या' की प्राप्ति होकर *मज्जाया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२४॥

अभिमन्यौ ज ञ्जौ वा ॥ २ २५ ॥

अभिमन्यौ संयुक्तस्य जो ञ्जश्च वा भवति ॥ अहिमज्जू । अहिमञ्जू । पक्षे अहिमन्नू ॥ अभिग्रहणादिह न भवति । मन्नू ॥

अर्थ—'अभिमन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' और 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अभिमन्यु' संस्कृत शब्द के प्राकृत रूप तीन हो जाते हैं जो कि इस प्रकार हैं—अभिमन्यु=अहिमज्जू अथवा अहिमञ्जू अथवा अहिमन्नू ॥ मूल-सूत्र में 'अभिमन्यु' लिखा हुआ है, अतः जिस समय में केवल 'मन्यु' शब्द होगा' अर्थात् 'अभि' उपसर्ग नहीं होगा' तब 'मन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर सूत्र-संख्या २-२५ के अनुसार क्रम से 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि 'मन्यु' शब्द के साथ में 'अभि' उपसर्ग होने पर ही संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं। जैसे—मन्यु=मन्नू ॥

अभिमन्यु संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत में तीन रूप होते हैं – अहिमज्जू, अहिमञ्जू और अहिमन्नू॥ इनमे से प्रथम रूप मे सूत्र-सख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-२५ से सयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अहिमज्जू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-सख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-२५ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ञ्ज' की प्राप्ति; और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्रथम रूप के समान ही साधनिका की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अहिमञ्जू* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप *अहिमन्नू* की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२४३ में की गई है।

मन्युः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मन्नू होता है। इसमें सूत्र सख्य २-७८ से 'य्' का लोप, २-८६ से रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न्' की प्राप्ति, और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मन्नू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२५ ॥

साध्वस-ध्य-ह्यां-झः ॥२-२६॥

साध्वसे संयुक्तस्य ध्य-ह्ययोश्च झो भवति। सज्झसं॥ ध्य। वज्झए। झाणं। उवज्झाओ। सज्झाओ सज्झं विञ्झो॥ ह्य। सज्झो मज्झं॥ गुज्झं। णज्झइ॥

अर्थः—'साध्वस' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है! जैसे-साध्वसम्=सज्झसं॥ इसी प्रकार जिन शब्दो में सयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' होता है अथवा 'ह्य' होता है; तो इन सयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर और 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है। जैसे –'ध्य' के उदाहरण इस प्रकार है:-वध्यते=वज्झए। ध्यानम्=झाणं। उपाध्याय=उवज्झाओ। स्वाध्याय=सज्झाओ। साध्यम्=सज्झं और विंध्य=विञ्झो॥ 'ह्य' के उदाहरण इस प्रकार है:—सह्य=सज्झो। मह्य=मज्झं। गुह्यम्=गुज्झं और नह्यति=णज्झइ इत्यादि॥

साध्वसम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २–२६ से सयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २–८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति, २–९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सज्झसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ध्यायते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चज्झाइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ् झ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर झज्झइ रूप सिद्ध हो जाता है।

ध्यानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप झाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त-नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर झाणं रूप सिद्ध हो जाता है।

उवज्झाओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७३ में की गई है।

स्वाध्याय संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से से अथवा २-७९ से 'व्' का लोप, १-८४ से प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सज्झाओ रूप सिद्ध हो जाता है।

साध्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सज्झं रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्ध्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विञ्झो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति १-३० से अनुस्वार को 'झ' वर्ण आगे होने से 'ञ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विञ्झो रूप सिद्ध हो जाता है।

सह्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सज्झो रूप सिद्ध हो जाता है।

मह्यम् संस्कृत सर्वनाम अस्मद् का चतुर्थ्यन्त रूप है। इसका रूप मज्झं होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मज्झं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुह्यम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गुज्झं होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गुज्झं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नह्यति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप णज्झइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णज्झइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ध्वजे वा ॥ २-२७ ॥

ध्वज शब्दे संयुक्तस्य झो वा भवति ॥ झओ धओ ॥

अर्थः—'ध्वज' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'झ' होता है। जैसे —ध्वज =झओ अथवा धओ ॥

ध्वजः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप झओ और धओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या २-२७ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'झ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'ज्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *झओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप धओ में २-७९ से 'व्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *धओ* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२७ ॥

इन्धौ झा ॥ २-२८ ॥

इन्धौ धातौ संयुक्तस्य झा इत्यादेशो भवति ॥ समिज्झाइ। विज्झाइ ॥

अर्थ—'इन्ध्' धातु में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध्' के स्थान पर 'झा' का आदेश होता है।

जैसे:—समिन्धते=समिज्झाइ । विन्धते=विज्झाइ ॥

समिन्धते अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप समिज्झाई होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध' के स्थान पर 'झ' आदेश की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त झ को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व झ्' को 'ज्' की प्राप्ति और ३-१३९ के वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते के स्थान पर प्राकृत में इ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समिज्झाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्धते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्झाइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध के स्थान पर 'झ आदेश की प्राप्ति' २-८९ से प्राप्त झ को द्वित्व 'झ्झ की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ् को 'ज् की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते के स्थान पर प्राकृत में 'इ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्झाइ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२८ ॥

वृत्त प्रवृत्त-मृत्तिका पत्तन-कदर्थिते ट ॥ २-२९ ॥

एषु संयुक्तस्य टो भवति ॥ वट्टो । पयट्टो । मट्टिआ । पट्टणं । कवट्टिओ ॥

अर्थ:—वृत्त प्रवृत्त मृत्तिका पत्तन और कदर्थित शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन त्त के स्थान पर और 'र्थ के स्थान पर 'ट की प्राप्ति होती है। जैसे—वृत्त=वट्टो। प्रवृत्त=पयट्टो। मृत्तिका=मट्टिआ। पत्तनम्=पट्टणं और कदर्थित=कवट्टिओ ॥

वृत्त संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर अ की प्राप्ति, २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त के स्थान पर 'ट की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ट को द्वित्व 'ट्ट की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर वट्टो रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवृत्त संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पयट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से र् का लोप; १-१२६ से 'ऋ के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति' १-१७७ से व् का लोप' १-१८० से लोप हुए 'व् में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य की प्राप्ति २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त के स्थान पर ट की प्राप्ति' २-८९ से प्राप्त 'ट का द्वित्व ट्ट' का प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पयट्टो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृत्तिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मट्टिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से ऋ के स्थान पर 'अ की प्राप्ति' २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त के स्थान पर 'ट की प्राप्ति २-८९ से

प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *मट्टिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पत्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पट्टण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पट्टणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कवट्टिओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११४ में की गई है। ॥२-२९॥

र्तस्याधूर्तादौ ॥ २-३० ॥

र्तस्य टो भवति धूर्तादीन् वर्जयित्वा ॥ केवट्टो । वट्टी । जट्टो । पयट्टइ ॥ वट्टुलं । राय वट्टयं । नट्टई । संवट्टिअं ॥ अधूर्तादाविति किम् । धुत्तो । कित्ती । वत्ता । आवत्तणं । निवत्तणं । पवत्तणं । संवत्तणं । आवत्तओ । निवत्तओ । निव्वत्तओ । पवत्तओ । संवत्तओ । वत्तिआ । वत्तिओ । कत्तिओ । उक्कत्तिओ । कत्तरी । मुत्ती । मुत्तो । मुहुत्तो ॥ बहुलाधिकाराद् वट्टा ॥ धूर्त । कीर्ति । वार्ता । आवर्तन । निवर्तन । प्रवर्तन । संवर्तन । आवर्तक । निवर्तक । निर्वर्तक । प्रवर्तक । संवर्तक । वर्तिका । वार्तिक । कार्तिक । उत्कर्तित । कर्तरि । मूर्ति । मूर्त । मुहूर्त इत्यादि ॥

अर्थ:—धूर्त आदि कुछ एक शब्दों को छोडकर यदि अन्य किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' रहा हुआ हो तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कैवर्तः=केवट्टो। वर्तिः=वट्टी। जर्तः=जट्टो। प्रवर्तते=पयट्टइ। वर्तुलम्=वट्टुलं। राज-वर्त्तकम्=राय-वट्टयं। नर्त्तकी=नट्टई। संवर्तितम्=संवट्टिअं।

प्रश्न:—'धूर्त' आदि शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' की उपस्थिति होते हुए भी इस संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर प्राप्त होने योग्य 'ट' का निषेध क्यों किया गया है? अर्थात् 'धूर्त' आदि शब्दों में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' प्राप्ति का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तर:—क्यों कि धूर्त आदि अनेक शब्दों में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर परम्परा से अन्य विकार-आदेश-आगम-लोप आदि की उपलब्धि पाई जाती है, अतः ऐसे शब्दों की स्थिति इस सूत्र-संख्या २-३० से पृथक् ही रक्खी गई है। जैसे:-धूर्तः=धुत्तो। कीर्तिः=कित्ती। वार्ता=वत्ता। आवर्तनम्=आवत्तणं। निवर्तनम्=निवत्तणं। प्रवर्तनम्=पवत्तणं। संवर्तनम्=संवत्तणं। आवर्तकः= आवत्तओ। निवर्तकः=निवत्तओ। निर्वर्तकः=निव्वत्तओ। प्रवर्तकः=पवत्तओ। संवर्तकः=संवत्तओ। वर्तिका=वत्तिआ। वार्तिकः=वत्तिओ। कार्तिकः=कत्तिओ। उत्कर्तितः=उक्कत्तिओ। कर्तरिः=कत्तरी (अथवा कर्तरीः=कत्तरी)। मूर्तिः=मुत्ती। मूर्तः=मुत्तो। और मुहूर्तः=मुहुत्तो॥ इत्यादि अनेक

शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'त' के स्थान पर भी उनमें सूत्र-संख्या २-३० के विधान के अनुसार 'ट' की प्राप्ति नहीं होती है। 'बहुलाधिकार' से किसी किसी शब्द में दोनों विधियाँ पाई जाती हैं। जैसे वार्ता का 'वट्टा' और 'वत्ता' दोनों रूप उपलब्ध हैं। यों अन्य शब्दों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये॥

कैवर्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केवट्टो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' का द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर केवट्टो रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर वट्टी रूप सिद्ध हो जाता है।

जर्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जट्टो रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवर्तते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पयट्टइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पयट्टइ रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तुलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टुलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वट्टुलं रूप सिद्ध हो जाता है।

राज-वार्तिकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रायवट्टयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; १-८८ से 'ति' के स्थान पर पूर्वानुसार प्राप्त 'ट्टि' में स्थित 'इ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष

रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय को प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *राय-वट्टयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नर्त्तकी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नट्टई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *नट्टई* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सवट्टिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संवट्टिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

धुत्तो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

कीर्ति संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कित्ती होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'की' में स्थित दीर्घस्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घस्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *कित्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्ता संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वत्ता होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप और २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'प्र' में स्थित 'र्' का और 'त' में स्थित 'र्' का—दोनों का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-२२८ से

'न' का 'ण, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय का प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *पवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र का लोप २-८९ से 'त को द्वित्व 'त की प्राप्ति १-२२८ से 'न का 'ण ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *संवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवर्तक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आवत्तओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप; २-८९ से 'त को द्वित्व 'त्त की प्राप्ति १-१७७ से 'क का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवर्तक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निवत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से र् का लोप, २-८९ से 'त का द्वित्व 'त्त का प्राप्ति १-१७७ से 'क् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वर्तक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व पर स्थित र् का तथा 'त' पर स्थित 'र् का- दोनों का- लोप २-८९ से व का द्वित्व तथा त का भी द्वित्व;- दोनों का द्वित्व का प्राप्ति १-१७७ से 'क लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निव्वत्तओ* रूप की सिद्धि हो जाती है।

प्रवर्तक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पवत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प में स्थित 'र् का और 'त पर स्थित र् का-दोनों र् का-लोप, २-८९ से 'त का द्वित्व त्त' १-१७७ से 'क् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संवत्तओ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से र् का लोप २-८९ से 'त का द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तिका संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप वत्तिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र' का लोप २-८९ से 'त का द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'क् का लोप हो कर *वत्तिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्त्तिक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वत्तिओ होता है। इस में सूत्र-संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कार्तिक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कत्तिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कीर्तित संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उक्कत्तिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से प्रथम हलन्त 'त्' का लोप, २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष बचे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से अंतिम 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उक्कत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्तरी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कत्तरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप और २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *कत्तरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्त्ति संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मुत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्त्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुहूर्त संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुहुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'हू' में स्थित दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुहुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्ता संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर

'ट का आदेश और २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति होकर वट्टा रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-३०॥

वृन्ते ण्टः ॥२-३१॥

वृन्ते संयुक्तस्य ण्टो भवति ॥ वेण्टं । ताल वेण्टं ॥

अर्थ—वृन्त शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'न्त' के स्थान पर 'ण्ट' की प्राप्ति होती है। जैसे—वृन्तम्=वेण्टं और ताल-वृन्तम्=ताल-वण्टं ॥

'वेण्ट' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३९ में की गई है।

ताल-वेण्टं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है। ॥२-३१॥

ठो स्थि विसस्थुले ॥ २-३२ ॥

अनयोः संयुक्तस्य ठो भवति ॥ अट्ठी । विसट्ठुलं ॥

अर्थ—अस्थि और विसंस्थुल शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे—अस्थि=अट्ठी और विसंस्थुलम्=विसंठुलं ॥

अस्थि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३२ से संयुक्त व्यञ्जन स्थ के स्थान पर ठ की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में संस्कृत प्रत्यय सि के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर अट्ठी रूप सिद्ध हो जाता है।

विसंस्थुलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विसंठुलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३२ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर विसंठुलं रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-३२॥

स्त्यान-चतुर्थार्थे वा ॥२-३३॥

एषु संयुक्तस्य ठो वा भवति ॥ ठीणं थीणं । चउट्ठो । अट्ठो प्रयोजनम् । अत्थो धनम् ॥

अर्थ—स्त्यान शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त्य' के स्थान पर विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति होती है इसी प्रकार से 'चतुर्थ' एवं 'अर्थ' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्थ' के स्थान पर भी विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे—स्त्यानम्=ठीणं अथवा थीणं ॥ चतुर्थः=चउट्ठो अथवा चउत्थो ॥

अर्थ—अट्ठो अथवा अत्थो ॥ संस्कृत शब्द 'अर्थ' के दो अर्थ होते है। पहला अर्थ 'प्रयोजन' होता है और दूसरा अर्थ 'धन होता है। तदनुसार 'प्रयोजन' अर्थ मे प्रयुक्त संस्कृत रूप 'अर्थ' का प्राकृत रूप अट्ठो होता है और 'धन' अर्थ मे प्रयुक्त संस्कृत रूप 'अर्थ' का प्राकृत रूप 'अत्थो' होता है। यह ध्यान में रखना चाहिये।

ठीणं और *थीणं* दोनों रूपो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७४ मे की गई है।

चउट्ठो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७१ मे की गई है।

अर्थः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (प्रयोजन अर्थ मे) अट्ठो होता है। इसमे सूत्र संख्या २-३३ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्थ' के स्थान पर विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व ठ्ठ की प्राप्ति, २-९० प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्थः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (धन अर्थ में) अत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'थ को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे ॥ २-३४ ॥

उष्ट्रादिवर्जिते ष्टस्य ठो भवति ॥ लट्ठी। मुट्ठी। दिट्ठी। सिट्ठी। पुट्ठो। कट्ठं। सुरट्ठा। इट्ठो। अणिट्ठं। अनुष्ट्रेष्टासंदष्ट इति किम्। उट्टो। इट्टा चुण्णं व्व। संदट्टो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द उष्ट्र, इष्टा और संदष्ट के अतिरिक्त यदि किसी अन्य संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' रहा हुआ हो तो उस संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे—लष्टि,= लट्ठी। मुष्टि—मुट्ठी। दृष्टि—दिट्ठी। सृष्टि=सिट्ठी। पृष्ट=पुट्ठो। कष्टम्=कट्ठं। सुराष्ट्रा= सुरट्ठा। इष्ट= इट्ठो और अनिष्टम्= अणिट्ठं ॥

प्रश्न.—'उष्ट्र, इष्टा और संदष्ट' मे संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' होने पर भी सूत्र-संख्या २-३४ के अनुसार 'ष्ट' के स्थान पर प्राप्तव्य 'ठ' का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तर—क्योंकि 'उष्ट्र', 'इष्टा' और 'संदष्ट' के प्राकृत रूप प्राकृत साहित्य में अन्य स्वरूप वाले पाये जाते हैं, एवं उनके इन स्वरूपों की सिद्धि अन्य सूत्रों से होती है, अतः सूत्र-संख्या २-३४ से प्राप्तव्य 'ठ' की प्राप्ति का इन रूपों के लिये निषेध किया गया है। जैसे—उष्ट्र = उट्टो। इष्टा-चूर्णम् इव = इट्टा-चुण्णं व्व ॥ और संदष्ट.= संदट्टो ॥

लट्ठी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४७ में की गई है।

उष्ट्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर उट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है।

इष्टा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इट्टा होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप और २-८९ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति होकर इट्टा रूप सिद्ध हो जाता है।

चूर्णम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चुण्णं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घस्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार होकर चुण्णं रूप सिद्ध हो जाता है।

'व्व' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई।

संदष्ट' संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सदट्टो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर संदट्टो रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-३४॥

गर्ते डः ॥ २-३५ ॥

गर्त शब्दे संयुक्तस्य डो भवति। टापवादः॥ गड्डो। गड्डा॥

अर्थ.-'गर्त' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। सूत्र-संख्या २-३० में विधान किया गया है कि 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति होती है; किन्तु इस सूत्र में 'गर्त' शब्द के संबध में यह विशेष नियम निर्धारित किया गया है कि सयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति नहीं होकर 'ड' की प्राप्ति होती है, अत इस नियम को सूत्र-सख्या २-३० के विधान के लिये अपवाद रूप नियम समझा जाय। उदाहरण इस प्रकार है —गर्तः= गड्डो॥ गर्ता=गड्डा॥

गड्डो और गड्डा रूपों की सिद्धि सूत्र-सख्या १-३५ में की गई है॥ २-३५॥

संमर्द-वितर्दि-विच्छर्द-च्छर्दि-कपर्द-मर्दिते-र्दस्य ॥ २-३६ ॥

एषु र्दस्य डत्वं भवति॥ संमड्डो। विअड्डी। विच्छड्डो। छड्डइ। छड्डी। कवड्डो। मड्डिओ संमड्डिओ॥

अर्थ —'संमर्द', वितर्दि, विच्छर्द, च्छर्दि, कपर्द और मर्दित शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। जैसे.— समर्द=समड्डो। वितर्दि=विअड्डी। विच्छर्द =

विच्छड्डो । छर्दि = छड्डी । कपर्द = कवड्डो । मर्दित = मड्डिओ और संमर्दित = संमड्डिओ ॥

संमर्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संमड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संमड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वितर्दि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विअड्डी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त' का लोप; २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *विअड्डी* रूप सिद्ध हो जाता है।

विच्छर्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विच्छड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विच्छड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुञ्चति—(छर्दते ?) संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप छड्डइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-९१ से 'मुञ्च्' धातु के स्थान पर 'छड्ड' का आदेश; (अथवा छर्द् में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर २-३६ से 'ड' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति) ४-२३९ से प्राप्त एवं हलन्त 'छड्ड' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' (अथवा 'ते') के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छड्डइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

छर्दि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छड्डी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *छड्डी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कपर्द संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कवड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कवड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मर्दित संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मड्डिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; १-१७७

से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मड्डिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संमर्दित संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप *संमड्डिओ* होता है। इसकी सिद्धि उपरोक्त रूप 'मर्दित = मड्डिओ' के समान ही जानना ॥ २-३६ ॥

गर्दभे वा ॥ २--३७ ॥

गर्दभे र्दस्य डो वा भवति ॥ गड्डहो । गद्दहो ॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द 'गर्दभ' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर विकल्प से 'ड' की प्राप्ति होती है। गर्दभ = गड्डहो और गद्दहो ॥

गर्दभ संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गड्डहो और गद्दहो होते हैं। इन में से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या २-३७ मे संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर विकल्प से 'ड' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति, १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *गड्डहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति, और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *गद्दहो* भी सिद्ध हो जाता है। २-३७ ॥

कन्दरिका-भिन्दिपाले ण्डः ॥ २-३८ ॥

अनयोः संयुक्तस्य ण्डो भवति ॥ कण्डलिआ । भिण्डिवालो ॥

अर्थ:—'कन्दरिका' और 'भिन्दिपाल' शब्दो मे रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति होती है। जैसे —कन्दरिका = कण्डलिआ और भिन्दिपाल = भिण्डिवालो ॥

कन्दरिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कण्डलिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति, १-२५४ से 'र' का 'ल' और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *कण्डलिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भिन्दिपालः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप भिण्डिवालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिण्डिवालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तब्धे ठ-ढौ ॥ २-३९ ॥

स्तब्धे संयुक्तयो र्यथाक्रम ठढौ भवतः ॥ ठड्ढो

अर्थ – स्तब्ध शब्द में दो संयुक्त व्यञ्जन हैं एक 'स्त' है और दूसरा 'ब्ध' है इनमें से प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है और दूसरे संयुक्त व्यञ्जन 'ब्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है जैसे —स्तब्ध = ठड्ढो ॥

स्तब्ध संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप ठड्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३९ से प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति, २-३९ से द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ब्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व ढ ढ की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर ठड्ढो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-३९ ॥

दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे ढः ॥ २-४० ॥

एषु संयुक्तस्य ढो भवति ॥ दड्ढो। विअड्ढो। वुड्ढी। वुड्ढो ॥ क्वचिन्न भवति। विद्ध कइ निरूविअं ॥

अर्थ— संस्कृत शब्द दग्ध और विदग्ध में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ग्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से संस्कृत-शब्द वृद्धि और वृद्ध में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर भी 'ढ' की प्राप्ति होती है। जैसे—दग्ध = दड्ढो। विदग्धः = विअड्ढो। वृद्धिः = वुड्ढी। वृद्धः = वुड्ढो ॥ कभी कभी संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे –वृद्ध- कवि- निरूपितम्=विद्ध-कइ निरूविअं। यहां पर 'वृद्ध' शब्द का 'वुड्ढ' नहीं होकर 'विद्ध' हुआ है। यों अन्य शब्दों के संबंध में भी जान लेना चाहिये ॥

दड्ढो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१७ में की गई है।

विदग्ध संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विअड्ढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढढ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विअड्ढो रूप सिद्ध हो जाता है।

वुड्ढी और वुड्ढो रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

विद्ध रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में की गई है।

कवि संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप कइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व' का

लोप होकर कढ़ रूप सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर 'कढ़' रूप समास-गत होने से विभक्ति प्रत्यय का लोप हो गया है।

निरूपितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निरूविअं होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का व, १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरूविअं* रूप सिद्ध हो जाता है।। २-४०।

श्रद्धर्द्धि-मूर्धार्धेन्ते वा ॥ २-४१ ॥

एषु अन्ते वर्तमानस्य संयुक्तस्य ढो वा भवति ॥ सड्ढा। सद्धा। इड्ढी रिद्धी। मुण्ढा। मुद्धा। अड्ढं अद्धं ॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द श्रद्धा, ऋद्धि, मूर्धा और अर्ध में अन्त में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर अथवा 'र्ध' के स्थान पर, विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति होती है। तदनुसार संस्कृत रूपांतर से प्राप्त प्राकृत रूपान्तर में इनके दो दो रूप हो जाते हैं। जोकि इस प्रकार हैं—श्रद्धा=सड्ढा अथवा सद्धा ॥ऋद्धि = इड्ढी अथवा रिद्धी ॥ मूर्धा= मुण्ढा अथवा मुद्धा और अर्धम्= अड्ढं अथवा अद्धं।

श्रद्धा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सड्ढा और सद्धा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से शेष 'श' का 'स', २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ढ' का द्वित्व 'ढ्ढ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' को 'ड्' की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप सड्ढा सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सद्धा की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२ में की गई है।

ऋद्धि संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप इड्ढी और रिद्धी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व ढ्ढ की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारांत स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्वस्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप इड्ढी सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *रिद्धी* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

मूर्धा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुण्ढा और मुद्धा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, १-२६ से प्रथम स्वर 'उ' के पश्चात् आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति और १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार के आगे 'ढ' होने से ट वर्ग के पञ्चमाक्षर रूप

'ण' की प्राप्ति होकर मुण्डा रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मुद्धा में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर ऊ के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति २-७९ से र् का लोप २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व ध् को 'द्' की प्राप्ति होकर मुद्धा रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अड्ढं और अद्धं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढढ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप अड्ढं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से र का लोप २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप अद्धं भी सिद्ध हो जाता है। २-४१॥

म्न-ज्ञोर्णः ॥ २-४२॥

म्नज्ञयोर्णो भवति ॥ म्न। निण्णं। पज्जुण्णो ॥ ज्ञ। णाणं। सण्णा। पण्णा। विण्णाणं ॥

अर्थः—जिन शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' अथवा 'ज्ञ' होता है उन संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर अथवा 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती है। जैसे—'म्न' के उदाहरण—निम्नम्=निण्णं। प्रद्युम्न=पज्जुण्णो। 'ज्ञ' के उदाहरण इस प्रकार हैं—ज्ञानम्=णाणं। संज्ञा=सण्णा। प्रज्ञा=पण्णा और विज्ञानम्=विण्णाणं॥

निम्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निण्णं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर निण्णं रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रद्युम्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पज्जुण्णो रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्ञानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णाण होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' का प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म, का अनुस्वार होकर *णाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सञ्ज्ञा सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्णा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-३० से अनुस्वार को आगे 'ण' का सद्भाव होने से टवर्ग के पञ्चमाक्षर रूप हलन्त 'ण' की प्राप्ति होकर *सण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रज्ञा सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पण्णा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-४२ से सयुक्त-व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण की प्राप्ति, और २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण'की प्राप्ति होकर पण्णा रूप सिध्द हो जाता है। *विज्ञानम्* सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विण्णाण होता है इस में सूत्र- सख्या २-४२ से सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारात नपुंसक लिंग में सस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विण्णाण* रूप सिध्द हो जाता है ॥ २-४२ ॥

पञ्चाशत्-पञ्चदश- दत्ते ॥ २-४३ ॥

एषु सयुक्तस्य णो भवति ॥ पण्णासा । पण्णरह । दिण्णं ॥

अर्थः—पञ्चाशत, पञ्चदश और दत्त शब्दों में रहे हुए सयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान अथवा 'त्त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती है। जैसे—पञ्चाशत्=पण्णासा ॥ पञ्चदश=पण्णरह और दत्तम्=दिण्ण ॥

पञ्चाशत् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पण्णासा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-४३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' का 'स, १ १५ से प्राप्त 'स' में 'आ स्वर की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *पण्णासा* रूप सिध्द हो जाता है।

पञ्चदश सस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पण्णरह होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-४३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, १-२१९ से 'द' के स्थान 'र' की प्राप्ति और १-२६२ से श के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति हो कर *पण्णरह* रूप सिध्द हो जाता है।

दिण्ण रूप की सिध्दि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है। २-४३।

मन्यौ न्तो वा ॥ २-४४ ॥

मन्यु शब्दे संयुक्तस्य न्तो वा भवति ॥ मन्तू मन्नू ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'मन्यु' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'न्तु' की प्राप्ति होती है। जैसे—मन्यु = मन्तू अथवा मन्नू ॥

मन्यु संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप मन्तू और मन्नू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-४४ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'न्त' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व स्वर उकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मन्तू* सिद्ध हो जाता है।

मन्नू की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२५ में की गई है ॥ २-४४ ॥

स्तस्य थो समस्त-स्तम्बे ॥ २-४५ ॥

समस्त स्तम्ब वर्जित स्तस्य थो भवति। हत्थो। थुई। थोत्तं। थोअं। पत्थरो पसत्थो। अत्थि। सत्थि ॥ असमस्त स्तम्ब इति किम्। समत्तो। तम्बो ॥

अर्थ — समस्त और स्तम्ब शब्दों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत शब्दों में यदि 'स्त' संयुक्त व्यञ्जन रहा हुआ है, तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति होती है। जैसे—हस्तः=हत्थो ॥ स्तुतिः=थुई ॥ स्तोत्रम्=थोत्तं ॥ स्तोकम्=थोअं ॥ प्रस्तर=पत्थरो ॥ प्रशस्त=पसत्थो ॥ अस्ति=अत्थि ॥ स्वस्ति=सत्थि ॥

प्रश्न — यदि अन्य शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति हो जाती है तो फिर 'समस्त' और 'स्तम्ब' शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर—क्यों कि समस्त और 'स्तम्ब' शब्दों का रूप प्राकृत में 'समत्तो' और 'तम्बो' उपलब्ध है; अतः ऐसी स्थिति में 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति कैसे हो सकती है? उदाहरण इस प्रकार हैं— समस्तः= समत्तो और स्तम्बः=तम्बो ॥

हस्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हत्थो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ' को 'त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *हत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तुतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *थुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तोत्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थोत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-७९ से 'त्र' मे स्थित 'र्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ मे प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थोत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तोकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप थोअं होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-४५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त—नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थोअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रस्तरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पत्थरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप, २-४५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पत्थरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रशस्त संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पसत्थो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', २-४५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त-पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पसत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्ति संस्कृत क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप अत्थि होता है। इस में सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति होकर *अत्थि* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वस्ति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सत्थि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; २-४५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ्' को द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *सत्थि* रूप सिद्ध हो जाता है।

समाप्त संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप समत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तम्भो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से स का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर तम्भो रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-४५ ॥

स्तवे वा ॥ २-४६

स्तव शब्दे स्तस्य थो वा भवति ॥ थवो तवो ॥

अर्थ —'स्तव' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति होती है। जैसे —स्तवः=थवो अथवा तवो ॥

स्तवः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप थवो और तवो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-४६ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप थवो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही हो कर तवो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-४६॥

पर्यस्ते थ-टौ ॥ २-४७ ॥

पर्यस्ते स्तस्य पर्यायेण थटौ भवतः ॥ पल्लत्थो पल्लट्टो ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'पर्यस्त' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर कभी 'थ' होता है और कभी 'ट' होता है। यों पर्यस्त के प्राकृत रूपान्तर दो प्रकार के होते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:— पर्यस्तः=पल्लत्थो और पल्लट्टो ॥

पर्यस्तः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप पल्लत्थो और पल्लट्टो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर पर्याय रूप से 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप पल्लत्थो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप पल्लट्टो में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर पर्याय रूप से 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप पल्लट्टो भी सिद्ध हो जाता है ॥ २-४७ ॥

वोत्साहे थो हश्च रः ॥ २-४८ ॥

उत्साह शब्दे संयुक्तस्य थो वा भवति तत्संनियोगे च हस्य रः ॥ उत्थारो उच्छाहो ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'उत्साह' में रहे हुए सयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति होती है। एव थ' की प्राप्ति होने पर ही अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर भी 'र' की प्राप्ति हो जाती है। पक्षान्तर में सयुक्त व्यञ्जन त्स के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति नहीं होने की दशा मे अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर भी र' की प्राप्ति नही होती है। जैसे—उत्साहः=उत्थारो और पक्षान्तर में उच्छाहो। यो रूप-भिन्नता का स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥

उत्साह सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उत्थारो और उच्छाहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-सख्या २-४८ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; २ ४८ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर प्राप्त 'थ' का सनियोग होने से अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *उत्थारो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *उच्छाहो* की सिद्धि सूत्र-सख्या *१-११४* में की गई है ॥२-४८॥

आश्लिष्टे ल-धौ ॥२-४९॥

आश्लिष्टे संयुक्तयोर्यथासंख्यं ल ध इत्येतौ भवतः ॥आलिद्धो ॥

अर्थ—सस्कृत शब्द 'आश्लिष्ट' मे रहे हुए प्रथम सयुक्त व्यञ्जन 'श्ल' के स्थान पर 'ल' होता है और द्वितीय सयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ध' होता है। यों दोनो सयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर यथा-क्रम से 'ल' की और 'ध' की प्राप्ति होती है। जैसे—आश्लिष्ट=आलिद्धो ॥

आश्लिष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आलिद्धो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-४९ से प्रथम सयुक्त व्यञ्जन 'श्ल' के स्थान पर ल' की प्राप्ति, २-४९ से ही द्वितीय सयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ध' की प्राप्ति, २ ८९ से प्राप्त 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आलिद्धो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-४९॥

चिन्हे न्धो वा ॥२-५०॥

चिन्हे संयुक्तस्य न्धो वा भवति ॥ ण्हापवादः ॥ पक्षे सो पि ॥ चिन्धं इन्धं चिण्हं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'चिह्न' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर विकल्प से 'न्ध' की प्राप्ति होती है। सूत्र संख्या २-७५ में यह बतलाया गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्राप्ति होती है। तदनुसार सूत्र-संख्या २-७५ की तुलना में सूत्र-संख्या २-५० को अपवाद रूप सूत्र माना जाय, ऐसा वृत्ति में उल्लेख किया गया है। वैकल्पिक पक्ष होने से तथा अपवाद रूप स्थिति की उपस्थिति होने से 'चिह्न' के प्राकृत रूप तीन प्रकार के हो जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं—चिह्नम्=चिन्धं अथवा इन्धं चिण्हं॥

चिह्नम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चिन्धं, इन्धं और चिण्हं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५० से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर विकल्प से 'न्ध' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *चिन्धं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *इन्धं* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

तृतीय रूप *चिण्हं* में सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *चिण्हं* भी सिद्ध हो जाता है। ॥२-५०॥

भस्मात्मनोः पो वा ॥२-५१॥

अनयोः संयुक्तस्य पो वा भवति॥ भप्पो भस्सो। अप्पा अप्पाणो। पक्षे अत्ता॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'भस्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे—(भस्मन् के प्रथमान्त रूप) भस्मा=भप्पो अथवा भस्सो॥ इसी प्रकार से संस्कृत शब्द 'आत्मा' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर भी विकल्प से 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे—(आत्मन् के प्रथमान्त रूप) आत्मा=अप्पा अथवा अप्पाणो। वैकल्पिक पक्ष होने से रूपान्तर में अत्ता भी होता है।

भस्मन् संस्कृत मूल रूप है। इसके प्राकृत रूप भप्पो और भस्सो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; १-३२ से 'भस्म' शब्द को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति होने से ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भप्पो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'म' का लोप; २-८९ से शेष 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *भस्सो* भी सिद्ध हो जाता है।

आत्मन् संस्कृत मूल शब्द है। इसके प्राकृत रूप अप्पा, अप्पाणो और अत्ता होते हैं। इनमें से

प्रथम रूप मे सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति, २-५१ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति, २-८६ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-४९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नकारान्त पुल्लिग में अन्त्य न' का लोप हो जाने पर एवं प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर शेष अन्तिम व्यञ्जन 'प' में वैकल्पिक रूप से आ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अप्पा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अप्पाणो में 'अप्प' पर्यन्त तो प्रथम रूप के समान ही सूत्र-साधनिका की प्राप्ति; और शेष 'आणो' में सूत्र-सख्या ३-५६ से वैकल्पिक रूप से 'आण' आदेश की प्राप्ति एव ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अप्पाणो* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप 'अत्ता' में सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से म्' का लोप, २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, और ३-४९ से (नकारान्त पुल्लिग शब्दों में स्थित अन्त्य 'न्' का लोप होकर) प्रथमा विभक्ति मे प्राप्त प्रत्यय 'सि' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *अत्ता* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५१॥

ड्म--क्मोः ॥ २--५२ ॥

ड्मक्मोः पो भवति ॥ कुड्मलम्। कुम्पलं। रुक्मिणी। रुप्पिणी॥ क्वचित् च्मोपि ॥ रुच्मी रुप्पी ॥

अर्थः—जिन सस्कृत शब्दोंमें संयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' अथवा 'क्म' रहा हुआ होता है, तो ऐसे शब्दो के प्राकृत रुपान्तर में इन संयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' अथवा 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे'—'ड्म' का उदाहरण—कुड्मलम्=कुम्पल ॥ 'क्म' का उदाहरण—रुक्मिणी=रुप्पिणी इत्यादि ॥ कभी कभी क्म के स्थान पर 'च्म' की प्राप्ति भी हो जाती है। जैसे.—रुक्मी=रुच्मी अथवा रुप्पी ॥

कुड्मलम् संस्कृत रुप है। इसका प्राकृत रूप कुम्पलं होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-५२ से सयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति, १-२६ से प्रथम आदि स्वर 'उ' पर अनुस्वार रूप आगम की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार को आगे 'प' वर्ण की स्थिति होने से पवर्ग के पञ्चमाक्षर रूप हलन्त 'म् की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कुम्पलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

रुक्मिणी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रुप्पिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति, और २-८६ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *रुप्पिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

रुक्मी संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप रुम्मी और रुप्पी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५२ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'म्म' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *रुम्मी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-५२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *रुप्पी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-५२॥

ष्प-स्पयोः फः ॥ २-५३ ॥

ष्प-स्पयोः फो भवति ॥ पुष्पम् । पुप्फं ॥ शष्पम् । सप्फं ॥ निष्पेषः । निप्फेसो ॥ निष्पावः । निप्फावो ॥ स्पन्दनम् । फन्दणं ॥ प्रतिस्पर्धिन् । पाडिप्फद्धी ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः । बुहप्फई बुहप्पई ॥ क्वचिन्न भवति ॥ निप्पहो । णिप्पु सणं । परोप्परम् ॥

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' अथवा 'स्प' होता है तो प्राकृत रूपान्तर में इन संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे-पुष्पम् = पुप्फं ॥ शष्पम् = सप्फं ॥ निष्पेषः = निप्फेसो ॥ निष्पावः = निप्फावो ॥ स्पन्दनम् = फन्दणं और प्रतिस्पर्धिन् = पाडिप्फद्धी ॥ 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से किसी किसी शब्द में 'ष्प' अथवा 'स्प' के होने पर भी इन संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। जैसे-बृहस्पतिः = बुहप्फई अथवा बुहप्पई ॥ किसी किसी शब्द में तो संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' और 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे-निष्प्रभः = निप्पहो ॥ निष्पुंसनम् = णिप्पुंसणं ॥ परस्परम् = परोप्परं ॥ इत्यादि ॥

पुप्फं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२३६* में की गई है।

शष्पम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सप्फं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सप्फं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्पेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्फेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्फेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्पावः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्फावो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त

पूर्व 'फ' को 'प' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्फावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पन्दनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फन्दणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति, १-२२८ से द्वितीय 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *फन्दणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाडिप्फद्धी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४४ में की गई है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बुहप्फई और बुहप्पई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *बुहप्फई* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति, २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति और शेष साधनिका का प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *बुहप्पई* भी सिद्ध हो जाता है।

निष्प्रभः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्पहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्पहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्पुंसनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णिप्पुंसणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-२२८ से दोनों 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णिप्पुंसणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

परोप्परं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६२ में की गई है ॥२-५३॥

भीष्मे ष्मः ॥ २-५४ ॥

भीष्मे ष्मस्य फो भवति ॥ भिप्फो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'भीष्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे—भीष्मः=भिप्फो॥

भीष्मः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भिप्फो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति २-५४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फफ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिप्फो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-५४॥

श्लेष्मणि वा ॥ २-५५ ॥

श्लेष्म शब्दे ष्मस्य फो वा भवति ॥ सेफो सिलिम्हो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'श्लेष्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर विकल्प से 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे—श्लेष्मा=सेफो अथवा सिलिम्हो॥

श्लेष्मा संस्कृत (श्लेष्मन्) का प्रथमान्त रूप है। इसके प्राकृत रूप सेफो और सिलिम्हो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' को 'स्' की प्राप्ति; २-५५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर विकल्प से 'फ' की प्राप्ति; १-११ से मूल शब्द में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; १-३२ से मूल शब्द 'नकारान्त' होने से मूल शब्द को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और तदनुसार ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सेफो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से 'श्ले' में स्थित दीर्घ स्वर 'ए' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होने से 'श्लि' हुआ; २-१०६ से हलन्त व्यञ्जन 'श' में 'इ' आगम रूप स्वर की प्राप्ति होने से 'शिलि' रूप हुआ; १-२६० से 'श' का 'स' होने से 'सिलि' की प्राप्ति, २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सिलिम्हो* भी सिद्ध हो जाता है॥२-५५॥

ताम्राम्रे म्बः ॥ २-५६ ॥

अनयोः संयुक्तस्य मयुक्तो बो भवति ॥ तम्बं । अम्बं ॥ अम्बिर तम्बिर इति देश्यौ ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'ताम्र' और 'आम्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'म्र' के स्थान पर 'म्ब' की प्राप्ति होती है। जैसे ताम्रम्=तम्बं और आम्रम्=अम्बं॥ देशज बोली में अथवा ग्रामीण बोली में ताम्र का तम्बिर और आम्र का अम्बिर भी होता है।

तम्वं और अम्वं रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-८४ में की गई है। अम्बिर और तम्बिर रूप देशज हैं, तदनुसार देशज शब्दों की साधनिका प्राकृत भाषा के नियमों के अनुसार नहीं की जा सकती है। ॥ २-५६ ॥

ह्वो भो वा ॥ २-५७ ॥

ह्वस्य भो वा भवति ॥ जिब्भा जीहा ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द में 'ह्व' हो तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसे—जिह्वा = जिब्भा अथवा जीहा ॥

जिह्वा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जिब्भा और जीहा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५७ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भ् भ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *जिब्भा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-९२ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और २-७९ से 'व्' का लोप होकर *जीहा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-५७ ॥

वा विह्वले वौ वश्च ॥ २-५८ ॥

विह्वले ह्वस्य भो वा भवति। तत्सन्नियोगे च विशब्दे वस्य वा भो भवति ॥ भिब्भलो विब्भलो विहलो ॥

अर्थः—संस्कृत विह्वल शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। इसी प्रकार से जिस रूप में 'ह्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति होगी, तब आदि वर्ण 'वि' में स्थित 'व्' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसे—विह्वल = भिब्भलो अथवा विब्भलो और विहलो।

विह्वल संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप भिब्भलो; विब्भलो और विहलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५८ से संयुक्त 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भ् भ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त, पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति, २-५८ की वृत्ति से आदि में स्थित 'वि' के 'व्' को आगे 'भ' की उपस्थिति होने के कारण से विकल्प से 'भ्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भिब्भलो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में २-५८ की वृत्ति से वैकल्पिक पक्ष होने के कारण आदि वर्ण 'वि' को 'भि' की

प्राप्ति नहीं होकर 'वि' ही कायम रहकर और शेष साधनिका प्रथम रूप के सामान ही होकर द्वितीय रूप *विम्भओ* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहओ* रूप भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५८॥

वोर्ध्वे ॥२-५९॥

ऊर्ध्व शब्दे संयुक्तस्य भो भवति ॥ उब्भं उद्धं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'ऊर्ध्व' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसे-ऊर्ध्वम्=उब्भं अथवा उद्धं ॥

ऊर्ध्वम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उब्भं और उद्धं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से आदि में स्थित दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति २-५९ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भभ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति २-७९ से रेफ रूप 'र्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *उब्भं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' और 'व' दोनों का लोप २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *उद्धं* भी सिद्ध हो जाता है।

कश्मीरे म्भो वा ॥२-६०॥

कश्मीर शब्दे संयुक्तस्य म्भो वा भवति ॥ कम्भारा कम्हारा ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'कश्मीर' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर विकल्प से 'म्भ' की प्राप्ति होती है। जैसे—कश्मीरा=कम्भारा अथवा कम्हारा ॥

कश्मीरा—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कम्भारा और कम्हारा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६० से संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर विकल्प से 'म्भ' की प्राप्ति; १-१०० से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्तिम ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कम्भारा* सिद्ध हो जाता है।

कम्हारा की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०० में की गई है ॥२-६०॥

न्मो मः ॥२-६१॥

न्मस्य मो भवति ॥ अधोलोपापवादः ॥ जम्मो । वम्महो । मम्मणं ॥

अर्थ.—जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' होता है, तो ऐसे संस्कृत शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में उस संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति होती है। सूत्र-संख्या २-७८ में बतलाया गया है कि अधो रूप से स्थित अर्थात् वर्ण में परवर्ती रूप से संलग्न हलन्त 'न्' का लोप होता है। जैसे-लग्नः=लग्गो। इस उदाहरण में 'ग' वर्ण में परवर्ती रूप से संलग्न हलन्त 'न्' का लोप हुआ है, जबकि इस सूत्र-संख्या २-६१ में बतलाते हैं कि यदि हलन्त 'न्' परवर्ती नहीं होकर पूर्व वर्ती होता हुआ 'म' के साथ में संलग्न हो; तो ऐसे पूर्ववर्ती हलन्त 'न्' का भी (केवल 'म' वर्ण के साथ में होने पर ही) लोप हो जाया करता है। तदनुसार इस सूत्र संख्या २-६१ को आगे आने वाले सूत्र संख्या २-७८ का अपवाद रूप सूत्र माना जाय। जैसा कि ग्रंथकार 'अधोलोपापवाद' शब्द द्वारा कहते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—जन्मन्=जम्मो ॥ मन्मथः = वम्महो और मन्मनम् = मम्मण ॥ इत्यादि ॥

जम्मो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११ में की गई है।

वम्महो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२४२ में की गई है।

मन्मनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मम्मण होता है। इसमें सूत्र संख्या २-६१ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर *मम्मणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-६१ ॥

ग्मो वा ॥२-६२॥

ग्मस्य मो वा भवति ॥ युग्मम् । जुम्मं जुग्गं ॥ तिग्मम् । तिम्मं तिग्गं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द में यदि 'ग्म' रहा हुआ हो तो उसके प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति होती है। जैसे—युग्मम्=जुम्मं अथवा जुग्गं और तिग्मम्=तिम्म अथवा तिग्ग ॥ इत्यादि ॥

युग्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जुम्म और जुग्ग होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज', २-६२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त

नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जुम्मं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' २-७८ से 'म्' का लोप २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *जुग्गं* भी सिद्ध हो जाता है।

तिग्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तिम्मं और तिग्गं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *तिम्मं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *तिग्गं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-६२॥

ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य-शौण्डीर्ये र्यो रः ॥२-६३॥

एषु र्यस्य रो भवति। जापवादः॥ बम्हचेरं॥ चौर्य समत्वाद् बम्हचरिअं। तूरं। सुन्देरं। सोंडीरं॥

अर्थ—संस्कृत शब्द ब्रह्मचर्य, तूर्य, सौन्दर्य और शौण्डीर्य में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है। सूत्र संख्या २-२४ में कहा गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति होती है, जबकि इस सूत्र संख्या २-६३ में विधान किया गया है कि ब्रह्मचर्य आदि इन चार शब्दों में स्थित 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है जैसे | ब्रह्मचर्यम्=बम्हचेरं। तूर्यम्=तूरं। सौन्दर्यम्=सुन्दरं और शौण्डीर्यम्=सोंडीरं॥ सूत्र-संख्या २-१०७ के विधान से अर्थात् 'चौर्य-सम' आदि के उल्लेख से ब्रह्मचर्यम् का वैकल्पिक रूप से 'बम्हचरिअं' भी एक प्राकृत रूपान्तर होता है।

बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५९ में की गई है।

ब्रह्मचर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बम्हचरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से आदि अथवा प्रथम 'र्' का लोप २-७४ से 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति २-१०७ से 'र्य' में स्थित 'र्' में 'इ' रूप आगम की प्राप्ति १-१७७ से 'य' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बम्हचरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तूर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तूरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६३ से संयुक्त

व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तूरं रूप सिद्ध हो जाता है।

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ में की गई है।

शौण्डीर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोण्डीरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स', १-१५९ से दीर्घ स्वर 'औ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ओ' की प्राप्ति, २-६३ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोण्डीरं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-६३॥

धैर्ये वा ॥ २-६४ ॥

धैर्ये र्यस्य रो वा भवति ॥ धीरं धिज्जं ॥ सूरो सुज्जो इति तु सूर-सूर्य-प्रकृति-भेदात् ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'धैर्य' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर विकल्प से 'र' की प्राप्ति होती है। जैसे-धैर्यम्=धीरं अथवा धिज्जं ॥ संस्कृत शब्द 'सूर्य' के प्राकृत रूपान्तर 'सूरो' और 'सुज्जो' यों दोनों रूप नहीं माने जांय। किन्तु एक ही रूप 'सुज्जो' ही माना जाय ॥ क्योंकि प्राकृत रूपान्तर 'सूरो' का संस्कृत रूप 'सूर' होता है और 'सूर्य' का 'सुज्जो ॥ यों शब्द-भेद से अथवा प्रकृति-भेद से सूरो और सुज्जो रूप होते हैं, यह ध्यान में रखना चाहिये ॥

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूपान्तर धीरं और धिज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *धीरं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५५ में की गई है।

द्वितीय रूप धिज्जं में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर (अर्थात् 'ऐ' का पूर्व रूप=अ+इ)='इ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *धिज्जं* भी सिद्ध हो जाता है।

सूरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर सूरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सूरो रूप सिद्ध हो जाता है।

सूर्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९

से प्राप्त, 'अ' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *पुज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-६४॥

एत पर्यन्ते ॥२-६५॥

पर्यन्ते एकारात् परस्य र्यस्य रो भवति ॥ पेरन्तो ॥ एत इति किम् । पज्जन्तो ॥

अर्थ—संस्कृत-शब्द पर्यन्त में सूत्र-संख्या १-५८ से 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति होने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है। जैसे—पर्यन्त=पेरन्तो ॥

प्रश्न—पर्यन्त शब्द में स्थित 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति होने पर ही संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है-ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—यदि पर्यन्त शब्द में स्थित 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति नहीं होती है तो संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति नहीं होकर 'ज्ज' की प्राप्ति होती है। अतः संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति तभी होती है, जबकि प्रथम वर्ण 'प' में 'ए' की प्राप्ति हो अन्यथा नहीं। ऐसा स्वरूप विशेष समझाने के लिये ही 'एत' का विधान करना पड़ा है। पक्षान्तर का उदाहरण इस प्रकार है—पर्यन्तः=पज्जन्तो ॥

पेरन्तो और *पज्जन्तो* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५८ में की गई है ॥२-६५॥

आश्चर्ये ॥ २-६६ ॥

आश्चर्ये एतः परस्य र्यस्य रो भवति ॥ अच्छेरं ॥ एत इत्येव । अच्छरिअं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'आश्चर्य' में स्थित 'श्च' व्यञ्जन में रहे हुए 'अ' स्वर को 'ए' की प्राप्ति होने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है। जैसे—आश्चर्यम्=अच्छेरं ॥

प्रश्न—'श्च' व्यञ्जन में स्थित 'अ' स्वर को 'ए' की प्राप्ति होने पर ही 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—यदि 'श्च' के 'अ' को 'ए' की प्राप्ति नहीं होती है तो 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति नहीं होकर 'रिअ' की प्राप्ति होती है। जैसे—आश्चर्यम्=अच्छरिअं ॥

अच्छेरं और *अच्छरिअं* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५८ में की गई है ॥२-६६॥

अतो रिआर-रिज्ज रीअं ॥२-६७॥

आश्चर्ये अकारात् परस्य र्यस्य रिअ अर रिज्ज रीअ इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ अच्छरिअं अच्छअरं अच्छरिज्जं अच्छरीअं ॥ अत इति किम् । अच्छेरं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'आश्चर्य' में स्थित 'श्च' के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'च्छ' में रहे हुए 'अ' को यथा-स्थिति प्राप्त होने पर अर्थात् 'अ' स्वर का 'अ' स्वर ही रहने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर क्रम से चार आदेशो की प्राप्ति होती है। वे क्रमिक आदेश इस प्रकार है: —'रिअ', 'अर' 'रिज्ज', और रीअ ॥ इनके क्रमिक उदाहरण इस प्रकार है -आश्चर्यम् = अच्छरिअं अथवा अच्छअरं अथवा अच्छरिज्जं और अच्छरीअं ॥

प्रश्न—'श्च' के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'च्छ' में स्थित 'अ' स्वर को यथा-स्थिति प्राप्त होने पर अर्थात् 'अ' का 'अ' ही रहने पर 'र्य' के स्थान पर इन उपरोक्त चार आदेशो को प्राप्ति होती है ऐसा क्यो कहा गया है ?

उत्तर.—यदि उपरोक्त 'च्छ' मे स्थित 'अ' को 'ए' की प्राप्ति हो जाती है; तो संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर ऊपर वर्णित एवं क्रम से प्राप्त होने वाले चार आदेशो की प्राप्ति नहीं होगी। यों प्रमाणित होता है कि चार आदेशों की क्रमिक प्राप्ति 'अ' की यथा स्थिति बनी रहने पर ही होती है, अन्यथा नहीं। पक्षान्तर में वर्णित 'च्छ' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति हो जाती है, तो संस्कृत शब्द आश्चर्यम् का एक अन्य ही प्राकृत रूपान्तर हो जाता है। जो कि इस प्रकार है.— *आश्चर्यम् = अच्छेरं* ॥

अच्छरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ मे की गई है।

अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं, और *अच्छेरं* रूपो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५८ में की गई है ॥ २-६७ ॥

पर्यस्त-पर्याण-सौकुमार्ये ल्लः ॥२-६८॥

एषु र्यस्य ल्लो भवति ॥ पर्यस्तं पल्लटं पल्लत्थं। पल्लाणं। सोअमल्लं ॥ पल्लङ्को इति च पल्यंक शब्दस्य यलोपे द्वित्वे च ॥ पलिअङ्को इत्यपि। चौर्य समत्वात् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द पर्यस्त' 'पर्याण' और 'सौकुमार्य' मे रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होती है। जैसे -पर्यस्तम्=पल्लट्टं अथवा पल्लत्थं ॥ पर्याणम्=पल्लाणं ॥ सौकुमार्यम्=सोअमल्लं ॥ संस्कृत शब्द पल्यङ्क का प्राकृत रूप पल्लङ्को होता है। इसमें संयुक्त व्यञ्जन 'ल्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति नहीं हुई है। किन्तु सूत्र संख्या २-७८ के अनुसार 'य्' का लोप और २-८९ के अनुसार शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *पल्लङ्को* रूप बनता है। सूत्रान्तर की साधनिका से पल्यङ्क का द्वितीय रूप *पलिअङ्को* भी होता है। 'चौर्य समत्वात्' से सूत्र संख्या २-१०७ का तात्पर्य है। जिसके विधान के अनुसार संस्कृत रूप 'पल्यङ्क' के प्राकृत रूपान्तर में हलन्त 'ल्' व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' स्वर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति के प्रति सूत्र संख्या का ध्यान रखना चाहिये। ऐसा ग्रंथकार का आदेश है।

पर्यस्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूपान्तर पल्लट्टं और पल्लत्थं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति, २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ट' का द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त म् का अनुस्वार होकर प्रथम रूप पल्लट्टं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप पल्लत्थं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४७ में की गई है। अन्तर इतना सा है कि वहां पर पल्लत्थो रूप पुल्लिंग में दिया गया है। एवं यहां पर पल्लत्थं रूप नपुंसक लिंग में दिया गया है। इसका कारण यह है कि यह शब्द विशेषण है और विशेषण-वाचक शब्द तीनों लिंगों में प्रयुक्त हुआ करते हैं। पल्लाणं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२५२ में की गई है।

सोअमल्लं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०७ में की गई है।

पर्यंकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पल्लंको और पलिअंको भी होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर पल्लंको रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (पर्यंक)=पलिअंको में सूत्र-संख्या २-१०७ से हलन्त व्यञ्जन 'ल' में 'य' वर्ण आगे रहने से आगम रूप 'इ' स्वर की प्राप्ति १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप पलिअंको भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-६८ ॥

बृहस्पति-वनस्पत्योः सो वा ॥ २-६९ ॥

अनयोः संयुक्तस्य सो वा भवति ॥ बहस्सई बहप्फई ॥ भयस्सई ॥ भयप्फई ॥ वणस्सई वणप्फई ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द बृहस्पति और वनस्पति में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर विकल्प से 'स' की प्राप्ति हुआ करती है। विकल्प से कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्र संख्या २-५३ में ऐसा विधान कर दिया गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। किन्तु यहाँ पर पुनः उसी संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति का उल्लेख करते हैं, अतः वदतो वचन-व्याघात के दोष से सुरक्षित रहने के लिये मूल-सूत्र में विकल्प अर्थ वाचक 'वा' शब्द का कथन करना पड़ा है। यह ध्यान में रखना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं—बृहस्पति = बहस्सई अथवा बहप्फई और भयस्सई अथवा भयप्फई ॥ वनस्पति = वणस्सई अथवा वणप्फई ॥

बृहस्पति संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहस्सई और बहप्फई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-६६ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *बहस्सई* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *बहप्फई* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३८ मे की गई है।

बृहस्पति संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भयस्सई और भयप्फई होते है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-१३७ से प्राप्त बह' के स्थान पर विकल्प से 'भय' की प्राप्ति,२-६६ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की विकल्प से प्राप्ति;२-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भयस्सई* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (बृहस्पति =) भयप्फई में सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-१३७ से प्राप्त 'बह' के स्थान पर विकल्प से 'भय' की प्राप्ति, २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति, २-९० प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर इ' को दीर्घ-'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *भयप्फई* भी सिद्ध हो जाता है।

वनस्पति संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वणस्सई और वणप्फई होते हैं। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', २-६६ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प के स्थान पर विकल्प से 'स की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वणस्सई* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (वनस्पतिः=) वणप्फई में सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' का 'ण', २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *वणप्फई* सिद्ध हो जाता है ॥ २-६९ ॥

बाष्पे हो श्रुणि ॥ २-७० ॥

बाष्प शब्दे संयुक्तस्य हो भवति अश्रुण्यभिधेये ॥ बाहो नेत्र-जलम् ॥ अश्रुणीति किम् ॥ बप्फो ऊष्मा ॥

अर्थ —यदि संस्कृत शब्द 'बाष्प' का अर्थ आँसू वाचक हो तो ऐसी स्थित में 'बाष्प' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होता है। जैसे —बाष्पः=बाहो अर्थात आँखों का पानी आँसू ॥

प्रश्न—अश्रु वाचक स्थिति में ही बाष्प शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं, ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—संस्कृत शब्द 'बाष्प' के दो अर्थ होते हैं प्रथम तो आँसू और द्वितीय भाप। तदनुसार अर्थ-भिन्नता से रूप-भिन्नता भी हो जाती है। अतएव 'बाष्प शब्द के आँसू अर्थ में प्राकृत रूप बाहो होता है और भाफ अर्थ में प्राकृत रूप बप्फो होता है। यों रूप भिन्नता समझाने के लिये ही संयुक्त-व्यञ्जन 'ष्प के स्थान पर 'ह होता है ऐसा स्पष्ट उल्लेख करना पड़ा है। यों तात्पर्य विशेष को समझ लेना चाहिये। बाष्प' (आँसू) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बाहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७० से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प के स्थान पर ह की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर बाहो रूप सिद्ध हो जाता है।

बाष्प (भाफ) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बप्फो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'फ को द्वित्व 'फफ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ् का 'प् की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर बप्फो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-७० ॥

कार्षापणे ॥ २–७१ ॥

कार्षापणे संयुक्तस्य हो भवति ॥ काहावणो। कथं कहावणो। ह्रस्वः संयोगे (१-८४) इति पूर्वमेव ह्रस्वत्वे पश्चादादेशे। कर्षापण शब्दस्य वा भविष्यति ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'कार्षापण में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर ह की प्राप्ति होती है। जैसे—कार्षापणः=काहावणो ॥

प्रश्न—प्राकृत रूप कहावणो की प्राप्ति किस शब्द से होती है ?

उत्तर—संस्कृत शब्द 'कार्षापण' में सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर अ की प्राप्ति होने से 'कहावणो रूप बन जाता है। इसी प्रकार से काहावणो रूप माना जाय तो प्राप्त ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर पुनः 'आ स्वर रूप आदेश की प्राप्ति हो जायगी।

और काहावणो रूप सिद्ध हो जायगा ॥ अथवा मूल शब्द 'कर्षापण' माना जाय तो इसका प्राकृत रूपान्तर 'कहावणो' हो जायगा; यों 'कार्षापण' से 'काहावणो' और कर्षापण.' से 'कहावणो' रूपों की स्वयमेव सिद्धि हो जायगी।

कार्षापणः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप काहावणो और कहावणो होते हैं; इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७१ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *काहावणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कर्षापण.) कहावणो में सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *कहावणो* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-७१॥

दुःख-दक्षिण-तीर्थे वा ॥२-७२॥

एषु संयुक्तस्य हो वा भवति ॥ दुहं दुक्खं। पर-दुक्खे दुक्खिआ विरला। दाहिणो दक्खिणो। तूहं तित्थं ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'दुःख', 'दक्षिण' और तीर्थ में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ख', 'क्ष' और 'र्थ' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है-दुःखम्=दुहं अथवा दुक्खं ॥ पर-दुःखे दुःखिता विरला.=पर-दुक्खे दुक्खिआ विरला ॥ इस उदाहरण में संयुक्त व्यञ्जन 'ख' के स्थान पर वैकल्पिक-स्थिति की दृष्टि से 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति नहीं करके जिव्हा-मूलीय चिन्ह का लोप सूत्र-संख्या २-७७ से कर दिया गया है। शेष उदाहरण इस प्रकार है—दक्षिणः=दाहिणो अथवा दक्खिणो ॥ तीर्थम् = तूहं अथवा तित्थं ॥

दुःखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुहं और दुक्खं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७२ से संयुक्त व्यञ्जन-(जिव्हा मूलीय चिन्ह सहित) 'ख' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप दुहं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (दुःखम्=) दुक्खं में सूत्र-संख्या २-७७ से जिव्हा मूलीय चिह्न 'ᳵ' का लोप, २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही हो कर द्वितीय रूप दुक्खं भी सिद्ध हो जाता है।

पर-दुःखे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप पर-दुक्खे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से जिव्हा मूलीय चिह्न 'ᳵ' का लोप, २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त

पूर्व 'ख' को 'क' की प्राप्ति और ४-११ से मूल रूप 'तुम्ह' में सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पर-दुक्खे रूप सिद्ध हो जाता है।

दुःखिताः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप दुक्खिआ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से जिह्वा मूलीय चिह्न 'ᳵ' का लोप; २-८९ से 'ख' का द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से लुप्त 'जस्' में से शेष रहे हुए (मूल रूप अकारान्त होने से) ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *दुक्खिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विरलाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विरला होता है। यह मूल शब्द 'विरल' होने से अकारान्त है। इस में सूत्र-संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग अकारान्त में प्राप्त जस् प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त जस् प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति हो कर *विरला* रूप सिद्ध हो जाता है।

दाहिणो और दक्खिणो रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४५ में की गई है।

तूहं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०४ में की गई है।

तित्थं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है। ॥ २-७२ ॥

कूष्माण्ड्यां ष्मो लस्तु ण्डो वा ॥२-७३॥

कूष्माण्ड्यां ष्मा इत्येतस्य हो भवति। ण्ड इत्यस्य तु वा लो भवति ॥ कोहली कोहण्डी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द कूष्माण्डी में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्मा' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति होती है तथा द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ण्ड' के स्थान पर विकल्प से 'ल' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कूष्माण्डी = कोहली अथवा कोहण्डी ॥ वैकल्पिक पक्ष होने से प्रथम रूप में 'ण्ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति हुई है और द्वितीय रूप में 'ण्ड' का 'ण्ड' ही रहा हुआ है। यों स्वरूप भेद जान लेना चाहिये ॥

कोहली और कोहण्डी रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२४ में की गई है। ॥ २-७३ ॥

पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः ॥ २-७४ ॥

पक्ष्म शब्द सम्बन्धिनः संयुक्तस्य श्मष्मस्मह्मां च मकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति ॥ पक्ष्मन्। पम्हाइं। पम्हल-लोअणा ॥ श्म। कुश्मान। कुम्हाणो ॥ कश्मीराः। कम्हारा ॥ ष्म। ग्रीष्म। गिम्हो। उष्मा। उम्हा ॥ स्म। अस्मादृशः। अम्हारिसो। विस्मय। विम्हओ ॥ ह्म। ब्रह्मा। बम्हा ॥ सुह्मा। सुम्हा ॥ बम्हणो। बम्हचेरं ॥

क्वचित् म्भोपि दृश्यते। बम्भणो। बम्भचेरं सिम्भो। क्वचिन्न भवति। रश्मिः। रस्सो। स्मरः। सरो॥

अर्थ.—संस्कृत शब्द 'पद्म' मे स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'द्म' के स्थान पर हलन्त 'म्' सहित 'ह' का अर्थात् 'म्ह' का आदेश होता है। जैसे — पद्माणि=पम्हाइं॥ इसी प्रकारसे यदि किसी संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' 'ष्म'; स्म' अथवा 'ह्म' रहा हुआ हो तो ऐसे संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर मे हलन्त व्यञ्जन 'म्' सहित 'ह' का अर्थात 'म्ह' का आदेश हुआ करता है। 'द्म' का उदाहरण –पद्मल–लोचना=पम्हल-लोअणा॥ 'श्म' के उदाहरण:—कुश्मान=कुम्हाणो॥ कश्मीरा = कम्हारा॥ 'ष्म' के उदाहरण: ग्रीष्मः=गिम्हो॥ ऊष्मा = उम्हा॥ 'स्म' के उदाहरण.—अस्मादृशः= अम्हारिसो॥ विस्मय =विम्हओ॥ 'ह्म' के उदाहरण —ब्रह्मा. = बम्हा॥ सुह्मः = सुम्हा.॥ ब्राह्मण.= बम्हणो॥ ब्रह्मचर्यम्= बम्हचेर॥ इत्यादि॥ किसी किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' अथवा 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति नहीं होकर 'म्भ' की प्राप्ति होती हुई भी देखी जाती है। जैसे:—ब्राह्मण,= बम्भणो॥ ब्रह्मचर्यम् = बम्भचेर॥ श्लेष्मा=सिम्भो॥ किसी किसी शब्द मे संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' अथवा 'स्म' के स्थान पर न तो 'म्ह' की प्राप्ति ही होती है और न 'म्भ' की प्राप्ति ही होती है। उदाहरण इस प्रकार है.— रश्मि =रस्सी और स्मर =सरो॥ यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये॥

पक्ष्माणि संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप पम्हाइं होता है। इसमें सूत्र-संख्या- २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति, और ३-२६ से प्रथमा अथवा द्वितीया विभक्ति के बहु वचन में नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'णि' के स्थान पर प्राकृत मे 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *पम्हाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पक्ष्मल-लोचना संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप पम्हल-लोअणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति, १-१७७ से 'च्' का लोप और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *पम्हल-लोअणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुश्मान संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप कुम्हाणो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर 'म्ह' का आदेश, १-२२८ से न का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुम्हाणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कम्हारा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०० में की गई है।

ग्रीष्म संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिम्हो होता है। इस में सूत्र संख्या–२-७९ से 'र्' का लोप, १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थन पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त-पुल्लिंग में

'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गिम्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊष्मा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उम्हा होता है। इस में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, और २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति हो कर *उम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कम्हारिसो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४२ में की गई है।

विस्मयः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप विम्हओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति, १-१७७ से 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विम्हओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ब्रह्मा संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप बम्हा होता है। इस में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति होकर *बम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुह्माः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुम्हा होता है।

इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति' ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' स्वर को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सुम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बम्हणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है।

बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५९ में की गई है।

ब्राह्मणः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बम्हणो के अतिरिक्त) बम्मणो भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्म' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बम्मणो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

ब्रह्मचर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बम्हचेरं के अतिरिक्त) बम्मचेरं भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्म' आदेश की प्राप्ति १-५९ से 'च' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति २-७८ से 'य्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'

प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वम्भवेरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लेष्मा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिम्भो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', १-८४ से दीर्घ स्वर (अ + इ)= ए' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्भ' आदेश की प्राप्ति, १-११ से संस्कृत मूल शब्द 'श्लेष्मन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में (प्राप्त रूप सिम्भ में)-'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रस्सी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३५ में की गई है।

स्मर संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७४॥

सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः ॥२-७५॥

सूक्ष्म शब्द संबन्धिनः संयुक्तस्य श्नष्णस्नह्नह्णक्ष्णां च णकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति ॥ सूक्ष्मं । सण्हं ॥ श्न । पण्हो । सिण्हो ॥ ष्ण । विण्हू । जिण्हू ।कण्हो । उण्हीसं ॥ स्न । जोण्हा । ण्हाओ । पण्हुओ ॥ ह्न । वण्ही । जण्हू ॥ ह्ण । पुव्वण्हो । अवरण्हो ॥ क्ष्ण । सण्हं । तिण्हं ॥ विप्रकर्षे तु कृष्ण कृत्स्न शब्दयोः कसणो । कसिणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'सूक्ष्म' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' के स्थान पर 'ण्' सहित 'ह' का अर्थात् 'ण्ह' का आदेश होता है। जैसे —सूक्ष्मम्=सण्ह ॥ इसी प्रकार से जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'श्न', 'ष्ण', 'स्न', 'ह्न' ह्ण', अथवा 'क्ष्ण' रहे हुए होते हैं, तो ऐसे संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'ण्' सहित 'ह' का अर्थात् 'ण्ह' का आदेश होता है। जैसे—'श्न' के उदाहरण –प्रश्न =पण्हो । शिश्नः= सिण्हो ॥ 'ष्ण' के उदाहरण —विष्णु =विण्हू । जिष्णु =जिण्हू । कृष्ण =कण्हो । उष्णीषम्=उण्हीस ॥ 'स्न' के उदाहरण —ज्योत्स्ना=जोण्हा । स्नात =ण्हाओ । प्रस्नुत =पण्हुओ ॥ 'ह्न' के उदाहरण —वह्नि =वण्ही जह्नु =जण्हू ॥ 'ह्ण' के उदाहरण -पूर्वाह्ण =पुव्वण्हो । अपराह्ण =अवरण्हो ॥ 'क्ष्ण' के उदाहरण- श्लक्ष्णम् = सण्ह । तीक्ष्णम् = तिण्हं ॥

संस्कृत-भाषा में कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनमें संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' रहा हुआ हो, तो भी प्राकृत रूपान्तर में ऐसे संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' के स्थान पर इस सूत्र-संख्या २-७५ से प्राप्तव्य 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति नहीं होती है। इस का कारण प्राकृत रूप का उच्चारण करते समय 'विप्रकर्ष' स्थिति है। व्याकरण में 'विप्रकर्ष' स्थिति उसे कहते हैं, जब कि शब्दों का उच्चारण करते समय अक्षरों के मध्य में 'अ' अथवा 'इ' अथवा 'उ' स्वरों में से किसी एक स्वर का 'आगम' हो जाता

हो एवं ऐसे आगम रूप स्वर की प्राप्ति हो जाने से बोला जाने वाला वह शब्द अपेक्षाकृत-कुछ अधिक लम्बा हो जाता है इससे उस शब्द रूप के निर्माण में ही कई एक विशेषताएं प्राप्त हो जाती हैं, तदनुसार उसकी साधनिका में भी अधिकृत-सूत्रों के स्थान पर अन्य ही सूत्र कार्य करने लग जाते हैं। 'विप्रकर्ष' पारिभाषिक शब्द के एकार्थक शब्द 'स्वर भक्ति' अथवा 'विश्लेष' भी हैं। इस प्रकार उच्चारण की दीर्घता से विचाव से—ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इसीलिये संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' के स्थान पर कभी कभी 'ण्ह' की प्राप्ति नहीं होती है। उदाहरण इस प्रकार हैं—कृष्ण = कसणो और कृत्स्न = कसिणो ॥ ऐसी स्थिति के उदाहरण अन्यत्र भी जान लेना चाहिये ॥

सण्हं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११८ में की गई है।

पण्हो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

शिश्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिण्हो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से प्रथम 'श' का 'स'; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विण्हू रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८५ में की गई है।

विष्णुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विण्हू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्णु' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *विण्हू* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृष्णः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कण्हो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर कण्हो रूप सिद्ध हो जाता है।

उष्णीषम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उण्हीसं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' का आदेश; १-२६० से 'ष' का 'स', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उण्हीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्ना संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोण्हा होता है।

इस में सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; २-७७ से 'त्' का लोप; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति हो कर *जोण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्नातः सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप ण्हाओ होता है।

इसमे सूत्र-संख्या २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति, १-१७७ से त् का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ण्हाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रस्नुत. सस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप पण्हुओ होता है। इस में सूत्र-संख्या -७६ से 'र्' का लोप, २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थानपर 'ण्ह आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वह्नि सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वण्हो होता है। इस में सूत्र-सख्या २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *वण्ही* रूप सिद्ध हो जाता है।

जह्नुः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जण्हू होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति, और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *जण्हू* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुव्वण्हो रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-६७ में की गई है।

अपराह्णः सस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप अवरण्हो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२३१ से 'प' का 'व', १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'ह्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवरण्हो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

श्लक्ष्णम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्हं होता है। इस मे सूत्र सख्या २-७९ से 'ल्' का लोप, १-२६० से 'श' का 'स', २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तीक्ष्णम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिण्हं होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तिण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छप्पओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६५ में की गई है।

कट्फलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कप्फलं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ट्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'फ' का द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कप्फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

धम्मो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

षड्जः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' का 'स', २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ड्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सज्जो रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पलम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पलं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर उप्पलम् रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पातः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पाओ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर उप्पाओ रूप सिद्ध हो जाता है।

मद्गुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मग्गू होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'द्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' वर्ण का द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर मग्गू रूप सिद्ध हो जाता है।

मोग्गरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ में की गई है।

सुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप सुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'प्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' वर्ण को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सुत्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

गुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गुत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'प्' वर्ण का लोप, २–८९ से शेष रहे हुए 'त' वर्ण को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३–२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लक्ष्णम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लण्हं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श' का लोप, २–७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति, ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ककारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णिच्चलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श्' वर्ण का लोप, २–८९ से शेष रहे हुए 'च' वर्ण को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णिच्चलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्चुतते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चुअइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श' वर्ण का लोप, १-१७७ से प्रथम 'त्' का लोप और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन मे संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चुअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गोष्ठी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गोट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ष्' वर्ण का लोप, २–८९ से शेष रहे हुए 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति और २–९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति होकर *गोट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

छट्टो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६५ में की गई है।

निट्ठुरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२५४ में की गई है।

स्खलितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खलिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'स्' वर्ण का लोप, १–१७७ से 'त् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खलिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्नेहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नेहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'स्' वर्ण का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृष्ण संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कसणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-११० से हलन्त 'ष्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्स्न संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कसिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-७७ से 'त्' का लोप; २-१०४ से हलन्त व्यञ्जन 'स' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसिणो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७५॥

ह्लो ल्हः ॥ २–७६ ॥

ह्लः स्थाने लकाराक्रान्तो हकारो भवति ॥ कल्हारं । पल्हाओ ॥

अर्थः—जिस संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' रहा हुआ होता है तो प्राकृत रूपान्तर में उस संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर हलन्त 'ल' सहित 'ह' अर्थात् 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—कह्लारम् = कल्हारं और प्रह्लादः = पल्हाओ ॥

कह्लारम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कल्हारं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कल्हारं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रह्लादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पल्हाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-७६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पल्हाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७६॥

क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-≍क-≍पामूर्ध्वं लुक् ॥२–७७॥

एषां संयुक्त वर्ण संबन्धिनामूर्ध्वं स्थितानां लुग् भवति ॥ क् । भुक्त । भुत्त ॥ ग् । दुग्ध । दुद्ध ॥ ट् । षट्पदः । छप्पओ ॥ कट्फलम् । कप्फलं ॥ ड् । खड्ग । खग्गो ॥ षड्ज । सज्जो ॥ त् । उप्पलं । उप्पाओ ॥ द् । मद्गुः । मग्गू । मोग्गरो ॥ प् । सुत्तो । गुत्तो ॥ श । लण्हं । णिच्चलो । चुअइ ॥ ष् । गोट्ठी । छट्ठो । निट्ठुरो ॥ स् । खलिओ । नेहो ॥ ≍ क् । दु≍खम् । दुक्खं ॥ ≍ प् । अंत≍पातः । अंतप्पाओ ॥

अर्थ.-किसी संस्कृत शब्द में यदि हलन्त रूप से क्, ग्, ट्, ड, त्, द्, प् श्, ष स, जिह्वामूलीय ≍क, और उपध्मानीय ≍ प्' मे से कोई भी वर्ण अन्य किसी वर्ण के साथ मे पहले रहा हुआ हो तो ऐसे पूर्वस्थ और हलन्त वर्ण का प्राकृत-रूपान्तर मे लोप हो जाता है। जैसे -'क्' के लोप के उदाहरण-भुक्तम्=भुत्त और सिक्थम् = सित्थ ॥ 'ग् के लोप के उदाहरण —दुग्धम्=दुद्ध और मुग्धम्=मुद्ध ॥ 'ट्' के लोप के उदाहरण -षट्पदः = छप्पओ और कट्फलम् = काफल ॥ 'ड्' के लोप के उदाहरण -खड्ग = खग्गो और षड्ज =सज्जो ॥ 'त् के लोप के उदाहरण -उत्पलम् = उप्पल और उत्पात. = उप्पाओ ॥ 'द्' के लोप के उदाहरण -मद्गु =मग्गू और मुद्गर =मोग्गरो ॥ 'प' के लोप के उदाहरण -सुप्त.=सुत्तो और गुप्त = गुत्तो ॥ 'श्' के लोप के उदाहरण -श्लक्ष्णम्=लण्ह, निश्चल =णिच्चलो और श्चुततें= चुअइ ॥ 'ष्' के लोप के उदाहरण -गोष्ठी=गोट्ठी, षष्ठ = छट्ठो और निष्ठुर =निट्ठुरो ॥ 'स्' के लोप के उदाहरण — स्खलित = खलिओ और स्नेह = नेहो ॥ "≍क्" के लोप का उदाहरण -दु≍खम् =दुक्ख और '≍प्' के लोप का उदाहरण -अत≍पात =अतपाओ ॥ इत्यादि अन्य उदाहरणों में भी उपरोक्त हलन्त एव पूर्व स्थ वर्णों के लोप होने के स्वरूप को समझ लेना चाहिये ॥

भुक्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भुत्त होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'क्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भुत्त* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिक्थम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सित्थं होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'क्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व थ्थ की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सित्थं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुग्धम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुद्ध होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ और हलन्त 'ग्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दुद्धं रूप सिद्ध हो जाता है।

मुग्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप मुद्ध होता है। इस में सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ और हलन्त 'ग्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार हो कर मुद्धं रूप सिद्ध हो जाता है।

कुप्पासो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७२ में की गई है।

कट्फलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कप्फलं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'द्' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'फ' का द्वित्व 'फ फ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कप्फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

सग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३४ में की गई है।

पद्म: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'प' का 'स', २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'द्' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सग्गो रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पलम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पलं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प प' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उप्पलम्* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पात: संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पाओ होता है। इस में सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *उप्पाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मद्गु: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मग्गू होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'द्' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' वर्ण का द्वित्व 'ग ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मग्गू* रूप सिद्ध हो जाता है।

मोग्गरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ में की गई है।

सुप्त: संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप सुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'प' वर्ण का लोप २-८९ से शेष रहे हुए 'त' वर्ण का द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गुत्तो होता है। इसमे सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'प्' वर्ण का लोप, २-८६ से शेप रहे हुए 'त' वण को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लक्ष्णम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लण्हं होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श' का लोप, २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ककारान्त नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चलः सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णिच्चलो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' का 'ण', २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'श्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेप रहे हुए 'च' वर्ण को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णिच्चलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्चुतते सस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चुअइ होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'श्' वर्ण का लोप, १-१७७ से प्रथम 'त्' का लोप और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में सस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चुअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गोष्ठी सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गोट्ठी होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'ष्' वर्ण का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति होकर *गोट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

छट्ठो रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२६५ में की गई है।

निट्ठुरो रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२५४ में की गई है।

स्खलित सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खलिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'स्' वर्ण का लोप, १-१७७ से 'त का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खलिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्नेहः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नेहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एव हलन्त 'स्' वर्ण का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुप्पसं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७२ में की गई है।

अंत⤫पात संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अंतप्पाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त उपध्मानीय वर्ण चिह्न ⤫ का लोप २-८९ से शेष रहे हुए प वर्ण को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अंतप्पाओ रूप की सिद्धि हो जाती है।२-७७

अधो मनयाम् ॥ २-७८ ॥

मनयां संयुक्तस्याधो वर्तमानानां लुग् भवति ॥ म । जुग्गं । रस्सी । सरो । सेरं ॥ न । नग्गो ॥ लग्गो । य । सामा । कुड्डं । वाहो ॥

अर्थ—यदि किसी संस्कृत शब्द में 'म' 'न' अथवा 'य' हलन्त व्यञ्जन वर्ण के आगे संयुक्त रूप से रहे हुए हों तो इनका लोप हो जाता है। जैसे—'म' वर्ण के लोप के उदाहरण—युग्मम्=जुग्गं ॥ रश्मि=रस्सी ॥ स्मर=सरो और स्मेरम्=सेरं ॥ 'न' वर्ण के लोप के उदाहरण—नग्न=नग्गो और लग्न=लग्गो। ॥ 'य' वर्ण के लोप के उदाहरण—श्यामा=सामा। कुड्यम्=कुड्डं और व्याध=वाहो ॥

जुग्गं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६२ में की गई है।

रस्सी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

सरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७४ में की गई है।

स्मेरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सेरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'म्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सेरं रूप सिद्ध हो जाता है।

नग्न संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से द्वितीय 'न्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लग्न संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप लग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है। *सामा* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६० में की गई है।

कुड्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुड्डं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का

लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कुड्डं रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याधः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-७८ ॥

सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे ॥ २-७९ ॥

वन्द्र शब्दादन्यत्र लबरां सर्वत्र संयुक्तस्योर्ध्वमधश्च स्थितानां लुग् भवति ॥ ऊर्ध्वं ॥ ल । उल्का । उक्का ॥ वल्कलम् । वक्कलं ॥ ब । शब्दः । सद्दो ॥ अब्दः । अद्दो ॥ लुब्धकः । लोद्धओ ॥ र । अर्कः । अक्को ॥ वर्गः । वग्गो । अधः । श्लक्ष्णम् । सण्हं ॥ विक्लवः । विक्कवो ॥ पक्वम् । पक्कं पिक्कं ॥ ध्वस्तः । धत्थो ॥ चक्रम् । चक्कं ॥ ग्रहः । गहो ॥ रात्रिः । रत्ती ॥ अत्र द्व इत्यादि संयुक्तानामुभयप्राप्तौ यथा दर्शनं लोपः ॥ क्वचिदूर्ध्वम् । उद्विग्नः । उव्विग्गो ॥ द्विगुणः । बि-उणो ॥ द्वितीयः । बीओ । कल्मषम् । कम्मसं ॥ सर्वम् । सव्वं ॥ शुल्वम् । सुब्वं ॥ क्वचित्त्वधः । काव्यम् । कव्वं ॥ कुल्या । कुल्ला ॥ माल्यम् । मल्लं ॥ द्विपः । दिओ ॥ द्विजातिः । दुआई । क्वचित्पर्यायेण । द्वारम् । वारं । दारं ॥ उद्विग्नः । उव्विग्गो । उव्विण्णो ॥ अवन्द्र इति किम् । वन्द्रं । संस्कृत समोयं प्राकृत शब्दः । अत्रोत्तरेण विकल्पोपि न भवति निषेध सामर्थ्यात् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'वन्द्र' को छोडकर के अन्य किसी संस्कृत शब्द में 'ल्', 'ब्'- (अथवा व्) और र्' संयुक्त रूप से-हलन्त रूप से- अन्यवर्ण के पूर्व में अथवा पश्चात् अथवा ऊपर, कहीं पर भी रहे हुए हो तो इन का लोप हो जाया करता है। वर्ण के पूर्व में स्थित हलन्त 'ल्' 'ब्' और 'र्' के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार है—सर्व प्रथम 'ल' के उदाहरणः—उल्का=उक्का और वल्कलम्=वक्कलं ॥ 'ब्' के लोप के उदाहरणः—शब्द =सद्दो और लुब्धक =लोद्धओ ॥ 'र्' के लोप के उदाहरण अर्कः=अक्को और वर्गः=वग्गो ॥ वर्ण के पश्चात् स्थित संयुक्त एवं हलन्त 'ल्' 'ब्' और 'र्' के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार है - सर्व प्रथम 'ल्' के उदाहरण श्लक्ष्णम्= सण्हं, विक्लव=विक्कवो ॥ व् के लोप के उदाहरण पक्वम्= पक्कं अथवा पिक्कं ॥ ध्वस्त= धत्थो ॥ 'र्' के लोप के उदाहरण चक्रम्= चक्कं, ग्रह= गहो और रात्रिः=रत्ती ॥

जिन संस्कृत-शब्दों में ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाता हो कि उनमें रहे हुए दो हलन्त व्यञ्जनों के लोप होने का एक साथ ही संयोग पैदा हो जाता हो तो ऐसी स्थिति में 'उदाहरण में' जिसका लोप होना

बतलाया गया हो दिखलाया गया हो उस हलन्त व्यञ्जन का लोप किया जाना चाहिये। ऐसी स्थिति में कभी कभी व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए संयुक्त हलन्त व्यञ्जन का लोप हो जाता है। कभी कभी व्यञ्जन के पश्चात् रहे हुए संयुक्त हलन्त व्यञ्जन का लोप होता है। कभी कभी उन लोप होने वाले दोनों व्यञ्जनों का लोप क्रमसे एवं पर्याय से भी होता है; यों पर्याय से क्रमसे-लोप होने के कारण से उन संस्कृत-शब्दों के प्राकृत में दो दो रूप हो जाया करते हैं। उपरोक्त विवेचन के उदाहरण इस प्रकार हैं- लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' के लोप के उदाहरण— उद्विग्नः=उव्विग्गो; द्विगुणः=बि उणो ॥ द्वितीयः बीओ। लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ल्' के लोप का उदाहरण— कल्मषम् कम्मसं ॥ इसी प्रकार से 'र्' के लोप का उदाहरण—सर्वम्=सव्वं ॥ पुनः 'ल्' का उदाहरण —शुल्बम्= सुब्बं ॥ लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पश्चात् स्थित हलन्त व्यञ्जन के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार हैं; 'य्' के लोप होने के उदाहरण—काव्यम्=कव्वं ॥ कुल्या=कुल्ला और माल्यम्=मल्लं ॥ 'व्' के लोप होने के उदाहरण—द्विपः=दिओ और द्विजातिः=दुआई ॥ लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से दोनों व्यञ्जनों का जिन शब्दों में पर्याय से लोप होता है उसके उदाहरण इस प्रकार हैं—द्वारम्=बारं अथवा दारं। इस उदाहरण में लोप होने योग्य 'द्' और 'व्' दोनों व्यञ्जनों का पर्याय से क्रम से दोनों प्राकृत रूपों में लुप्त होते हुए दिखलाये गये हैं इसी प्रकार से एक उदाहरण और दिया जाता है—उद्विग्नः=उव्विग्गो और उव्विण्णो ॥ इस उदाहरण में लोप होने योग्य 'ग्' और 'न्' दोनों व्यञ्जनों का पर्याय से -क्रम से—दोनों प्राकृत रूपों में लुप्त होते हुए दिखलाये गये हैं। यों अन्य उदाहरणों में भी लोप होने योग्य दोनों व्यञ्जनों की लोप स्थिति समझ लेना चाहिये।

प्रश्न— बन्द्र में स्थित संयुक्त और हलन्त 'द्' एवं 'र्' के लोप होने का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तर—संस्कृत शब्द 'बन्द्र' जैसा है वैसा ही रूप प्राकृत में भी होता है, किसी भी प्रकार का वर्ण विकार, लोप, आगम, आदेश अथवा द्वित्व आदि कुछ भी परिवर्तन प्राकृत-रूप में जब नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में 'जैसा संस्कृत में वैसा प्राकृत में' होने से उसमें स्थित 'द्' अथवा 'र्' के लोप का निषेध किया गया है और सूत्र में स्पष्टीकरण कर दिया गया है कि— यह प्राकृत शब्द बन्द्र संस्कृत शब्द बन्द्रम् के समान ही होता है।

बन्द्रम् शब्द के संबन्ध में यदि अन्य प्रश्न भी किया जाय तो भी उत्तर दिया जाय, ऐसा दूसरा कोई रूप पाया नहीं जाता है क्योंकि मूल-सूत्र में ही निषेध कर दिया गया है कि बन्द्रम् में स्थित हलन्त एवं संयुक्त 'द्' तथा 'र्' का लोप नहीं होता है; इस प्रकार निषेध-आज्ञा की प्रवृत्ति कर देने से—(निषेध सामर्थ्य के उपस्थित होने से)—किसी भी प्रकार का कोई भी वर्ण-विकार संबंधी नियम बन्द्रम् के संबंध में लागू नहीं पड़ता है।

उल्का संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उक्का होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ल' का लोप और २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' को प्राप्ति होकर *उक्का* रूप सिद्ध हो जाता है।

वल्कलम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वक्कल होता है इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'ल्' का लोप, २-८९ से शेष क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वक्कलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्दो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६० मे की गई है।

अब्द: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अद्दो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप, २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोद्धओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ मे की गई है।

अक्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

वग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

सण्ह रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७५ में की गई है।

विक्लवः संस्कृत विशेषण रूप है। इसक प्राकृत रूप विक्कवो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप, २-८९ से शेष 'क्' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विक्कवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पक्कं और पिक्कं दोनो रूपो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४७ में की गई है।

ध्वस्त संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से व् का लोप, २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चक्कं होता है। इस में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *चक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रह: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गहो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रात्रि: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप २-८९ से शेष 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *रत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्विग्न: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उव्विग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से शेष 'व्' को द्वित्व 'व्व्' की प्राप्ति २-७८ से 'न्' का लोप, २-८९ से शेष 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उव्विग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विगुण: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वि-उणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वि-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बीओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५ में की गई है।

कल्मषम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कम्मसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति १-२६० से 'ष' को 'स' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कम्मसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सव्वं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

शुल्वम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुव्वं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स्', २-७९ से 'ल्' का लोप, २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्राप्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कव्वं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'त्रा' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुल्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुल्ला होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप और २-८९ से शेष 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *कुल्ला* रूप सिद्ध हो जाता है।

माल्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से शेष 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९४ में की गई है।

दुआइ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९४ में की गई है।

बारं और दार दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७९ में की गई है।

उद्विग्न संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उव्विग्गो और उव्विण्णो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप उव्विग्गो की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप, २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति, २-७७ से 'ग्' का लोप, २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति, १-२२८ से दोनों 'न' के स्थान पर 'ण्ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उव्विण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्द्र रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५३ में की गई है ॥२-७९

द्रे रो न वा ॥२-८०॥

द्रशब्दे रेफस्य वा लुग् भवति ॥ चन्दो चन्द्रो । रुदो रुद्रो । भद्दं भद्रं । समुद्दो समुद्रो ॥ ह्रदशब्दस्य स्थितिपरिवृत्तौ द्रह इति रूपम् । तत्र द्रहो दहो । केचिद् रलोपं नेच्छन्ति । द्रह शब्द-मपि कश्चित् संस्कृतं मन्यते ॥ वोद्रहादयस्तु तरुणपुरुषादिवाचका नित्यं रेफसंयुक्ता देश्या एव । सिक्खन्तु वोद्रहीओ । वोद्रह-द्रहम्मि पडिआ ॥

अर्थ – जिन संस्कृत शब्दों में 'द्र' होता है, उनके प्राकृत-रूपान्तर में 'द्र' में स्थित रेफ रूप 'र्' का विकल्प से लोप होता है। जैसे –चन्द्रः = चन्दो अथवा चन्द्रो ॥ रुद्रः = रुदो अथवा रुद्रो ॥ भद्रम् = भद्दं अथवा भद्रं ॥ समुद्रः = समुद्दो अथवा समुद्रो ॥ संस्कृत शब्द 'ह्रद' के स्थान पर वर्णों का परस्पर में व्यत्यय अर्थात् अदला बदली होकर प्राकृत रूप 'द्रह' बन जाता है। इस वर्ण व्यत्यय से उत्पन्न होने वाली अवस्था को 'स्थिति-परिवृत्ति' भी कहते हैं। इसलिये संस्कृत रूप 'ह्रद' के प्राकृत रूप द्रहो अथवा दहो दोनों होते हैं। कोई कोई प्राकृत व्याकरण के आचार्य 'द्रह' में स्थित रेफ रूप 'र्' का लोप होना नहीं मानते हैं, उनके मतानुसार संस्कृत रूप 'ह्रद' का प्राकृत रूप केवल 'द्रहो' ही होगा, द्वितीय रूप 'दहो' नहीं बनेगा।

द्रहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप द्रहो और दहो होते हैं। इनमे सूत्र-संख्या २-८० से रेफ रूप 'र्' का विकल्प से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रमसे द्रहो और दहो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शिक्षन्ताम् संस्कृत विधिलिंगात्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सिक्खन्तु होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स', २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को क्' की प्राप्ति, ३-१७६ से संस्कृत विधि-लिंगात्मक प्रत्यय 'न्ताम्' के स्थान पर प्रथम पुरुष के बहुवचन मे प्राकृत से 'न्तु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिक्खन्तु* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुण्य संस्कृत रूप है। इसके स्थान पर देशज-भाषा में परम्परा से रूढ शब्द 'वोद्रहीओ' प्रयुक्त होता आया है। इसका पुल्लिग रूप 'वोद्रह' होता है। इस में सूत्र-संख्या ३-३१ से पुल्लिग से स्त्रीलिंग रूप बनाने में प्राप्त 'ई' प्रत्यय से 'वोद्रही' रूप की प्राप्ति और ३-२७ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन मे ईकारान्त स्त्री लिंग मे प्राप्त 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ***वोद्रहीओ*** रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुण संस्कृत शब्द है। इसका देशज भाषा में रूढ रूप 'वोद्रह' होता है। यहा पर समासात्मक वाक्य मे आया हुआ है, अतः इस में स्थित विभक्ति-प्रत्यय का लोप हो गया है।

ह्रदे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप द्रहम्मि होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१२० से 'ह' और द का परस्पर में व्यत्यय, और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत मे 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *द्रहम्मि* रूप सिद्ध हो जाता है।

पतिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१९ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, और १-१७७ से द्वितीय 'त' का लोप होकर ***पडिआ*** रूप सिद्ध हो जाता है। २-८० ॥

धात्र्याम् ॥ २-८१ ॥

धात्री शब्दे रस्य लुग् वा भवति ॥ धत्ती। ह्रस्वात् प्रागेव रलोपे धाई। पक्षे। धारी ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'धात्री' में रहे हुए 'र्' का प्राकृत रूपान्तर मे विकल्प से लोप होता है। धात्री=धत्ती अथवा धारी ॥ आदि दीर्घ स्वर 'धा' के ह्रस्व नहीं होने की हालत मे और साथ में 'र्' का लोप होने पर संस्कृत रूप 'धात्री' का प्राकृत में तीसरा रूप धाई भी होता है। यों संस्कृत रूप धात्री के प्राकृत मे तीन रूप हो जाते हैं, जो कि इस प्रकार हैं—धत्ती, धाई और धारी ॥

अथवा सरणा ॥ किसी किसी शब्द में स्थित 'ज्ञ' व्यञ्जन में सम्मिलित 'ञ' व्यञ्जन का लोप नहीं होता है। जैसेः-विज्ञानं=विण्णाण। इस उदाहरण में स्थित सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' की परिणति अन्य नियमानुसार 'ण' मे हो गई है। किन्तु सूत्र-सख्या २-८३ के अनुसार लोप अवस्था नही प्राप्त हुई है ॥

ज्ञानम् सस्कृत रूप ह। इस के प्राकृत-रूप जाण और णाण होते हैं। इन मे से प्रथम रूप में सूत्र सख्या २-८३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' व्यञ्जन का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३—२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जाणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप णाण की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४२ मे की गई है।

सव्वज्जो और सव्वण्णू दोनों रूपो की सिद्धि सूत्र-सख्या १-५६ मे की है।

आत्मज्ञः सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अप्पज्जो और अप्पण्णू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-५१ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति, २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, २-८३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप, २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' का लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अप्पज्जो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आत्मज्ञ =) अप्पण्णू में सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ की प्राप्ति, २-५१ से सयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण की प्राप्ति, १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ को प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अप्पण्णू* भी सिद्ध हो जाता है।

दैवज्ञः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दइवज्जो और दइवण्णू होते है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की प्राप्ति, २-८३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' मे स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप, २-८९ से 'ज्ञ' मे स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दइवज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयरूप- (दैवज्ञ =) दइवण्णू में सूत्र-सख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की प्राप्ति, २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' को प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को प्राप्ति, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के

एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सव्वण्णू* सिद्ध हो जाता है।

इंगितज्ञः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप इंगिअज्जो और इंगिअण्णू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इंगिअज्जो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (इंगितज्ञः=) इंगिअण्णू में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *इंगिअण्णू* सिद्ध हो जाता है।

मनोज्ञम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मणोज्जं और मणोण्णं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मणोज्जं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (मनोज्ञम्=) मणोण्णं में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *मणोण्णं* भी सिद्ध हो जाता है।

अहिज्जो और अहिण्णू रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५६ में की गई है।

प्रज्ञा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पज्जा और पण्णा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पज्जा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *पण्णा* की सिद्धि सूत्र संख्या २-४२ में की गई है। *आज्ञा* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अज्जा और आणा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९

से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अज्जा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आज्ञा =) आणा मे सूत्र-सख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *आणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

संज्ञा सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रुप सजा और सण्णा होते हैं। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-८३ से सयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' मे स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप होकर प्रथम रूप *संजा* सिध्द हो जाता है।

द्वितीय रूप *सण्णा* की सिध्दि सूत्र-सख्या २-४२ मे की गई है। विण्णाण रूप की सिध्दि सूत्र-सख्या २-४२ मे की गई है। २—८३॥

मध्याह्ने हः ॥ २—८४ ॥

मध्याह्ने हस्य लुग् वा भवति ॥ मज्झन्नो मज्झण्हो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द मध्याह्न' मे स्थित सयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थन पर प्राकृत रूपान्तर में विकल्प से 'ह्' का लोप होकर 'न' शेष रहता है। जैसे—मध्याह्न =मज्झन्नो अथवा मज्झण्हो॥ चैकल्पिक पक्ष होने से प्रथम रूप में 'ह्न' के स्थान पर 'न' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्रप्ति हुई है।

मध्याह्न' सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मज्झन्नो और मज्झण्हो होते है। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-सख्या २-२६ से सयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्रप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति २-८४ से सयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' मे से 'ह्' का विकल्प से लोप, २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप *मज्झन्नो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रुप (मध्याह्न =) मज्झण्हो में 'मज्झ' तकको साधनिका प्रथम रूप के समान ही, तथा आगे सूत्र-सख्या २-७५ से सयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्रामि होकर द्वितीय रूप *मज्झण्हो* भी सिद्ध हो जाता है। २-८४॥

दशार्हे ॥ २—८५ ॥

पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्। दशार्हे हस्य लुग् भवति ॥ दसारो ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'दशार्ह' में स्थित दश और 'अर्ह' शब्दों का पृथक्-पृथक् अर्थ नहीं करते हुए तथा इसको एक ही अर्थ—वाचक शब्द मानते हुए इस का बहुव्रीहि- समास 'में विशेष अर्थ स्वीकार किया जाय' तो 'दशार्ह' में स्थित 'ह' व्यञ्जन का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे — दशार्ह = दसारो अर्थात् यादव विशेष।

दशार्ह संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूपान्तर दसारो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स' २-८५ से 'ह्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दसारो रूप सिद्ध हो जाता है। २-८५॥

आदेः श्मश्रु-श्मशाने ॥ २-८६ ॥

अनयोरादेर्लुग् भवति ॥ मासू मंसू मस्सू। मसाणं ॥ आर्षे श्मशान-शब्दस्य सीआणं सुसाणमित्यपि भवति ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'श्मश्रु' और 'श्मशान' में आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का प्राकृत रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे—श्मश्रु = मासू अथवा मंसू अथवा मस्सू॥ श्मशानम्=मसाणं॥ आर्ष-प्राकृत में 'श्मशान' शब्द के दो अन्य रूप और भी पाये जाते हैं, जो कि इस प्रकार हैं—श्मशानम् = सीआणं और सुसाणं॥

श्मश्रुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासू, मंसू और मस्सू होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श' व्यञ्जन का लोप १-४३ से 'म' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति २-७९ से 'र' का लोप, १-२६ से 'र्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'श्' को 'स' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप मासू सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मंसू की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

तृतीय रूप—(श्मश्रु =) मस्सू में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श' व्यञ्जन का लोप' २-७९ से 'र्' का लोप' १-२६० से 'र' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'श्' को 'स्' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप मस्सू भी सिद्ध हो जाता है।

श्मशानम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप मसाणं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का लोप' १-२६० से द्वितीय 'श' का 'स' १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५

से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मसाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्ष-प्राकृत में 'श्मसानम्' के *सीआणं* और *सुसाणं* रूप होते हैं, इनकी साधनिका प्राकृत-नियमों के अनुसार नहीं होती है इसी लिये ये आर्ष-रूप कहलाते हैं। २-८६ ॥

श्चो हरिश्चन्द्रे ॥ २-८७ ॥

हरिश्चन्द्रशब्दे श्च इत्यस्य लुग् भवति ॥ हरिअन्दो ॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द 'हरिश्चन्द्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'श्च्' का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे:—हरिश्चन्द्र=हरिअन्दो ॥

हरिश्चन्द्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरिअन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८७ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्च्' का लोप, २-८० से 'द्र' में स्थित रेफ रूप 'र्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरिअन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रात्रौ वा ॥ २-८८ ॥

रात्रिशब्दे संयुक्तस्य लुग् वा भवति ॥ राई रत्ती ॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द 'रात्रि' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्र्' का विकल्प से प्राकृत रूपान्तर में लोप होता है। जैसे:—रात्रि=राई अथवा रत्ती ॥

रात्रिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप राई और रत्ती होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८८ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्र्' का विकल्प से लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *राई* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप—(रात्रि=) *रत्ती* की सिद्धि सूत्र-संख्या-२-७९ में की गई है ॥ २-८८ ॥

अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् ॥ २-८९ ॥

पदस्यानादौ वर्तमानस्य शेषस्यादेशस्य च द्वित्वं भवति ॥ शेष। कप्पतरु। भुत्तं। दुद्धं। नग्गो। उक्का। अक्को। मुक्खो ॥ आदेश। डक्को। जक्खो। रग्गो। किच्ची। रुप्पी ॥ क्वचिन्न भवति ॥ कसिणो ॥ अनादाविति किम्। खलिअं। थेरो। खम्भो। द्वयोस्तु। द्वित्व-मस्त्येवेऽऽति न भवति। विञ्चुओ। भिण्डिवालो ॥

अर्थ —यदि किसी संस्कृत शब्द का कोई वर्ण नियमानुसार प्राकृत-रूपान्तर में लुप्त होता है, तदनुसार उस लुप्त होने वाले वर्ण के पश्चात् जो वर्ण शेष रहता है अथवा लुप्त होने वाले उस वर्ण के स्थान पर नियमानुसार जो कोई दूसरा वर्ण आदेश रूप से प्राप्त होता है एवं वह शेष वर्ण अथवा आदेश रूप से प्राप्त वर्ण यदि उस शब्द के आदि (प्रारंभ) में स्थित न हो तो उस शेष वर्ण का अथवा आदेश रूप से प्राप्त वर्ण का द्वित्व वर्ण हो जाता है। लुप्त होने के पश्चात् शेष-अनादि-वर्ण के द्वित्व होने के उदाहरण इस प्रकार हैं—कल्पतरू = कप्पतरू। भुक्तम् = भुत्तं। दुग्धम् = दुद्धं। नग्नः = नग्गो। उल्का = उक्का। अर्कः = अक्को। मूर्खः = मुक्खो॥ आदेश रूप से प्राप्त होने वाले वर्ण के द्वित्व होने के उदाहरण इस प्रकार है—दष्टः = डक्को। यक्षः = जक्खो। रक्तः = रग्गो। कृत्तिः = किच्ची। रुक्मी = रुप्पी॥ कभी कभी लोप होने के पश्चात् शेष रहने वाले वर्ण का द्वित्व होना नहीं पाया जाता है। जैसे—कृत्स्नः = कसिणो यहाँ पर 'त्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'स्' का द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्यत्र भी जानना।

प्रश्न — अनादि में स्थित हो तभी उस शेष वर्ण का अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण का द्वित्व होता है ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—क्योंकि यदि वह शेष वर्ण अथवा आदेश प्राप्त वर्ण शब्द के प्रारंभ में ही स्थित होगा तो उसका द्वित्व नहीं होगा' इस विषयक उदाहरण इस प्रकार है—स्खलितम् = खलिअं। स्थविरः = थेरो। स्तम्भः = खम्भो॥ इन उदाहरणों में शेष वर्ण अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण शब्दों के प्रारंभ में ही रहे हुए हैं; अतः इनमें द्वित्व की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिये। जिन शब्दों में शेष वर्ण अथवा आदेश प्राप्त वर्ण पहले से ही द्वि वर्ण रूप से स्थित हैं, उनमें पुनः द्वित्व की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण इस प्रकार है—वृश्चिकः = विञ्चुओ और भिन्दिपालः = भिण्डिवालो॥ इत्यादि॥ इन उदाहरणों में क्रम से 'श्च' के स्थान पर द्वि वर्ण रूप 'ञ्चु' की प्राप्ति हुई है और 'न्द' के स्थान पर द्वि वर्ण रूप 'ण्ड' की प्राप्ति हुई है अतः अब इनमें और द्वित्व वर्ण करने की आवश्यकता नहीं है। यों अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिये।

कल्पतरुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कप्पतरू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप २-८९ से शेष 'प' का द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर कप्पतरू रूप सिद्ध हो जाता है।

भुत्तं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।
दुद्धं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।
नग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७८ में की गई है।
उक्का रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७९ में की गई है।

अक्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

मूर्खः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हक्की रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२ में की गई है।

यक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'खख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जक्खो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

रग्गो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१० में की गई है।
किच्ची रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१२ में की गई है।
रुप्पी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-५२ में की गई है।
कसिणो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७५ में की गई है।

स्खलितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खलिअं होता है। इस में सूत्र संख्या २-७७ से हलन्त 'स्' का लोप, १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

थेरो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६६ में की गई है।
खम्भो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-८ में की गई है।
विञ्चुओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में गई है।
भिण्डिवालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-३८ में की गई है। ॥ २-८९ ॥

द्वितीय-तुर्ययोरुपरि पूर्वः ॥२-९०॥

द्वितीयतुर्ययोर्द्वित्व प्रसङ्गे उपरि पूर्वौ भवतः ॥ द्वितीयस्योपरि प्रथमश्चतुर्थस्योपरि तृतीयः इत्यर्थः ॥ शेषं । वक्खाणं । वग्घो । मुच्छा । निज्झरो । कट्ठं । तित्थं । निद्धणो । गुप्फं । निब्भरो ॥ आदेश । जक्खो । घस्यनास्ति ॥ अच्छी । मज्झं । पट्ठी । वुड्ढो । हत्थो ।

आलिद्धो । पुप्फं । भिब्भलो ॥ तैलादौ (२-९८) द्वित्वे ओक्खलं ॥ सेवादौ (२-९९) नक्खा नहा ॥ समासे । कइ द्धओ कइ-धओ ॥ द्वित्व इत्येव । खाओ ॥

अर्थ—किसी भी वर्ग के दूसरे अक्षर का अथवा चतुर्थ अक्षर का द्वित्व होने का प्रसंग प्राप्त हो तो उनके पूर्व में द्वित्व प्राप्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर प्रथम अक्षर हो जायगा और द्वित्व प्राप्त चतुर्थ अक्षर के स्थान पर तृतीय अक्षर हो जायगा । विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि किसी संस्कृत शब्द के प्राकृत में रूपान्तर करने पर नियमानुसार लोप होने वाले वर्ण के पश्चात् शेष रहे हुए वर्ण को अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाले वर्ण का द्वित्व होने का प्रसंग प्राप्त हो तो द्वित्व होने के पश्चात् प्राप्त द्वित्व वर्णों में यदि वर्ग का द्वितीय अक्षर है तो द्वित्व प्राप्त वर्ण के पूर्व में स्थित हलन्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग के प्रथम अक्षर की प्राप्ति होगी और यदि द्वित्व प्राप्त वर्ण वर्ग का चतुर्थ अक्षर है तो उस द्वित्व प्राप्त चतुर्थ अक्षर में से पूर्व में स्थित चतुर्थ अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग के तृतीय अक्षर की प्राप्ति होगी । 'शेष' से संबंधित उदाहरण इस प्रकार हैं—व्याख्यानम् = वक्खाणं । व्याघ्रः = वग्घो । मूर्च्छा = मुच्छा । निर्झरः = निज्झरो । कष्टम् = कट्ठं । तीर्थम् = तित्थं । निधनः = निद्धणो । गुल्फम् = गुप्फं । निर्भरः = निब्भरो ॥ इसी प्रकार से आदेश से सम्बंधित उदाहरण इस प्रकार हैं—यक्षः = जक्खो ॥ दीर्घ 'घ' का उदाहरण नहीं होता है । अक्षि = अच्छी । मध्यं = मज्झं दृष्टिः = दिट्ठी ॥ बुद्धः = बुड्ढो । हस्तः = हत्थो । आश्लिष्टः = आलिद्धो । पुष्पम् = पुप्फं और विह्वलः = भिब्भलो ॥

सूत्र संख्या २-९८ से तैल आदि शब्दों में भी द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होती है उनमें भी इसी सूत्र विधानानुसार प्राप्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर प्रथम अक्षर की प्राप्ति होती है और प्राप्त चतुर्थ अक्षर के स्थान पर तृतीय अक्षर की प्राप्ति होती है । उदाहरण इस प्रकार है:-उदूखलम् ओक्खलं ॥ इसी प्रकार सूत्र-संख्या २-९९ से सेवा आदि शब्दों में भी द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होती है; उन शब्दों में भी यही नियम लागू होता है कि प्राप्त द्वित्व द्वितीय वर्ण के स्थान पर प्रथम वर्ण की प्राप्ति होती है प्राप्त द्वित्व चतुर्थ वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण की प्राप्ति होती है । उदाहरण इस प्रकार है—नखाः = नक्खा अथवा नहा ॥ समास गत शब्द में भी द्वितीय के स्थान पर प्रथम की प्राप्ति और चतुर्थ के स्थान पर तृतीय की प्राप्ति इसी नियम के अनुसार जानना । उदाहरण इस प्रकार है कपि-ध्वजः = कइ-द्धओ अथवा कइ-धओ ॥ उपरोक्त नियम का विधान नियमानुसार द्वित्व रूप से प्राप्त होने वाले वर्णों के संबंध में ही जानना जिन शब्दों में लोप स्थिति की अथवा आदेश-स्थिति की उपलब्धि (तो) हो परन्तु यदि ऐसा होने पर भी 'द्विर्भाव' की स्थिति नहीं हो तो इस नियम का विधान ऐसे शब्दों के संबंध में लागू नहीं होगा । जैसे—ख्यातः = खाओ ॥ इस उदाहरण में लोप-स्थिति है । परन्तु द्विर्भाव स्थिति नहीं है; अतः सूत्र-संख्या २-९० का विधान इस में लागू नहीं होता है ॥

व्याख्यानम् संस्कृतरूप है । इसका प्राकृत रूप वक्खाणं होता है । इस में सूत्र संख्या २-७८ से दोनों य् कारों का लोप; १-८४ से शेष वा में स्थित दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की

प्राप्ति, २-८६ से 'ख' वर्ण को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा-विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर *वक्खाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याघ्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वग्घो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, १-८४ से शेष 'वा' मे स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'घ' को द्वित्व 'घ्घ्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'घ्' को 'ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वग्घो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्च्छा—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुच्छा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, और १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति होकर *मुच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

निज्झरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९८ में की गई है।

कट्ठ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-३४ में की गई है।

तित्थं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ मे की गई है।

निर्धनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निद्धणो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति, १-२२८ से द्वितीय 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निद्धणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुल्फम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गुप्फ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप, २-८९ से शेष 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गुप्फं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्भरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निब्भरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'भ' को द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निब्भरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जक्खो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-८९ में की गई है।

अच्छी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३३ में की गई है।

मज्झं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २- ६ में की गई है।

पट्टी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १ ६ में की गई है।

जुण्णो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १०२ में की गई है।

हत्थो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २ ४५ में की गई है।

आलिद्धो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २ ४९ में की गई है।

पुप्फं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ २३६ में की गई है।

भिब्भलो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २ ५८ में की गई है।

आक्खलं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १७१ में की गई है।

नखा संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप नक्खा और नहा होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २ ९९ से ख को द्वित्व ख ख की प्राप्ति, २ ९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को क् की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर लोप; और ३ १२ से 'ख में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का लोप और 'आ' की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप *नक्खा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (नखा =) नहा में सूत्र-संख्या १ १८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और शेष साधनिका (प्रथमा बहु वचन के रूप में) प्रथम रूप के समान ही होकर *नहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कपि-ध्वज संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइद्धओ और कइ-धओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १ १७७ से 'प्' का लोप २-७९ से 'व' का लोप २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व ध्ध की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति १ १७७ से ज् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कई-द्धओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कपि-ध्वज =) कइ धओ में सूत्र-संख्या १ १७७ से 'प' का लोप, २-७९ से 'व्' का लोप १ १७७ से 'ज' का लोप और ३ २ से प्रथम रूप के समान ही 'ओ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *कइ-धओ* भी सिद्ध हो जाता है।

श्याम संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सामो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से य का लोप १ २६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सामो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥९०॥

दीर्घे वा ॥२-९१॥

दीर्घ शब्दे शेषस्य घस्य उपरि पूर्वो वा भवति ॥ दिग्घो दीहो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'दीर्घ' के प्राकृत-रूपान्तर में नियमानुसार रेफ रूप 'र्' का लोप होने के पश्चात् शेष व्यञ्जन 'घ' के पूर्व में ('घ' के) पूर्व व्यञ्जन 'ग्' की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है जैसे-दीर्घ =दिग्घो अथवा दीहो ॥

दीर्घ संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप दिग्घो और दीहो होते है। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-९१ से 'घ' के पूर्व में 'ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दिग्घो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दीर्घ =) दीहो में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथम रूप के समान ही 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *दीहो* भी सिद्ध हो जाता है ।२-९१॥

न दीर्घानुस्वारात् ॥२-९२॥

दीर्घानुस्वाराभ्यां लाक्षणिकाभ्यामलाक्षणिकाभ्यां च परयोः शेषादेशयोर्द्वित्वं न भवति ॥ छूढो । नीसासो । फासो ॥ अलाक्षणिक । पार्श्वम् । पासं ॥ शीर्षम् । सीसं ॥ ईश्वरः । ईसरो ॥ द्वेष्यः । वेसो ॥ लास्यम् । लासं ॥ आस्यम् । आसं । प्रेष्यः । पेसो ॥ अवमाल्यम् । ओमालं ॥ आज्ञा । आणा । आज्ञप्तिः । आणत्ती ॥ आज्ञपन । आणवणं ॥ अनुस्वारात् । त्र्यस्रम् । तंसं अलाक्षणिक । संझा । विंझो । कंसालो ॥

अर्थ—यदि किसी संस्कृत-शब्द के प्राकृत-रूपान्तर मे किसी वर्ण में दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार रहा हुआ हो और उस दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार की प्राप्ति चाहे व्याकरण के नियमों से हुई हो अथवा चाहे उस शब्द में ही प्रकृति रूप से ही रही हुई हो और ऐसी स्थिति में यदि इस दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार के आगे नियमानुसार लोप हुए वर्ण के पश्चात् शेष रह जाने वाला वर्ण आया हुआ हो अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाला वर्ण आया हुआ हो तो उस शेष वर्ण को अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण को द्वित्व-भाव की प्राप्ति नहीं होगी। अर्थात् ऐसे वर्णों का द्वित्व नहीं होगा। दीर्घ स्वर संबधी उदाहरण इस प्रकार है—क्षिप्त =छूढो । निःश्वास =नीसासो और स्पर्श =फासो ॥ इन उदाहरणों में स्वर में दीर्घता व्याकरण के नियमों से हुई है, इसलिये ये उदाहरण लाक्षणिक कोटि के हैं। अब ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं, जो कि अपने प्राकृतिक रूप से ही दीर्घ स्वर वाले हैं; ये उदाहरण अलाक्षणिक कोटि के समझे जाँय। पार्श्वम्=पास ॥ शीर्षम्=सीस ॥ ईश्वर. =ईसरो ॥ द्वेष्य=वेसो ॥ लास्यम्= लास ॥ आस्यम्=आस ॥ प्रेष्य =पेसो ॥ अवमाल्यम्=ओमाल ॥ आज्ञा =आणा ॥ आज्ञप्तिः=आणत्ती ॥ आज्ञपन=आणवण ॥

इन उदाहरणों में दीर्घ स्वर के आगे वर्ग विशेष की लोप स्थिति से शेष वर्ण की स्थिति अथवा आदेश प्राप्त वर्ण की स्थिति होने पर भी उनमें द्वित्व की स्थिति नहीं है।

अनुस्वार संबंधी उदाहरण निम्नोक्त हैं। प्रथम ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं जिनमें अनुस्वार की प्राप्ति व्याकरण के नियम-विशेष से हुई है ऐसे उदाहरण लाक्षणिक कोटि के जानना। त्र्यस्रम्=तंसं। इस उदाहरण में लोप स्थिति है, शेषवर्ण 'स की उपस्थिति अनुस्वार के पश्चात् रही हुई है अत इस शेष वर्ण स को द्वित्व 'स्स की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्य लाक्षणिक उदाहरण भी समझ लेना। अब ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं; जिनमें अनुस्वार की स्थिति प्रकृति रूप से ही उपलब्ध है ऐसे उदाहरण अलाक्षणिक कोटि के गिने जाते हैं। संध्या = संझा। विन्ध्यः=विंझो और कांस्यालः = कंसालो॥ प्रथम दो उदाहरणों में अलाक्षणिक रूप से स्थित अनुस्वार के आगे आदेश रूप से प्राप्त वर्ण झ की उपस्थिति विद्यमान है, परन्तु इस झ' वर्ण को पूर्व में अनुस्वार के कारण से द्वित्व 'झ्झ की प्राप्ति नहीं हुई है। तृतीय उदाहरण में 'य' का लोप होकर अनुस्वार के आगे शेष वर्ण के रूप में 'स की उपस्थिति मौजूद है, परन्तु पूर्व में अनुस्वार होने के कारण से इस शेष वर्ण स को द्वित्व 'स स की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्यत्र भी जान लेना। इन्हें अलाक्षणिक कोटि के उदाहरण जानना, क्योंकि इनमें अनुस्वार की प्राप्ति व्याकरण गत नियमों से नहीं हुई है, परन्तु प्रकृति से ही स्थित है॥

क्षिप्त संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप *छूढो* होता है। इसमें सूत्र संख्या २ १२७ से संपूर्ण 'क्षिप्त शब्द के स्थान पर ही छूढ रूप आदेश की प्राप्ति और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छूढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीसासो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९३ में की गई है।

स्पर्श संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप फासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८२ से स्पर्श शब्द के स्थान पर ही 'फास रूप आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर फासो रूप सिद्ध हो जाता है

पार्श्वम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पासं होता है। इस में सूत्र-संख्या २ ७९ से रेफ रूप 'र्' का और 'व' का लोप १ २६० से 'श का स २-८९ से शेष 'स को द्वित्व 'स्स की प्राप्ति होनी चाहिये थी परन्तु २-९२ से इस 'द्वित्व-स्थिति का निषेध' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर पासं रूप सिद्ध हो जाता है।

शीर्षम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप रूप सीसं होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'श 'ष का स स २-७९ से 'र् का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म का अनुस्वार होकर सीसं रूप सिद्ध हो जाता है।

ईमरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ मे की गई है।

द्वेष्य सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रुप वेसो होता है। इस में सूत्र-सख्या२—७७ से 'द्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेसो* रूप सिद्ध ह जाता है।

लास्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लास होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्, का अनुस्वार होकर *लासं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आस्यम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आस होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेष्य सस्कृत विशेपण रूप है। इसका प्राकृत रूप पेसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-७८ से "य्" का लोप, १-२६० से 'ष, का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ओमाल रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३८ में की गई है।

आणा रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या २-८३ में की गई है।

आज्ञप्तिः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-७७ से 'प्' का लोप, २-८६ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *आणत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

आज्ञपनम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणवण होता है। इसमें सूत्र सख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति १-२३१ से 'प' का 'व', १-२२८ से 'न' का 'ण, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आणवणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तस रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

सभा रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-६ में की गई है।

विंझो रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२५ में की गई है।

कांस्यालः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंसालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ९-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कंसालो रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-९२॥

र हो ॥ २–९३ ॥

रेफहकारयोर्द्वित्वं न भवति॥ रेफः शेषो नास्ति॥ आदेश। सुन्देरं। बम्हचेरं। पेरन्तं॥ शेषस्य ह्स्य। विहलो॥ आदेशस्य। कहावणो॥

अर्थ—किसी संस्कृत शब्द के प्राकृत रूपान्तर में यदि शेष रूप से अथवा आदेश रूप से 'र' वर्ण की अथवा 'ह' वर्ण की प्राप्ति हो तो ऐसे 'र' वर्ण का एवं 'ह' वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति नहीं होती है। रेफ रूप 'र' वर्ण कभी भी शेष रूप से उपलब्ध नहीं होता है, अतः शेष रूप से संबंधित 'र' वर्ण के उदाहरण नहीं पाये जाते हैं। आदेश रूप से 'र' वर्ण की प्राप्ति होती है, इसलिये इस विषयक उदाहरण इस प्रकार हैं—सौन्दर्यम्=सुन्देरं॥ ब्रह्मचर्यम्=बम्हचेरं और पर्यन्तम्=पेरन्तं॥ इन उदाहरणों में संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' वर्ण की आदेश रूप से प्राप्ति हुई है; इस कारण से 'र' वर्ण को सूत्र संख्या २-८९ से द्वित्व की स्थिति होनी चाहिये थी; किन्तु सूत्र संख्या २-९३ से निषेध कर देने से द्वित्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। शेष रूप से प्राप्त 'ह' का उदाहरण—विह्वलः=विहलो॥ इसमें द्वितीय 'व' का लोप होकर शेष 'ह' की प्राप्ति हुई है, किन्तु इसमें भी २-९३ से द्वित्व की स्थिति नहीं हो सकती है। आदेश रूप से प्राप्त 'ह' का उदाहरण—कार्षापणः=कहावणो॥ इस उदाहरण में संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर सूत्र-संख्या २-७१ से 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति हुई है; तदनुसार सूत्र संख्या २-८९ से 'ह' वर्ण को द्वित्व की स्थिति प्राप्त होनी चाहिये थी; परन्तु सूत्र संख्या २-९३ से निषेध कर देने से द्वित्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यों अन्य उदाहरणों में भी शेष रूप से अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाले रेफ रूप 'र' और 'ह' के द्वित्व नहीं होने की स्थिति को समझ लेना चाहिये॥

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-५७ में की गई है।
बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-५९ में की गई है।

पर्यन्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पेरन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५८ से 'प' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति; २-६५ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' रूप आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पेरन्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

विह्वलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विहलो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से द्वितीय 'व' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के

स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कहावणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७१ मे की गई है। ॥ २-९३ ॥

धृष्टद्युम्ने णः ॥२-९४॥

धृष्टद्युम्न शब्दे आदेशस्य णस्य द्वित्वं न भवति ॥ धट्ठज्जुणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द धृष्टद्युम्न के प्राकृत रूपान्तर धट्ठज्जुणो में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' आदेश की प्राप्ति होने पर इस आदेश प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे.—धृष्टद्युम्न =धट्ठज्जुणो ॥

धृष्टद्युम्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धट्ठज्जुणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज्' की प्राप्ति, २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकाराप्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धट्ठज्जुणो* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥२-९४॥

कर्णिकारे वा ॥ २-९५ ॥

कर्णिकार शब्दे शेषस्य णस्य द्वित्वं वा न भवति ॥ कणिआरो कण्णिआरो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द कर्णिकार के प्राकृत रूपान्तर में प्रथम रेफ रूप 'र्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति विकल्प से होती है। कभी हो जाती है और कभी नहीं होती है। जैसे —कर्णिकार:=कणिआरो अथवा कण्णिआरो ॥

कर्णिकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कणिआरो और कण्णिआरो होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कणिआरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप कण्णिआरो की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६८ में की गई है। ॥ २-९५ ॥

दृप्ते ॥ २-९६ ॥

दृप्तशब्दे शेषस्य द्वित्वं न भवति ॥ दरिअ-सीहेण ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'हर्ष' के प्राकृत रूपान्तर में नियमानुसार 'ष्' और 'स' व्यञ्जन का लोप हो जाने के पश्चात् शेष वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे —हर्ष-सिंहेन=हरिस-सीहेण ॥ हरिस सीहेण रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १४४ में की गई है। ॥ २-९६ ॥

समासे वा ॥ २-९७ ॥

शेषादेशयोः समासे द्वित्वं वा भवति ॥ नइ-ग्गामो, नइ-गामो। कुसुम-प्पयरो कुसुम पयरो। देव-त्थुई देव-थुई। हर-क्खन्दा हर-खन्दा। आणाल-क्खम्भो आणाल-खम्भो ॥ बहुलाधिकारादशेषादेशयोरपि। स-प्पिवासो स-पिवासो। बद्ध-प्फलो बद्ध-फलो। मलय-सिहर-क्खण्डं मलय-सिहर-खण्डं। पम्मुक्कं पमुक्कं। अद्दंसणं अदंसणं। पडिक्कूलं पडिकूलं। तेल्लोक्कं तेलोक्कं इत्यादि ॥

अर्थ—संस्कृत समासगत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में नियमानुसार वर्णों के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए अथवा आदेश रूप से प्राप्त हुए वर्णों को द्वित्व की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। अर्थात् समासगत शब्दों में शेष रूप से अथवा आदेश रूप से रहे हुए वर्णों की द्वित्व-स्थिति विकल्प से हुआ करती है। उदाहरण इस प्रकार हैं —नदी-ग्राम=नइ-ग्गामो अथवा नइ-गामो ॥ कुसुम-प्रकर=कुसुम-प्पयरो अथवा कुसुम-पयरो ॥ देव-स्तुति=देव-त्थुई अथवा देव-थुई ॥ हर-स्कन्दौ=हर-क्खन्दा अथवा हर-खन्दा ॥ आलान-स्तम्भः=आणाल-क्खम्भो अथवा आणाल-खम्भो ॥ "बहुलम्" सूत्र के अधिकार से समासगत प्राकृत शब्दों में शेष रूप से अथवा आदेश रूप से नहीं प्राप्त हुए वर्णों को भी अर्थात् शब्द में प्रकृति रूप से रहे हुए वर्णों को भी विकल्प से द्वित्व स्थिति प्राप्त हुआ करती है। तात्पर्य यह है कि समासगत शब्दों में शेष रूप स्थिति से रहित अथवा आदेश रूपस्थिति से रहित वर्णों को भी द्वित्व की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। उदाहरण इस प्रकार हैं—स-पिपासः=स-प्पिवासो अथवा स-पिवासो ॥ बद्ध-फलः=बद्ध-प्फलो अथवा बद्ध-फलो ॥ मलय-शिखर-खण्डम्=मलय-सिहर-क्खण्डं अथवा मलय-सिहर-खण्डं ॥ प्रमुक्तम्=पम्मुक्कं अथवा पमुक्कं ॥ अदर्शनम्=अद्दंसणं अथवा अदंसणं ॥ प्रतिकूलम्=पडिक्कूलं अथवा पडिकूलं और त्रैलोक्यम्=तेल्लोक्कं अथवा तेलोक्कं इत्यादि ॥ इन उदाहरणों में द्वित्व-भाव स्थिति विकल्प से पाई जाती है, यों अन्य उदाहरणों में भी जान लेना चाहिये ॥

नदी-ग्राम संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नइ-ग्गामो और नइ-गामो होते हैं। इन में सूत्र संख्या १ १७७ से 'द्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-९७ से 'ग' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से नइ-ग्गामो और नइ-गामो दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कुसुम-प्रकर संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कुसुम-प्पयरो और कुसुम-पयरो होते हैं। इसमें

सूत्र सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, २-६७ से शेष 'प' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'पप' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'क्' मे से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कुसुम-प्पयरो* और *कुसुम पयरो* दोनो रूपो की सिद्धि हो जाते हैं।

देव-स्तुतिः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप देव त्थुई और देव-थुई होते हैं। इनमे सूत्र सख्या २-४५ से 'स्त्' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-६७ से प्राप्त 'थ्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई की प्राप्ति होकर क्रम से *देवत्थुई* और *देव-थुई* दोनो रूपो की सिद्धि हो जाती हैं।

हर-स्कंदौ द्विवचनान्त सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हर क्खन्दा और हर-खन्दा होते है। इनमे सूत्र सख्या २-४ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-६७ से प्राप्त 'ख' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-६० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' को प्राप्ति, ३-१३० से सस्कृत शब्दात द्विवचन के स्थान पर बहुवचन की प्राप्ति होन से सूत्र सख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से पूर्व मे प्राप्त एव लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य व्यञ्जन 'द' मे स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से *हर-क्खन्दा* और *हर-खन्दा* दोनो रूपो की सिद्धि हो जाती है।

आलान-स्तम्भः सस्कृत रूप है। इसके प्राकत रूप आणाल क्खम्भो और आणाल-खम्भो होते हैं। इनमे सूत्र सख्या २-११७ से 'ल' और 'न' का परस्पर में व्यत्यय अर्थात् उलट-पुलट रूप से पारस्परिक स्थान परिवर्तन, १-२२८ से 'न' का 'ण', २-८ से सयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ख' का आदेश, २-६७ से प्राप्त 'ख' को वैकलिपक रूप से द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-६० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति, और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *आणाल-क्खम्भो* और *आणाल-खम्भो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जातो है।

स-पिपासः सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सप्पिवासो और सपिवासो होते हैं। इनमें सूत्र सख्या २-६७ से प्रथम 'प' वर्ण को विकल्प से द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-२३१ से द्वितीय 'प' वर्ण के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रमसे *सप्पिवासो* और *सपिवासो* दोनो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

बद्ध-फलः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बद्ध-प्फलो और बद्ध-फलो होते हैं। इन मे सूत्र

संख्या २-९७ से 'फ' वर्ण को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से वप्फो और वफो दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

मलय शिखर-खण्डम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मलय सिहर-क्खण्डं और मलय-सिहर खण्डं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से श का स; १-१८७ से प्रथम 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-९७ से द्वितीय ख के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त द्वित्व में से पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *मलय-सिहर क्खण्डं* और *मलय सिहर खण्डं* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रमुक्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप पम्मुक्कं और पमुक्कं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-९७ से 'म्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त क को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति २-२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्त' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पम्मुक्कं* और *पमुक्कं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

अदर्शनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अद्दंसणं और अदंसणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-९७ से 'द' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति १-२६ से प्राप्त द्वित्व 'द्द' अथवा द पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति २-७९ से र् का लोप १-२६० से 'श' का 'स' १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अद्दंसणं* और *अदंसणं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

प्रतिकूलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप पडिक्कूलं और पडिकूलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से र् का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, २-९७ से क वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पडिक्कूलं और पडिकूलं दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

त्रैलोक्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तेल्लोक्कं और तेलोक्कं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति २-९७ से ल वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति २-७८ से 'य्' का लोप ३-२५

से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *तेल्लोक्कं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *तेलोक्कं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ में की गई है ॥२-९७॥

तैलादौ ॥ २-९८ ॥

तैलादिषु अनादौ यथादर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य च व्यञ्जनस्य द्वित्वं भवति ॥ तेल्लं । मण्डुक्को । वेइल्लं । उज्जू । विड्डा । वहुत्तं ॥ अनन्त्यस्य । सोत्तं । पेम्मं । जुव्वणं ॥ आर्षे । पडिसोओ । विस्सोअसिआ ॥ तैल । मण्डूक । विचकिल । ऋजु । व्रीडा । प्रभूत । स्रोतस् । प्रेमन् । यौवन । इत्यादि ॥

अर्थ—संस्कृत भाषा में तैल आदि अनेक शब्द ऐसे हैं; जिनके प्राकृत रूपान्तर में कभी कभी तो अन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है और कभी कभी अनन्त्य अर्थात् मध्यस्थ व्यञ्जनों में से किसी एक व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है। अन्त्य और अनन्त्य के संबंध मे कोई निश्चत नियम नहीं है। अत. जिस व्यञ्जन का द्वित्व देखो, उसका विधान इस सूत्र के अनुसार होता है, ऐसा जान लेना चाहिये। इसमें यह एक निश्चित विधान है कि आदि व्यञ्जन का द्वित्व कभी भी नहीं होता है। इसीलिये वृत्ति में "अनादौ" पद दिया गया है। द्विर्भाव-स्थिति केवल अन्त्य व्यञ्जन की अथवा अनन्त्य याने मध्यस्थ व्यञ्जन की ही होती है। इसके लिये वृत्ति मे 'यथा-दर्शनम्" "अन्त्यस्य" और "अनन्त्यस्य" पद दिये गये हैं, यह ध्यान मे रहना चाहिये। जिन शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व होता है, उन में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—तैलम्=तेल्ल ॥ मण्डूक=मण्डुक्को ॥ विचकिलम्=वेइल्ल ॥ ऋजु=उज्जू ॥ व्रीडा=विड्डा ॥ प्रभूतम्=वहुत्तं ॥ जिन शब्दों के अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व होता है, उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—स्रोतस्=सोत्त ॥ प्रेमन=पेम्मं ॥ और यौवनम्=जुव्वण ॥ इत्यादि ॥ आर्ष-प्राकृत में "प्रतिस्रोत" का "पडिसोओ" होता है, और "विस्रोतसिका" का "विस्सोअसिआ" रूप होता है। इन उदाहरणो में यह बतलाया गया है कि इन मे अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व नहीं हुआ है, जैसा कि ऊपर के कुछ उदाहरणों में द्वित्व हुआ है। अत यह अन्तर ध्यान में रहे।

तैलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *तेल्ल* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति; २-९८ से 'ल' व्यञ्जन के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तेल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

मण्डूकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *मण्डुक्को* होता है। इसमें सूत्र संख्या २-९८ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मण्डुक्को* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेरुल्लं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १६६ में की गई है।

एज्जू रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ १२१ में की गई है।

व्रीडा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विड्डा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति और २ ९८ से अन्त्य व्यञ्जन 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति होकर *विड्डा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहुत्त रूप सूत्र संख्या १ २३३ में की गई है।

स्रोत संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोत्त होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप २-९८ से अनन्त्य व्यञ्जन 'त' को द्वित्व त्त की प्राप्ति १ ११ से विसर्ग रूप अन्त्य व्यञ्जन का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेमन् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पेम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से र् का लोप २-९८ से अन्त्य व्यञ्जन म' का द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति' १ ११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पेम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जुव्वणं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १२० में की गई है।

प्रतिस्रोत संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिसोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से दोनों र का लोप' १ २०६ से प्रथम त के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पडिसोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विस्रोतसिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विस्सोअसिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से र् का लोप २-८९ से शेष प्रथम 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति १ १७७ से त् और क का लोप होकर *विस्सोअसिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-९८॥

सेवादौ वा ॥ २-९९ ॥

सेवादिषु अनादौ यथादर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य च द्वित्वं वा भवति ॥ सेव्वा सेवा ॥ नेड्डं नीडं । नक्खा नहा । निहित्तो निहिओ । वाहित्तो वाहिओ । माउक्कं माउअं । एक्को एओ । कोउहल्लं कोउहलं । वाउल्लो वाउलो । थुल्लो थोरो । हुत्तं हूअं । दइव्वं दइवं । तुण्हिक्को तुण्हिओ । मुक्को मूओ । खण्णू खाणू । थिण्णं थीणं ॥ अनन्त्यस्य । अम्हक्केरं अम्हकेरं ।

तं च्चेअ तं चेअ । सो च्चिअ सो चिअ ॥ सेवा । नीड । नख । निहित । व्याहृत । मृदुक । एक । कुतूहल । व्याकुल । स्थूल । हूत । दैव । तूष्णीक । मूक । स्थाणु । स्त्यान । अस्मदीय चेअ । चिअ । इत्यादि ॥

अर्थ:—संस्कृत-भाषा मे सेवा आदि अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनके प्राकृत रूपान्तर में कभी कभी तो अन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व हो जाता है और कभी कभी अनन्त्य अर्थात् मध्यस्थ व्यञ्जनों में से किसी एक व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है । अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन के वैकल्पिक रूप से द्वित्व होने मे कोई निश्चित नियम नहीं है अतः जिस व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व देखो, उसका विधान इस सूत्र के अनुसार होता है, ऐसा जान लेना चाहिये । इसमें यह एक निश्चित विधान है कि आदि व्यञ्जन का द्वित्व कभी भी नहीं होता है । इसीलिये वृत्ति में "अनादौ" पद दिया गया है । वैकल्पिक रूप से द्विर्भाव-स्थिति केवल अन्त्य व्यञ्जन की अथवा अनन्त्य याने मध्यस्थ व्यञ्जन की ही होती है । इसके लिये वृत्ति में "यथा-दर्शनम्", "अन्त्यस्य" और "अनन्त्य-स्य" के साथ साथ 'वा" पद भी संयोजित कर दिया गया है । ऐसी यह विशेषता ध्यान में रहनी चाहिये जिन शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व होता है, उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार है —सेवा=सेव्वा अथवा सेवा ॥ नीडम्=नेड्डं अथवा नीड ॥ नखा =नक्खा अथवा नहा ॥ निहित =निहित्तो अथवा निहिओ ॥ व्याहृत =वाहित्तो अथवा वाहिओ ॥ मृदुकम्=माउक्कं अथवा माउअं ॥ एक =एक्को अथवा एओ ॥ कुतूहलम्=कोउहल्लं अथवा कोउहलं ॥ व्याकुल =वाउल्लो अथवा वाउलो ॥ स्थूल' =थुल्लो अथवा थोरो । हूतम् =हुत्तं अथवा हूअं ॥ दैव =दइव्वं अथवा दइवं ॥ तूष्णीक =तुण्हिक्को अथवा तुण्हिओ ॥ मूक =मुक्को अथवा मूओ ॥ स्थाणु =खण्णू अथवा खाणू और स्त्यानम् = थिण्णं अथवा थीणं ॥ इत्यादि ॥ जिन शब्दों के अनन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व होता है, उन मे से कुछ उदाहरण इस प्रकार है –अस्मदीयम्=अम्हक्केरं अथवा अम्हकेरं ॥ तत् एव=तं च्चेअ अथवा तं चेअ ॥ स एव=सो च्चिअ अथवा सो चिअ । इत्यादि ॥ सूत्र संख्या २-९८ और २-९९ में इतना अन्तर है कि पूर्व सूत्र में शब्दों के अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व नित्य होता है, जबकि उत्तर सूत्र में शब्दो के अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व वैकल्पिक रूप से ही होता है । इसीलिये 'तैलादौ' सूत्र से 'सेवादौ वा' सूत्र-में 'वा' अव्यय अधिक जोडा गया है । इस प्रकार यह अन्तर और ऐसी विशेषता दोनों ही ध्यान में रहना चाहिये ।

सेवा संस्कृत रूप है । इस के प्राकृत रूप सेव्वा और सेवा होते हैं । इन में सूत्र-संख्या २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'व' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व की प्राप्ति होकर क्रम से सेव्वा और सेवा दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

नीडम् संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप नेड्डं और नीडं होते हैं । इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१०६ से 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, २-९९ से 'ड' व्यञ्जन को वैकल्पिक रूप से द्वित्व

'इ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप नेड्डुं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप नीडं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०६ में की गई है।

नक्खा और नहा दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९० में की गई है।

निहित संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप निहित्तो और निहिओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर द्वित्व 'त्त' की वैकल्पिक रूप से प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *निहित्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (निहित =) निहिओ में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *निहिओ* भी सिद्ध हो जाता है।

व्याहृत संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप वाहित्तो और वाहिओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वाहित्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(व्याहृत =) *वाहिओ* की साधनिका में प्रथम रूप के समान ही सूत्रों का व्यवहार होता है। अन्तर इतना सा है कि सूत्र-संख्या २-९९ के स्थान पर सूत्र संख्या १-१७७ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' का लोप हो जाता है। शेष क्रिया प्रथम रूप वत् ही जानना॥

मृदुकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इस के प्राकृत रूप माउक्कं और माउअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *माउक्कं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२७ में की गई है।

द्वितीय रूप-(मृदुकम् =) माउअं में सूत्र-संख्या १-१२७ से 'ऋ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' और 'क्' दोनों व्यञ्जनों का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार हो कर द्वितीय रूप *माउअं* भी सिद्ध हो जाता है।

एक संस्कृत संख्या वाचक विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एक्को और एओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति

के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से एक्को और एओ दोनो रूप की सिद्धि हो जाती है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कोउहल्ल और कोउहल होते हैं। इनमें से प्रथम रूप कोउहल्लं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११७ में की गई है।

द्वितीय रूप-(कुतूहलम् =) कोउहल में सूत्र-संख्या-१-११७ से प्रथम ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-११७ से लोप हुए 'त्' में से शेप रहे हुए दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप कोउहलं भी सिद्ध हो जाता है।

व्याकुल सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप वाउल्लो और वाउलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप वाउल्लो की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१२१ मे की गई है।

द्वितीय रूप-(व्याकुल =) वाउलो में सूत्र संख्या २-७८ से य्' का लोप, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप वाउलो भी सिद्ध हो जाता है।

स्थूल. सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप थुल्लो और थोरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या २-७७ से 'स्' का लोप, १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-६६ से अन्त्य व्यञ्जन 'ल' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप थुल्लो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्थूल =) थोरो में सूत्र सख्या २-७७ से 'स्' का लोप, १-१२४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति, १-२५५ से 'ल' के स्थान पर 'र' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप थोरो भी सिद्ध हो जाता है।

हूतम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप हुत्तं और हूअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-६६ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप एव दोनों ही रूपों में सूत्र-सख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से हुत्तं और हूअं दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दुग्गं और दुक्खं रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १ १५३ में की गई है।

तूष्णीक संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप तुण्हिक्को और तुण्हिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व 'उ' की प्राप्ति २ ७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर ण्ह रूप आदेश की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर इ की प्राप्ति २ ९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ १७७ से 'क' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *तुण्हिक्को* और *तुण्हिओ* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मूकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मुक्को और मूओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १ ८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर उ की प्राप्ति ९९ से अन्त्य व्यञ्जन क को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १ १७७ से 'क' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *मुक्को* और *मूओ* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

स्थाणु संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप खण्णू और थाणू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'ख' रूप आदेश की प्राप्ति १-८४ से दीर्घ 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर अ की प्राप्ति, २ ९९ से अन्त्य व्यञ्जन ण को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *खण्णू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *थाणू* की सिद्धि सूत्र संख्या २-७ में की गई है।

थिण्णं और *थीणं* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७४ में की गई है।

अस्मदीयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अम्हक्केरं और अम्हकेरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' रूप आदेश की प्राप्ति १ १७७ से 'द्' का लोप, २ १४७ से संस्कृत 'इदमर्थक प्रत्यय 'ईय' के स्थान पर प्राकृत में 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति २-९९ से अनन्त्य व्यञ्जन क को वैकल्पिक रूप से द्वित्व क्क की प्राप्ति ३ ५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अम्हक्केरं* और *अम्हकेरं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तं च्चेअ और *तं चेअ* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

सो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ ९७ में की गई है। *च्चिअ* रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'प्लक्ष' में सभी व्यञ्जन सयुक्त स्थिति वाले हैं। अतः यह स्पष्टीकरण कर दिया गया है कि प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'प्ल' में स्थित 'ल' व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति प्राकृत-रूपान्तर में होती है। जैसे-प्लक्ष =पलक्खो ॥

प्लक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पलक्खो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-१०३ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१०३ ॥

र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्टयास्वित् ॥ २-१०४ ॥

एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व इकारो भवति ॥ र्ह ॥ अरिहइ । अरिहा । गरिहा । बरिहो ॥ श्री । सिरी ॥ ह्री । हिरी ॥ ह्रीतः । हिरीओ ॥ अह्रीकः । अहिरीओ ॥ कृत्स्नः । कसिणो ॥ क्रिया । किरिआ ॥ आर्षे तु । हयं नाणं किया-हीणं ॥ दिष्ट्या । दिट्ठिआ ॥

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में 'र्ह' रहा हुआ है, ऐसे शब्दो मे तथा 'श्री, ह्री, कृत्स्न, क्रिया, और दिष्टया 'शब्दों में रहे हुए सयुक्त व्यञ्जनों के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे—'र्ह' से सबधित शब्दों के उदाहरण'—अर्हति=अरिहइ ॥ अर्हा =अरिहा ॥ गर्हा=गरिहा । बर्ह =बरिहो ॥ इत्यादि ॥ श्री=सिरी ॥ ह्री=हिरी ॥ ह्रीत =हिरीओ ॥ अह्रीक =अहिरीओ ॥ कृत्स्न =कसिणो ॥ क्रिया=किरिआ ॥ आर्ष-प्राकृत में क्रिया का रूप 'किया' भी देखा जाता है। जैसेः—हतम् ज्ञानम् क्रिया-हीनम् = हयं नाण किया-हीण ॥ दिष्टया = दिट्ठिआ ॥ इत्यादि ॥

अर्हति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप अरिहइ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से सयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, और ३ १३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में सस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *अरिहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्हाः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप अरिहा होता हैं। इस में सूत्र-सख्या २-१०५ से सयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारांत पुल्लिग में प्राप्त 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त और लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति हो कर *अरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्हा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरिहा होता है। इस में सूत्र-सख्या २-१०४ से सयुक्त व्यञ्जन 'र्हा' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रुप 'इ' की प्राप्ति हो कर *गरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूक्ष्मम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप सुहमं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति' २ १०१ की वृत्ति से हलन्त व्यञ्जन 'ष्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति और आर्ष-रूप होने से (सूत्राभावात्) प्राप्त 'ष' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति, ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर आर्ष-प्राकृत रूप सुहमं सिद्ध हो जाता है। ॥२ १०१॥

स्नेहाग्न्योर्वा ॥ २-१०२ ॥

अनयोः संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्वोकारो वा भवति ॥ सणेहो । नेहो । अगणी । अग्गी ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'स्नेह' और 'अग्नि' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य (में स्थित) व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन में प्राकृत-रूपान्तर में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। जैसे —स्नेह =सणेहो अथवा नेहो और अग्नि = अगणी अथवा अग्गी ॥

स्नेह संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सणेहो और नेहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या—२-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सणेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप नेहो की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।

अग्नि संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप अगणी और अग्गी होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' के स्थान 'ण' की प्राप्ति और ३ १९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अगणी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (अग्नि =) अग्गी में सूत्र-संख्या २-७८ से 'न्' का लोप' २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अग्गी* भी सिद्ध हो जाता है। २ १०२ ॥

प्लक्षे लात् ॥२-१०३॥

प्लक्ष शब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्लात् पूर्वोद् भवति ॥ पलक्खो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'प्लक्ष' में सभी व्यञ्जन संयुक्त स्थिति वाले हैं। अतः यह स्पष्टीकरण कर दिया गया है कि प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'प्ल' में स्थित 'ल' व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति प्राकृत-रूपान्तर में होती है। जैसे-प्लक्षः=पलक्खो ॥

प्लक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पलक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०३ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१०३ ॥

र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्टयास्वित् ॥ २-१०४ ॥

एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व इकारो भवति ॥ र्ह ॥ अरिहइ । अरिहा । गरिहा । बरिहो ॥ श्री । सिरी ॥ ह्री । हिरी ॥ ह्रीतः । हिरीओ ॥ अह्रीकः । अहिरीओ ॥ कृत्स्नः । कसिणो ॥ क्रिया । किरिआ ॥ आर्षे तु । हयं नाणं क्रिया-हीणं ॥ दिष्ट्या । दिट्ठिआ ॥

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में 'र्ह' रहा हुआ है, ऐसे शब्दों में तथा 'श्री, ह्री, कृत्स्न, क्रिया, और दिष्ट्या 'शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जनों के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे—'र्ह' से संबंधित शब्दों के उदाहरणः—अर्हति=अरिहइ ॥ अर्हाः=अरिहा ॥ गर्हा=गरिहा । बर्हः=बरिहो ॥ इत्यादि ॥ श्री=सिरी ॥ ह्री=हिरी ॥ ह्रीतः=हिरीओ ॥ अह्रीकः=अहिरीओ ॥ कृत्स्नः=कसिणो ॥ क्रिया=किरिआ ॥ आर्ष-प्राकृत में क्रिया का रूप 'क्रिया' भी देखा जाता है। जैसे:—हतम् ज्ञानम् क्रिया-हीनम्=हयं नाणं क्रिया-हीणं ॥ दिष्ट्या=दिट्ठिआ ॥ इत्यादि ॥

अर्हति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप अरिहइ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *अरिहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्हाः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप अरिहा होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारांत पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त और लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति हो कर *अरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्हा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरिहा होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्हा' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति हो कर *गरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूक्ष्मम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप सुहुमं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-१०१ की वृत्ति से हलन्त व्यञ्जन 'ष्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति और आर्ष-रूप होने से (सूत्राभावात्) प्राप्त 'ष' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर आर्ष-प्राकृत रूप सुहुमं सिद्ध हो जाता है। ॥२-१०१॥

स्नेहाग्न्योर्वा ॥ २–१०२ ॥

अनयोः संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्वोकारो वा भवति ॥ सणेहो । नेहो । अगणी । अग्गी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्नेह' और 'अग्नि' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य (में स्थित) व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन में प्राकृत-रूपान्तर में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। जैसे:—स्नेहः=सणेहो अथवा नेहो और अग्नि:=अगणी अथवा अग्गी ॥

स्नेहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सणेहो और नेहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या—२-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'स' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सणेहो रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप नेहो की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।

अग्निः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप अगणी और अग्गी होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'ग' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान 'ण' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अगणी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (अग्निः=) अग्गी में सूत्र-संख्या २-७८ से 'न' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अग्गी* भी सिद्ध हो जाता है। २-१०२ ॥

प्लक्षे लात् ॥२–१०३॥

प्लक्ष शब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात् पूर्वोद् भवति ॥ पलक्खो ॥

क्रियाहीनम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप किया-हीण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किया-हीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिष्ट्या संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठिआ होता है इस में सूत्र-संख्या-२-१३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति, २-१०४ से प्राप्त 'ट्ठ' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *दिट्ठिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१०४ ॥

र्श- र्ष- तप्त- वज्रे वा ॥ २-१०५ ॥

र्शर्षयोस्तप्तवज्रयोश्च संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व इकारो वा भवति ॥ र्श । आयरिसो आयंसो । सुदरिसणो सुदंसणो । दरिसणं दंसणं ॥ र्ष । वरिसं वासं । वरिसा वासा । वरिस-सयं वास-सयं ॥ व्यवस्थित-विभाषया क्वचिन्नित्यम् । परामरिसो । हरिसो । अमरिसो ॥ तप्त । तविओ तत्तो ॥ वज्रम् = वइरं वज्जं ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों मे 'र्श' और 'र्ष' हो, ऐसे शब्दों मे इन 'र्श' और 'र्ष' संयुक्त व्यञ्जनो में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से 'तप्त' और 'वज्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' अथवा 'ज्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। 'र्श' के उदाहरण, जैसे — आदर्शः= आयरिसो अथवा आयंसो ॥ सुदर्शनः =सुदरिसणो अथवा सुदंसणो ॥ दर्शनम्=दरिसणं अथवा दंसणं ॥ 'र्ष' के उदाहरण, जैसे —वर्षम्=वरिसं अथवा वासं ॥ वर्षा=वरिसा अथवा वासा ॥ वर्ष-शतम्= वरिस-सयं अथवा वास-सयं ॥ इत्यादि ॥ व्यवस्थित-विभाषा से अर्थात् नियमानुसार किसी किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप इ की प्राप्ति नित्य रूप से भी होती है। जैसे —परामर्शः =परामरिसो ॥ हर्षः हरिसो और अमर्षः =अमरिसो ॥ सूत्रस्थ शेष उदाहरण इस प्रकार हैं—तप्त =तविओ अथवा तत्तो ॥ वज्रम्=वइरं अथवा वज्जं ॥

आदर्शः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आयरिसो और आयंसो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'द्' में शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, २-१०५ से हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आयरिसो* सिद्ध हो जाता है।

वर्हः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप बरिहो होता है। इन में सूत्र संख्या २ १०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *बरिहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्री संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरी होता है। इस में सूत्र-संख्या २ १०४ से संयुक्त व्यञ्जन श्री में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और १ २६० से प्राप्त 'रि' में स्थित 'श्' का 'स्' होकर *सिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ह्री संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिरी होता है। इस में सूत्र-संख्या २ १०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्री' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'ह्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और ३ २८ से शेष ईकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति' तदनुसार वैकल्पिक पक्ष होकर प्राप्त 'आ' प्रत्यय का अभाव होकर *हिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ह्रीत संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हिरीओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्री' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'ह्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १ १७७ से 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हिरीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अह्रीक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अहिरीओ होता है। इसकी साधनिका में हिरीओ उपरोक्त रूप में प्रयुक्त सूत्र ही लगाकर *अहिरीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कसिणो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७५ में की गई है।

क्रिया संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किरिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्रि' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और १ १७७ से 'य' का लोप होकर *किरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

दर्व रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ २०१ में की गई है।

ज्ञानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति प्राकृत व्याकरण में व्यत्यय का नियम साधारणतः है अतः तदनुसार प्राप्त 'ण' का और शेष 'न' का परस्पर में व्यत्यय, ३- ५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रियाहीनम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप किया-हीण होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-७६ से 'र्' का लोप, १-२२८ से 'न' का 'ण', ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किया-हीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिष्ट्या सस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठिआ होता है इस मे सूत्र-सख्या-२-१३४ से सयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति, २-८६ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति, २-१०४ से प्राप्त 'ट्ठ' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, और १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *दिट्ठिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१०४ ॥

र्श- र्ष- तप्त- वज्रे वा ॥ २-१०५ ॥

र्शर्षयोस्तप्तवज्रयोश्च संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व इकारो वा भवति ॥ र्श । आयरिसो आयंसो । सुदरिसणो सुदंसणो । दरिसणं दंसणं ॥ र्ष । वरिसं वासं । वरिसा वासा । वरिस-सयं वास-सयं ॥ व्यवस्थित-विभाषया क्वचिन्नित्यम् । परामरिसो । हरिसो । अमरिसो ॥ तप्त । तविओ तत्तो ॥ वज्रम् = वइरं वज्जं ॥

अर्थः—जिन सस्कृत शब्दो मे 'र्श' और 'र्ष' हो, ऐसे शब्दों मे इन 'र्श' और 'र्ष' सयुक्त व्यञ्जनो में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से 'तप्त' और 'वज्र' में स्थित सयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' अथवा 'ज्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। 'र्श' के उदाहरण, जैसे — आदर्शः= आयरिसो अथवा आयसो ॥ सुदर्शन =सुदरिसणो अथवा सुदसणो ॥ दर्शनम्=दरिसण अथवा दसण ॥ 'र्ष' के उदाहरण, जैसे —वर्षम्=वरिस अथवा वास ॥ वर्षा=वरिसा अथवा वासा ॥ वर्ष-शतम्= वरिस-सय अथवा वास-सय ॥ इत्यादि ॥ व्यवथित-विभाषा से अर्थात नियमानुसार किसी किसी शब्द में सयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नित्य रूप से भी होती है। जैसे —परामर्ष =परामरिसो ॥ हर्ष हरिसो और अमर्ष =अमरिसो ॥ सूत्रस्थ शेष उदाहरण इस प्रकार है—तप्त = तविओ अथवा तत्तो ॥ वज्रम्=वइरं अथवा वज्ज ॥

आदर्शः सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आयरिसो और आयसो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'द्' में शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति, २-१०५ से हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आयरिसो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप—(आदर्श: =) आयंसो में सूत्र-संख्या १ १७७ से 'द्' का लोप, १ १८० से लोप हुए द् में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति १ २६ से प्राप्त 'य' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से र् का लोप १-२६० से श को 'स' की प्राप्ति और ३ २ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आयंसो* भी सिद्ध हो जाता है।

सुदर्शनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुदरिसणो और सुदंसणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १ २६० से श को स की प्राप्ति १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सुदरिसणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(सुदर्शन: =) सुदंसणो में सूत्र-संख्या १-२६ से 'द' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति २-७९ से र् का लोप १-२६० से 'श' को स की प्राप्ति १ २२८ से न को ण की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सुदंसणो* भी सिद्ध हो जाता है।

दर्शनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दरिसणं और दंसणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २ १०५ से हलन्त व्यञ्जन र् में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति १ २६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १ २२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दरिसणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दर्शनम् =) दंसणं में सूत्र-संख्या १ २६ से 'द' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति २-७९ से र् का लोप १ २६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *दंसणं* की भी सिद्धि हो जाती है।

वर्षम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिसं और वासं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २ १०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वरिसं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-[वर्षम् =] वासं में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप १ ४३ से 'व' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति १-२६० से 'ष' के स्थान पर स की प्राप्ति ३ २५ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *वासं* भी सिद्ध हो जाता है।

वर्षा सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिसा और वासा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, और १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति होकर *वरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वासा रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-४३ में की गई है।

वर्ष-शतम्=संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिस-सय और वास-सय होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-२६० से द्वितीय 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वरिस-सयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(वर्ष-शतम्=) वास-सय में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४३ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त् का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेप रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *वास-सयं* भी सिद्ध हो जाता है।

परामर्ष सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप परामरिसो होता है। इस में सूत्र-सख्या २-१०५ से द्वितीय हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *परामरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हर्षः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरिसो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से ष के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *हरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अमर्षः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अमरिसो होता है। इस में सूत्र-सख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *अमरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तप्त संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप तविओ और तत्तो होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'प' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२३१ से प्राप्त 'पि' में स्थित 'प्' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा-विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *तविओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (तप्तः=) तत्तो में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'प' का लोप; २-८९ से शेष द्वितीय 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर द्वितीय रूप *तत्तो* भी सिद्ध हो जाता है।

वज्रम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइरं और वज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'ज्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'जि' में स्थित 'ज्' व्यञ्जन का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वइरं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *वज्जं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है। ॥२-१०५॥

लात् ॥ २-१०६ ॥

संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात्पूर्व इद् भवति ॥ किलिन्नं । किलिट्ठं । सिलिट्ठं । पिलुट्ठं । पिलोसो । सिलिम्हो । सिलेसो । सुक्किलं । सुइलं । सिलोओ । किलेसो । अम्बिलं । गिलाइ । गिलाणं । मिलाइ । मिलाणं । किलम्मइ । किलन्तं ॥ क्वचिन्न भवति ॥ कमो । पवो । विप्पवो । सुक्क पक्खो ॥ उत्प्लावयति । उप्पावेइ ॥

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में ऐसा संयुक्त व्यञ्जन रहा हुआ हो जिसमें 'ल' वर्ण अवश्य हो तो ऐसे उस 'ल' वर्ण सहित संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति प्राकृत रूपान्तर में होती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—क्लिन्नम्=किलिन्नं ॥ क्लिष्टम्=किलिट्ठं । श्लिष्टम्=सिलिट्ठं । प्लुष्टम्=पिलुट्ठं । प्लोष=पिलोसो ॥ श्लेष्मा=सिलिम्हो ॥ श्लेषः=सिलेसो ॥ शुक्लम्=सुक्किलं ॥ शुक्लम्=सुइलं ॥ श्लोकः=सिलोओ । क्लेशः=किलेसो ॥ आम्लम्=अम्बिलं ॥ ग्लायति=गिलाइ ॥ ग्लानम्=गिलाणं ॥ म्लायति=मिलाइ ॥ म्लानम्=मिलाणं ॥ क्लाम्यति=किलम्मइ ॥ क्लान्तम्=किलन्तं ॥ किसी-किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन वाले 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे—क्लमः=कमो ॥ प्लवः=पवो ॥ विप्लवः=विप्पवो ॥ शुक्ल-पक्षः=सुक्क-पक्खो ॥ और उत्प्लावयति=उप्पावेइ ॥ इत्यादि ॥ इन उदाहरणों में 'ल्' का लोप हो गया है, परन्तु 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों सर्व-स्थिति का ध्यान रखना चाहिये ॥

क्लिन्नम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलिन्नं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल के पूर्व मे स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' मे आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त- नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार हो कर *किलिन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लिष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलिट्ठं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल' के पूर्व मे स्थित हलन्तव्यञ्जन 'क्' मे आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति ३—२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किलिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लिष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सिलिट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, और शेष साधनिका उपरोक्त 'किलिट्ठं' के समान ही प्राप्त होकर *सिलिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लुष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पिलुट्ठं होता है। इसमे सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' को प्राप्ति, और शेष साधनिका उपरोक्त 'किलिट्ठं' के समान ही प्राप्त होकर *पिलुट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लोषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिलोसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष के स्थान पर स को प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *पिलोसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिलिम्हो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५५ में की गई है।

श्लेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप सिलेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-२६० से द्वितीय 'ष' के स्थान पर भी 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिलेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्लम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुक्किलं और सुइलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २ १०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित

हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'कि' में स्थित 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सुकिक्कं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(शुक्लम्=) सुइलं में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति १-१७७ से प्राप्त 'कि' में स्थित व्यञ्जन 'क्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सुइलं* भी सिद्ध हो जाता है।

श्लोकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिलोओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिलोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लेशः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किलेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किलेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आम्लम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्बिलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति २-५६ (?) हलन्त 'म्' में हलन्त 'ब्' रूप आगम की प्राप्ति २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित एवं आगम रूप से प्राप्त 'ब्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अम्बिलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्लायति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गिलाइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य' का लोप १-१० से लोप हुए 'य' में शेष रहे हुए स्वर 'अ' का लोप, ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गिलाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्लानम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गिलाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान

'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गिलाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लायति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मिलाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'म्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य्' का लोप, १-१० से लोप हुए 'य्' में से शेष रहे हुए स्वर 'अ' का लोप, ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत मे 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिलाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लानम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मिलाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'म्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिलाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लाम्यति संस्कृत क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप किलम्मइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-८४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति, और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत मे 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किलम्मइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लान्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलन्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-८४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किलन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लमः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विप्लवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विप्पवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में

अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विप्पओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्ल-पक्ष संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुक्क-पक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-७९ से 'ल' का लोप, २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुक्क-पक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्प्लावयति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप उप्पावेइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७७ से 'त्' का लोप २-७९ से 'ल' का लोप २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति ३-१४९ से प्रेरणार्थक क्रियापद के रूप में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'वय' के स्थान पर 'वे' का सद्भाव और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उप्पावेइ* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-१०६ ॥

स्याद्-भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात् ॥ २-१०७ ॥

स्यादादिषु चौर्य शब्देन समेषु च संयुक्तस्य यात् पूर्व इद् भवति ॥ सिआ । सिआ वाओ । भविओ । चेइअं ॥ चौर्यसम । चोरिअं । थेरिअं । भारिआ । गम्भीरिअं । गहीरिअं । आयरिओ । सुन्दरिअं । सोरिअं । वीरिअं । वरिअं । सूरिओ । धीरिअं । बम्हचरिअं ॥

अर्थ—स्यात्, भव्य एवं चैत्य शब्दों में और चौर्य के समान अन्य शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति प्राकृत रूपान्तर में होती है। जैसे—स्यात् = सिआ ॥ स्याद्वाद=सिआ-वाओ ॥ भव्य=भविओ। चैत्यम्= चेइअं ॥ 'चौर्य' शब्द के सामान स्थिति वाले शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है—चौर्यम्=चोरिअं। स्थैर्यम्=थेरिअं। भार्या=भारिआ। गाम्भीर्यम्=गम्भीरिअं। गाम्भीर्यम्=गहीरिअं। आचार्य=आयरिओ। सौन्दर्यम्= सुन्दरिअं। शौर्यम्=सोरिअं। वीर्यम्=वीरिअं। वर्यम्=वरिअं। सूर्य=सूरिओ। धैर्यम्=धीरिअं और ब्रह्मचर्यम्=बम्हचरिअं ॥

स्यात् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *सिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्याद्वाद संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआ-वाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१०७

से सयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व मे स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, २-७७ से प्रथम हलन्त 'द्' का लोप, १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपुसकलिंग मे सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत मे 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिआ-वाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भव्य सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भविओ होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-१०७ से सयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'व्' मे आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भविओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

चेइअ रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१५१ में की गई है।

चोरिअ रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-३५ में की गई है।

स्थैर्यम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थेरिअ होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७७ से हलन्त 'स्' का लोप, १-१४८ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति, २ १०७ से सयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थेरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भारिआ रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या २-२४ में की गई है।

गाम्भीर्यम् सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गम्भीरिअ और गहीरिअ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-१०७ से सयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *गम्भीरिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गाम्भीर्यम्=) गहीरिअ में सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से हलन्त व्यञ्जन 'म' का लोप, १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-१०७ से सयुक्त व्यञ्जन 'य के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *गहीरिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

आयरिओ रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-७३ में की गई है।

सुन्दरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६० में की गई है।

शौर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१५६ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वीर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वीरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वीरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूर्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सूरिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सूरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धीरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५५ से 'ऐ' के स्थान 'ई' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर धीरिअं रूप सिद्ध हो जाता है।

बम्हचरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५९ में की गई है॥ २-१०७॥

स्वप्ने नात् ॥२-१०८॥

स्वप्नशब्दे नकारात् पूर्व इद् भवति ॥ सिविणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्वप्न' के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे-स्वप्नः = सिविणो॥

स्निग्धे वादितौ ॥२-१०९॥

स्निग्धे संयुक्तस्य नात् पूर्वौ अदितौ वा भवतः ॥ सणिद्धं सिणिद्धं । पक्षे निद्धं ॥

अर्थ.-संस्कृत शब्द 'स्निग्ध के प्राकृत रूपान्तर में सयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से कभी आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है अथवा कभी आगम रूप 'इ' की प्राप्ति भी वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे:-स्निग्धम्=सणिद्ध अथवा सिणिद्धं, अथवा पक्षान्तर में निद्ध रूप भी होता है।

स्निग्धम् सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सणिद्धं, सिणिद्ध और निद्ध होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-१०९ से सयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-७७ से 'ग्' का लोप, २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सणिद्धं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्निग्धम्=) सिणिद्धं में सूत्र सख्या २-१०९ से सयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सिणिद्धं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(स्निग्धम्=) निद्धं मे सूत्र-सख्या २-७७ से हलन्त 'स्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप निद्ध भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१०९॥

कृष्णे वर्णे वा ॥ २-११० ॥

कृष्णे वर्णे वाचिनि संयुक्तास्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वौ अदितौ वा भवतः ॥ कसणो कसिणो कण्हो ॥ वर्ण इति किम् ॥ विष्णौ कण्हो ॥

अर्थ:—सस्कृत शब्द 'कृष्ण' का अर्थ जब 'काला' वर्ण वाचक हो तो उस अवस्था में इसके प्राकृत रूपान्तर में सयुक्त व्यञ्जन 'ण' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ष्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है अथवा कभी वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे —कृष्ण=(काला वर्णीय)=कसणो अथवा कसिणो ॥ कभी कभी कण्हो भी होता है।

प्रश्न.—मूल सूत्र में 'वर्ण'-(रग वाचक)-ऐसा शब्द क्यों दिया गया है?

उत्तर —संस्कृत साहित्य में 'कृष्ण' शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक तो 'काला-रग'-वाचक अर्थ होता है और दूसरा भगवान् कृष्ण-वासुदेव वाचक अर्थ होता है। इसलिये संस्कृत मूल शब्द 'कृष्ण' में

'ण' व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ष्' में आगम रूप 'अ' की अथवा 'इ' की प्राप्ति केवल वर्ण वाचक-स्थिति में ही होती है, सिवाय अर्थ-वाचक स्थिति में नहीं। ऐसा विशेष अर्थ बतलाने के लिये ही मूल-सूत्र में 'वर्ण' शब्द जोड़ा गया है। उदाहरण इस प्रकार है -कृष्णः=(विष्णु-वाचक)=कण्हो होता है। कसणो भी नहीं होता है और कसिणो भी नहीं होता है। यह अन्तर ध्यान में रखने योग्य है।

कसणो कसिणो और कण्हो इन तीनों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७५ में की गई है ॥२-११०॥

उच्चार्हति ॥ २-१११ ॥

अर्हत् शब्दे संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्वी उत् अदितौ च भवतः ॥ अरुहो अरहो अरिहो। अरुहन्तो अरहन्तो अरिहन्तो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'अर्हत्' के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में कभी आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है, कभी आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है, तो कभी आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अर्हत्' के प्राकृत में तीन रूप हो जाते हैं। उदाहरण इस प्रकार है—अर्हन्=अरुहो, अरहो और अरिहो ॥ दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—अर्हन्तः=अरुहन्तो अरहन्तो और अरिहन्तो ॥

अर्हन् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अरुहो अरहो और अरिहो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१११ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में क्रम से वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' 'अ' और 'इ' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अरुहो अरहो* और *अरिहो* ये तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अर्हन्तः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अरुहन्तो अरहन्तो और अरिहन्तो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१११ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में क्रम से वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' 'अ' और 'इ' की प्राप्ति और १-३७ से अन्त्य विसर्ग के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर क्रम से *अरुहन्तो अरहन्तो* और *अरिहन्तो* ये तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥२-१११॥

पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा ॥२-११२॥

एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व उद् वा भवति ॥ पउमं पोम्मं ॥ छउमं छम्मं। मुरुक्खो मुक्खो। दुवारं। पक्षे। वारं। देरं। दारं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द पद्म छद्म मूर्ख और द्वार में प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'म' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' में संयुक्त 'ख' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में और संयुक्त

व्यञ्जन 'द्म' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार हैं —पद्मम्=पउमं अथवा पोम्मं ॥ छद्मन्=छउमं अथवा छम्मं ॥ मूर्ख =मुरुक्खो अथवा मुक्खो ॥ द्वारम्=दुवारं और पक्षान्तर में द्वारम् के वार, देरं और दारं रूप भी होते हैं।

पउमं और पोम्मं दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६१ में की गई है।

छद्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छउमं और छम्मं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-११२ से संयुक्त व्यञ्जन द्म में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'द्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति १-१७७ से प्राप्त 'दु' में से 'द्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *छउमं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(छद्मम्=) छम्मं में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त 'द्' का लोप, २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *छम्मं* भी सिद्ध हो जाता है।

मूर्ख' संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मुरुक्खो और मुक्खो होते हैं। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-११२ से संयुक्त व्यञ्जन र्ख' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति, २-८९ से शेष ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मुरुक्खो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मुक्खो* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-८९ में की गई है।

दुवारं, वारं, देरं और दारं इन चारों रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७९ में की गई है ॥२-११२॥

तन्वीतुल्येषु ॥२-११३॥

उकारान्ता ङीप्रत्ययान्तास्तन्वी तुल्याः। तेषु संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व उकारो भवति ॥ तणुवी। लहुवी। गरुवी। बहुवी। पुहुवी। मउवी॥ क्वचिदन्यत्रापि। स्रुघ्नम्। सुरुग्घं ॥ आर्षे। सूक्ष्मम्। सुहुमं ॥

अर्थ:-उकारान्त और 'ङी' अर्थात् 'ई' प्रत्ययान्त तन्वी=(तनु+ई=तन्वी) इत्यादि ऐसे शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है —

तन्वी=(तनु+ई=) तणुवी। लघ्वी=(लघु+ई=) लहुवी। गुर्वी=(गुरु+ई=) गरुवी। बह्वी=(बहु+ई=) बहुवी। पृथ्वी=(पृथु+ई=) पुहुवी। मृद्वी=(मृदु+ई=) मउवी॥ इत्यादि।

॥ एक स्वरे श्वः-स्वे ॥२-११४॥

एक स्वरे पदे-यौ श्वस् स्व इत्येतौ तयोरन्त्य व्यञ्जनात् पूर्व उद् भवति ॥ श्वः कृतम् । सुवे कयं ॥ स्वे जनाः ॥ सुवे जणा ॥ एक स्वर इति किम् । स्व-जनः । स-यणो ॥

अर्थः—जब 'श्वस्' और 'स्व' शब्द एक स्वर वाले ही हों, अर्थात् इन दोनों मे से कोई भी समास रूप में अथवा अन्य किसो रूप में स्थित न हों, और इनकी स्थिति एक स्वर वाली ही हो तो इनमें स्थित सयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' अथवा 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है—श्व कृतम्=सुवेकयं ॥ स्वेजना =सुवे जणा ॥

प्रश्न-'एक स्वर वाला' ही हो, तभी उनमे आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है; ऐसा क्यो कहा गया है?

उत्तरः—यदि श्वः और स्व शब्द में समास आदि में रहने के कारण से एक से अधिक स्वरों की उपस्थिति होगी तो इनमें स्थित सयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'श्' अथवा 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे-स्व-जन =स-यणो ॥ इस उदाहरण में 'स्व' शब्द 'जन' के साथ सयुक्त होकर एक पद रूप बन गया है, और इससे इसमें तीन स्वरों की प्राप्ति जैसी स्थिति बन गई है, अत 'स्व' मे स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति का भी अभाव हो गया है। यों अन्यत्र भी जान लेना एव एक स्वर से प्राप्त होने वाली स्थिति का भी ध्यान रख लेना चाहिये।

श्वः (=श्वस्) संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सुवे होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-११४ से सयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति, १-२६० से प्राप्त 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-५७ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप होकर *सुवे* रूप सिद्ध हो जाता है।

कय रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-१२६ में की गई है।

स्वे सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुवे होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-११४ से सयुक्त व्यञ्जन 'वे' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप उ' की प्राप्ति होकर *सुवे* रूप सिद्ध हो जाता है।

जनाः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जणा होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२२८ से न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में और अकारान्त पुल्लिग मे प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त और लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *जणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

'र' वर्ण का और 'ण' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय होकर *वाणारसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

एषः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८५ से मूल संस्कृत एतद् सर्वनाम के स्थान पर एष रूप का आदेश प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'एसो' रूप सिद्ध हो जाता है। एष =एसो की साधनिका निम्न प्रकार से भी हो सकता है। सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-३७ से 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *एसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

करेणु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप—(पुल्लिग मे)—करेणू होता है। इसमे सूत्र-संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे उकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *करेणू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-११६॥

आलाने लनोः ॥ २-११७ ॥

आलान शब्दे लनोर्व्यत्ययो भवति ॥ आणालो । आणाल-क्खम्भो ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द आलान के प्राकृत-रूपान्तर में 'ल' वर्ण का और 'न' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे -आलान =आणालो ॥ आलान-स्तम्भ = आणाल-क्खम्भो ॥

आलान. संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणालो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-११७ से 'ल' वर्ण का और 'न' वर्ण का परस्पर मे व्यत्यय और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय का प्राप्ति होकर *आणालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आणाल-क्खम्भो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९७ मे की गई है ॥२-११७॥

अचलपुरे च-लोः ॥२-११८॥

अचलपुर शब्दे चकार लकारयो र्व्यत्ययो भवति ॥ अलचपुरं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द अचलपुर के प्राकृत-रूपान्तर में 'च' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे -अचलपुरम् =अलचपुरं ॥

अचलपुरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर अलचपुरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-११८ से 'च' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अलचपुरं रूप सिद्ध हो जाता है ॥

महाराष्ट्रे ह-रोः ॥२-११९॥

महाराष्ट्र शब्दे हरोर्व्यत्ययो भवति ॥ मरहट्ठं ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द महाराष्ट्र के प्राकृत-रूपान्तर में 'ह' वर्ण का और र वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे-महाराष्ट्रम्=मरहट्ठं ॥

मरहट्ठं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ ६६ में की गई है ॥२ ११९॥

ह्रदे ह दो ॥२ १२०॥

ह्रद शब्दे हकार दकारयोर्व्यत्ययो भवति ॥ द्रहो ॥ आर्षे । हरए महपुण्डरिए ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द ह्रद के प्राकृत रूपान्तर में ह वर्ण का और 'द' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे—ह्रदः=द्रहो ॥ आर्ष-प्राकृत में ह्रद का रूप हरए भी होता है। जैसे-ह्रदे महापुण्डरीके=हरए महपुण्डरिए ॥

द्रहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या -८० में की गई है।

हरए आर्ष-प्राकृत रूप है। अतः साधनिका का अभाव है। महापुण्डरीके संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महपुण्डरिए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-४ से आ के स्थान पर अ की प्राप्ति १-१०१ से ई के स्थान पर इ की प्राप्ति १-१७७ से 'क्' का लोप और ४-२ ७ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ए प्रत्यय की प्राप्ति तथा १ १ से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ का आगे 'ए प्रत्यय की प्राप्ति हो जाने से लोप होकर महपुण्डरिए रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१२०॥

हरिताले र लोर्न वा ॥२-१२१॥

हरिताल शब्दे रकारलकारयो र्व्यत्ययो वा भवति । हलिआरो हरिआलो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द हरिताल के प्राकृत रूपान्तर में 'र वर्ण का और 'ल वर्ण का परस्पर में व्यत्यय वैकल्पिक रूप से होता है। जैसे -हरितालः हलिआरो अथवा हरिआलो ॥

हरितालः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हलिआरो और हरिआलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २ १२१ से 'र और 'ल' का परस्पर में व्यत्यय, १ १७७ से 'त का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप हलिआरो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(हरितालः=) हरिआलो में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप हरिआलो भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२१॥

लघुके ल-होः ॥ २-१२२ ॥

लघुक शब्दे घस्य हत्वे कृते लहोर्व्यत्ययो वा भवति ॥ हलुअं । लहुअ ॥ घस्य व्यत्यये कृते पदादित्वात् हो न प्राप्नोतीति हकरणम् ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'लघुक' में स्थित 'घ' व्यञ्जन के स्थान पर सूत्र-सख्या १-१८७ से 'ह' आदेश की प्राप्ति करने पर इस शब्द के प्राकृत रूपान्तर मे प्राप्त ह' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय होता है। जैसे:—लघुकम्=हलुअ अथवा लहुअ ॥ सूत्र-सख्या १-१८७ में ऐसा विधान है कि ख, घ, थ, ध और भ वर्ण शब्द के आदि मे स्थित न हों तो इन वर्णो के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। तदनुसार 'लघुक' में स्थित 'घ' के स्थान पर प्राप्त होने वाला 'ह' शब्द के आदि स्थान पर आगया है, एव इस विधान के अनुसार 'घ' के स्थान पर इस आदि 'ह' की प्राप्ति नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु यहा 'ह' की प्राप्ति व्यत्यय नियम से हुई है, अत सूत्र-सख्या १-१८७ से अबाधित होता हुआ और इस अधिकृत विधान से व्यत्यय को स्थिति को प्राप्त करता हुआ 'ह' आदि में स्थित रहे तो भी नियम विरूद्ध नहीं है।

लघुकम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप हलुअ और लहुअ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' आदेश की प्राप्ति, २-१२२ से प्राप्त 'ह' वण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय, १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से हलुअं और लहुअं दोनो रूपों को सिद्धि हो जाती है ॥२-१२२॥

ललाटे ल-डोः ॥२-१२३॥

ललाट शब्दे लकार डकारयो र्व्यत्ययो भवति वा ॥ णडालं । णलाडं । ललाटे च [१-२५७] इति आदे र्लस्य णविधानादिह द्वितीयो लः स्थानी ॥

अर्थ—सस्कृत शब्द 'ललाट' के प्राकृत रूपान्तर में सूत्र-सख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर प्राप्त 'ड' वर्ण का और द्वितीय 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय होता है। जैसे—ललाटम् 'णडाल' अथवा णलाड ॥ मूल सस्कृत शब्द ललाट में दो लकार है, इनमे से प्रथम 'ल' कार के स्थान पर सूत्र-सख्या १-२५७ से 'ण' की प्राप्ति हो जाती है। अत सत्र-संख्या २-१२३ मे जिन 'ल' वर्ण की और 'ड' वर्ण की परस्पर में व्यत्यय स्थिति में बतलाई है, उनमें 'ल' कार द्वितीय के सम्बध में विधान है—ऐसा समझना चाहिये ॥

ललाटम् सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णडाल और णलाड होते हैं। इनमें से प्रथम रूप णडाल की सिद्धि सत्र-सख्या १-४७ में की गई है। द्वितीय रुप-(ललाटम्=) णलाड में सत्र-सख्या १-२५७

से प्रथम 'स' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति १-११५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *णलाडं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२३॥

ह्ये ह्यो ॥२-१२४॥

ह्यशब्दे हकारयकारयोर्व्यत्ययो वा भवति ॥ गुह्यम् । गुय्हं गुज्झं ॥ सह्यः । सय्हो सज्झो

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में 'ह्य' व्यञ्जन रहे हुए हों तो ऐसे संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में 'ह' वर्ण का और 'य' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय हो जाता है । जैसे—गुह्यम् = गुय्हं अथवा गुज्झं और सह्य = सय्हो अथवा सज्झो ॥ इत्यादि अन्य शब्दों के संबंध में भी यही स्थिति जानना ॥

गुह्यम् संस्कृत विशेषण रूप है । इसके प्राकृत रूप गुय्हं और गुज्झं होते हैं । इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२४ से 'ह' वर्ण की और 'य' वर्ण की परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप गुय्हं सिद्ध हो जाता है ।

द्वितीय रूप *गुज्झं* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२६ में की गई है ।

सह्यः संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप सय्हो और सज्झो होते हैं । इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२४ से 'ह' वर्ण का और 'य' वर्ण की परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सय्हो* सिद्ध हो जाता है ।

द्वितीय रूप *सज्झो* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२६ में की गई है ॥२-१२४॥

स्तोकस्य थोक्क-थोव-थेवा ॥२-१२५॥

स्तोक शब्दस्य एते त्रय आदेशा भवन्ति वा ॥ थोक्कं थोवं थेवं । पक्षे । थोअं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द स्तोक के प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से तीन आदेश इस प्रकार से होते हैं । स्तोकम्=थोक्कं थोवं और थेवं ॥ वैकल्पिक-स्थिति होने से प्राकृत-व्याकरण के सूत्रों के विधानानुसार स्तोकम् का प्राकृत रूप थोअं भी होता है ।

स्तोकम् संस्कृत विशेषण रूप है । इसके प्राकृत रूप चार होते हैं । जो कि इस प्रकार हैं—थोक्कं थोवं थेवं और थोअं । इनमें से प्रथम तीन रूपों की प्राप्ति सूत्र-संख्या २-१२५ के विधानानुसार आदेश

रूप से होती है, आदेश-प्राप्त-रूप में साधनिका का अभाव होता है। ये तीनो रूप प्रथमान्त हैं, अत इनमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर ये प्रथम तीनो रूप थक्कं, थोवं और थेवं सिद्ध हो जाते हैं।

चतुर्थ रूप थोअं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४५ मे की गई है।

दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ ॥२-१२६॥

अनयोरेतावादेशौ वा भवतः ॥ धूआ दुहिआ । बहिणी भइणी ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द दुहितृ-(प्रथमान्त रूप दुहिता) के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश रूप से 'धूआ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से संस्कृत शब्द भगिनी के स्थान पर भी वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश-रूप से 'बहिणी' की प्राप्ति होती है। जैसे—दुहिता=धूआ अथवा दुहिआ और भगिनी=बहिणी अथवा भइणी ॥

दुहिता संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप धूआ और दुहिआ होते हैं। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२६ से संपूर्ण संस्कृत शब्द दुहिता के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'धूआ' रूप आदेश की प्राप्ति, अत साधनिका का अभाव होकर प्रथम रूप धूआ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दुहिता=) दुहिआ में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर द्वितीय रूप दुहिआ की सिद्धि हो जाती है।

भगिनी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहिणी और भइणी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२६ से संपूर्ण संस्कृत शब्द भगिनी के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'बहिणी' रूप आदेश की प्राप्ति, अत साधनिका का अभाव होकर प्रथम रूप बहिणी सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(भगिनी=) भइणी में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप भइणी भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२६॥

वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ २-१२७॥

वृक्ष-क्षिप्तयोर्यथासंख्यं रुक्ख-छूढ इत्यादेशौ वा भवतः । रुक्खो वच्छो । छूढं खित्तं । उच्छूढं । उक्खित्तं ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द वृक्ष के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा मे आदेश रूप से 'रुक्ख' की प्राप्ति होती है। जैसे.—वृक्ष.=रुक्खो अथवा वच्छो ॥ इसी प्रकार से संस्कृत शब्द क्षिप्त के स्थान

पर भी वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश-रूप से 'छूढ' की प्राप्ति होती है। जैसे -क्षिप्तम्= 'छूढं' अथवा खित्तं ॥

दूसरा उदाहरण इस प्रकार है —उत्क्षिप्तम्=उच्छूढं अथवा उक्खित्तं ॥

वृक्ष संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रुक्खो और वच्छो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१२७ से वृक्ष के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'रुक्ख' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप रुक्खो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वच्छो की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१७ में की गई है।

क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप छूढं और खित्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप छूढं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९९ में की गई है।

द्वितीय रूप-(क्षिप्तम्=) खित्तं में सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप खित्तं भी सिद्ध हो जाता है।

उत्क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उच्छूढं और उक्खित्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२७ से संस्कृत शब्दांश 'क्षिप्त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से आदेश रूप से 'छूढ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'छूढ' में स्थित 'छ' वर्ण को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप उच्छूढं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(उत्क्षिप्तम्=) उक्खित्तं में सूत्र-संख्या २-७७ से प्रथम हलन्त 'त्' और हलन्त 'प्' का लोप, २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति पुनः २-८९ से लोप हुए 'प' में से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप उक्खित्तं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२७॥

वनितायाः विलया ॥२-१२८॥

वनिता शब्दस्य विलया इत्यादेशो वा भवति ॥ विलया वणिआ ॥ विलयेति संस्कृते पीति केचित् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'वनिता' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'विलया' ऐसा आदेश होता है। जैसे.—वनिता=(वैकल्पिक-आदेश)-विलया और (व्याकरण-सम्मत)-वणिआ ॥ कोई कोई वैयाकरण-आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि संस्कृत-भाषा मे 'वनिता' अर्थ वाचक 'विलया' शब्द उपलब्ध है और उसी 'विलया' शब्द का ही प्राकृत-रूपान्तर विलया होता है। ऐसी मान्यता किन्हीं किन्हीं आचाय की जानना ॥

वनिता संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विलया और वणिआ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या २-१२८ से आदेश रूप से *विलया* होता है।

द्वितीय रूप-(वनिता=) वणिआ में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *वणिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विलया संस्कृत रूप (किसी २ आचार्य के मत से-) है, इसका प्राकृत रूप भी *विलया* ही होता है।

गौणस्येषतकूरः ॥२-१२९॥

ईषच्छब्दस्य गौणस्य कूर इत्यादेशो वा भवति ॥ चिंचव्व कूर-पिक्का । पक्षे ईसि ॥

अर्थ—वाक्यांश में गौण रूप से रहे हुए संस्कृत अव्यय रूप 'ईषत्' शब्द के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'कूर' आदेश की प्राप्ति वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे—चिंचा इव ईषत्-पक्वा=चिंचव्व कूर-पिक्का अर्थात् चिचा—(वस्तु-विशेष) के समान थोड़ीसी पकी हुई ॥ इस उदाहरण में 'ईषत्' के स्थान पर 'कूर' आदेश की प्राप्ति हुई है। पक्षान्तर में 'ईषत्' का प्राकृत रूप ईसि होता है। 'ईषत्-पक्वा में दो शब्द है; प्रथम शब्द गौण रूप से रहा हुआ है और दूसरा शब्द मुख्य रूप से स्थित है। इस सूत्र में यह उल्लेख कर दिया गया है कि 'कूर' रूप आदेश की प्राप्ति 'ईषत्' शब्द के गौण रहने की स्थिति में होने पर ही होती है। यदि 'ईषत्' शब्द गौण नहीं होकर मुख्य रूप से स्थित होगा तो इसका-रूपान्तर 'ईसि' होगा, न कि 'कूर' आदेश, यह पारस्परिक-विशेषता ध्यान में रहनी चाहिये।

चिचा देशज भाषा का शब्द है। इसका प्राकृत-रूपान्तर चिच होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति होकर *चिंच* रूप सिद्ध हो जाता है।

'व्व' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

ईषत्-पक्वा संस्कृत वाक्याश है। इसका प्राकृत रूप कूर-पिक्का होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१२९ से 'ईषत्' अव्यय के स्थान पर गौण रूप से रहने के कारण से 'कूर' रूप आदेश की प्राप्ति, १-४७ से 'प' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, २-७९ से 'व्' का लोप और २-८९ से शेष द्वितीय 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति होकर *कूर-पिक्का* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप पूर्ण सिद्ध हो जाता है। ॥२-१३५॥

त्रस्तस्य हित्थ तट्ठौ ॥२-१३६॥

त्रस्त शब्दस्य हित्थतट्ठ इत्यादेशौ वा भवतः ॥ हित्थं । तट्ठं तत्थं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'त्रस्त' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'हित्थ' और 'तट्ठ' ऐसे दो रूपों की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे—त्रस्तम्=(आदेश-प्राप्त रूप)—हित्थं और तट्ठं तथा पक्षान्तर में-(व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप)-तत्थं ॥

त्रस्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप हित्थं तट्ठं और तत्थं होते हैं। इनमें प्रथम दो रूप *हित्थं* और *तट्ठं* सूत्र-संख्या २-१३६ से आदेश-प्राप्त रूप हैं।

तृतीय रूप—(त्रस्तम्=) तत्थं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' में रहे हुए 'र्' का लोप, २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तृतीय रूप *तत्थं* भी सिद्ध हो जाता है। ॥२-१३६॥

बृहस्पतौ बहोभयः ॥२-१३७॥

बृहस्पति शब्दे बह इत्यस्यावयवस्य भय इत्यादेशो वा भवति ॥ भयस्सई भयप्फई ॥ पक्षे । बहस्सई । बहप्फई बहप्पई ॥ वा बृहस्पतौ (१-१३८) इति इकारे उकारे च बिहस्सई । बिहप्फई । बिहप्पई । बुहस्सई । बुहप्फई । बुहप्पई ।

अर्थ—संस्कृत शब्द 'बृहस्पति' में स्थित 'बह' शब्दावयव के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'भय' ऐसे आदेश-रूप की प्राप्ति होती है। जैसे—बृहस्पतिः=भयस्सई भयप्फई और भयप्पई ॥ पक्षान्तर में ये तीन रूप होते हैं—बहस्सई बहप्फई और बहप्पई ॥ सूत्र-संख्या १-१३८ से 'बृहस्पति' शब्द में रहे हुए 'ऋ' स्वर के स्थान पर वैकल्पिक रूप से कभी 'इ' स्वर की प्राप्ति होती है तो कभी 'उ' स्वर की प्राप्ति होती है तदनुसार बृहस्पति शब्द के छह प्राकृत रूप और हो जाते हैं जो कि क्रम से इस प्रकार हैं—बिहस्सई बिहप्फई बिहप्पई बुहस्सई बुहप्फई और बुहप्पई ॥

भयस्सई और भयप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः प्रथम और द्वितीय रूप हैं।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका-(बारह रूपों में से तीसरा) प्राकृत रूप भयप्पई होता है।

इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २ १३७ से प्राप्त 'बह' शब्दावयव के स्थान पर आदेश रूप से 'भय' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *भयप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है, इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपों में से छठा) बहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका 'भयप्पई' के समान ही होकर *बहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहस्सई और बहप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः चौथा और पाँचवा रूप है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपो मे से सातवां) बिहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रुप से 'इ' की प्राप्ति, २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर वैकल्पिक रुप से 'स' की प्राप्ति, २ ८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति, और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिहप्फई आठवे रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३८ में की गई हैं।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपो में से नववाँ) बिहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपों में से दसवाँ)-बुहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त बिहस्सई रूप के समान ही होकर *बुहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुहप्फई ग्यारहवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३८ में की गई है।

बुहप्पई बारहवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५३ में की गई है ॥२-१३७॥

मलिनोभय-शुक्ति-छुप्तारब्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्काढत्त-पाइक्कं ॥२-१३८॥

मलिनादीनां यथासंख्यं मइलादय आदेशा वा भवन्ति ॥ मलिनम् । मइलं मलिणं ॥ उभयं । अवहं । उवहमित्यपि केचित् । अवहोआस । उभयबलं ॥ आर्षे । उभयोकालं ॥ शुक्तिः । सिप्पी सुत्ती ॥ छुप्तः । छिक्को छुत्तो ॥ आरब्धः । आढत्तो आरद्धो ॥ पदातिः । पाइक्को पयाई ॥

स्त्रिया इत्थी ॥२-१३०॥

स्त्री शब्दस्य इत्थी इत्यादेशो वा भवति ॥ इत्थी थी ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'स्त्री' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'इत्थी' रूप आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे: स्त्री=इत्थी अथवा थी ॥

स्त्री संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप इत्थी और थी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप की प्राप्ति सूत्र-संख्या २-१३० से 'स्त्री' शब्द के स्थान पर आदेश रूप से होकर प्रथम रूप *इत्थी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्त्री=) 'थी' में सूत्र-संख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति और २-७९ से 'त्र्' में स्थित 'र्' का लोप होकर द्वितीय रूप *थी* सिद्ध हो जाता है। ॥१३०॥

धृतेर्दिहिः ॥२-१३१॥

धृति शब्दस्य दिहिरित्यादेशो वा भवति ॥ दिही धिई ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'धृति' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'दिहि' रूप आदेश होता है। जैसे-'धृति'=दिही अथवा धिई ॥

दिही रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२०९ में की गई है।

धिई रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है। ॥२-१३१॥

मार्जारस्य मञ्जर-वञ्जरौ ॥२-१३२॥

मार्जार शब्दस्य मञ्जर वञ्जर इत्यादेशौ वा भवतः ॥ मञ्जरो वञ्जरो। पक्षे मज्जारो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'मार्जार' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से दो आदेश 'मञ्जरो' और 'वञ्जरो' होते हैं। जैसे-'मार्जार'=मञ्जरो अथवा वञ्जरो ॥ पक्षान्तर में व्याकरण-सूत्र सम्मत तीसरा रूप 'मज्जारो' होता है।

मार्जारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप *मञ्जरो वञ्जरो* और *मज्जारो* होते हैं। इनमें से प्रथम दो रूप सूत्र-संख्या २-१३२ से आदेश रूप से और होते हैं। तृतीय रूप-मज्जारो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है। ॥२-१३२॥

वैडूर्यस्य वेरुलिअं ॥२-१३३॥

वैडूर्य शब्दस्य वेरुलिअ इत्यादेशो वा भवति ॥ वेरुलिअं ॥ वेडुज्जं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'वैडूर्य' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'वेरुलिअ' आदेश

होता है। जैसे:-वैडूर्यम् = (आदेश रूप) वेरुलिअं और पक्षान्तर में—(व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप)—वेडुज्जं ॥

वैडूर्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वेरुलिअं और वेडुज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या २-१३३ से आदेश प्राप्त रूप है।

द्वितीय रूप-(वैडूर्यम्=) वेडुज्जं में सूत्र-संख्या-१-१४८ से दीर्घ 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति तथा १-८४ से दीर्घ 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' रूप आदेश की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप वेडुज्जं सिद्ध हो जाता है ॥२-१३३॥

एण्हिं एत्ताहे इदानीमः ॥२-१३४॥

अस्य एतावादेशौ वा भवतः ॥ एण्हिं एत्ताहे । इआणिं ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'इदानीम्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'एण्हिं' और 'एत्ताहे' ऐसे दो रूपों की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे-इदानीम्=(आदेश-प्राप्त रूप)-एण्हिं और एत्ताहे तथा पक्षान्तर में-(व्याकरण-सूत्र-सम्मत-रूप) इआणिं ॥

एण्हिं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका आदेश प्राप्त रूप एत्ताहे सूत्र-संख्या २-१३४ से होता है।

इआणिं रूप को सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है ॥२-१३४॥

पूर्वस्य पुरिमः ॥२-१३५॥

पूर्वस्य स्थाने पुरिम इत्यादेशो वा भवति ॥ पुरिमं पुव्वं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पूर्व' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'पुरिम' ऐसे रूप की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे—पूर्वम्=(आदेश प्राप्त रूप)—पुरिमं और पक्षान्तर में—(व्याकरण-सूत्र-सम्मत-रूप)-पुव्वं ॥

पूर्वम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पुरिमं और पुव्वं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप पुरिमं सूत्र-संख्या २-१३५ से आदेश प्राप्त रूप है।

द्वितीय-रूप-(पूर्वम्) = पुव्वं में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'र्' के लोप होने के बाद 'शेष' 'व' को द्वित्व 'व्व' की

प्राप्ति' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप पुर्फं सिद्ध हो जाता है। ॥२-१३५॥

त्रस्तस्य हित्थ तट्टौ ॥२-१३६॥

त्रस्त शब्दस्य हित्थतट्ठ इत्यादेशौ वा भवतः ॥ हित्थं । तट्ठं तत्थं ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'त्रस्त' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'हित्थ' और 'तट्ठ' ऐसे दो रूपों की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे—त्रस्तम्=(आदेश-प्राप्त रूप)—हित्थं और तट्ठं तथा पक्षान्तर में-(व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप)—तत्थं ॥

त्रस्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप हित्थं, तट्ठं और तत्थं होते हैं। इनमें प्रथम दो रूप *हित्थं* और *तट्ठं* सूत्र-संख्या २-१३६ से आदेश-प्राप्त रूप हैं।

तृतीय रूप—(त्रस्तम्=) तत्थं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' में रहे हुए 'र्' का लोप, २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तृतीय रूप *तत्थं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१३६॥

बृहस्पतौ बहोभयः ॥२-१३७॥

बृहस्पति शब्दे बह इत्यस्यावयवस्य भय इत्यादेशो वा भवति ॥ भयस्सई भयप्फई ॥ पक्षे । बहस्सई । बहप्फई बहप्पई ॥ वा बृहस्पतौ (१-१३८) इति इकारे उकारे च बिहस्सई । बिहप्फई । बिहप्पई । बुहस्सई । बुहप्फई । बुहप्पई ।

अर्थ —संस्कृत शब्द 'बृहस्पति' में स्थित 'बह' शब्दावयव के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'भय' ऐसे आदेश-रूप की प्राप्ति होती है। जैसे—बृहस्पतिः=भयस्सई, भयप्फई और भयप्पई ॥ पक्षान्तर में ये तीन रूप होते हैं—बहस्सई, बहप्फई और बहप्पई ॥ सूत्र-संख्या १-१३८ से 'बृहस्पति' शब्द में रहे हुए 'ऋ' स्वर के स्थान पर वैकल्पिक रूप से कभी 'इ' स्वर की प्राप्ति होती है तो कभी 'उ' स्वर की प्राप्ति होती है; तदनुसार बृहस्पति शब्द के छह प्राकृत रूप और हो जाते हैं जो कि क्रम से इस प्रकार हैं—बिहस्सई, बिहप्फई, बिहप्पई, बुहस्सई, बुहप्फई और बुहप्पई ॥

भयस्सई और भयप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः प्रथम और द्वितीय रूप हैं।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका-(बारह रूपों में से तीसरा) प्राकृत-रूप भयप्पई होता है।

इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१३७ से प्राप्त 'बह' शब्दावयव के स्थान पर आदेश रूप से 'भय' की प्राप्ति, २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *भयप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है, इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपों में से छठा) बहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका 'भयप्पई' के समान ही होकर *बहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहस्सई और बहप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः चौथा और पाँचवा रूप है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपों मे से सातवां) बिहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इ' की प्राप्ति, २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'स' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति, और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिहप्फई आठवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३८ में की गई हैं।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपों में से नववाँ) बिहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपो में से दसवाँ)-बुहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त बिहस्सई रूप के समान ही होकर *बुहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुहप्फई ग्यारहवें रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३८ में की गई है।

बुहप्पई बारहवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५३ मे की गई है ॥२-१३७॥

मलिनोभय-शुक्ति-छुप्तारब्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्काढत्त-पाइक्कं॥२-१३८॥

मलिनादीनां यथासंख्यं मइलादय आदेशा वा भवन्ति ॥ मलिनम्। मइलं मलिणं ॥ उभयं। अवहं। उवहमित्यपि केचित्। अवहोआस। उभयबलं ॥ आर्षे। उभयोकालं ॥ शुक्तिः। सिप्पी सुत्ती ॥ छुप्तः। छिक्को छुत्तो ॥ आरब्धः। आढत्तो आरद्धो ॥ पदातिः। पाइक्को पयाई ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द "मलिन, उभय, शुक्ति, छुप्त, आरब्ध और पदाति" के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से क्रम से इस प्रकार आदेश रूप होते हैं, 'मइल, अवह, सिप्पि, छिक्क आढत और पाइक्क ॥ आदेश प्राप्त रूप और व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप क्रम से इस प्रकार है—मलिनम् = मइलं अथवा मलिणं ॥ उभयं = अवहं अथवा उभयं ॥ कोई कोई वैयाकरणाचार्य "उभय" का प्राकृत रूप "उवह" भी मानते हैं। जैसे—उभयावकाशम् = अवहोआसं पक्षान्तर में "उभय" का उदाहरण "उभयबलं" भी होता है। आर्ष—प्राकृत में भी 'उभय' का उदाहरण 'उभयोकालं' जानना। शुक्तिः = सिप्पी अथवा सुत्ती ॥ छुप्त = छिक्को अथवा छुत्तो ॥ आरब्ध = आढत्तो अथवा आरद्धो ॥ और पदातिः = पाइक्को अथवा पयाई।

मलिनम्—संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मइलं और मलिणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१३८ से 'मलिन' के स्थान पर 'मइल' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मइलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मलिनम् =) मलिणं में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप 'मइलं' के समान ही होकर द्वितीय रूप *मलिणं* भी सिद्ध हो जाता है।

उभयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उभयं, अवहं और उवहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *उभयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(उभयम् =) अवहं में सूत्र संख्या २-१३८ से 'उभय' के स्थान पर 'अवह' का आदेश और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर द्वितीय रूप *अवहं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(उभयम् =) उवहं में सूत्र संख्या २-१३८ की वृत्ति से 'उभय' के स्थान पर 'उवह' रूप की आदेश-प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *उवहं* भी सिद्ध हो जाता है। उभयावकाशं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवहोआसं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१३८ से 'उभय' के स्थान पर 'अवह' रूप की आदेश प्राप्ति; १-१७२ से 'अव' उपसर्ग के स्थान पर 'ओ' स्वर की प्राप्ति; १-१० से आदेश प्राप्त रूप 'अवह' में स्थित 'ह' के 'अ' का आगे 'ओ' स्वर की प्राप्ति होने से लोप; १-५ से हलन्त हार 'ह' में पारस्परिक 'ओ' की संधि; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवहोआसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उभय-बलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उभयबलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उभय बलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उभय कालम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप उभयोकाल होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-१३८ की वृत्ति से उभय-काल के स्थान पर 'उभयो काल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय का प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उभयो कालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्तिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिप्पी और सुत्ती हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१३८ से शुक्ति' के स्थान पर 'सिप्पि' रूप की आदेश-प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सिप्पी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(शुक्ति =)-सुत्ती मे सूत्र सख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, २-७७ से 'क्ति' में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्स्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सुत्ती* सिद्ध हो जाता है।

छुप्तः सस्कृत विशेषण रूप हैं। इसके प्राकृत रूप छिक्को और छुत्तो होते है। इनमे से प्रथम रूप में सूत्र सख्या २-१३८ से 'छुप्त' के स्थान पर 'छिक्क' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *छिक्को* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(छुप्त=) छुत्तो में सूत्र-सख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन प्' का लोप, २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारात पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *छुत्तो* सिद्ध हो जाता है।

आरब्ध संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप आढत्तो और आरद्धो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र सख्या २-१३८ से 'आरब्ध' के स्थान पर 'आढत्त' रूप को आदेश-प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आढत्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(आरब्ध =) आरद्धो मे सूत्र सख्या २-७९ से हलन्त व्यञ्जन 'ब्' का लोप, २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व ध्ध' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आरद्धो* सिद्ध हो जाता है।

पदाति संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाइक्को और पयाइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१३८ से 'पदाति' के स्थान पर 'पाइक्क' रूप की आदेश-प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पाइक्को* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पदातिः=) पयाइ में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'त्' दोनों व्यञ्जनों का लोप १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'आ' का 'या' की प्राप्ति, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त-पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पयाई* सिद्ध हो जाता है॥ २-१३८॥

दंष्ट्राया दाढा ॥ २-१३९ ॥

पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्। दंष्ट्रा शब्दस्य दाढा इत्यादेशो भवति॥ दाढा। अयं संस्कृतेपि॥

अर्थः—उपरोक्त सूत्रों में आदेश-प्राप्ति वैकल्पिक रूप से होती है, किन्तु इस सूत्र से प्रारम्भ करके आगे के सूत्रों में वैकल्पिक रूप से आदेश-प्राप्ति का अभाव है अर्थात् इन आगे के सूत्रों में आदेश प्राप्ति निश्चित रूप से है। अतः उपरोक्त सूत्रों से इन सूत्रों की पारस्परिक-विशेषता को अपर नाम ऐसे 'पृथक् योग' का ध्यान में रखते हुए 'वा' स्थिति की-वैकल्पिक स्थिति की निवृत्ति जानना इसका अभाव जानना। संस्कृत शब्द 'दंष्ट्रा' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'दाढा' ऐसा आदेश-प्राप्ति होती है। संस्कृत साहित्य में 'दंष्ट्रा' के स्थान पर 'दाढा' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है।

दंष्ट्रा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाढा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१३९ से 'दंष्ट्रा' के स्थान पर 'दाढा' आदेश होकर *दाढा* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१३९॥

बहिसो बाहिं-बाहिरौ ॥२-१४०॥

बहिस् शब्दस्य बाहिं बाहिर इत्यादेशौ भवतः॥ बाहिं बाहिरं॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'बहिस्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'बाहिं' और 'बाहिरं' रूप आदेशों की प्राप्ति होती है। जैसे:—बहिस्=बाहिं और बाहिरं।

बहिस् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप बाहिं और बाहिरं होते हैं। इन दोनों रूपों में सूत्र संख्या २-१४० से 'बहिस्' के स्थान पर 'बाहिं' और 'बाहिरं' आदेश होकर दोनों रूप '*बाहिं*' और *बाहिरं* सिद्ध हो जाते हैं। २-१४०॥

अधसो हेट्ठं ॥ २-१४१ ॥

अधस् शब्दस्य हेट्ठं इत्ययमादेशो भवति॥ हेट्ठं॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'अधः' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर मे 'हेट्ठ' रूप की आदेश प्राप्ति होती है। से —अधस्=जैहेट्ठ।

अधस् सस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप हेट्ठ होता है। इसमें सूत्र सख्या २-१४१ से 'अधस्' के स्थान पर 'हेट्ठ' आदेश होकर हेट्ठं रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१४१ ॥

मातृ-पितुः स्वसुः सिआ-छौ ॥ २-१४२ ॥

मातृ-पितृभ्याम् परस्य स्वसृशब्दस्य सिआ छा इत्यादेशौ भवतः ॥ माउसिआ । माउ-च्छा । पिउ सिआ । पिउ च्छा ॥

अर्थः – सस्कृत शब्द 'मातृ' अथवा 'पितृ' के पश्चात् समास रूप से 'स्वसृ शब्द जुडा हुआ हो तो ऐसे शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में 'स्वसृ' शब्द के स्थान पर 'सिआ' अथवा 'छा' इन दो आदेशो की प्राप्ति होती है। जैसे —मातृ-ष्वसा=माउ-सिआ अथवा माउ-च्छा ॥ पितृ-ष्वसा=पिउ-सिआ अथवा पिउ-च्छा ॥

मातृ-ष्वसा सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माउ-सिआ और माउ-च्छा होते है। इनमें से प्रथम रूप '*माउ-सिआ*' की सिद्धि सूत्र सख्या १-१३४ में की गई हैं।

द्वितीय रूप (मातृ-ष्वसा=) माउ-च्छा मे सूत्र सख्या १-१३४ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' स्वर की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'तु' में से 'त्' व्यञ्जन का लोप, २-१४२ से 'ष्वसा' के स्थान पर 'छा' आदेश की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' होकर द्वितीय रूप-*माउ-च्छा* भी सिद्ध हो जाता है।

पितृ-ष्वसा सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पिउ सिआ और पिउ-च्छा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *पिउ सिआ* की सिद्धि सूत्र सख्या १-१३४ मे की गई है।

द्वितीय रूप-(पितृ-ष्वसा=) पिउ च्छा में सूत्र सख्या १-१३४ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' स्वर की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'तु' मे से 'त्' व्यञ्जन का लोप, २-१४२ से 'ष्वसा' के स्थान पर 'छा' आदेश की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति, और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप-*पिउ-च्छा* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१४२॥

तिर्यचस्तिरिच्छिः ॥२-१४३॥

तिर्यच् शब्दस्य तिरिच्छिरित्यादेशो भवति ॥ तिरिच्छि पेच्छइ ॥ आर्षे तिरिआ इत्यादेशो पि । तिरिआ ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'तिर्यच्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'तिरिच्छि' ऐसा आदेश होता

से 'द्' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रोविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप लज्जिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लज्जिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जल्पिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जम्पिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; २-७९ से 'ल्' का लोप; १-२६ से 'ज' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर आगे 'प' वर्ण होने से पञ्चमान्त वर्ण 'म्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्पिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेपिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वेविरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भमिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छ्वसिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊससिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११४ से 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; मूल संस्कृत शब्द उत् + श्वास का उच्छ्वास होता है तदनुसार मूल शब्द में स्थित 'त्' का सूत्र संख्या २-७७ से लोप; २-७९ से 'व' का लोप; १-८४ से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊससिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गमनशील संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गमिरो होता है। मूल संस्कृत धातु 'गम्' है

इसमें सूत्र सख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमनशील: सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नमिरो होता है। मूल संस्कृत-धातु 'नम्' है। इसमें सूत्र सख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१४६ ॥

क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः ॥ २-१४६ ॥

क्त्वा प्रत्ययस्य तुम् अत् तूण तुआण इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ तुम् । दट्ठुं । मोत्तुं ॥ अत् । भमिअ । रमिअ ॥ तूण । घेत्तूण । काऊण ॥ तुआण । भेत्तुआण । सोउआण ॥ वन्दित्तु इत्यनुस्वार लोपात् ॥ वन्दित्ता इति सिद्ध-संस्कृतस्यैव वलोपेन ॥ कट्टु इति तु आर्षे ॥

अर्थः—अव्ययी रूप भूत कृदन्त के अर्थ में संस्कृत भाषा में धातुओं में 'क्त्वा' प्रत्यय का योग होता है, इसी अर्थ में अर्थात् भूत कृदन्त के तात्पर्य में प्राकृत-भाषा में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम् अत, तूण, और तुआण' ये चार आदेश होते हैं। इनमें से कोई सा भी एक प्रत्यय प्राकृत-धातु में सयोजित करने पर भूत कृदन्त का रूप बन जाता है। जैसे-'तुम्' प्रत्यय के उदाहरण —दृष्ट्वा=दट्ठुं = देख करके। मुक्त्वा=मोत्तु=छोडकर के। 'अत्' प्रत्यय के उदाहरण'-भ्रमित्वा=भमिअ। रमित्वा=रमिअ ॥ 'तूण' प्रत्यय के उदाहरण.—गृहीत्वा=घेत्तूण। कृत्वा=काऊण ॥ 'तुआण' प्रत्यय के उदाहरणः—भित्त्वा =भेत्तुआण। श्रुत्वा=सोउआण ॥

प्राकृत रूप, 'वन्दित्तु' भूत कृदन्त अर्थक ही है। इसमें अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' रूप अनुस्वार का लोप होकर सस्कृत रूप 'वन्दित्वा' का ही प्राकृत रूप वन्दित्तु बना है। अन्य प्राकृत रूप 'वन्दित्ता' भी सिद्ध हुए सस्कृत रूप के समान ही 'वन्दित्वा' रूप में से 'व्' व्यञ्जन का लोप करने से प्राप्त हुआ है। सस्कृत रूप 'कृत्वा' का आर्ष-प्राकृत में 'कटटु' ऐसा रूप होता है।

दृष्ट्वा-सस्कृत कृदन्त रूप है। इसको प्राकृत रूप दट्ठु होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ४-२१३ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ट्ठ' की प्राप्ति, और २-१४६ से सस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'तुम्' प्रत्यय में स्थित 'त्' व्यञ्जन का लोप, १-१० से प्राप्त 'ट्ठ' में स्थित' 'अ' स्वर का आगे 'तुम्' में से शेष 'उम्' का 'उ' स्वर होने से लोप, १-५ से 'ट्ठ्' में 'उम्' की सधि होने से 'ट्ठुम्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर दट्ठुं रूप सिद्ध हो जाता है।

है। जैसे—तिर्यक् प्रेक्षते=तिरिच्छि पेच्छइ। आर्ष प्राकृत में 'तिर्यच्' के स्थान पर 'तिरिआ' ऐसे आदेश की भी प्राप्ति होती है। जैसे—तिर्यक्=तिरिआ॥

तिर्यक् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिरिच्छि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४३ से तिर्यक्' के स्थान पर 'तिरिच्छि' की आदेश प्राप्ति होकर *तिरिच्छि* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेक्षते संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिर्यक् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप तिरिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१४३ से 'तिर्यक्' के स्थान पर 'तिरिआ' आदेश की प्राप्ति होकर *तिरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है॥२-१४३॥

गृहस्य घरोपतौ ॥२-१४४॥

गृहशब्दस्य घर इत्यादेशो भवति पति शब्दश्चेत् परो न भवति॥ घरो। घर-सामी। राय-हरं॥ अपताविति किम्। गह-वई॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'गृह' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'घर' ऐसा आदेश होता है। परन्तु इसमें यह शर्त रही हुई है कि 'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द नहीं होना चाहिये। यदि 'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द स्थित होगा तो 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश की प्राप्ति नहीं होगी। उदाहरण इस प्रकार हैं—गृहः=घरो॥ गृह-स्वामी=घर-सामी॥ राज-गृहम्=राय-हरं॥

प्रश्न—'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द नहीं होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—यदि संस्कृत शब्द 'गृह' के आगे 'पति' शब्द स्थित होगा तो 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश की प्राप्ति नहीं होकर अन्य सूत्रों के आधार से 'गह' रूप की प्राप्ति होगी। जैसे-*गृह-पतिः*=गह-वई॥

गृहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह-स्वामी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घर-सामी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश और २-७९ से 'व्' का लोप होकर *घर-सामी* रूप सिद्ध हो जाता है।

राज-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राय-हर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश, १-१८७ से प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' का आदेश, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *राय-हरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह-पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गहवई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर *गह-वई* रूप सिद्ध हो जाता है॥२-१४४॥

शीलाद्यर्थस्येरः ॥२-१४५॥

शीलधर्मसाध्वर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य इर इत्यादेशो भवति ॥ हसन-शीलः हसिरो । रोविरो । लज्जिरो । जम्पिरो । वेविरो । भमिरो ऊससिरो ॥ केचित् तृन एव इरमाहुस्तेषां नमिरगमिरादयो न सिध्यन्ति । तृनोत्रादिना बाधितत्वात् ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में 'शील' अथवा 'धर्म' अथवा 'साधु' वाचक प्रत्यय रहा हुआ हो तो इन प्रत्ययों के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'इर' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे:—हसनशील अर्थात् 'हसितृ' के संस्कृत रूप 'हसिता' का प्राकृत रूप 'हसिरो' होता है। रोदितृ=रोदिता=रोविरो। लज्जितृ=लज्जिता=लज्जिरो। जल्पितृ जल्पिता=जंपिरो। वेपितृ=वेपिता=वेविरो। भमितृ भ्रमिता=भमिरो। उच्छ्वसितृ=उच्छ्वसिता=ऊससिरो॥ कोई-कोई व्याकरणाचार्य ऐसा मानते हैं कि 'शील', 'धर्म' और 'साधु' वाचक वृत्ति को बतलाने वाले प्रत्ययों के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होती है, किन्तु केवल 'तृन्' प्रत्यय के स्थान पर ही 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। उनके सिद्धान्त से 'नमिर' 'गमिर' आदि रूपों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। क्योंकि यहाँ पर 'तृन्' प्रत्यय का अभाव है, फिर भी 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति हो गई है। इस प्रकार यहाँ पर 'बाधा-स्थिति' उत्पन्न हो गई है। अतः 'शील' 'धर्म' और 'साधु' वाचक प्रत्ययों के स्थान पर भी 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति प्राकृत-रूपान्तर में उसी प्रकार से होती है, जिस प्रकार से कि-'तृन्' प्रत्यय के स्थान पर 'इर' प्रत्यय आता है।

हसिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हसिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हसिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रोदिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रोविरो होता है। इसमे सूत्र-संख्या ४-२२६

से 'द्' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रोविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप लज्जिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लज्जिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जल्पिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जम्पिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति २-७९ से 'ल्' का लोप १-२६ से 'ज' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर आगे 'प' वर्ण होने से पञ्चमान्त वर्ण 'म्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्पिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेपिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वेविरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भमिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छ्वसिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊससिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११४ से 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति, मूल संस्कृत शब्द 'उत्+श्वास' का उच्छ्वास होता है तदनुसार मूल शब्द में स्थित 'त्' का सूत्र संख्या २-७७ से लोप २-७९ से 'व' का लोप १-८४ से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति १-२६० से 'श' का 'स'; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊससिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गमनशील संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गमिरो होता है। मूल संस्कृत धातु 'गम्' है,

इसमें सूत्र संख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमनशीलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नमिरो होता है। मूल संस्कृत-धातु 'नम्' है। इसमें सूत्र संख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१४६ ॥

क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः ॥ २-१४६ ॥

क्त्वा प्रत्ययस्य तुम् अत् तूण तुआण इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ तुम् । दट्ठुं । मोत्तुं ॥ अत् । भमिअ । रमिअ ॥ तूण । घेत्तूण । काऊण ॥ तुआण । भेत्तुआण । सोउआण ॥ वन्दित्तु इत्यनुस्वार लोपात् ॥ वन्दित्ता इति सिद्ध-संस्कृतस्यैव वलोपेन ॥ कट्टु इति तु आर्षे ॥

अर्थः—अव्ययी रूप भूत कृदन्त के अर्थ में संस्कृत भाषा में धातुओ में 'क्त्वा' प्रत्यय का योग होता है, इसी अर्थ में अर्थात् भूत कृदन्त के तात्पर्य में प्राकृत-भाषा में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्, अत, तूण, और तुआण' ये चार आदेश होते हैं। इनमें से कोई सा भी एक प्रत्यय प्राकृत-धातु में सयोजित करने पर भूत कृदन्त का रूप बन जाता है। जैसे-'तुम्' प्रत्यय के उदाहरण —दृष्ट्वा=दट्ठुं = देख करके। मुक्त्वा=मोत्तुं=छोडकर के। 'अत्' प्रत्यय के उदाहरण -भ्रमित्वा=भमिअ। रमित्वा=रमिअ ॥ 'तूण' प्रत्यय के उदाहरण.—गृहीत्वा=घेत्तूण। कृत्वा=काऊण ॥ 'तुआण' प्रत्यय के उदाहरण —भित्त्वा =भेत्तुआण। श्रुत्वा=सोउआण ॥

प्राकृत रूप, 'वन्दित्तु' भूत कृदन्त अर्थक ही है। इसमें अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' रूप अनुस्वार का लोप होकर संस्कृत रूप 'वन्दित्वा' का ही प्राकृत रूप वन्दित्तु बना है। अन्य प्राकृत रूप 'वन्दित्ता' भी सिद्ध हुए संस्कृत रूप के समान ही 'वन्दित्वा' रूप में से 'व्' व्यञ्जन का लोप करने से प्राप्त हुआ है। संस्कृत रूप 'कृत्वा' का आर्ष-प्राकृत में 'कटटु' ऐसा रूप होता है।

दृष्ट्वा—संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप दट्ठुं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ४-२१३ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ट्ठ' की प्राप्ति; और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'तुम्' प्रत्यय में स्थित 'त्' व्यञ्जन का लोप, १-१० से प्राप्त 'ट्ठ' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'तुम्' में से शेष 'उम्' का 'उ' स्वर होने से लोप, १-५ से 'ट्ठ्' में 'उम्' की सधि होने से 'ट्ठुम्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर दट्ठुं रूप सिद्ध हो जाता है।

मुक्त्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप मोत्तुं होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३७ से 'उ' स्वर को 'ओ' स्वर की गुण-प्राप्ति २-७७ से 'क' का लोप और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्' प्रत्यय की आदेश-प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर *मोत्तुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भमिअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप' ३-१५७ से 'म' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति' २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *भमिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

रमित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रमिअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त 'रम्' धातु में 'म्' में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति, ३-१५७ से प्राप्त 'म' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *रमिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृहीत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप घेत्तूण होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१० से 'गृह्' धातु के स्थान पर 'घेत्' आदेश और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तूण' की प्राप्ति होकर *घेत्तूण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप काऊण होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२१४ से 'कृ' धातु में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'आ' आदेश २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति और १-१७७ से प्राप्त 'तूण' प्रत्यय में से 'त्' का लोप होकर *काऊण* रूप सिद्ध हो जाता है।

भित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भेत्तुआण होता है। मूल संस्कृत धातु 'भिद्' है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३७ से 'इ' के स्थान पर गुण रूप 'ए' की प्राप्ति और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुआण' प्रत्यय प्राप्ति होकर *भेत्तुआण* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोऊआण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-२६० से शेष 'श' का 'स'; ४-२३७ से 'सु' में रहे हुए 'उ' के स्थान पर गुण-रूप 'ओ' की प्राप्ति' और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुआण' प्रत्यय की प्राप्ति तथा १-१७७ से प्राप्त 'तुआण' प्रत्यय में से 'त्' व्यञ्जन का लोप होकर *सोउआण* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्दित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वन्दित्तु होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४६ से संस्कृत कृदन्त प्रत्यय 'क्त्वा' के स्थान पर 'तुम्' आदेश १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का लोप और २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वन्दित्तु* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्दित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वन्दित्ता होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप और २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वन्दित्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका आर्ष प्राकृत मे कट्टु रूप होता है। आर्ष रूपो में साधनिका का प्राय. अभाव होता है ॥२-१४६॥

इदमर्थस्य केरः ॥२-१४७॥

इदमर्थस्य प्रत्ययस्य केर इत्यादेशो भवति ॥ युष्मदीयः तुम्हकेरो ॥ अस्मदीयः। अम्हकेरो ॥ न च भवति। मईअ-पक्खे। पाणिणीआ ॥

अर्थ.—'इमसे सम्बन्धित' के अर्थ मे अर्थात् 'इदम् अर्थ' के तद्धित प्रत्यय के रूप मे प्राकृत में 'केर' आदेश होता है। जैसे—युष्मदीयः = तुम्हकेरो और अस्मदीय = अम्हकेरो ॥ किसी किसी स्थान पर 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे—मदीय–पक्षे = मईअ–पक्खे और पाणिनीया = पाणिणीआ ऐसे रूप भी होते है।

तुम्हकेरो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२४६ मे की गई है।

अस्मदीयः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्हकेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०६ से 'अस्मत्' के स्थान पर 'अम्ह' आदेश, २-१४७ से 'इदम्'–अर्थ वाले संस्कृत प्रत्यय 'इय' के स्थान पर 'केर' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अम्हकेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदीय–पक्षे संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मईअ–पक्खे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'य्' दोनों का लोप, २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' का प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मईअ–पक्खे* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाणिनीयाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पाणिणीआ होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-१७७ से य् का लोप, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एव लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *पाणिणीआ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१४७॥

पर-राजभ्यां क्क-डिक्कौ च ॥ २-१४८ ॥

पर राजन् इत्येताभ्यां परस्येदमर्थस्य प्रत्ययस्य यथासंख्यं संयुक्तौ क्को-डित् इक्क श्चादेशौ

भवत । चकारात् करश्च ॥ परकीयम् । पारक्क । परक्कं । पारकेरं ॥ राजकीयम् । राइक्कं । रायक्करं ।

अर्थ—संस्कृत शब्द 'पर' और 'राजन्' के अन्त में इकमत्रय प्रत्यय जुड़ा हुआ हो तो प्राकृत में 'इकमत्रय' प्रत्यय के स्थान 'पर' में 'क्क' आदेश और 'राजन्' में 'इक्क' आदेश होता है, तथा मूल सूत्र में 'च' लिखा हुआ है, अतः वैकल्पिक रूप से 'कर' प्रत्यय की भी प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है—परकीयम्=पारक्कं परक्कं अथवा पारकेरं ॥ राजकीयम् राइक्कं अथवा रायक्करं ॥

पारक्कं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ ४४ में की गई है।

परकीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप परक्कं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ १४८ से 'कीय' के स्थान पर 'क्क' का आदेश ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त म् का अनुस्वार होकर परक्कं रूप सिद्ध हो जाता है।

पारकेरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १ ४४ में की गई है।

राजकीयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप राइक्कं और रायकेरं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप २ १४८ से संस्कृत प्रत्यय 'कीय' के स्थान पर इक्क का आदेश, १ १० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए अ के आगे 'इक्क' की 'इ' होने से लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप राइक्कं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप—(राजकीयम्=) रायकेरं में सूत्र-संख्या १ १७७ से 'ज' का लोप १ १८० के लोप हुए 'ज' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, २ १४८ से संस्कृत प्रत्यय कीय के स्थान पर 'केर' का आदेश और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप रायकेरं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१४८॥

युष्मदस्मदोञ-एच्चय ॥ २-१४९ ॥

आभ्यां परस्येदमर्थस्याञ एच्चय इत्यादेशो भवति ॥ युष्माकमिदं यौष्माकम् । तुम्हेच्चयं । एवम् अम्हेच्चयं ॥

अर्थ—संस्कृत सर्वनाम युष्मद् और अस्मद् में 'इदमर्थ' के वाचक प्रत्यय 'अञ' के स्थान पर प्राकृत में 'एच्चय' का आदेश होता है। जैसे—'युष्माकम्-इदम्=यौष्माकम्' का प्राकृत रूप 'तुम्हेच्चयं' होता है। इसी प्रकार से आस्माकम् का अम्हेच्चयं होता है।

यौष्माकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तुम्हेच्चय होता है। इसमे सूत्र संख्या ३-९९ से युष्मत् के स्थान पर 'तुम्ह' का आदेश, २-१४६ से 'इदमर्थ' वाचक प्रत्यय 'अञ' के स्थान पर 'एच्चय' का आदेश, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तुम्हेच्चयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्मदीयम् संस्कृत विशेपण रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्हेच्चय होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१०६ से 'अस्मद्' के स्थान पर 'अम्ह' आदेश, २-१४६ से संस्कृत 'इय' प्रत्यय के स्थान पर 'एच्चय' आदेश; १-१० से प्राप्त 'अम्ह' में स्थित 'ह' के 'अ' का आगे 'एच्चय' का 'ए' होने से लोप; १-५ से प्राप्त 'अम्ह्' और एच्चय की सधि, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अम्हेच्चयं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१४६॥

वतेर्व्वः ॥२-१५०॥

वतेः प्रत्ययस्य द्विरुक्तो वो भवति ॥ महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया।

अर्थः—संस्कृत 'वत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में द्विरुक्त अर्थात् द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति होती है। जैसे—मथुरावत् पाटलिपुत्रे प्रासादा =महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया ॥

मथुरावत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महुरव्व होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'थ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और २-१५० से 'वत्' प्रत्यय के स्थान पर द्विरुक्त व्व' की प्राप्ति होकर *महुरव्व* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाटलिपुत्रे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाडलिउत्ते होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, १-१७७ से 'प्' का लोप, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से शेष 'त्' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पाडलिउत्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रासादा' संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पासाया होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग मे प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एव लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *पासाया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५०॥

सर्वांगादीनस्येकः ॥२-१५१॥

सर्वाङ्गात् सर्वादे पथ्यङ्ग [हे० ७-१] इत्यादिना विहितस्येनस्य स्थाने इक इत्यादेशो भवति ॥ सर्वाङ्गीण । सव्वङ्गिओ ॥

अर्थ — सर्वादि पथ्यङ्ग इस सूत्र से-(जो कि हेमचन्द्र संस्कृत व्याकरण के सातवें अध्याय का सूत्र है —'सर्वाङ्ग शब्द में प्राप्त होने वाले संस्कृत प्रत्यय इन के स्थान पर प्राकृत में 'इक' ऐसा आदेश होता है। जैसे—सर्वाङ्गीण=सव्वङ्गिओ ॥

सर्वांगीण संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सव्वङ्गिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५१ से संस्कृत प्रत्यय 'इन' के स्थान पर प्राकृत में 'इक' आदेश; १-१७७ से आदेश प्राप्त 'इक' में स्थित 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय प्राप्ति होकर *सव्वंगिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५१॥

पथो णस्येकट् ॥२-१५२॥

नित्यं णः पन्थश्च (हे० ६-४) इति यः पथो णो विहितस्य इकट् भवति ॥ पान्थः । पहिओ ॥

अर्थ —हेमचन्द्र व्याकरण के अध्याय संख्या छह के सूत्र-संख्या चार से संस्कृत शब्द 'पथ' में नित्य 'ण' की प्राप्ति होती है, उस प्राप्त 'ण' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'इक' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—पान्थः=पहिओ ॥

पान्थः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पहिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५२ से 'ण' के स्थान पर 'इक' आदेश; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से आदेश प्राप्त 'इक' के 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पहिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१५२॥

ईयस्यात्मनो णय ॥२-१५३॥

आत्मनः परस्य ईयस्य णय इत्यादेशो भवति ॥ आत्मीयम् अप्पणयं ।

अर्थ —'आत्मा' शब्द में यदि 'ईय' प्रत्यय रहा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में इस 'ईय' प्रत्यय के स्थान पर 'णय' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—आत्मीयम्=अप्पणयं ॥

आत्मीयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; २-१५३ से संस्कृत प्रत्यय 'ईय' के स्थान पर 'णय' आदेश; ३-२५ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अप्पणयं* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१५३ ॥

त्वस्य डिमा-त्तणौ वा ॥ २-१५४ ॥

त्व प्रत्ययस्य डिमा त्तण इत्यादेशौ वा भवतः ॥ पीणिमा । पुप्फिमा । पीणत्तणं । पुप्फत्तणं । पक्षे । पीणत्तं । पुप्फत्त ॥ इम्नः पृथ्वादिपु नियतत्वात् तदन्य प्रत्ययान्तेपु अस्य विधिः ॥ पीनता इत्यस्य प्राकृते पीणया इति भवति । पीणदा इति तु भापान्तरे । ते नेह ततो दा न क्रियते ॥

अर्थ —सस्कृत में प्राप्त होने वाले 'त्व' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत मे वैकल्पिक रूप मे 'इमा' और 'त्तण' प्रत्यय का आदेश हुआ करता है। जैसे –पीनत्वम्=पीणिमा अथवा पीणत्तणं और वैकल्पिक पक्ष में पीणत्त भी होता है। पुष्पत्वम्=पुप्फिमा अथवा पुप्फत्तण और वैकल्पिक पक्ष में पुप्फत्त भी होता है। सस्कृत भापा में पृथु आदि कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमे 'त्व' प्रत्यय के स्थान पर इसी अर्थ को बतलाने वाले 'इमन्' प्रत्यय की प्राप्ति हुआ करती है। उनका प्राकृत रूपान्तर अन्य सूत्रानुसार हुआ करता है। सस्कृत शब्द 'पीनता' का प्राकृत रूपान्तर 'पीणया' होता है। किसी अन्य भापा में 'पीनता' का रूपान्तर 'पीणदा' भी होता है। तदनुसार 'ता' प्रत्यय के स्थान पर 'दा' आदेश नही किया जा सकता है। अत पीणदा रूप को प्राकृत रूप नहीं समझा जाना चाहिये।

पीनत्वम् सस्कृत विशेपण रूप है। इसके प्राकृत रूप पीणिमा, पीणत्तण और पीणत्त होते हैं। इनमें से प्रथम रूप मे सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २–१५४ से संस्कृत प्रत्यय 'त्वम्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इमा' आदेश का प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पीणिमा* की सिद्धि हो जाती है।

द्वितीय रूप-(पीनत्वम्=) पीणत्तण में सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-१५४ से सस्कृत प्रत्यय 'त्व' के स्थान पर त्तण' आदेश, ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपु सक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *पीणत्तणं* द्वितीय रूप भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप–(पीनत्वम्=) पीणत्तं में सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-७९ से 'व्' का लोप, २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व' 'त्त' की प्राप्ति और शेष साधनिका द्वितीय रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पीणत्तं* भी सिद्ध हो जाता है।

पुष्पत्वम् सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पुप्फिमा, पुप्फत्तण और पुप्फत्तं होते है। इनमें से

प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५३ से 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फफ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' के स्थान पर 'प्' की प्राप्ति; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर 'इमा' आदेश; १-१० से 'फ' में रहे हुए 'अ' का आगे 'इ' रहने से लोप; १-५ से 'फ्' की आगे रही हुई 'इ' के साथ संधि; और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का लोप होकर प्रथम रूप *पुप्फिमा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पुष्पत्वम्=) पुप्फत्तणं में 'पुप्फ' तक प्रथम रूप के समान ही साधनिका; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर 'त्तण' आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *पुप्फत्तणं* सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(पुष्पत्वम्=) पुप्फत्तं में 'पुप्फ' तक प्रथम रूप के समान ही साधनिका; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष साधनिका द्वितीय रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पुप्फत्तं* सिद्ध हो जाता है।

पीनता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पीणया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति होकर *पीणया* रूप सिद्ध हो जाता है।

पीणदा रूप देशज-भाषा का है, अतः इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है ॥२-१५४॥

अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्लः ॥२-१५५॥

अङ्कोठ वर्जिताच्छब्दात्परस्य तैल प्रत्ययस्य डेल्ल इत्यादेशो भवति ॥ सुरहि-जलेण कडुएल्लं ॥ अनङ्कोठादिति किम् । अङ्कोल्ल तेल्लं ॥

अर्थः—'अङ्कोठ' शब्द को छोड़कर अन्य किसी संस्कृत शब्द में 'तैल' प्रत्यय लगा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में इस 'तैल' प्रत्यय के स्थान पर 'डेल्ल' अर्थात् 'एल्ल' आदेश हुआ करता है। जैसे—सुरभि जलेन कटु-तैलम्=सुरहि जलेण कडुएल्लं।

प्रश्नः—'अङ्कोठ' शब्द के साथ में 'तैल' प्रत्यय रहने पर इस 'तैल' प्रत्यय के स्थान पर 'एल्ल' आदेश क्यों नहीं होता है ?

उत्तरः—प्राकृत भाषा में परम्परागत रूप से 'अङ्कोठ' शब्द के साथ 'तैल' प्रत्यय होने पर 'तैल' के स्थान पर 'एल्ल' आदेश का अभाव पाया जाता है; अतः इस रूप को सूत्र-संख्या २-१५५ के विधान क्षेत्र से पृथक् ही रखा गया है। उदाहरण इस प्रकार है:—अङ्कोठ तैलम्=अङ्कोल्ल तेल्लं ॥

सुरभि जलम संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सुरहि जलेण होता है। इसमें सूत्र

सख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा'='आ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व स्थित 'ल' के 'अ' को 'ए' की प्राप्ति होकर *सुरहि-जलेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कटुतैलम् संस्कृत विशेण रूप है। इसका प्राकृत रूप कडुएल्ल होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-१५५ से सस्कृत प्रत्यय 'तैल' के स्थान पर प्राकृत में 'एल्ल' आदेश ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कडुएल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अंकोठ तैलम् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अङ्कोल्ल-तेल्ल होता है। इसमे सूत्र-सख्या १-२०० से 'ठ' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति, १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अंकोल्ल-तेल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५५॥

यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च ॥२-१५६॥

एभ्यः परस्य डावादेरतोः परिमाणार्थस्य इत्तिअ इत्यादेशो भवति ॥ एतदो लुक् च ॥ यावत्। जित्तिअं ॥ तावत्। तित्तिअं ॥ एतावत्। इत्तिअं ॥

अर्थः—सस्कृत सर्वनाम 'यत्', 'तत्' और 'एतत्' मे सलग्न परिमाण वाचक प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्तिअ' आदेश होता है। 'एतत्' से निर्मित 'एतावत्' के स्थान पर तो केवल 'इत्तिअ' रूप ही होता है अर्थात् 'एतावत्' का लोप होकर केवल 'इत्तिअ' रूप ही आदेशवत् प्राप्त होता है। उदाहरण इस प्रकार है:—यावत्=जित्तिअ, तावत्=तित्तिअ और एतावत्=इत्तिअ ॥

यावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जित्तिअं होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, २-१५६ से 'आवत्' प्रत्यय के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश, १-५ से प्राप्त 'ज्' के साथ 'इ' की सधि, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जित्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्तिअ होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-१५६ से 'आवत्' प्रत्यय के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश, १-५ से प्रथम 'त्' के साथ 'इ' की सधि, और शेष साधनिका उपरोक्त 'जित्तिअं' रूप के समान ही होकर *तित्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप इत्तिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५६ से 'एतावत्' का लोप और 'इत्तिअ' आदेश की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'इत्तिअं' रूप के समान ही होकर *इत्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५६॥

इदं किमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहा ॥२-१५७॥

इदं किं भ्यां यत्तदेतद्भ्यश्च परस्यातोर्डावतोर्वा डित् एत्तिअ एत्तिल एद्दह इत्यादेशा भवन्ति एतल्लुक् च ॥ इयत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं ॥ कियत् । केत्तिअं । केत्तिलं । केद्दहं ॥ यावत् । जेत्तिअं । जेत्तिलं । जेद्दहं ॥ तावत् । तेत्तिअं । तेत्तिलं । तेद्दहं ॥ एतावत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं ॥

अर्थः—संस्कृत सर्वनाम शब्द 'इदम्' 'किम्' 'यत्' 'तत्' और 'एतत्' में संलग्न परिमाण वाचक प्रत्यय 'अतु=अत्' अथवा 'डावतु=(ड् की इत्संज्ञा होकर शेष) आवतु=आवत्' के स्थान पर प्राकृत में 'एत्तिअ' अथवा 'एत्तिल' अथवा एद्दह आदेश होते हैं। 'एतत्' से निर्मित 'एतावत्' का लोप होकर इसके स्थान पर केवल 'एत्तिअं' अथवा 'एत्तिलं' अथवा एद्दहं रूपों की आदेश रूप से प्राप्ति होती है। उपरोक्त सर्वनामों के उदाहरण इस प्रकार हैं—इयत् = एत्तिअं एत्तिलं अथवा एद्दहं। कियत् = केत्तिअं केत्तिलं और केद्दहं। यावत् = जेत्तिअं जेत्तिलं और जेद्दहं। तावत् = तेत्तिअं तेत्तिलं और तेद्दहं। एतावत् = एत्तिअं एत्तिलं और एद्दहं।

इयत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअं एत्तिलं और एद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-१५७ की वृत्ति से 'इय' का लोप; २-१५७ से शेष 'अत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से एत्तिअ एत्तिल और एद्दह प्रत्ययों की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *एत्तिअं एत्तिलं* और *एद्दहं* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कियत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप केत्तिअं केत्तिलं और केद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१५७ की वृत्ति से 'इय्' का लोप; २-१५७ से शेष 'अत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से एत्तिअ एत्तिल और एद्दह प्रत्ययों की प्राप्ति; १-५ से शेष 'क्' के साथ प्राप्त प्रत्ययों की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *केत्तिअं, केत्तिलं* और *केद्दहं* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

यावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप जेत्तिअं, जेत्तिलं और जेद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-१५७ से संस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप एत्तिअ एत्तिल और एद्दह प्रत्ययों की प्राप्ति; १-५ से प्राप्त 'ज्' के साथ

प्राप्त प्रत्ययो की सधि और शेष साधनिका उपरोक्त 'केत्तिअ' आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से *जेत्तिअं, जेत्तिलं* और *जेद्दहं* रूपो की सिद्धि हो जाती है।

एतावत् सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअं, एत्तिल और एद्दहं होते है। इनमे सूत्र-सख्या २-१५७ से मूल रूप 'एतत' का लोप, २-१५७ से सस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एव वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह' प्रत्ययो की प्राप्ति, और शेष साधनिका उपरोक्त केत्तिअ आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से *एत्तिअं, एत्तिलं* और *एद्दहं* रूपो की सिद्धि हो जाती है।

तावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप तेत्तिअ, तेत्तिल और तेद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल रूप 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त' का लोप, २-१५७ से सस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एव वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, 'एत्तिल' और एद्दह प्रत्ययो की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त केत्तिअ आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से *तेत्तिअं, तेत्तिलं* और *तेद्दहं* रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥२-१५७॥

कृत्वसो हुत्तं ॥२-१५८॥

वारे कृत्वस् (हे० ७-२) इति यः कृत्वस् विहितस्तस्य हुत्तमित्यादेशो भवति ॥ सयहुत्तं । सहस्सहुत्तं ॥ कथं प्रियाभिमुख पियहुत्तं । अभिमुखार्थेन हुत्त शब्देन भविष्यति ॥

अर्थ —सस्कृत-भाषा में 'वार' अर्थ मे 'कृत्व' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। उसी 'कृत्व' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में 'हुत्त' आदेश की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है—शतकृत्व = सयहुत और सहस्रकृत्व =सहस्सहुत्त इत्यादि।

प्रश्न —सस्कृत रूप 'प्रियाभिमुख' का प्राकृत रूपान्तर 'पियहुत्त' होता है। इसमें प्रश्न यह है कि 'अभिमुख' के स्थान पर 'हुत्त' की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर —यहां पर 'हुत्त' प्रत्यय की प्राप्ति 'कृत्व' अर्थ में नहीं हुई है, किन्तु 'अभिमुख' अर्थ मे ही 'हुत्त' शब्द आया हुआ है। इस प्रकार यहां पर यह विशेपता समझ लेनी चाहिये।

शतकृत्व. सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयहुत्त होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेप रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, २-१५८ से 'वार-अर्थक' सस्कृत प्रत्यय 'कृत्व' के स्थान पर प्राकृत में 'हुत्त' आदेश, और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग अर्थात 'स्' का लोप होकर *सयहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सहस्र-कृत्व संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सहस्सहुत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति, शेष साधनिका उपरोक्त सय-हुत्तं के समान ही होकर *सहस्सहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रियाभिमुखम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पियहुत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५८ की वृत्ति से 'अभिमुख' के स्थान पर 'हुत्त' आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पियहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१५८॥

आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मतोः ॥२-१५९॥

आलु इत्यादयो नव आदेशा मतोः स्थाने यथाप्रयोगं भवन्ति ॥ आलु। नेहालू। दयालू। ईसालू। लज्जालुआ ॥ इल्ल। सोहिल्लो। छाइल्लो। जामइल्लो। उल्ल। विआरुल्लो। मसुल्लो। दप्पुल्लो ॥ आल। सद्दालो। जडालो। फडालो। रसालो। जोण्हालो ॥ वन्त। धणवन्तो। भत्तिवन्तो। मन्त। हणुमन्तो। सिरिमन्तो। पुण्णमन्तो ॥ इत्त। कव्वइत्तो। माणइत्तो ॥ इर। गव्विरो। रेहिरो ॥ मण। धणमणो ॥ केचिन्मादेशमपीच्छन्ति। हणुमा ॥ मतोरिति किम्। धणी। अत्थिओ ॥

अर्थः—'वाला' अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'मत्' और 'वत्' के स्थान पर प्राकृत भाषा में नव आदेश होते हैं; जो कि क्रम से इस प्रकार हैं:—आलु, इल्ल, उल्ल, आल, वन्त, मन्त, इत्त, इर और मण। 'आलु' से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं:—स्नेहवान्=नेहालू। दयावान्=दयालू। ईर्ष्यावान्=ईसालू। लज्जावती=लज्जालुआ ॥ 'इल्ल' से सम्बन्धित उदाहरणः—शोभावान्=सोहिल्लो। छायावान्=छाइल्लो। यामवान्=जामइल्लो। 'उल्ल' से सम्बन्धित उदाहरणः—विकारवान्=विआरुल्लो। श्मश्रुवान्=मंसुल्लो। दर्पवान्=दप्पुल्लो ॥ 'आल' से सम्बन्धित उदाहरणः—शब्दवान्=सद्दालो। जटावान्=जडालो। फटावान्=फडालो। रसवान्=रसालो। ज्योत्स्नावान्=जोण्हालो। 'वन्त' से सम्बन्धित उदाहरणः—धनवान्=धणवन्तो। भक्तिमान्=भत्तिवन्तो। 'मन्त' से सम्बन्धित उदाहरणः—हनुमान्=हणुमन्तो। श्रीमान्=सिरिमन्तो। पुण्यवान्=पुण्णमन्तो। 'इत्त' से सम्बन्धित उदाहरणः—काव्यवान्=कव्वइत्तो। मानवान्=माणइत्तो ॥ 'इर' से सम्बन्धित उदाहरणः—गर्ववान्=गव्विरो। रेखावान्=रेहिरो ॥ 'मण' से सम्बन्धित उदाहरणः—धनवान्=धणमणो इत्यादि ॥ कोई कोई आचार्य 'मत्' और 'वत्' के स्थान पर 'मा' आदेश की प्राप्ति को भी स्वीकार करते हैं; जैसे:—हनुमान्=हणुमा ॥

प्रश्नः—'वाला' अर्थक 'मत्' और 'वत्' का ही उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तर:—संस्कृत में 'वाला' अर्थ में 'मत् एवं 'वत्' के अतिरिक्त अन्य प्रत्ययों की भी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-धनवाला=धनी और अर्थ वाला=अर्थिक, इसलिये आचार्य श्री का मन्तव्य यह है कि उपरोक्त प्राकृत भाषा में 'वाला' अर्थ को बतलाने वाले जो नव-आदेश कहे गये हैं, वे केवल संस्कृत प्रत्यय 'मत्' अथवा 'वत्' के स्थान पर ही आदेश रूप से प्राप्त हुआ करते है, न कि अन्य 'वाला' अर्थक प्रत्ययों के स्थान पर आते हैं। इसलिये मुख्यत. 'मत्' और 'वत्' का उल्लेख किया गया है। प्राप्त 'वाला' अर्थक अन्य संस्कृत-प्रत्ययों का प्राकृत-विधान अन्य सूत्रानुसार होता है। जैसे.—धनी=धणी और अर्थिक=अत्थिओ इत्यादि ॥

स्नेहमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नेहालू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर 'आलु' आदेश, १-५ से 'ह' में स्थित 'अ' के साथ 'आलु' प्रत्यय के 'आ' की संधि और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *नेहालू* रूप सिद्ध हो जाता है।

दयालू रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

ईर्ष्यावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप 'ईसालू' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर 'आलु' आदेश और शेष साधनिका 'नेहालू' के समान ही होकर *ईसालू* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जावत्या संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप 'लज्जालुआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५९से 'वाला-अर्थक' संस्कृत स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय 'वती' के स्थान पर 'आलु' आदेश, १-५ से 'ज्जा' में स्थित 'आ' के साथ 'आलु' प्रत्यय के 'आ' की संधि और ३-२९ से संस्कृत तृतीया विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लज्जालुआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शोभावान संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सोहिल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' आदेश, १-१० से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ'के आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' होने से लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सोहिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छायावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छाइल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'य्' का लोप, २-१५९ से 'वाला अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल'

आदेश १-१० से लोप हुए 'य' में से शेष 'आ' का आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' होने से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छाइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

यामवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जामइल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकारवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विआरुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, २-१५९ से 'वाला अर्थक' संस्कृत-प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश १-१० से 'र' में स्थित 'अ' का आगे स्थित 'उल्ल' का 'उ' होने से लोप १-५ से 'र्' में 'उ' की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विआरुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्मश्रुवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मंसुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन प्रथम 'श' का लोप; १-२६ से 'म' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति, २-७९ से 'श्रु' में स्थित 'र्' का लोप १-२६० से लोप हुए 'र' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' के 'श' को 'स' की प्राप्ति २-१५९ से वाला अर्थक संस्कृत-प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश १-१० से 'सु' में स्थित 'उ' का आगे स्थित 'उल्ल' का 'उ' होने से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मंसुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दर्पवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दप्पुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष बचे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश १-१० से 'प' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'उल्ल' प्रत्यय का 'उ' होने से लोप १-५ से हलन्त व्यञ्जन द्वितीय 'प्' में आगे रहे हुए 'उल्ल' प्रत्यय के 'उ' की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दप्पुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शब्दवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'ब्' का लोप २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति २-१५९ से 'वाला अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश, १-५ से 'द' में स्थित 'अ' स्वर के साथ प्राप्त 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की संधि और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सद्दालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जटावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जडालो होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश, १-५ से प्राप्त 'डा' मे स्थित 'आ' स्वर के साथ प्राप्त 'आल' प्रत्यय मे स्थित 'आ' स्वर की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जडालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

फटावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप फडालो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त 'जडालो' रूप के समान ही होकर *फडालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रसवान संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रसालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश, १-५ से 'स' मे स्थित 'अ' स्वर के साथ आगे प्राप्त 'आल' प्रत्यय मे स्थित 'आ' स्वर की दीर्घात्मक संधि, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रसालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्नावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जोण्हालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, २-७७ से 'त्' का लोप, २-७५ से 'स्न्' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत मे 'आल' आदेश, १-५ से प्राप्त 'ण्हा' में स्थित 'आ' स्वर के साथ आगे आये हुए 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की दीर्घात्मक संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जोण्हालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणवन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय वान' के स्थान पर प्राकृत में 'वन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भक्तिमान संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भत्तिवन्तो होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७७ से 'क्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ति' मे स्थित 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत मे 'वन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भत्तिवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हणुमन्तो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१२१* में की गई है।

श्रीमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरिमन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से श्री में स्थित श् में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति १-८४ से प्राप्त 'री' में स्थित 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति २-१५९ से वाला अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरिमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुण्यवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पुण्णमन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप २-८९ से लोप हुए 'य' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुण्णमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

काव्यवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कव्वइत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर प्रथम 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'य' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व' का द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कव्वइत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मानवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप माणइत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति २-१५९ से 'वाला-अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माणइत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्ववान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गव्विरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति २-१५९ से 'वाला-अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इर' आदेश १-१० से प्राप्त 'व्व' में रहे हुए 'अ' का आगे प्राप्त 'इर' प्रत्यय में स्थित 'इ' होने से लोप' १-५ से प्राप्त हलन्त 'व्व्' में आगे स्थित 'इर' प्रत्यय के 'इ' की संधि' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गव्विरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रेखावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत

में 'इर' आदेश, १-१० से प्राप्त 'ह' में रहे हुए 'आ' का आगे प्राप्त 'इर' प्रत्यय में स्थित 'इ' होने से लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में आगे स्थित 'इर' प्रत्यय के 'इ' की संधि, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रेहिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनवान् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणमणो होता है। इसमे सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-१५९ से 'वाला-अर्थक' सस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत मे 'मण' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणमणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हनुमान् सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हणुमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और २-१५९ की वृत्ति से सस्कृत 'वाला-अर्थक' प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत मे 'मा' आदेश की प्राप्ति होकर *हणुमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनी सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणी होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण' होकर *धणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्थिक सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अत्थिओ होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ्' को द्वित्व थ्थ् की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त हुए 'प्रथम' 'थ' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति, १-७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अत्थिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५९॥

त्तो दो तसो वा ॥२-१६०॥

तसः प्रत्ययस्य स्थाने त्तो दो इत्यादेशौ वा भवतः ॥ सव्वत्तो सव्वदो। एकत्तो एकदो। अन्नत्तो अन्नदो। कत्तो कदो। जत्तो जदो। तत्तो तदो। इत्तो इदो ॥ पक्षे सव्वओ इत्यादि।

अर्थः—सस्कृत में-'अमुक से' अर्थ में प्राप्त होने वाले 'त' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'त्तो' और 'दो' ऐसे ये दो आदेश वैकल्पिक रूप से प्राप्त हुआ करते हैं। जैसे—सर्वत =सव्वत्तो अथवा सव्वदो। वैकल्पिक पक्ष में 'सव्वओ' भी होता है। एकत =एकत्तो अथवा एकदो। अन्यत =अन्नत्तो अथवा अन्नदो। कुत्त =कत्तो अथवा कदो। यत =जत्तो अथवा जदो। तत =तत्तो अथवा तदो। इत =इत्तो अथवा इदो। इत्यादि।

सर्वत सस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप सव्वत्तो, सव्वदो और सव्वओ होते हैं। इनमे से प्रथम दो रूपो में सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष बचे हुए

'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति और २-१६० संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो और दो आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *सव्वत्तो* और *सव्वदो* यों प्रथम दो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तृतीय रूप *सव्वओ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३७ में की गई है।

एकतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप एकत्तो और एकदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *एकत्तो* और *एकदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

अन्यतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नत्तो और अन्नदो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७८ से य् का लोप; २-८८ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *अन्नत्तो* और *अन्नदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कुतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप कत्तो और कदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ४-७१ से कु के स्थान पर 'क' की प्राप्ति और २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *कत्तो* और *कदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

यतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप जत्तो और जदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-१६० से संस्कृत प्रत्यय त के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और दो आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *जत्तो* और *जदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

ततः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप तत्तो और तदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय त' के स्थान पर प्राकृत मे क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *तत्तो* और *तदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

इतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इत्तो और इदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *इत्तो* और *इदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥२-१६०॥

त्रपो हि-ह-त्थाः ॥२-१६१॥

त्रप् प्रत्ययस्य एते भवन्ति ॥ यत्र । जहि । जह । जत्थ । तत्र । तहि । तह । तत्थ ॥ कुत्र । कहि । कह । कत्थ । अन्यत्र । अन्नहि । अन्नह । अन्नत्थ ॥

अर्थ—संस्कृत में स्थान वाचक 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' यों तीन आदेश क्रम से होते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं-यत्र=जहि अथवा जह अथवा जत्थ ॥ तत्र=तहि अथवा

तह अथवा तत्थ ॥ कुत्र = कहि अथवा कह अथवा कत्थ और अन्यत्र = अन्नहि अथवा अन्नह अथवा अन्नत्थ ॥

यत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप जहि, जह और जत्थ होते हैं। इनमे सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशो की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *जहि*, *जह* और *जत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

तत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप तहि, तह और तत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशो की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *तहि, तह* और *तत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

कुत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप कहि, कह और कत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ३-७१ से 'कु' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि' 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनो रूप *कहि*, *कह* और *कत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

अन्यत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नहि, अन्नह और अन्नत्थ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनो रूप *अन्नहि, अन्नह* और *अन्नत्थ* सिद्ध हो जाते हैं ॥२-१६१॥

वैकाद्ः सि सिअं इआ ॥२-१६२॥

एक शब्दात् परस्य दा प्रत्ययस्य सि सिअं इआ इत्यादेशा वा भवन्ति ॥ एकदा। एक्कसि। एक्कसिअं। एक्कइआ। पक्षे। एगया ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'एक' के पश्चात् रहे हुए 'दा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से तथा वैकल्पिक रूप से 'सि' अथवा सिअं अथवा 'इआ' आदेशो की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे—एकदा= एक्कसि अथवा एक्कसिअं अथवा एक्कइआ। वैकल्पिक पक्ष होने से पक्षान्तर में एगया भी होता है।

एकदा संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप एकदा, एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ और एगया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप 'एकदा' संस्कृत रूपवत् होने से इसको साधनिका की आवश्यकता नहीं है। अन्य द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रूपों में सूत्र-संख्या २-९८ से 'क' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और २-१६२ से संस्कृत प्रत्यय 'दा' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एव वैकल्पिक रूप से 'सि', 'सिअं' और 'इआ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *एक्कसि, एक्कसिअं* और *एक्कइआ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पचम रूप-(एकदा=) एगया में सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान

उपरितनम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उवरिल्लं होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से 'रि' में स्थित 'इ' स्वर का आगे इल्ल' प्रत्यय की 'इ होने से लोप, १-५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' मे 'इल्ल' के 'इ' की संधि, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर उवरिल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मीयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पुल्लं होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-५१ से 'त्म' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव वाचक प्रत्यय इय' के स्थान पर प्राकृत में उल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति, -१० से प्राप्त 'प्प' में स्थित 'अ' स्वर का आगे उल्ल' प्रत्यय का 'उ' होने से लोप, १-५ से हलन्त व्यञ्जन प्प' में 'उल्ल' प्रत्यय के 'उ' की संधि, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अप्पुल्लं रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१६३॥

स्वार्थे कश्च वा ॥२-१६४॥

स्वार्थे कश्चकारादिल्लोल्लौ डितौ प्रत्ययौ वा भवतः ॥ क। कुङ्कुम पिञ्जरयं। चन्दओ। गयणयम्मि। धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं। दुहिअए राम-हिअयए। इहयं। आलेठ्ठुअं। आश्लेष्टु-मित्यर्थः ॥ द्विरपि भवति। बहुअयं ॥ ककारोच्चारणं पैशाचिक-भाषार्थम्। यथा। वतनके वतनकं समप्पेत्तून ॥ इल्ल। निज्जिआसोअ पल्लविल्लेण पुरिल्लो। पुरो पुरा वा ॥ उल्ल। मह पिउल्लओ। मुहुल्लं। हत्थुल्ला। पक्खे चन्दो। गयणं। इह। आलेट्ठुं वहु। बहुअं। मुहं। हत्था ॥ कुत्सादि विशिष्टे तु संस्कृतवदेव कप् सिद्धः ॥ यावादिलक्षणः कः प्रतिनियत विषय एवेति वचनम् ॥

अर्थः—'स्वार्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति हुआ करती है और कभी कभी वैकल्पिक रूप से 'स्व-अर्थ' में 'इल्ल' और 'उल्ल' प्रत्ययों की भी प्राप्ति हुआ करती है। 'क' से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार है —कुङ्कुम पिंजरम् = कुङ्कुम पिञ्जरयं, चन्द्रक = चन्दओ, गगने = गयणयम्मि, धरणी-धर-पक्षोद्भातम् = धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं, दुःखिते राम हृदये = दुहिअए रामहिअयए, इह = इहयं, आश्लेष्टुम् = आलेठ्ठुअं इत्यादि ॥ कभी कभी 'स्व-अर्थ' में दो 'क' की भी प्राप्ति होती हुई देखी जाती है। जैसे.—बहुक-कम् = बहुअयं। यहाँ पर 'क' का उच्चारण पैशाचिक-भाषा की दृष्टि से है। जैसे -वदने वदन समर्पित्वा = वतन के वतनकं समप्पेत्तून इत्यादि। 'इल्ल' प्रत्यय से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार है -निर्जिताशोक पल्लवेन = निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण, पुरो अथवा पुरा = पुरिल्लो, इत्यादि। 'उल्ल' प्रत्यय से संबंधित

'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुहिअए* रूप सिद्ध हो जाता है।

राम-हृदये (=राम-हृदयके) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राम-हिअयए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप, २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क्' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *राम-हिअयए* रूप सिद्ध हो जाता है।

इहयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

आलेट्ठुअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

बहुम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहुअयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ की वृत्ति से मूल रूप 'बहु' में दो 'ककारों' की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त दोनों 'क्' का हलन्त रूप से लोप, १-१८० से लोप हुए द्वितीय 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बहुअयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वदने संस्कृत रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनके रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-३०७ से 'द' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति, २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वतनके* रूप में सिद्ध हो जाता है।

वदनम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनकं रूप होता है। 'वतनक' रूप तक की साधनिका उपरोक्त 'वतनके' के 'वतनक' समान ही जानना, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वतनकं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समर्पित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका पैशाचिक भाषा में समप्पेत्तून रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष रहे हुए 'प्' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, ३-१५७ से मूल रूप में 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'समप्प' धातु में स्थित अन्त्य 'अ' विकरण प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, (नोट —सूत्र-संख्या ४ २३९ से हलन्त धातु 'समप्प्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति हुई है), २-१४६ से कृदन्त वाचक संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'तूण' प्रत्यय में स्थित त्' के स्थान पर द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति, और ४-३०६ से प्राकृत भाषा के शब्दों में स्थित 'ण' के स्थान पर पैशाचिक-भाषा में 'न' की प्राप्ति होकर *समप्पेत्तून* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्जिताशोक-पल्लवेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत-रूप निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज'

की प्राप्ति १ १७७ से 'त् और क्' का लोप १-२६ से 'स्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; २-१६४ से स्व-अर्थ में 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त इल्ल प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'इ' होने से 'ह्' में स्थित अन्त्य 'अ' का लोप एवं १-५ से प्राप्त 'इल्ल प्रत्यय की इ की प्राप्त हलन्त 'ह्' में संधि और १-६ से संस्कृत तृतीया विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'टा प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में ण' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-१४ से प्राप्त ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'ल्ल' के 'अ' के स्थान पर 'ए की प्राप्ति होकर *निच्चिसभाणेअ-पहअविल्लेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरो अथवा *पुरा* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ १६४ से 'स्व-अर्थ' में 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'इल्ल' प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'इ' होने से 'रो' के 'ओ' की अथवा 'रा के 'आ' की इत्-संज्ञा; १-५ से प्राप्त इल्ल' प्रत्यय की इ की प्राप्त हलन्त 'र्' में संधि और १ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मम-पितृक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मह-पिउल्लओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३ ११३ से संस्कृत रूप 'मम के स्थान पर 'मह' आदेश; १ १७७ से 'त्' का लोप २ १६४ से संस्कृत 'स्व-अर्थ द्योतक प्रत्यय क के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'उल्ल प्रत्यय में 'उ इत्-संज्ञक होने से 'तृ में से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए स्वर 'ऋ' की इत्-संज्ञा १ १७७ से 'क्' का लोप और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मह पिउल्लओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुहुल्लं और मुहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १ १८७ से 'ख के स्थान पर 'ह' आदेश २ १६४ से 'स्व-अर्थ में उल्ल प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'उल्ल' प्रत्यय में 'उ' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त 'ह में स्थित अ की इत्-संज्ञा; १ ८ से प्राप्त हलन्त 'ह में प्राप्त प्रत्यय उल्ल' के 'उ की संधि ३ ५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त म् का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मुहुल्लं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मुहं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १८७ में की गई है।

हस्तौ संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हत्थुल्ला और हत्था होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त के स्थान पर 'थ की प्राप्ति २ ८९ से प्राप्त 'थ के स्थान पर द्वित्व थ्थ' की प्राप्ति; २ ९ से प्राप्त पूर्व 'थ के स्थान पर 'त की प्राप्ति २ १६४ से 'स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से 'उल्ल प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'उल्ल' प्रत्यय में 'उ' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त त्थ में स्थित 'अ की इत्संज्ञा १-५ से प्राप्त हलन्त त्थ' में प्राप्त प्रत्यय उल्ल' के 'उ की संधि ३ १३० से संस्कृत रूप में स्थित द्विवचन के स्थान पर प्राकृत में बहुवचन की प्राप्ति तदनुसार ३ ४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३ १२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के कारण से 'ल्ल में स्थित अथवा वैकल्पिक पक्ष होने से 'त्थ' में स्थित अ स्वर के दीर्घ स्वर आ की प्राप्ति होकर क्रम से *हत्थुल्ला* और *हत्था* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चन्दो रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-३० में की गई है।

गगनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गयण होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इह रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-९ में की गई है।

आश्लेष्टुम् सस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप आलेट्ठुं होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७७ से 'श्' का लोप, २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ् की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आलेट्ठुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वहु (कं) सस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वहु और वहुअं होते हैं। प्रथम रूप 'वहु' सस्कृत 'वत्' सिद्ध ही है। द्वितीय-रूप में सूत्र सख्या २-१६४ से स्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क्' प्रत्यय का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *वहुअं* भी सिद्ध हो जाता है।।२-१६४॥

ल्लो नवैकाद्वा ॥ २-१६५ ॥

आभ्यां स्वार्थे संयुक्तो लो वा भवति ॥ नवल्लो । एकल्लो ॥ सेवादित्वात् कस्य द्वित्वे एक्कल्लो । पक्षे । नवो । एक्को । एओ ॥

अर्थ—सस्कृत शब्द 'नव' और 'एक' में स्व-अर्थ में प्राकृत-भाषा में वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे —नव =नवल्लो अथवा नवो। एक =एकल्लो अथवा एओ ॥ सूत्र सख्या २-९९ के अनुसार एक शब्द सेवादि-वर्ग वाला होने से इसमें स्थित 'क्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति हो जाती है, तदनुसार 'एक' के प्राकृत रूप 'स्व-अर्थ' में एकल्लो' और 'एक्को' भी होते है।

नव. सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप (स्वार्थ बोधक प्रत्यय के साथ) नवल्लो और नवो होते हैं इनमें सूत्र सख्या २-१६५ स स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से सयुक्त अर्थात् द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नवल्लो* और *नवो* दोनों रूप सिद्ध जाते है।

एक सस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ)-एकल्लो, एक्कल्लो, एक्को और एओ होते है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-१६५ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से सयुक्त अर्थात् द्वित्व ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर

ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(एक=) एक्कल्लो में सूत्र-संख्या २-९९ से 'क' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप एक्कओ और चतुर्थ रूप एओ की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९९ में की गई है ॥ २-१६५ ॥

उपरेः संव्याने ॥२-१६६॥

संव्यानेर्थे वर्तमानादुपरि शब्दात् स्वार्थे ल्लो भवति ॥ अवरिल्लो ॥ संव्यान इति किम् । अवरिं ॥

अर्थ—'ऊपर का कपड़ा' इस अर्थ में यदि 'उपरि' शब्द रहा हुआ हो तो 'स्व-अर्थ' में 'उपरि' शब्द के साथ 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे:—उपरितनः=अवरिल्लो।

प्रश्नः—संव्यान=ऊपर का कपड़ा' ऐसा होने पर ही उपरि-'अवरि' के साथ में 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है ऐसा प्रतिबंधात्मक उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तरः—यदि 'उपरि' शब्द का अर्थ 'ऊपर का कपड़ा' नहीं होकर केवल ऊपर सूचक अर्थ ही होगा तो ऐसी स्थिति में स्व-अर्थ बोधक 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राकृत साहित्य में नहीं देखी जाती है इसीलिये प्रतिबंधात्मक उल्लेख किया गया है। जैसे—उपरि=अवरिं ॥

उपरितनः संस्कृत विशेषण का है। इसका प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ) अवरिल्लो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १-१०८ से 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१६६ से संस्कृत स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर प्राकृत में 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवरिं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२६* में की गई है ॥२-१६६॥

भ्रुवो मया डमया ॥२-१६७॥

भ्रू शब्दात् स्वार्थे मया डमया इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ भुमया । भमया ॥

अर्थ—'भ्रू' शब्द के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में कभी 'मया' प्रत्यय आता है और कभी डमया (=अमया)-प्रत्यय आता है। 'मया' प्रत्यय के साथ में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'ऊ' की इत्-संज्ञा नहीं होती है किन्तु 'डमया' प्रत्यय में आदि में स्थित 'ड्' इत्संज्ञक है अतः 'डमया' प्रत्यय की प्राप्ति के समय में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'ऊ' की इत्संज्ञा हो जाती है। यह अन्तर ध्यान में रखा जाना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार है:—भ्रू=भुमया अथवा भमया ॥

'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुहिअए* रूप सिद्ध हो जाता है।

दये (=राम हृदयके) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राम-हिअयए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' का लोप, २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क्' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *राम-हिअयए* रूप सिद्ध हो जाता है।

इहयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

आलेद्ठुअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

बहुग् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहुअयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ की वृत्ति से मूल रूप 'बहु' में दो 'ककारों' की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त दोनों 'क्' का हलन्त रूप से लोप, १-१८० से लोप हुए द्वितीय 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बहुअयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वदने संस्कृत रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनके रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-३०७ से 'द' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति, २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वतनके* रूप में सिद्ध हो जाता है।

वदनम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनकं रूप होता है। 'वतनक' रूप तक की साधनिका उपरोक्त 'वतनके' के 'वतनक' समान ही जानना, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वतनकं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समर्पित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका पैशाचिक भाषा में समप्पेत्तून रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'प्' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, ३-१५७ से मूल रूप में 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'समप्प' धातु में स्थित अन्त्य 'अ' विकरण प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, (नोट —सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त धातु 'समप्प में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति हुई है), २-१४६ से कृदन्त वाचक संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'तूण' प्रत्यय में स्थित त्' के स्थान पर द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति, और ४-३०६ से प्राकृत भाषा के शब्दों में स्थित 'ण' के स्थान पर पैशाचिक-भाषा में 'न' की प्राप्ति होकर *समप्पेत्तून* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्जिताशोक-पल्लवेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत-रूप निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज'

की प्राप्ति १-१७७ से 'त' और 'क' का लोप १-२६ से 'स्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति २-१६४ से 'स्व अर्थ में 'डिल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'डिल्ल' प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'ड' होने से 'स्' में स्थित अन्त्य 'अ' का लोप एवं १-५ से प्राप्त 'इल्ल' प्रत्यय की इ की प्राप्त हलन्त 'स्' में संधि और ३-६ से संस्कृत तृतीया विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'टा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति एवं ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'ल्ल' के 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *मिलिजिमासोम-पहलविल्लेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरो अथवा *पुरा* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'डिल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'डिल्ल' प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'ड्' होने से 'रो' के 'ओ' की अथवा 'रा' के आ की इत्-संज्ञा १-५ से प्राप्त 'इल्ल' प्रत्यय की इ की प्राप्त हलन्त 'र्' में संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ममपितृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महु-पिउल्लओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१११ से संस्कृत रूप 'मम' के स्थान पर 'महु' आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप २-१६४ से संस्कृत 'स्व-अर्थ द्योतक प्रत्यय 'क' के स्थान पर प्राकृत में 'डुल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से 'पृ' में से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए स्वर 'ऋ' की इत्-संज्ञा १-१७७ से 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *महु-पिउल्लओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुहुल्लं और मुहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' आदेश; २-१६४ से स्व-अर्थ में डुल्ल प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त 'ह' में स्थित 'अ' की इत्-संज्ञा १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में प्राप्त प्रत्यय 'उल्ल' के 'उ' की संधि ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मुहुल्लं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मुहं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१८७ में की गई है।

हस्तौ संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हत्थुल्ला और हत्था होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'थ' के स्थान पर द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति २-१६४ से स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से 'डुल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त 'त्थ' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा १-५ से प्राप्त हलन्त 'त्थ्' में प्राप्त प्रत्यय 'उल्ल' के 'उ' की संधि ३-१३० से संस्कृत रूप में स्थित द्विवचन के स्थान पर प्राकृत में बहुवचन की प्राप्ति तदनुसार ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के कारण से 'ल्ल' में स्थित अथवा वैकल्पिक पक्ष होने से 'त्थ' में स्थित 'अ' स्वर के दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से *हत्थुल्ला* और *हत्था* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चन्दो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३० में की गई है।

गगनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इह रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९ में की गई है।

आश्लेष्टुम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप आलेट्ठुं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप, २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आलेट्ठुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहु (कं) संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहु और बहुअं होते हैं। प्रथम रूप 'बहु' संस्कृत 'वत्' सिद्ध ही है। द्वितीय-रूप में सूत्र संख्या २-१६४ से स्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क्' प्रत्यय का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *बहुअं* भी सिद्ध हो जाता है।।२-१६४।।

ल्लो नवैकाद्वा ॥ २-१६५ ॥

आभ्यां स्वार्थे संयुक्तो लो वा भवति ॥ नवल्लो । एकल्लो ॥ सेवादित्वात् कस्य द्वित्वे एक्कल्लो । पक्षे । नवो । एक्को । एओ ॥

अर्थ —संस्कृत शब्द 'नव' और 'एक' में स्व-अर्थ में प्राकृत-भाषा में वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे —नव =नवल्लो अथवा नवो। एक =एकल्लो अथवा एओ ॥ सूत्र संख्या २-९९ के अनुसार एक शब्द सेवादि-वर्ग वाला होने से इसमें स्थित 'क्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति हो जाती है; तदनुसार 'एक' के प्राकृत रूप 'स्व-अर्थ' में एकल्लो' और 'एक्को' भी होते हैं।

नवः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप (स्वार्थ बोधक प्रत्यय के साथ) नवल्लो और नवो होते हैं इनमें सूत्र संख्या २-१६५ से स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से संयुक्त अर्थात् द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नवल्लो* और *नवो* दोनों रूप सिद्ध जाते हैं।

एक संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ)-एकल्लो, एक्कल्लो, एक्को और एओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१६५ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से संयुक्त अर्थात् द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर

'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(एक=) एक्कल्लो में सूत्र-संख्या २ ९९ से 'क' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप एक्कओ और चतुर्थ रूप एओ की सिद्धि सूत्र-संख्या २ ९९ में की गई है ॥ २ १६५ ॥

उपरेः संव्याने ॥२-१६६॥

संव्यानेर्थे वर्तमानादुपरि शब्दात् स्वार्थे ल्लो भवति ॥ अवरिल्लो ॥ संव्यान इति किम् । अवरिं ॥

अर्थ—'ऊपर का कपड़ा' इस अर्थ में यदि 'उपरि' शब्द रहा हुआ हो तो स्व-अर्थ में 'उपरि' शब्द के साथ 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे—उपरितनः=अवरिल्लो।

प्रश्न—'संव्यान=ऊपर का कपड़ा' ऐसा होने पर ही उपरि=अवरि' के साथ में 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है ऐसा प्रतिबंधात्मक उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तर—यदि 'उपरि' शब्द का अर्थ 'ऊपर का कपड़ा' नहीं होकर केवल 'ऊपर सूचक अर्थ ही होगा तो ऐसी स्थिति में स्व-अर्थ बोधक 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राकृत साहित्य में नहीं देखी जाती है इसीलिये प्रतिबंधात्मक उल्लेख किया गया है। जैसे—उपरि=अवरिं ॥

उपरितनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ) अवरिल्लो होता है इसमें सूत्र-संख्या १ २११ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १ १०७ से 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१६६ से ही इस स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर प्राकृत में 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवरिं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२६ में की गई है ॥२-१६६॥

भ्रुवो मया डमया ॥२-१६७॥

भ्रू शब्दात् स्वार्थे मया डमया इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ भुमया । भमया ॥

अर्थ—'भ्रू' शब्द के प्राकृत रूपान्तर में स्व-अर्थ में कभी 'मया' प्रत्यय आता है और कभी डमया (अमया)-प्रत्यय आता है। 'मया' प्रत्यय के साथ में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'ऊ' की इत्-संज्ञा नहीं होती है किन्तु 'डमया' प्रत्यय में आदि में स्थित 'ड्' इत्संज्ञक है अतः डमया प्रत्यय की प्राप्ति के समय में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'ऊ' की इत्संज्ञा हो जाती है। यह अन्तर ध्यान में रखा जाना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं:—भ्रू=भुमया अथवा भमया ॥

भुमया रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-१२१ में की गई है।

भ्रू संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ) भमया होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-१६७ से स्व-अर्थ' में प्राप्त प्रत्यय 'डमया' में स्थित 'ड्' इत्सज्ञक होने से प्राप्त 'भू' में स्थित अन्त्य स्वर 'ऊ' की इत्सज्ञा होकर 'अमया' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से हलन्त 'भ' में 'डमया' प्रत्यय में से अवशिष्ट 'अमया' के 'अ' की सधि, और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *भमया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१६७ ॥

शनैसो डिअम् ॥ २-१६८ ॥

शनैस् शब्दात् स्वार्थे डिअम् भवति ॥ सणिअमवगूढो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'शनैः' के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। 'डिअम्' प्रत्यय में आदि 'ड्' इत्सज्ञक होने से 'शनैः' के 'ऐ' स्वर की इत्सज्ञा होकर 'इअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे-शनैः अवगूढ=सणिअम् अवगूढो अथवा सणिअमवगूढो ॥

शनैः (=शनैस्) संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सणिअम् होता है। इसमें सूत्र सख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति, २-१६८ से 'स्व-अर्थ' में 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त 'डिअम्' प्रत्यय में 'ड्' इत्सज्ञक होने से 'ऐ' स्वर की इत्सज्ञा अर्थात् लोप; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन विसर्ग रूप 'स्' का लोप, और १-५ से प्राप्त रूप 'सण्' में पूर्वोक्त 'इअम्' की सधि होकर सणिअम् रूप सिद्ध हो जाता है।

अवगूढः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवगूढो होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवगूढो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१६८ ॥

मनाको न वा डयं च ॥ २-१६९ ॥

मनाक् शब्दात् स्वार्थे डयम् डिअम् च प्रत्ययो वा भवति ॥ मणयं । मणियं । पक्षे । मणा ॥

अर्थ—संस्कृत अव्यय रूप मनाक् शब्द के प्राकृत रूपान्तर में स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से कभी 'डयम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है, कभी 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है और कभी-कभी स्व-अर्थ में किसी भी प्रकार के प्रत्यय की प्राप्ति नहीं भी होती है जैसे—मनाक्=मणयं अथवा मणियं और वैकल्पिक पक्ष में मणा जानना।

मनाक् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत-रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ)-मणयं, मणियं और मणा होते हैं। इनमें सूत्र सख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप,

प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *दीहरं* और *दीहं* सिद्ध हो जाते हैं ॥ २-१७१ ॥

त्वादेः सः ॥२-१७२॥

भावे त्व-तल् (हे० ७-१) इत्यादिना विहितात्त्वादेः परः स्वार्थे स एव त्वादि र्वा भवति ॥ मृदुकत्वेन । मउअत्तयाइ ॥ आतिशायिका त्त्वातिशायिकः संस्कृतवदेव सिद्धः । जेट्ठयरो । कणिट्ठयरो ॥

अर्थ —आचार्य हेमचन्द्र कृत संस्कृत-व्याकरण मे (हे० ७-१-सूत्र में)—भ व-अर्थ में 'त्व' और 'तल्' प्रत्ययों की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है। प्राकृत-व्याकरण में भी 'भाव अर्थ' में इन्हीं त्व' आदि प्रत्ययों की ही प्राप्ति वैकल्पिक रूप से तथा 'स्व-अर्थ-बोधकता' रूप से होती है। जैसे —मृदुकत्वेन=मउअत्तयाइ ॥ अतिशयता' सूचक प्रत्ययों से निर्मित संस्कृत-शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में उन्हीं 'अतिशयता' सूचक प्रत्ययों की प्राप्ति होती है, जो कि 'अतिशयता-सूचक' अर्थ में संस्कृत में आये हैं। जैसे —ज्येष्ठतरः=जेट्ठयरो। इस उदाहरण में संस्कृत-रूप में प्राप्त प्रत्यय 'तर' का ही प्राकृत रूपान्तर 'यर' हुआ है। यह 'तर' अथवा 'यर' प्रत्यय आतिशायिक स्थिति का सूचक है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है —कनिष्ठतर =कणिट्ठयरो। इस उदाहरण में भी प्राप्त प्रत्यय 'तर' अथवा 'यर' तारतम्य रूप से विशष हीनता सूचक होकर आतिशायिक-स्थिति का द्योतक है। यों अन्य उदाहरणों में भी संस्कृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले आतिशायिक स्थिति' के द्योतक प्रत्ययों की स्थिति प्राकृत-रूपान्तर में बनी रहती है।

मृदुकत्वेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ। मउअत्तयाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप, २-७९ से 'व्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'व' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त की प्राप्ति, ३-३१ की वृत्ति से स्त्रीलिंग वाचक अर्थ में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१८० से प्राप्त स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मउअत्तयाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्येष्ठतरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जेट्ठयरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप, २-७७ से 'ष्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'ष्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ठ' के स्थान पर द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'ठ' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जेट्ठयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कनिष्ठतर. संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कणिट्ठयरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति और शेष सम्पूर्ण साधनिका उपरोक्त 'जेट्ठयरो' रूप के समान ही होकर *कणिट्ठयरो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-१७२ ॥

विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः ॥ २-१७३ ॥

एभ्यः स्वार्थे लो वा भवति । विज्जुला । पत्तलं । पीवलं । पीअलं । अन्धलो । पक्षे । विज्जू । पत्तं । पीअं । अन्धो ॥ कथं जमलं । यमलमिति संस्कृत शब्दात् भविष्यति ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द विद्युत्, पत्र, पीत और अन्ध के प्राकृत-रूपान्तर में स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे-विद्युत्=विज्जुला अथवा विज्जू; पत्रम्=पत्तलं अथवा पत्तं; पीतम्=पीवलं, पीअलं अथवा पीअं और अन्धः=अन्धलो अथवा अन्धो।

प्रश्न—प्राकृत रूप जमलं की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तरः—प्राकृत रूप 'जमलं' में स्थित 'ल' स्वार्थ-बोधक प्रत्यय नहीं है; किन्तु मूल संस्कृत रूप 'यमलम्' का ही यह प्राकृत रूपान्तर है; तदनुसार 'ल' मूल-स्थिति से रहा हुआ है; न कि प्रत्यय रूप से; यह ध्यान में रहे।

विद्युत् से निर्मित *विज्जुला* रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-८* में की गई है और *विज्जू* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५ में की गई है।

पत्रम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पत्तलं और पत्तं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; २-१७३ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *पत्तलं* और *पत्तं* सिद्ध हो जाते हैं।

पीवलं और *पीअलं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२१३* में की गई है।
तृतीय रूप *पीअं* की सिद्धि भी सूत्र-संख्या *१-२१३* में की गई है।

अन्धः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्धलो और अन्धो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१७३ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *अन्धलो* और *अन्धो* सिद्ध हो जाते हैं।

यमलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जमलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जमलं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१७३ ॥

गोणादयः ॥ २-१७४ ॥

गोणादयः शब्दा अनुक्त-प्रकृति-प्रत्यय-लोपागम-वर्णविकारा बहुलं निपात्यन्ते ॥

गौः । गोणो । गावी ॥ गावः । गावीओ ॥ बलीवर्दः । बइल्लो ॥ आपः । आऊ ॥ पञ्च पञ्चाशत् । पञ्चावण्णा । पणपन्ना । त्रिपञ्चाशत् । तेवण्णा ॥ त्रिचत्वारिंशत् । तेआलीसा ॥ व्युत्सर्गः । विउसग्गो ॥ व्युत्सर्जनम् । वोसिरणं ।। बहिर्मैथुनं वा । बहिद्धा ॥ कार्यम् । णामुक्कसिअं ॥ क्वचित् । कत्थइ ॥ उद्वहति । मुव्वहइ ॥ अपस्मारः । वम्हलो ॥ उत्पलम् । कन्दुट्टं धिक्धिक् । छिछि । धिद्धि ॥ धिगस्तु । धिरत्थु ॥ प्रतिस्पर्धा । पडिसिद्धी । पाडिसिद्धी ॥ स्थासकः । चच्चिक्कं ।। निलयः । निहेलण । मघवान् । मघोणो । साक्षी । सक्खिणो । जन्म । जम्मणं ॥ महान् । महन्तो । भवान् । भवन्तो ॥ आशीः । आसीसा ॥ क्वचित् ह्रस्य ड्भौ ॥ बृहत्तरम् । वड्डयरं ॥ हिमोरः । भिमोरो ॥ ल्लस्य ड्डः । क्षुल्लकः । खुड्डओ । घोषाणामग्रेतनो गायनः । घायणो ॥ वडः । वढो ॥ ककुदम् । ककुधं ॥ अकाण्डम् । अत्थक्कं ॥ लज्जावती । लज्जालुइणी ॥ कुतूहलम् । कुड्डं ॥ चूतः । मायन्दो । माकन्द शब्दः संस्कृतेऽपीत्यन्ये ॥ विष्णुः । भट्टिओ ॥ श्मशानम् । करसी ॥ असुराः । अगया ॥ खेलम् । खेड्डं ॥ पौष्पं रजः । तिङ्गिच्छि ॥ दिनम् । अल्लं ॥ समर्थः । पक्कलो । पण्डकः । णेलच्छो ॥ कर्पासः । पलही ॥ बली । उज्जल्लो ॥ ताम्बूलम् । झसुर ॥ पुंश्चली । छिछई ॥ शाखा । साहुली ॥ इत्यादि ॥ वाधिकारात् पक्षे यथादर्शनं गउओ इत्याद्यपि भवति ॥ गोला गोआवरी इति तु गोदागोदावरीभ्यां सिद्धम् ॥ भाषा शब्दाश्च । आहित्थ । लल्लक्क । विड्डिर । पच्चड्डिअ । उप्पेहड । मडप्फर । पडिच्छिर । अट्ट मट्ट । विहडप्फड । अज्जल्ल । हल्लप्फल्ल इत्यादयो महाराष्ट्र विदर्भादिदेशप्रसिद्धा लोकतोऽवगन्तव्याः ।। क्रिया शब्दाश्च । अवयासइ । फुम्फुल्लइ उप्फालेइ । इत्यादयः । अतएव च कृष्ट-घृष्ट-वाक्य विद्वस् वाचस्पति विष्टर श्रवस्-प्रचेतस्-प्रोक्त-प्रोतादीनाम् क्विवादि प्रत्ययान्तानां च अग्निचित्सोमसुत्सुग्लसुम्लेत्यादीनां पूर्वैः कविभिरप्रयुक्तानां प्रतीतिवैषम्यपरः प्रयोगो न कर्तव्यः शब्दान्तरैरेव तु तदर्थोऽभिधेयः । यथा कृष्टः कुशलः । वाचस्पतिर्गुरुः विष्टरश्रवा हरिरित्यादि ॥ घृष्ट शब्दस्य तु सोपसर्गस्य प्रयोग इष्यत एव । मन्दर-यड परिघट्टं । तद्दिअस-निहट्ठाणङ्ग इत्यादि ॥ आर्षे तु यथादर्शनं सर्वमविरुद्धम् । यथा । घट्ठा । मट्ठा । विउसा । सुअ-लक्खणाणुसारेण । वक्कन्तरेसु अ पुणो इत्यादि ॥

अर्थ.—इस सूत्र में कुछ एक ऐसे शब्दों का उल्लेख किया गया है, जिनमें प्राकृत व्याकरण के अनुसार प्राप्त होने वाली प्रकृति, प्रत्यय, लोप, आगम और वर्ण विकार आदि स्थितियों का अभाव है, और जो केवल संस्कृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्दों के स्थान पर प्रायः प्रयुक्त किये जाते हैं। ऐसे शब्दों की स्थिति 'देशज-शब्द-समूह' के अन्तर्गत ही मानी जा सकती है। जैसे—संस्कृत शब्द 'गो' के स्थान पर गोणो अथवा गावी का प्रयोग होता है, ऐसे ही संस्कृत शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले देशज शब्दों की सामान्य सूची इस प्रकार है –
गाव = गावीओ, बलीवर्द = बइल्लो, आप=आऊ, पञ्चपञ्चाशत्=पञ्चावण्णा अथवा पणपन्ना, त्रिपञ्चाशत्=

इसका कारण पूर्व-वर्ती परम्परा के प्रति आदर-भाव ही है। जो कि अविरुद्ध स्थिति वाला ही माना जायगा। जैसेः- घृष्टा = घट्ठा; मृष्टा = मटठा विद्वांस. = विउसा; श्रुत-लक्षणानुसारेण = सुअ-लक्खणाणुसारेण और वाक्यान्तरेषु च पुन. = वक्कन्तरे सु अ पुणो इत्यादि आर्ष प्रयोग में अप्रचलित प्रयोगों का प्रयुक्त किया जाना अविरुद्ध स्थिति वाला ही समझा जाना चाहिये।

गौः सस्कृत रूप है। इसके आर्ष-प्राकृत रूप गोणो और गावी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-सख्या २-१७४ से 'गौ' के स्थान पर 'गोण' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *गोणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गौः=) गावी में सूत्र-सख्या २-१७४ से 'गौ' के स्थान पर 'गाव' रूप का निपात; ३-३२ से स्त्रीलिंग-अर्थ में प्राप्त निपात रूप 'गाव' में 'ङी' (=दीर्घस्वर 'ई') की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत् संज्ञक होने से 'गाव' में स्थित अन्त्य 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त रूप 'गाव्' के अन्त्य हलन्त 'व्' में प्राप्त प्रत्यय 'ई' की सधि और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर द्वितीय रूप *गावी* सिद्ध हो जाता है।

गावः सस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप गावीओ होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-१७४ से 'गो' के स्थान पर 'गाव' का निपात; ३-३२ से प्राप्त निपात रूप 'गाव' में स्त्रीलिंग अर्थ में 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्सज्ञक होने से प्राप्त निपात रूप 'गाव' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत्सज्ञा होने से लोप, १-५ से प्राप्त रूप 'गाव्' के अन्त्य हलन्त 'व्' में प्राप्त प्रत्यय 'ई' की सधि और ३-२७ से प्रथमा अथवा द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में सस्कृत प्रत्यय 'जस्' अथवा 'शस्' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गावीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बलीवर्दः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप बइल्लो होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-१७४ से सपूर्ण रुप 'बलीवर्द' के स्थान पर 'बइल्ल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आपः सस्कृत नित्य बहुवचनान्त रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप आऊ होता है। इसमें सूत्र सख्या २-१७४ से सपूर्ण रूप 'आप' के स्थान पर 'आउ' रूप का निपात, ३-२७ से स्त्रीलिंग में प्राप्त सस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और वैकल्पिक पक्ष में ३- ७ से ही अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *आऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पञ्चपञ्चाशत् सस्कृत सख्यात्मक विशेषण रूप है। इसके देशज प्राकृत रूप पञ्चावण्णा और पणपन्ना होते हैं। इनमें सूत्र-सख्या २-१७४ से सपूर्ण रूप 'पञ्चाशत्' के स्थान पर 'पञ्चावण्णा' और 'पणपन्ना' रूपों का क्रम से एव वैकल्पिक रूप से निपात होकर दोनों रूप *पंचावण्णा पणपन्ना* सिद्ध हो जाते हैं।

त्रिपञ्चाशत् सस्कृत सख्यात्मक विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप तेवण्णा होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-१७४ से सपूर्ण सस्कृत रूप त्रिपञ्चाशत् के स्थान पर देशज प्राकृत में तेवण्णा रूप का निपात होकर *तेवण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वचन में अकारान्त पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत रूप वम्हलो सिद्ध हो जाता है।

उत्पलम् संस्कृत रूप है इसका देशज प्राकृत रूप कन्दुट्टं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'उत्पल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'कन्दुट्ट' रूप का निपात, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत रूप कन्दुट्टं सिद्ध हो जाता है।

धिग्धिक् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके देशज प्राकृत रूप छि छि और धिद्धि होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत 'धिग् धिक्' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'छि छि' और 'धिद्धि' का क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से निपात होकर दोनों रूप *छिछि* और धिद्धि सिद्ध हो जाते हैं।

धिगस्तु संस्कृत अव्यय रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप धिरत्थु होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ग' वर्ण के स्थान पर प्राकृत में 'र' वर्ण का निपात, २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त्' के स्थान पर 'थ्' आदेश, २-८९ से आदेश प्राप्त 'थ्' का द्वित्व 'थ्थ्' और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत *धिरत्थु* रूप सिद्ध हो जाता है।

पडिसिद्धी और *पाडिसिद्धी* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४४* में की गई है।

स्थासकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज *अथवा आर्ष* प्राकृत रूप चच्चिक्कं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'स्थासक' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'चच्चिक्क' रूप का निपात, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत *चच्चिक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निलयः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप निहेलणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'निलय' के स्थान पर देशज प्राकृत में निहेलण' रूप का निपात, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत *निहेलणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मघवान् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप मघोणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'मघवान्' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'मघोण' रूप का निपात, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुंल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत *मघोणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

साक्षिणः संस्कृत बहुवचनान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्खिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख् ख्' की प्राप्ति २-९० प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर क्' की प्राप्ति और ३-२२ से (संस्कृत

मक शब्द सात्विक में स्थित अन्त्य हलन्त 'न्' में प्राप्त) प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में जस् प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सात्त्विणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जन्म संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप जम्मणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ६१ से 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'म' के स्थान पर द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति २ १७४ से प्राप्त रूप 'जम्म' में अन्त्य स्थान पर 'ण' का आगम रूप निपात; ३ २५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त म् का अनुस्वार होकर *जम्मणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप महुन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति १७४ से प्राप्त रूप महन् के अन्त में आगम रूप 'त' का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *महन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवान् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप भवन्तो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त महान्=महन्तो रूप के समान ही होकर *भवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आशीः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप आसीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १ २६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १ ११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप १७४ से प्राप्त रूप 'आसी' के अन्त में आगम रूप 'स्' का निपात और ४-४१ की वृत्ति से एवं हेम व्याकरण २ ४ से स्त्रीलिंग अर्थ में अन्त में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आसीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहत्तरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप बहुयरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ १२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति १ २३७ से 'ब' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २ १७४ से 'ह' के स्थान पर द्वित्व 'ड्ढ' की प्राप्ति; २ ७७ से प्रथम हलन्त 'त' का लोप; १ १७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; १ १८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर म प्रत्यय की प्राप्ति और १ २३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वड्ढयरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हिमोर संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप भिमोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ १७४ से 'ह' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिमोरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षुल्लक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खुड्डओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २ ३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति २ १७४ से द्वित्व 'ल्ल' के स्थान पर द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति १ १७७ से क का लोप और ३ २ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति

होकर *खुड्डओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गायन संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप घायणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ग' के के स्थान पर घ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घायणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वड. संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप वढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ड' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ककुदम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप ककुध होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'द' के स्थान पर 'ध' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ककुधं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अकाण्डम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप अत्थक्क होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'अकाण्ड' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अत्थक्क' रूप का निपात, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अत्थक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जावती संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप लज्जालुइणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से वाली' अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'वती' के स्थान पर देशज प्राकृत में लुइणी प्रत्यय का निपात होकर *लज्जालुइणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप कुड्ड होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'कुतूहल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'कुड्ड' रूप का निपात, ३-२१ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *कुड्डं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चूत' संस्कृत रूप (आम्रवाचक) है इसका देशज प्राकृत रूप मायन्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण 'मायन्द' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मायन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

माकन्द. संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप मायन्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से लोप हुए क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मायन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पलही रूप सिद्ध हो जाता है ।

वली संस्कृत विशेषण रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप उज्जल्लो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'वली' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'उज्जल्ल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उज्जल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ताम्बूलम् संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप झसुर होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'ताम्बूल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'झसुर' रूप का निपात, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *झसुरं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

पुंश्चली संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप छिछई होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'पुंश्चली' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'छिछई' रूप का निपात और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *छिंछई* रूप सिद्ध हो जाता है ।

शाखा संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप साहुली होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'शाखा' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'साहुली' रूप का निपात और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *साहुली* रूप सिद्ध हो जाता है ।

गउओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-५४* में की गई है ।

गोला संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप भी गोला ही होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-११ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त स्त्रीलिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थानीय प्रत्यय रूप विसर्ग का–हलन्त व्यञ्जन रूप होने से–लोप होकर *गोला* सिद्ध होता है ।

गोदावरी संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप गोआवरी होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *गोआवरी* रूप सिद्ध हो जाता है ।

आहित्य, लल्लक्क, विड्डिर, पच्चड्डिअ, उप्पेहड, मडप्फर, पड्डिच्छिर, अट्टमट्ट, विहडप्फड, और हल्लप्फल्ल इत्यादि शब्द सर्वथा प्रान्तीय होकर रूढ़ अर्थ वाले हैं, अत इनके पर्याय-वाची शब्दों का संस्कृत में अभाव है, किन्तु इनकी अर्थ-प्रधानता को लेकर एव इनके लिये स्थानापन्न शब्दों का निर्माण करके काम चलाऊ साधनिका निम्न प्रकार से है —

चलित, कुपित अथवा *आकुल* संस्कृत विशेषण रूप है। इनके स्थान पर प्राकृतीय भाषा में 'आहित्थो' रूप का निपात होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आहित्थो* रूढ-रूप सिद्ध हो जाता है।

भीष्म अथवा *भयंकर* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप लल्लक्को होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप भीष्म अथवा भयंकर के स्थान पर रूढ रूप 'लल्लक्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रूढ रूप *लल्लक्को* सिद्ध हो जाता है।

भामक (वाद्य-विशेष) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप विड्डिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'भामक' के स्थान पर रूढ रूप 'विड्डिर' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रूढ रूप *विड्डिरो* सिद्ध हो जाता है।

क्षरित संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप पच्चड्डिओ होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *पच्चड्डिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्भट संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप उप्पेहडो होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *उप्पेहडो* रूढ रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्व संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप मडप्फरो होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *मडप्फरो* रूढ रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृक्ष संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप पड्डिच्छिरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत शब्द 'सदृक्ष' के स्थान पर प्राकृतीय भाषा में पड्डिच्छिर रूढ रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रूढ रूप *पड्डिच्छिरं* सिद्ध हो जाता है।

आसपासम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप अट्टमट्टं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त पड्डिच्छिरं के समान ही होकर रूढ रूप *अट्टमट्टं* सिद्ध हो जाता है।

व्याकुल संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप विहडप्फडो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त विड्डिरो के समान ही होकर रूढ रूप *विहडप्फडो* सिद्ध हो जाता है।

दृढ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप अज्जल्लं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त पड्डिच्छिरं के समान होकर रूढ रूप *अज्जल्लं* सिद्ध हो जाता है।

औत्सुक्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतीय भाषा रूप हल्लप्फलं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त 'पड्डिच्छिरं' के समान ही होकर रूढ रूप *हल्लप्फलं* सिद्ध हो जाता है।

श्लिष्याति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप अवयासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'श्लिष्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रूढ रूप 'अवयास' का निपात ४-२३९ से प्राप्त रूप अवयास्' में संस्कृत गण वाचक 'य' विकरण प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय प्राप्ति होकर 'रूढ अर्थ' वाचक रूप *अवयासइ* सिद्ध हो जाता है।

उत्पाटयाति अथवा *कथयाति* संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप फुम्फुल्लई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'उत्पाट' अथवा 'कथ्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रुढ रूप 'फुम्फुल्ल' का निपात, ४-२३९ से प्राप्त रूप 'फुम्फुल्ल्' में संस्कृत गण वाचक 'अय' विकरण प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'रूढ-अर्थ' वाचक रूप *फुम्फुल्लइ* सिद्ध हो जाता है।

उत्पाटयाति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप उप्फालेइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'उत्पाट्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रूढ़ रूप उप्फाल्' का निपात, ४-२३९ से प्राप्त रूढ़ रूप उप्फाल्' में संस्कृत गण-वाचक 'अय' विकरण प्रत्यय के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति, ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'रूढ़-अर्थ' वाचक रूप *उप्फालेइ* सिद्ध हो जाता है।

मन्दर-तट-परिघृष्टम् संस्कृत विशेषणात्मक वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप मन्दर-यड-परिघट्टं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, १-१९५ से प्रथम 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, २-३४ से ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठठ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मन्दर यड-परिघट्टं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तद्दिवस-निवृष्टानंग' संस्कृत विशेषणात्मक वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप तद्दिअस-निहट्ठाणगो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१८७ से प्राप्त 'घ' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति २-८९ से 'ठ' को द्वित्व 'ठ ठ्' की प्राप्ति और २ ९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति, १-२२८ मे द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे कवर्गीय 'ग' होने से पचमाक्षर रूप 'ङ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तद्दिअस निहट्ठाणंगो* रूप सिद्ध होजाता है।

अव्ययम् ॥२-१७५॥

अधिकारोयम् । इतः पर ये वक्ष्यन्ते आ पाद समाप्ते स्तेऽव्ययसंज्ञा ज्ञातव्याः ॥

अर्थः—यह सूत्र-अधिकार-वाचक है, प्रकारान्तर से यह सूत्र-विवेच्यमान विषय के लिये शीर्षक रूप भी कहा जा सकता है। क्योंकि यहां से नवीन विषय रूप से 'अव्यय-शब्दों' का विवेचन प्रारम्भ किया जाकर इस द्वितीय पाद की समाप्ति तक प्राकृत-साहित्य में उपलब्ध लगभग सभी अव्ययों का वर्णन किया जायगा। अत पाद-समाप्ति-पर्यन्त जो शब्द कहे जायगें, उन्हें 'अव्यय सज्ञा वाला जानना।

तं वाक्योपन्यासे ॥२-१७६॥

तमिति वाक्योपन्यासे प्रयोक्तव्यम् ॥ तंतिअस वन्दि-मोक्खं ॥

अर्थ.-'त' शव्द अव्यय है और यह वाक्य के प्रारभ में शोभारूप से-अलकार रूप से प्रयुक्त होता है, ऐसी स्थिति में यह अव्यय किसी भी प्रकार का अर्थ सूचक नहीं होकर केवल अलकारिक होता है। इसे केवल साहित्यक परिपाटी ही समझना चाहिए। जैसे-त्रिदश-वदिमोक्षम् = त तिअस-वदि मोक्ख। इस उदाहरण में सस्कृत रूप में 'त' वाचक शब्द रूप का अभाव है; किन्तु प्राकृत रूपान्तर मे 'त' की उपस्थिति है, यह उपस्थिति शोभा रूप ही है, अलकारिक ही है, न कि किसी विशेष-तात्पर्य को बतलाती है। यों अन्यत्र भी 'तं' की स्थिति को ध्यान में रखना चाहिये। 'त' अव्यय है। इसकी साधनिका की आवश्यकता उपरोक्त कारण से नहीं है।

त्रिदश-बन्दि-मोक्षम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिअस-बन्दि मोक्ख होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र्' में स्थिति 'र्' का लोप, १-१७७ से प्रथम 'द्' का लोप, १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'ख्' के स्थान पर द्वित्व 'ख् ख' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति और ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति एव १-२३ से प्राप्त म्' का अनुस्वार होकर *तिअस-बंदिमोक्खं* रूप सिद्ध हो जाता है। २ १७६।

आम अभ्युपगमे ॥ २-१७७ ॥

आमेत्यभ्युपगमे प्रयोगक्तव्यम् ॥ आम बहला वणोली ॥

अर्थः—'स्वीकार करने' अर्थ में-अर्थात् 'हां' ऐसे स्वीकृति-सूचक अर्थ में प्राकृत साहित्य में 'आम' अव्यय का उच्चारण किया जाता है। जैसे.-आम बहला वनालि = आम बहला वणोली। हां, (यह) सघन वन-पक्ति है। 'आम' अव्यय रूप है। रुढ रूप वाला होने से एव रुढ-अर्थक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

बहला सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्रकृत रूप भी बहला ही होता है। अतएव साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

वनालिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वणोली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-८३ से 'पंक्ति वाचक' अर्थ में रहे हुए आलि शब्द के आ को ओ की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' का, आगे 'ओली' का ओ होने से लोप; १-५ से हलन्त 'ण्' के साथ 'ओली' के 'ओ' की संधि, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *वणोली* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१७७॥

णवि वैपरीत्ये ॥२-१७८॥

णवीति वैपरीत्ये प्रयोक्तव्यम् ॥ णवि हा वणे ॥

अर्थ—प्राकृत शब्द 'णवि' अव्यय है और इसका प्रयोग विपरीतता अर्थ को प्रकट करने में किया जाता है। जैसे:—उण्हेहु सीअला णवि वणवि वण=उष्णा अपि (तथापि)-(णवि)—शीतला वनकी-वने अर्थात् उष्णता की ऋतु होने पर भी (उसकी) वनकी वन में शीतलता है। इसी प्रकार से मूल उदाहरण का तात्पर्य इस प्रकार है:— णवि हा वणे=णवि हा! वने अर्थात् खेद है कि (जहाँ पहुँचना चाहिये था वहाँ नहीं पहुँच कर) उल्टे वन में (पहुँच गये हैं)। यों 'विपरीतता अर्थ में 'णवि' का प्रयोग समझना चाहिये।

णवि प्राकृत-साहित्य का (विपरीतता रूप) अर्थ वाचक अव्यय है। तदनुसार 'साधनिका' की आवश्यकता नहीं है।

'हा' प्राकृत-साहित्य का 'खेद' द्योतक अव्यय रूप है।

वने संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वणे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति; 'ङ' में 'ङ' इत्संज्ञक होने से प्राप्त 'ण' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत्संज्ञा और १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण्' में प्राप्त 'ए' प्रत्यय की संधि होकर वणे रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१७८॥

पुणरुत्त कृत करणे ॥२-१७९॥

पुणरुत्त मिति कृत करणे प्रयोक्तव्यम् ॥ अइ सुप्पइ पंसुलि णीसहेहिं अङ्गेहिं पुणरुत्त ॥

अर्थ—किये हुए को ही करना अर्थात् बार बार अथवा बारंबार अर्थ में 'पुणरुत्तं' अव्यय का प्राकृत साहित्य में प्रयोग किया जाता है। जैसे—अइ! सुप्पइ पंसुलि णीसहेहिं अंगेहिं पुणरुत्तं=अयि पांसुले! (त्वम्) स्वपिषि निःसहैः अंगैः बारंबारं अर्थात् हे दुष्टे! (तू) बार बार सहन कर सके ऐसे अंगों से (ही) सोती है। यहाँ पर 'सोने रूप करण' की क्रिया बार बार की जा रही है इस अर्थ को बतलाने के लिये 'पुणरुत्तं' अव्यय का प्रयोग किया गया है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—पेच्छ पुणरुत्तं=(एक बारं दृष्ट्वा पुनरपि) बारंबारं पश्य अर्थात् (एक बार देख कर पुनः) बार बार देखो।

अयि संस्कृत आमन्त्रणार्थक अव्यय है । इसका प्राकृत रूप अइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *अइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वपिति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सुप्पइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-६४ से व' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'उ की प्राप्ति, २-७९ से 'व्' का लोप; २-९८ से प्' के स्थान पर द्वित्व 'प्प्' की प्राप्ति, ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'इ' के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुप्पइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पांशुले संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप पंसुलि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; ३-३२ से स्त्री लिंग वाचक शब्दों में संस्कृत प्रत्यय 'आ' के स्थान पर प्राकृत में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'ला' वर्ण के स्थान पर 'ली' की प्राप्ति, और ३-४२ से आमन्त्रण अर्थ में-संबोधन में दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *पंसुलि* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःसहैः=निस्सहैः संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णीसहेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति, १-१३ से विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप, १-९३ से विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होने से प्राप्त 'णि' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; ३-७ से तृतीया विभक्ति के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर प्राकृत में हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'हिं' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *णीसहेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अंगैः संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अंगेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे क वर्गीय 'ग' वर्ण होने से क वर्गीय पंचमाक्षर रूप 'ङ्' की प्राप्ति, ३-७ से तृतीय विभक्ति के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'भिस' के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'हिं' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *अङ्गेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'पुणरुत्त' प्राकृत अव्यय रूप है। रूढ-रूप होने से इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है ॥२-१७९॥

हन्दि विषाद-विकल्प-पश्चात्ताप-निश्चय-सत्ये ॥२-१८०॥

हन्दि इति विषादादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥

हन्दि चलणे णओ सो ण माणिओ हन्दि हुज्ज एत्ताहे। हन्दि न होही भणिरी सा सिज्जइ हन्दि तुह कज्जे ॥ हन्दि । सत्यमित्यर्थः ॥

अर्थः—'हन्दि' प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय है। जब 'विषाद' अर्थात् 'खेद' प्रकट करना हो; अथवा कोई कल्पना करनी हो; अथवा पश्चात्ताप व्यक्त करना हो, अथवा किसी प्रकार का निश्चय

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हुज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६१ से भवि के स्थान पर 'हु' आदेश; और ३-१७७ से भविष्यत्-काल वाचक प्रत्यय 'ष्यति' के स्थान पर प्राकृत में 'ज्ज' आदेश की प्राप्ति होकर *हुज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

एताहे रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *२-१३४* में की गई है।

न संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'न' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२९ से 'न' का 'ण' वैकल्पिक रूप से होने से 'णत्व' का अभाव होकर *न* रूप सिद्ध हो जाता है।

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'होही' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६० से भू=भव के स्थान पर 'हो' आदेश, ३-१७२ से संस्कृत में प्राप्त होन वाले भविष्यत्-काल वाचक विकरण प्रत्यय 'इष्य' के स्थान पर प्राकृत में 'हि'-आदेश, ३-१३९ से संस्कृत प्राप्त प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय का आदेश, और १-५ की वृत्ति से एक ही पद में रहे हुए 'हि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के साथ आगे प्राप्त प्रत्यय रूप 'इ' की संधि होने से दोनों के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *होही* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणनशीला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से 'शील-धर्म-साधु अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'नशील' के स्थान पर 'इर' आदेश, १-१० से 'ण' में स्थित 'अ' स्वर का आगे प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' होने से लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण' में प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' की संधि, ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप को स्त्रीलिंग वाचक रूप बनाने के लिये 'डी' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'डी' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'इर' के अन्त्य स्वर अ' की इत्संज्ञा होकर 'अ' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'इर्' में उपरोक्त स्त्रीलिंग वाचक दीर्घ स्वर 'ई' की संधि और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर दीर्घ ईकारान्त रूप ही यथावत् स्थित रहकर *भणिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सा सर्व नाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-३३* में की गई है।

स्विद्यति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, ४-२२४ से 'द्' के स्थान पर द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तुह सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-८* में की गई है।

कार्ये संस्कृत रूप है। इसका रूप कज्जे होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'ज्ज' अन्त्य स्वर अ' की इत्संज्ञा होकर

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हुज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६१ से भवि के स्थान पर 'हु' आदेश, और ३-१७७ से भविष्यत्-काल वाचक प्रत्यय 'ष्यति' के स्थान पर प्राकृत में 'ज्ज' आदेश की प्राप्ति होकर *हुज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

एताहे रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१३४ में की गई है।

न संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'न' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२९ से 'न' का 'ण' वैकल्पिक रूप से होने से 'णत्व' का अभाव होकर *न* रूप सिद्ध हो जाता है।

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'होही' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६० से भू=भव के स्थान पर 'हो' आदेश, ३-१७२ से संस्कृत में प्राप्त होने वाले भविष्यत्-काल वाचक विकरण प्रत्यय 'इष्य' के स्थान पर प्राकृत में 'हि'-आदेश, ३-१३९ से संस्कृत प्राप्त प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय का आदेश, और १-५ की वृत्ति से एक ही पद में रहे हुए 'हि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के साथ आगे प्राप्त प्रत्यय रूप 'इ' की संधि होने से दोनों के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *होही* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणनशीला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से 'शील-धर्म-साधु अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'नशील' के स्थान पर 'इर' आदेश, १-१० से 'ण' में स्थित 'अ' स्वर का आगे प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' होने से लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण' में प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' की संधि; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिग रूप को स्त्रीलिंग वाचक रूप बनाने के लिये 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से 'इर' के अन्त्य स्वर अ' की इत्संज्ञा होकर 'अ' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'इर्' में उपरोक्त स्त्रीलिंग वाचक दीर्घ स्वर 'ई' की संधि और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर दीर्घ ईकारान्त रूप ही यथावत् स्थित रहकर *भणिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सा सर्व नाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३३ में की गई है।

स्विद्यति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप, ४-२२४ से 'द्' के स्थान पर द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तुह सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

कार्ये संस्कृत रूप है। इसका रूप कज्जे होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति, २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'ङे' में 'ङ' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'ज्ज' अन्त्य स्वर अ' की इत्संज्ञा होकर

कुसुदम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुमुअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुसुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत सदृशता वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप मिव होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'मिव' आदेश वैकल्पिक रूप से होकर *मिव* रूप सिद्ध हो जाता है।

चन्दनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चन्दण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त कुमुअं के समान ही होकर *चन्दणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सं० *इव*= पिव' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *पिव* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

हंसः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हंसो* रूप जाता है।

सं० *इव*='विव' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *विव* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

सागरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप साअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *साअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सं० *इव*='व्व' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *व्व* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

क्षीरोदः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खीरोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खीरोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शेषस्य संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सेसस्य होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों प्रकार के 'श्' और 'ष्' के स्थान पर क्रम से 'स्' की प्राप्ति, ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति होकर *सेसस्य* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत एक रूप 'व' भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'व' का आदेश होकर *व* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्मोक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निम्मोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म्' को द्वित्व 'म्म्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप, और ३-२ से प्रथमा विभक्ति एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निम्मोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कमलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'विअ' भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर विअ आदेश होकर *विअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीलोत्पल माला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नीलुप्पल-माला होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर रूप 'ओ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर रूप 'उ' की प्राप्ति; २-७७ से 'त्' का लोप और २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *नीलुप्पल-माला* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'इव' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'इव' का इव ही यथा रूप रहकर इव रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८२॥

जेण तेण लक्षणे ॥२-१८३॥

जेण तेण इत्येतौ लक्षणे प्रयोक्तव्यौ ॥ भमर-रुअं जेण कमल-वणं। भमर-रुअं तेण कमल-वणं ॥

अर्थ—किसी एक वस्तु को देखकर अथवा जानकर उससे संबंधित अन्य वस्तु की कल्पना करना अर्थात् 'ज्ञात' द्वारा 'ज्ञेय' की कल्पना करने के अर्थ में प्राकृत साहित्य में 'जेण' और 'तेण' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे-भ्रमर रुतं येन (लक्ष्यीकृत्य) कमल वनं और भ्रमर-रुतं तेन (लक्ष्यीकृत्य) कमल-वनम्; अर्थात् भ्रमरों का गुञ्जारव (है) तो (निश्चय ही यहाँ पर) कमल-वन (है)।

भ्रमर-रुतं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भमर-रुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भमर-रुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

येन (लक्ष्यीकृत्य इति अर्थे) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *जेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल वनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमल-वणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कमल-वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तेन (लक्ष्मी कृत्य इति अर्थे) सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तेण होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *तेण* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८३॥

णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे ॥२-१८४॥

एतेऽवधारणे प्रयोक्तव्याः ॥ गईए णइ। जं चेअ मउलणं लोअणाणं। अणुबद्धं तं चिअ कामिणीणं ॥ सेवादित्वात् द्वित्वमपि। ते च्चिअ धन्ना। ते च्चेअ सुपुरिसा ॥ च्च ॥ स च्च रूवेण। सच्च सीलेण ॥

अर्थः—जब निश्चयार्थ- (ऐसा ही है)-प्रकट करना होता है, तब प्राकृत साहित्य मे 'णइ' 'चेअ' 'चिअ' 'च्च' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त चार अव्ययों में से किसी भी एक अव्यय का प्रयोग करने से 'अव-धारण-अर्थ' अर्थात् निश्चयात्मक अर्थ प्रकट होता है। इन अव्ययों से ऐसा ही है' एसा अर्थ प्रति-फलित होता है। उदाहरण इस प्रकार है —गत्या एव=गईए णइ अर्थात् गति से हो, यत् एव मुकुलन लोचन नाम् = जचेअ मउलण लोअणाण अर्थात् आँखों की जो अध-खिलावट हो; अनुवद्ध तत् एव कामिनीभ्य =अणुवद्ध त चिअ कामिणोण अर्थात् स्त्रियों के लिये ही यह अनुवद्ध है इत्यादि। सूत्र-सख्या २-९९ वाले 'सेवादित्वात्' सूत्र से 'चेअ' और 'चिअ' अव्ययों में स्थित 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति भी हो जाया करती है। जैसे.—ते एव धन्या =ते च्चिअ धन्ना अर्थात् वे धन्य ही है, ते एव सुपुरुषा = ते च्चेअ सुपुरिसा अर्थात् वे सत्पुरुष ही है। 'च्च' निश्चय वाचक अव्यय के उदाहरण इस प्रकार है —स एव च रूपेण = स च्च य रूवेण अर्थात् रूप से ही वह (आदरणीय आदि है), और स एव शीलेन सच्च सीलेण अर्थात् शील (धर्म) से ही वह (पूज्य आदि) है, इत्यादि।

गत्या सस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप गईए होता है। इसम सूत्र-सख्या १-१७७ से (मूल रूप में स्थित-गति + आ) 'त्' का लोप और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में सस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थानीय रूप 'आ' के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति एव ३-२९ से ही प्राप्त प्रत्यय 'ए' के पूर्व में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गईए* रूप सिद्ध हो जाता है।

एव सस्कृत अवधारणार्थक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णइ' होता है। इसमें सूत्र सख्या २-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'णइ' की प्राप्ति होकर *णइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जं सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-२४ में की गई है।

चेअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या १-७ में की गई है।

मुकुलनम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मउलण होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१०७ से प्रथम 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क' का लोप, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *मउलणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शोभमानानाम् संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोभमाणाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'भ्' का लोप; १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थानीय 'नाम्' प्रत्यय के स्थान पर ३-१२ से प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; 'ण' के पूर्व में स्थित 'ण' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सोभमाणाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अनुबद्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अणुबद्धं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणुबद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तं सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-९९ में की गई है।

कामिनीभ्यः संस्कृत चतुर्थ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप कामिणीणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-१३१ से चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का विधान; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कामिणीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तद्' के द्वितीय 'द्' का लोप; ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर 'डे' का आदेश; 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में रहे हुए 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप और १-५ से शेष हलन्त 'त्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

धन्याः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धन्ना होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'न्न' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धन्ना* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*ते*' सर्वनाम रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

'*च्चिअ*' प्रत्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

सुपुरुषाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुपुरिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'रु' में स्थित 'उ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व

में स्थित 'स' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सुपुरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

एव संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप च्च होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'च्च' आदेश की प्राप्ति होकर '*च्च*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'स' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'स' होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-८६ से मूल सर्वनाम 'तत्' के स्थान पर 'सो' आदेश और २-३ से 'वैकल्पिक रूप से 'ओ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर '*स*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'च' संस्कृत संबंध-वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'य' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'च्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति होकर '*य*' रूप सिद्ध हो जाता है।

रूपेण संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रूवेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में अथवा पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'णा' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'व' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *रूवेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*स*' और '*च्च*' रूपों की सिद्धि *इसी सूत्र में ऊपर* कर दी गई है।

शीलेण संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सीलेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर पर 'स्' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में अथवा पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'णा' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'ल' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *सीलेण* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१८४ ॥

बले निर्धारण-निश्चययोः ॥२-१८५॥

बले इति निर्धारणे निश्चये च प्रयोक्तव्यम् ॥ निर्धारणे। बले पुरिसो धणंजओ खत्तिआणं ॥ निश्चये। बले सीहो। सिंह एवायम् ॥

अर्थ—दृढ़तापूर्वक कथन करने में और निश्चय-अर्थ बतलाने में प्राकृत साहित्य में 'बले' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'बले' पुरुष धनंजय' क्षत्रियाणं = बले पुरिसो धण-जओ खत्तिआण अर्थात् क्षत्रियों में वास्तविक पुरुष धनंजय ही है। सिंह एवायम् = बले सीहो अर्थात् यह सिंह ही है। कोई कोई 'निर्धारण' शब्द का अर्थ ऐसा भी करते हैं कि 'समूह में से एक भाग को पृथक् रूप से प्रदर्शित करना'।

'बले' अव्यय रूढ-अर्थक होने से एवं रूढ-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पुरिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

सोपनानाम् संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोमणाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'प्' का लोप; १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'आम' के स्थान में 'आम' प्रत्यय के स्थान पर ३-१२ से प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; 'ण' के पूर्व में स्थित 'ण' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'णा' की प्राप्ति; १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सोमणाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अनुबद्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अणुबद्धं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणुबद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तं सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-९९ में की गई है।

कामिनीभ्यः संस्कृत चतुर्थ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप कामिणीणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१३१ से चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का विधान; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कामिणीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप; ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर 'डे' आदेश; 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में रहे हुए 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप और १-५ से अब हलन्त 'त्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

धन्याः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धन्ना होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'न्न' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धन्ना* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते सर्वनाम रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

च्चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

सुपुरुषाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुपुरिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'रु' में स्थित 'उ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व

किल के स्थान पर किर आदेश की प्राप्ति होकर *किर* रूप सिद्ध हो जाता है ।

खर-हृदयः संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप खर-हिअओ होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द' और 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खर-हिअओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तस्य संस्कृत षष्ठयन्त सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप तस्स होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तस्स* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किल संस्कृत संभावना-अर्थक अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप इर होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१८६ से किल के स्थान पर 'इर' आदेश की प्राप्ति होकर इर रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रिय-वयस्यः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पिअ-वयंसो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से प्रथम 'य्' का लोप; १-२६ से द्वितीय 'य' में स्थित 'अ' स्वर पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति २-७८ से तृतीय 'य् व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पिअ-वयंसो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किल संस्कृत संभावना-अर्थक अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप हिर होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१८६ से 'किल' के स्थान पर 'हिर' आदेश की प्राप्ति होकर *हिर* रूप सिद्ध हो जाता है ।

'एवं' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है ।

किल संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप भी किल ही होता है । इसमें सूत्र संख्या २-१८६ से 'किल' ही यथावत् रहकर *किल* रूप सिद्ध हो है ।

तेन संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप तेण होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप, ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय ण के पूर्व में स्थित 'त' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *तेण* रूप सिद्ध हो जाता है ।

स्वप्नके संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है । इसका प्राकृत रूप सिविणए होता है । इसमें सूत्र संख्या १-४६ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर इ' की प्राप्ति, २-७९ से प्राप्त रूप 'सिव्' में स्थित 'व्' का लोप, १-२३१ से 'प्' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, २-१०८ से 'न' के पूर्व में 'इ' की प्राप्ति होकर हलन्त 'व' से 'वि' का सद्भाव; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-१६४ से 'स्वार्थ' रूप में संस्कृत 'क' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में भी 'क' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१७७ से प्राप्त 'क' में से हलन्त [illegible] लोप, और ३-११ से सप्तमी विभक्ति [illegible] वचन-

अर्थः—संस्कृत साहित्य में 'जहां' 'अनन्तर' अव्यय का प्रयोग होता है; वहां प्राकृत-साहित्य में इसी अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। 'इसके बाद' ऐसे अर्थ में 'णवरि' अव्यय प्रयुक्त किया जाता है। जैसे.—अनन्तरम् च तस्य रघुपतिना=णवरि अ से रहु-वइणा अर्थात् 'और पश्चात् रघुपति से उसका' (हित संपादन किया गया)। कोई कोई व्याकरणाचार्य संस्कृत अव्यय 'केवलम् और अनन्तरम्' के लिये प्राकृत में 'णवर और णवरि' दोनों का प्रयोग करना स्वीकार करते है।' 'णवर' अर्थात् "केवलम् और अनन्तरम्;" इसी प्रकार से 'णवरि' अर्थात् 'केवलम् और अनन्तरम्' यों अर्थ किया करते है। इसी तात्पर्य को लेकर 'केवलानन्तर्यार्थयोर्णवरणवरि' ऐसा एक ही सूत्र बनाया करते हैं; तदनुसार उनके मत से दोनों प्राकृत अव्यय दोनों प्रकार के संस्कृत-अव्ययो के तात्पर्य को बतलाते हैं। *अनन्तरम्* संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णवरि' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८८ से 'अनन्तरम्' के स्थान पर 'णवरि' आदेश की प्राप्ति होकर *णवरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'अ' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

तस्य संस्कृत षष्ठयत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'से' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८१ से संस्कृत मूल शब्द 'तत्' के साथ संस्कृत की षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर प्राकृत में 'तत् + ङस् के स्थान पर 'से' का आदेश होकर *से* रूप सिद्ध हो जाता है।

रघु-पतिना संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रहु-वइणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति, १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२४ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'णा' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रहु-वइणा* रूप सिद्ध हो जाता है।.२-१८८॥

अलाहि निवारणे ॥२-१८९॥

अलाहीति निवारणे प्रयोक्तव्यम् ॥ अलाहि किं वाइएण लेहेण ॥

अर्थः—'मना करने' अर्थ में अर्थात् 'निवारण अथवा निषेध' करने अर्थ में प्राकृत में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे —मा, किम् वाचितेन लेखेन=अलाहि; किं वाइएण लेहेण अर्थात् मत (पढ़ो),— पढ़े हुए लेख से क्या (होने वाला है) ? 'अलाहि' प्राकृत साहित्य का अव्यय है, रूढ़-अर्थक और रूढ़-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

किं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

वाचितेन संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वाइएण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' और त्' का लोप, ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग म संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण्' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित एव लुप्त हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *वाइएण* रूप सिद्ध हो जाता है।

से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रोसं रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९० ॥

माइं मार्थे ॥२-१९१॥

माइं इति मार्थे प्रयोक्तव्यम् ॥ माइं काहीअ रोसं । माऽकार्षीद् रोषम् ॥

अर्थः—'मा' अर्थात् मत' याने नकारार्थ में वा निषध-अर्थ में प्राकृत भाषा में 'माइं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे —माइं काहीअ रोसं = मा अकार्षीद् रोषम् अर्थात् उसने क्रोध नहीं किया। इत्यादि।

मा संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'माइं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१९१ से 'मा' के स्थान पर 'माइं' आदेश की प्राप्ति होकर *माइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अकार्षीत् संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'काहीअ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१४ से मूल-संस्कृत धातु रूप- कृ' अन्त्य 'ऋ' के स्थान पर 'आ' आदेश की प्राप्ति; और ३-१६२ से भूतकाल बोधक प्रत्यय 'हीअ' की प्राप्ति होकर *काहीअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

रोसं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१९० में की गई है ॥ २-१९१ ॥

हद्धी निर्वेदे ॥२-१९२॥

हद्धी इत्यव्ययमत एव निर्देशात् हा-धिक् शब्दादेशो वा निर्वेदे प्रयोक्तव्यम् ॥ हद्धी हद्धी। हा धाह धाह ॥

अर्थः—'हद्धी' यह प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय है। इसका प्रयोग 'निर्वेद' अर्थात् खिन्नता प्रकट करने में अथवा 'पश्चाताप पूर्ण खेद प्रकट करने में किया जाता है। संस्कृत अव्यय 'हा-धिक्' के स्थान पर भी वैकल्पिक रूप से इसका व्यवहार किया जाता है। जैसे –हा-धिक् ! हा-धिक्! ! हद्धी ! हद्धी ! ! पक्षान्तर में हा धाह ! हा धाह ! ! भी होता है। मानसिक खिन्नता को प्रकट करने के लिये इसका उच्चारण दो बार होता है।

हा ! *धिक्* संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप 'हद्धी' अथवा 'हा धाह' होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-१९२ से 'हा ! धिक' के स्थान पर 'हद्धी' अथवा हा ! धाह ! की आदेश प्राप्ति होकर *हद्धी* और *हा धाह* रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥२-१९२॥

वेव्वे भय-वारण-विषादे ॥२-१९३॥

भय वारण विषादेषु वेव्वे इति प्रयोक्तव्यम् ॥
वेव्वे त्ति भये वेव्वे त्ति वारणे जूरणे अ वेव्वे त्ति ॥
उल्लाविरीइ वि तुहं वेव्वे त्ति मयच्छि किं णेअं ॥ १ ॥
किं उल्लावेन्तीए उअ जूरन्तीए किं तु भीआए ।
उव्वाडिरीए वेव्वे त्ति तीऍ भणिअं न विम्हरिमो ॥ २ ॥

'र्' के साथ प्राप्त प्रत्यय 'अन' के 'अ' की संधि; १-२२८ से प्राप्त प्रत्यय 'अन' के 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय का आदेश; 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'ण' के 'अ' की इत्संज्ञा होने से 'अ' का लोप और १-५ से हलन्त 'ण्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *जूरणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

'अ' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

उल्लपनशीलया संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उल्लाविरीइ होता है। इसमें मूल रूप 'उल्लपनस्य-भावं इति उल्लापम् होता है। तदनुसार सूत्र-संख्या १-११ से एवं समास-स्थिति होने से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का लोप; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१४५ से 'शील-अर्थक' इर प्रत्यय की प्राप्ति, १-१० से पूर्वस्थ 'व' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'इर' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'व्' में आगे प्राप्त 'इर' के इ' की संधि; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'डी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'डी' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'र' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से 'इस' 'अ' का लोप, १-५ से हलन्त 'र्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'डी' = इ प्रत्यय की संधि; ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उल्लाविरीइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वि अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

तव संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'युष्मत' सर्वनामीय षष्ठ्यत एक वचन रूप 'तव' के स्थान पर 'तुहं' आदेश की प्राप्ति होकर *तुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

(हे) मृगाक्षि संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप मयच्छि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति, १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त 'पूर्व' 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति, और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *मयच्छि* रूप सिद्ध हो जाता है।

किं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

ज्ञेयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप णेअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णेअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्क्षापयन्त्या संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उक्खाविन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; ४-२३९ से संस्कृत में 'उत्क्षाप' धातु को चुरादिगण वाली मानने से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में केवल 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५८ से विकरण प्रत्यय के आगे वर्तमान कृदन्त का प्रत्यय 'न्त' होने से उक्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-५ से प्राप्त 'उक्खाव्' के हलन्त 'व्' में आगे प्राप्त विकरण प्रत्यय के स्थानीय रूप 'ए' की संधि; ३-१८१ से वर्तमान कृदन्त वाचक 'शतृ' प्रत्यय के स्थानीय संस्कृत प्रत्यय 'न्त' के स्थान पर प्राकृत में भी 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'न्त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'न्त्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग अर्थक 'ङी = ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उक्खाविन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

उअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२११ में की गई है।

खिद्यन्त्या संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जूरन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१३२ से संस्कृत धातु 'खिद्' के स्थान पर प्राकृत में 'जूर' आदेश; ४-२३९ से संस्कृत में 'खिद्' धातु में स्थित विकरण प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्त रूप 'जूर' में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति; ३-१८१ से वर्तमान कृदन्त वाचक 'शतृ' प्रत्यय रूप 'न्त' के स्थान पर प्राकृत में भी 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'न्त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'न्त्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'ङी=ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जूरन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

सु संस्कृत निश्चय वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'सु' ही होता है।

भीतया संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भीआए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-३१ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग रूप-निर्माणार्थ 'आप्=आ' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के साथ आगे प्राप्त प्रत्यय रूप 'आ' की संधि होने से 'आ' रूप की प्राप्ति; और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भीआए* रूप सिद्ध हो जाता है।

उन्मादशीलया संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उम्माडिरीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से न् का लोप; २-८९ से लोप हुए 'न्' के पश्चात् शेष रहे हुए म् को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-१९ से 'द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-१४५ से शील-वाचक 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से पूर्वस्थ 'ड' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'इर' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ड्' में आगे प्राप्त 'इर' के 'इ' की संधि ३-३२

से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'र' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'र्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'ङी=ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उअरीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

तया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' में स्थित अन्त्य हलन्त 'त' का लोप, ३-३३ से शेष 'त' में प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'त' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक-ङी='ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

विस्मरामः संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विम्हरिमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश, ४-२३९ से संस्कृत में प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थानीय रूप के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति, और ३-१५५ से प्राकृत में प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, ३-१४४ से वर्तमानकाल के बहु वचन में तृतीया पुरुष में अर्थात उत्तम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'म' के स्थान पर प्राकृत 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विम्हरिमो* रूप सिद्ध हो जाता है॥२-१९३॥

वेव्व च आमन्त्रणे ॥२-१९४॥

वेव्व वेव्वे च आमन्त्रणे प्रयोक्तव्ये ॥ वेव्व गोले। वेव्वे मुरन्दले वहसि पाणिअं॥

अर्थः—आमन्त्रणे 'अर्थ में अथवा संबोधन-अर्थ में वेव्व और वेव्वे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—हे गोले = वेव्व गोले = हे सखि! हे मुरन्दले वहसि पानीयम् = हे मुरन्दले! वहसि पाणिअं = हे मुरन्दल! तू पीने योग्य वस्तु विशेष लिये जा रहा है।

वेव्व प्राकृत साहित्य का रूढ रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है, अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गोले देशज शब्द रूप होने से संस्कृत रूप का अभाव है। इसमें सूत्र-संख्या ३-४१ से संबोधन के एक वचन में अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *गोले* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रणमत संस्कृत आज्ञार्थक सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'पणवह' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; ४-२२६ से 'म' के स्थान पर 'व' आदेश और ३-१७६ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में 'ह' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पणवह* रूप सिद्ध हो जाता है।

मानाय संस्कृत चतुर्थ्यन्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप माणस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१३१ से संस्कृतीय चतुर्थी के स्थान पर प्राकृत में षष्ठी-विभक्ति की प्राप्ति; ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुंल्लिग में (अथवा नपुंसकलिंग में)--संस्कृत 'ङस्' के स्थानीय रूप 'आय' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माणस्य* रूप सिद्ध हो जाता है।

'हला' प्राकृत भाषा का संबोधनात्मक अव्यय होने से रूढ-रूपक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है

'हले' प्राकृत-भाषा का संबोधनात्मक अव्यय होने से रूढ़-अर्थक और रूढ़-रूपक है; अत. साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

हताशस्य संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हयासस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुंल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' की प्राप्ति होकर *हयासस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

(हे) *सखि* ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप (हे) सहि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्री लिंग में अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर (हे) *सहि* ! रूप सिद्ध हो जाता है।

ईदृशी संस्कृत विशेषणात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप एरिसि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०५ से प्रथम 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-७७ से 'द्' का लोप १-१४२ से 'ऋ' के स्थान पर 'रि' की प्राप्ति, १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और १-८४ से दीर्घ स्वर द्वितीय 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *एरिसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'च्चिअ' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है।

गतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *गई* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गई* रूप सिद्ध हो जाता है।

दे संमुखीकरणे च ॥ २-१९६ ॥

संमुखीकरणे सख्या-आमन्त्रणे च दे इति प्रयोक्तव्यम् ॥ दे पसिअ ताव सुन्दरि ॥ दे आ पसिअ निअत्तसु ॥

'हुं' प्राकृत-भाषा का अव्यय होने से रुढ रूपक एवं रुढ-अर्थक है, अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गृहाण संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप गण्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२०९ से 'ग्रह' धातु के स्थान पर 'गण्ह्' (रूप का) आदेश, ४-२३९ से हलन्त 'ह्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *गण्ह* रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मन संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, और ३-५० से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

कथय संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप साहसु होता है। इसमे सूत्र-संख्या ४-२ से 'कथ्' धातु के स्थान पर प्राकृत में 'साह्' आदेश ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की होकर *साहसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्भावम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सब्भाव होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७७ से 'द' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'भ्' को द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सब्भावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्लज्ज ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर (हे) *निल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

समपसर संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप समोसर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७२ से मध्यस्थ उपसर्ग 'अप' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति, ४-२३९ से 'समोसर' में स्थित अन्त्य हलन्त 'र्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *समोसर* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९७ ॥

हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये ॥२-१९८॥

हु खु इत्येतौ निश्चयादिषु प्रयोक्तव्यौ ॥ निश्चये । [illegible]

अर्थः—'सम्मुख करने' के अर्थ में और 'सखी' को आमंत्रित करने के अर्थ में प्राकृत-भाषा में 'दे' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। 'मेरी ओर देखो' अथवा 'हे सखि!' इन तात्पर्य-पूर्ण शब्दों के अर्थ में 'दे' अव्यय का प्रयोग किया जाना चाहिये। जैसे:-हे! प्रसीद तावत् (हे) सुन्दरि! = दे पसिअ ताव (दे) सुन्दरि अर्थात् मेरी ओर देखो; अब हे सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ। हे (=हे सखि!) आ प्रसीद निवर्तस्व = दे! आ पसिअ निअत्तसु अर्थात् हे सखि! अब प्रसन्न हो जाओ (और) निवृत्त हो जाओ।

'दे' प्राकृत-साहित्य का संमुखीकरणार्थक अव्यय है; तदनुसार रूढ़-अर्थक और रूढ़-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पसिअ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०१ में की गई है।

ताव अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

हे *(सुन्दरि)*! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'सुन्दरि' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *(हे) सुन्दरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'आ' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'आ' ही होता है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पसिअ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०१ में की गई है।

निवर्तस्व संस्कृत आज्ञार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप निअत्तसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप और ३-१७३ से संस्कृत आज्ञार्थक प्रत्यय 'स्व' के स्थान पर प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निअत्तसु* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१९६॥

हुं दान-पृच्छा-निवारणे ॥२-१९७॥

हुं इति दानादिषु प्रयुज्यते॥ दाने। हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ॥ पृच्छायाम्। हुं साहसु सब्भावं॥ निवारणे। हुं निल्लज्ज समोसर॥

अर्थः—वस्तु-विशेष को देने के समय में ध्यान-आकर्षित करने के लिये अथवा सावधानी बतलाने के लिये प्राकृत साहित्य में 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार से किसी भी तरह की बात पूछने के समय में भी 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है एवं 'निषेध करने' के अर्थ में अथवा 'मनाई' करने के अर्थ में भी 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। क्रम से उदाहरण इस प्रकार हैं:- (हुं) गृहाण आत्मनः एव = हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ अर्थात् आप ही ग्रहण करो। 'पूछने' के अर्थ में 'हुं' अव्यय के प्रयोग का उदाहरण इस प्रकार है:- हुं कथय सद्भावम् = हुं साहसु सब्भावं। 'निवारण' के अर्थ में 'हुं' अव्यय के प्रयोग का उदाहरण यों है:- हुं निर्लज्ज! समपसर = हुं निल्लज्ज! समोसर अर्थात् हुं! निर्लज्ज! निकल जा।

'हुं' प्राकृत-भाषा का अव्यय होने से रुढ रूपक एव रूढ-अर्थक है, अत. साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गृहाण सस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप गण्ह होता है। इसमें सूत्र-सख्या ४-२०९ से 'ग्रह' धातु के स्थान पर 'गण्ह्' (रूप का) आदेश; ४-२३९ से हलन्त 'ह्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *गण्ह* रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मन संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-८४ से दीर्घ स्वर आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से सयुक्त व्यञ्जन त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति, और ३-५० से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में सस्कृत प्रत्यय जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र-सख्या १-८ में की गई है।

कथय सस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप साहसु होता है। इसमे सूत्र-सख्या ४-२ से 'कथ्' धातु के स्थान पर प्राकृत में 'साह्' आदेश ४-२३९ से सस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की होकर *साहसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्भावम् सस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सब्भाव होता है। इसमे सूत्र-सख्या २-७७ से 'द' का लोप, २-८९ से लोप 'हुए' 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'भ्' को द्वित्व भ्भ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनस्वार होकर *सब्भावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्लज्ज ! सस्कृत सबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से सबोधन के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिग में सस्कृत प्रत्यय 'सि' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर (हे) *निल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

समपसर सस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप समोसर होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१७२ से मध्यस्थ उपसर्ग 'अप' के स्थान पर ओ' की प्राप्ति, ४-२३९ से 'समोसर' में स्थित अन्त्य हलन्त 'र्' में विकरण प्रत्यय अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *समोसर* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९७ ॥

हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये ॥२-१९८॥

हु खु इत्येतौ निश्चयादिषु प्रयोक्तव्यौ ॥ निश्चये । तं पि हु अच्छिन्नसिरी । तं खु

'हुं' प्राकृत-भाषा का अव्यय होने से रुढ रूपक एव रूढ-अर्थक है, अत. साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गृहाण संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप गण्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२०९ से 'ग्रह' धातु के स्थान पर 'गण्ह्' (रूप का) आदेश, ४-२३९ से हलन्त 'ह्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *गेण्ह* रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मन संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; और ३-५० से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत प्रत्यय जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

कथय संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप साहसु होता है। इसमे सूत्र-संख्या ४-२ से 'कथ्' धातु के स्थान पर प्राकृत में 'साह्' आदेश ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की होकर *साहसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्भावम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सब्भाव होता है। इसमे सूत्र-संख्या २-७७ से 'द' का लोप, २-८९ से लोप 'हुए' 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'भ्' को द्वित्व भ्भ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सब्भावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्लज्ज ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन मे अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर (हे) *निल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

समपसर संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप समोसर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७२ से मध्यस्थ उपसर्ग 'अव' के स्थान पर ओ' की प्राप्ति; ४-२३९ से 'समोसर' में स्थित अन्त्य हलन्त 'र्' में विकरण प्रत्यय अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *समोसर* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९७ ॥

हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये ॥२-१९८॥

हु खु इत्येतौ निश्चयादिषु प्रयोक्तव्यौ ॥ निश्चये । तं पि हु अच्छिन्नसिरी । तं खु

सिरीएं रहस्सं ॥ वितर्कः ऊहः संशयो वा । ऊहे । न हु णवरं संगहिआ । एअं सु हसइ ॥ संशये । जलहरो खु धूमवडलो खु ॥ संभावने । तरीउं ण हु णवर इमं । एअं खु हसइ ॥ विस्मये । को खु एसो सहस्स सिरो ॥ बहुलाधिकारादनुस्वारात् परो हु नं प्रयोक्तव्य ॥

अर्थ—'हु' और 'खु' प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किये जाने वाले अव्यय हैं। इनका प्रयोग करने पर प्रसंगानुसार 'निश्चय अर्थ, तर्कात्मक' अर्थ 'संशयात्मक अर्थ; 'संभावना' अर्थ और विस्मय-आश्चर्य अर्थ प्रकट होता है। निश्चय अर्थक उदाहरण इस प्रकार है—त्वमपि हु (=एवं) अभिन्न श्रीः= तं पि हु अच्छिन्नसिरी अर्थात् निश्चय ही तू परिपूर्ण शोभावाली है। त्वम् खु (= खलु) श्रियः रहस्यम् = तं खु सिरीएं रहस्सं अर्थात् निश्चय ही तू संपत्ति का रहस्य (मूल कारण) है। वितर्क अर्थक साध्य-साधन से संबंधित 'कल्पना' अर्थक और 'संशय' अर्थक उदाहरण इस प्रकार है—(१) न हु केवलं संगृहीता= न हु णवरं संगहिआ अर्थात् उस द्वारा केवल संग्रह किया हुआ है कि नहीं है? एतं खु हसति = एअं खु हसइ अर्थात् क्या इस पुरुष के प्रति वह हंसती है कि नहीं हंसती है? संशय का उदाहरण—जलधरः खु धूम पटलः खु = जलहरो खु धूम वडलो खु अर्थात् यह बादल है अथवा यह धुंए का पटल है? संभावना का उदाहरण—तरितुं न हु केवलम् इमाम = तरीउं ण हु णवर इमं अर्थात् इस (नदी) को केवल तैरना (= तैरते हुए पार उतर आना) संभव नहीं है। एतं खु हसति = एअं खु हसइ अर्थात् (वह) इसके प्रति हंसती है ऐसा संभव है। विस्मय का उदाहरण—कः खलु एषः सहस्र शिराः = को खु एसो सहस्स-सिरो अर्थात् आश्चर्य है कि हजार सिर वाला यह कौन है? प्राकृत-साहित्य में 'बहुल' की अर्थात् एकाधिक रूपों की उपलब्धि है, अतः अनुस्वार के पश्चात् 'हु' का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये। ऐसे स्थल पर 'खु' का प्रयोग होता है।

त्वम् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९० से 'युष्मद्' स्थानीय रूप 'त्वम्' के स्थान पर प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'तं' आदेश की प्राप्ति होकर 'तं' रूप सिद्ध हो जाता है।

'पि' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४१ में की गई है।

'हु' प्राकृत साहित्य का रूढ-रूपक एवं रूढ-अर्थक अव्यय है अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है। कोई कोई 'खलु' के स्थान पर 'हु' आदेश की प्राप्ति मानते हैं।

अछिन्न श्री संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अच्छिन्नसिरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-१०४ से प्राप्त 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को यथास्थिति की प्राप्ति होकर एवं १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *अछिन्नसिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

'खलु' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'खु' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६८ से 'खलु' के स्थान पर 'खु' आदेश की प्राप्ति होकर *'खु'* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रियः संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरीए होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, २-१०४ से प्राप्त 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति, और ३-२६ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'य.' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-सख्या *१-६* में की गई है।

णवरं (=वैकल्पिक रूप-णवर) की सिद्धि सूत्र-सख्या २-१८७ मे की गई है।

संगृहीता सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सगहिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप; और १-१०१ से 'ही' में स्थित दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *संगहिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतम् सस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से १-१७७ से 'त' का लोप, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *एअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हसति सस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३६ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हसइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जलधरः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जलहरो होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जलहरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धूमपटलः सस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप धूमवडलो होता है। इसमे सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व', १-१६५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धूमवडलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरितुम संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप तरीउं होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३६ से मूल धातु 'तर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१५७ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' को 'इ' की प्राप्ति, १-४ से प्राप्त ह्रस्व 'इ' के स्थान पर दीर्घ 'ई' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तरीउं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'ण' अव्यय की सिद्धि सुत्र सख्या *१-१८०* में की गई है।

'अवरं' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या २-१८७ में की गई है।

'इमं' सर्वनाम की सिद्धि सूत्र संख्या २-१८१ में की गई है।

'एअं' सर्वनाम की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

कः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप को होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-७१ से मूल रूप 'किम्' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर को रूप सिद्ध हो जाता है।

'एसो' की सिद्धि सूत्र-संख्या २-११६ में की गई है।

सहस्रशिराः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सहस्ससिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, १-४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सहस्स-सिरो रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१९८॥

ऊ गर्हाक्षेप विस्मय सूचने ॥२-१९९॥

ऊ इति गर्हादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥ गर्हा। ऊ णिल्लज्ज ॥ प्रक्रान्तस्य वाक्यस्य विपर्यासाशङ्काया विनिवर्तन लक्षण आक्षेपः ॥ ऊ किं मए भणिअं ॥ विस्मये। ऊ कह मुणिआ अहयं ॥ सूचने। ऊ केण न विण्णायं ॥

अर्थ—'ऊ' प्राकृत साहित्य का अव्यय है जो कि 'गर्हा' अर्थ में याने निन्दा अर्थ में, आक्षेप अर्थ में अथवा तिरस्कार अर्थ में, विस्मय याने आश्चर्य अर्थ में और सूचना याने विदित होने अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'गर्हा अथवा निंदा' का उदाहरण—अरे (धिक्) निर्लज्ज ! = ऊ ! णिल्लज्ज अर्थात् अरे निलज्ज ! तुम्हे धिक्कार है। आक्षेप का यहाँ विशेष अर्थ किया गया है जो कि इस प्रकार है—वार्तालाप के समय में कहे गये वाक्य का कहीं विपरीत अर्थ नहीं समझ लिया जाय, तदनुसार उत्पन्न हो जाने वाली विपरीत आशंका को दूर करना ही 'आक्षेप' है। इस अर्थक 'आक्षेप' का उदाहरण इस प्रकार है—ऊ, किं मया भणितं = ऊ किं मए भणिअं अर्थात् क्या मैंने तुमको कहा था ? (तात्पर्य यह है कि—'तुम्हारी धारणा ऐसी है कि मैंने तुम्हें कहा था किन्तु तुम्हारी ऐसी धारणा ठीक नहीं है मैंने तुमको ऐसा कब कहा था)।

विस्मय-आश्चर्य अर्थक उदाहरण यों है—ऊ, कथं (ज्ञाता) = मुनिता अहं = ऊ, कह मुणिआ अहयं अर्थात् आश्चर्य है कि मैं किस प्रकार अथवा किस कारण से जान ली गई हूँ पहिचान ली गई हूँ। 'सूचना अथवा विदित होना' अर्थक दृष्टान्त इस प्रकार है—ऊ, केन न विज्ञातम् = ऊ, केण न विण्णायं

अर्थात अरे ! किसने नहीं जाना है ? याने इस बात को तो सभी कोई जानता है। यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है। इस प्रकार 'ऊ' अव्यय के प्रयोगार्थ को जानना चाहिए।

'ऊ' प्राकृत साहित्य का 'निन्दार्थ' रूढ अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है, अतः सावनिका की आवश्यकता नहीं है।

(हे) *निर्लज्ज !* संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप णिल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ मे 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'र्' के लोप होने के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से सम्बोधन के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप (डो=) 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *णिल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

'किं' की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

मया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप मए होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०९ से संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद्' के साथ में तृतीया विभक्ति के प्रत्यय 'टा' का योग प्राप्त होने पर प्राप्त रूप 'मया' के स्थान पर प्राकृत में 'मए' आदेश की प्राप्ति होकर मए रूप सिद्ध हो जाता है।

'भणिअं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१९३ में की गई है।

'कह' की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई।

ज्ञाता (=मुनिता) संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-७ से 'ज्ञा' के स्थान पर 'मुण्' आदेश, ४-२३९ से हलन्त धातु 'मुण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१५६ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *मुणिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अहम् संस्कृत सर्वनाम रूप है इसका प्राकृत रूप अहयं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०५ से संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद्' के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के योग से प्राप्त रूप 'अहम्' के स्थान पर प्राकृत में 'अहयं' आदेश की प्राप्ति होकर अहयं रूप सिद्ध हो जाता है।

केन संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप केण होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-७१ से मूल रूप 'किम्' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति, ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'क' के अन्त्य स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *केण* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

विस्रात्म् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विस्सार्थं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४२ से 'स्र' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, २-८९ से प्राप्त 'प्' को द्वित्व 'प् प्' की प्राप्ति, १-१७७ से त् का लोप १-१८० से लोप हुए 'त' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विप्पार्थं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-१९९ ॥

थू कुत्सायाम् ॥२-२००॥

थू इति कुत्सायां प्रयोक्तव्यम् ॥ थू निल्लज्जो लोओ ॥

अर्थ:—'कुत्सा अर्थात् निन्दा- अथवा घृणा अर्थ में 'थू' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे:-थू (निन्दनीय) निर्लज्ज लोकः=थू निल्लज्जो लोओ अर्थात् निर्लज्ज व्यक्ति निन्दा का पात्र है। (घृणा का पात्र है) *'थू' प्राकृत भाषा का रूढ रूपक और रूढ अव्यय है, अतः* साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

निर्लज्जः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से लोप हुए र के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय सि के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निल्लज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १ १७७ में की गई है ॥२-२००॥

रे अरे संभाषण रतिकलहे ॥२-२०१॥

अनयोरर्थयोर्यथासंख्यमतौ प्रयोक्तव्यौ ॥ रे संभाषणे। रे हिअय मडह सरिआ ॥ अरे रति-कलहे। अरे मए समं मा करसु उवहासं ॥

अर्थ:—प्राकृत साहित्य में 'रे' अव्यय 'संभाषण' अर्थ में-'वार्तालाप प्रकट करने' अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'अरे' अव्यय 'प्रीतिपूर्वक कलह' अर्थ में- रति क्रिया संबंधित कलह अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे —'रे' का उदाहरण—रे हृदय! मृतक-सरिता=रे हिअय! मडह-सरिआ अर्थात् अरे हृदय! अल्पजल वाली नदी (वाक्य अपूर्ण है)। 'अरे' का उदाहरण इस प्रकार है-अरे! मया समं मा कुरु उपहासं=अरे! मए समं मा करसु उवहासं अर्थात् अरे! तू मेरे साथ उपहास (रति कलह) मत कर।

रे प्राकृत साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ रूपक अव्यय है, अतः इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

हृदय संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअय होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-३७ से संबोधन के एक वचन में प्राकृत में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप 'म्' प्रत्यय का अभाव होकर *हिअय* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृतक सारिता सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मडह सरिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप; ४-४४७ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ह' की व्यत्यय रूप प्राप्ति; (क्योंकि 'अ और 'ह' का समान उच्चारण स्थान कंठ है); और १-१५ से (मूल रूप 'सरित्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप) 'त्' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर *मडह-सरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'अरे' प्राकृत साहित्य का रूढ-रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'मए' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-सख्या ?-१९९ में की गई है।

'समं' सस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी सम ही है। अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'मा' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी *'मा'* ही है। अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'कुरु' सस्कृत आज्ञार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप करेसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से मूल 'धातु' 'कर्' के हलन्त व्यञ्जन 'र्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर करेसु रूप सिद्ध हो जाता है।

उपहासम् सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उवहास होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उवहासं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०१॥

हरे क्षेपे च ॥ २-२०२ ॥

क्षेपे संभाषण रतिकलहयोश्च हरे इति प्रयोक्तव्यम् ॥ क्षेपे । हरे णिल्लज्ज ॥ संभाषणे । हरे पुरिसा ॥ रति-कलहे । हरे बहु-वल्लह ॥

अर्थः—प्राकृत साहित्य में 'हरे' अव्यय 'तिरस्कार'-अर्थ में; 'सभाषण'-अर्थ में अथवा 'उद्‌गार प्रकट करने' अर्थ में; और 'प्रीतिपूर्वक-कलह' अर्थ में याने 'रति-क्रिया-सबंधित कलह' अर्थ में प्रयुक्त

किया जाता है। 'तिरस्कार' अर्थक उदाहरण—हरे निर्लज्ज ! हरे णिल्लज्ज अर्थात् अरे ! निर्लज्ज' (धिक्कार है)। 'संभाषण' अर्थक उदाहरण—हरे पुरुषाः=हरे पुरिसा अर्थात् अरे ओ मनुष्यों ! रति कलह' अर्थक उदाहरण—हरे बहु वल्लभ ! = हर बहु-वल्लह अर्थात् अरे ! अनेक से प्रेम करने वाला अथवा अनेक स्त्रियों के पति।

'हरे' प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है, अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

निर्लज्ज संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप णिल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राप्तव्य प्राकृत प्रत्यय 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *णिल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरुषा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'रु' के स्थान 'रि' की प्राप्ति, १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, ३-४ से संबोधन के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' की प्राप्ति होकर प्राकृत में लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त जस् प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'स' के अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर संबोधन बहु वचन में *पुरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहु-वल्लभ संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप बहु-वल्लह होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राप्तव्य प्राकृत प्रत्यय 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *बहु-वल्लह* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-२०२॥

ओ सूचना-पश्चात्तापे ॥ २-२०३ ॥

ओ इति सूचना पश्चात्तापयोः प्रयोक्तव्यम् ॥ सूचनायाम्। ओ अविणय-तत्तिल्ले ॥ पश्चात्तापे। ओ न मए छाया इत्तिआए ॥ विकल्पे तु उतादेशेनैवौकारेण सिद्धम् ॥ ओ विरएमि नहयले ॥

अर्थ—प्राकृत-साहित्य में 'ओ' अव्यय 'सूचना' अर्थ में और 'पश्चात्ताप' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'सूचना' विषयक उदाहरण इस प्रकार है—ओ अविनय-तृप्तिपरे !=ओ अविणय-तत्तिल्ले अर्थात् अरे ! (मैं तुम्हें सूचित करता हूँ कि) (तू) अविनय-शील (है)। 'पश्चात्ताप' विषयक उदाहरण—ओ ! (खेद-अर्थे) न मया छाया एतावत्यां = ओ न मए छाया इत्तिआए = अर्थात् अरे ! इतना (समय)

हो जाने पर (भी) (उसकी) छाया (तक) मुझे नहीं (दिखाई दी)। 'वैकल्पिक' अर्थ में जहाँ 'ओ' आता है, तो वह प्राप्त 'ओ' संस्कृत अव्यय विकल्पार्थक 'उत अव्यय के स्थान पर आदेश रूप होता है; जैसा कि सूत्र संख्या १-१७२ में वर्णित है। उदाहरण इस प्रकार है:—उत विरचयामि नभस्तले=ओ विरएमि नहयले। इस उदाहरण में प्राप्त 'ओ' विकल्पार्थक है न कि 'सूचना एवं पश्चात्ताप' अर्थक; यों अन्यत्र भी तात्पर्य-भेद समझ लेना चाहिये।

'ओ' अव्यय प्राकृत-साहित्य में रूढ रूपक और रूढ-अर्थक है, अत: साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

अविनय-तृप्तिपरे संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप अविणय-तत्तिल्ले होता है। इसमें सूत्रसंख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-७७ से 'प्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'प्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; २-१५९ से 'मत्' अर्थक 'पर' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१० से प्राप्त प्रत्यय 'इल्ल' के पूर्व में स्थित 'त्ति' के 'इ' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'त्त्' में प्रत्यय 'इल्ल' के 'इ' की संधि, ३-३१ से प्राप्त पुल्लिंग रूप 'तत्तिल्ल' में स्त्रीलिंग-रूप निर्माणार्थ 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-४१ से संबोधन के एक वचन में प्राप्त रूप 'तत्तिल्ला' के अन्त्य स्वर 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *अविणय-तत्तिल्ले* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

'छाया' की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४९ में की गई है।

'मए' की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१९९ में की गई है।

एतावत्यां संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इत्तिआए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५६ से 'एतावत्' के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश, ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थ में 'इत्तिअ' के अन्त में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२९ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'या' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *इत्तिआए* रूप सिद्ध हो जाता है।

'उत'='ओ' की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७२ में की गई है।

विरचयामि संस्कृत क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विरएमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च' का लोप, ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति, ३-१५८ से विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमान काल के एक वचन में तृतीय पुरुष में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विरएमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

नभस्तले संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नहयले होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ'

के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति, २-७७ से 'स्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'डे=ए' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'नहयस' के अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप, एवं १-५ से प्राप्त हलन्त रूप 'नहयस्' में पूर्वोक्त 'ए' प्रत्यय की संधि होकर नहयसे रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०३॥

अव्वो सूचना-दुःख-संभाषणापराध-विस्मयानन्दादर भय-खेद विषाद पश्चात्तापे ॥ २-२०४ ॥

अव्वो इति सूचनादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥ सूचनायाम्। अव्वो दुक्करयारय ॥ दुःखे। अव्वो दलन्ति हिययं ॥ संभाषणे। अव्वो किमिणं किमिणं ॥ अपराध विस्मययोः।

अव्वो हरन्ति हिअयं तह वि न वेसा हवन्ति जुवईण।
अव्वो किं पि रहस्सं मुणन्ति धुत्ता जणब्भहिआ ॥१॥

आनन्दादर भयेषु।

अव्वो सुपहाय मिणं अव्वो अज्जम्ह सप्फलं जीअं।
अव्वो अइअम्मि तुमे नवरं जइ सा न जूरिहिइ ॥२॥

खेदे। अव्वो न जामि छेत्तं ॥ विषादे।

अव्वो नासेन्ति दिहिं पुलयं वड्ढेन्ति देन्ति रणरणयं।
एण्हिं तस्स ऋअ गुणा ते च्चिअ अव्वो कह णु एअं ॥३॥

पश्चात्तापे।

अव्वो तह तेण कया अहयं जह कस्स साहेमि ॥

अर्थ—प्राकृत साहित्य का 'अव्वो' अव्यय ग्यारह अर्थों में प्रयुक्त होता है। उक्त ग्यारह अर्थ क्रम से इस प्रकार हैं—(१) सूचना (२) दुःख (३) संभाषण (४) अपराध (५) विस्मय (६) आनन्द (७) आदर (८) भय (९) खेद (१०) विषाद और (११) पश्चात्ताप; तदनुसार प्रसंग को देखकर 'अव्वो' अव्यय का अर्थ किया जाना चाहिये। इनके उदाहरण क्रम से दिये जा रहे हैं। सूचना-विषयक उदाहरण—अव्वो दुक्करकारक=अव्वो दुक्करयारय अर्थात् (मैं) सूचना (करता हूँ कि) (यह) अत्यन्त कठिनाई से [illegible] है। दुःख-विषयक उदाहरण—अव्वो दलति हृदयम्=अव्वो दलन्ति हिययं अर्थात् दुःख है (कि वे) हृदय को [illegible] हैं। संभाषण विषयक उदाहरण—अव्वो किमिदं किमिदं=अव्वो किमिणं किमिणं अर्थात् [illegible] है? यह क्या है? अपराध और विस्मय [illegible]

संस्कृत:-अव्वो हरंति हृदयं तथापि न द्वेष्या: भवंति युवतीनाम् ॥
अव्वो किमपि रहस्यं जानंति धूर्ता: जनाभ्यधिका: ॥ १ ॥

प्राकृत:—अव्वो हरन्ति हिअयं तहवि न वेसा हवन्ति जुवईण ॥
अव्वो किं पि रहस्स मुणन्ति धुत्ता जणब्भहिआ ॥ २ ॥

अर्थात् (कामी पुरुष) युवती-स्त्रियों के हृदय को हरण कर लेते हैं; तो भी (ऐसा अपराध करने पर भी) (वे स्त्रियां) द्वेष भाव करने वाली—(हृदय को चुराने वाले चोरों के प्रति) (दुष्टता के भाव रखने वाली) नहीं होती हैं। इसमें 'अव्वो' का प्रयोग उपरोक्त रीति से अपराध-सूचक है। जन-साधारण से (बुद्धि की) अधिकता रखने वाले ये (कामी) धूर्त्त पुरुष आश्चर्य है कि कुछ न कुछ-रहस्य जानते हैं। 'रहस्य का जानना' आश्चर्य सूचक है-विस्मयोत्पादक है, इसी को 'अव्वो' अव्यय से व्यक्त किया गया है।

आनन्द विषयक उदाहरण—अव्वो सुप्रभातम् इदम् = अव्वो सुपहायं इणं=आनन्द की बात है कि (आज) यह सु प्रभात (हुआ)। आदर-विषयक उदाहरण:—अव्वो अद्य अस्माकम् सफलम् जीवितम् =अव्वो अज्जम्ह सप्फलं जीअं=(आप द्वारा प्रदत्त इस) आदर से आज हमारा जीवन सफल हो गया है।

भय-विषय उदाहरण –अव्वो अतीते त्वया केवलम् यदि सा न खेदूष्यति=अव्वो अइअम्मि तुमे नवरं जइ सा न जूरिहिइ=(मुझे) भय (है कि) यदि तुम चले जाओगे तो तुम्हारे चले जाने पर क्या वह खिन्नता अनुभव नहीं करेगी, अर्थात् अवश्य ही खिन्नता अनुभव करेगी। यहां पर 'अव्वो' अव्यय भय सूचक है।

खेद-विषयक उदाहरण:—अव्वो न यामि क्षेत्रम्=अव्वो न जामि छेत्तं=खेद है कि मैं खेत पर नहीं जाती हूं। अर्थात् खेत पर जाने से मुझे केवल खिन्नता ही अनुभव होगी–रंज ही पैदा होगा। इस प्रकार यहां पर 'अव्वो' अव्यय का अर्थ 'खिन्नता अथवा रंज' ही है।

विषाद-विषयक उदाहरण —
सं०—अव्वो नाशयति धृतिम् पुलकं वर्धयन्ति ददति रणरणकं ॥
इदानीम् तस्य इति गुणा ते एव अव्वो कथम् नु एतत् ॥

प्रा०— अव्वो नासेन्ति दिहिं पुलयं वडढेन्ति देन्ति रणरणयं ॥
एण्हि तस्सेअ गुणा ते च्चिअ अव्वो कह णु एअं ॥

अर्थ:—खेद है कि धैर्य का नाश करते हैं, रोमाञ्चितता बढ़ाते हैं, काम-वासना के प्रति उत्सुकता प्रदान करते हैं, ये सब वृत्तियाँ इस समय में उसी धन-वैभव के ही दुर्गुण हैं अथवा अन्य किसी कारण से है? खेद है कि इस संबंध में कुछ भी स्पष्ट रूप से विदित नहीं हो रहा है। इस प्रकार 'अव्वो' अव्यय यहाँ पर विषाद-सूचक है।

पश्चात्ताप-विषयक उदाहरण इस प्रकार है —

संस्कृत—अव्वो तथा तेन कृता अहम् यथा कस्मै कथयामि ।

प्राकृत—अव्वो तह तेण कया अहयं जह कस्स साहेमि ।

अर्थ—पश्चात्ताप की बात है कि जैसा उसने किया; वैसा मैं किससे कहूँ ? इस प्रकार यहाँ पर अव्वो अव्यय पश्चात्ताप सूचक है ।

अव्वो-प्राकृत-साहित्य का रूढ़-रूपक और रूढ़-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है ।

दुष्कर-कारक संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप दुक्कर-यारय होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'ष्' के पश्चात् शेष रहे हुए प्रथम 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति १-१७७ से द्वितीय 'क' और तृतीय 'क्' का लोप १-१८० से दोनों 'क' वर्णों के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' और 'अ' के स्थान पर क्रमिक यथा रूप से 'या' और 'य' की प्राप्ति होकर *दुक्कर-यारय* रूप की सिद्धि हो जाती है ।

हसन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप भी हसन्ति ही होता है । इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से हलन्त धातु 'हस' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हसन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है ।

हृदयम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप हिययं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति १-१७७ से 'द्' का लोप १-१८० से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिययं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किम् अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है ।

इदम् संस्कृत सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप इमं होता है । इसमें सूत्र संख्या ३-७९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'इदम्' के स्थान पर 'इमं' आदेश की प्राप्ति होकर *इमं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

हरन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप हरन्ति होता है । इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से प्राकृत हलन्त धातु 'हर' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष रूप में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है ।

'हिअयं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है ।

'तह' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या १-६७ में की गई है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या १-६ में की गई है।

द्वेष्याः सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वेसा होता है। इसमें सूत्र सख्या २-७७ से 'द्' का लोप, १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, २-७८ से 'य' का लोप, १-५ से प्राप्त हलन्त 'स' के साथ लुप्त 'य्' में से शेष रहे हुए 'आ' की सधि और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप एव ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व मे स्थित 'आ' को यथा-स्थिति 'आ' की ही प्राप्ति होकर *वेसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवन्ति सस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हवन्ति होता है । इसमें सूत्र संख्या ४-६० से संस्कृत धातु 'भू' के स्थान पर प्राकृत में 'हव्' आदेश, ४-२३६ से प्राप्त एव हलन्त धातु 'हव्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हवन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

युवतीनाम् सस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप जुवईण होता है । इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु-वचन में सस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जुवईण* रूप सिद्ध हो जाता है।

'किं' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

'पि' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या १-४१ में की गई है।

'रहस्सं' की सिद्धि सूत्र सख्या २-१९८ में की गई है।

जानन्ति सस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणन्ति होता है। इसमें सूत्र सख्या ४-७ से सस्कृत धातु 'ज्ञा' के स्थानीय रूप 'जान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मुण्' आदेश, ४-२३६ से प्राप्त एव हलन्त धातु 'मुण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर मुणन्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

धूर्त्ताः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुत्ता होता है। इसमें सूत्र सख्या १-८५ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति, २-७६ स 'र्' का लोप, ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३ १२ से प्राप्त एव लुप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्व में स्थित 'त्त' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धुत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

जनाभ्यधिकाः सस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जणब्भहिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४

से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७८ से 'य' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'म्' के स्थान पर 'प्' की प्राप्ति; १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्व में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सप्पम्महिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुप्रभातम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुपहायं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुपहायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*इणं*' रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

'*अज्ज*' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३३* में की गई है।

अस्माकम् संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप (अ) म्ह होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-११४ से संस्कृत 'अस्मद्' के षष्ठी बहुवचन में 'आम्' प्रत्यय का योग होने पर प्राप्त रूप 'अस्माकम्' के स्थान पर प्राकृत में 'अम्ह' आदेश की प्राप्ति और १-१० से मूल गाथा में 'अज्जम्ह' इति रूप होने से 'ज' के पश्चात् 'अ' का सद्भाव होने से 'अम्ह' के आदि 'अ' का लोप होकर 'म्ह' रूप सिद्ध हो जाता है।

सफलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सप्फलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-९७ से 'फ' के स्थान पर द्वित्व 'फफ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सप्फलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२७१* में की गई है।

अतीते संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अइअम्मि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'त्' वर्णों का लोप; १-१०१ से प्रथम 'त्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'ए' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अइअम्मि* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्वया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुमे होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-९४ से 'युष्मद्' संस्कृत सर्वनाम के तृतीया विभक्ति के एक वचन में 'टा' प्रत्यय का योग होने पर

प्राप्त रूप 'त्वया' के स्थान पर प्राकृत में 'तुमे' आदेश की प्राप्ति होकर *तुमे* रूप सिद्ध हो जाता है।

केवलम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप नवरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८७ से 'केवलम्' के स्थान पर 'णवरं' आदेश की प्राप्ति, १-२२९ से 'ण' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'न' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नवरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जइ' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४०* में की गई है।

'*सा*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३३* में की गई है।

'न' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-६* में की गई है।

खेद्‌ध्याति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जूरिहिइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१३२ से 'खिद्=खेद्' के स्थान पर प्राकृत में 'जूर' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'जूर' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१६६ से संस्कृत में भविष्यत्-काल वाचक प्रत्यय 'ष्य' के स्थान पर प्राकृत में 'हि' की प्राप्ति, ३-१५७ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति और ३-१३९ से प्रथम पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जूरिहिइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*न*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-सख्या *१-६* में की गई है।

'*यामि*' संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जामि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमानकाल के एक वचन में तृतीय पुरुष में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामि* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षेत्रम् संस्कृत द्वितीयांत रूप है। इसका प्राकृत रूप छेत्तं होता है। इसमें सूत्र-सख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति, २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से लोप, हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छेत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नाशयन्ति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप नासेन्ति होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, ३-१४९ से प्रेरणार्थक में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहु वचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नासेन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृतिम् संस्कृत द्वितीयांत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिहिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३१ से 'धृति' के स्थान पर 'दिहि' आदेश, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुलकम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलयं होता है। इसमें सूत्र-सख्या १-१७७

से 'क्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'क' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पुअयं रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्धयन्ति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप वड्ढेन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर 'ढ' आदेश, २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढ्ढ' की प्राप्ति, २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति ३-१४९ से प्रेरणार्थक में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वड्ढेन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

ददति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप देन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप ३-१५८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति १-१० से प्राप्त ए के पूर्व में स्थित 'द' के 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'द्' में आगे रहे हुए 'ए' की संधि और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'न्ते' के स्थान पर प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है। प्रेरणार्थक में 'देन्ति' की साधनिका इस प्रकार भी होती है:-संस्कृत मूल धातु दा में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर १-८४ से ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति ३-१४९ से प्रेरणा अर्थ में प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति १-१० से प्राप्त प्रत्यय 'ए' के पूर्व में स्थित 'द' के 'अ' का लोप १-५ से हलन्त 'द्' में 'ए' की संधि और ३-१४२ से 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देन्ति* प्रेरणार्थक रूप सिद्ध हो जाता है।

रणरणकम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रणरणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'क' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रणरणयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एण्हिं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

तस्य संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

इति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप इअ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और १-९१ से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रही हुई द्वितीय 'इ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर *'इअ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'गुणा' रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-११ में की गई है।

'ते' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप, ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त सस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड्' इत्सञ्ज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' मे स्थित अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होकर इस 'अ' का लोप और १-५ से हलन्त 'त्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की सधि होकर 'ते' रूप सिद्ध हो जाता है।

'च्चिअ' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या १-८ मे की गई है।

'कह' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या १-२९ में की गई है।

'नु' सस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णु' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *'णु'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एअं' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-२०९ में की गई है।

'तह' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-६७ में की गई है।

'तेण' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र सख्या २-१८६ में की गई है।

कृता सस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप कया होता है। इसमें सत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'त्' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति होकर कया रूप सिद्ध हो जाता है।

'अहयं' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र सख्या २-१९९ में की गई है।

'जह' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-६७ में की गई है।

कस्मै सस्कृत चतुर्थ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप कस्स होता है। इसमें सूत्र सख्या ३-७१ से मूल सस्कृत शब्द 'किम्' के स्थान पर प्राकृत में विभक्ति-वाचक प्रत्ययों को प्राप्ति होने पर 'क' रूप का सद्भाव, ३-१३१ से चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर प्राकृत में षष्ठी-विभक्ति की प्राप्ति, तदनुसार ३-१० से षष्ठी-विभक्ति के एकवचन में प्राकृत मे सस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कस्स रूप सिद्ध हो जाता है।

कथयामि सस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप साहेमि होता है। इसमें सूत्र सख्या ४-२ से सस्कृत धातु 'कथ्' के स्थान पर 'साह्' आदेश, ४-२३९ से हलन्त धातु 'साह्' में 'कथ्' धातु में प्रयुक्त विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमान काल के एकवचन में तृतीय

पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *साहेसि* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२०० ॥

अइ संभावने ॥२-२०५॥

संभावने अइ इति प्रयोक्तव्यम् ॥ अइ ॥ दिअर किं न पेच्छसि ॥

अर्थ —प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला 'अइ' अव्यय 'संभावना' अर्थ को प्रकट करता है। 'संभावना है' इस अर्थ को 'अइ' अव्यय व्यक्त करता है। जैसे—अइ, देवर ! किम् न पश्यसि=अइ, दिअर ! किं न पेच्छसि अर्थात् (मुझे ऐसी) संभावना (प्रतीत हो रही) है (कि) हे देवर ! क्या तुम नहीं देखते हो।

प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ रूपक अव्यय है, अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

देवर संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप दिअर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४६ से 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति, १-१७७ से 'व्' का लोप और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय (सि=) 'ओ' का अभाव होकर *दिअर* रूप सिद्ध हो जाता है।

'किं' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

पश्यसि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छसि होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१८१ से संस्कृत मूल धातु 'दृश्' के स्थानीय रूप 'पश्' के स्थान पर प्राकृत में 'पेच्छ' आदेश; ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमान काल के एक वचन में द्वितीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेच्छसि* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०५॥

वणे निश्चय विकल्पानुकम्प्ये च ॥२-२०६॥

वणे इति निश्चयादौ संभावने च प्रयोक्तव्यम् ॥ वणे देमि । निश्चयं ददामि ॥ विकल्पे । होइ वणे न होइ । भवति वा न भवति ॥ अनुकम्प्ये । दासो वणे न मुच्चइ । दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते ॥ संभावने । नत्थि वणे जं न देइ विहि परिणामो । संभाव्यते एतद् इत्यर्थः ॥

अर्थ — 'वणे' प्राकृत-साहित्य का अव्यय है जो कि निम्नोक्त चार प्रकार के अर्थों में प्रयुक्त हुआ करता है —(१) निश्चय अर्थ में, (२) विकल्प अर्थ में (३) अनुकम्प्य-अर्थ में—(दया-प्रदर्शन अर्थ में)

और (४) संभावना-अर्थ में। क्रमिक उदाहरण इस प्रकार है —(१) निश्चय-विषयक दृष्टान्तः—निश्चयं ददामि=वणे देमि अर्थात् निश्चय ही मैं देता हूं। (२) विकल्प-अर्थक दृष्टांत -भवति वा न भवति = होइ वणे न होइ अर्थात् (ऐसा) हो (भी) सकता है अथवा नहीं (भी) हो सकता है। (३) अनुकम्प्य अर्थात् 'दया-योग्य-स्थिति' प्रदर्शक दृष्टान्तः-दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते=दासो वणे न मुच्चइ अर्थात (कितनी) दयाजनक स्थिति है (कि बेचारा) दास (दासता से) मुक्त नहीं किया जा रहा है। सभावना-दर्शक दृष्टान्तः—नास्ति वणे यन्न ददाति विधि-परिणाम'=नत्थि वणे जं न देइ विहि-परिणामो अर्थात ऐसी कोई वस्तु नहीं है; जिसको कि भाग्य-परिणाम प्रदान नहीं करता हो; तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का योग केवल भाग्य-परिणाम से ही सभव हो सकता है। सम्भावना यही है कि भाग्यानुसार ही फल-प्राप्ति हुआ करती है। यों 'वणे' अव्यय का अर्थ प्रसगानुसार व्यक्त होता है।

'वणे' प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है, तदनुसार साधनिका की की आवश्यकता नहीं है।

ददामि सस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप देमि होता है। इसमें सूत्र सख्या १-१७७ से द्वितीय द्' का लोप, ३-१५८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, १-१० से प्रथम 'द' में स्थित 'अ' के आगे 'ए' की प्राप्ति होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'द्' में आगे प्राप्त 'ए' की सधि और ३-१४१ से वर्तमान काल के एकवचन में तृतीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'होइ' रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-९ में की गई है।

'न' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र सख्या १-६ में की गई है।

दासः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दासो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्यज्यते (=मुच्यते) संस्कृत कर्मणि प्रधान क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुच्चइ होता है। इसमें सूत्र सख्या ४-२४६ से कर्मणि प्रयोग में अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति; और ४-२४६ से ही 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होने पर सस्कृत रूप में रहे हुए कर्मणि रूप वाचक प्रत्यय 'य' का लोप, ४-२३६ से प्राप्त हलन्त 'च्च्' में 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एकवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुच्चइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नास्ति संस्कृत अव्यय-योगात्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप नत्थि होता है। इस (न+अस्ति) में सूत्र संख्या ३-१४८ से 'अस्ति' के स्थान पर 'अत्थि' आदेश, १-१० से 'न' के अन्त्य

'म' के आगे 'अत्थि' का 'अ' होने से लोप और १-५ से हलन्त 'म्' में 'अत्थि' के 'अ' की संधि होकर *'मत्थि'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जं' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

वहति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप वेइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप; १-१४८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति, १-१० से प्रथम 'द' में रहे हुए 'अ' के आगे 'ए' प्राप्त होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'व्' में आगे रहे हुए स्वर 'ए' की संधि और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधि-परिणाम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विहि-परिणामो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप विसर्ग के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहि-परिणामो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२०६ ॥

मणे विमर्शे ॥२-२०७॥

मणे इति विमर्शे प्रयोक्तव्यम् ॥ मणे सूरो। किं स्वित्सूर्यः ॥ अन्ये मन्ये इत्यर्थमपीच्छन्ति ॥

अर्थ:—'मणे' प्राकृत साहित्य का अव्यय है जो कि तर्क युक्त प्रश्न पूछने के अर्थ में अथवा तर्क-युक्त विचार करने' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। विमर्श' शब्द का अर्थ 'तर्क-पूर्ण विचार होता है। जैसे —*किंस्वित् सूर्य=मणे सूरो* अर्थात् क्या यह सूर्य है। तात्पर्य यह है कि-'क्या तुम सूर्य के गुण-दोषों का विचार कर रहे हो। सूर्य के संबंध में अनुसन्धान कर रहे हो। कोई कोई विद्वान 'मन्ये' अर्थात् 'मैं मानता हूँ'; 'मेरी धारणा है कि' इस अर्थ में भी 'मणे' अव्यय का प्रयोग करते हैं।

'किं स्वित्' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका आदेश-प्राप्त प्राकृत रूप मणे होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२०७ से 'किंस्वित्' के स्थान पर 'मणे' आदेश की प्राप्ति होकर मणे रूप सिद्ध हो जाता है।

सूरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६४ में की गई है।

मन्ये संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *मणे* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०७॥

अम्मो आश्चर्ये ॥२-२०८॥

अम्मो इत्याश्चर्ये प्रयोक्तव्यम् ॥ अम्मो कह पारिज्जइ ॥
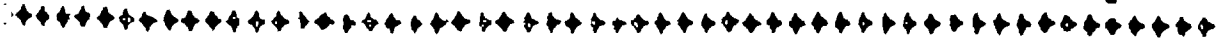
अर्थः—'अम्मो' प्राकृत-साहित्य का आश्चर्य वाचक अव्यय है। जहाँ आश्चर्य व्यक्त करना हो, वहाँ 'अम्मो' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे-(आश्चर्यमेतत्=) अम्मो कथम् पार्यते=अम्मो कह पारिज्जइ अर्थात् आश्चर्य है कि यह कैसे पार उतारा जा सकता है? तात्पर्य यह है कि इसका पार पा जाना अथवा पार उतर जाना निश्चय ही आश्चर्यजनक है।

'अम्मो' प्राकृत साहित्य का रूढ रूपक और रूढ अर्थक अव्यय है; साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'कह' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

पार्यते संस्कृत कर्मणि-प्रधान क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पारिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१६० से मूल धातु 'पार्' में संस्कृत कर्मणि वाचक प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति, १-५ से 'पार्' धातु के हलन्त 'र्' में 'इज्ज' प्रत्यय के 'इ' की संधि; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत-प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पारिज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०८॥

स्वयमोर्थे अप्पणो न वा ॥२--२०९॥

स्वयमित्यस्यार्थे अप्पणो वा प्रयोक्तव्यम् ॥ विसयं विअसन्ति अप्पणो कमल-सरा। पक्षे। सयं चेअ मुणसि करणिज्जं ॥

अर्थः—'स्वयम्' इस प्रकार के अर्थ में वैकल्पिक रूप से प्राकृत में 'अप्पणो' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। 'स्वयम्=अपने आप' ऐसा अर्थ जहां व्यक्त करना हो, वहाँ पर वैकल्पिक रूप से 'अप्पणो' अव्ययात्मक शब्द लिखा जाता है। जैसे—विशद विकसन्ति स्वयं कमल-सरांसि=विसय विअसन्ति अप्पणो कमल-सरा अर्थात् कमल युक्त तालाब स्वयं (ही) उज्ज्वल रूप से विकासमान होते हैं। यहाँ पर 'अप्पणो' अव्यय 'स्वय' का द्योतक है। वैकल्पिक पक्ष होने से जहाँ 'अप्पणो' अव्यय प्रयुक्त नहीं होगा, वहाँ पर 'स्वय' के स्थान पर प्राकृत में 'सय' रूप प्रयुक्त किया जायगा जैसे —स्वय चेव जानासि करणीय=सयं चेअ मुणसि करणिज्जं अर्थात् तुम खुद ही-(स्वयमेव)-कर्त्तव्य को जानते हो इस उदाहरण में 'स्वय' के स्थान पर 'अप्पणो' अव्यय प्रयुक्त नहीं किया जाकर 'सयं' रूप प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार वैकल्पिक-स्थिति समझ लेना चाहिये।

विशदम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसय होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, १-१७७ से 'द्' का लोप, १-१८० से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विसयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकसन्ति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विअसन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या १ १७७ से 'क्' का लोप ४ २३९ से हलन्त धातु 'विअस्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३ १४२ से वर्तमानकाल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विअसन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

'स्वयं' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२०९ से 'स्वयं' के स्थान पर 'अप्पणो' आदेश की प्राप्ति होकर *'अप्पणो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल-सरांसि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमल-सरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३२ से मूल संस्कृत शब्द 'कमल-सरस्' को संस्कृतीय नपुंसकत्व से प्राकृत में पुल्लिंगत्व की प्राप्ति, १ ११ से अन्त्य व्यञ्जन 'स्' का लोप ३ ४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्वस्थ 'र' व्यञ्जन में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *कमल-सरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वयम् संस्कृत अव्ययात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप सयं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'चिअ' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८४ में की गई है।

जानासि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणसि होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-७ से संस्कृतीय मूल धातु 'ज्ञा' के स्थानीय रूप 'जान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मुण' आदेश ४ २३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'मुण' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमानकाल के एकवचन में द्वितीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुणसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'करणिज्जं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२४८ में की गई है॥ २-२०९॥

प्रत्येकम पाडिक्क पाडिएक्क ॥ २-२१० ॥

प्रत्येकमित्यस्यार्थे पाडिक्कं पाडिएक्कं इति च प्रयोक्तव्यं वा। पाडिक्कं। पाडिएक्कं। पक्षे। पत्तेअं॥

अर्थ—संस्कृत 'प्रत्येकम्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत में 'पाडिक्कं' और 'पाडिएक्कं' रूपों का प्रयोग किया जाता है। पक्षान्तर में 'पत्तेअं' रूप का भी प्रयोग होता है। जैसे—प्रत्येकम्= पाडिक्कं अथवा पाडिएक्कं अथवा पत्तेअं।

प्रत्येकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाडिक्कं पाडिएक्कं और पत्तेअं होता है। इसमें

से प्रथम दो रूपों में सूत्र संख्या २-२१० से 'प्रत्येकम्' के स्थान पर 'पाडिक्कं' और पाडिएक्कं' रूपों की क्रमिक आदेश प्राप्ति होकर क्रमसे दोनों रूप 'पाडिक्कं' और 'पाडिएक्कं' सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप (प्रत्येकम्=) पत्तेअं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप, और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर पत्तेअं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-२१०॥

उअ पश्य ॥ २-२११ ॥

उअ इति पश्येत्यस्यार्थे प्रयोक्तव्यं वा ॥
उअ निच्चल-निप्फंदा भिसिणी-पत्तंमि रेहइ बलाआ।
निम्मल-मरगय-भायण-परिट्ठिआ सङ्ख-सुत्ति व्व ॥
पक्षे पुलआदयः ॥

अर्थः—'देखो' इस मुहाविरे के अर्थ में प्राकृत में 'उअ' अव्यय का वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसेः—पश्य=उअ अर्थात् देखो। 'ध्यान आर्वित करने के लिये' अथवा 'सावधानी बरतने के लिये 'अथवा' चेतावनी देने के लिये हिन्दी में 'देखो' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी तात्पर्य को प्राकृत में व्यक्त करने के लिये 'उअ' अव्यय को प्रयुक्त करने की परिपाटी है। भाव-स्पष्ट करने के लिये नीचे एक गाथा उद्धृत की जा रही है:—

संस्कृतः-पश्य निश्चल-निष्पन्दा बिसिनी-पत्रे राजते बलाका ॥
निर्मल-मरकत-भाजन प्रतिष्ठिता शंख-शुक्तिरिव ॥१॥

प्राकृतः-उअ निच्चल-निप्फंदा भिसिणी-पत्तंमि रेहइ बलाआ ॥
निम्मल मरगय-भायण-परिट्ठिआ सङ्ख-सुत्ति व्व ॥१॥

अर्थः—'देखो'-शान्त और अचचल बगुली (तालाब का सफेद-वर्णीय मादा पक्षी विशेष) कमलिनी के पत्ते पर इस प्रकार सुशोभित हो रही है कि मानों निर्मल मरकत-मणियों से खचित बर्तन में शख अथवा सीप प्रतिष्ठित कर दी गई हो अथवा रख दी गई हो। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि 'बलाका=बगुली' की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये व्यक्ति विशेष अपने साथी को कह रहा है कि 'देखो=(प्रा० उअ)' कितना सुन्दर दृश्य है'' इस प्रकार 'उअ' अव्यय की उपयोगिता एवं प्रयोगशीलता जान लेना चाहिये। पक्षान्तर में 'उअ' अव्यय के स्थान पर प्राकृत में 'पुलअ' आदि पन्द्रह प्रकार के आदेश रूप भी प्रयुक्त किये जाते हैं, जो कि सूत्र संख्या ४-१८१ में आगे कहे गये हैं। तदनुसार 'पुलअ' आदि रूपों का तात्पर्य भी 'उअ' अव्यय के समान ही जानना चाहिये।

पश्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप 'उअ' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१११ से 'पश्य' के

स्थान पर प्राकृत में 'उम' आदेश की प्राप्ति होकर 'उम' अव्यय रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चल निष्पन्दा संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निच्चल-निप्फंदा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से प्रथम 'श्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'श्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से आदेश प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' के स्थान पर 'प्' की प्राप्ति; और १-२५ से हलन्त 'न्' के स्थान पर पूर्वस्थ 'फ' वर्ण पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *निच्चल निप्फंदा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विसिनी-पत्रे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भिसिणी-पत्तंमि होता है। इस शब्द-समूह में से भिसिणी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२३८ में की गई है, शेष पत्तंमि में सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' के स्थान पर द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति, ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'ए' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ की वृत्ति से हलन्त प्रत्ययस्थ 'म्' का अनुस्वार होकर *भिसिणी-पत्तंमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

राजते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१०० से संस्कृत धातु राज् के स्थान पर प्राकृत में 'रेह्' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'रेह्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रेहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बलाका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बलाआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और १-११ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृतीय प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप रूप विसर्ग व्यञ्जन का लोप होकर *बलाआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्मल-मरकत भाजन-पति स्थिता संस्कृत समासात्मक विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निम्मल-मरगय भायण-परिट्ठिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से रेफ रूप प्रथम 'र' का लोप; २-८९ से लोप हुए रेफ रूप 'र' के पश्चात् शेष रहे हुए (प्रथम) 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-१७७ से और १-१८० की वृत्ति से 'क' के स्थान पर व्यत्यय रूप 'ग' की प्राप्ति, १-१७७ से प्रथम 'त' का लोप; १-१८० से लोप हुए (प्रथम) 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति, १-१७७ से 'ज' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-३८ से 'प्रति' के स्थान पर 'परि' आदेश; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'स्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और १-१७७ से अन्त्य 'ता' में स्थित 'त्' का लोप होकर प्राकृत समासात्मक रूप *निम्मल-मरगय भायण परिट्ठिआ* सिद्ध हो जाता है।

शंख-शुक्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सङ्ख-सुत्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'श' व्यञ्जनों के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे 'ख' व्यञ्जन होने से कवर्गीय पञ्चम-अक्षर की प्राप्ति, २-७७ से 'क्ति' में स्थित हलन्त 'क्' व्यञ्जन का लोप, २-८९ से लोप हुए 'क्' के पश्चात शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *सङ्ख-सुत्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

'च्व' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

पश्य संस्कृत क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलअ भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८१ से संस्कृत मूल धातु 'दृश्' के स्थानीय रूप 'पश्य' के स्थान पर 'पुलअ' आदेश की प्राप्ति, और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय का लोप होकर *पुलअ* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-२११ ॥

इहरा इतरथा ॥२-२१२॥

इहरा इति इतरथार्थे प्रयोक्तव्यं वा ॥ इहरा नीसामन्नेहिं । पक्षे । इअरहा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'इतरथा' के अर्थ में प्राकृत-साहित्य में वैकल्पिक रूप से 'इहरा' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे –इतरथा निः सामान्यैः =इहरा नीसामन्नेहिं अर्थात् अन्यथा असाधारणों द्वारा-(वाक्य अपूर्ण है)। वैकल्पिक पक्ष होने से जहाँ 'इहरा' रूप का प्रयोग नहीं होगा वहाँ पर 'इअरहा' प्रयुक्त होगा। इस प्रकार 'इतरथा' के स्थान पर 'इहरा' और 'इअरहा' में से कोई भी एक रूप प्रयुक्त किया जा सकता है।

इतरथा संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इहरा और इअरहा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-२१२ से 'इतरथा' के स्थान पर 'इहरा' रूप की आदेश प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इहरा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(इतरथा =) इअरहा में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और १-१८७ से 'थ्' के स्थान पर 'ह्' आदेश की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *इअरहा* भी सिद्ध हो जाता है।

निः सामान्यैः संस्कृत विशेषणरूप है। इसका प्राकृत रूप नीसामन्नेहि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से विसर्ग रूप 'स्' का लोप, १-४२ से विसर्ग रूप 'स्' का लोप होने से 'नि' व्यञ्जन में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति, १-८४ से 'मा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति, २-७८ से 'य्' का लोप, २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति, ३-७ से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'भिस्' के स्थानीय रूप 'एस्' के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से

तृतीया विभक्ति के बहु वचन में प्रत्यय 'हिं' के पूर्वस्थ 'न' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *निसामन्नेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१ ॥

एक्कसरिअं झगिति सम्प्रति ॥ २-२१३ ॥

एक्कसरिअं झगित्यर्थे संप्रत्यर्थे च प्रयोक्तव्यम् ॥ एक्कसरिअं । झगिति सांप्रतं वा ॥

अर्थ—'शीघ्रता' अर्थ में और 'संप्रति=आजकल' अर्थ में याने प्रसंगानुसार दोनों अर्थ में प्राकृत-साहित्य में केवल एक ही अव्यय 'एक्कसरिअं' प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार 'एक्कसरिअं' अव्यय का अर्थ 'शीघ्रता=तुरन्त' अथवा 'झटिति' ऐसा भी किया जाता है और 'आजकल=संप्रति' ऐसा भी अर्थ होता है। तदनुसार विषय प्रसंग देखकर दोनों अर्थों में से कोई भी एक अर्थ 'एक्कसरिअं' अव्यय का किया जा सकता है।

झटिति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कसरिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१३ से 'झटिति' के स्थान पर प्राकृत में 'एक्कसरिअं' रूप की आदेश-प्राप्ति होकर *एक्कसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संप्रति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कसरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१३ से 'संप्रति' के स्थान पर प्राकृत में 'एक्कसरिअं' रूप की आदेश-प्राप्ति होकर *एक्कसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२१३ ॥

मोरउल्ला मुधा ॥ २-२१४ ॥

मोरउल्ला इति मुधार्थे प्रयोक्तव्यम् ॥ मोरउल्ला । मुधेत्यर्थः ॥

अर्थ—संस्कृत अव्यय 'मुधा='व्यर्थ' अर्थ में प्राकृत भाषा में 'मोरउल्ला' अव्यय का प्रयोग होता है। जब 'व्यर्थ' ऐसा भाव प्रकट करना हो तो 'मोरउल्ला' ऐसा शब्द बोला जाता है। जैसे—मुधा=मोरउल्ला अर्थात् व्यर्थ (है)।

मुधा संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप मोरउल्ला होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१४ से 'मुधा' के स्थान पर प्राकृत में 'मोरउल्ला' आदेश की प्राप्ति होकर *मोरउल्ला* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१४ ॥

दराधाल्पे ॥ २-२१५ ॥

दर इत्यव्ययमर्धार्थे ईषदर्थे च प्रयोक्तव्यम् ॥ दर-विअसिअं । अर्धेनेषद्वा विकसित मित्यर्थः ॥
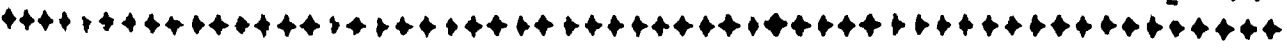
अर्थ—'अर्ध'=खंड रूप अथवा आधा समभाग' इस अर्थ में और 'ईषत्=अल्प अर्थात् थोडासा' इस अर्थ में भी प्राकृत में 'दर' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार जहाँ 'दर' अव्यय हो, वहाँ पर विषय-प्रसग को देखकर के दोनो अर्थों में से कोई सा भी एक उचित अर्थ प्रकट करना चाहिये। जैसे—अध विकसितम् अथवा ईषत् विकसितम्=दर-विअसिअ अर्थात् (अमुक पुष्प विशेष) आधा ही खिला है अथवा थोड़ा सा ही खिला है।

अर्ध विकसितम् अथवा *ईषत्-विकसितम्* सस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दर विअसिअ होता है। इसमें सूत्र-सख्या-२-२१५ से 'अर्ध' अथवा 'ईषत्' के स्थान पर प्राकृत में 'दर' आदेश, १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुसकलिंग में सस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दर-विअसिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१५ ॥

किणो प्रश्ने ॥ २-२१६ ॥

किणो इति प्रश्ने प्रयोक्तव्यम् ॥ किणो धुवसि ॥

अर्थः—'क्या, क्यों अथवा किसलिये' इत्यादि प्रश्न वाचक अर्थ में प्राकृत-भाषा में 'किणो' अव्यय प्रयुक्त होता है। जहाँ 'किणो' अव्यय प्रयुक्त हो, वहाँ इसका अर्थ 'प्रश्नवाचक' जानना चाहिये। जैसे.—किम् धूनोषि=किणो धुवसि अर्थात् क्यों तू हिलाता है?

'*किणो*' प्राकृत साहित्य का रूढ अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय *किणो* सिद्ध है।

धूनोषि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप धुवसि होता है इसमें सूत्र संख्या-४-५९ से सस्कृत धातु 'धून्' के स्थान पर प्राकृत में 'धुव्' आदेश, ४-२३९ से हलन्त प्राकृत धातु 'धुव्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमान काल के एक वचन में द्वितीय पुरुष में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धुवसि* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१६ ॥

इ-जे-राः पादपूरणे ॥ २-२१७ ॥

इ, जे, र इत्येते पाद-पूरणे प्रयोक्तव्याः ॥ न उणा इ अच्छीइं। अणुकूलं वोत्तुं जे। गेण्हइ र कलम-गोवी ॥ अहो। हंहो। हेहो। हा। नाम। अहह। हीसि। अयि। अहाह। अरि रि हो इत्यादयस्तु संस्कृत समत्वेन सिद्धाः ॥

अर्थः—'छंद आदि रचनाओं' में पाद-पूर्ति के लिये अथवा कथनोप-कथन में एवं सवाद-वार्ता में किसी प्रयोजन के केवल परम्परागत शैली विशेष के अनुसार 'इ, जे, र' वर्ण रूप अव्यय प्राकृत रचना में प्रयुक्त किये जाते हैं। इन एकाक्षरी रूप अव्ययों का कोई अर्थ नहीं होता है, केवल ध्वनि

रूप से अथवा उच्चारण में सहायता रूप से ही इनका प्रयोग किया जाता है; तदनुसार ये अर्थ हीन होते हैं एवं तात्पर्य से रहित ही होते हैं। पाद-पूर्ति तक ही इनकी उपयोगिता जाननी चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं—न पुनर् अक्षीणि=न उणा इ अच्छीइं अर्थात् पुनः आँखें नहीं-(वाक्य अपूर्ण है)। इस उदाहरण में एकाक्षरी रूप 'इ' अव्यय अर्थ हीन होता हुआ भी केवल पाद-पूर्ति के लिये ही आया हुआ है। 'जे' का उदाहरण-अनुकूलं वक्तुं=अणुकूलं वोत्तुं जे अर्थात् अनुकूल बोलने के लिये। इस प्रकार यहाँ पर 'जे' अर्थ हीन रूप से प्राप्त है। र का उदाहरण-गृह्णाति कलम गोपी=गेण्हइ र कलम-गोवी अर्थात् कलम-गोपी (धान्यादि की रक्षा करने वाली स्त्री विशेष) ग्रहण करती है। इस उदाहरण में र भी अर्थ हीन होता हुआ पाद-पूर्ति के लिये ही प्राप्त है। यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये।

प्राकृत-साहित्य में अन्य अव्यय भी देखे जाते हैं, जो कि संस्कृत के समान ही होते हैं, कुछ एक इस प्रकार हैं—(१) अहह (२) हंहो (३) हेहो (४) हा (५) नाम, (६) अहह (७) ही-सि, (८) अयि (९) अहाह (१०) अरि (११) रि और (१२) हो। ये अव्यय-वाचक शब्द संस्कृत के समान ही अर्थ-युक्त होते हैं और इसकी अक्षरीय-रचना भी संस्कृत के समान ही होकर तद्-वत् सिद्ध होते हैं। अतएव इसके लिए अधिक वर्णन की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

'उणा' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६५ में की गई है।

'इ' अव्यय पाद-पूर्ति अर्थक-मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

'अच्छीइं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३३ में की गई है।

अनुकूलम् संस्कृत क्रियापद-विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अणुकूलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणुकूलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वक्तुम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वोत्तुं होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२११ से मूल संस्कृत धातु 'वच्' के स्थान पर कृदन्त रूप में 'वोत्' आदेश और ४-४४८ से संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी हेत्वर्थकृदन्त अर्थ में 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त म् का अनुस्वार होकर *वोत्तुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जे' अव्यय पाद पूर्ति अर्थक मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

गृह्णाति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गेण्हइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२०९ से मूल संस्कृत धातु 'ग्रह' के स्थान पर प्राकृत में 'गेण्ह' आदेश और ३-१३९ से वर्तमान काल के एकवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गेण्हइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'र' अव्यय पाद-पूर्त्ति अर्थक मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

कलम-गोपी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कलम-गोवी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे दीर्घ ईकारान्त स्त्री-लिंग में सस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को 'यथा-स्थिति' अर्थात् दीर्घता ही प्राप्त होकर कलम-गोवी रूप सिद्ध हो जाता है।

'वृत्ति' में वर्णित अन्य अव्ययों की साधनिका की आवश्यकता नही है, क्योंकि उक्त अव्यय सस्कृत अव्ययों के समान ही रचना वाले और अर्थ वाले होने से स्वयमेव सिद्ध रूप वाले ही हैं। ॥ २-२१७॥

प्यादयः ॥ २-२१८ ॥

प्यादयो नियतार्थवृत्तयः प्राकृते प्रयोक्तव्याः ॥ पि वि अप्यर्थे ॥

अर्थ.—प्राकृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले 'पि' और 'वि' इत्यादि अव्ययों का वही अर्थ होता है; जो कि सस्कृत भाषा में निश्चित है, अत निश्चित अर्थ वाले होने से इन्हें 'वृत्ति' में 'नियत अर्थ-वृत्ति' विशेषण से सुशोभित किया है। तदनुसार 'पि' अथवा वि' अव्यय का अर्थ सस्कृतीय 'अपि' अव्यय के समान ही जानना चाहिये।

'पि' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या *१-४१* में की गई है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र सख्या *१-६* में की गई है। ॥ २-२ ८॥

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचितायां सिद्ध हेमचन्द्राभिधानस्वोपज्ञ शब्दानुशासन वृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

अर्थः—इस प्रकार आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' नामक सस्कृत-प्राकृत-व्याकरण की स्वकीय 'प्रकाशिका' नामक सस्कृतीय टीकान्तर्गत आठवें अध्याय का अर्थात् प्राकृत व्याकरण का द्वितीय चरण समाप्त हुआ॥

—: पादान्त मंगलाचरण :—

द्विषत् पुर क्षोद विनोद हेतो र्भवादवामस्य भवद्भुजस्य ॥
अयं विशेषो भुवनैकवीर ! परं न यत्-काममपाकरोति ॥ १ ॥

अर्थ :—हे विश्व में एक ही-अद्वितीय वीर सिद्धराज ! शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने में ही आनन्द का हेतु बनने वाली ऐसी तुम्हारी दाहिना भुजा में और भव अर्थात् भगवान् शिव-शङ्कर में (परस्पर में) इतना ही विशेष अन्तर है कि जहाँ भगवान् शिव शङ्कर काम-(मदन-देवता) को दूर करता है; वहाँ तुम्हारी यह दाहिनी भुजा काम (शत्रुओं के नगरों को नित्य ही नष्ट करने की इच्छा विशेष) को दूर नहीं करती है। तुम्हारे में और शिव-शङ्कर में परस्पर में इसके अतिरिक्त सभी प्रकार से समानता ही है। इति शुभम्।

इति प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद की 'प्रियोदयाख्या'
हिन्दी-व्याख्या समाप्त ॥

परिशिष्ट-भाग

-: अनुक्रमणिका :-

संकेत-बोध

अ	=	अव्यय।
अक	=	अकर्मक-धातु।
अप	=	अपभ्रंश भाषा।
उप	=	उपसर्ग
उभ.	=	सकर्मक तथा अकर्मक धातु। अथवा दो लिंग वाला।
कर्म	=	कर्मणि-वाच्य।
क वकृ	=	कर्मणि-वर्तमान-कृदन्त।
कृ.	=	कृत्य प्रत्ययान्त।
कृद	=	कृदन्त
क्रि.	=	क्रियापद।
क्रि. वि	=	क्रिया-विशेषण
चू पै	=	चूलिका पैशाची भाषा।
त्रि.	=	त्रिलिंग।
दे	=	देशज।
न	=	नपुंसकलिंग
पु	=	पुंलिंग।
पुं न	=	पुंलिंग तथा नपुंसकलिंग।
पु स्त्री.	=	पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग।
पै.	=	पैशाची भाषा।
प्रयो.	=	प्रेरणार्थक-णिजन्त।
ब	=	बहुवचन।
भ. कृ.	=	भविष्यत् कृदन्त।
भवि	=	भविष्यत्-काल
भू का.	=	भूतकाल।
भू कृ.	=	भूत-कृदन्त।
मा	=	मागधी भाषा।
व कृ.	=	वर्तमान-कृदन्त।
वि	=	विशेषण।
शौ.	=	शौरसेनी भाषा।
सर्व	=	सर्वनाम।
सं. कृ.	=	संबन्धक कृदन्त।
सक.	=	सकर्मक-धातु।
स्त्री	=	स्त्रीलिंग।
स्त्री न.	=	स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग।
हे. कृ	=	हेत्वर्थ-कृदन्त।

॥ श्री ॥

प्राकृत-व्याकरण में प्रथम-द्वितीय पाद में सिद्ध किये गये शब्दों की

कोष-रूप-सूची

[पद्धति-परिचयः—प्रथम शब्द प्राकृत-भाषा का है; द्वितीय अक्षरात्मक लघु-संकेत प्राकृत शब्द की व्याकरणगत विशेषता का सूचक है, तृतीय कोष्ठान्तर्गत शब्द मूल प्राकृत शब्द के संस्कृत रूपान्तर का अवबोधक है और चतुर्थ स्थानीय शब्द हिन्दी-तात्पर्य बोधक है। इसी प्रकार प्रथम अंक प्राकृत-व्याकरण का पादक्रम बोधक है और अन्य अंक इसी पाद के सूत्रों की क्रम संख्या को प्रदर्शित करते हैं। यों व्याकरण-गत शब्दों का यह शब्द-कोष ज्ञातव्य है।]

[अ]

अ अ (च) और, पुनः, फिर; अवधारण, निश्चय इत्यादि; १-१७७; २-१७४, १८८, १९३;।

अइ अ (अति) अतिशय, अतिरेक, उत्कर्ष, महत्व, पूजा, प्रशंसा आदि अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। १-१६९, २-१७९, २०४,

अइअम्मि वि (अतीते) व्यतीत अर्थ में, २-२०४।

अइमुत्तय पुं० (अतिमुक्तकम्) अयवन्ता कुमार को, १-२६, १७८, २०८।

अइमुंत्तय पुं० (अतिमुक्तकम्) अयवन्ता कुमार को, १-२६, १७८।

अईसरिअं न. (ऐश्वर्यम्) वैभव, संपत्ति, गौरव, १-१५१

अंसु न. (अश्रु) आंसु नेत्र-जल; १-२६।

अक्को पु० (अर्क) सूर्य आक का पेड़, स्वर्ण-सोना, १-१७७; २-७९, ८९।

अक्खइ सक (आख्याति) वह कहता है, १-१८७।

अक्खराण (अक्षराणाम्) अक्षरों के, वर्णों के, २-९५।

अगणी पु० (अग्नि) आग; २-१०२।

अगया पु० देवाज =(असुरा॰) दैत्य, दानव, २-१७४

अगरु पु. न. (अगुरु.) सुगंधित काष्ठ विशेष; १-१०७

अगरु वि० (अगुरु) जो बड़ा नहीं ऐसा लघु, छोटा, १-७७।

अग्गओ पु. (अग्रत.) सामने, आगे, १-३७।

अग्गी पु (अग्नि) आग, १०२,

अग्घइ अक (राजते) वह सुशोभित होता है, चमकता है; १-१८७।

अङ्कोल्लो पु, अङ्कोठ वृक्ष विशेष, १-२००; २-१५५।

अगे (अगे) अग पर; १-७ अंगाइं (अगानि) शरीर के अवयवों ने (अथवा को), १-९३। अगहि (अगैः) शरीर के अवयवों द्वारा, २-१७९।

अङ्गणं अगण न (अगणम्) आंगन; १-३०।

अङ्गारो पुं. (अंगार) जलता हुआ कोयला, जैन साधुओं के लिये भिक्षा का एक दोष, १-४७

अगुअं न (इगुदम्) इंगुद वृक्ष का फल; १-८९।

अच्चो वि (अर्च्य) पूज्य, पूजनीय; १-१७७

अच्छअरं न (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार; १-५८, २-६७।

अच्छरसा स्त्री (अप्सरा) इन्द्र की एक पटरानी, देवी रूपवती स्त्री; १-२०।

अच्छरा स्त्री (अप्सरा) इन्द्र की एक पटरानी, देवी, १-२०; २-२१।

अच्छरिअं न (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार, १-५८ २-६७।

तानाम्) जिनके हृदय में विश्वास है, ऐसे निवासियों का, १-६०।
अन्धलो वि. (अन्ध) अन्धा; २-१७३।
अन्धो वि. (अन्ध) अन्धा; २-१७३।
अन्नत्तो अ. (अन्यत) अन्य रूप से, २-१६०।
अन्नत्थ अ. (अन्यत्र) अन्य स्थान पर; २-१६१।
अन्नदो अ. (अन्यत) दूसरे से, दूसरी तर्फ, २-१६०।
अन्नन्नं वि (अन्योन्यम्) परस्पर में, आपस मे १-१५६
अन्नह अ (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर, २-१६१।
अन्नहि अ. (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर, २-१६१।
अन्नारिसो वि. (अन्यादृश) दूसरे के जैसा, १-१४२।
अन्नुन्न वि (अन्योन्यम्) परस्पर में, आपस में, १-१५६
अप्पज्जो वि (आत्मज्ञ) आत्म तत्त्व को जानने वाला अपने आपको जानने वाला, २-८३।
अप्पणय वि. (आत्मीयम्) स्वकीय को, निजीय को, २ १५३
अप्पण्णू वि (आत्मज्ञ.) आत्म तत्व को जानने वाला, आत्म-ज्ञानी २-८३।
अप्पमत्तो वि (अप्रमत्त) अप्रमादी, सावधान उपयोग वाला, १-२३१।
अप्पा अप्पणो अ (स्वयम्) आप, खुद, निज २-१९७ २०९।
अप्पाणो पु. (आत्मा) आत्मा, जीव, २-५१।
अप्पुल्लं वि (आत्मीयं) आत्मा में उत्पन्न, २-१६३
अमरिसो पु (अमर्ष) असहिष्णुता, २-१०५।
अमुगो सर्व (अमुक) वह कोई अमुक-ढमुक, १-१७७
अमुणन्ती वकृ. (अजानन्ती) नहीं जानती हुई, २-१९०
अम्बं न (आम्रम) आम्र-फल, १-८४, २-५६।
अम्बिर (देशज) न (आम्र-फलम्) आम्रफल, २-५६।
अम्बिल वि (आम्लम्) खट्टा, २-१०६।
अम्मो अ (आश्चर्ये) आश्चय अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, २-२०८
अम्ह अम्ह (अस्माकम्) हमारा, १-३३, २४६, २-२०४,
अम्हकेरो सर्व (अस्मदीय) हमारा, २-१४७।
अम्हकेर सर्व (अस्मदीयम्) हमारा, २-९९।
अम्हे सर्व (वयम्, हम, १-४०,
अम्हारिसो वि (अस्मादृश) हमारे जैसा, १-१४२, २-७४
अम्हेच्चय वि. (अस्मदीयम्) हमारा; २-१४९।
अम्हेत्थ सर्व अ. (वयमत्र) हम यहा पर, १-४०
अयं सर्व (अयम्) यह, ३-७३।
अयि अ० (अयि) अरे! हे!; २-२१७।
अप्पिअं वि (अर्पितम्) अर्पण किया हुआ; भेंट किया हुआ, १-६३।
उप्पिअ वि. (अर्पित) अर्पण किया हुआ, १-२६९
ओप्पेइ सक (अर्पयति) वह अर्पण करता है, १-६३।
ओप्पिअ वि (अर्पितम्) अर्पण किया हुआ, १-६३।
समप्पेतून कृ (समर्पित्वा) अर्पण करके, २-१६४।
अरण्ण न० (अरण्यम्) जगल, १-६६।
अरहन्तो पु (अर्हन्) जिन देव, जैन-धर्म-उपदेशक; २-१११
अरहो पु (अर्हन्) जिनदेव, जिनसे कुछ भी अज्ञेय नही है ऐसे देव; २-१११।
अरि पु (अरि) दुश्मन, रिपु, २-११७।
अरिहन्तो पु (अर्हन्) जिनेन्द्र भगवान; २-१११।
अरिहा वि (अर्हा) योग्य, लायक, २-१०४।
अरिहो पु (अर्हन्) जिनदेव, २-१११।
अरुणो वि (अरुण) लाल, रक्तवर्णीय, १-६।
अरुहन्तो पु (अर्हन) जिनदेव, २-१११।
अरुहो पु (अर्हन्) जिनदेव २-१११
अरे अ (अरे) अरे, सम्बोधक अव्यय शब्द, २-२०१
अरिहइ सक (अर्हति) पूजा के योग्य होता है, २-१०४
अलचपुर न (अचलपुरम्) एक गाव का नाम, २-११८
अलसी स्त्री (अतसी) तेल वाला तिलहन विशेष; १-२११।
अलाउ न (अलाबुम्) तुम्बीफल, १-६६।
अलाऊ स्त्री अलावू) तुम्बी लता, १-६६।
अलाबू स्त्री (अलाबू) तुम्बी-लता १-२३७।
अल्लाहि अ (निवारण अर्थे) 'निवारण-मनाई' करने अर्थ में, २-१८९।
अलिअ, अलीअ न (अलीकम्) मृषावाद, झूठ, (वि) मिथ्या खोटा, १-१०१।
अल्ल वि (आर्द्रम्) गीला, भीजा हुआ, १-८२।

आगमण्णू पु. वि. (आगमज्ञः) शास्त्रों को जानने वाला, १-५६।
आगमिओ पु. वि. (आगमिकः) शास्त्र-संबंधी, शास्त्र-प्रतिपादित; शास्त्रोक्त वस्तु को ही मानने वाला; १-१७७।
आगरिसो पु (आकर्षः) ग्रहण, उपादान, खींचाव, १-१७७
आगारो पु. (आकारः) अपवाद; इंगित; चेष्टा विशेष आकृति, रूप, १-१७७।
आढत्तो वि (आरब्ध) शुरु किया हुआ; प्रारब्ध २-१३८
आढिओ वि. (आदृतः) सत्कृत, सम्मानित, १-१४३।
आणत्ती स्त्री. (आज्ञप्तिः) आज्ञा, हुक्म, २-९२।
आणवण न. (आज्ञापन) आज्ञा, आदेश, फरमाइश, २-९२
आणा स्त्री (आज्ञा) आज्ञा, हुक्म, २-८३, ९२।
आणालक्खम्भो पु (आलानस्तम्भ) जहाँ हाथी बांधा जाता है वह स्तम्भ, २९७, ११७।
आणालो पु (आलानः) बंधन, हाथी बांधने की रज्जु डोरी २-११७।
आफंसो पु (आस्पर्श) अल्प स्पर्श, १-४४। १-१८२
आम अ (अभ्युपगमार्थे) स्वीकार करने अर्थ में, हाँ, २-१७७।
आमेलो पु. (आपीड) फूलों की माला; शिरो-भूषण, १-१०५, २०२, २३४।
आयंसो पु (आदर्शः) दर्पण, बैल आदि गले का भूषण-विशेष, २-१०५।
आयमिओ वि पु (आगमिक) शास्त्र संबंधी; शास्त्र-प्रतिपादित, १-१७७।
आयरिओ पु (आचार्यः) गण का नायक, आचार्य, १-७३; २-१०७।
आयरिसो पु (आदर्श) दर्पण, बैल आदि के गले का भूषण विशेष, २-१०५।
आयास पु न. (आकाश) आकाश, अन्तराल, १-८४।
आरण्ण वि. (आरण्य) जंगली, १-६६।
आरनाल न. (आरनालम्) कांजी, साबूदाना, (देशज) कमल, १-२२८।
आरम्भो पु (आरम्भ) प्रारम्भ, जीव-हिंसा, पाप-कर्म, १-३०।
आलक्खिमो सक (आलक्षयामः) हम जानते हैं, हम पहचानते हैं १-७।
आलिद्धो वि पु (आश्लिष्ट) आलिंगित; २-४९, ९०।
आली स्त्री (सखी) सखी, वयस्या; (आली) = पंक्ति श्रेणी; १-८३।
आलेट्ठुअं हे कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये; १-२४, २-१६४।
आलेद्धुं हे कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये, २-१६४।
आलोअण न. (आलोचन) देखना; १-७।
आवज्जं न. (आतोद्यम्) बाजा; वाद्य १-१५६।
आवत्तओ वि. (आवर्तक) चक्राकार भ्रमण करने वाला; २-३०।
आवत्तण न. (आवर्तनम्) चक्राकार भ्रमण; २-३०।
आवत्तमाणो वकृ (आवर्तमानः) चक्राकार घूमता हुआ, १-२७१।
आवलि स्त्री (आवलिः) पंक्ति, समूह, १-६।
आवसहो पु (आवसथ) घर, आश्रय, स्थान मठ, १-१८७
आवासयं न (आवासकम्) (आवश्यक), नित्यकर्त्तव्य, १-४३।
आवेडो पु (आपीड) फूलों की माला, शिरोभूषण; १-२०२।
आस न (आस्यम्) मुख, मुंह; २-९२।
आसारो पु (आसार) वेग से पानी बरसना, १-७६
आसीसा स्त्री (आशी.) आशीर्वाद, २-१७४।
आसो पु (अश्वः) घोड़ा, १-४३।
आहड वि (आहृतम्) छीना हुआ, चोरी किया हुआ; १-२०६।
आहिआई स्त्री. (अभिजातिः) कुलीनता, खानदानी; १-४४
आहित्थ वि (? दे) चलित, गत, कुपित, व्याकुल, २-१७४।

(इ)

इ अ. (पाद पूरणे प्रयोगार्थम्) पाद-पूर्त्ति करने में प्रयुक्त होता है २-२१७।
इअ अ (इति) ऐसा, १-४२, ९१।
इअर वि (इतर) अन्य, १-७।
इअरहा अ (इतरथा) अन्यथा, नहीं तो, अन्य प्रकार से, २-२१२।
इआणि अ (इदानीम्) इस समय, १-२९।

उच्छू पुं. (इक्षु) ईख; गन्ना; १-९५; २-१७।
उच्छुओ वि. (उत्सुक.) उत्कण्ठित; २-२२।
उच्छूढ वि. (उत्क्षिप्तम्) फेंका हुआ; ऊंचा उडाया हुआ; २-१२७।
उज्जलो वि (उज्ज्वलः) निर्मल, स्वच्छ, दीप्त, चमकीला, २-१७४।
उज्जल्ल वि. (देशज) पसीना वाला; मलिन, बलवान, २-१७४।
उज्जू वि (ऋजु.) सरल, निष्कपट; सीधा, १-१३१ १४१; २-९८।
उज्जोअगरा वि (उद्योतकरा) प्रकाश करने वाले; १-१७७।
उट्टो पुं. (उष्ट्र) ऊंट; २-३४।
उडू पु. न. (उडुः) नक्षत्र, तारा; १-२०२।
उण अ. (पुन) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीय वार, पक्षान्तर आदि अर्थ में, १-६५; १७७।
उणा अ. (पुन) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीयवार, १-६५, २-२१७।
उणाइ अ. (पुन.) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीयवार, १-६५।
उण्हीस पु न (उष्णीषम्) पगड़ी, मुकुट, २-७५।
उत्तरिज्ज, उत्तरीअं न (उत्तरीयम्) चद्दर, दुपट्टा १-२४८
उत्तिमो वि. (उत्तम) श्रेष्ठ, १-४६।
उत्थारो पु० (उत्साह.) उत्साह; दृढ़ उद्यम; स्थिर प्रयत्न, २-४८।
उदू त्रि. (ऋतु.) ऋतु, दो मास का काल विशेष, १-२०९।
उद्दामो वि (उद्दाम) स्वच्छन्द, अव्यवस्थित, प्रचण्ड, प्रखर, १-१७७।
उद्ध न (ऊर्ध्वम्) ऊपर, ऊंचा, २-५९।
उप्पल न (उत्पलम्) कमल, पद्म, २-७७।
उप्पाओ पु (उत्पात.) उत्पतन; ऊर्ध्व गमन, २ ७७।
उप्पावेइ सक (उत्पलावयति) वह गोता खिलाता है, कूदाता है, २-१०६।
उप्पेहड (देशज) वि (?) उद्भट, आडम्बर वाला, २-१७४।
उप्फालइ सक. (उत्पाटयति) वह उठाता है, उखेड़ता है, २-१७४।

उब्भंतयं वि (उद्भ्रान्तकम्) भ्रान्ति पैदा करने वाला; भौचक्का बनाने वाला; २-१६४।
उब्भं न. (ऊर्ध्वम्) ऊपर, ऊंचा, २-५९।
उभयबल न. (उभय बलम्) दोनो प्रकार का बल; २-१३८।
उभयोकालं न. (उभय कालम्) दोनो काल, २-१३८।
उंबरो पुं (उदुम्बरः) गूलर का पेड; १-२७०।
उम्मत्तिए स्त्री. (उन्मत्तिके) हे मदोन्मत्त ! (स्त्री) १-१६९
उम्हा स्त्री. (ऊष्मा) भाप, गरमी; २-७४।
उरो पु. न. (उरः) वृक्षः स्थल, छाती, १-३२।
उलूहल न. (उदूखलम्) उलुखल; गूगल; १-१७१।
उल्ल वि (आर्द्रम्) गीला; भीजा हुआ; १-८२।
उल्लविरीइ वि. (उल्लपनशीलया) बकवादी स्त्री द्वारा; २-१९३।
उल्लावेंतिए वि (उल्लापयन्त्या) बकवादी स्त्री द्वारा; २-१९३।
उल्लिहणे वि (उल्लेखने) घर्षण किये हुए पर, १-७।
उल्लेइ सक (आर्द्रीकरोति) वह गीला करता है, १-८२
उवज्झाओ पु (उपाध्याय) उपाध्याय, पाठक, अध्यापक, १-१७३; २-२६।
उवणिअ वि (उपनीतम्) पास में लाया हुआ, १-१०१
उवणीओ पुं वि (उपनीत.) समीप में लाया हुआ, अर्पित, १-१०१।
उवमा स्त्री (उपमा) सादृश्यात्मक दृष्टान्त, १-२३१
उवमासु स्त्री (उपमासु) उपमाओं में; १-७।
उवयारेसु पुं (उपचारेषु) उपचारों में, सेवा-पूजाओं में, भक्ति में, १-१४५।
उवरिं अ. (उपरिम्) ऊपर, ऊर्ध्व; १-१०८।
उवरिल्ल वि. (उपरितनम्) ऊपर का; ऊर्ध्व-स्थित, २-१६३।
उववासो पु (उपवास) दिन रात का अनाहारक व्रत विशेष १-१७३।
उवसग्गो पु (उपसर्ग) उपद्रव, बाधा, उपसर्ग-विशेष; १-२३१।
उवह वि (उभय) दोनो, २-१३८।
उवहसिअ वि (उपहसितम्) हसी किया हुआ, हसाया हुआ, १-१७३।
उवहास पु. (उपहासम्) हसी, ट्ठा, २-२०१।

(ओ)

ओ (अव, अप, उत,) नीचे, दूर अर्थों में; अथवा; आदि अर्थों में १-१७२, २-२०३।

ओआसो पुं. (अवकाश.) मौका; प्रसंग, १-१७२, १७३

ओक्खल न (उदूखलम्) उलुखल; गूगल, १-१७१।

ओज्झरो पु (निर्झरः) झरना; पर्वत से निकलने वाला जल प्रवाह, १-९८।

ओज्झाओ पु. (उपाध्यायः) पाठक; उपाध्याय; अध्यापक, १-१७३।

ओप्पिअ वि. अर्पितम्) अर्पण किया हुआ; १-६३।

ओमाल न (अवमाल्यम्) निर्माल्य, देवोच्छिष्ट द्रव्य; १-३८, २-९२।

ओमालयं न. (अवमाल्यम्) निर्माल्य; देवोच्छिष्ट द्रव्य; १-३८।

ओली स्त्री. (आली) पंक्ति; श्रेणी, १-८३।

ओल्लं वि (आर्द्रम्) गीला, भीजा हुआ; १-८२।

ओसढ न. (औषधम्) दवा; इलाज, भैषज; १-२२७।

ओसहं न. (औषधम्) दवा; भैषज, १-२२७।

ओसिअत व कृद. (अवसीदतम्) पीडा पाते हुए को; १-१०१।

ओहलो पु. (उदूखल) उदूखल; गुगल, १-१७१।

(क)

कइ पु. (कवि) कविता करने वाला विद्वान पुरुष, कवि; २-४०।

कइअवं वि (कतिपयम्) कतिपय; कई एक; १-२५०

कइअव न. (कैतवम्) कपट, दम्भ; १-१५१।

कइद्धओ पु (कपिध्वजः) वानर-द्वीप के एक राजा का नाम, अर्जुन, २-९०।

कइधओ पु (कपिध्वज) अर्जुन, २-९०।

कइन्दाण पु (कवीन्द्राणम्) कवीन्द्रों का; १-७।

कइमो वि (कतम) बहुत में से कौनसा, १-४८

कइरवं न (कैरवम्) कमल, कुमुद, २-१५२।

कइलासो पु. (कैलास.) पर्वत विशेष का नाम, १-५२।

कइवाहं वि. (कतिपय) कतिपय, कई एक, १-२५०।

कई पु (कवि) कविता करने वाला विद्वान्;

कई पु (कपि) वन्दर, १-२३१।

कउच्छेअयं न. (कौक्षेयकम्) पेट पर बंधी हुई तलवार; १-१६२।

कउरवो पु. (कौरवः) कुरु-देश में उत्पन्न हुआ; राजा कौरव; १-१६२।

कउल पुं. (कौरव) कुरु देश में उत्पन्न हुआ; १-८

कउला पु (कौला.) जाति विशेष के पुरुष; १-१६२।

कउसलं न (कौशलम्) कुशलता, दक्षता, १-६२।

कउहा स्त्री (ककुभ्) दिशा; १-२१।

कउहं न. (पुं) (ककुदम्) बैल के कंधे का कूबड़; सफेद छत्र आदि, १-२२५।

कंसं न. (कांस्यम्) कांसी-(धातु विशेष) का पात्र, १-२९, ७०।

कंसालो पु. (कांस्यालः) वाद्य-विशेष, २-९२।

कंसिओ पुं. (कांस्यिकः) कंसेरा; ठठेरा विशेष, १-७०

ककुधं न पु. (ककुदम्) पर्वत का अग्र भाग चोटी; छत्र विशेष; २-१७४।

कक्कोडो पुं. (कर्कोट.) सांप की एक जाति विशेष; १-२६।

कच्छा स्त्री. (कक्षा) विभाग, अंश, संशय-कोटि; प्रकोष्ठ, २-१७।

कच्छो पु (कक्ष) काख, जल-प्राय देश, इत्यादि; २-१७।

कज्ज न (कार्यम्) कार्य; प्रयोजन १-१७७, २-२४

कज्जे न. (कार्ये) काम में, प्रयोजन में; २-१८०।

कञ्चुओ पुं (कञ्चुकः) वृक्ष विशेष कपड़ा १-२५, ३०

कञ्चुअं न (कञ्चुकम्) काचली; १-७।

कट्टु कृ (कृत्वा) करके, २-१४६।

कट्ठ न. (काष्ठम्) काठ, लकड़ी, २-३४; ९०।

कडणं न (कदनम्) मार डालना, हिंसा, मर्दन, पाप; आकुलता; १-२१७।

कडुएल्ल वि (कटु तैलम्) तीखे स्वाद वाला, २-१५५।

कणय न (कनकम्) स्वर्ण, सोना, धतूरा, १-२२८।

कणवीरो पुं (करवीर) वृक्ष-विशेष; कनेर, १-२५३।

कणिआरो पुं. (कर्णिकारः) वृक्ष विशेष, कनेर का गाछ; गोशाला का एक भक्त; २-९५।

कणिट्ठयरो वि (कनिष्ठ तर) छोटे से छोटा; २-१७२।

कणेरू स्त्री (करेणुः) हस्तिनी, हथिनी, २-११६।

कण्टओ-कटओ पु (कण्टक) कांटा, १-३०।

कलमगोवी स्त्री. दे (शालि-गोपी) चाँवल की रक्षा करने वाली २-२१७।
कलम्बो पु. (कदम्बः) वृक्ष-विशेष, कदम-का-गाछ; १-३०, २२२।
कलावो पुं. (कलापः) समूह, जत्था; १-२३१।
कलुणो वि. (करुण) दीन, दया-जनक, करुणा का पात्र १-२५४।
कल्लं न. (कल्यम्) कल; गया हुआ अथवा आगामी दिन; २-१८६।
कल्हारम् न (कल्हारम्) सफ़ेद कमल, २-७६।
कवट्टिओ वि (कदर्थित) पीडित, हैरान किया हुआ; १-२२४; २-२९।
कवड्डो पु० (कपर्दः) बडी कौड़ी, वराटिका; २-३६।
कवालं न. (कपालम्) खोपड़ी; घट-कर्पर, हड्डी का भिक्षा-पात्र, १-२३१।
कविलं न. वि (कपिलम्) पीला रग जैसे वर्ण वाला, १-२३१।
कव्व-कव्वं न (काव्यम्) कविता, कवित्व, काव्य, २-७९
कव्वइत्तो पु० (काव्यवान्) काव्य वाला, २-१५९।
कस विअसन्ति अक (विकसन्ति) खिलते हैं, २-२०९।
विअसिअ वि (वकसितम्) खिला हुआ; १-९१, २-२५
कसण, कसणो पु० वि (कृष्ण) काला, १-२३६, २-७५ ११०।
कसाओ वि (कषाय) कषैला स्वाद वाला; कषाय रग वाला, खुशबूदार; १-२६०।
कसिण वि (कृत्स्न.) सकल, सब, सम्पूर्ण, (कृष्ण = काला) २-७५, १०४।
कसिणो वि (कृष्ण अथवा कृत्स्न.) काला अथवा पूर्ण, २-८९, १०४, ११०।
कह अ (कथम्) कैसे ? किस तरह ? १-२९, २-१६१। १९९, २०४ २०८।
कह अ (कथम्) कैस ? किस तरह ? १-२९, ४१
कहमवि अ (कथमपि) किसी भी प्रकार, १-४१।
कहावणो पुं (कार्षापण) सिक्का विशेष; २-७१,९३।
कहि अ (कुत्र) कहाँ पर ? २-१६१।
काउँओ पुं (कामुक) महादेव, शिव, १-१७८।
कामिणीण स्त्री (कामिनीनाम्) सुन्दर स्त्रियो के, २-१८४
कायमणी पुं. (काचमणि) काँच-रत्न विशेष; १-१८०।
कालओ पुं (कालकः) कालकाचार्य; १-६७।
कालायसं, कालासं न. (कालायसम्) लोहे की एक जाति १-२६९।
कालो पुं. (कालः) समय; वक्त, १-१७७।
कासइ अ. (कस्यचित्) कोई, १-४३।
कासओ पुं. (कर्षक) किसान; १-४३।
कासं न (कास्यम्) धातु-विशेष, काँसी, वाद्य-विशेष,
कासओ वि पुं. (कश्यप.) दारू पीने वाला, १-४३।
कासा स्त्री. वि. (कृशा) दुर्बल स्त्री, १-१२७।
काहलो वि पुं. (कातरः) कायर; डरपोक, १-२१४,
काहावणो पुं. (कार्षापण) सिक्का विशेष; २-७१।
काहीअ सक (कार्षीद्) करो, २-१९१।
काहिइ सक (करिष्यति) वह करेगा, १-५।
किंसुअं न (किंशुकम्) ढाक, वृक्ष-विशेष; १-२९,८६
किआ स्त्री. (क्रिया) चारित्र; २-१०४।
किई स्त्री (कृति) कृति, क्रिया; विधान, १-१२८।
किच्चा स्त्री (कृत्या) क्रिया, काम, कर्म; महामारी का रोग विशेष, १-१२८।
किच्ची स्त्री. (कृत्ति) कृतिका नक्षत्र, मृग आदि का चमड़ा, भोज-पत्र २-१२-८९।
किच्छं न (कृच्छ्रम्) दुःख, कष्ट, १-१२८।
किज्जइ क्रिया. क्रियते) किया जाता है १-९७।
किडी पु (किरिः) सूकर-सूअर। १-२५१।
किणा सर्व. (केन) किस से ? किस के द्वारा, ३-६९।
किणो अ (प्रश्न-वाचक अर्थ में) क्या, क्यों, २ २१६
कित्ती स्त्री (कीर्ति) यश-कीर्ति, २-३०।
किर अ (किल) सभावना, निश्चय, हेतु, संशय, पाद-पूर्ण आदि अर्थो में, १-८८, २-१८६।
किरायं न. पुं (किरातम्) अनार्य देश विशेष अथवा भील को, १-१८३।
किरिआ स्त्री (क्रिया) क्रिया, काम, व्यापार, चारित्र आदि, २-१०४।
किल अ (किल) सभावना, निश्चय, हेतु, सशय, पाद पूर्ण आदि अर्थों में २-१८६।
किलन्त वि (क्लान्तम्) खिन्न, श्रान्त, २-१०६।
किलम्मइ अक (क्लाम्यति) वह क्लान्त होता है, वह खिन्न होता है, २-१०६।

सालिगोवी स्त्री. दे (शालि-गोपी) चावल की रक्षा करने वाली २-२१७।

कलम्बो पु. (कदम्बः) वृक्ष-विशेष, कदम-का गाछ, १-३०, २२२।

कलावो पु (कलाप.) समूह; जत्था; १-२३१।

कलुणो वि. (करुण.) दीन, दया-जनक, करुणा का पात्र १-२५४।

कल्ल न (कल्यम्) कल, गया हुआ अथवा आगामी दिन, २-१८६।

कल्हारम् न. (कल्हारम्) सफ़ेद कमल, २-७६।

कवट्टिओ वि (कदर्थित) पीडित, हैरान किया हुआ; १-२२४; २-२९।

कवड्डो पु०.(कपर्दः) बडी कौड़ी, वराटिका; २-३६।

कवाल न. (कपालम्) खोपड़ी; घट-कर्पर, हड्डी का भिक्षा-पात्र, १-२३१।

कविलं न वि (कपिलम्) पीला रंग जैसे वर्ण वाला, १-२३१।

कव्व-कव्वं न (काव्यम्) कविता, कवित्व, काव्य, २-७९

कव्वइत्तो पुं० (काव्यवान्) काव्य वाला; २-१५९।

कस विअसन्ति अक (विकसन्ति) खिलते हैं, २-२०९।
 विअसिअ वि. (वकसितम्) खिला हुआ, १-९१, २-२-५

कसण, कसणो पु० वि (कृष्ण) काला, १-२३६, २-७५, ११०।

कसाओ वि (कषाय) कषैला स्वाद वाला, कषाय रंग वाला; खुशबूदार, १-२६०।

कसिण वि (कृत्स्न.) सकल, सब, सम्पूर्ण, (कृष्ण = काला) २-७५, १०४।

कसिणो वि. (कृष्ण अथवा कृत्स्न.) काला अथवा पूर्ण, २-८९, १०४, ११०।

कह अ. (कथम्) कैसे ? किस तरह ? १-२९, २-१६१। १९९, २०४ २०८।

कह अ (कथम्) कैसे ? किस तरह ? १-२९, ४१

कहमवि अ (कथमपि) किसी भी प्रकार, १-४१।

कहावणो पुं (कार्षापण) सिक्का विशेष; २-७१,९३।

कहि अ (कुत्र) कहाँ पर ? २-१६१।

काउँओ पुं (कामुक) महादेव, शिव, १-१७८।

कामिणीण स्त्री (कामिनीनाम्) सुन्दर स्त्रियो के, २-१८४

कायमणी पुं. (काचमणि) काँच-रत्न विशेष; १-१८०।

कालओ पुं. (कालकः) कालकाचार्य; १-६७।

कालायसं, कालासं न. (कालायसम्) लोहे की एक जाति १-२६९।

कालो पुं. (कालः) समय, वख्त, १-१७७।

कासइ अ. (कस्यचित्) कोई, १-४३।

कासओ पुं. (कर्षक.) किसान; १-४३।

कासं न (कास्यम्) धातु-विशेष, काँसी, वाद्य-विशेष,

कासओ वि पुं. (कश्यप.) दारु पीने वाला, १-४३।

कासा स्त्री. वि. (कृशा) दुर्बल स्त्री, १-१२७।

काहलो वि पुं. (कातरः) कायर; डरपोक, १-२१४,

काहावणो पुं. (कार्षापण) सिक्का विशेष; २-७१।

काहीअ सक. (कार्षीद्) करो; २-१९१।

काहिइ सक (करिष्यति) वह करेगा, १-५।

किंसुअं न (किंशुकम्) ढाक, वृक्ष-विशेष; १-२९,८६

किआ स्त्री. (क्रिया) चारित्र, २-१०४।

किई स्त्री (कृति) कृति, क्रिया, विधान, १-१२८।

किच्चा स्त्री (कृत्या) क्रिया, काम, कर्म; महामारी का रोग विशेष, १-१२८।

किच्ची स्त्री. (कृत्ति) कृतिका नक्षत्र, मृग आदि का चमड़ा, भोज-पत्र २-१२-८९।

किच्छं न (कृच्छ्रम्) दुःख, कष्ट, १-१२८।

किज्जइ क्रिया. (क्रियते) किया जाता है १-९७।

किडी पु (किरिः) सूकर-सूअर। १-२५१।

किणा सर्व. (केन) किस से ? किस के द्वारा, ३-६९।

किणो अ (प्रश्न-वाचक अर्थ में) क्या, क्यों; २ २१६

कित्ती स्त्री (कीर्ति.) यश-कीर्ति, २-३०।

किर अ (किल) सभावना, निश्चय, हेतु, संशय, पाद-पूर्ण आदि अर्थों में, १-८८, २-१८६।

किरायं न. पुं (किरातम्) अनार्य देश विशेष अथवा भील को, १-१८३।

किरिआ स्त्री (क्रिया) क्रिया, काम, व्यापार, चारित्र आदि, २-१०४।

किल अ (किल) सभावना, निश्चय, हेतु, सशय, पाद पूर्ण आदि अर्थों में २-१८६।

किलन्तं वि (क्लान्तम्) खिन्न, श्रान्त, २-१०६।

किलम्मइ अक (क्लाम्यति) वह क्लान्त होता है, वह खिन्न होता है, २-१०६।

कास सर्व (कस्य अथवा कस्मै) किसका अथवा किसके लियें, २-२०४।
कत्तो अ (कुत.) कहा से; किस तरफ से; २-१६०
कत्तो, कदो अ (,) ,, ,, ,, ,,
कोउहल्ल न. (कुतूहलम्) कौतुक, परिहास, १-११७, १७१; २-९९।
कोऊहल न (कुतूहलम) कौतुक, अपूर्व वस्तु देखनें की लालसा; १-११७।
कोच्छेअय न (कौक्षेयकम्) पेट पर बंधी हुई तलवार; १-१६१।
कोञ्चो पु० (क्रौञ्च·) पक्षि-विशेष, इस नाम का अनार्य देश, १-१५९।
कोट्टिम न (कुट्टिमम्) आंगण विशेष, झोपड़ा विशेष; रत्नो की खान, १-११६।
कोण्ड न (कुण्डम्) कूडा, जलाशय-विशेष; १-२०२
कोण्ढो वि. (कुण्ठ.) मद; मूर्ख, १-११६।
कोत्थुहो पु० (कौस्तुभ) मणि-विशेष, १-१५९।
कोन्तो पु. (कुन्त) भाला, हथियार-विशेष, १-११६
कोप्पर न पु. (कूर्परम्) कोहनी, नदी का किनारा, तट, १-१२४।
कोमुई स्त्री. (कौमुदी) शरद् ऋतु की पूर्णिमा, चादनी; १-१५९।
कोसम्बी स्त्री (कौशाम्बी) नगरी विशेष, १-१५९।
कोसिओ पु० (कौशिक) कौशिक नामक तापस, १-१५९
कोहण्डी स्त्री (कूष्माण्डी) कौहले का गाछ, १-१२४, २-७३।
कोहल न. (कुतूहलम्) कौतुक, परिहास, १-१७१।
कोहलिए स्त्री. (हे कुतूहलिके !) हे कौतुक करने वाली स्त्री, १-१७१।
कोहली स्त्री (कूष्माण्डी) कोहले का गाछ; १-१२४, २-७३।
कौरवा पु० कौरवा: कुरु देश के रहनें वाले, १-१।
क्खण्ड न. (खण्डं) खण्ड, टुकड़ा; २-९७।

(ख)

खइओ वि (खचित.) व्याप्त, जटित, मण्डित, विभूषित, १-१९३।
खइर वि. (खादिरम्) खेर के वृक्ष से सम्बधित, १-६७
खओ पुं. (क्षयः) क्षय, प्रलय, विनाश, २-३।
खग्ग न. (खड्ग.) तलवार, १-३४।
खग्गो पुं. (,,) ,, १-३४, २०२; २-७७।
खट्टा स्त्री. (खट्वा) खाट, पलग, चारपाई १-१९५।
खणो पुं (क्षण.) काल का भाग विशेष, बहुत थोड़ा समय २-२०।
खण्ड न. (खण्डम्) टुकड़ा, भाग; २-९७।
खण्डिओ वि. पु० (खण्डित·) टूटा हुआ, १-५३।
खण्णू पुं. (स्थाणु) ठूठ, शिवजी का नाम, २-९९।
खत्तिआण पुं (क्षत्रियाणाम्) क्षत्रियो का; २-१८५।
खन्दो पुं० (स्कन्दः) कार्तिकेय, षडानन; २-५।
खन्धावारो पुं० (स्कान्धावार·) छावनी; सेना का पड़ाव; शिविर, २-४।
खन्धो पुं. (स्कन्ध.) पिण्ड, पुद्गलो का समूह, कन्धा; पेड का धड; २-४।
खप्पर पु. न (कर्परम्) खोपड़ी, घट का टुकड़ा; भिक्षा-पात्र; १-१८१।
खमा स्त्री. (क्षमा) क्रोध का अभाव, क्षमा; २-
खम्भो पु. (स्तम्भ) खम्भा; थम्भा, १-१८७, २-८, ८९
खर वि. (खर) निष्ठुर; रुखा; कठोर; २-१८६।
खलिअ वि. (स्खलित) खिसका हुआ; २-७७।
खलिअं वि. (स्खलितम्) ,, ,, २-८९।
खल्लीडो पु वि (खल्लवाट) जिसके सिर पर बाल न हों; गञ्जा, चदला; १-७४।
खसिअं न. (कसितम्) रोग-विशेष, खासी, १-१८१।
खसिओ वि (खचित) व्याप्त, जटित; मण्डित, विभूषित, १-१९३।
खाओ वि (ख्यात·) प्रसिद्ध, (विख्यात्) २-९०।
खाइरं वि. (खादिरम्) खेर के वृक्ष से सम्बंधित १-६७
खाणू पु. (स्थाणु) ठूठ रुप वृक्ष, शिवजी का नाम; २-७, ९९।
खासिअ न (कासितम्) खांसी रोग विशेष, १-१८१।
खित्तं न. (क्षेत्रम्) खेत उपजाऊ जमीन, २-१२७।
खीणं वि. (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त, नष्ट, विच्छिन्न, दुर्बल कृश; २-३।
खीर न. (क्षीरम्) दूध, पानी; २-१७।
खीरोओ पु क्षीरोद समुद्र-विशेष क्षीर-सागर; २-१८२
खीलओ पु. (कीलक) खीला, खूंट, खूटी; १-१८१

गहिरं वि. (गभीरम्) गहरा, गम्भीर, १-१०१।
गहोरिअं न. (गाम्भीर्यम्) गहराई, गम्भीरपना; २ १०७
गाई स्त्री. (गौः) गाय, १-१५८।
गाओ पुं. स्त्री (गौः) गाय और बैल; १-१५८।
गामिल्लिआ वि. (ग्रामेयकाः) गाव के निवासी, २-१६३
गारवं (गौरवम्) अभिमान, गौरव, प्रभाव, १-१६३।
गावी, गावीओ स्त्री. (गाव.) गाय, २-१७४।
गिट्ठी स्त्री (गृष्टि) एक बार व्याई हुई गाय आदि १-२६।
गिण्ठी स्त्री (गृष्टि) एकबार व्याई हुई गाय आदि, १-२६; १२८।
गिद्धी स्त्री (गृद्धिः) आसक्ति, लम्पटता; १-१२८।
गिम्हो पु० (ग्रीष्म) गरमी का समय; ग्रीष्म-ऋतु, २-७४।
गिरा स्त्री (गी.) वाणी; १-१६।
गिलाइ अक. (ग्लायति) वह म्लान होता है; वह जम्हाई लेता है, २-१०६।
गिलाणं न वि (ग्लानम्) उदासीन बीमार, थका हुआ; २-१०६।
गुज्झ वि. (गुह्यम्) गोपनीय, छिपाने योग्य, २-२६; १२४।
गुच्छं न (गुच्छम्) गुच्छा; १-२६।
गुडो पु० (गुड) गुड, लाल शक्कर; १-२०२।
गुणा पु. न. (गुणा) गुण, पर्याय, स्वभाव, धर्म; १-११, ३४।
गुणाइ पु न (गुणा) गुण, पर्याय, स्वभाव, र्म; १-३४।
गुत्तो वि (गुप्तः) गुप्त, प्रच्छन्न, छिपा हुआ, २-७७
गुप् अक ,, ,, प्रकाशित होना चमकना।
गोवइ उभय (गोपयति) वह प्रकाशित होता है, वह चमकता है; १-२३१।
गुत्तो वि (गुप्त) गुप्त, प्रच्छन्न, छिपा हुआ, २-७७
जुगुच्छइ सक (जुगुप्सते) वह बचाता है, वह छिपाता है, वह निन्दा करता है, २-२१।
गुप्फ न (गुल्फम्) पैर की गांठ; फीली; २-९०।
गुभइ सक (गुफति) वह गूथता है, वह गांठता है, १-२३६।
गुम्फइ सक. (गुम्फति) वह गूथता है, वह गाठता है, १-२३६।
गुय्हं वि. (गुह्यम्) गोपनीय, छिपाने योग्य, २-१२४
गुरू पुं. (गुरु) गुरु; पूज्य, बडा; १-१०९।
गुरुल्लावा पु. (गुरूल्लापाः) गुरु को उक्तियां, १-८४।
गुलो पुं. (गुड़) गुड, लाल शक्कर, १-२०२।
गुहइ सक (गोहति) वह छिपाता है, वह ढाकता है; १-२३६।
गुहा स्त्री. (गुहा) गुफा, कन्दरा, १-४२।
गूढोअर न (गूढोदरम्) पेट के आन्तरिक भाग में रहा हुआ; १-६।
गेज्झ वि (ग्राह्यम्) ग्रहण करने के योग्य, १-७८।
गेण्हइ सक (ग्रहणाति) वह ग्रहण करता है; २-२१७
गेन्दुअ न (कन्दुकम्) गेंद, १-५७, १८२।
गोआवरी स्त्री (गोदावरी) एक नदी का नाम; २-१७४
गोट्ठी स्त्री. (गोष्ठीः) मण्डली, समान वय वालो की सभा, २-७७।
गोणो स्त्री. (गौः) गाय; २-१७४।
गोरिहरं, गोरीहर न. (गौरी-गृहम्) सुन्दर स्त्री का घर; पीअरं; १-४।
गोला स्त्री (गोदा) नाम विशेष, २-१९४।
गोले स्त्री (हे गोदे!) नाम विशेष; (देशज); २-१९४।
गामि वि. (गामी) जाने वाला, २-१५।
गेण्हइ सक (गृहणाति) वह ग्रहण करता है; २-२१७
गेण्ह सक (गृहाण) ग्रहण करो, लेओ, २-१९७।
घेत्तूण सम्ब कृद (गृहित्वा) ग्रहण करके; २-१४६।
गहिअ वि. भूत कृद. (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ; १-१०१।
गेज्झं वि. (ग्राह्यम्) ग्रहण करने के योग्य; १-७८
सगहिआ वि (सगृहीता.) संग्रह किये हुए; इकट्ठे किये हुए, २-१९८।

(घ)

घट्ठा वि (घृष्टाः) घिसे हुए; २-१७४।
घट्ठो वि. (घृष्ट) घिसा हुआ, १-१२६।
घडइ सक (घटति) वह करता है; वह बनाता है; १-१९५।

घडो पु (घट) घड़ा कुम्भ, कलश १ १९५ ।
घणो पु (घन) मेघ बादल १ १७१, १८७ ।
घण्टा स्त्री (घण्टा) घण्टा कांस्य-निर्मित वाद्य विशेष १ १९५ ।
घयं न (घृतम्) घी घृत १ १२६ ।
घरो पु (गृह) घर मकान २-१४४ ।
घर-सामी पु (गृह-स्वामी) घर का मालिक; २ १४४
घायणो पु दे (गायन) गायक गवैया २-१७४ ।
घिणा स्त्री (घृणा) घृणा, नफरत १ १२८ ।
घुसिणं न (घुसृणम्) कुङ्कुम केसर १ १२८ ।
घेत्तूणं घेत्तूण (गृहीत्वा) ग्रहण करके; २ १४६ ।
घोसइ सक (घोषयति) वह घोषणा करता है, वह बोलता है; १ २६० ।

(च)

च अ (च) और, १-२४ ।
चइत्तं न (चैत्यम्) चिता पर बना हुआ स्मारक १-१५१; २-११ ।
चइत्तो पु (चैत्र) चैत्र-मास; १ १५२ ।
चउ वि (चतुर्) चार संख्या-विशेष; १ १७१ ।
चउग्गुणो वि (चतुर्गुण) चार-गुणा १ १७१ ।
चउट्ठो वि (चतुर्थ) चौथा; २ ३३ ।
चउत्थो वि १ १७१ २ ३३ ।
चउत्थी वि (चतुर्थी) चौथी; १ १७१ ।
चउद्दसी वि (चतुर्दशी) चौदस तिथि; १ १७१ ।
चउद्दह वि (चतुर्दश) चौदह; १ १७१ २१९ ।
चउव्वारो वि (चतुर्वार) चार बार; १ १७१ ।
चक्कं न (चक्रम्) गाड़ी का पहिया २-७९ ।
चक्काओ पु (चक्रवाक) चकवा पक्षी विशेष; १-८ ।
चक्खू पु न (चक्षुः) आँख १ ३३ ।
चक्खूइं पु न (चक्षूंषि) आँखें; १ ३३ ।
चच्चरं न (चत्वरम्) चौड़ा, चौरास्ता चौक; १ १२
चच्चिक्कं देशज वि मंडित; १-७४ ।
चडू पुं (चटु) खुशामद, प्रिय वचन; १ ६७ ।
चन्दमो पु (चन्द्र) चन्द्रमा; १ १६४ ।
चन्दणं न. (चन्दनम्) चन्दन का पेड़ चन्दन की लकड़ी २ १८२ ।
चन्दिमा स्त्री (चन्द्रिका) चन्द्र की प्रभा; ज्योत्स्ना; १ १८५ ।
चन्दो, चंदो पु (चन्द्र) चन्द्रमा; चांद १ १ ७-८ १६४ ।
चन्द्रो पु (चन्द्र) चन्द्रमा चांद २-८ ।
चमरो पु (चामर) चँवर १ ६७ ।
चम्मं न (चर्म) चमड़ा; १ ३२ ।
चरणं न (चरणं) संयम चारित्र, व्रत-नियम; १ २५४
चलणो पु (चरण) पांव पैर; १-२५४ ।
चलणे पु (चरणे) पैर में २ १८ ।
चविडा स्त्री (चपेटा) तमाचा थप्पड़, १ १४६; १९८
चविला , " " १ १९८
चवेडा " " १ १४६ ।
चाउँण्डा स्त्री (चामुण्डा) चामुण्डा देवी; १ १७८ ।
चाउरन्तं वि न (चतुरन्तम्) चार सीमाओं वाला; १ ४४
चाडू पु न (चाटु) खुशामद; प्रिय वाक्य १ ६७
चामरो पु (चामर) चँवर; १ ६७ ।
चिअ अ (एव) ही निश्चय वाचक अव्यय; २-९९; १८४ १८७ ।
चिइच्छइ सक (चिकित्सति) वह दवा करता है २-२१
चिञ्चइ सक (मण्डयति) विभूषित करना; अलंकृत करना; २ १९१ ।
चिण्हं न (चिह्नम्) निशानी; लाञ्छन; चिह्न २-५० ।
चिन्तिअं वि (चिन्तितम्) जिसकी चिन्ता की गई हो वह २ १९० ।
चिन्ता स्त्री (चिन्ता) विचार, शोक; १-८५ ।
चिन्धं न. (चिह्नम्) निशानी लाञ्छन चिह्न; २-५
चिलाओ पु (किरात) भील एक जंगली जाति १ १८३ २५४ ।
चिहुरो पु (चिकुर) केश बाल १ १८६ ।
चीइ-वन्दणं न (चैत्य-वन्दनम्) स्मारक विशेष की वन्दना; १-१५१ ।
चुअइ अक. (श्च्योतते) वह झरता है वह टपकता है २-७७ ।
चुच्छं वि. (तुच्छम्) अल्प थोड़ा हल्का हीन नगण्य १-२०४ ।
चुण्णं न (चूर्णम्) पीसा हुआ बारीक पदार्थ चूर्ण; १-८४ ।
चुण्णो पु न (चूर्ण) पीसा हुआ बारीक पदार्थ; चूर्ण; १-८४ ।

चेइअं न. (चैत्यम) चिता पर बनाया हुआ स्मारक विशेष, १-१५१, २-१०७।
चेत्तो पुं० (चैत्रः) चैत्र-मास, १-१५२।
चोग्गुणो वि. (चतुर्गुण) चार-गुणा वाला; १-१७१।
चोत्थो वि (चतुर्थ) चौथा, १-१७१।
चोत्थी वि० स्त्री० (चतुर्थी) चौथी; तिथि-विशेष; १-१७१।
चोद्दसी स्त्री. (चतुर्दशी) चौदहवी, तिथि-विशेष; १-१७१।
चोद्दह वि (चतुर्दश) चौदह, सख्या-विशेष, १-१७१
चोरिअं न. (चौर्यम्) चोर-कर्म; अपहरण; १-३५; २-१०७।
चोरिआ स्त्री. (चौरिका) चोरी, अपहरण, १-३५।
चोरो पु० (चोरः) तस्कर; दूसरे का धन आदि चुराने वाला चोर; १-१७७।
चोव्वारो पु० वि० (चतुर्द्वार) चार दरवाजा वाला, १-१७१।
च्च अ० (एव) ही; २-८४।
च्चिअ अ (एव) ही; १-८, २-६६, १८४, १९५ १९७।
च्चेअ अ (एव) ही निश्चय वाचक अव्यय, २-९९ १८४।

(छ)

छइअ वि० (स्थगितम्) आवृत, आच्छादित, तिरोहित, २-१७।
छउम न. (छद्मम्) छल, बहाना, कपट शठता, माया, २-११२।
छट्ठी स्त्री (षष्ठी) छट्ठी, सबंध-सूचक विभक्ति, १-२६५।
छट्ठो पुं० वि (षष्ठः) छट्ठा; १-२६५, २-७७।
छड्डइ सक. (मुञ्चति) वह छोडता है; वह वमन करता है, २-३६
छणो पु० (क्षण) उत्सव; २-२०।
छत्तवण्णो पु (सप्तपर्ण) वृक्ष विशेप, १-४९।
छत्तिवण्णो पु ,, ,, ,, १-४९; २६५।
छद्दी दे स्त्री (छर्दि) शय्या, बिछौना, २-३६।
छन्द न (छन्दस्) कविता; पद्य, १-३३।
छन्दो पु, ,, ,, ,, ,,

छप्पओ पुं (षट्पदः) भ्रमर भंवरा; १-२६५; २-७७
छमा स्त्री (क्षमा) क्षमा; पृथिवी, २-१८, १०१।
छमी स्त्री. (शमी) वृक्ष-विशेष; ऐसा वृक्ष जिसके आन्तरिक भाग में आग हो; १-२६५।
छम्मं न (छद्मम्) छल, बहाना, कपट, २-११२।
छमुहो पु० (षण्मुख) स्कन्द, कार्तिकेय; १-२५।
छम्मुहो ,, ,, ,, ,, १-२६५।
छय न (क्षतम्) व्रण, घाव, (वि०) पीड़ित, व्रणित; २-१७।
छाइल्लो वि० (छायावान्) छाया वाला, कान्ति-युक्त; २-१५९।
छायो स्त्री (छाया) छाया, कान्ति, प्रतिबिम्ब, परछाई, १-२४९, २-२०३।
छारो पु (क्षार) खारा, सज्जीखार, गुड; भस्म, मात्सर्य, २-१७।
छाली स्त्री (छागी) बकरी, १-१९१।
छालो पुं० (छाग.) बकरा, १-१९१।
छावो पुं. (शाव) बालक, शिशु' १-२६५।
छाही स्त्री (छाया) कान्ति, प्रतिबिम्ब, परछाई; १-२४९।
छिक्को दे (छुप्त) स्पृष्ट; छूआ हुआ; २-१३८।
छिछि दे अ (धिक्-धिक्) छीछी; धिक्-धिक्; धिक्कार; २-१७४।
छिञ्छई दे स्त्री. (पुंश्चली) असती स्त्री कुलटा, छिनाल, २-१७४।
छित्तं वि० (क्षिप्तम्) फेंका हुआ, २-२०४।
अच्छिन्न वि (अच्छिन्न) नहीं कटा हुआ; २-१९८।
छिरा स्त्री. (शिरा) नस, नाड़ी, रग, १-२६६।
छिहा स्त्री. (स्पृहा) स्पृहा, अभिलाषा; १-१२८; २-२३।
छीअं न. स्त्री (क्षुतम्) छींक, १-११२, २-१७।
छीण वि. (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त, कृश, दुर्बल, २-३
छीरं न० (क्षीरम्) दूध, जल, २-१७।
छुच्छं वि (तुच्छम्) अल्प, थोड़ा, हीन, जघन्य, नगण्य, १-२०४।
छुण्णो वि (क्षुण्ण) चूर चूर किया हुआ; विनाशित; अभ्यस्त, २-१७।

जारो पु० (जार व्यभिचारी; उपपति, १-१७७
जाला अ (यदा) जिस समय में, १-२६९।
जाव अ. (यावत) जब तक, १-११, २७१।
निज्जअ वि (निर्जित) जीत लिया है, २-१६४
जिअइ जिअउ क्रिया (जीवति) वह जीवित होता है, (जीवतु) वह जीवित रहे, १-१०१।
जिअन्तस्स वि (जीवन्तस्य) जोवित होते हुए का ३-१८०
जिण-धम्मो पु० (जिन-धर्म) तीर्थंकर द्वारा प्ररूपित धर्म, १-१८७।
जिण्णो वि (जीर्णे) पचा हुआ होने पर, पुराना होने पर, १-१०२।
जिण्हू पु० (जिष्णु.) जीतने वाला, विजयी; विष्णु, सूर्य, इन्द्र, २-७५।
जित्तिअ वि (यावत्) जितना, २-१५६।
जिब्भा स्त्री (जिह्वा) जीभ रसना, २-५७।
जीअ न (जीवितम्) जिन्दगी, जीवन, १-२७१; २-२०४।
जीआ स्त्री (ज्या) धनुष की डोर, पृथिवी, माता, २-११५।
जीव्-जिअइ अक (जीवति) वह जीता है, १-१०१
जिअइ-जिअउ अक. (जीवति), (जीवतु) वह जीता है, वह जीता रहे, १-१०१।
जीविअं न. (जीवितम्) जिन्दगी, जीवन, १-२७१।
जीहा स्त्री (जिह्वा) जीभ, रसना, १-९२, २-५७।
जुई स्त्री. (द्युति) कान्ति, तेज, प्रकाश, चमक, २-२४
जुगुच्छइ सक (जुगुप्सति) वह घृणा करता है, वह निन्दा करता है, २-२१।
जुग्ग न (युग्मम्) युगल, द्वन्द्व, उभय, २-६२, ७८।
जुण्ण वि (जीर्ण) जूना, पुराना, १-१०२
जुम्म न. (युग्मम्) युगल, दोनो, उभय, २-६२।
जुम्ह सर्वं (युष्मद्) तू अथवा तुम वाचक सर्व नाम, १-२४६।
जुवइ-अणो पु० (युवति-जन) जवान स्त्री-पुरुष, १-४
जूरिहिइ अक. (खेत्स्यति) वह खेद करेगी, ५-२०४
जूरन्तीए कृद (खेदन्त्या) खेद करती हुई का, २-१९३।
जूरणे न (जूरणे-खेदे) झूरना करने पर; खेद प्रकट करने पर, २-१९३।

जे अ (पाद-पूरणार्थम्) छंद की पूर्ति अर्थ में प्रयोग किया जाने वाला अव्यय; २-२१७।
जेट्ठयरो वि (ज्येष्ठतर,) अपेक्षाकृत अधिक बड़ा; २-१७२।
जेण सर्व पुं० (येन) जिससे, जिसके द्वारा; १-३६, २-१८३।
जेत्तिअ, जेत्तिल, जेद्दहं वि. (यावत्) जितना; २-१५७
जा सर्व स्त्री (या) जो (स्त्री), १-२७१।
जं सर्व न (यत्) जो; १-२४, ४२, २-१८४, २०६।
ज सर्व पु० (यम्) जिस को, ३-३३।
ज अ (यत्) क्योंकि कारण कि, सम्बध-सूचक अव्यय, १-२४।
जोओ पु० (द्योत.) प्रकाश-शील, २-२४।
जोण्हा स्त्री (ज्योत्स्नावान्) चन्द्र प्रकाश; २-७५।
जोण्हालो वि. (ज्योत्स्नावान्) चादनी के प्रकाश सहित, २-१५९।
जोव्वण न. (यौवनम्) जवानी, तारुण्य; १-१५९; २-९८
णच्चा कृद (ज्ञात्वा) जान करके; २-१५।
विण्णाय वि (विज्ञात) भली प्रकार से जाना हुआ, २-१९९।

(झ)

झओ पुं० (ध्वज) ध्वजा, पताका २-२७।
झडिलो वि. (जटिल) जटा वाला, तापस; १-१९४
झत्ति अ (झटिति) झट से ऐसा, १-४२।
झसुर दे न (ताम्बूलम्) पान; २-१७४।
झाण न पु० (ध्यानम्) ध्यान, चिन्ता, विचार, उत्कण्ठा-पूर्वक स्मरण, २-२६।
झिज्जइ क्रिया (क्षीयते) वह क्षीण होता है, वह कृश होता है, २-३।
झीण वि (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त, विनष्ट, विच्छिन्न, कृश, २-३।
झुणी स्त्री. (ध्वनि) ध्वनि, आवाज, १-५२।

(ट)

टक्को पु० (टक्क.) देश-विशेष, १-१९५।
टगरो पुं. (तगर) वृक्ष-विशेष; तगर का वृक्ष, १-२०५।

ण्हाविओ पु (नापित) नाई, हजाम; १-२३० ।

(त)

तं अ. (तत्) वाक्य-आरभक अव्यय विशेष; १-२४, ४१, २-९९, १७६, १८४ १९८ ।
तं पु सर्व. (तम्) उसको, १-७ ।
तं न. सर्व. (तत्) वह, उसको, १-२४, ४१, २-९९, १७६, १८४, १९८ ।
त स्त्री सर्वं (ताम्) उसको, २-१९८ ।
तेण सर्वं (तेन) उससे १-३३, २-१८३, १८६, २०४
तीए सर्व स्त्री (तस्यै) उसके लिये, २-१९३ ।
ते सर्व. (ते) वे, १-२६९; २-१८४ ।
तइअ वि. (तृतीयम्) तीसरा, १-१०१ ।
तओ अ (तत) अ, इसके बाद; १-२०६ ।
तसं वि. न (त्र्यस्रम्) त्रिकोण, तीन कोना वाला; १-२६, २-९२ ।
तक्करो पु० (तस्कर) चोर, २-४ ।
तग्गुणा पु० (तद्गुणा) वे गुण, १-११ ।
तच्च न (तथ्यम्) सत्य, सच्चाई, २-२१ ।
तट्ठ वि (त्रस्तम्) डरा हुआ, २-१३६ ।
तडी स्त्री (तटी) किनारा, १-२०२ ।
तण न (तृणम्) तिनका, घास, १-१२६ ।
तणुवी स्त्री (तन्वी) ईषत् प्राग्-भारा नामक पृथ्वी; २-११३ ।
तत्तिल्ले दे. वि (तत्परे) तत्पर; २-२०३ ।
तत्तो अ (तत) उससे, उस कारण से बाद में, २-१६० ।
तत्तो वि. (तप्त) गरम किया हुआ २-१०५ ।
तत्थ अ (तत्र) वहा, उसमें; २-१६१ ।
तत्थ वि (त्रस्तम्) डरा हुआ; २-१३६ ।
तदो अ (तत) उससे, उस कारण से, बाद में, २-१६० ।
तद्दिअस दे न (तद्दिवस) प्रतिदिन, हर रोज, २-१७४
तन्तु पु० (तन्तु) सूत, धागा; १-२३८ ।
तप्-तव् अक (तप्) गरम होना,
तवइ अक (तपति) वह गरम होता है, १-२३१ ।
तविओ वि (तप्त) तपा हुआ; २-१०५ ।
तत्तो वि. (तप्त) तपा हुआ; गरम हुआ; २-१०५ ।
तं अ. (तद्) वाक्य के प्रारभक अर्थ में प्रयोग किया जाने वाला अव्यय; २-१७६ ।
तमो पु० (तमः) अन्धकार, १-११, ३२ ।
तम्ब न (ताम्रम्) तांबा, धातु-विशेष; १-८४, २-५६ ।
तम्बिर दे वि (ताम्र) ताम्र-वर्ण वाला, २-५६ ।
तम्बा पु० (ताम्र) वर्ण-विशेष; २-४५ । स्तम्ब;
तम्बोल न (ताम्बूलम्) पान, १-१२४ ।
तयाणिं अ (तदानीम्) उस समय में, १-१०१ ।
तर् अक (शक्) समर्थ होना । सक (तर्) तैरना
तरिउ हे कृ. (तरितुम्) तैरने के लिये; २-१९८ ।
अवयरइ सक (अवतरति) नीचे उतरता है; १-१७२ ।
तरणी पु० (तरणि) सूर्य, १-३१
तरल वि (तरल) चञ्चल, १-७
तरु पु० (तरु) वृक्ष, १-१७७
तरू पुं (तरु) वृक्ष, १-१७७ ।
तलवेण्ट-तलवोण्ट न (ताल वृन्तम्) ताड का पखा, १-६७
तलाय न (तडागम्) तालाब, सरोवर, १-२०३ ।
तविओ वि. (तप्तः) गरम किया हुआ, २-१०५ ।
तवो पु० (स्तव) स्तुति, स्तवन, गुण-कीर्तन, २-४६
तह अ (तथा) वैसे, उसी प्रकार से, १-६७, १७१
तहा अ ,, ,, ,, १-१६७ ।
तहिं अ (तत्र) वहां, उसमें, २-१६१ ।
ता अ (तदा) तब तक, १-२७१ ।
ताओ पु० (तात) पिता तात, १-२०९ ।
तामरस पुं० (नाम रस) कमल, पद्म, ताम्र, स्वर्ण, धतूर के पौधा, १-६ ।
तारिसो वि (तादृश.) वैसा उस तरह का, १-१४२
तालवेण्ट न (ताल वृन्तम्) ताड का पखा, १-६७, २-३१
तालवोण्ट न ,, ,, ,, १-६७, ।
ताव अ (तावत्) तब तक, १-११, २७१, २-१९६
ति अ. (इति) इस प्रकार; १-४२ ।
तिअस पु० (त्रिदश) देवता; २-१७६ ।
तिअसीसो पु० (त्रिदशेश) देवेन्द्र; १-१० ।
तिक्ख न वि. (तीक्ष्णम्) तेज तीखा, धारदार, २-८२

थू अ (कुत्सायां निपातः) घृणा योग्य अथवा निंदा-योग्य के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय, २-२०० ।
थूणो पु (स्तेन) चोर, तस्कर, १-१४७ ।
थूणा स्त्री (स्थूणा) खम्भा, खूंटी, १-१२५ ।
थूलभद्दो पु (स्थूल भद्र) स्थूल भद्र नामक जैन महा अणगार, १-२५५ ।
थेणो पु (स्तेन) चोर, तस्कर; १-१४७ ।
थेरिअं न (स्थैर्यम्) स्थिरता, २-१०७ ।
थेरो वि (स्थविर) वृद्ध स्थविर, १-१६६, २-८९
थेव वि (स्तोकम्) अल्प, थोडा, २-१२५ ।
थोअ वि " " " २-४५, १२५ ।
थोक्क वि. " " " २-१२५ ।
थोणा स्त्री. (स्थूणा) खम्भा, खूंटी, १-१२५ ।
थोत्तं न (स्तोत्रम्) स्तुति, स्तवन, २-४५ ।
थोरो वि (स्थूलः) मोटा, २-९९
थोरं वि (स्थूलम्) मोटा; १-१२४, २१५ ।
थोवं वि (स्तोकम्) अल्प, थोडा, २-१२५ ।

(द)

दइच्चो पु (दैत्य) दानव, असुर; १-१५१ ।
दइन्नं न (दैन्यम्) दीनता, गरीबपन, १-१५१ ।
दइवअं न (दैवतम्) देवतापन, १-१५१ ।
दइवज्जो पु (दैवज्ञ) ज्योतिषी, ज्योतिष् शास्त्र का विद्वान्, २-८३ ।
दइवण्णू पु (दैवज्ञ) ज्योतिषी, २-८३ ।
दइवं न (दैवम्) दैव, भाग्य, १-१५३, २-९९
दइवयं न (दैवतम्) देवतापन, १-१५१ ।
दइव्वं न (दैवम्) दैव, भाग्य, १-१५३, २-९९
दंसणं न (दर्शनम) सम्यक्त्व दर्शन, श्रद्धा, १-२६, २-१०५ ।
दक्खिणो वि पुं (दक्षिण) चतुर अथवा दाहिना, दक्षिण दिशा में रहा हुआ, १-४५, २-७२ ।
दच्छो वि (दक्ष) निपुण, चतुर, २-१७ ।
दट्ठुं हे.कृ (दृष्टुम्) देखने के लिये, २ १४६ ।
दट्ठो वि. (दष्ट) जिसको दांत से काटा गया हो वह, १-२१७ ।
दड्ढो वि (दग्ध) जला हुआ, १-२१७, २-४० ।
दणुअवहो पुं (दनुज वध) दैत्य-घात, दानव हत्या, १-२६७ ।
दणुइन्दो पु (दनुजेन्द्र) राक्षसों का राजा; १-६ ।
दणुवहो पु (दनुज वध) दैत्य-घात, दानव-हत्या १-२६७
दण्ड, दण्डो पु. (दण्ड.) दाडी, लकड़ी, १-७ ।
दप्पुल्लो पु वि (दर्पवान्) घमडी, अहकारी, २-१५९ ।
दब्भो पु. (दर्भः) तृण-विशेष, डाभ, कुश, १-२१७ ।
दम्भो पु. (दम्भ) माया, कपट, १-२१७ ।
दयालु पु (दयालु) दया वाला, करुण, दयालु, १-१७७ १८०, २-१५९ ।
दर अ (ईषदर्थे च) ईषत्, थोडा, अल्प, १-२१७, २-२१५ ।
दरो पु (दर) भय डर, १-२१७ ।
दरिअ वि (दृप्त) गर्विष्ठ, अभिमानी, १-१४४, २-९६
दरिओ वि (दृप्तः) अभिमानी, अहकारी, १-१४४ ।
दरिसणं न (दर्शनम्) अवलोकन, श्रद्धा, २-१०५ ।
दलन्ति सक (दलयन्ति) वे टुकडे करते हैं, २-२०४ ।
दलिओ वि. (दलितः) विकसित; १-२१७ ।
दलिद्दाइ अक (दरिद्राति) दरिद्र होता है, १-२५४ ।
दलिद्दो वि. (दरिद्र) निर्धन, दीन, १-२५४ ।
दवग्गी पुं० (दवाग्नि) जगल की अग्नि, १-६७ ।
दवो पु० (दव) जगल की अग्नि, वन की अग्नि, १-१७७ ।
दस वि (दश) दश, १-२१९, २६०, २६२ ।
दसणो पु० (दशन) दांत, १-१४६ ।
दसणं न० (दशन) दांत से काटना; १-२१७ ।
दसबलो पु० (दशबल) भगवान बुद्ध, १-२६२ ।
दसमुहो पु० (दशमुख) रावण, १-२६२ ।
दसरहो पु० (दशरथ) एक राजा, १-२६२ ।
दसारो पु० (दशार्ह) समुद्र विजय आदि दश यादव, २-८५ ।
दड्ढो वि (दग्ध) जला हुआ, २-४० ।
विअड्ढो वि. (विदग्ध) चतुर, २-४० ।
दह वि (दश) दश, १-२६२ ।
दहबलो पु० (दश बलः) भगवान् बुद्ध; १-२६२ ।
दहमुहो पु० (दश मुख) रावण, १-२६२ ।
दहरहो पु० (दशरथ) एक राजा; १-२६२ ।
दहि न. (दधि) दही;

दुक्खाइ न (दुःखानि) अनेक प्रकार के सकट; १-३३ ।
दुक्खिओ वि. (दुःखितः) पीडित, दुःखित, १-१३ ।
दुक्खिआ वि (दुखिता) दुखयुक्त; २-७२ ।
दुगुल्लं आर्ष; (दुकूलम्) वस्त्र, महित कपडा; १-११९
दुग्गाएवी स्त्री. (दुर्गा देवी) पार्वती, देवी विशेष; १-२७०
दुग्गावी स्त्री. (दुर्गा देवी) गौरी, पार्वती; देवी विशेष; १-२७० ।
दुद्धं न. (दुग्धम्) दूध, खीर; २ ७७, ८९ ।
दुमत्तो वि (द्विमात्र) दो मात्रा वाला स्वर-वर्ण; १ ९४
दुरवगाहं न (दुरवगाहम्) स्नान करने में कठिनाई वाला स्थान, १-१४ ।
दुरुत्तरं न (दुरुत्तरम्) अनिष्ट उत्तर, उतरने में अशक्य, १-१४ ।
दुरेहो पुं (द्विरेफ.) भ्रमर, भँवरा, १-९४ ।
दुवयण न (द्विवचनम्) दो का वोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्यय, १-९४ ।
दुवारं न. (द्वारम्) दरवाजा; २-११२ ।
दुवारिओ पु (दौवारिका) द्वारपाल, १-१६० ।
दुवालसंगे (आर्ष न.) (द्वादशांगे) बारह जैन आगम ग्रन्थो में, १-२५४ ।
दुविहो वि (द्विविध) दो प्रकार का, १-९४ ।
दुसहो वि (दुस्सह) जो कठिनाई से सहन किया जा सके १-११५ ।
दुस्सहो वि (दुस्सह) जो दुःख पूर्वक सहन किया जा सके, १-१३, ११५ ।
दुहवो दुहओ वि (दुर्भग) खोटे भाग्य वाला, अभागा, अप्रिय, अनिष्ट, १ ११५, १९२ ।
दुहं न (दुःखम्) दुःख, कष्ट, पीड़ा, २ ७२ ।
दुहा अ (द्विधा) दो प्रकार का, १-९७ ।
दुहाइअं वि (द्विधाकृतम्) दो प्रकार से किया हुआ; १ ९७, १२६ ।
दुहिअए वि (दुःखितके) पीडित में, दुःखयुक्त में, २-१६४ ।
दुहिआ स्त्री (दुहिता) लड़की की पुत्री, २-१२६ ।
दुहिओ वि (दुःखित) पीडित, दुखी, १-१३ ।
दूसहो पु वि (दुस्सह) जो दुःख से सहन किया जाय, १-१३, ११५ ।
दूसासणो पुं. (दुश्शासनः) कौरवों का भाई; १-४३ ।
दूहवो वि. (दुर्भगः) अभागा; अप्रिय, अनिष्ट; १ ११५, १९२ ।
दूहिओ वि. (दुःखित) दुःखयुक्त; १-१३ ।
दे अ (संमुखी करणे निपात.) सम्मुख करने के अर्थ में अथवा सखी के आमन्त्रण अर्थ में प्रयोक्तव्य अव्यय; २-१९६ ।
देअरो पु. (देवरः) देवर, पति का छोटा भाई, १-१८०
देउलं न. (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१ ।
देन्ति सक. (ददन्ते) वे देते हैं; २-२०४ ।
देरं न. (द्वारम्) दरवाजा, १-७९; २-११२
देव पु० (देव) देव, परमेश्वर, देवाधिदेव; १-७४
देवउलं न (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१ ।
देवत्थुई, देवथुई स्त्री. (देव-स्तुतिः) देवका गुणानुवाद, २-९७ ।
देवदत्तो पु० (देवदत्त) देवदत्त; १-४६
देवं पु० (देव) देव; १-२६ ।
देवाइं न. (देवाः) देव-वर्ग; १-३४ ।
देवा पु० " " "
देवाणि न. " " "
देवंनाग-सुवण्ण न (देव-नाग सुवर्ण) वस्तु-विशेष का नाम, १-२६ ।
देवरो पु० (देवरः) पति का छोटा भाई, १-१४६ ।
देवासुरी वि (देवासुरी) देवता और राक्षस सम्बधी; १-७९ ।
देवो पु० (देव-) देवता, १-१७७ ।
देव्वं न. (दैवम्) भाग्य, प्रारब्ध, दैव, पूर्व कृत कर्म; १-१५३ ।
देसित्ता स क (देशयित्वा) कह करके, उपदेश देकर; १-८८ ।
दोला स्त्री (दोला) झूला, हिंडोला; १-२१७ ।
दोवयण न (द्विवचनम्) दो का बोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्यय, १-९४ ।
दोहलो पु० (दोहद) गर्भिणी स्त्री का मनोरथ, १-२१७, २२१ ।
दोहा अ (द्विधा) दो प्रकार (वाला) १-९७ ।
दोहाइअं वि (द्विधा कृत) जिसका दो खण्ड किया गया हो वह, १-९७ ।

दुक्खाइं-न (दुःखानि) अनेक प्रकार के संकट; १-३३।
दुक्खिओ वि. (दुःखितः) पीडित, दुःखित, १-१३।
दुक्खिआ वि (दुखिता) दुखयुक्त; २-७२।
दुगुल्लं आर्ष; (दुकूलम्) वस्त्र, महिन कपड़ा; १-११९
दुग्गाएवी स्त्री. (दुर्गा देवी) पार्वती, देवी विशेष; १-२७०
दुग्गावी स्त्री. (दुर्गा देवी) गोरी, पार्वती, देवी विशेष; १-२७०।
दुद्धं न. (दुग्धम्) दूध, खीर; २ ७७, ८९।
दुमत्तो वि (द्विमात्र.) दो मात्रा वाला स्वर-वर्ण; १ ९४
दुरवगाह न (दुरवगाहम्) स्नान करने में कठिनाई वाला स्थान, १-१४।
दुरुत्तरं न (दुरुत्तरम्) अनिष्ट उत्तर, उतरने में अशक्य, १-१४।
दुरेहो पु (द्विरेफः) भ्रमर, भँवरा, १-९४।
दुवयण न (द्विवचनम्) दो का बोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्यय, १-९४।
दुवार न. (द्वारम्) दरवाजा; २-११२।
दुवारिओ पु (दौवारिका) द्वारपाल; १-१६०।
दुवालसंगे (आर्ष न.) (द्वादशांगे) बारह जैन आगम ग्रन्थों में, १-२५४।
दुविहो वि (द्विविध) दो प्रकार का; १-९४।
दुसहो वि (दुस्सह) जो कठिनाई से सहन किया जा सके १-११५।
दुस्सहो वि (दुस्सह) जो दुःख पूर्वक सहन किया जा सके, १ १३, ११५।
दुहवो दुहओ वि (दुर्भग) खोटे भाग्य वाला, अभागा, अप्रिय, अनिष्ट, १ ११५, १९२।
दुहं न (दुःखम्) दुःख, कष्ट, पीड़ा, २ ७२।
दुहा अ (द्विधा) दो प्रकार का, १-९७।
दुहाइअं वि (द्विधाकृतम्) दो प्रकार से किया हुआ; १ ९७, १२६।
दुहिअए वि (दुःखितके) पीड़ित में, दुःखयुक्त में, २-१६४।
दुहिआ स्त्री (दुहिता) लड़की की पुत्री, २-१२६।
दुहिओ वि (दुःखित) पीड़ित, दुखी, १-१३।
दूसहो पु वि (दुस्सह) जो दुःख से सहन किया जाय, १-१३, ११५।
दूसासणो पुं. (दुश्शासनः) कौरवों का भाई; १-४३।
दूहवो वि. (दुर्भग.) अभागा; अप्रिय, अनिष्ट, १-११५, १९२।
दूहिओ वि. (दुःखित) दुःखयुक्त; १-१३।
दे अ. (संमुखी करणे निपात) सम्मुख करने के अर्थ में अथवा सखी के आमन्त्रण अर्थ में प्रयोक्तव्य अव्यय, २-१९६।
देअरो पु. (देवरः) देवर, पति का छोटा भाई, १-१८०
देउलं न. (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१।
देन्ति सक. (ददन्ते) वे देते हैं; २-२०४।
देरं न. (द्वारम्) दरवाजा; १-७९; २-११२
देव पु० (देव) देव, परमेश्वर, देवाधिदेव; १-७९
देवउलं न (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१।
देवत्थुई, देवथुई स्त्री (देव-स्तुति) देवका गुणानुवाद; २-९७।
देवदत्तो पु० (देवदत्त) देवदत्त; १-४६
देवं पु० (देव) देव; १-२६।
देवाइं न. (देवाः) देव-वर्ग; १-३४।
देवा पुं० " " "
देवाणि न. " " "
देवंनाग-सुवण्ण न (देव-नाग सुवर्ण) वस्तु-विशेष का नाम; १-२६।
देवरो पु० (देवरः) पति का छोटा भाई; १-१४६।
देवासुरी वि. (देवासुरी) देवता और राक्षस सम्बंधी; १-७९।
देवो पु० (देव-) देवता, १-१७७।
देव्वं न. (दैवम्) भाग्य, प्रारब्ध, दैव, पूर्व कृत कर्म; १-१५३।
देसित्ता स क (देशयित्वा) कह करके, उपदेश देकर, १-८८।
दोला स्त्री (दोला) झूला, हिंडोला; १-२१७।
दोवयण न (द्विवचनम्) दो का बोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्यय, १-९४।
दोहलो पु० (दोहद) गर्भिणी स्त्री का मनोरथ, १-२१७, २२१।
दोहा अ (द्विधा) दो प्रकार (वाला) १-९७।
दोहाइअं वि (द्विधा कृत) जिसका दो खण्ड किया गया हो वह, १-९७।

नत्तिओ पुं० (नप्तृकः) पौत्र; पुत्र का अथवा पुत्री का पुत्र, १-१३७।

नत्तुओ पु० (नप्तृक) पौत्र; पुत्र का अथवा पुत्री का पुत्र, १-१३७।

नभ न. (नभस्) आकाश गगन; १-१८७।

नम् अक (नम्) भार के कारण से झुकना; सक. (नम्) नमस्कार करना,

नमिमो सक (नमाम) हम नमस्कार करते है १-१८३।

नओ वि (नतः) नमा हुआ, झुका हुआ, २-१८०।

"उद्" के साथ में–

उन्नयं वि (उन्नत) उन्नत, ऊंचा, १-१२।

"प्र" के साथ में–

पणवह सक (प्रनमथ) तुम नमस्कार करते हो, २-१९५।

नमिर वि. (नमन शील) नमने के स्वभाव वाला, २-१४५।

नमोक्कारो पु. (नमस्कारः) नमस्कार; १-६२, २-४।

नम्मो पु (नर्म) हसी, मजाक, १-३२।

नयण पु न. (नयनं) आंख, नेत्र; १-१७७, १८०, २२८।

नयणा पुं. न (नयनानि) आंखें; १-३३।

नयणाइं न " " "

नयर न (नगर) नगर, शहर, पुर, १-१७७, १८०

नरो पुं. न (नर) मनुष्य, पुरुष; १-२२९।

नराओ पु (नाराच) शरीर की रचना का एक प्रकार, १-६७।

नरिन्दो पु नरेन्द्र ,राजा, १-८४।

नवर अ. (केवलम्) केवल, विशेष, सिर्फ, २ २०४

नवल्लो वि (नव) नया, नूतन, नवीन, २-१६५।

नवो वि. " " " " "

नश्–

"प्र" उपसर्ग के साथ में–

पणट्ठ वि (प्रनष्ट) विशेष रूप से नष्ट हुआ, १-१८७।

नह न. (नख) नख, नाखून; १-६, ७।

नहा न (नखानि) नख, नाखून; २ ९०, ९९।

नह न (नभः) आकाश; १-३२, १८७।

नहयले न (नभस्तले) आकाश तल में; २ २०३।

नाओ पु (न्याय.) न्याय नीति, १ २२९।

नाग पु. (नाग) सर्प, सांप, १-२६।

नाण न (ज्ञानम्) ज्ञान, बोध, चैतन्य, बुद्धि, २-१०४

नाम अ (नाम) सभावना-आमन्त्रण सबोधन-स्याति वाक्यालकार-पाद-पूर्ति अर्थ में, प्रयोक्तव्य अव्यय; २-२१७।

नारइओ वि (नारकिकः) नरक का जीव; १-७९।

नाराओ पु (नाराच) शरीर की रचना का एक प्रकार, १-६७।

नावा स्त्री (नौ) नौका, जहाज, १-१६४।

नाविओ पु (नापित) नाई हज्जाम; १-२३०।

नाहो पु (नाथः) स्वामी, मालिक; १-१८७, २-७८

निअत्तसु अक (निवृत्त) पीछे हट जा, रुक जा, २-१९६

निअत्त वि (निवृत्तम्) निवृत्त, प्रवृत्त विमुख हटा हुआ, १-१३२।

निअम्ब न (नितम्ब) कमर के नीचे का भाग–पुट्ठे १-४।

निउअ वि (निवृतम्) परिवेष्टित-घेराया हुआ, १-१३१

निउर न (नूपुरम्) स्त्री के पांव का एक आभूषण; १-१२३।

निक्कओ पु० (निष्क्रय) वेतन, मजदूरी, २-४।

निक्कम्प न (निष्कम्पम्) कम्पन-रहित, स्थिर २-४

निक्ख पु न. (निष्कम्) सोना-मोहर, मुद्रा, रुपया, २ ४

निच्चलो वि (निश्चल) स्थिर, दृढ़, अचल, २-२११

निच्चल वि (निश्चलः) स्थिर, दृढ़, अचल, २-२१।

निज्झरा पुं (निर्झर) झरना, पहाड से गिरते हुए पानी का प्रवाह, १-९८, २-९०।

निठ्ठुरो वि (निष्ठुर.) निष्ठुर पुरुष, कठोर आदमी; १-२५४; २-७७।

निठ्ठुलो वि (निष्ठुर) निष्ठुर पुरुष, कठोर आदमी, १-२५४।

निण्णओ पु. (निर्णय) निश्चय, अवधारण, फैसला, १-९३

निण्ण वि (निम्नम्) नीचे, अधस्; २-४२।

निद्धणो वि (निर्धन.) धन रहित, अकिंचन, २-९०।

निद्धं न. (स्निग्धम्) स्नेह, रस-विशेष, स्नेह युक्त, चिकना, २-१०९।

नीवी स्त्री. (नीवी) मूल-धन, पूंजी, नाडा, इजार बन्द; १-२५९ ।

नीवो पु० (नीप) कदम्ब का पेड़; १-२३४ ।

नीसरइ अक (निसंरति) निकलता है; १-९३ ।

नीसहो वि पु० (निस्सह.) अशक्त, १-४३ ।

नीसह न. (निर्-सहम्) असहनीय, १-१३ ।

नीसामन्नेहिं वि. (निस्सामान्यैः) असाधारणों से, २-२१२ ।

नीसासूसासा पुं (निश्वासोच्छ्वासो) श्वासोश्वास; १-१०

नीसासो वि. (निश्वास) निश्वास लेने वाला, १-९३, २-९२ ।

नीसित्तो वि (निष्षिक्त) अत्यन्त सिक्त, गीला, १-४३

नीसो पु (निःस्व) १-४३ ।

नु अ. (नु) निश्चय अर्थक अव्यय; २-२०४ ।

नूउर न. (नूपुरम्) स्त्री के पांव का आभूषण; १-१२३

नूणं नूण अ (नूनम्) निश्चय अर्थक, हेतु अर्थक अव्यय, १ २९ ।

नेउर न (नूपुरम) स्त्री के पांव का आभूषण, १-१२३

नेड्डं-नेडं न (नीडम्) घोसला, २ ९९ ।

नेत्ता पु न (नेत्राणि) आंखें १-३३ ।

नेत्ताइ न (नेत्राणि) आंखें, १-३३ ।

नेरइओ वि. (नैरयिक) नरक में उत्पन्न हुआ जीव, १-७९

नेहालू वि (स्नेहालु) प्रेम करने वाला, २-१५९ ।

नेहो पुं. (स्नेह) तैल आदि चिकना रस, प्रेम, २ ७७ १०२ ।

नोमालिआ स्त्री (नवमालिका) सुगन्धित फूल वाला वृक्ष विशेष, १-१७० ।

नोहलिया स्त्री (नव फलिका) ताजी फली, नवोत्पन्न फली, नूतन फल वाली, १-१७० ।

(प)

पइट्ठा स्त्री. (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा, इज्जत, सम्मान, १-३८, २०६ ।

पइट्ठाण न. (प्रतिष्ठानम्) स्थिति, अवस्थान, आधार, आश्रय, १-२०६ ।

पइट्ठिअ वि. (प्रतिष्ठितम्) रहा हुआ, १-३८ ।

पइण्णा स्त्री. (प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा, प्रण, शपथ, १-२०६ ।

पइसमय न. (प्रतिसमयम्) प्रतिक्षण, हर समय, १-२०६

पइहर न (पतिगृहम्) पति का घर, १-४ ।

पई पुं. (पतिः) स्वामी, १-५ ।

पईव वि. (प्रतीपम्) प्रतिकूल; १-२०६ ।

पईवो पु (प्रदीपः) दीपक, दिया; १-२३१ ।

पईहर न (पतिगृहम्) पति का घर, १-४ ।

पउट्ठो पु. वि. (प्रवृष्ट.) बरसा हुआ, १-१३१ ।

पउट्ठो पुं (प्रकोष्ठः) कोहनी के नीचे के भाग का नाम; १-१५६ ।

पउणो वि. (प्रगुण) पटु, निर्दोष, तैयार, १-१८० ।

पउत्ती स्त्री. (पवृत्ति) प्रवर्तन, समाचार, कार्य; १-१३१

पउम न. (पद्मम्) कमल; १-६१, २-११२ ।

पउरजण पु (पौर-जन) नगर-निवासी, नागरिक, १-१६२

पउर वि (प्रचुरम्) प्रभूत, बहुत, १-१८० ।

पउरिस न (पौरुषम्) पुरुषत्व, पुरुषार्थ; १-१११, १६२

पउरो पुं० (पौर) नगर में रहने वाला, १-१६२ ।

पओ पु० (पयः) दूध और जल; १-३२ ।

पओओ पुं० (प्रयोग.) काम में लाना, शब्द योजना; १-२४५ ।

पको पु० (पक) कीचड़, १-३० ।

पसणो वि (पासन) कलंकित करने वाला, दूषण लगाने वाला, १-७० ।

पसुलि स्त्री. (पासुली) कुल्टा, व्यभिचारिणी स्त्री; २-१७९ ।

पसू पु० (पासु) (पांशु) धूली, रज, रेणु, १-२९, ७० ।

पसू पु० (पशुं) कुठार, कुल्हाड़ा, १-२६ ।

पक्क वि (पक्वम्) पका हुआ, १-४७, २-७९ ।

पक्का वि. (पक्वा) पकी हुई, २-१२९ ।

पक्कलो देशज वि (समर्थ) समर्थ, शक्त, २-१७४ ।

पक्ख पु० (पक्ष) तरफ और २-१६४ ।

पक्खे पु० (पक्ष) पक्ष में, तरफदार में, अवस्था में, २-१४७ ।

पक्खो पुं० (पक्षः) आधा महीना; २-१०६ ।

पङ्को--पंको पु. (पङ्क) कीचड़; १-३० ।

पगुरण न (प्रावरणम्) वस्त्र, कपड़ा, १-१७५ ।

पच्चओ पु. (प्रत्यय) व्याकरण में शब्द के साथ जुड़ने वाला शब्द विशेष, २-१३ ।

पच्चडिअ देशज वि (?) (क्षरित) झरा हुआ, टपका हुआ, २-१७४ ।

पच्चूसो पच्चूहो पु (प्रत्यूष) प्रातःकाल; २ १४।
पच्छं वि (पथ्यम्) हितकारी, २ २१।
पच्छा वि (पथ्या) हितकारिणी, २ २१।
पच्छा अ (पश्चात्) पीछे २-२१।
पच्छिमं वि न (पश्चिमम्) पश्चिम दिशा का, पाश्चात्य; पश्चिम दिशा २ २१।
पच्छे कम्मं न (पश्चात्-कर्म) पीछे किया जाने वाला कार्य; १-७९।
पज्जत्तं वि (पर्याप्तम्) पर्याप्त काफी; २ २४।
पज्जन्तो पु (पर्यन्त) अन्त सीमा तक प्रान्त भाग १ ५८ २ ६५।
पज्जा स्त्री (प्रज्ञा) बुद्धि मति, २-८३।
पज्जाओ पु (पर्याय) समान अर्थ का वाचक शब्द उत्पन्न होने वाली नतन अवस्था २-२४।
पज्जुण्णो पु (प्रद्युम्न.) श्री कृष्ण का पुत्र विशेष २ ४२
पञ्चावण्णा स्त्री न देशज (पञ्च पञ्चाशत्) पचपन; संख्या विशेष २ १७४।
पट्टणं न (पत्तनम्) नगर शहर; २ २१।
पट्ठी वि (पृष्ठी) पीछे वाली १ १२९, २ ९ ।
पढ् सक (पठ्) पढ़ना
पढइ सक (पठति) वह पढ़ता है; १ १९९ २११
पडंसुआ स्त्री (प्रतिश्रुत्) प्रतिध्वनि प्रतिज्ञा १-२६ ८८ २०६।
पडाया स्त्री (पताका) ध्वजा १ २ ६।
पडायाणं न (पर्याणम्) घोड़े आदि का साज सामान; १ २५२।
पडिकरइ सक (प्रति करोति) वह प्रतिकार करता है; १ २ ६।
पडिकूलं वि (प्रतिकूलम्) विपरीत अनिष्ट; २ ९७।
पडिक्कूलं वि " "
पडिनिअत्तं वि (प्रति निवृत्तम) पीछे लौटा हुआ, १ २ ६
पडिप्फद्धी पु वि (प्रतिस्पर्धी) प्रति स्पर्धा करने वाला; १-४४।
पडिबिम्बं वि (प्रतिबिम्ब) उस जैसा १ ६।
पडिमा स्त्री (प्रतिमा) प्रतिमा जैन-शास्त्रोक्त नियम विशेष; १ २ ६।
पडिवआ स्त्री (प्रतिपद्) पक्ष की प्रथम तिथि; १ ४४
पडिवण्णं वि (प्रतिपन्नम्) प्राप्त स्वीकृत आश्रित; १-२ ६।

पडिवया स्त्री (प्रतिपद्) पक्ष की प्रथम तिथि १-२ ६
पडिसारो पु (प्रतिसारः) सजावट, अपसरण, विनाश; १ २०६।
पडिसिद्धी स्त्री (प्रतिसिद्धिः) अनुरूप सिद्धि-अथवा प्रतिकूल सिद्धि १ ४४ २ १७४।
पडिसोओ धातं पु (प्रतिस्रोतः) प्रतिकूल प्रवाह उल्टा प्रवाह; २ ९८।
पडिहारो पु० (प्रतिहारः) द्वारपाल १ २ ६।
पडिहासो पुं (प्रतिभास) प्रतिभास आभास -मालूम होना १ २ ६।
पडुच्छिर देशज वि (?) सदृश समान; २ १७४।
पढइ सक. (पठति) वह पढ़ता है १ १९९, २११।
पढमो वि (प्रथम) पहला आद्य, १ २१५।
पढमं वि न (प्रथमम्) पहला; १-५५।
पढुमं वि न (प्रथमम्) पहला १ ५५।
पणट्ठ वि (प्रनष्ट) अधिक मात्रा में नाश प्राप्त १-१८७।
पणपण्णा देशज स्त्री न (पञ्च पञ्चाशत्) पचपन; संख्या विशेष २ १७४।
पणवह सक (प्रणमत) नमस्कार करें; २ १९५।
पण्डवो पु. (पाण्डव) राजा पाण्डु का पुत्र; १-७०
पण्णरह वि (पञ्चदश) पन्द्रह १-४३।
पण्णा स्त्री (प्रज्ञा) बुद्धि मति; २ ४२, ८३।
पण्णासा देशज स्त्री (पञ्चाशत्) पचास; २ ४३।
पण्हो पु (प्राज्ञ) बुद्धिमान् १-५६।
पण्हा स्त्री (प्रश्न) प्रश्न; १ ३५।
पत्थुआ वि (प्रस्तुत) स्तुत हुआ; जिसने कार्य को आरम्भ किया हो २-७५।
पण्हो पु (प्रश्नः) प्रश्न १ ३५ -७५।
पत्
पडिया वि (पतिता) गिरी हुई गिरे हुए; १-८ ।
नि' उपसर्ग के साथ में-
निवडइ अक (निपतति) वह नीचे गिरता है, १ ९४।
पत्तं पत्तलं न (पत्रम्) जिस पर लिखा जाता है वह कागज पत्ता ४ १७३।
पत्तेअं वि न (प्रत्येकम्) हर एक २ ११ ।
पत्तो वि (प्राप्त) मिला हुआ; पाया हुआ; २-१५।

पत्थरो पु० (प्रस्तर.) पत्थर, २-४५।
पत्थवो, पत्थावो पु० (प्रस्तावः) अवसर, प्रसंग, प्रकरण; १-६८।
पन्ति स्त्री. (पंक्ति) कतार, श्रेणी, १-६।
पन्ती स्त्री. (पंक्ति.) कतार श्रेणी; १-२५।
पन्थो पु० (पान्थः) पथिक, मुसाफिर; १-३०।
पन्थ पु० (पन्थ) मार्ग को, १-८८।
पमुक्कं वि (प्रमुक्तम) परित्यक्त; २-९७।
पम्मुक्क वि " " "
पम्हल वि. (पक्ष्मल) सुन्दर केश और सुन्दर आंखो वाला, २-७४।
पम्हाइ पु० न (पक्ष्माणि) आखो के वाल, भौंह, २-७४
पयट्टइ अक (प्रवर्तते) वह प्रवृत्ति करता है, २-३०।
पयट्टो वि (प्रवृत्त) जिसने प्रवृत्ति की हो वह, २-२९
पयड वि (प्रकटम्) प्रकट, व्यक्त, खुला, १-४४।
पययं वि (प्राकृतम्) स्वाभाविक, १-६७।
पयरण न (प्रकरणम्) प्रस्ताव, प्रसग, एकार्थ प्रतिपादक ग्रन्थ, १-२४६।
पयरो पुं (प्रकार) भेद, किस्म, ढग, रीति, तरह, १-६८।
पयरो पु०(प्रचारः) प्रचार, फैलाव, १-६८।
पयाई पु० (पदातिः) पैदल सैनिक, २-१३८।
पयागजल न. (प्रयाग-जलम्) गगा और यमुना के जल का सगम, १ १७७।
पयारो पु० (प्रकार अथवा प्रचार) भेद, ढग अथवा प्रचार, १-६८।
पयावई पुं (प्रजापति) ब्रह्मा अथवा कुम्भकार, १ १७७ १८०।
पर —
पारिज्जइ २-२०८।
पर वि (पर) अन्य, तत्पर, श्रेष्ठ, प्रकर्षं, दूरवर्ती, अनात्मीय, २-७२, ८७।
परउट्ठो पु (परपुष्ट) अन्य से पालित, कोयल पक्षी; १-१७९।
परक्कं वि (परकीयम्) दूसरे का, दूसरे से सबंधित; २-१४८।
परम वि (परम) श्रेष्ठ, २-१५।
परम्मुहो पु वि (पराङमुख) विमुख, फिरा हुआ, १-२५।
परहुओ पुं. (परभृतः) कोयल; १-१३१।
परामरिसो पुं. (परामर्श) विचार, युक्ति; स्पर्श, न्यायशास्त्रोक्त व्याप्ति; २-१०५।
परामुट्ठो वि. (परामृष्टः) विचारित, स्पष्ट किया हुआ; १-१३१।
परिघट्टं वि. (परिघृष्टम्) जिसका घर्षण किया गया हो वह, २-१७४।
परिट्ठविओ वि. (प्रतिस्थापित.) विरोधी-रूप से स्थापित, १-६७।
परिट्ठा स्त्री. (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा; १-३८।
परिट्ठाविओ वि. (प्रतिस्थापितः) विरोधी रुप से स्थापित, १-६७।
परिट्ठिअं वि. (प्रतिष्ठितम्) रहा हुआ; १-३८।
परिणामो पु० (परिणाम) फल; २-२०६।
परोप्पर वि. (परस्परम्) आपस में; १-६२, २-५३।
परोप्पर वि (परस्पर) आपस में, १-८।
परोहो पुं० (प्ररोह.) उत्पत्ति, अकुर; १-४४।
पलक्खो पु० (प्लक्ष) बड का पेड, २-१०३।
पलय पु० (प्रलय) युगान्त, विनाश; १-१८७।
पलही देशज पु० (कर्पास) कपास, २-१७४।
पलिअङ्को पुं० (पर्यङ्क.) पलग, खाट, २-६८।
पलिअ न (पलितम) वृद्ध अवस्था के कारण बालों का पकना, बदन की झूरिया, १-२१२।
पलित्त वि (प्रदीप्तम्) ज्वलित, १-२२१।
पलिल न (पलितम्) वृद्ध अवस्था के कारण से बालों का श्वेत हो जाना, १-२१२।
पलिविअ वि (प्रदीपितम्) जलाया हुआ, १-१०१।
पलीवइ, पलीवेइ सक (प्रदीपयति) वह जलाता है, सुलगाता है, १-२२१।
पलोएसु सक (प्रलोकय) देखो, २-१८१।
पल्लङ्को पु. (पर्यङ्को) पलग, खाट, २-६८।
पल्लट्टो वि (पर्यस्त.) क्षिप्त, विक्षिप्त, हत, पतित, २-४७।
पल्लट्ट वि (पर्यस्तम्) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित, २-६८।
पल्लत्थो वि (पर्यस्त) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित; २-४७।
पल्लत्थ वि (पर्यस्तम्) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित, २-६८।

पावारओ वि (प्रावारक) आच्छादक, ढाँकने वाला, १-२७१।
पावासुओ वि. पु (प्रवासिन्) प्रवास करने वाला, १-९५
पावासू वि पु (प्रवासिन्) प्रवास करने वाला, १ ४४
पावीढ न (पाद-पीठम्) पैर रखने का आसन; १-२७०
पासइ सक (पश्यति) वह देखता है, १-४३।
पासं न (पार्श्वम्) कन्धे के नीचे का भाग, पाजर २-९२।
पासाणो पु (पाषाण) पत्थर; १-२६२।
पासाया पु. (प्रासादा) महल; २ १५०।
पासिद्धि स्त्री (प्रसिद्धि.) प्रसिद्धि; १-४४।
पासुत्तो वि. (प्रसुप्त) सोया हुआ; १-४४।
पासू पु (पांसु.) धूलि, रज, रेणु; १ २९, ७०।
पाहाणो पुं (पाषाण) पत्थर, १-२६२।
पाहुड न (प्राभृतम्) उपहार, भेंट; १-१३१, २०६
पि अ (अपि) भी, १-४१, २-१९८, २०४, २१८।
पिअ वि (प्रिय) प्यारा; २ १५८।
पिओ वि (प्रिय) प्यारा; १ ४२, ९१।
पिआइ वि (प्रियाणि) प्रिय; २-१८७।
पिअ वयसो पु (प्रिय वयस्य) प्यारा मित्र, प्रिय सखा, २-१८६।
पिउओ पु (पितृक·) पिता से सम्बन्धित, १-१३१
पिउच्छा स्त्री (पितृष्वसा) पिता की बहन, २-१४२।
पिउल्लओ पु (पितृक) पिता से सम्बन्धित; २-१६४
पिउवई पु (पितृ पति) यम, यमराज, १-१३४।
पिउवण न (पितृ वनम्) पिता का वन, १-१३४।
पिउसिआ स्त्री. (पितृष्वसा) पिता की बहन, १-१३४, २-१४२।
पिउहर न (पितृ गृहम्) पिता का घर, १ १३४।
पिक्क वि न (पक्वम्) पक्का हुआ, १-४७, २-७९
पिच्छि स्त्री (पृथ्वीम्) पृथ्वी को, २-१५।
पिच्छी स्त्री. (पृथ्वी) पृथ्वी, १-१२८, २-१५।
पिञ्जरय वि (पिञ्जरकम्) पीले रग वाला, २-१६४।
पिट्ठ न (पृष्ठम्) पीठ, १-३५; वि न (पिष्ट) पीसा हुआ, १-८५।
पिट्ठि स्त्री. (पृष्ठम) पीठ, १-१२९।
पिट्ठी स्त्री (पृष्ठम्) पीठ, शरीर के पीछे का भाग, १-३५, १२९।

पिढरो पुं (पिठर·) मन्थान-दण्ड, मथनिया, १-२०१।
पिण्ड न (पिण्डम्) समूह, सघात; १-८५।
पिध अ (पृथक्) अलग, १-१८८।
पियइ सक (पिबति) वह पीता है, १-१८०।
पिलुट्ठ वि (प्लुष्टम्) दग्ध, जला हुआ, २-१०६।
पिलोसो पुं (प्लोष) दाह, जलन, २-१०६।
पिव अ. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा, २ १८२।
पिसल्लो पु. (पिशाच) पिशाच, व्यन्तर देवो की एक जाति, १-१९३।
पिसाओ पु. (पिशाच) पिशाच व्यन्तर देवो की एक जाति, १-१९३।
पिसाजी वि (पिशाची) भूताविष्ट, भूत आदि से घिराय हुआ, १-१७७।
पिहडो पु (पिठर) मन्थान-दड, मथनिया, १-२०१।
पिह अ (पृथक्) अलग, जुदा, १-२४, १३७, १८८
पीअ पीअल वि (पीतम्) पीत वर्ण वाला, पीला, १ २१३ २ १७३।
पीडिअ वि (पीडितम्) पीडा से अभिभूत, दुखित, दबाया हुआ, १-२०३।
पीढ न (पीठम्) आसन, पीढा, १-१०६।
पीणत्त, पीणत्तं वि. (पीनत्वम्) मोटापन, मोटाई, २-१५४
पीणदा पीणया वि दे (पीनता) ,, ,, ,,
पीणिमा वि (पीनत्वम्) ,, ,, ,,
पीवल वि (पीतम्) पीत वर्ण वाला, पीला, १-२१३, २-१७३।
पुञ्छ न (पुच्छम्) पूछ, १-२६।
पुञ्जा पु (पुञ्जाः) ढग, राशि, ढेर, १ १६६।
पुट्ठो वि (पृष्ट पूछा हुआ, २ ३४।
पुट्ठो वि (स्पृष्ट) छुआ हुआ, १-१३१।
पुढम वि (प्रथमम्) पहला; १-५५।
पुढवी स्त्री. (पृथिवी) पृथ्वी, धरती, भूमि, १-८८, २१६।
पुढुम वि (प्रथमम्) पहला, १-५५।
पुणरुत्त वि (पुनरुक्तम्) फिर से कहा हुआ, २-१७९
पुणाइ अ (पुन) फिर से, १-६५।
पुण्णमन्तो वि (पुण्यवान्) पुण्यवाला, भाग्यवाला, २-१५९
पुणो अ (पुन) फिर से, २-१७४।

पुश न (पृथक्) अलग जुदा १ १८८।
पुन्नामाइं न (पुन्नामानि) पुन्नाग के पुष्प-(फूलों को); १ १९ ।
पुप्फत्तणं न (पुष्पत्वम्) पुष्पपना; फूल पना; २-१५४
पुप्फत्तणं पुप्फत्तं न (पुष्पत्वम्) पुष्पपना फूल पना २-१५४।
पुप्फं न (पुष्पम्) फूल; कुसुम १-२३६ २-५३ ९ ।
पुप्फिमा स्त्री (पुष्पत्वम्) पुष्पपना फूलपना २ १५४
पुरओ अ (पुरतः) आगे से पहले से १ ३७।
पुरंदरो पुं (पुरन्दर) इन्द्र देवराज नाम ग्रन्थ विशेष १ १७७।
पुरा स्त्री (पुर्) नगरी शहर; १ १६।
पुरिमं न (पूर्वम्) पहिले काल-भाग विशेष; २ १३५
पुरिल्लं वि (पूर्वभव) पहिले होने वाला पूर्ववर्ती; २ १६३।
पुरिल्लो वि. (पुरो) पहिले २ १६४।
पुरिसो पु (पुरुष) पुरुष व्यक्ति १ ४२ ९१ १११ २ १८५।
पुरिसा पु (पुरुषा) पुरुष, व्यक्ति २ २०२।
पुरेकम्मं न (पुराकर्म) पहिले के कर्म १-५७।
पुलअ सक (पश्य) देखो १ २११।
पुलयं पु (पुलकं) रोमाञ्च को; २-२ ४।
पुलोमी स्त्री (पौलोमी) इन्द्राणी १ १६ ।
पुव्वण्हो पु (पूर्वाह्न) दिन का पूर्व भाग; १ ६७; २-७५।
पुव्वं न (पूर्वम्) पहिले काल भाग-विशेष, २ १३५
पुव्वावण्हो पु (पूर्वाह्न) दिन का पूर्व भाग १ ६७।
पुहइ स्त्री (पृथिवी) पृथ्वी धरती भूमि; १-८८, १३१।
पुहं अ (पृथक्) अलग जुदा; १ १३७ १८८।
पुहवी स्त्री (पृथिवी) पृथ्वी धरती भूमि; १ १३१।
पुहवीसो पु (पृथ्वीश) राजा पृथ्वी पति; १ ६।
पुहुवी स्त्री (पृथिवी) पृथ्वी धरती १ १३१ २ ११३
पूसो पु (पुष्य) पुष्य-नक्षत्र; १ ४३।
पज्जा स्त्री (पेया) पीने योग्य वस्तु-विशेष; यवागू; १-२ ८।
पऊसं न (पीयूष) अमृत सुधा; १ १ ५।

पेच्छ—
पेच्छसि सक (प्रेक्षसे) तू देखता है; २ १०५
पेच्छ सक (प्रेक्षस्व) देख; देखो १-२३
पेच्छइ सक (प्रेक्षते) वह देखता है, २ १४३
पेज्जा स्त्री (पेया) पीने योग्य वस्तु विशेष; यवागू; १ २४८।
पेट्ठं न (पेष्टम्) पीसा हुआ आटा चूर्ण आदि १-८५
पेढं न (पीठम्) आसन पीढा; १ १ ६।
पेण्डं न (पिण्डम) पिण्ड समूह संघात १-८५।
पेम्मं न (प्रेम) प्रेम स्नेह; २ ९८।
पेरन्तो पुं० (पर्यन्त) अन्त सीमा प्रान्त भाग; १-५८ २ ६५।
पेरन्तं न (पर्यन्तम्) अन्त सीमा प्रान्त-भाग २ ६५
पलवाणं वि (पेलवानाम्) कोमल का मृदु का १ २३८
पेसो वि (प्रेष्यः) भेजने योग्य; २ ९२।
पोक्खरं न (पुष्करम्) पद्म कमल; १ ११६ २ ४।
पोक्खरिणी स्त्री (पुष्करिणी) जलाशय विशेष चौकोर बावड़ी कमलिनी २ ४।
पोग्गलं न (पुद्गलम्) रूप आदि युक्त मूर्त-द्रव्य विशेष; १ ११६।
पोत्थओ पु. (पुस्तक) कोपर्ने पोतने का काम करने वाला १ ११६।
पोप्फलं न (पूगफलम्) सुपारी १ १७० ।
पोप्फली स्त्री (पूगफली) सुपारी का पेड़; १ १७०।
पोम्मं न (पद्मम्) कमल १ ६१, २ ११२।
पोरा पुं (पूतर) जल में होने वाला क्षुद्र जन्तु; १ १७० ।

(फ)

फडालो वि (फटावान्) फन वाला साँप; २ १५९।
फणसो पु (पनस) कटहर का पेड़; १-२३२।
फणी पुं (फणी) साँप फन वाला; १ २३६।
फन्दणं न (स्पन्दनम्) थोड़ा हिलना फिरना २-५३।
फरुसं वि (परुष) कर्कश कठिन १-२३२।
फलं न (फलम्) फल; १ २३।
फलिहा स्त्री (परिखा) खाई; किले या नगर के चारों ओर की नहर १ २३२ २५४।
फलिहो पुं० (स्फटिकः) स्फटिक मणि १ १८६ १९७

फलिहो पुं. (परिघ) अर्गला, आगल; ज्योतिष्-शास्त्र प्रसिद्ध एक योग; १-२३२, २५४।

फाडेइ सक. (पाटयति) वह फाडता है, १-१९८, २३२

फालिहद्दो पु (पारिभद्रः) फरहद का पेड- देवदारु अथवा निम्ब का पेड, १-२३२, २५४।

फालेइ सक (पाटयति) वह फाडता है, १-१९८, २३२

फासो वि (स्पर्श) स्पर्श, छूना, २-९२।

फुम्फुल्लइ (देशज) सक (?) २-१७४।

(ब)

बइल्लो (देशज) पु (बलीवर्द) बैल, वृषभ, २-१७४।

बढरो, बढलो वि पु. (बठर) मूर्ख छात्र, १-२५४।

बद्धफलो प. (बद्धफल) करञ्ज का पेड, २-९७।

बन्दि स्त्री. (बन्दि) हठ-हृत-स्त्री, बादी; २-१७६।

बन्दीण स्त्री (बन्दिनाम्) बांदी दासियों का, १ १४२।

बन्ध

बन्धइ सक (बध्नाति) वह बाधता है, १-१८७

बन्धेउ हे कृ (बन्धितुम्) बाधने के लिये, १-१८१।

अणुवद्ध वि (अनुबद्धम्) अनुकूल रूप से बधा हुआ, २-१८४।

आबन्धतीए वकृ (आबध्नत्या) बाधती हुई के, १-७।

बन्धो पु. (बन्ध) बधन, जीव कर्म-सयोग, १-१८७।

बन्धवो, बधवो (बान्धव) कुटुम्ब सबधित पुरुष, १ ३०

बप्फो पु (बाष्प) भाप, उष्मा; २-७०।

बम्भचेर न (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत, शील व्रत, २ ७४

बम्भणो पु (ब्राह्मण) ब्राह्मण, २-७४।

बम्हचरिअ न (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत शील व्रत, २-६३ १०७।

बम्हचेर न (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत, १-५९, २ ६३, ७४, ९३।

बम्हणो पु. (ब्राह्मण) ब्राह्मण, १ ६७, २-७४।

बम्हा पु (ब्रह्मा) ब्रह्मा, विधाता, २-७४।

बरिहो पु (बर्ह)-मयूर, मोर, २-१०४।

बलया, बलाया स्त्री (बलाका) बगुले की एक जाति, १-६७।

बली पु. स्त्री (बलि) बल वाली अथवा बल वाला, १-३५।

बले अ (निर्धारणे निश्चये च निपात) निश्चय निर्णय-अर्थक अव्यय, २-१८५।

बहप्पई पु (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष, देव गुरु, २-१३७।

बहप्फई पुं (बृहस्पति.) ज्योतिष्क देव-विशेष, देव-गुरु, १-१३८, २-६९, १३७।

बहला वि. (बहला) निबिड, निरतर, गाढ, २-१७७

बहस्सई पु (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष, देव-गुरु, २-६९, १३७।

बहिद्धा (देशज) अ (?) बाहर अथवा मैथुन, स्त्री-सभोग; २-१७४।

बहिणी स्त्री (भगिनी) बहिन; २-१२६।

बहिरो वि (बधिर) बहरा, जो सुन नही सकता हो वह, १-१८७।

बहु वि (बहु) बहुत, प्रचुर, प्रभूत; २-१६४।

बहुअ वि (बहुक) प्रचुर, प्रभूत, बहुत, २-१६४।

बहुअय वि " " " " "

बहुहरो वि (बहुतर) बहुत में से बहुत, १-१७७।

बहु वल्लह वि (बहुवल्लभ) प्रभूत वल्लभ, २-२०२।

बहुप्पई बहुप्फई पु. बृहस्पति देवताओ का गुरु, २-५३।

बहुव्वी क्रि वि (बह्वी) अत्यन्त, अतिशय, २-११३

बहेडओ पुं (बिभीतक) बहेड़ा, फल विशेष, १-८८, १०५, २०६।

बाम्हणो पु (ब्राह्मण) ब्राह्मण, १-६७।

बार न (द्वारम्) दरवाजा, १ ७९, २-७९, ११२

बारह सख्या वि. (द्वादश) बारह, १ २१९, २६२।

बाह पुं (बाष्प) अश्रु, आंसु, १-८२।

बाहो पुं " " " २ ७०।

बाहइ सक (बाधते) विरोध करता है, पीडा पहुचाता है, १ १८७।

बाहाए स्त्री. (बाहुना) भुजा से, १ ३६।

बाहिं बाहिर अ (बहि) बाहर, २-१४०।

बाहू पु (बाहु) भुजा, १ ३६।

बिइओ वि (द्वितीय) दूसरा, १-५, ९४।

बिइज्जा- वि " " १ २४८।

बिउणो वि (द्विगुण) दो गुणा, दूना, १-९४, २ ७९

बिंहओ वि (बृंहित) पुष्ट, उपचित, १-१२८।

भिङ्गो पु (भृङ्ग) स्वर्ण मय जल-पात्र; १-१२८।
भिण्डिवालो पु (भिन्दिपाल) शस्त्र-विशेष; २-३८, ८९
भिप्फो वि (भीष्मः) भय जनक, भयकर; २-५४।
भिब्भलो वि (विह्वल॰) व्याकुल, घबडाया हुआ, २-५८, ९०।
भिमोरो (देशज) पु. (हिमोरः) हिम का मध्य भाग (?), २-१७४।
भिसओ पुं (भिषक्) वैद्य, चिकित्सक, १-८।
भिसिणी स्त्री. (बिसिनी) कमलिनी, पद्मिनी; १-२३८ २-२११।
भीआए स्त्री (भीतया) डरी हुई से, २-१९३।
भुअयन्त भुआयन्त न. (भुज-यन्त्रम्) बाहु-यन्त्र, भुजा-यन्त्र, १-४।
भुई स्त्री. (भृति.) भरण, पोषण, वेतन, मूल्य, १-१३१।
भुज् सक खाना, भक्षण करना, भोगना।
भोच्चा सक सव कृ. (भुक्त्वा) भोग करके; २-१५।
भुत्त वि (भुक्तम्) भोगा हुआ, २-७७, ८९।
भुमया स्त्री. (भ्रूमया) भौंह वाली, आंख के ऊपर की रोम-राजि वाली, १-१२१, २-१६७।
भू अक होना।
होइ अक (भवति) वह होता है, १-९, २-२०६।
हुज्ज विधि (भव, भवतात्) तू हो, २-१८०।
होही भूतकाल (अभवत्) वह हुआ; "
बहुत्त वि (प्रभूतम्) बहुत, १-२३३, २९८।
भेडो वि (देशज) (भेर) भीरु कातर, डरपोक, १-२५१।
भेत्तूआण सवध कृ (भित्वा) भेदन करके, २-१४६।
भोअण-मत्ते न (भोजन-मात्र) भोजन-मात्र में, १-१०२
भोअण-मेत्त न (भोजन-मात्र) भोजन-मात्र, १-८१।
भोच्चा सवध कृ (भुक्त्वा) खा करके, पालन करके, भोग करके, अनुभव करके, २-१५।
भ्रम् अक घूमना, भ्रमण करना, चक्कर खाना,
भमिअ सवध कृ (भ्रमित्वा) घूम करके,

(म)

मए सर्व. (मया) मुझ से, २-१९९, २०१, २०३
मअङ्को पु. (मृगाङ्कः) चन्द्रमा; १-१३०।
मइल वि. (मलिनम्) मैला, मल-युक्त, अस्वच्छ; २-१३८।
मईअ वि (मदीय) मेरा, अपना, २-१४७।
मउअत्तयाइ वि. (मृदुकत्वेन) कोमलपने से, सुकुमारतासे; २-१७२।
मउअं न. (मृदुकम्) कोमलता; १-१२७।
मउड न. (मुकुटम्) मुकुट, सिरपेंच, १-१०७।
मउणं न. (मौनम्) मौन; १-१६२।
मउत्तण न. (मृदुत्वम्) कोमलता, १-१२७।
मउरं न. (मुकुरम्) मौर (आम मञ्जरी), वकुल का पेड, शीशा, १-१०७।
मउलण न (मुकुलनम्) थोडी विकसित कली, २-१८४
मउल न. (मुकुलम्) " " " १-१०७
मउली स्त्री॰ पुं. मौलिः मुकुट, बाँधे हुए बाल, १-१६२
मउलो स्त्री. पु (मुकुलम्) थोड़ी विकसित कली, १-१०७।
मउवी वि (मृद्वी) कोमलता वाली, २-११३।
मऊरो पु (मयूर) पक्षि-विशेष, मोर; १-१७१।
मऊहो पुं. (मयूख.) किरण, रश्मि, कान्ति तेज, १-१७१
मओ पु. (मृग.) हरिण, १-१२६।
मजारो पु (मार्जार) बिलाव, बिल्ला, १-२६
मसं न. (मासम्) मास, गोश्त, १-२९, ७०।
मसल वि (मासलम्) पुष्ट, पीन उपचित, १-२९
मसुल्लो वि (श्मश्रुमान) दाढ़ी-मूंछ वाला, २-१५९।
मसू पु न (श्मश्रु) दाढ़ी मूंछ १-२६, २-८६।
मग्गओ अ (मार्गत.) मार्ग से, १-३७।
मग्गन्ति क्रिया. (मृग्यन्ते) ढूढे जाते है अनुसन्धान किये जाते हैं, १-३४।
मग्गू पु. (मद्गुः) पक्षि-विशेष, जल काक; २-७७
मघोणो देशज पु (मघवान्) इन्द्र, २-१७४।
मच्चू पुं (मृत्यु) मौत, मृत्यु, मरण, यमराज, १-१३०
मच्छरो, मच्छलो वि (मत्सरः) ईर्ष्यालु, द्वेषी, क्रोधी, कृपण, २-२१।
मच्छिआ स्त्री. (मक्षिका) मक्खी, जन्तु-विशेष, २-१७
मज्ज्—
णुमज्जइ अक क्रिया (निमज्जति) डूबता है, तल्लीन होता है, १-९४।

मरगयं न. (मरकतम्) नीलवर्ण वाला रत्न-विशेष; १-१८२।
मरणा वि (मरणा) मृत्यु धर्म वाले; १-१०३।
मरहट्ठो पु (महाराष्ट्रः) प्रान्त विशेष; मराठा वाडा, १-६९।
मरहट्ठं न (महाराष्ट्रम्) प्रान्त विशेष, मराठा वाडा; १ ६९, २-११९।
मलय पु (मलय) पर्वत विशेष, मलयाचल, २-९७
मलिअ वि. (मृदित) मसला हुआ; १-७।
मलिणं, मलिन वि. (मलिनम्) मैला, मल युक्त, २-१३८
मल्ल न० (माल्यम्) मस्तक स्थित पुष्पमाला, २-७९
मसणं वि (मसृणम्) स्निग्ध, कोमल, सुकुमाल, चिकना; १-१३०।
मसाण न. (श्मशानम्) मसाण, मरघट, २-८६।
मसिण वि (मसृणम्) स्निग्ध, चिकना, कोमल, सुकु-माल, १-१३०।
मस्सू पु न० (श्मश्रू) दाढ़ी-मूछ, २-८६।
महइ, महए सक. (कांक्षति) वह इच्छा करता है; १-५।
महण्णव पु० (महार्णव) महासमुद्र, १-२६९।
महन्तो वि (महान्) अत्यन्त बड़ा; २-१७४।
महपिउल्लओ वि (महापितृक) पितामह से सबधित, २-१६४।
महपुण्डरिए पु० (महापुण्डरीक) ग्रह विशेष, २-१२०।
महमहिअ वि (महमहित) फैला हुआ, १-४६।
महा-पसु पुं० (महापशु) बड़े पशु, १-८।
महिमा पु० स्त्री. (महिमा) महत्व, महानता; १-३५
महिला स्त्री. (महिला) स्त्री, नारी, १-१४६।
महिवट्ठं न. (मही-पृष्ठम्) पृथ्वी का तल, १-१ ९।
महिवालो पु० (मही-पाल) राजा, १-२३१।
महुअ न. (मधूकम्) महुआ का फल, १-१२२।
महुरव्व अ (मथुरावत्) मथुरा नगरी के समान, २-१५०।
महुलट्ठी स्त्रीः (मधु-यष्टि) औषधि-विशेष इक्षु, ईख, १-२४७।
महूअ न (मधूकम्) महुआ का फल, १-१२२।
महेला स्त्री. (महिला) स्त्री नारी, १-१४६।
मा अ० (मा) मत, नहीं, २-२०१।
माइ अ० (मा) मत, नहीं, २-१९१।

माइहरं न० (मातृ-गृहम्) माता का घर, १-१३५
माईणं स्त्री. (मातॄणाम्) माताओं का, की, के १-१३५।
माउअं वि. (मृदुकम्) कोमल, सुकुमाल; २-९९
माउआ स्त्री. (मातृका) माता सबधी; स्वर आदि मूल वर्ण; १-१३१
माउओ वि. (मातृक) माता सबधी; स्वर आदि मूल वर्ण; १-१३१
माउक्कं न. (मृदुत्वम्) कोमलता; १-१२७; २-२, ९९
माउच्छा स्त्री. (मातृष्वसा) माता की बहिन, मौसी; २-१४२।
माउत्तणं न (मृदुत्वम्) कोमलता, २-२।
माउमण्डल न (मातृ-मण्डलम्) माताओं का समूह; १-१३४
माउलुङ्ग म (मातुलुगम्) बीजोरे का फल; १-२१४।
माउसिआ स्त्री (मातृष्वसा) माता की बहिन, मौसी; १-१३४, २-१४२।
माउहर न. (मातृगृहम्) माता का घर, १-१३४,१३५
माणइ सक (मानयति) वह सन्मान करता है, अनुभव करता है, १-२२८।
माणइत्तो पुं० (मानवान्) इज्जत वाला; २-१५९।
माणसी पुं (मनस्वी) अच्छे मन वाला, १-४४।
माणसिणी स्त्री (मनस्विनी) अच्छे मन वाली, १-४४।
माणस्स पु न. (मानाय) मान के लिये, २-१९५।
माणिओ वि (मानित) सन्मान किया हुआ; २-१८०।
मामि अ, (सखी आमन्त्रण-अर्थक) सहेली को बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय-विशेष, २ १९५।
मायन्दो (देशज, पु (माकन्द) आम्र, आम का पेड़; २-१७४।
माला स्त्री (माला) माला, २-१८२।
मालस्स वि. (मालस्य) माला वाले का, १ ४
मांस न. (मासम्) मांस, गोश्त, १-२९, ७०।
मासल वि न (मासलम्) पीन, पुष्ट, उपचित; १-२९
मासू पु० न (श्मश्रु) दाढ़ी-मूछ, २-८६।
माहप्पो पुं० (माहात्म्यम्) बड़प्पन, १-३३।
माहप्प पु० (माहात्म्यम्) बड़प्पन, १-३३
माहुलिङ्ग न. (मातुलिंगम्) बीजोरे का फल, १-२१४।

मेढी पुं. (मेथिः) खलिहान में पशु को बांधने का काष्ठ-विशेष, १ २१५ ।
मेत्तं न. (मात्रम्) मात्र, सीमान्त; १ ८१ ।
मेरा स्त्री. देशज. (?) (मिरा) मर्यादा, १-८७ ।
मेहला स्त्री (मेखला) काञ्ची, करधनी, कटि में पहिनने का आभूषण, १ १८७ ।
मेहा पुं. (मेघा) बादल; १-१८७ ।
मेहो पु (मेघ.) बादल, १-१८७ ।
मोक्ख न. (मोक्षम्) छुटकारा, मुक्ति, २-१७६ ।
मोग्गरो पु (मुद्गरः) मोगरा का गाछ, पेड़ विशेष, मुद्‌गर, १-११६, २-७७ ।
मोण्डं न (मुण्डम्) मुण्ड, मस्तक, सिर, १-११६, २०२
मोत्तुं सबध कृ (मुक्त्वा) छोड करके, २-१४६ ।
मोत्था स्त्री (मुस्ता) मोथा, नागर मोथा नामक औषधि विशेष, १-११६ ।
मोरउल्ला अ (मुधा) व्यर्थ, फिजूल; २-२१४ ।
मोरो पु. (मयूर) पक्षि-विशेष; मोर; १-१७१ ।
मोल्ल न (मूल्यम्) कीमत; १-१२४ ।
मोसा अ (मृषा) झुठ, मिथ्या, अनृत, १ १३६ ।
मोसावाओ पु. (मृषावादः) मिथ्या वचन, झूठें बोल; १-१३६ ।
मोहो पु (मयूख) किरण, रश्मि, तेज, कान्ति, शोभा, १-१७१ ।

(य)

य अव. (च) हेतु-सूचक, संबंध-सूचक अव्यय, और २-१८४; ३-५७ ।
यड न (तटम्) किनारा, १-४ ।
जामि अक (यामि) मै जाता हू, २-२०४ ।

(र)

र अ. (पाद पूरणे) श्लोक चरण की पूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय विशेष; २-११७ ।
रअणीअरो पु (रचनीचरः) रात्रि में चलने वाले राक्षस आदि, १-८ ।
रइ स्त्री. (रति) नाम-विशेष, कामदेव की स्त्री,
रग्गो पु (रक्त) लाल वर्ण, २-१०, ८९ ।

रच्--
विरएमि अक (विरमामि) मै क्रीडा करता हू; २ २०३ ।
रणरणयं (देशज वि.) (रणरणकम्) निश्वास, उद्वेग, उत्कण्ठा, २-२०४ ।
रण्णं न. (अरण्यम्) जगल, १-६६ ।
रत्ती स्त्री. (रात्रि) रात, निशा, २-७९, ८८ ।
रत्तो वि. पु (रक्तः) लाल वर्ण वाला; २-१० ।
रभ-
आढतो, आरद्धो वि (आरब्ध) शुरु किया हुआ, २-१३८ ।
रम्—
रमइ अक. आत्मने पदी (रमते) वह क्रीडा करता है, १-२०२ ।
रमिअ संबध कृ. (रमित्वा) रमण करके, २-१४६ ।
रयणं न (रत्नम्) रत्न, माणिक्य, मणि, २-१०१
रयणीअरो पुं० (रजनीचर) रात्रि में चलने वाला राक्षश, १-८ ।
रयदं न. (रजतम्) चांदी नामक धातु; १-२०९
रययं न " " " " १-१७७; १८०, २०९ ।
रवी पु० (रवि) सूर्य, १-१७२ ।
रस पुं. न (रस) मधुर आदि रस, २ १ ।
रसायलं न (रसातलं) पाताल लोक, पृथ्वी के नीच का अतिम भाग, १-१७७, १८० ।
रसालो पुं रसाल) आम्र वृक्ष, आम का गाछ, २-१५९ ।
रस्सी स्त्री. (रश्मिः) किरण, रस्सी; १-३५, २-७४, ७८ ।
रहस्सं वि. रहस्यम् गुह्य, गोपनीय, एकान्त का, २-१९८, २०४ ।
रहुवइणा पुं (रघुपतिना) रघुपति से, २-१८८
राइक्क न (राजकीयम्) राज-सवधी, २-१४८ ।
राई स्त्री (रात्रि) रात. निशा, २-८८ ।
राईव न (राजीवम्) कमल, पद्म, १-१८० ।
राउल न (राजकुलम्) राज-समूह, राजा का वश, १-२६७ ।

लहुअ न. (लघुकं) कृष्णागुर, सुगन्धित धूप द्रव्य विशेप; २-१२२ ।

लहुवी स्त्री वि (लघ्वी) मनोहर, सुन्दर, छोटी, २-११३ ।

लाउ, लाऊ न. (अलाबुम्) तुम्बडी, फल विशेष, १-६६ ।

लायण्ण न (लावण्यम्) शरीर-सौन्दर्य, कान्ति, १-१७७, १८० ।

लासं न. (लास्यम्) वाद्य, नृत्य और गीतमय नाटक विशेष; २-९२ ।

लाहइ सक (श्लाघते) वह प्रशसा करता है, १-१८७

लाहलो पु (लाहल) म्लेच्छ-जाति-विशेष; १-२५६ ।

लिहइ सक. (लिखति) वह लिखता है, १-१८७

लित्तो वि (लिप्त) लीपा हुआ, लगा हुआ, १ ६ ।

लिम्बो पु (निम्ब) नीम का पेड़; १-२३० ।

लुक्को वि. (रुग्ण) बीमार, रोगी, भग्न, १-२५४, २-२

लुग्गो वि (रुग्ण.) बीमार, रोगी, भग्न, २ २ ।

लेहेण वि (लेखेण) लेख से; लिखे हुए से, २-१८९ ।

लोओ पु (लोक) लोक, जगत, ससार; १-१७७, २-२०० ।

लोअस्स पु (लोकस्य) लोक का, प्राणी वर्ग का; १-१८० ।

लोअणा पु न. (लोचनानि) आंखें अथवा आंखो को, १-३३, २-७४ ।

लोअणाइ पु न (लोचनानि) आखें अथवा आखों को, १-३३ ।

लोअणाण पु न (लोचनानाम्) आंखो का, की के, २-१८४ ।

लोगस्स पु (लोकस्य) लोक का, ससार का, प्राणी वर्ग का, १-१७७ ।

लोण न. (लवणम्) नमक, १-१७१ ।

लोद्धओ पु. (लुब्धक.) लोभी, शिकारी, १-११६, २ ७९

(व)

व अ. (वा) अथवा, १-६७ ।

व्व, व अ (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षार्थक अव्यय विशेष, २-३६, १८२ ।

वइआलिओ वि (वैतालिक) मगल-स्तुति आदि से जगाने वाला मागध आदि, १-१५२ ।

वइआलीअं न. (वैतालीयम्) छन्द-विशेष, १-१५१ ।

वइएसो वि. (वैदेश) विदेशी, परदेशी, १-१५१ ।

वइएहो वि (वैदेहः) मिथिला देश का निवासी विशेष; १-१५१ ।

वइजवणो वि. (वैजवनः) गोत्र-विशेष में उत्पन्न; १-१५१

वइदब्भो पु (वैदर्भ) विदर्भ देश का राजा आदि ,,

वइरं न (वज्रम्) रत्न-विशेष, हीरा, ज्योतिष्-प्रसिद्ध एक योग, १-६, २ १०५ ।

वइरं न (वैरम्) शत्रुता, दुश्मनी की भावना; १-१५२ ।

वइसम्पायणो पु (वैशम्पायन) व्यास ऋषि का शिष्य, १ १५२ ।

वइसवणो पु (वैश्रवणः) कुबेर, १-१५२ ।

वइसालो वि. (वैशाल.) विशाला में उत्पन्न, १-१५१ ।

वइसाहो पु (वैशाख) वैशाख नामक मास विशेष; १-१५१ ।

वइसिअ न (वैशिकम्) जैनेतर शास्त्र विशेष; कामशास्त्र, १-१५२ ।

वइस्साणरो पु (वैश्वानरः) वह्नि, चित्रक वृक्ष, सामवेद का अवयव विशेष, १-१५१ ।

वसिओ वि (वांशिक) बांस वाद्य बजाने वाला; १-७०

वसो पु (वश) सतान-सतति, साल-वृक्ष, बांस; १-२६० ।

वक्क न (वाक्य) पद समुदाय, शब्द समूह, २-१७४

वक्कल न (वल्कलम्) वृक्ष की छाल, २-७९ ।

वक्खाण न (व्याख्यानम्) कथन विवरण, विशद रूप से अर्थ-प्ररूपण, २-९० ।

वग्गो पु. (वर्ग) जातीय समूह ग्रन्थ-परिच्छद-सर्ग, अध्ययन, १-१७७, २-७९ ।

वग्गे पु (वर्गे) वर्ग में, समूह में, १-६ ।

वग्घो पुं. (व्याघ्र) बाघ, रक्त एरण्ड का पेड, करञ्ज वृक्ष, २ ९० ।

वङ्क वि न (वक्रम्) बांका, टेढा, कुटिल, १-२६ ।

वच्

वोत्तु हे कृ (वक्तुम्) बोलने के लिये, २-२१७ ।

वाइएण वि (वाचितेन) पढ़े हुए से, वाचे हुए से, २-१८९ ।

वच्छ न (वक्षस्) छाती, सीना, २-१७ ।

निव्वुअं वि (निर्वृतम्) निर्वृति प्राप्त; १-१३१

निव्वुओ वि. (निर्वृतः) " " १-२०९

विउअं वि (विवृतम्) विस्तृत, व्याख्यात, १-१३१ ।

सवुअं वि. (सवृतम्) सकडा, अविस्तृत; १ १३१ ।

वरिअ वि (वृतम्) स्वीकृति जिसकी सगाई की गई हो वह; २-१०७ ।

वरिसं न. (वर्षम्) मेघ, भारत आदि क्षेत्र, २-१०५

वरिसा स्त्री. (वर्षा) वृष्टि, पानी का बरसना;

वरिससय न (वर्ष-शतम्) सो वर्ष, २-१०५

वृत्-(धातु) व्यवहार आदि अर्थ

वित्त न. (वृत्तम्) वृत्ति, वर्तन, व्यवहार, १-१२८ ।

वट्टो पु. (वृत्त) कूर्म, कछआ; २-२९ ।

निअत्तसु आज्ञा अक (निवर्त्तस्व) निवृत्त हो, २-१९६ ।

निवुत्त वि (निवृत्तम्) निवृत्त, हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख, १-१३२ ।

निअत्त वि (निवृत्तम्) निवृत्त, हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख; १-१३२ ।

पडिनिअत्त वि (प्रतिनिवृत्तम) पीछे लोटा हुआ, १-२०६ ।

पयट्टइ अक (प्रवर्तते) वह प्रवृत्ति करता है, २-३० ।

पयट्टो वि (प्रवृत्त) जिसने प्रवृति की हो वह, २-२९ ।

सवट्टिअ वि. (सवर्तितम्) संवर्त-युक्त; २-३०

वध्—(धातु) बढ़ने अर्थ में

विद्ध वि. (वृद्ध) बुड्ढा, १-१२८, २-४०

वुड्ढो पु " " १-१३१, २ ४०, ९०

वर्ष्-(धातु) बरसने अर्थ में-

विट्ठो, वुट्ठो वि (वृष्ट) बरसा हुआ, १-१३७

पउट्ठो पु वि (प्रवृष्ट) " " १ १३१

वलयाणलो पु (वडवानल.) वडवाग्नि, वडवानल, १-१७७

वलयामुह न (वडवामुखम्) " १-२०२ ।

वलिस न (बडिशम्) मच्छलं पकडने का कांटा; १-२०२ ।

वलुणो पु. (वरुण) वरुणवर द्वीप का एक अधिष्ठाता देव; १-२५४ ।

वल्ली स्त्री. (वल्ली) लाता, वेल, १-५८ ।

वसई स्त्री. (वसतिः) स्थान, आश्रय, वास, निवास; १-२१४ ।

वसन्ते पु (वसन्ते) ऋतु विशेष में; चैत्र-वैशाख मास के समय में, १-१९० ।

वसही स्त्री. (वसति) स्थान, आश्रय, वास, निवास, १-२१४ ।

वसहो पु (वृषभ) बल, १-१२६ १३३ ।

वह् (धातु) धारण करने आदि अर्थ में

वहसि सक (वहसि) तू पहुँचाता है, तू धारण करता है; २-१९४ ।

वहइ सक (वहति) वह धारण करता है, १-३८

वहु स्त्री (वधू) बहू; १ ६ ।

वहुआइ स्त्री (वध्वा, वधूकायाः) बहू के १-७

वहुत्त वि. (प्रभूतम्) बहुत प्रचुर, १-२३३; २ ९८ ।

वहुमुह, वहूमुह न (वधू-मुखम्) बहू का मुख, १-४ ।

वा अ (वा) अथवा; १-६७ ।

वाइएण न (वाचितेन) पढ़े हुए से, बाँचे हुए से; २-१८९ ।

वाउलो वि (वातूल) वात-रोगी, उन्मत्त; १-१२१, २-९९ ।

वाउल्लो वि (वातूलः) वात-रोगी, उन्मत्त, २-९९ ।

वाणारसी स्त्री (वाणारसी) बनारस; २-११६

वामेअरो वि. पु (वामेतर) दाहिना; १-३६

वायरण न (व्याकरणम्) व्याकरण कथन, प्रतिपादन; १-२६८ ।

वार न (द्वारम्) दरवाजा, १-७९ ।

वारण न (व्याकरणम्) व्याकरण, कथन, प्रतिपादन, उपदेश, १-२६८ ।

वारिमई, वारीमई, स्त्री (वारिमति) पानी वाली, १-४

वारिहरो पु (वारिधर) बादल;

वावडो वि (व्यापृत.) किसी कार्य में लगा हुआ, १-२०६

वासइसी, वासेसी, पु (व्यासर्षि) व्यास-ऋषि १ ५, ।

वाससय, न (वर्ष शतम्) सो वर्ष; २-१०५ ।

वासो, पु (वर्ष) एक वर्ष, १-४३ ।

वास, न (वर्षम्) वर्ष; २-१०५ ।

विम्हयणीअं वि. (विस्मयनीयम्) आश्चर्य के योग्य, १-२४८ ।
वम्हरह सक (विस्मरथ) तुम भूलते हो
विरला वि. (विरला) अल्प, थोडे, २ ७२ ।
विरस वि न. (विरसम्) रसहीन; १-७ ।
विरहो पु (विरह) वियोग, विच्छोह, जुदाई; १-११५
वेरहग्गी स्त्री. (विरहाग्नि.) वियोग रूपी अग्नि, १-८४
विलया स्त्री (वनिता) स्त्री, महिला, नारी, २-१२८
वेलिअं न (व्यलीकम्) मिथ्या. १-४६ ।
विलिअ वि (व्रीडितम्) लज्जित, १-१०१ ।
विव अव (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा अर्थक अव्यय विशेष, २-१८२ ।
विश्-
विसइ अक (विशति) प्रवेश करता है, १-२६० ।
निवेसिआण वि (निवेसितानाम्) रहे हुओ का, १-६० ।
विसढो वि. (विषमः) समान स्थिति वाला नही, ऊचा-नीचा, १-२४१ ।
विसण्ठुल वि (विसस्थुलम्) विह्वल, व्याकुल, अव्यवस्थित, २-३२ ।
विसतवो पु वि (द्विषन्तप) शत्रु को तपाने वाला, दुश्मन को हैरान करने वाला, १-१७७ ।
विसमो वि (विषम) ऊचा नीचा, १-२४१ ।
विसम आयवो (विषमातप) कठोर धूप, १-५ ।
विसमइओ, विसमओ वि पु. (विषमय) विष का बना हुआ; १ ५० ।
विसमायवो पु (विषमातप) कठोर धूप, १-५ ।
विसय न (विषयम्) गृह, घर, सभव, सभावना; २-२०९ ।
विससिज्जन्त व. कृ (विशस्यमान) हिंसा किये जाते हुए, १-८ ।
विसाओ पु (विषाद) खेद, शोक, अफसोस, १-१५५
विसी स्त्री (बृसी) ऋषि का आसन, १-१२८
विसेसो पु वि (विशेष) भिन्नताओं वाला, १-२६०
विस्सोअसिआ स्त्री (विस्रोतसिका) विमार्ग-गमन, दुष्ट-चिंतन, २-९८ ।
विहडप्फड देशज (?) २-१७४ ।

विहत्थी स्त्री. (वितस्ति) परिमाण-विशेष; बारह अंगुल का परिमाण; १ २१४ ।
विहलो वि. (विह्वलः) व्याकुल, तल्लीन; २-५८, ९३
विहवेहिं पु. (विभवैः) वैभव द्वारा, विविध सामग्री द्वारा; १-१३४ ।
विहि पु (विधि.) भाग्य, २-२०६ ।
विही स्त्री पुं. (विधिः) प्रकार भेद रीति; १-३५ ।
विहीणो वि (विहीन.) रहित; १ १०३ ।
विहूणो वि. (विहीन) रहित, १-१०३ ।
वीइ स्त्री. (वीचि) लहर, १-४ ।
वीरिअ न (वीर्यम्) शरीर-स्थित एक धातु; शुक्र, तेज, दीप्ति; २-१०७ ।
वीसम्भो पुं. (विस्रम्भ) विश्वास, श्रद्धा; १-४३ ।
वीसमइ अक. (विश्राम्यति) वह विश्राम करता है, १-४३ ।
वीसा स्त्री (विंशति) सख्या-विशेष, वीस, १-२८, ९२ ।
वीसाणो पु (विष्वाणः) आहार, भोजन; १-४३ ।
वीसामो पुं (विश्राम) विश्राम लेना; १-४३ ।
वीसासो पु. (विश्वास) विश्वास; १-४३ ।
वीसु अ (विष्वक्) सब ओर से, चारो ओर से; १-२४, ४३, ५२ ।
वुट्ठी स्त्री (वृष्टिः) वर्षा, १-१३७ ।
वुड्ढी स्त्री वृद्धि बढ़ना, बढाव, व्याकरण में प्रसिद्ध एक सज्ञा, १-१३१, २-४० ।
वुड्ढो वि (वृद्ध) बुड्ढा, पडित, जानकार; १-१३१, २ ४० ।
वुत्तन्तो पु (वृत्तान्त) खबर, समाचार, हकीकत, बात १ १३१ ।
वुन्द न (वृन्दम्) समूह, यूथ, १ १३१ ।
वुन्दारया वि (वृन्दारका)-मनोहर, मुख्य, प्रधान; १ १३२ ।
वुन्दावणो पु (वृन्दावन) मथुरा के पास का स्थान-विशेष, १-१३१ ।
वुन्द्र न (वृन्दम) समूह यूथ; १-५३ ।
वेअणा स्त्री (वेदना) ज्ञान, सुख-दुःख आदि का अनुभव, पीड़ा, सताप, १-१४६ ।

सई स्त्री. (शची) इन्द्राणी, १-१७७।
सउणो पु. (शकुनिः) चील-पक्षी, शुभाशुभ सूचक बाहु-स्पन्दन आदि शकुन १-१८०।
सउरा पु (सौरा) ग्रह-विशेष, सूर्य-संबधी, १-१६२।
सउह न (सौधम्) राज-प्रासाद, चाँदी, १-१६२।
संवच्छरो सवच्छलो पु. (सवत्सर) वर्ष, साल, २-२१।
सवट्टिअ वि. (सवर्तितम्) पिंडीभूत, एकत्रित, सवर्त-युक्त, २-३०।
सवत्तओ पु (सवर्तक.) बलदेव, वडवानल, २ ३०।
सवत्तण न (सवर्तनम्) जहा पर अनेक मार्ग मिलते हो, वह स्थान, २-३०।
सवरो पु. (सवर) कर्म-निरोध, मत्सय की एक जाति, दैत्य विशेष, १-१७७।
सवुडो पु (सवृत) आवृत, सगोपित, १-१७७।
ससओ पु (सशय) सदेह, शका; शशय, १-३०।
सासिद्धिओ वि (सासिद्धिक.) स्वभाव सिद्ध, १-७०।
सहारो पु (सहार) बहु-जतु-क्षय, प्रलय, १-२६४।
सक्कयं वि. (संस्कृतम्) सस्कार युक्त, १-२८, २ ४।
सक्कारो पु (सत्कार) सन्मान, आदर, पूजा, १-२८; २-४
सक्कालो पु (सत्कार) संस्कार, सन्मान, आदर, पूजा, १-२५४।
सक्को वि (शक्तः) समर्थ, शक्ति युक्त, २-२।
सक्खं अव. (साक्षात्) प्रत्यक्ष, आंखो के सामने, प्रकट, १ २४।
सक्खिणो वि (साक्षिण) गवाह, साक्षी; २ १७४।
सकरो पु (शङ्कर) शिव महादेव, १-१७७।
सकल न. (शृखलम्) साकल, बेडी, आभूषण विशेष, १ १८९।
सखाय वि. (सस्त्यानम्) आवाज करने वाला, प्रति-ध्वनि, १-७४।
सखो पु (शख) शख, जल-जन्तु-विशेष, १-३०,१८७
सङ्खो पु (शख) शख, जल-जन्तु विशेष, १-३०
सग न (शृगम्) सीग, १-१३०।
सगमो पु (संगम) मेल, मिलाप, १-१७७।
संगहिआ वि (सगृहिता) जिसका सचय किया गया हो वह, २-१९८।
सघारो पु. (सहार) बहु जन्तु-क्षय, प्रलय, १ २६४।
सघो पु (सघ) साधु साध्वी, श्रावक श्राविका का समुदाय; प्राणी समूह, १-१८७।

सचावं न (सचापम्) धनुष्य सहित; १-१७७।
सच्च न. (सत्यम्) यथार्थ भाषण, सत्य-युग, सिद्धात, २-१३।
सच्छायं वि. (सच्छायम्) छाया सहित; कान्ति-युक्त, १-२४९।
सच्छाहं वि (सच्छायम्) छाया सहित, तुल्य, सदृश, १-२४९।
सज्जणो पु. (सज्जन) अच्छा पुरुष, १-११।
सज्जो पु (षड्ज) स्वर-विशेष, २-७७।
सज्झ न (साध्यम्) सिद्ध करने योग्य, मन्त्र-विशेष; २-२६।
सज्झस न (साध्वसम्) भय, डर, २ २६।
सज्झाओ पु (स्वाध्याय.) शास्त्र का पठन, आवर्तन आदि, २-२६।
सज्झो वि (सह्य) सहन करने योग्य; २-२६,१२४
सजत्तिओ वि (सायत्रिक) जहाज से यात्रा करने वाला मुसाफिर, १-७०।
संजमो पुं (सयम) चारित्र व्रत, नियन्त्रण, काबू; १-२४५।
सजा स्त्री. (सज्ञा) आख्या, नाम, सूर्य की पत्नी, गायत्री, २ ८३।
सजोगो पु (सयोग) सबन्ध, मेल-मिलाप, मिश्रण; १-२४५।
सझा स्त्री (सन्ध्या) साझ सध्या, १-६, २५, ३०, २ ९२।
सञ्झा स्त्री (सन्ध्या) साझ, सध्या; १-३०
सठविओ, सठाविओ वि. (सस्थापित) अच्छी तरह से स्थापित; १ ६७।
सड्ढा स्त्री (श्रद्धा) विश्वास; २-४१।
सढा स्त्री (सटा) सिंह आदि की जटा, व्रती का केश-समूह; शिखा, १-१९६।
सढिल वि (शिथिलम्) ढीला, १-८९।
सढो वि (शठ) धूर्त, मायावी, कपटी, १-१९९।
सणिअ अ (शनैः) धीरे, २-१६८।
सणिच्छरो पु (शनैश्चर) शनिग्रह, १-१४९।
सणिद्ध न. (स्निग्धम्) चावल का माँड, चिकना, २-१०९।
सणेहो पु (स्नेह) प्रेम, प्रीति, स्निग्धरस, चिकनाई २-१०२।

ओसारिअं, अवसारिअ, वि. (अपसारित) पीछे हटाया हुआ, नीचे सरकाया हुआ, १-१७२ ।

समोसर, अक आज्ञा. (समपसर) दूर सरक; २-१९७ ।

ऊसरइ अक (उत्सरति) वह ऊपर सरकता है, १-११४ ।

ऊसारिओ वि (उत्सारितः) ऊपर सरकाया हुआ; अलग किया हुआ, २-२१ ।

नीसरइ अक (निर्सरति) वह बाहिर निकलता है, १९३ ।

सरो पु (शर॰) वाण, १ ७, ९१ ।

सरओ पु (शरद्) ऋतु-विशेष, आश्विन-कार्तिक मास, १-१८, ३१ ।

सररुहं न (सरोरुहम्) कमल, १-१५६ ।

सरि वि. (सदृक्) सदृश, सरीखा, तुल्य; १-१४२

सरिआ स्त्री (सरित्) नदी, १-१५ ।

सरिच्छो वि (सदृश.) सदृश, समान, तुल्य, १-१४४, १४२, २-१७ ।

सरिया स्त्री (सरिद) नदी, २-१५ ।

सरिस वि (सदृश) समान, सरीखा, तुल्य, २-१९५

सरिसो वि (सदृश) समान, तुल्य; १-१४२

सरिसव खलो पु (सर्षप-खल) सरसों के खलिहान को साफ करने वाला, १-१८७ ।

सरो पु (स्मर) कामदेव २-७४, ७८ ।

सरोरुह न (सरोरुहम्) कमल, १-१५६ ।

सलाहा स्त्री. (श्लाघा) प्रशसा, तारीफ, २-१०१ ।

सलिल पु न (सलिल) पानी, जल; १ ८२ ।

सवइ अक (शपति) वह शाप देती है, १-२३ ।

सवलो वि (शबल) रग-बिरगा, चित्र-विचित्र, १-२३७

सवहो पु (शपथ) सौगध, आक्रोश वचन, गाली; १-१७९, २३१ ।

सव्व वि पु (सर्वम्) सब को, तमाम को; १-१७७, २-७९ ।

सव्वओ अ. (सर्वत) सब प्रकार से, १-३७, २-१६०

सव्वङ्गिओ वि (सर्वांगीण) जो सभी अगों में व्याप्त हो ऐसा, २ १५१ ।

सव्वज्जो-सव्वण्णू पु. (सर्वज्ञः) जो सब कुछ जानता हो वह; १-५६; २-८३ ।

सव्वत्तो अ (सर्वत।) सब प्रकार से; २-१६० ।

सव्वदो अ (सर्वत) सब प्रकार से; २-१६० ।

सवुअं वि. (सवृतम्) ढका हुआ, सकड़ा अविवृत, १-१३१ ।

सह्-सहइ अक. (राजते) वह सुशोभित होता है, १-६

सहकारो सहयारो पु. (सहकारः) आम का पेड़, मदद, सहायता; १-१७७ ।

सहरी स्त्री (शफरी) मछली, १-२३६ ।

सहल वि. (सफलम्) फल-युक्त सार्थक, १-२३६ ।

सहस्स पु न. (सहस्र) हजार; दस सौ; २-१५८ ।

सहस्ससिरो वि. पु (सहस्र शिर) प्रभूत मस्तक वाला, विष्णु; २-१९८ ।

सहा स्त्री (सभा) सभा, समिति, परिषद; १-१८७

सहावो पु. (स्वभाव) स्वभाव, प्रकृति, निसर्ग; १-१८७

सहि स्त्री (सखि) सहेली सगिनी; २-१९५ ।

सहिआ वि. (सहृदया) सुन्दर चित्त वाले, परिपक्व बुद्धि वाले; १-२६९ ।

सहिअएहिं वि (सहृदयैः) सुन्दर विचार शील पुरुषो द्वारा; १-२६९ ।

सा स्त्री सर्व (सा) वह (स्त्री), १-३३, २-१८० २०४ ।

सा पु स्त्री (श्वान) कुत्ता, अथवा कुत्तिया; १-५२

साउअअं-साऊअयं न (स्वादूदकम्) स्वादिष्ट जल, १ ५

साणो पु (श्वान) कुत्ता, १-५२ ।

सामओ पु (श्यामाक.) धान्य विशेष, १-७१ ।

सामच्छ-सामत्थ न (सामर्थ्यम्) सम्र्थता, शक्ति, २-२२

सामा स्त्री (श्यामा) श्याम वण वाली स्त्री, १-२६० २-७८ ।

सामिद्धि स्त्री (समृद्धि.) समृद्धि, धन-वैभव, १-४४ ।

सायरो पु. (सागरः) समुद्र, २-१८२ ।

सारङ्ग न (शार्ङ्गम्) विष्णु का धनुष्; प्रधान दल, श्रेष्ठ-अवयव, २-१०० ।

सारिक्ख वि (सादृश्यम्) समान, तुल्य, २-१७ ।

सारिच्छो वि (सदृश) सदृश, समान, तुल्य, १-४४ ।

सारिच्छ वि न (सादृश्य) तुल्यता, समानता, २-१७ ।

सालवाहणो पु (शातवाहनः) शाल वाहन नामक एक व्यक्ति १ २११।

सालाहणो पु (शातवाहन) शाल वाहन नामक एक व्यक्ति १-८; २११।

सालाहणी स्त्री (शातवाहनी) शाल वाहन, से संबंध रखने वाली १ २११

सावगो पु. (श्रावकः) जैन-उपासक गृहस्थ श्रावक; १ १७७।

सावो पु (शापः) शाप आक्रोश शपथ सौगन; १ १७९, २११।

सासं न (सस्यम्) खेत में उगा हुआ हरा धान; १ ४

साह-

साहसु आज्ञा सक (कथय) कहो २ १९७

साहेमि वर्त सक (कथयामि) मैं कहता हूं; ४ २ ४।

साहा स्त्री. (शाखा) डाली; एक ही आचार्य की शिष्य-परम्परा; १ १८७।

साहुली दे. स्त्री (शाखा) डाली २ १७४।

साहू पु (साधु) साधु, यति महाव्रती १ १८७

साहेमि सक. (कथयामि) मैं कहता हूं ४ २ ४।

सि अक (असि) तू है ३ ११७।

सिआ अ (स्यात्) प्रशंसा अस्तित्व सत्ता संशय प्रश्न निश्चय विवाद आदि सूचक अव्यय २ १ ७

सिआलो पु (शृगालः) सियार गीदड़ पशु-विशेष; १ १२८

सिआवाओ पु (स्याद्वादः) अनेकान्त दर्शन जैन दर्शन का सिद्धान्त विशेष; २ १ ७।

सिइदत्तो पु (सिंहदत्तः) व्यक्ति वाचक नाम; १ ९२।

सिहराओ पु (सिंहराज) केसरीसिंह; १ ९२।

सिङ्ग न (शृङ्गम्) सींग विषाण; १ ११ ।

सिङ्गारो पु (शृङ्गारः) काव्य में प्रसिद्ध रस-विशेष; १ १२८।

सिघो पु (सिंह) सिंह १ २९, २६४।

सिच

उसित्तो वि (उत्सिक्त) गर्वित उद्धत; १ ११४।

नीसित्ता वि. (निःसिक्तः) अत्यन्त सिंचित गीला; १ ४३।

सिञ्चइ अक (सिञ्चति) वह पसीना वाली होती है; ४-१८०।

सिट्ठं वि (सृष्टम्) रचित, निर्मित; १ १२८।

सिट्ठी स्त्री (सृष्टिः) विश्व-निर्माण बनाई हुई; १ १२८, २१४।

सिढिलो वि पु (शिथिल) ढीला जो मजबूत न हो वह मंद; १ २१५।

सिढिलं वि न (शिथिलम्) ढीला, मंद; १-८९

सिढिलो वि पु (शिथिर) ढीला; मंद; १ २१५, २५४

सिणिद्धं वि (स्निग्धम्) चिकना तेल वाला; २ १०९

सिंहो पु. (सिंहः) मृग राज केसरी; ४-७५।

सित्थं न. (सिक्थम्) धान्य कण औषधि-विशेष २-७७।

सिन्दुआरो पु (सिन्दुवारः) सिन्दुर वार नामक वृक्ष-विशेष १ १८७।

सिन्दूरं न (सिन्दूरम्) सिन्दूर, रक्त-वर्णीय चूर्णविशेष १-८५।

सिन्धवं न (सैन्धवम्) सैंधा नमक लवण विशेष; १ १४९।

सिन्नं न (सैन्यम्) सेना लश्कर; १ १५०।

सिप्पी स्त्री (शुक्ति) सीप जल में पाया जाने वाला पदार्थ विशेष; २ १३८।

सिमा स्त्री (शिम्बा) वृक्ष का अग्राकार मूल १-२११

सिमिणो पु (स्वप्न) स्वप्न सपना; १ ४६, २५९।

सिम्भो पु (श्लेष्मा) श्लेष्मा कफ; १ ७४।

सिरं न (शिरस्) मस्तक सिर १ ३२।

सिरविअणा स्त्री. (शिरोवेदना) सिर की पीड़ा; १ १५६

सिरा स्त्री (शिरा) नस नाड़ी रग; १ २६६

सिरी स्त्री (श्री) लक्ष्मी संपत्ति शोभा; २ १०४

सिरि स्त्री. (श्री) लक्ष्मी शोभा; २ १९८।

सिरीए स्त्री (श्रियाः) लक्ष्मी का शोभा का; २ १९८।

सिरिमन्तो वि (श्रीमान्) शोभा वाला; शोभा-युक्त २ १५९।

सिरिसा पु (शिरीष) सिरसा का वृक्ष; १ १ १।

सिरोविअणा स्त्री (शिरोवेदना) सिर की वेदना; १ १५६

सिला स्त्री (शिला) चट्टान विशेष; १-४।

सिलिट्ठं वि (श्लिष्टम्) मनोज्ञ सुन्दर आलिंगित; २ १ ९।

सिलिम्हो पु (श्लेष्मा) श्लेष्मा, कफ, २-५५, १०६।
सिलेसो पु. (श्लेषः) वज्र लेप आदि संधान; ससर्ग; २-१०६।
सिलोश्रो पु (श्लोक) श्लोक, काव्य, २-१०६।
सिवम् न (शिवम्) मगल, कल्याण, सुख; २-१५।
सिविणो पु (स्वप्नः) स्वप्न, सपना, १-४६ २५९ २-१०८।
सिविणए पु (स्वप्नके) स्वप्नमें, सपने में, २-१८६।
सिहर न. (शिखर.) पर्वत के ऊपर का भाग, चोटी, शृंग; २-९७।
सीअरो पु (शीकरः) पवन से क्षिप्त जल, फुहार, जल कण, १-८४।
सीभरो पु (शीकर.) पवन से फेंका हुआ जल, फुहार, जल कण, १-१८४
सीआण न. (श्मशानम्) श्मशान, मसाण, मरघट, २-८६
सीलेण न (शीलेन) चारित्र से, सदाचार से, २-१८४
सीस न (शीर्षम्) मस्तक, माथा, २-९२।
सीसो पु (शिष्य) शिष्य, चेला, १-४३।
सीहो पु (सिंह) सिंह, केशरी मृगराज; १-२९ ९२, २६४; २-१८५।
सीहेण पु (सिंहेन) सिंह से, मृगराज द्वारा, १-१४४, २-९६।
सीहरो पु. (शीकर) पवन से फेंका हुआ जल कण, फुहार, १-१८४।
सुअ वि (श्रुत) सुना हुआ शास्त्र, २-१७४।
सुइल वि (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला, श्वेत, २ १०६।
सुउरिसो पु. (सुपुरुष) अच्छा पुरुष, सज्जन, १-८, १७७
सुओ वि (श्रुत) सुना हुआ, आकर्णित, १-२०९।
सुकड न (सुकृतम्) पुण्य, उपकार, अच्छी तरह से निर्मित; १ २०६।
सुकुमालो वि (सुकुमार) अति कोमल, सुन्दर, कुमार अवस्था वाला, १-१७१।
सुकुसुमं न (सुकुसुमम्) सुन्दर फूल, १-१७७।
सुक्क वि (शुक्ल) शुक्ल पक्ष, २-१०६।
सुक्क न. (शुल्कम्) चुंगी, मूल्य आदि, २-११
सुक्क वि (शुष्कम्) सूखा हुआ, २ ५।
सुक्किलं वि (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला श्वेत, २-१०६
सुक्खं वि. (शुष्कम्) सूखा हुआ; २-५।
सुगओ वि. (सुगतः) अच्छी गति वाला, १-१७७।
सुगन्धत्तणं न. (सौगन्ध्यत्वम्) अच्छा गन्धपना; १-१६०
सुंगं न (शुल्कम्) चुंगी, मूल्य आदि २-११।
सुज्जो पु. (सूर्ये) सूरज, रवि, आक का पेड़, दैत्य-विशेष, २-६४।
सुणओ पु (शुनक) कुत्ता, १-५२।
सुण्डो पु (शौण्डः) दारु-शराब पीने वाला; १-१६०
सुण्हं वि (सूक्ष्मम्) अति छोटा, १-११८।
सुण्हा स्त्री (सास्ना) गौ का गल-कम्बल, गाय का चमड़ा विशेष, १-७५।
सुण्हा स्त्री (स्नुषा) पुत्र वधू, १-२६१।
सुतार वि (सुतारम्) अत्यन्त निर्मल; अत्युच्च आवाज वाला, १-१७७।
सुत्ती स्त्री (शुक्ति.) सीप, घोघा, २-१३८, २११
सुत्तो वि. (सुप्तः) सोया हुआ; २-७७।
सुदंसणो वि (सुदर्शनः) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह; २-१०५।
सुदरिसणो वि (सुदर्शन) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह, २-१०५।
सुद्धं वि (शुद्धम्) पवित्र, निर्दोष, १-२६०।
सुद्धोअणी पु (शौद्धोदनि) बुद्ध देव, गौतम, १-१६०।
सुन्दरि स्त्री (सुन्दरि) उत्तम स्त्री, २-१९६।
सुन्दरिअं न (सौन्दर्यम्) सुन्दरता; १-१६०, २-१०७
सुन्देरं न ,, ,, १-५७ १६०, २ ६३ ९३।
सुपहाय न (सुप्रभातम्) अच्छा प्रात काल २-२०४।
सुपुरिसा पु (सुपुरुषा) अच्छे पुरुष, सज्जन, २-१८४
सुप्पइ अक (स्वपिति) वह सोती है, २-१७९।
सुब्ब न (शुल्वम्) तांबा नामक धातु विशेष, रस्सी, २ ७९।
सुमण न (सुमनस्) अच्छा मन, १-३२।
सुमिणो आर्ष पु (स्वप्न) स्वप्न, सपना, १-४६।
सुम्हा पु (सुह्मा) देश-विशेष; २-७४।
सुरट्ठा पु. (सुराष्ट्रा) अच्छे देश, २ ३४।
सुरवहू स्त्री. (सुरवधू) देवता की बहू, १-९७।
सुरहि पु स (सुरभि) सुगन्ध, २-१५५।
सुरा स्त्री (सुरा) मदिरा, शराब दारू [illegible]

सलिम्हो पु (श्लेष्मा) श्लेष्मा, कफ, २-५५, १०६।
सिलेसो पु. (श्लेष.) वज्र लेप आदि संधान, ससर्ग; २-१०६।
सिलोओ पु (श्लोक) श्लोक, काव्य, २-१८६।
सिवम् न (शिवम्) मगल, कल्याण, सुख; २-१५।
सिविणो पु. (स्वप्न.) स्वप्न, सपना, १-४६ २५९ २-१०८।
सिविणए पु (स्वप्नके) स्वप्नमें, सपने में, २-१८६।
सिहर न. (शिखर.) पर्वत के ऊपर का भाग, चोटी, शृग, २-९७।
सीअरो पु. (शीकर.) पवन से क्षिप्त जल, फुहार, जल कण, १-८४।
सीभरो पु (शीकर) पवन से फेंका हुआ जल, फुहार, जल कण, १-१८४
सीआण न. (श्मशानम्) श्मशान, मसाण, मरघट, २-८६
सीलेण न (शीलेन) चारित्र से, सदाचार से, २-१८४
सीस न (शीर्षम्) मस्तक, माथा, २-९२।
सीसो पु (शिष्य) शिष्य, चेला, १-४३।
सीहो पु. (सिंह) सिंह, केशरी मृगराज, १-२९ ९२, २६४, २-१८५।
सीहेण पु (सिंहेन) सिंह से, मृगराज द्वारा, १-१४४, २-९६।
सीहरो पु (शीकर) पवन से फेंका हुआ जल कण, फुहार, १-१८४।
सुअ वि (श्रुत) सुना हुआ शास्त्र, २-१७४।
सुइल वि (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला, श्वेत, २ १०६।
सुउरिसो पु. (सुपुरुष) अच्छा पुरुष, सज्जन, १-८, १७७
सुओ वि (श्रुत) सुना हुआ, आकर्णित, १-२०९।
सुकड न (सुकृतम) पुण्य, उपकार, अच्छी तरह से निर्मित, १ २०६।
सुकुमालो वि (सुकुमार) अति कोमल, सुन्दर, कुमार अवस्था वाला, १-१७१।
सुकुसुमं न (सुकुसुमम्) सुन्दर फूल, १-१७७।
सुक्क वि (शुक्ल) शुक्ल पक्ष, २-१०६।
सुक्क न. (शुल्कम्) चुगी, मूल्य आदि, २ ११
सुक्क वि (शुष्कम्) सूखा हुआ, २ ५।
सुक्किल वि (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला श्वेत, २-१०६
सुक्खं वि. (शुष्कम्) सूखा हुआ, २-५।
सुगओ वि. (सुगतः) अच्छी गति वाला, १-१७७।
सुगन्धत्तण न. (सौगन्धत्वम्) अच्छा गन्धपना; १-१६०
सुंग न (शुल्कम्) चूगी, मूल्य आदि २-११।
सुज्जो पु. (सूर्य) सूरज, रवि, आक का पेड, दैत्य-विशेष, २-६४।
सुणओ पु (शुनक) कुत्ता, १-५२।
सुण्डो पु (शौण्डः) दारु-शराब पीने वाला; १-१६०
सुण्ह वि (सूक्ष्मम्) अति छोटा, १-११८।
सुण्हा स्त्री (सास्ना) गौ का गल-कम्बल, गाय का चमडा विशेष, १-७५।
सुण्हा स्त्री (स्नुषा) पुत्र वधू; १-२६१।
सुतार वि (सुतारम्) अत्यन्त निर्मल, अत्युच्च आवाज वाला, १-१७७।
सुत्ती स्त्री. (शुक्ति) सीप, घोंघा, २-१३८, २११
सुत्तो वि. (सुप्तः) सोया हुआ; २-७७।
सुदंसणो वि (सुदर्शनः) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह; २-१०५।
सुदरिसणो वि (सुदर्शन) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह, २-१०५।
सुद्ध वि (शुद्धम्) पवित्र, निर्दोष; १-२६०।
सुद्धोअणी पु (शौद्धोदनि) बुद्ध देव, गौतम, १-१६०।
सुन्दरि स्त्री (सुन्दरि) उत्तम स्त्री, २-१९६।
सुन्दरिअ न (सौन्दर्यम्) सुन्दरता; १-१६०, २-१०७
सुन्देर न " " १-५७ १६०, २-६३ ९३।
सुपहाय न (सुप्रभातम्) अच्छा प्रातःकाल २-२०४।
सुपुरिसा पु (सुपुरुषा) अच्छे पुरुष, सज्जन, २-१८४
सुप्पइ अक (स्वपिति) वह सोती है, २-१७९।
सुब्ब न (शुल्वम्) तांबा नामक धातु विशेष, रस्सी, २ ७९।
सुमण न (सुमनस्) अच्छा मन, १-३२।
सुमिणो आर्ष पु (स्वप्न) स्वप्न, सपना, १-४६।
सुम्हा पु (सुह्मा) देश-विशेष; २-७४।
सुरट्ठा पु (सुराष्ट्रा) अच्छे देश, २ ३४।
सुरवहू स्त्री. (सुरवधू) देवता की बहु, १-९७।
सुरहि पु स (सुरभि) सुगन्ध, २-१५५।
सुरा स्त्री (सुरा) मदिरा, शराब दारु, १-१०२।

स्था-(धातु) ठहरने अर्थ में—
चिट्ठइ अक. (तिष्ठति) वह ठहरता है; १-१९९ २-३६ ।
ठाइ अक (तिष्ठति) वह ठहरता है; १-१९९
ठविओ ठाविओ, वि. (स्थापितः) जिसकी स्थापना की गई हो वह; १-६७ ।
पइट्ठिअं परिट्ठिअं वि (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठा-प्राप्त को, १-३८ ।
परिट्ठविओ परिट्ठाविओ वि. (प्रतिस्थापित) जिसके स्थान पर अथवा जिसके विरुद्ध में स्थापना की गई हो वह; १ ६७ ।
परिट्ठविअ वि. (परिस्थापितम्) विशेष रूप में जिसकी स्थापना की गई हो वह, अथवा उसको, १-१२९
सठविओ सठाविओ वि. (संस्थापित.) व्यवस्थित रूप में जिसकी स्थापना की गई हो वह; १-१६७ ।
स्मर् (धातु)
विम्हरिमो सक. (विस्मरामः) हम भूलते हैं; २-१९३ ।
स्वप्
सोवइ, सुवइ, अक (स्वपिति) वह सोता है, सोती है १-६४.
सुप्पइ, अक (स्वपिति) सोती है, २-१७९ ।
सुत्तो वि (सुप्त) सोया हुआ; २-७७ ।
पसुत्तो, पासुत्तो वि (प्रसुप्त) (विशेष ढग से) सोया हुआ, १ ४४ ।

ह (हा) अ (पाद पूर्ति-अर्थे) पाद पूर्ति के अर्थ म, सबोधन अर्थ में काम आने वाला अव्यय, १ ६७
हसो पु (हस) पक्षी-विशेष, हस, २-१८२ ।
हहो अ (ह, भो , हहो !) सबोधन, तिरस्कार, गर्व, प्रश्न आदि अर्थक अव्यय, २-२१७ ।
हणुमन्तो पु (हनूमान्) अञ्जना सुन्दरी का पुत्र, हनुमान १ १२१, २-१५९ ।
हणुमा पु (हनुमान) हनुमान, अञ्जना सुन्दरी का पुत्र, २-१५९ ।
हत्थुल्ला पु (हस्तौ) दो हाथ, २-१६४ ।
हत्थो पु (हस्तः) हाथ; २-४५, ९० ।
हत्था पु (हस्तौ) दो हाथ, २-१६४ ।
हद्धी अ (हा ! धिक्) खेद अनुताप, धिक्कार अर्थक अव्यय; २ १९२ ।
हण-(धातु) हनन अर्थ में—
हयं वि (हतम्) मारा हुआ, नष्ट हुआ; १-२०९; २-१०४ ।
निहओ वि (निहतः) विशेष रुप से मारा हुआ; १-१८० ।
हन्द अ (गृहणार्थे) 'ग्रहण करो-लेओ" के अर्थ में प्रयुक्त होनें वाला अव्यय, २-१८१ ।
हन्दि अ (विषादादिषु) विषाद, खेद, विकल्प, पश्चाताप, निश्चय, सत्य, ग्रहाण-(लेओ) आदि अर्थक अव्यय; २-१८०, १८१ ।
हं सर्व (अहम्) मैं, १-४० ।
हयासो वि. (हताशः) जिसकी आशा नष्ट हो गई हो वह, निराश; १-२०९ ।
हयासस्स वि (हताशस्य) हताश की, निराश की, २-१९५ ।
हरइ सक (हरति) वह हरण करता है, नष्ट करता है; १ १५५ ।
हरन्ति सक. (हरन्ति) वे हरण करते है; आकर्षित करते है; २-२०४ ।
हिअ वि (हृतम) हरण किया हुआ, चुराया हुआ, १-१२८ ।
ओहरइ सक. (अवहरति) वह अपहरण करता है, १७२ ।
अवहड वि. (अपहृतम्) चुराया हुआ, अपहरण किया हुआ, १-२०६ ।
आहड वि (आहृतम्) अपहरण करके, चुरा करके लाया हुआ, १-२०६ ।
वाहित्तं वि (व्याहृतम्) कहा हुआ; १-१२८
वाहिओ, वाहित्तो वि (व्याहृतः) उक्त, कथित, २-९९ ।
संहरइ सक (सहरति) वह हरण करता है, चुराता है; १-३० ।
हर पु (हर) महादेव, शकर, १-१८३ ।
हरस्स पु (हरस्य) हर की, महादेव की, शकर की, १-१५८ ।

हे अ (निपात विशेप) सबोधन, आह्वान, ईर्ष्या आदि अर्थक अव्यय, २-२१७।

हेट्ठं अ (अधस्) नीचे; २ १४१।

हेट्ठिल्ल वि. (अधस्तनम्) नीचे का, २-१६३।

हो अ (हो) विस्मय, आश्चर्य, सबोधन, आमन्त्रण अर्थक अव्यय; २-२१७।

होइ अक (भवति) वह होता है; १-९, २-२०६।

होही अ (भविष्यति) होगी; २-१८०।
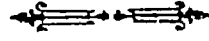
शुद्धि-पत्र

[ज्ञातव्यः—(१) प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रुफ-सशोधन में काफी ध्यान रखने पर भी दृष्टि-दोष-वशात् एवं भ्रम-वशात् यदि कोई अशुद्धि प्रतीत हो तो कृपालु पाठकगण उसे सुधार कर पढने की कृपा करें। शब्दों की सिद्धि और साधनिका में प्रत्येक स्थान पर अनेकानेक सूत्रों का सख्या-क्रम प्रदान करने की आवश्यकता पडी है अत हजारों शब्दों की सिद्धि में हजारों वार सूत्र-क्रम-सख्या का निर्देशन करना पडा है; ऐसी स्थिति में सूत्र-क्रम-सख्या में कहीं कहीं पर विपरीतता तथा असबद्धता प्रतीत हो तो विज्ञ-पाठक उसे सुधार कर पढ़ने का परम अनुग्रह करें।

(२) अनेक स्थानों पर छापते समय में दबाव के कारण से मात्राएँ टूट गई हैं; बैठ गई है अत उन्हें यथा-रीति से समझ पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

(३) विभिन्न वाक्यों में ' हूं" के स्थान पर "हैं" ही छप गया है, इसलिये इसका भी ध्यान रखें।

(४) "रेफ्" रूप "र्" भी कहीं कहीं पर टूट गया है, बैठ गया है; अत. इसका सबध भी यथोचित रीति से सयोजित कर लें। यही वात "अनुस्वार" के लिये भी जानना।

(५) अनेक शब्दों में टाइप की घिसावट के कारण से भी अक्षर अपने आप में पूरी तरह से व्यक्त नहीं हो सके है, ऐसी स्थिति में विचार-शील पाठक उनके सबध का अनुशीलन करके उनको पूर्ण रूप में सशोधित करने की महती कृपा करें। कहीं कहीं पर "व" के स्थान पर "व" और "व" के स्थान पर "ब" छप गया है।

(६) दृष्टि में आई हुई कुछ अशुद्धियों का स्थूल सशोधन यहां पर प्रदान किया जा रहा है, तदनुसार सुधार कर अध्ययन करने की कृपा करें, यही मुख्यत. विनति है।

(७) अनेक स्थानों पर "हलन्त अक्षरों" के स्थान पर पूर्ण रूप से अकारान्त अक्षर मुद्रित हो गये हैं, अत सबधानुसार उन्हें "हलन्त अक्षर" ही समझें।

(८) नीचे शुद्धि-पत्र में "पक्ति-सख्या" से तात्पर्य पाठ्य-पक्तियों से गणना करके तदनुसार "उचित" सख्या का निर्धारण करें। बॉर्डर से ऊपर की वाह्य पक्ति को सख्या रूप से नहीं गिनें। इति निवेदक—सपादक।]

पृष्ठ-सख्या	पक्ति-सख्या	अशुद्धांश	शुद्धांश
२	७, ११; १३	समानान्तर	समानानन्तर
१०	२५	इन्द-रुहिर लित्तो	दणु इन्द रुहिर-लित्तो
११	१६	रिधरः	नव वारिधर
६१	१३	३४	३५
६५	८,१०,	त.	अः
७१	४	विश्रम्मः	विश्रम्भ
७८	१५	ईषप्	ईषत्
८८	४	२-१२	२-११०

४. प्रकीर्णक व्यवहारः

प्रणुतानन्तगुणौघं प्रणिपत्य जिनेश्वरं महावीरम् । प्रणतजगत्त्रयवरदं प्रकीर्णकं गणितमभिधास्ये॥१॥
[1]विध्वस्तदुर्नयध्वान्तः सिद्धः स्याद्वादशासनः । विद्यानन्दो जिनो जीयाद्वादीन्द्रो मुनिपुङ्गवः ॥२॥

इतः परं प्रकीर्णकं तृतीयव्यवहारमुदाहरिष्यामः—

भागः शेषो मूलकं शेषमूलं स्यातां जाती द्वे द्विरग्रांशमूले ।
भागाभ्यासोऽत्रांशवर्गोऽथ मूलमिश्रं तस्माद्भिन्नदृश्यं दशामूः ॥ ३ ॥

१ B और M में यह श्लोक छूटा हुआ है ।

४ प्रकीर्णकव्यवहार

[भिन्नों पर विविध प्रश्न]

स्तवनीय अनन्त गुणों से पूर्ण और नमन करते हुए तीनों लोकों के जीवों को वर देने वाले जिनेश्वर महावीर को नमस्कार कर मैं भिन्नों पर विविध प्रश्नों का प्रतिपादन करूँगा ॥१॥ जिन्होंने दुर्नय के अंधकार का विध्वंस कर स्याद्वाद शासन को सिद्ध किया है, जो विद्यानन्द हैं, वादियों में अद्वितीय हैं और मुनिपुंगव हैं, ऐसे जिन सदा जयवंत हों। इसके पश्चात् मैं तीसरे विषय (भिन्नों पर विविध प्रश्न) का प्रतिपादन करूँगा ॥२॥ भिन्नों पर विविध प्रश्नों के दस प्रकार हैं: भाग, शेष, मूल, शेषमूल, द्विरग्रशेषमूल, अंशमूल, भागाभ्यास, अंशवर्ग, मूलमिश्र और भिन्नदृश्य ॥३॥

(३) 'भाग' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें निकाली जानेवाली कुल राशि के कुछ विभिन्न भिन्नीय भागों को हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है। हटाये गये भिन्नीय भाग में से प्रत्येक 'भाग' कहलाता है और ज्ञात शेष का संख्यात्मक मान 'दृश्य' कहलाता है।

'शेष' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें निकाली जानेवाली कुल राशि के ज्ञात भिन्नीय भाग को हटाने के पश्चात् अथवा उत्तरोत्तर शेष के कुछ ज्ञात भिन्नीय भाग हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'मूल' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुल राशि में से कुछ भिन्नीय भाग अथवा उस कुल राशि के वर्गमूल का गुणक घटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'शेषमूल', 'मूल' से केवल इस बात में भिन्न है कि यह वर्गमूल पूरी राशि के स्थान में उसका वर्गमूल होता है जो दिये गये भिन्नीय भागों को घटाने के पश्चात् शेष रूप में बचता है।

'द्विरग्रशेषमूल' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें ज्ञात वस्तुओं की संख्या पहिले हटाई जाती है; तब उत्तरोत्तर शेष के कुछ भिन्नीय भाग और तब अग्र शेष के वर्गमूल का कोई गुणक हटाया जाता है; और अन्त में शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है। प्रथम हटाई गई ज्ञात संख्या पूर्वाग्र कहलाती है।

'अंशमूल' प्रकार में कुल संख्या के भिन्नीय भाग के वर्गमूल के एक गुणक को हटाया जाता है और तब शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

तत्र भागजातिशेषजात्योः सूत्रम्—

भागोनरूपभक्तं दृश्यं फलमत्र भागजातिविधौ। अंशोनितरूपाहृतिहृतमग्रं शेषजातिविधौ ॥ ४ ॥

भागजातावुद्देशकः

दृष्टोऽष्टमं पृथिव्यां स्तम्भस्य त्र्यंशको मया तोये।
पादांश शैवाले कः स्तम्भ सप्त हस्ता. खे ॥ ५ ॥
षड्भाग. पाटलीपु भ्रमरवरततेस्तत्त्रिभागः कदम्बे
पादश्चूतद्रुमेपु प्रदलितकुसुमे चम्पके पञ्चमांशः।

भिन्नों पर विविध प्रश्नो में 'भाग' और 'शेष' भिन्नो सम्बन्धी नियम –

'भाग' प्रकार (भाग प्रकार की प्रक्रियाओं) में, ज्ञात भिन्न से ह्रासित १ के द्वारा दी गई राशि को भाजित कर चाहा हुआ फल प्राप्त किया जाता है। 'शेष' प्रकार की प्रक्रियाओ में, ज्ञात भिन्नों को एक में से क्रमश घटाने से प्राप्त राशियों के गुणनफल द्वारा दी गई राशि को भाजित कर इष्ट फल प्राप्त किया जाता है ॥४॥

'भाग' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न

मेरे द्वारा एक स्तम्भ का $\frac{१}{८}$ भाग जमीन में, $\frac{१}{३}$ पानी में $\frac{१}{४}$ काई में और ७ हस्त हवा में देखा गया। बतलाओ स्तम्भ की लम्बाई क्या है? ॥५॥ श्रेष्ठ भ्रमरों के समूह में से $\frac{१}{६}$ पाटली वृक्ष में, $\frac{१}{३}$ कदम्ब वृक्ष में, $\frac{१}{४}$ आम्र वृक्ष में, $\frac{१}{५}$ विकसित पुष्पों वाले चम्पक वृक्ष मे, $\frac{१}{३०}$ सूर्य किरणों द्वारा पूर्ण विकसित कमल वृन्द में आनन्द ले रहे थे और एक मत्त भृङ्ग आकाश में भ्रमण कर रहा था।

---

(४) 'भाग' प्रकार के सम्बन्ध में नियम बीजीय रूप से यह है $क = \frac{अ}{१ - ब}$ जहाँ क अज्ञात समुच्चय राशि है, जिसे निकालना है, अ 'दृश्य' अथवा अग्र है, और, ब दिया गया भाग अथवा दिये

'भागाभ्यास' अथवा 'भाग सम्वर्ग' प्रकार में, कुल सख्या के कुछ भिन्नीय भागों के गुणनफल अथवा गुणनफलों को दो, दो के संचय में लेकर उन्हें कुल संख्या में से घटाने से प्राप्त शेष भाग का सख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'अशवर्ग' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुल में से भिन्नीय भाग का वर्ग (जहा, यह भिन्नीय भाग दी गई सख्या द्वारा बढाया अथवा घटाया जाता है) हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'मूलमिश्र' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुछ दी गई संख्याओं द्वारा घटाई या बढ़ाई गई कुल संख्या के वर्गमूल में कुल के वर्गमूल को जोडने से प्राप्त योग का सख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'भिन्न दृश्य' प्रकार में कुल का भिन्नीय भाग, दूसरे भिन्नीय भाग द्वारा गुणित होकर, उसमें से हटा दिया जाता है और शेष भाग कुल के भिन्नीय भाग के रूप में निरुपित किया जाता है। यह विचारणीय है कि इस प्रकार में, अन्य प्रकारों की अपेक्षा शेष को कुल के भिन्नीय भाग के रूप में रखा जाता है।

फलभारनम्रकनम्रे शालिक्षेत्रे शुकाः समुपविष्टाः । सहसोत्थिता मनुष्यैः सर्वे संत्रासिताः सन्तः ॥१२॥
तेषामर्धं प्राचीमाग्नेयीं प्रति जगाम षड्भागः ।
पूर्वाग्नेयीशेषः स्वदलोनः स्वार्धवर्जितो याम्याम् ॥१३॥
याम्याग्नेयीशेषः स नैरृतीं स्वद्विपञ्चभागोनः । याम्योनैरृत्यंशकपरिशेषो वारुणीमाशाम् ॥१४॥
नैरृत्यपरविशेषो वायव्यां सस्वकत्रिसप्तांशः । वायव्यपरविशेषो युतस्वसप्ताष्टमः सौमीम् ॥१५॥
वायव्युत्तरयोर्युतिरैशानीं स्वत्रिभागयुगहीना । दशगुणिताष्टाविंशतिरवशिष्टा व्योम्नि कति कीराः॥१६॥
काचिद्वसन्तमासे प्रसूनफलगुच्छभारनम्रोद्याने ।
कुसुमासवरसरञ्जितशुककोकिलमधुपमधुरनिस्वननिचिते ॥१७॥
हिमकरधवले पृथुले सौधतले सान्द्ररुन्द्रमृदुतल्पे ।
फणिफणनितम्बबिम्बा कनदमलाभरणशोभाङ्गी ॥१८॥
पाठीनजठरनयना कठिनस्तनहारनम्रतनुमध्या ।
सह निजपतिना युवती रात्रौ प्रीत्यानुरममाणा ॥१९॥
प्रणयकलहे समुत्थे मुक्तामयकण्ठिका तदबलायाः ।
छिन्नावनौ निपतिता तत्त्र्यंशश्चेटिकां प्रापत् ॥२०॥
षड्भागः शय्यायामनन्तरान्तरार्धमितिभागाः । षट्संख्यानास्तस्याः सर्वे सर्वत्र संपतिताः ॥२१॥
एकाग्रषष्टिशतयुतसहस्रमुक्ताफलानि दृष्टानि । तन्मौक्तिकप्रमाणं प्रकीर्णकं वेत्सि चेत् कथय ॥२२॥

अर्द्ध राशि द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि के तोते दक्षिण दिशा की ओर उड़े। जो दक्षिण की ओर उड़े तथा आग्नेय दिशा में उड़े उनके अन्तर को, निज के $\frac{2}{5}$ भाग द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि के तोते दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य) दिशा में उड़े। जो नैऋत्य में उड़े तथा पश्चिम में उड़े, उनके अन्तर में उस निज के $\frac{3}{7}$ भाग को जोड़ने से प्राप्त संख्या के तोते उत्तर-पश्चिम (वायव्य) में उड़े। जो वायव्य और पश्चिम में उड़े उनके अन्तर में निज के $\frac{7}{8}$ भाग को जोड़ने से प्राप्त संख्या के तोते उत्तर दिशा में उड़े। जो वायव्य और उत्तर में उड़े उनका योगफल निज के $\frac{2}{3}$ भाग द्वारा ह्रासित होने से प्राप्त राशि के तोते उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में उड़े। तथा, २८० तोते ऊपर आकाश में शेष रहे। बतलाओ कुल कितने तोते थे? ॥१२–१६॥

वसन्त ऋतु के मास में एक रात्रि को, कोई . युवती अपने पति के साथ, फल और पुष्पों के गुच्छों से नम्रीभूत हुए वृक्षोंवाले, और फूलों से प्राप्त रस द्वारा मत्त शुक, कोयल तथा भ्रमरवृन्द के मधुर स्वरों से गुंजित बगीचे में स्थित . महल के फर्श पर सुख से तिष्ठी थी। तभी पति और पत्नी में प्रणयकलह होने के कारण, उस अबला के गले की मुक्तामयी कंठिका टूट गई और फर्श पर गिर पड़ी। उस मुक्ता के हार के $\frac{1}{3}$ मुक्ता दासी के पास पहुँचे, $\frac{1}{6}$ शय्या पर गिरे, तब शेष के $\frac{1}{2}$, और पुनः अग्रिम शेष के $\frac{1}{2}$ और फिर अग्रिम शेष के $\frac{1}{2}$, इसी तरह कुल ६ बार में प्राप्त मुक्ता राशि सर्वत्र गिरी। शेष बिना बिखरे हुए ११६१ मोती पाये गये। यदि तुम प्रकीर्णक भिन्नों का साधन करना जानते हो तो उस हार के मोतियों का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥१७-२२॥ स्फुरित इन्द्रनीलमणि समान नीले रंग

भिन्नीय भाग हैं। यह सूत्र निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त किया जा सकता है।

$$\text{क} - \text{ब}_1\text{क} - \text{ब}_2\,(\text{क} - \text{ब}_1\text{क}) - \text{ब}_3\,\{\text{क} - \text{ब}_1\text{क} - \text{ब}_2\,(\text{क} - \text{ब}_1\text{क})\} - (\text{इत्यादि}) \ldots\ldots = \text{अ}$$

(१७) कुछ शब्दों का अनुवाद छोड़ दिया गया है, जिन्हें पाठक मूल गाथा में देख सकते हैं।

स्फुरदिन्द्रनीलवर्णं[1] षट्पदवृन्दं प्रफुल्लितोद्याने। दृष्टं तस्याष्टांशोऽशोके कुटजे षडंशको लीनः ॥२३॥
कुटजाशोकविशेषः पञ्चगुणितो विपुलपाटलीषण्डे।
पाटल्यशोकशेषः स्वनवांशोनो विशालसालवने ॥२४॥
पाटल्यशोकशेषो युतः स्वसप्तांशकेन मधुकवने। षष्ठांशः संदृष्टो बकुलेषूत्फुल्लमुकुलेषु ॥२५॥
तिलकेषु कुरवकेषु च सरलेष्वाम्रेषु पद्मषण्डेषु। वनकरिकपोलमूलेष्वपि सन्तस्थे स पञ्चांशः ॥२६॥
किञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरकमलवने मधुकराश्चत्वारिंशत्। दृष्टा भ्रमरकुलस्य प्रमाणमाचक्ष्व गणक त्वम् ॥२७॥
गोयूथस्य त्रिविधेति पदं तदर्धं शैलमूले षट् तस्यांशा विपुलविपिने पूर्वपूर्वार्धमानाः।
संतिष्ठन्ते नगरनिकटे धेनवो दृश्यमाना द्वात्रिंशत् त्वं वद मम सखे गोकुलस्य प्रमाणम् ॥२८॥

इति भागजात्युद्देशकः।

शेषजात्युद्देशकः

षड्भागमाम्रराशे राजा शेषस्य पञ्चमं राज्ञी। तुर्यत्र्यंशदलानि त्रयोऽग्रहीषुः कुमारवराः ॥ २९ ॥
शेषाणि त्रीणि चूतानि कनिष्ठो दारकोऽग्रहीत्। तस्य प्रमाणमाचक्ष्व प्रकीर्णकविशारद ॥ ३० ॥
चरति गिरौ सत्र्यंशः करिणां षष्ठादिसार्धपाश्चात्याः।
प्रतिशेषांशा विपिने नवदृष्टाः सरसि कति ते स्युः ॥ ३१ ॥

---

१ M में 'स्फुरदिन्द्र', पाठ है।

वाले भ्रमरों के समूह (षट्पद वृन्द) को प्रफुल्लित उद्यान में देखा गया। उस समूह का $\frac{1}{8}$ भाग अशोक वृक्षों में तथा $\frac{1}{6}$ भाग कुटज वृक्षों में छिप गया। जो क्रमशः कुटज और अशोक वृक्षों में छिप गये उन समूहों के अंतर को ५ द्वारा गुणित करने से प्राप्त भ्रमरों की राशि विपुल पाटली वृक्षों के समूह में छिप गई। पाटली और अशोक वृक्षों के भ्रमर समूहों के अन्तर को निज के $\frac{1}{9}$ भाग द्वारा ह्रसित करने से प्राप्त भ्रमर राशि विशाल साल वृक्षों के वन में छिप गई। उसी अंतर को निज के $\frac{1}{7}$ भाग में मिलाने से प्राप्त भ्रमर राशि मधुक वृक्षों के वन में छिप गई। कुल समूह की $\frac{1}{6}$ भ्रमरराशि अच्छी तरह खिलीहुई कलियों वाले बकुल वृक्षों में छिपी देखी गई और वही $\frac{1}{5}$ भ्रमर राशि तिलक, कुरवक, सरल और आम के वृक्षों में, कमलों के समूह में और वनहस्तियों वाले मंदिरों के मूल में छिप गई। और, शेष ४० भ्रमर पराग राशि के विविध रंगों से व्याप्त कमल वन में देखे गये। हे गणितज्ञ ! भ्रमर समूह का संख्यात्मक मान दो ॥२३-२७॥ गोकुल (पशुओं के झुण्ड) में से $\frac{1}{3}$ भाग पर्वत पर है; उसका $\frac{1}{2}$ भाग पर्वत के मूल में है। ऐसे ही ६ और भाग (जिनमें से प्रत्येक उत्तरोत्तर पूर्ववर्ती भाग का आधा है), किसी विपुल वन में है। शेष ३२ गायें नगर के निकट देखी जाती हैं। हे मेरे मित्र ! उस पशु झुण्ड का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥२८॥

इस प्रकार 'भाग' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न समाप्त हुए।

'शेष' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न

आम फलों के समूह में से राजा ने $\frac{1}{6}$ भाग लिया; रानी ने शेष का $\frac{1}{5}$ भाग लिया और प्रमुख राजकुमारों ने उसी शेष के क्रमशः $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{2}$ भाग लिये। सबसे छोटे ने शेष ३ आम लिये। हे प्रकीर्णक विशारद ! आमसमूह का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥२९-३०॥ हाथियों के झुण्ड का $\frac{1}{3}$ भाग पर्वत पर विचरण कर रहा है। क्रम से उत्तरोत्तर शेष के $\frac{1}{6}$ भाग को आदि लेकर $\frac{1}{2}$ तक झुण्ड मात्रा वन में डोल रही है। शेष ९ सरोवर के निकट हैं। बतलाओ कि वे कितने हाथी हैं ? ॥३१॥

कोष्ठस्य लेभे नवमांशमेक. परेऽष्टभागादिदलान्तिमांशान् ।
शेषस्य शेषस्य पुन' पुराणा दृष्टा मया द्वादश तत्प्रमा का ॥ ३२ ॥

इति शेषजात्युदेशक ।

अथ मूलजातौ सूत्रम्—

मूलार्धाग्रे छिन्द्यादशोनैकेन युक्तमूलकृते. । दृश्यस्य पदं सपद वर्गितमिह मूलजातौ स्वम ॥३३॥

अत्रोद्देशकः

दृष्टोऽटव्यामुष्ट्रयूथस्य पादो मूले च द्वे शैलसानौ निविष्टे ।
उष्ट्राश्चिन्ना पञ्च नद्यास्तु तीरे किं तस्य स्यादुष्ट्रकस्य प्रमाणम् ॥ ३४ ॥

श्रुत्वा वर्षाभ्रमालापटहपटुरव शैलशृङ्गोरुरङ्गे
नाट्यं चक्रे प्रमोदप्रमुदितशिखिनां षोडशांशोऽष्टमश्च ।
त्र्यंश शेषस्य षष्ठो वरबकुलवने पञ्च मूलानि तस्थु
पुन्नागे पञ्च दृष्टा भण गणक गणं बर्हिणां सगुणाग्य ॥ ३५ ॥

१ B में 'हस्ति' पाठ है ।　　　　२ B मे 'नागाः' पाठ है ।
३ B में 'किं स्यात्तेषा कुञ्जगणा प्रमाणम्' पाठ है ।

एक आदमी को खजाने का $\frac{१}{९}$ भाग मिला । दूसरों को उत्तरोत्तर शेषों के $\frac{१}{८}$ से आरम्भ कर, क्रम से $\frac{१}{२}$ तक भाग मिले । अंत में शेष १२ पुराण मुझे दिखे । बतलाओ कि कोष्ठ में कितने पुराण हैं ? ॥३२॥

इस तरह शेष जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न समाप्त हुए ।

'मूल' जाति सम्बन्धी नियम—

अज्ञात राशि के वर्गमूल का आधा गुणाक (वार द्योतक coefficient) और ज्ञात शेष में से प्रत्येक को अज्ञात राशि के भिन्नीय गुणांक से ह्रासित एक द्वारा भाजित करना चाहिये । इस तरह बटे हुए ज्ञात शेष को अज्ञात राशि के वर्गमूल के गुणांक के वर्ग में जोड़ते हैं । प्राप्त राशि के वर्गमूल में इसी प्रकार बटे हुए अज्ञात राशि के वर्गमूल के गुणांक को जोड़ते हैं । तत्पश्चात् परिणामी राशि का पूर्ण वर्ग करने पर, इस मूल प्रकार में इष्ट अज्ञात राशि प्राप्त होती है ॥३३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊँटों के झुण्ड का $\frac{१}{४}$ भाग वन में देखा गया । उस झुण्ड के वर्गमूल का दुगुना भाग पर्वत के उतारों पर देखा गया । ५ ऊँटों के तिगुने, नदी के तीर पर देखे गये । ऊँटों की कुल संख्या क्या है ? ॥३४॥ वर्षा ऋतु में, घनावलि द्वारा उत्पन्न हुई स्पष्ट ध्वनि सुनकर, मयूरों के समूह के $\frac{१}{१६}$ और $\frac{१}{८}$ भाग तथा शेष का $\frac{१}{३}$ भाग और तत्पश्चात् शेष का $\frac{१}{६}$ भाग, आनन्दातिरेक होकर पर्वत शिखररूपी विशाल नाट्यशाला पर नाचते रहे । उस समूह के वर्गमूल के पाँचगुने बकुल वृक्षों के उत्कृष्ट वन में ठहरे रहे । और, शेष ५ पुन्नाग वृक्ष पर देखे गये । हे गणितज्ञ ! गणना करके कुल मयूरों की संख्या बतलाओ ॥३५॥ किसी अज्ञात संख्या वाले सारस पक्षियों के झुण्ड का $\frac{१}{४}$ भाग कमल षण्ड (समूह)

---

(३३) बीजीय रूप से, यह नियम निम्नलिखित रूप में आता है—यहाँ अज्ञात राशि 'क' है ।

$$क = \left\{ \frac{स/२}{१-ब} + \sqrt{\frac{अ}{१-ब} + \left(\frac{स/२}{१-ब}\right)^२} \right\}^२,$$

यह, समीकरण $क - (बक + स\sqrt{क} + अ) = ०$ के द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है ।

अत्रोद्देशकः

गजयूथस्य त्र्यंशः शेषपद च त्रिसंगुण सानौ ।
सरसि त्रिहस्तिनीभिर्नागो दृष्टः कतीह गजा. ॥ ४१ ॥
निर्जन्तुकप्रदेशे नानाद्रुमषण्डमण्डितोद्याने । आसीनानां यमिनां मूल तरुमूलयोगयुतम् ॥ ४२ ॥
शेषस्य दशमभागो मूल नवमोऽथ मूलमष्टाश' । मूलं सप्तममूल षष्ठो मूलं च पञ्चमो मूलं ॥ ४३ ॥
एते भागा. काव्यप्रवचनधर्मप्रमाणनयविद्या ।
वादच्छन्दोज्यौतिषमन्त्रालङ्कारशब्दज्ञाः ॥ ४४ ॥
द्वादशतप'प्रभावा द्वादशभेदाङ्गशास्त्रकुशलधिय ।
द्वादश मुनयो दृष्टा कियती मुनिचन्द्र यतिसमिति ॥ ४५ ॥
मूलानि पञ्च चरणेन युतानि सानौ शेषस्य पञ्चनवम करिणां नगाग्रे ।
मूलानि पञ्च सरसीजवने रमन्ते नद्यास्तटे षडिह ते द्विरदाः कियन्त. ॥ ४६ ॥

इति शेषमूलजातिः ।

1 B में शेषस्य पदं त्रिसगुण पाठ है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

हाथियों के यूथ (झुंड) का $\frac{1}{3}$ भाग तथा शेष भाग की वर्गमूल राशि के हाथी, पर्वतीय उतार पर देखे गये । शेष एक हाथो ३ हस्तिनियों के साथ एक सरोवर के किनारे देखा गया । बतलाओ कितने हाथी थे ? ॥ ४१ ॥ कई प्रकार के वृक्षों के समूह द्वारा मंडित उद्यान के निर्जन्तुक प्रदेश में कई साधु आसीन थे । उनमें से कुल के वर्गमूल की सख्या के साधु तरुमूल में बैठे हुए योगाभ्यास कर रहे थे । शेष के $\frac{1}{10}$, (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल, (इसको घटाकर) शेष के $\frac{1}{9}$, (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{8}$, (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{7}$, (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल, (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{6}$, (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{5}$, इसको घटाकर शेष के वर्गमूल द्वारा निरूपित संख्याओं वाले वे थे जो (क्रमशः) काव्य प्रवचन, धर्म, प्रमाण नयविद्या, वाद, छन्द, ज्योतिष, मंत्र, अलंकार और शब्द शास्त्र (व्याकरण) जानने वाले थे, तथा वे भी थे जो बारह प्रकार के तप के प्रभाव से प्राप्त होनेवाली ऋद्धियों के धारी थे, तथा बारह प्रकार के अग शास्त्र को कुशलता पूर्वक जानने वाले थे । इनके अतिरिक्त अंत में १२ मुनि देखे गये । हे मुनिचद्र ! बतलाओ कि यति समिति का सख्यात्मक मान क्या था ? ॥ ४२–४५ ॥ हाथियों के समूह के वर्गमूल का ५$\frac{1}{4}$ गुना भाग पर्वतीय उतार पर क्रीड़ा कर रहा है, शेष का $\frac{5}{9}$ भाग पर्वत के शिखर पर क्रीड़ा कर रहा है । (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल प्रमाण हस्तीगण कमल के वन में रमण कर रहा है । और, शेष ६ हस्ती नदी के तीर पर हैं । यहाँ सब हस्ती कितने हैं ? ॥ ४६ ॥

इस प्रकार, 'शेषमूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

"द्विरग्र शेष मूल" जाति [शेषों की सरचना करने वाली दो ज्ञात राशियों वाले 'शेषमूल' प्रकार] सम्बन्धी नियम—

(समूह वाचक अज्ञात राशि के) वर्गमूल का गुणाक, और (शेष रहने वाली) अंतिम ज्ञात

(स$\sqrt{\text{क} - \text{वक}}$ + अ) = ० द्वारा उपर्युक्त क – वक का मान सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है । यहाँ भी 'क' अज्ञात राशि है ।

तरुणहरिणीयुग्म दृष्टं द्विसगुणितं वने कुधरनिकटे शेषा पञ्चाशकादिदलान्तिमा ।
विपुलकलमक्षेत्रे तासा पद त्रिभिराहत कमलसरसीतीरे तस्थुर्दशैव गण. क्रियान् ॥ ५० ॥

इति द्विरग्रशेषमूलजाति ।

अथांशमूलजातौ सूत्रम्—

भागगुणे मूलाग्रे न्यस्य पदप्रामदृश्यकरणेन । यल्लब्ध भागहृत धन भवेदंशमूलविधौ ॥ ५१ ॥

अन्यदपि सूत्रम्—

दृश्यादंशकभक्ताच्चतुर्गुणान्मूलकृतियुतान्मूलम् । सपद दलित वर्गितमंशाभ्यस्तं भवेत् सारम् ॥५२॥

के ½ वे भाग से लेकर ½ वें भाग तक के भिन्नीय भाग पर्वत के पास देखे गये । उस झुण्ड के संख्यात्मक मान के वर्गमूल की तिगुनी राशि विस्तृत कलम (चावल) क्षेत्र मे देखी गई । अंत में, कमल सरोवर के किनारे शेष केवल १० देखे गये । झुण्ड का प्रमाण क्या है ? ॥५०॥

इस प्रकार 'द्विरग्र शेषमूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

"अशमूल" जाति सम्बन्धी नियम—

अज्ञात समूह वाचक राशि के दिये गये भिन्नीय भाग के वर्गमूल के गुणाक को तथा अत में शेष रहनेवाली ज्ञात राशिको लिखो । इन दोनों राशियो को दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा गुणित करो । जो 'शेषमूल' प्रकार में अज्ञात राशिको निकालने की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है, उस फल को जब दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा भाजित करते है तब अशमूल प्रकार की इष्ट राशि प्राप्त होती है । ॥५१॥

'अशमूल' प्रकार का अन्य नियम—

अतिम शेष के रूप में दी गई ज्ञात राशि दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा भाजित की जाती है और ४ द्वारा गुणित की जाती है । प्राप्त फल में अज्ञात समूह वाचक राशि के दत्त भिन्न के वर्गमूल के गुणांक का वर्ग जोड़ा जाता है । इस योगफल के वर्गमूल को ऊपर कथित अज्ञात राशि के भिन्नीय भाग के वर्गमूल के गुणाक में जोड़ते हैं और तब आधा कर वर्गित करते हैं । प्राप्त फल को दत्त समानुपाती भिन्न द्वारा गुणित करने पर इष्ट फल प्राप्त होता है । ॥५२॥

---

(५०) इस गाथा में आया हुआ शब्द 'हरिणी" का अर्थ न केवल मादा हरिण होता है वरन् उस छन्द का भी नाम होता है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है ।

(५१) बीजीय रूप से कथन करने पर, यह नियम 'स ब' और 'अ ब' के मान निकालने में सहायक होता है, जिनका प्रतिस्थापन, शेषमूल प्रकार में किये गये अनुसार सूत्र $क - बक = \left\{ \frac{स}{२} + \sqrt{\left(\frac{स}{२}\right)^२ + अ} \right\}^२$ में क्रमश स और अ के स्थान पर करना पड़ता है । ४७ वीं गाथा के टिप्पण के समान, क – बक यहाँ भी क हो जाता है । इष्ट प्रतिस्थापन के पश्चात् और फल को ब द्वारा विभाजित करने पर हमें $क = \left\{ \frac{सब}{२} + \sqrt{\left(\frac{सब}{२}\right)^२ + अब} \right\}^२ - ब$ प्राप्त होता है ।

क का यह मान समीकरण $क - स\sqrt{बक} - अ = ०$ से भी सरलता से प्राप्त हो सकता है ।

(५२) बीजीय रूप से कथन करने पर, $क = \left\{ \frac{स + \sqrt{स^२ + \frac{४अ}{ब}}}{२} \right\}^२ \times ब$ होता है । यह पिछली गाथा के टिप्पण में दिये गये समीकार से भी स्पष्ट है ।

अत्रोद्देशकः

अष्टमं षोडशांशघ्नं शालिराशेः कृषीवलः । चतुर्विंशतिवाहांश्च लेभे राशिः क्रियान् वद ॥ ५८ ॥
शिखिनां षोडशभागः स्वगुणश्चूते तमालषण्डेऽस्थात् ।
शेषनवांशः स्वहतश्चतुरग्रदशापि कति ते स्युः ॥ ५९ ॥
जले त्रिंशदृशाहतो द्वादशांशः स्थितः शेषविंशो हृत षोडशेन ।
त्रिनिघ्नेन पङ्के करा विंशतिः खे सखे स्तम्भदैर्घ्यस्य मानं वद त्वम् ॥ ६० ॥

इति भागसंवर्गजातिः ।

अथोनाधिकांशवर्गजातौ सूत्रम्—
स्वांशकभक्तहरार्धं न्यूनयुगधिकोनितं च तद्वर्गात् ।
न्यूनाधिकवर्गाग्रान्मूलं स्वर्णं फलं पदेऽशहृतम् ॥ ६१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई कृषक शालि के ढेरी की $\frac{1}{8}$ भाग प्रमाण राशि द्वारा गुणित उसी ढेरी की $\frac{1}{16}$ भाग प्रमाण राशि को प्राप्त करता है। इसके सिवाय उसके पास २४ वाह और रहती है। बतलाओ ढेरी का परिमाण क्या है? ॥५८॥ झुंड के $\frac{1}{16}$ वें भाग द्वारा गुणित मयूरों के झुंड का $\frac{1}{16}$ वा भाग, आम के वृक्ष पर पाया गया। स्व [अर्थात् शेष के $\frac{1}{9}$ वें भाग] द्वारा गुणित शेष का $\frac{1}{9}$ वा भाग, तथा शेष १४ मयूरों को तमाल वृक्ष के झुंड में देखा गया। बतलाओ वे कुल कितने हैं? ॥५९॥ किसी स्तम्भ के $\frac{1}{12}$ वें भाग को स्तम्भ के $\frac{1}{30}$ वें भाग द्वारा गुणित करने से प्राप्त भाग पानी के नीचे पाया गया। शेष के $\frac{1}{20}$ वें भाग को उसी शेष के $\frac{3}{16}$ वें भाग द्वारा गुणित करने से प्राप्त भाग कीचड़ में गड़ा हुआ पाया गया। शेष २० हस्त पानी के ऊपर हवा में पाया गया। हे मित्र! स्तम्भ की लम्बाई बताओ। ॥६०॥ इस प्रकार, "भाग संवर्ग" जाति प्रकरण समाप्त हुआ।

ऊनाधिक 'अंशवर्ग' जाति सम्बन्धी नियम—

(अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग के) हर की अर्द्ध राशि के स्व अंश द्वारा विभाजित करने से प्राप्त राशियों को (समूह वाचक अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग में से घटाई जाने वाली) दी गई ज्ञात राशि द्वारा मिश्रित अथवा ह्रासित करो। इस परिणामी राशि के वर्ग को (घटाई जाने वाली अथवा जोड़ी जाने वाली) ज्ञात राशि के वर्ग द्वारा तथा राशि के ज्ञात शेष द्वारा ह्रासित करो। जो फल मिले उसका वर्गमूल निकालो। इस वर्गमूल द्वारा उपर्युक्त प्रथम वर्ग राशि का वर्गमूल मिश्रित अथवा ह्रासित किया जाता है। जब प्राप्त राशि को अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग द्वारा विभाजित करते हैं तब अज्ञात राशि की इष्ट अर्हा (value) प्राप्त होती है ॥६१॥

इस अर्हा को समीकार $क - \frac{म}{न} क \times \frac{प}{फ} क - अ = ०$ द्वारा भी प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ म/न और प/फ नियम में अवेक्षित भिन्न हैं।

(६१) बीजीय रूप से, $क = \left\{ \pm\sqrt{\left(\frac{न}{२म} \pm द\right)^२ - द^२ - अ} + \left(\frac{न}{२म} \pm द\right) \right\} - \frac{म}{न}$,
क की यह अर्हा समीकार, $क - \left(\frac{म}{न} क \mp द\right)^२ - अ = ०$, द्वारा भी प्राप्त हो सकती है, जहाँ द दी गई ज्ञात राशि है, जो अज्ञात राशि के इस उल्लिखित भिन्नीय भाग में से घटाई जाती है अथवा उसमें जोड़ी जाती है।

हीनालाप उद्देशकः

मूल कपोतवृन्दस्य द्वादशोनस्य चापि यत्। तयोर्योगे कपोता. षड् दृष्टास्तन्निकरः कियान् ॥६६॥
पारावतीयसंघे चतुर्घनोनेऽपि तत्र यन्मूलम्। तद्द्वययोग. षोडश तद्वृन्दे कति विहङ्गा' स्यु. ॥६७॥

अधिकालाप उद्देशकः

राजहसनिकरस्य यत्पद साष्टषष्टिसहितस्य चैतयो' ।
संयुतिर्द्विकविहीनषट्कृतिस्तद्गणे कति मरालका वद ॥ ६८ ॥

इति मूलमिश्रजातिः ।

अथ भिन्नदृश्यजातौ सूत्रम्—

दृश्यांशोने रूपे भागाभ्यासेन भाजिते तत्र । यल्लब्धं तत्सारं प्रजायते भिन्नदृश्यविधौ ॥ ६९ ॥

अत्रोद्देशकः

सिकतायामष्टांश' संदृष्टोऽष्टादशांशसंगुणितः । स्तम्भस्यार्धं दृष्टं स्तम्भायाम' कियान् कथय ॥७०॥

१ B में 'योगः', पाठ है ।　　　　२ B, M और K में 'गगने' पाठ है ।

हीनालाप के उदाहरणार्थ प्रश्न

कपोतों की कुल संख्या के वर्गमूल में १२ द्वारा ह्रासित कपोतों की कुल संख्या के वर्गमूल को जोड़ने पर (ठीक फल) ६ कबूतर प्रमाण देखने में आता है । उस वृन्द के कपोतों की कुल संख्या क्या है ? ॥ ६६ ॥ कपोतों के कुल समूह का वर्गमूल, तथा ४ के घन द्वारा ह्रासित कपोतों की कुल संख्या का वर्गमूल निकालकर इन (दोनों राशियों) का योग १६ प्राप्त होता है । बतलाओ समूह में कुल कितने विहग हैं ? ॥ ६७ ॥

अधिकालाप का उदाहरणार्थ प्रश्न

राजहंसों के समूह के संख्यात्मक मान का वर्गमूल तथा ६८ अधिक उसी समूह की संख्या का वर्गमूल (निकालने से प्राप्त) इन (दोनों राशियों) का योग $६^२ - २$ होता है । बतलाओ उस समूह में कितने हंस हैं ? ॥ ६८ ॥

इस प्रकार 'मूल मिश्र' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

'भिन्न दृश्य' जाति सम्बन्धी नियम—

जब एक को (अज्ञात राशियों से सम्बन्धित दी गई) भिन्नीय शेष राशि द्वारा ह्रासित कर (सम्बन्धित विशिष्ट) भिन्नीय भागों के गुणन फल द्वारा भाजित करते हैं, तब प्राप्त फल (भिन्नों पर प्रश्नों के) 'भिन्न दृश्य' प्रकार का साधन करने में, इष्ट उत्तर होता है ॥ ६९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी स्तम्भ का $\frac{१}{८}$ भाग, उसी स्तम्भ के $\frac{१}{१८}$ भाग द्वारा गुणित होता है । इससे प्राप्त भाग प्रमाण रेत में गड़ा हुआ पाया गया । उस स्तम्भ का $\frac{१}{२}$ भाग ऊपर दृष्टिगोचर हुआ । बतलाओ कि स्तम्भ की (उदग्र vertical) लम्बाई क्या है ? ॥ ७० ॥ कुल हाथियों के झुंड के $\frac{१}{२६}$ वें भाग

(६९) बीजीय रूप से, $क = \left(१ - \frac{र}{य}\right) - \frac{मप}{नफ}$ है । यह, समीकरण $क - \frac{म}{न}क \times \frac{प}{फ}क -$

५. त्रैराशिकव्यवहारः

त्रिलोकवन्धवे तस्मै केवलज्ञानभानवे । नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूताखिलकर्मणे ॥ १ ॥
इत. पर त्रैराशिक चतुर्थव्यवहारमुदाहरिष्याम ।

तत्र करणसूत्र यथा—

त्रैराशिकेऽत्र सार फलमिच्छासंगुणं प्रमाणाप्तम् ।
इच्छाप्रमयो साम्ये विपरीतेय क्रिया व्यस्ते ॥ २ ॥

पूर्वार्धोद्देशकः

दिवसैस्त्रिभि सपादैर्योजनषट्कं चतुर्थभागोनम् । गच्छति यः पुरुषोऽसौ दिनयुतवर्षेण कि कथय ॥३॥
व्यर्धाष्टाभिरहोभि क्रोशाष्टांश स्वपञ्चम याति ।
पङ्गु. सपञ्चभागैर्वर्षैस्त्रिभिरत्र किं ब्रूहि ॥ ४ ॥
अङ्गुलचतुर्थभाग प्रयाति कीटो दिनाष्टभागेन । मेरोर्मूलाच्छिखर कतिभिरोहोभि. समाप्नोति ॥५॥

१ P, K और M में स्व के लिये स पाठ है ।

५. त्रैराशिकव्यवहार

तीनों लोकों के बन्धु तथा सूर्य के समान केवल ज्ञान के धारी श्री वर्द्धमान को नमस्कार है जिन्होंने समस्त कर्म (मल) को निर्धूत कर दिया है । ॥१॥

इसके पश्चात्, हम त्रैराशिक नामक चतुर्थ व्यवहार का प्रतिपादन करेंगे ।

त्रैराशिक सम्बन्धी नियम—

यहाँ त्रैराशिक नियम में, फल को इच्छा द्वारा गुणित कर प्रमाण द्वारा विभाजित करने से इष्ट उत्तर प्राप्त होता है, जब कि इच्छा और प्रमाण समान (अनुक्रम direct अनुपात में) होते हैं । जब यह अनुपात प्रतिलोम (inverse) होता है तब यह गुणन तथा भाग की क्रिया विपरीत हो जाती है (ताकि भाग की जगह गुणन हो और गुणन के स्थान में भाग हो) । ॥२॥

पूर्वार्ध, अनुक्रम त्रैराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

वह मनुष्य जो ३$\frac{१}{४}$ दिन में ५$\frac{३}{४}$ योजन जाता है, १ वर्ष और १ दिन में कितनी दूर जाता है ? ॥३॥ एक लगड़ा मनुष्य ७$\frac{१}{२}$ दिन में एक क्रोश का $\frac{१}{८}$ तथा उसका $\frac{१}{५}$ भाग चलता है । बतलाओ वह ३$\frac{१}{५}$ वर्षों में कितनी दूरी तय करता है ? ॥४॥ एक कीड़ा $\frac{१}{८}$ दिन में $\frac{१}{४}$ अगुल चलता है । बतलाओ कि वह मेरुपर्वत की तली से उसके शिखर पर कब पहुँचेगा ? ॥५॥ वह मनुष्य जो ३$\frac{१}{२}$ दिन में १$\frac{१}{४}$ कार्षा-

(२) प्रमाण और फल के द्वारा अर्घ (rate) प्राप्त होती है । फल, इष्ट उत्तर के समान राशि होती है और प्रमाण, इच्छा के समान होता है । 'इच्छा' वह राशि है जिसके विषय में, किसी अर्घ (दर) से, कोई वस्तु निकालना होती है । जैसे कि गाथा ३ के प्रश्न में $\frac{१}{४}$ दिन प्रमाण है, ५$\frac{३}{४}$ योजन फल है, और १ वर्ष १ दिन इच्छा है ।

(५) मेरु पर्वत की ऊँचाई ९९,००० योजन अथवा ७६,०३२,०००,००० अंगुल मानी जाती है ।

मुद्गद्रोणयुगं नवाज्यकुडबान् षट् तण्डुलद्रोणका-
नष्टौ वस्त्रयुगानि वत्ससहिता गाष्षट् सुवर्णत्रयम् ।
संक्रान्तौ ददता नराधिपतिना षड्भ्यो द्विजेभ्य[1] सखे
षड्त्रिंशत्त्रिशतेभ्य आशु वद किं तद्दत्तमुद्गादिकम् ॥ १७ ॥

इति त्रैराशिक. ।

व्यस्तत्रैराशिके तुरीयपादस्योद्देशकः

कल्याणकनकनवतेः कियन्ति नववर्णकानि कनकानि ।
साष्टांशकदशवर्णकसगुञ्जहेम्नां शतस्यापि ॥ १८ ॥
व्यासेन दैर्घ्येण च षट्कराणां चीनाम्बराणां त्रिशतानि तानि ।
त्रिपञ्चहस्तानि कियन्ति सन्ति व्यस्तानुपातक्रमविद्वद त्वम् ॥ १९ ॥

इति व्यस्तत्रैराशिक' ।

व्यस्तपञ्चराशिक उद्देशकः

पञ्चनवहस्तविस्तृतदैर्घ्याया चीनवस्त्रसप्तत्याम् । द्वित्रिकरव्यासायति तच्छुतवस्त्राणि कति कथय ॥२०॥

१　इस श्लोक के स्थान में B और K में निम्न पाठ है—
दुग्धद्रोणयुग नवाज्यकुडबान् षट् शर्कराद्रोणकानष्टौ चोचफलानि सान्द्रदधिखार्यष्षट् पुराणत्रयम् ।
श्रीखण्डं ददता नृपेण सवनार्थे षड्जिनागारके षट्त्रिंशत्त्रिशतेषु मित्र वद मे तद्दत्तदुग्धादिकम् ॥

---

६ ब्राह्मणों को २ द्रोण मुद्ग (kidney-bean), ६ कुडब घी, ६ द्रोण चावल, ८ युग्म (pairs) कपड़े, ६ बछड़ों सहित गायें और ३ सुवर्ण दिये । हे मित्र ! शीघ्र बतलाओ कि उसने ३३६ ब्राह्मणों को कितनी-कितनी मुद्गादि अन्य वस्तुएँ दी ? ॥१७॥

इस प्रकार अनुक्रम त्रैराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

चौथे पाद* के अनुसार व्यस्त त्रैराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

शुद्ध स्वर्ण के ९० के लिये ९ वर्ण का स्वर्ण कितना होगा, तथा १० $\frac{1}{8}$ वर्ण के स्वर्ण की बनी हुई गुंज सहित १०० स्वर्ण (धरण) के लिये (९ वर्ण का स्वर्ण) कितना होगा ? ॥१८॥ ६ हस्त लम्बे और ६ हस्त चौड़े चीनी रेशम के टुकड़े ३०० टुकड़े हैं । हे व्यस्त अनुपात की रीति जानने वाले, बतलाओ कि उसी रेशम के ५ हस्त लम्बे, ३ हस्त चौड़े कितने टुकड़े उनमें से मिल सकेंगे ॥१९॥

इस प्रकार व्यस्त त्रैराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

व्यस्त पंचराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

९ हस्त लम्बे, ५ हस्त चौड़े ७० चीनी रेशम के टुकड़ों में २ हस्त चौड़े और ३ हस्त लम्बे माप के कितने टुकड़े प्राप्त हो सकेंगे ? ॥२०॥

पानी की मात्रा निकालने के लिये घन माप तथा द्रव माप मे सम्बन्ध दिया जाना चाहिये था । P में की सस्कृत और B में की कन्नडी टीकाओं के अनुसार १ घन अगुल पानी, द्रव माप में १ कर्ष के बराबर होता है ।

(१७) एक राशि से दूसरी राशि में सूर्य के पहुँचने के मार्ग को संक्राति कहते हैं ।

(१८) शुद्ध स्वर्ण यहाँ १६ वर्ण का लिया गया है ।

* यहाँ इस अध्याय की दूसरी गाथा के चौथे चतुर्थांश का निर्देश है ।

सपादहेम त्रिदिनैः सपञ्चमैर्नरोऽर्जयन् व्येति सुवर्णतुर्यकम् ।
निजाष्टम पञ्चदिनैर्दलोनितैः स केन कालेन लभेत सप्ततिम् ॥ २६ ॥
गन्धेभो मदलुब्धषट्पदपदप्रोद्भिन्नगण्डस्थल
सार्धं योजनपञ्चमं व्रजति यः पड्भिर्दलोनैर्दिनैः ।
प्रत्यायाति दिनैस्त्रिभिश्च सदलैः क्रोशद्विपञ्चांशक
ब्रूहि क्रोशदलोनयोजनशतं कालेन केनाप्नुयात् ॥ २७ ॥
वापी पयः प्रपूर्णा दशदण्डसमुच्छ्रिताब्जमिह जातम् ।
अङ्गुल्युगलं सदल प्रवर्धते सार्धदिवसेन ॥ २८ ॥
निस्सरति यन्त्रतोऽम्भः सार्धेनाह्नाङ्गुले सविंशे द्वे ।
शुष्यति दिनेन सलिलं सपञ्चमाङ्गुलकमिनकिरणैः ॥ २९ ॥
कूर्मो नालमधस्तात् सपादपञ्चाङ्गुलानि चाकृषति ।
सार्धस्त्रिदिनैः पद्म तोयसमं केन कालेन ॥ ३० ॥
द्वात्रिंशद्धस्तदीर्घः प्रविशति विवरे पञ्चभिः सप्तमार्धैः
कृष्णाहीन्द्रो दिनस्यासुरवपुरजितः सार्धसप्ताङ्गुलानि ।
पादेनाह्नोऽङ्गुले द्वे त्रिचरणसहिते वर्धते तस्य पुच्छ
रन्ध्र कालेन केन प्रविशति गणकोत्तस मे ब्रूहि सोऽयम् ॥ ३१ ॥

इति गतिनिवृत्तिः ।

मुद्रा कमाता है, ४$\frac{१}{२}$ दिन में $\frac{१}{४}$ स्वर्ण मुद्रा तथा उस ($\frac{१}{४}$) की $\frac{१}{८}$ स्वर्णमुद्रा खर्च करता है, बतलाओ कि वह ७० स्वर्ण मुद्रायें कितने दिनों में बचा सकेगा ? ॥२६॥ एक श्रेष्ठ हाथी, जिसके गण्ड स्थल पर क्षरते हुए मद की सुगन्ध से लुब्ध भ्रमर राशि पदों द्वारा आक्रमण कर रही है, ५$\frac{१}{२}$ दिन में एक योजन का $\frac{१}{५}$ भाग तथा $\frac{१}{२}$ भाग चलता है, और, ३$\frac{१}{२}$ दिन में $\frac{२}{५}$ क्रोश पीछे हट जाता है, बतलाओ कि वह $\frac{१}{२}$ क्रोश कम १०० योजन की कुल दूरी कितने समय में तय करेगा ? ॥२७॥ एक वापिका पानी से पूरी भरी रहने पर गहराई मे दश दण्ड रहती है । अंकुरित होता हुआ एक कमल तली से १$\frac{१}{२}$ दिन में २$\frac{१}{२}$ अगुल के अर्घ (rate) से ऊगता है । यन्त्र द्वारा १$\frac{१}{२}$ दिन में वापिका का पानी निकल जाने से पानी की गहराई २$\frac{१}{२०}$ अगुल कम हो जाती है । और, सूर्य की किरणों द्वारा १$\frac{१}{५}$ अंगुल (गहराई का) पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है, तथा, एक कछुआ कमल की नाल को ३$\frac{१}{२}$ दिन में ५$\frac{१}{४}$ अंगुल नीचे की ओर खींच लेता है । बतलाओ कि वह कमल पानी की सतह तक कितने समय में ऊग आवेगा ? ॥२८-३०॥ एक वलयुक्त, अजित, श्रेष्ठ कृष्णाहीन्द्र (काला सर्प) जो ३२ हस्त लम्बा है, किसी छिद्र में ५$\frac{१}{१४}$ दिन में ७$\frac{१}{२}$ अगुल प्रवेश करता है, और $\frac{१}{४}$ दिन में उसकी पूँछ २$\frac{३}{४}$ अंगुल बढ़ जाती है । हे अंकगणितज्ञों के भूषण ! मुझे बतलाओ कि यह सर्प इस छिद्र में कितने समय में पूरी तरह प्रवेश कर सकेगा ? ॥३१॥

इस प्रकार, गति निवृत्ति प्रकरण समाप्त हुआ ।

पचराशिक, सप्तराशिक और नवराशिक सम्बन्धी नियम—

स्व स्थान से 'फल' को अन्य स्थान में पक्षान्तरित करो (जहाँ वैसी ही मूर्त राशि आवेगी), (तब इष्ट उत्तर को प्राप्त करने के लिये विभिन्न राशियों की) बड़ी सख्याओं वाली पंक्ति को (सबको

(२८-३०) कुएँ की गहराई मूल गाथा में तली से नापी गई 'ऊँचाई' कही गई है ।

षोडशवर्णककाञ्चनशतेन यो रत्नविंशतिं लभते । दशवर्णसुवर्णानामष्टाशीतिद्विशत्या किम् ॥३५॥
गोधूमाना मानीनंव नयता योजनत्रय लब्धा' । षष्टि' पणा सवाहं कुम्भ दशयोजनानि कति ॥३६॥

भाण्डप्रतिभाण्डस्योद्देशकः

कस्तूरीकर्षत्रयमुपलभते दशभिरष्टभि कनंके
कर्षद्वयकर्पूरं मृगनाभित्रिशतकर्षकै. कति नो ॥३७॥
पनसानि षष्टिमष्टभिरुपलभतेऽशीतिमातुलुङ्गानि ।
दशभिर्माषैनवशतपनसै कति मातुलुङ्गानि ॥३८॥

जीवक्रयविक्रययोरुद्देशकः

षोडशवर्षास्तुरगा विंशतिरर्हन्ति नियुतकनकानि ।
दशवर्षसप्तिसप्ततिरिह कति गणकाग्रणीः कथय ॥ ३९ ॥
स्वर्णत्रिशती मूल्यं दशवर्षाणा नवाङ्गनाना स्यात् । षट्त्रिंशन्नारीणा षोडशसंवत्सराणा किम् ॥४०॥
षट्कशतयुक्तनवतेर्दशमासैर्वृद्धिरत्र का तस्या ।
क काल किं वित्त विदिताभ्यां भण गणकमुखमुकुर ॥ ४१ ॥

१ B में अन्त में ना जुडा है ।
२ K, M और B में ना के लिए हेमकर्षा' पाठ है ।

वाले २८८ स्वर्ण खण्डों में क्या प्राप्त करेगा ? ॥३५॥ एक मनुष्य जो ९ मानी गेहूँ ३ योजन तक ले जाकर ६० पण प्राप्त करता है, वह एक कुम्भ और एक वाह गेहूँ १० योजन तक लेजाकर क्या प्राप्त करेगा ? ॥३६॥

भाड प्रतिभाड (विनिमय) पर उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य १० स्वर्ण मुद्राओं में ३ कर्ष कस्तूरी तथा ८ स्वर्ण मुद्राओं में २ कर्ष कर्पूर प्राप्त करता है। बतलाओ कि उसे ३०० कर्ष कस्तूरी के बदले में कितने कर्ष कर्पूर प्राप्त होगा ? ॥३७॥ एक मनुष्य ८ माशा चाँदी के बदले में ६० पनस प्राप्त करता है और १० माशा चाँदी के बदले में ८० अनार प्राप्त करता है। बतलाओ कि ९०० पनस फलों के बदले में वह कितने अनार प्राप्त करेगा ? ॥३८॥

पशुओं के क्रय और विक्रय पर उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रत्येक १६ वर्ष की उम्र वाले बीस घोड़ों की कीमत १००,००० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। हे गणित-ज्ञाग्रणी ! बतलाओ कि प्रत्येक १० वर्ष वाले ७० घोड़ों का मूल्य इस अर्घ से क्या होगा ? ॥३९॥ प्रत्येक १० वर्ष की उम्रवाली ९ नवाङ्गनाओं का मूल्य ३०० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। प्रत्येक १६ वर्ष की उम्रवाली ३६ नवाङ्गनाओं का मूल्य क्या होगा ? ॥४०॥ ६ प्रतिशत प्रतिमास की दर से ९० पर १० मास में क्या ब्याज होगा ? हे गणक मुख मुकुर ! दो अन्य आवश्यक ज्ञात राशियों की सहायता से बतलाओ कि उस ब्याज के सम्बन्ध में समय क्या होगा और उस ब्याज तथा समय के सम्बन्ध में मूलधन क्या होगा ? ॥४१॥

षोडशवर्णककाञ्चनशतेन यो रत्नविंशति लभते । दशवर्णसुवर्णानामष्टाशीतिद्विशत्या किम् ।।३५।।
गोधूमानां मानीनव नयता योजनत्रय लब्धा । षष्टिः पणा सवाहं कुम्भ दशयोजनानि कति ।।३६।।

भाण्डप्रतिभाण्डस्योद्देशकः

कस्तूरीकर्पत्रयमुपलभते दशभिरष्टभि कनकै
कर्षद्वयकर्पूरं मृगनाभित्रिशतकर्षकै. कति ना ।।३७।।
पनसानि षष्टिमष्टभिरुपलभतेऽशीतिमातुलुङ्गानि ।
दशभिर्माषैर्नवशतपनसै कति मातुलुङ्गानि ।।३८।।

जीवक्रयविक्रययोरुद्देशकः

षोडशवर्षास्तुरगा विंशतिरर्हन्ति नियुतकनकानि ।
दशवर्षसप्तिसप्ततिरिह कति गणकाग्रणी कथय ।। ३९ ।।
स्वर्णत्रिशती मूल्य दशवर्षाणा नवाङ्गनाना स्यात् । षट्त्रिंशन्नारीणा षोडशसंवत्सराणा किम् ।।४०।।
षट्कशतयुक्तनवतेर्दशमासैर्वृद्धिरत्र का तस्या ।
क काल किं वित्तं विदिताभ्या भण गणकमुखमुकुर ।। ४१ ।।

१ B में अन्त में ना जुड़ा है ।
२ K, M और B में ना के लिए हेमकर्षा पाठ है ।

वाले २८८ स्वर्ण खडों में क्या प्राप्त करेगा ? ।।३५।। एक मनुष्य जो ९ मानी गेहूँ ३ योजन तक ले जाकर ६० पण प्राप्त करता है, वह एक कुम्भ और एक वाह गेहूँ १० योजन तक लेजाकर क्या प्राप्त करेगा ? ।।३६।।

भांड प्रतिभांड (विनिमय) पर उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य १० स्वर्ण मुद्राओं में ३ कर्ष कस्तूरी तथा ८ स्वर्ण मुद्राओं में २ कर्ष कर्पूर प्राप्त करता है। बतलाओ कि उसे ३०० कर्ष कस्तूरी के बदले में कितने कर्ष कर्पूर प्राप्त होगा ? ।।३७।। एक मनुष्य ८ माशा चाँदी के बदले में ६० पनस प्राप्त करता है और १० माशा चाँदी के बदले में ८० अनार प्राप्त करता है। बतलाओ कि ९०० पनस फलों के बदले में वह कितने अनार प्राप्त करेगा ? ।।३८।।

पशुओं के क्रय और विक्रय पर उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रत्येक १६ वर्ष की उम्र वाले बीस घोड़ों की कीमत १००,००० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। हे गणित-ज्ञाग्रणी ! बतलाओ कि प्रत्येक १० वर्ष वाले ७० घोड़ों का मूल्य इस अर्घ से क्या होगा ? ।।३९।। प्रत्येक १० वर्ष की उम्रवाली ९ नवाङ्गनाओं का मूल्य ३०० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। प्रत्येक १६ वर्ष की उम्रवाली ३६ नवाङ्गनाओं का मूल्य क्या होगा ? ।।४०।। ६ प्रतिशत प्रतिमास की दर से ९० पर १० मास में क्या ब्याज होगा ? हे गणक मुख मुकुर ! दो अन्य आवश्यक ज्ञात राशियों की सहायता से बतलाओ कि उस ब्याज के सम्बन्ध में समय क्या होगा और उस ब्याज तथा समय के सम्बन्ध में मूलधन क्या होगा ? ।।४१।।

सप्तराशिक उद्देशक

त्रिचतुर्व्यासायामौ श्रीखण्डावर्हतोऽष्टहेमानि ।
षण्णवविस्तृतिदैर्घ्यौ हस्तेन चतुर्दशात्र कति ॥ ४२ ॥

इति सप्तराशिकः ।

नवराशिक उद्देशक

पञ्चाष्टत्रिव्यासदैर्घ्योदयाम्भो धत्ते वापी शालिनी वाहषट्कम् ।
सप्तव्यासा हस्ततः षड्दैर्घ्याः पञ्चोत्सेधाः किं नवाचक्ष्व विद्वन् ॥ ४३ ॥[1]

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ त्रैराशिको नाम चतुर्थव्यवहारः ॥

---

१ ४३ वें श्लोक के सिवाय K और B में निम्नलिखित श्लोक प्राप्य है—
दण्डाशीतिव्यासदैर्घ्योन्नताम्भो धत्ते वापी शालिनी सार्धवाहौ ।
हस्तायामव्यासकाः षोडशाष्टौ षड्व्यासाः किं वससा वद त्वम् ॥

सप्तराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जिसमें प्रत्येक का व्यास ३ हस्त और लम्बाई (आयाम) ४ हस्त है ऐसे चंदन-लकड़ी के दो टुकड़ों का मूल्य ८ स्वर्ण मुद्राएँ हैं। इस भव से जिसमें प्रत्येक ६ हस्त व्यास में और ९ हस्त लम्बाई में है ऐसे चंदन-लकड़ी के १४ टुकड़ों का क्या मूल्य होगा? ॥४२॥

नवराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जो चौड़ाई लम्बाई और (तली से) ऊँचाई में क्रमशः ५, ८ और ३ हस्त है ऐसी किसी घर की वापिका में ६ वाह पानी भरा है। हे विद्वान्! बतलाओ कि ७ हस्त चौड़ी ६ हस्त लम्बी और तली से ५ हस्त ऊँची ९ वापिकाओं में कितना पानी समायेगा? ॥४३॥

इस प्रकार सप्तराशिक और नवराशिक प्रकरण समाप्त हुआ।

इस प्रकार महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र में त्रैराशिक नामक चतुर्थ व्यवहार समाप्त हुआ।

---

(४३) इस गाथा में 'शालिनी' शब्द का अर्थ "घर की" होता है। यह उस छंद का भी नाम है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है।

६. मिश्रकव्यवहारः

प्राप्तानन्तचतुष्टयान् भगवतस्तीर्थस्य कर्तृन् जिनान्
सिद्धान् शुद्धगुणांस्त्रिलोकमहितानाचार्यवर्यानपि ।
सिद्धान्तार्णवपारगान् भवभृतां नेतृनुपाध्यायकान्
साधून् सर्वगुणाकरान् हितकरान् वन्दामहे श्रेयसे ॥ १ ॥
इत. परं मिश्रगणितं नाम पञ्चमव्यवहारमुदाहरिष्याम. । तद्यथा—
संक्रमणसंज्ञाया विषमसक्रमणसज्ञायाश्च सूत्रम्—
युतिवियुतिदलनकरणं संक्रमणं छेदलब्धयो राश्यो' ।
संक्रमण विषममिद प्राहुर्गणिततार्णवान्तगता ॥ २ ॥

---

६. मिश्रकव्यवहार

जिन्होंने अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर धर्म तीर्थ की प्रवर्तना की है ऐसे अरिहत प्रभुओं की, जो अष्टक्षायिक गुण सम्पन्न हैं तथा तीनों लोकों में आदर को प्राप्त हैं ऐसे सिद्ध प्रभुओं की, श्रेष्ठ आचार्यों की, जो जैन सिद्धान्त सागर के पारगामी हैं तथा संसारी जीवों को मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं ऐसे उपाध्यायों की और जो सर्व सद्गुणों के धारक हैं तथा दूसरों के हितकर्ता हैं ऐसे साधुओं की हम अपने सर्वोपरि हित के लिये वन्दना करते हैं ॥१॥

इसके पश्चात् हम मिश्रित उदाहरण नामक पाँचवें व्यवहार का प्रतिपादन करेंगे ।

पारिभाषिक शब्द 'सक्रमण' और 'विषम सक्रमण' के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये सूत्र—

गणित समुद्र के पारगामी, किन्हीं दो राशियो के योग अथवा अन्तर के आधा करने को सक्रमण कहते है । और, ऐसी दो राशियाँ जो क्रमशः भाजक तथा भजनफल रहती हैं, उनके सक्रमण को विषम सक्रमण कहते हैं ॥२॥

---

(१) कर्म और जन्म मरण के दुःखों से पूर्ण ससारीजीवनरूपी नदी को पार करने के लिये 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग 'एक ऐसे स्थान के लिये हुआ है जो उथला होने के कारण नदी को पार करने में सहायक सिद्ध होता है। ससार अर्थात् चतुर्थ्संक्रमण के दुःखों रूपी सागर को पार कराने के लिये भगवान् आत्माओं के लिये नैमित्तिक सहायक माने गये हैं । इसलिये इन जिनों को तीर्थंकर कहा जाता है ।

(२) बीजीय रूप से, दो राशियों अ और ब का संक्रमण $\frac{अ+ब}{२}$ और $\frac{अ \backsim ब}{२}$ के मान निकालना है । उनका विषम सक्रमण, $\frac{ब+\frac{अ}{ब}}{२}$ और $\frac{ब \backsim \frac{अ}{ब}}{२}$ के मान निकालना है ।

अत्रोद्देशकः

द्वादशसंख्याराशेर्द्वाभ्यां संक्रमणमत्र किं भवति।
तस्माद्राशेर्भक्तं विषमं वा किं नु संक्रमणम् ॥ ३ ॥

पञ्चराशिकविधिः

पञ्चराशिकस्वरूपवृद्ध्यानयनसूत्रम्—
इच्छाराशिः स्वस्य हि कालेन गुणः प्रमाणफलगुणितः।
कालप्रमाणभक्तो भवति तदिच्छाफलं गणिते ॥ ४ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकषट्कशतैः पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिपुराणाः। लाभार्थं प्रयुक्ताः का वृद्धिर्मासषट्कस्य ॥ ५ ॥
व्यर्धाष्टकशतयुक्ताः त्रिशत्कार्षापण्याः पणाश्चाष्टौ। मासाष्टकेन जाता दलहीनेनैव का वृद्धिः ॥ ६ ॥
षष्ट्या वृद्धिर्दृष्टा पञ्च पुराणाः पणत्रयविमिश्राः। मासद्वयेन लब्धा शतवृद्धिः का नु वर्षस्य ॥ ७ ॥
सार्धशतकप्रयोगे सार्धकमासेन पञ्चदश लाभः। मासदशकेन लब्धा शतत्रयस्यात्र का वृद्धिः ॥ ८ ॥
साष्टशतकप्रयोगे त्रिषष्टिकार्षापणा विधा दत्ताः। सप्तानां मासानां पञ्चमभागान्वितानां किम् ॥ ९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जब संख्या १२ २ से संक्रमित हो तो संक्रमण क्या होगा? और २ के सम्बन्ध में उसी संख्या १२ का भागीय विषम संक्रमण क्या होगा?

पंचराशिक विधि

पंचराशिक प्रकार के ब्याज को निकालने की विधि के लिये नियम—

इच्छा का प्ररूपण करनेवाली संख्या, अर्थात् जिस पर ब्याज निकालना इष्ट होता है ऐसे धन को उससे सम्बन्धित समय द्वारा गुणित किया जाता है और तब दिये हुए मूलधन पर ब्याज दर का निरूपण करने वाली संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। गुणनफल को समय तथा मूलधन राशि द्वारा भाजित किया जाता है। यह भजनफल गणित में इष्ट धन का ब्याज होता है ॥४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ ६ और ७ पुराण क्रमशः ३, ५ और ६ प्रतिशत प्रतिमाह की दर (rate) से ब्याज पर दिये गये। उनका ६ माह में ब्याज क्या होगा? ॥५॥ ३ कार्षापण और ८ पण, ७½ प्रतिशत प्रतिमाह की दर से ब्याज पर दिये गये, ७½ माह में कितना ब्याज होगा? ॥६॥ ६ पर २ माह में ५ पुराण और ३ पण ब्याज होता है। १ पर १ वर्ष का ब्याज बतलाओ ॥७॥ १५ को १½ माह तक उधार देने से १५ ब्याज प्राप्त होता है। इसी दर से ३ पर १ माह का ब्याज क्या होगा? ॥८॥ एक व्यापारी ने ६३ कार्षापण १ ८ पर ४ प्रतिमाह की दर से उधार दिये। बतलाओ ७⅕ माह में कितना ब्याज होगा? ॥९॥

---

(४) बीजीय रूप से $ब = \frac{प \times अ \times बा}{आ \times पा}$ जहाँ आ, पा और बा प्रमाण अथवा दर सम्बन्धी क्रमशः अवधि, मूलधन और ब्याज हैं और अ, प तथा ब इच्छा की क्रमशः अवधि, मूलधन और ब्याज हैं। प्रमाण और इच्छा के विशेष स्पष्टीकरण के लिये अध्याय ५ की गाथा २ की पाद टिप्पणी देखिये।

(५) ब्याज की दर यदि उल्लिखित न हो तो उसे प्रतिमास समझना चाहिये।

मूलानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालगुणितं स्वफलेन विभाजितं तदिच्छायाः ।
कालेन भजेल्लब्धं फलेन गुणितं तदिच्छा स्यात् ॥ १० ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चार्धकशतयोगे पञ्च पुराणान्दलोनमासौ द्वौ । वृद्धिं लभते कश्चित् किं मूलं तस्य मे कथय ॥११॥
सप्तत्या सार्धमासेन फलं पञ्चार्धमेव च । व्यर्धाष्टमासे मूलं किं फलयोः सार्धयोर्द्वयोः ॥ १२ ॥
त्रिकपञ्चकषट्कशते यथा नवाष्टादशाथ पञ्चकृतिः ।
पञ्चांशकेन मिश्रा षट्सु हि मासेषु कानि मूलानि ॥ १३ ॥

कालानयनसूत्रम्—

कालगुणितप्रमाणं स्वफलेच्छाभ्यां हृतं ततः कृत्वा ।
तदिहेच्छाफलगुणितं लब्धं कालं बुधाः प्राहुः ॥ १४ ॥

उधार दिये गये मूलधन को निकालने के लिये नियम—

मूलधन राशि को उसी से सम्बन्धित समय द्वारा गुणित करते हैं और सम्बन्धित ब्याज द्वारा विभाजित करते हैं। तब इस भजनफल को (उधार दिये गये) मूलधन से सम्बन्धित अवधि द्वारा विभाजित करते हैं, यह अंतिम भजनफल जब उपार्जित ब्याज द्वारा गुणित किया जाता है तब वह मूलधन प्राप्त होता है जिस पर कि उक्त ब्याज प्राप्त हुआ है ॥१०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ब्याज दर $२\frac{१}{२}$ प्रतिशत प्रतिमाह से $१\frac{१}{२}$ माह तक रकम उधार देकर एक व्यक्ति ५ पुराण ब्याज प्राप्त करता है। मुझे बतलाओ कि उस ब्याज के सम्बन्ध में मूलधन क्या है? ॥११॥ ७० पर $१\frac{१}{२}$ माह में $२\frac{१}{२}$ ब्याज होता है। यदि $७\frac{१}{२}$ माह में $२\frac{१}{२}$ ब्याज होता हो तो बतलाओ कि कितना मूलधन ब्याज पर दिया गया है? ॥१२॥ क्रमशः ३, ५ और ६ प्रतिशत प्रति माह की दर से उधार देने पर ६ माह में प्राप्त होने वाले ब्याज क्रमशः ९, १८ और $२५\frac{१}{५}$ हैं, कौन-कौन से मूलधन ब्याज पर दिये गये हैं? ॥१३॥

अवधि निकालने के लिये नियम—

मूलधन को सम्बन्धित अवधि से गुणित करो, तब इस गुणनफल को उसी से सम्बन्धित ब्याज दर से भाजित करो और उधार दी हुई रकम से भी भाजित करो। प्राप्त भजनफल को उधार दी हुई रकम के ब्याज द्वारा गुणित करो। बुद्धिमान मनुष्य कहते हैं कि परिणामी गुणनफल (उपार्जित ब्याज की) अवधि होता है ॥१४॥

---

(१०) प्रतीक रूप से, $\frac{घा \times आ \times बा}{बा \times अ} = घ$

(१४) प्रतीक रूप से, $\frac{घा \times आ \times ब}{बा \times घ} = अ$

मूलवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

रूपेण कालवृद्ध्या युतेन मिश्रस्य भागहारविधिम्। कृत्वा लब्धं मूल्यं वृद्धिर्मूलोनमिश्रधनम् ॥२१॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकशतप्रयोगे द्वादशमासैर्धनं प्रयुक्तं चेत्। साष्टा चत्वारिंशन्मिश्रं तन्मूलवृद्धी के ॥ २२ ॥

पुनरपि मूलवृद्धिमिश्रविभागसूत्रम्—

इच्छाकालफलघ्नं स्वकालमूलेन भाजितं सैकम्। संमिश्रस्य विभक्तं लब्धं मूलं विजानीयात् ॥२३॥

अत्रोद्देशकः

सार्धद्विशतप्रयोगे मासचतुष्केण किमपि धनमेकं।
दत्त्वा मिश्रं लभते किं मूल्यं स्यात् त्रयस्त्रिंशत् ॥ २४ ॥

कालवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालगुणितं स्वफलेच्छाभ्यां हृतं ततः कृत्वा।

मिश्रित रकम में से धन और व्याज अलग करने के लिये नियम—

मूलधन और व्याज सम्बन्धी दिये गये मिश्रधन को जो दी गई अवधि के व्याज में जोड़कर प्राप्त किया जाता है, ऐसी (व्याज) राशि द्वारा ह्रासित किया जाय तो इष्ट मूलधन प्राप्त होता है, और इष्ट व्याज को मिश्रित धन में से (निकाले हुए) इष्ट मूलधन को घटाकर प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि कोई धन ५ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से व्याज पर दिया जाय तो १२ माह में मिश्रधन ४८ हो जाता है। बतलाओ कि मूलधन और व्याज क्या हैं ? ॥२२॥

मिश्रधन में से मूलधन और व्याज अलग करने के लिये दूसरा नियम—

दिये गये समय तथा व्याज दर के गुणनफल को समयदर तथा मूलधनदर द्वारा भाजित करते हैं। प्राप्त फल में १ जोड़ने से प्राप्त राशि द्वारा मिश्रधन को भाजित करते हैं जिससे परिणामी भजनफल इष्ट मूलधन होता है ॥२३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

$२\frac{१}{२}$ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से रकम को व्याजपर देने से किसी को चार माह में ३३ मिश्रधन प्राप्त होता है। बतलाओ मूलधन क्या है ? ॥२४॥

मिश्र योग में से अवधि तथा व्याज को अलग करने के लिये नियम—

मूलधनदर को अवधि दर द्वारा गुणित करो और व्याज दर तथा दिये गये मूलधन द्वारा

---

(२१) प्रतीक रूप से $ध = \frac{म}{१ + \frac{१ \times अ \times बा}{आ \times धा}}$, जहाँ म = ध + ब है, इसलिये ब = म – ध

(२३) प्रतीक रूप से, $ध = म - \left\{ \frac{अ \times बा}{आ \times धा} + १ \right\}$, स्पष्ट है कि यह बहुत कुछ गाथा २१ में दिये गये सूत्र के समान है।

अत्रोद्देशकः

सप्तत्या वृद्धिरियं चतु पुराणा' फल च पञ्चकृति ।
मिश्रं नव पञ्चगुणा पादेन युतास्तु किं मूलम् ॥ ३० ॥
त्रिकषष्ट्या दत्त्वैक किं मूल केन कालेन । प्राप्तोऽष्टादशवृद्धिं षट्षष्टि कालमूलमिश्र हि ॥ ३१ ॥
अध्यर्धमासिकफल षष्ट्याः पञ्चार्धमेव संदृष्टम् ।
वृद्धिस्तु चतुर्विंशतिरथ षष्टिर्मूलयुक्तकालश्च ॥ ३२ ॥

प्रमाणफलेच्छाकालमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

मूल स्वकालवृद्धिद्विकृतिगुण छिन्नमितरमूलेन । मिश्रकृतिशेषमूल मिश्रे क्रियते तु संक्रमणम् ॥३३॥

अत्रोद्देशकः

अध्यर्धमासकस्य च शतस्य फलकालयोश्च मिश्रधनम् ।
द्वादश दलसंमिश्र मूलं त्रिंशत्फलं पञ्च ॥ ३४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४ पुराण, ७० पर प्रतिमाह ब्याज है। कुल पर प्राप्त ब्याज २५ है। मूलधन तथा ब्याज की अवधि का मिश्रयोग ४५$\frac{1}{4}$ है। कितना मूलधन उधार दिया गया है? ॥३०॥ ३ प्रति ६० प्रतिमास के अर्घ से कोई मनुष्य कितना मूलधन कितने समय के लिये ब्याज पर लगाये ताकि उसे ब्याज १८ प्राप्त हो जबकि उस अवधि तथा उस मूलधन का मिश्रयोग ६६ दिया गया है ॥३१॥ ६० पर १$\frac{1}{2}$ माह में ब्याज केवल २$\frac{1}{2}$ है। यहाँ ब्याज २४ है और मूलधन तथा अवधि का मिश्रयोग ६० है। समय तथा मूलधन क्या हैं? ॥३२॥

ब्याजदर तथा इष्ट अवधि को मिश्रियोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

मूलधनदर स्व समयदर द्वारा गुणित किया जाता है, तथा दिये गये ब्याज से और ४ से भी गुणित करने के उपरान्त अन्य दिये गये मूलधन द्वारा विभाजित किया जाता है। इस परिणामी भजनफल को दिये गये मिश्रयोग के वर्ग में से घटाकर प्राप्त शेष के वर्गमूल को मिश्रयोग के सम्बन्ध में संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाते हैं ॥३३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अर्ध अधिक प्रतिशत प्रतिमाह की इष्ट दर से ब्याज दर और अवधि का मिश्रयोग १२$\frac{1}{2}$ होता है। मूलधन ३० है और उस पर ब्याज ५ है। बतलाओ ब्याज दर और अवधि क्या-क्या हैं? ॥३४॥

---

(३३) प्रतीक रूप से, $\sqrt{म^2 - \frac{धा \times आ \times ब \times ४}{ध}}$ को 'म' के साथ इष्ट संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाते हैं। यहाँ म = बा + अ है।

बहुमूलमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

स्वफलैः स्वकालभक्तैस्तद्युत्या मूलमिश्रधनराशिम् ।
छिन्द्यादंशं गुणयेत् समागमो भवति मूलानाम् ॥ ३९ ॥

अत्रोद्देशकः

दशषट्त्रिपञ्चदशका वृद्धय इषवश्चतुस्त्रिषण्मासाः ।
मूलसमासो दृष्टश्चत्वारिंशच्छतेन संमिश्रा ॥ ४० ॥
पञ्चार्धषड्दशापि च सार्धा षोडश फलानि च त्रिंशत् ।
मासास्तु पञ्च षट् खलु सप्ताष्ट दशाप्यशीतिरथ पिण्डः ॥ ४१ ॥

बहुकालमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

स्वफलैः स्वमूलभक्तैस्तद्युत्या कालमिश्रधनराशिम् ।
छिन्द्यादंशं गुणयेत् समागमो भवति कालानाम् ॥ ४२ ॥

---

१ हस्तलिपि में छिन्द्यादंशान् पाठ है जो शुद्ध प्रतीत नहीं होता है ।

विभिन्न मूलधनों को उन्हीं के मिश्रयोग से अलग-अलग करने के नियम—

उधार दी गई विभिन्न मूलधन की राशियों के मिश्रयोग का निरूपण करनेवाली राशि को उन भजनफलों के योग द्वारा विभाजित करो जो विभिन्न ब्याजों को उनकी सवादी अवधियों द्वारा अलग-अलग विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । परिणामी भजनफल को क्रमशः ऐसे विभिन्न भजनफलों द्वारा विभाजित करो जो कि विभिन्न ब्याजों को उनकी सवादी अवधियों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । इस प्रकार विभिन्न मूलधन की राशियों को अलग-अलग निकालते हैं ॥३९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये विभिन्न ब्याज १०, ६, ३ और १५ हैं और सवादी अवधियाँ क्रमश ५, ४, ३ और ६ मास हैं, विभिन्न मूलधन की रकमों का योग १४० है । ये मूलधन की रकमें कौन-कौन सी हैं ? ॥४०॥ विभिन्न ब्याज राशियाँ $\frac{५}{२}$, ६, १०$\frac{१}{२}$, १६ और ३० हैं । उनकी संवादी अवधियाँ क्रमश ५, ६, ७, ८ और १० माह हैं । विभिन्न मूलधन की रकमों का मिश्रयोग ८० है । इन रकमों को अलग अलग बतलाओ ॥४१॥

विभिन्न अवधियों को उनके मिश्रयोग में से अलग-अलग प्राप्त करने के लिये नियम —

विभिन्न अवधियों के मिश्रयोग का निरूपण करनेवाली राशि को उन विभिन्न भजनफलो के योग द्वारा विभाजित करो जो कि विभिन्न ब्याजों को उनके सवादी मूलधनों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । और तब, परिणामी भजनफल को अलग अलग उपर्युक्त भजनफलों में से प्रत्येक द्वारा गुणित करो । इस प्रकार विभिन्न अवधियाँ निकाली जाती हैं ॥४२॥

---

(३९) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{अ}_3}+}\times\frac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}=\text{ध}_1$,

और, $\frac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{अ}_3}+\ldots}\times\frac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}=\text{ध}_2$, जहाँ $\text{म}=\text{ध}_1+\text{ध}_2+\text{ध}_3+$ इत्यादि

(४२) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{ध}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{ध}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{ध}_3}+\ .}\times\frac{\text{ब}_1}{\text{ध}_1}=\text{अ}_1$, जहाँ $\text{म}=\text{अ}_1+\text{अ}_2+\text{अ}_3+$

...इत्यादि, इसी तरह अ_2, अ_3 इत्यादि के मान निकालते हैं ।

समानमूलवृद्धिमिश्रविभागसूत्रम्—
अन्योन्यकालविनिहतमिश्रविशेषस्य तस्य भागाख्यम् ।
कालविशेषेण हृते तेषां मूलं विजानीयात् ॥ ४७ ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चाशदष्टपञ्चाशन्मिश्रं षट्षष्टिरेव च । पञ्च सप्तैव नव हि मासाः किं फलमानय ॥ ४८ ॥
त्रिंशच्चैकत्रिंशद्द्वित्र्यंशाः स्युः पुनस्त्रयस्त्रिंशत् । सत्र्यंशा मिश्रधनं पञ्चत्रिंशच्च गणकादात् ॥४९॥
कश्चिन्नरश्चतुर्णां त्रिभिश्चतुर्भिश्च पञ्चभिः षड्भिः । मासैर्लब्धं किं स्यान्मूलं शीघ्रं ममाचक्ष्व ॥५०॥

समानमूलकालमिश्रविभागसूत्रम्—
अन्योन्यवृद्धिसंगुणमिश्रविशेषस्य तस्य भागाख्यम् ।
वृद्धिविशेषेण हृते लब्धं मूलं बुधाः प्राहुः ॥ ५१ ॥

अत्रोद्देशकः

एकत्रिपञ्चमिश्रितविंशतिरिह कालमूलयोर्मिश्रम् ।
षड् दश चतुर्दश स्युर्लाभाः किं मूलमत्र साम्यं स्यात् ॥ ५२ ॥

मूलधन जो सब दशाओं में एकसा रहता है, और (विभिन्न अवधियों के) ब्याजों को, उनके मिश्रयोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

कोई भी दो दिये गये मिश्रयोगों को क्रमशः एक दूसरे के ब्याज की अवधियों द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशियों के अंतर द्वारा विभाजित करने पर जो भजनफल प्राप्त होता है वह उन दिये गये मिश्रयोगों सम्बन्धी इष्ट मूलधन है ॥४७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मिश्रयोग ५०, ५८ और ६६ हैं और अवधियाँ जिनमें कि ब्याज उपार्जित हुए हैं, क्रमशः ५, ७ और ८ माह हैं। प्रत्येक दशा में ब्याज बतलाओ ॥४८॥ हे गणितज्ञ ! किसी मनुष्य ने ४ व्यक्तियों को क्रमशः ३, ४, ५ और ६ मास के अन्त में उसी मूलधन और ब्याज के मिश्रयोग ३०, ३१$\frac{2}{3}$, ३३$\frac{1}{3}$ और ३५ दिये। मुझे शीघ्र बतलाओ कि यहाँ मूलधन क्या है ? ॥ ४९-५० ॥

मूलधन (जो प्रत्येक दशा में वही रहता हो) और अवधि (जितने समय में ब्याज उपार्जित किया गया हो) को उन्हीं के मिश्रयोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

कोई भी दो मिश्रयोगों को क्रमशः एक दूसरे के ब्याज द्वारा गुणित कर, प्राप्त राशियों के अन्तर को दो चुने हुए ब्याजों के अन्तर द्वारा विभाजित करने पर भजनफल के रूप में इष्ट मूलधन प्राप्त होता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥५१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मूलधन और अवधियों के मिश्रयोग २१, २३ और २५ हैं। यहाँ ब्याज ६, १० और १४ हैं। बतलाओ कि समान अर्हा वाला मूलधन क्या है ? ॥५२॥ दिये गये मिश्रयोग ३५, ३७ और ३९ हैं,

(४७) प्रतीक रूप से, $\frac{म_1 अ_2 \backsim म_2 अ_1}{अ_1 \backsim अ_2} = ध$

(५१) प्रतीक रूप से, $\frac{म_1 ब_2 \backsim म_2 ब_1}{ब_1 \backsim ब_2} = ध$, जहाँ $म_1$, $म_2$, आदि, विभिन्न मिश्रयोग हैं।

अत्रोद्देशकः

मासे हि पञ्चैव च सप्ततीनां मासद्वयेऽष्टादशक प्रदेयम् ।
स्कन्धं चतुर्भिः सहिता त्वशीतिः मूल भवेत्को नु विमुक्तिकाल' ॥ ५८ ॥
षष्ट्या मासिकवृद्धि' पञ्चैव हि मूलमपि च षट्त्रिंशत् ।
मासत्रितये स्कन्धं त्रिपञ्चक तस्य कः कालः ॥ ५९ ॥

समानवृद्धिमूलमिश्रविभागसूत्रम्—

मूलैः स्वकालगुणितैर्वृद्धिविभक्तैः समासकैर्विभजेत् ।
मिश्र स्वकालनिघ्नं वृद्धिर्मूलानि च प्राग्वत् ॥ ६० ॥

अत्रोद्देशकः

द्विकषट्कचतुः शतके चतु सहस्रं चतु' शत मिश्रम् ।
मासद्वयेन वृद्ध्या समानि कान्यत्र मूलानि ॥ ६१ ॥
त्रिकशतपञ्चकसप्ततिपादोनचतुष्कषष्टियोगेषु । नवशतसहस्रसंख्या मासत्रितये समा युक्ता ॥६२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

व्याजदर ५ प्रति ७० प्रतिमास है, प्रत्येक २ माह में चुकाई जाने वाली किश्त १८ है एव उधार दिया गया मूलधन ८४ है । विमुक्ति काल (कर्ज चुकाने का समय) बतलाओ ॥५८॥ ६० पर प्रतिमास व्याज ५ होता है । उधार दिया गया मूलधन ३६ है । ३ माह में चुकाई जाने वाली प्रत्येक किश्त १५ है । उस कर्ज के चुकने का समय बतलाओ ॥५९॥

जिन पर समान व्याज उपार्जित हुआ है ऐसे विभिन्न मूलधनों को मिश्रयोग से अलग-अलग करने के लिये नियम—

मिश्रयोग को अवधि द्वारा गुणित कर, उन राशियों के योग से विभाजित करो जो (राशियाँ) विभिन्न मूलधनदरों को उनकी सवादी अवधिदरो द्वारा गुणित करने तथा सवादी व्याजदरों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होती हैं । इस प्रकार व्याज प्राप्त होता है और उससे मूलधन प्राप्त किये जाते हैं ॥६०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२, ६ और ४ प्रतिशत प्रतिमास की दर से दिये गये मूलधनो का मिश्रयोग ४,४०० है । इन समस्त मूलधनों की २ माह को व्याज राशियाँ बराबर होती हैं । बतलाओ कि वह व्याजराशि क्या है और विभिन्न मूलधन क्या-क्या हैं ? ॥६१॥ कुल रकम १,९००, ३ प्रतिशत, ५ प्रति ७० और ३$\frac{३}{४}$ प्रति ६० प्रतिमाह की दर से विभिन्न मूलधनों में व्याज पर वितरित कर दी गई । प्रत्येक दशा में ३ माह में व्याज बराबर बराबर उपार्जित हुआ । उस समान व्याजराशि को तथा विभिन्न मूलधनों को अलग-अलग प्राप्त करो ॥६२॥

---

(६०) प्रतीक रूप से, $\dfrac{\text{म} \times \text{अ}}{\dfrac{\text{धा}_1 \times \text{आ}_1}{\text{वा}_1} + \dfrac{\text{धा}_2 \times \text{आ}_2}{\text{वा}_2} + \ldots \text{इत्यादि}} = \text{ब}$, इसके द्वारा मूलधनों को अध्याय ६ की १० वीं गाथा के नियम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

प्रक्षेपो गुणकार. स्वफलोनाधिकसमानमूलानि ॥ ६६ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकाष्टकशतै. प्रयोगतोऽष्टासहस्रपञ्चशतम् ।
विंशतिसहितं वृद्धिभिरुद्धृत्य समानि पञ्चभिर्मासै. ॥ ६७ ॥
त्रिकषट्काष्टकषष्ट्या मासद्वितये चतुस्सहस्राणि ।
पञ्चाशद्द्विशतयुतान्यतोऽष्टमासकफलाद्दते सद्दशानि ॥ ६८ ॥
द्विकपञ्चकनवकशते मासचतुष्के त्रयोदशसहस्रम् ।
सप्तशतेन च मिश्रा चत्वारिंशत्सवृद्धिसममूलानि ॥ ६९ ॥

किया जाता है। इससे उधार दी गई रकमें उत्पन्न होती हैं जो उनके व्याजों द्वारा मिलाई जाने पर अथवा ह्रासित किये जाने पर समान हो जाती हैं ॥६६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

८,५२० रुपये क्रमशः ३, ५ और ८ प्रतिशत प्रतिमास की दर से (भागों में) व्याज पर दिये जाते हैं। ५ माह में उपार्जित व्याजों द्वारा ह्रासित करने पर वे दत्त रकमें बराबर हो जाती हैं। इस तरह व्याज पर लगाये हुए धनों को बतलाओ ॥ ६७ ॥ ४,२५० द्वारा निरूपित कुल धन को (भागों में) क्रमश ३, ६ और ८ प्रति ६० की दर से २ माह के लिये व्याज पर लगाया गया है। ८ माह में होने वाले व्याजों को धनों में से घटाने पर जो धन प्राप्त होते हैं वे तुल्य देखे जाते हैं। इस प्रकार विनियोजित विभिन्न धनों को बतलाओ ॥ ६८ ॥ १३,७४० रुपये, (भागों में) २, ५ और ९ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से व्याज पर लगाये जाते हैं। ४ माह के लिये उधार दिये गये धनों में व्याजों को जोड़ने पर वे बराबर हो जाते हैं। उन धनों को बतलाओ ॥ ६९ ॥ ३,६४३ रुपये (भागों में) क्रमश $१\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$ और $\frac{५}{६}$ प्रति ८० प्रतिमाह की दर से व्याज पर लगाये जाते हैं। ८ माह में

---

(६६) प्रतीक रूप से,

$$\frac{म}{\dfrac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_1}{आ_1 \times घा_1}\right)} + \dfrac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_2}{आ_2 \times घा_2}\right)} + \text{इत्यादि}} \times \frac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_1}{आ_1 \times घा_1}\right)} = ध_1$$

इसी प्रकार,

$$\frac{म}{\dfrac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_1}{आ_1 \times घा_1}\right)} + \dfrac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_2}{आ_2 \times घा_2}\right)} + \text{इत्यादि}} \times \frac{१}{१ \pm \left(\dfrac{१ \times अ \times बा_2}{आ_2 \times घा_2}\right)} = ध_2;$$

इसी तरह $ध_3$, $ध_4$ आदि के लिये।

चत्वारि शतानि सखे युतान्यशीत्या नरैर्विभक्तानि ।
पञ्चभिराचक्ष्व त्वं द्वित्रिचतुःपञ्चषड्गुणितैः ॥ ८६½ ॥

इष्टगुणफलानयनसूत्रम्—

भक्तं शेषैर्मूलं गुणगुणितं तेन योजितं प्रक्षेपम् ।
तद्द्रव्यं मूल्यघ्नं क्षेपविभक्तं हि मूल्यं स्यात् ॥ ८७½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

फलगुणकारैर्हत्वा पणान् फलैरेव भागमादाय ।
प्रक्षेपके गुणाः स्युस्त्रैराशिकः फल वदेन्मतिमान् ॥ ८८½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

स्वफलहृता स्वगुणघ्नाः पणास्तु तैर्भवति पूर्ववच्छेष ।
इष्टफलं निर्दिष्टं त्रैराशिकसाधित सम्यक् ॥ ८९½ ॥

रकम ५ व्यक्तियों में २, ३, ४, ५ और ६ के अनुपात मे विभाजित की गई । हे मित्र ! प्रत्येक के हिस्से में कितनी रकम पड़ी ? ॥ ८६½ ॥

इष्ट गुणफल को प्राप्त करने के लिये नियम—

मूल्यदर को खरीदने योग्य वस्तु (को प्ररूपित करने वाली संख्या) द्वारा विभाजित किया जाता है । तब इसे (दी गई) समानुपाती सख्या द्वारा गुणित करते हैं । इसके द्वारा, हमें योग करने की विधि से समानुपाती भागों का योग प्राप्त हो जाता है । तब दी गई राशि क्रमानुसारी समानुपाती भागों द्वारा गुणित होकर तथा उनके उपर्युक्त योगद्वारा विभाजित होकर इष्ट समानुपात में विभिन्न वस्तुओं के मान को उत्पन्न करती है ।

इसी के लिये दूसरा नियम—

मूल्यदरों (का निरूपण करने वाली सख्याओं) को क्रमश खरीदी जाने वाली विभिन्न वस्तुओं के (दिये गये) समानुपातो को निरूपित करने वाली संख्याओं द्वारा गुणित करते हैं । तब फल को मूल्यदर पर खरीदने योग्य वस्तुओं की संख्याओं से क्रमवार विभाजित करते हैं । परिणामी राशियाँ प्रक्षेप की क्रिया में (चाहे हुए) गुणक (multipliers) होती हैं । बुद्धिमान लोग फिर इष्ट उत्तर को त्रैराशिक द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८८½ ॥

इसी के लिये एक और नियम—

विभिन्न मूल्यदरों का निरूपण करने वाली सख्याएँ क्रमश. उनकी स्वसंबन्धित खरीदने योग्य वस्तुओं का निरूपण करनेवाली सख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं । और तब, उनकी सबन्धित समानुपाती सख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं । इनकी सहायता से, शेष क्रिया साधित की जाती है । इष्टफल त्रैराशिक निर्दिष्ट क्रिया द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त हो जाता है ॥ ८९½ ॥

---

१२० विभाजित की जाती है और परिणामी भजनफल ८ को अलग-अलग समानुपाती अशों ६, ४, ३, २ द्वारा गुणित करते हैं । इस प्रकार प्राप्त रकमें ६ × ८ अर्थात् ४८, ४ × ८ अथवा ३२, ३ × ८ अर्थात् २४, २ × ८ अथवा १६ हैं । प्रक्षेप का अर्थ समानुपाती भाग की क्रिया भी होता है तथा समानुपाती अश भी होता है ।

(८७½–८९½) इन नियमों के अनुसार ९०½ वीं और ९१½ वीं गाथाओं का हल निकालने के लिये २, ३ और ५ को क्रमशः ३, ५ और ७ से विभाजित करते हैं तथा ६, ३ और १ द्वारा गुणित

केनापि संप्रयुक्ताशीति पञ्चकशतप्रयोगेण ॥ ७४½ ॥
अष्टाद्यष्टोत्तरतस्तदशीत्यष्टांशगच्छेन । मूलधन दत्त्वाष्टाद्यष्टोत्तरतो धनस्य मासार्धात् ॥ ७५½ ॥
वृद्धिं प्रादान्मूलं वृद्धिश्च विमुक्तिकालश्च । एषां परिमाण किं विगणय्य सखे ममाचक्ष्व ॥ ७६½ ॥

एकीकरणसूत्रम्—

वृद्धिसमासं विभजेन्मासफलैक्येन लब्धमिष्टः कालः । कालप्रमाणगुणितस्तदिष्टकालेन संभक्तः ॥
वृद्धिसमासेन हतो मूलसमासेन भाजितो वृद्धिः ॥ ७७½ ॥

अत्रोद्देशकः

युक्ता चतुरशतीह द्विकत्रिकपञ्चकचतुष्कशतेन । मासाः पञ्च चतुर्द्वित्रयः प्रयोगैककाल. कः ॥ ७८½ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे वृद्धिविधानं समाप्तम् ।

वाले ऋण की मुक्ति के लिये ८० को महत्तम रकम चुना। इसके साथ, ८ प्रथम किस्त की रकम थी जो प्रति ½ माह में उत्तरोत्तर ८ द्वारा बढ़ती चली गई। इस प्रकार, उसने समान्तर श्रेढि के योग को ऋण रूप में चुकाया। इस समान्तर श्रेढि मे ८०/८ पदों की सख्या थी। इन ८ के अपवर्त्यों पर ब्याज भी चुकाया गया। हे मित्र! श्रेढि के योग की सवादी ऋण की रकम, चुकाया गया ब्याज और ऋण मुक्ति का समय अच्छी तरह गणना कर निकालो ॥ ७३½–७६ ॥

औसत साधारण ब्याज को निकालने के लिये नियम—

(विभिन्न उपार्जित होने वाले) ब्याजों के योग को (विभिन्न सवादी) एक माह के दातव्य ब्याजों के योग द्वारा विभाजित करने पर परिणामी भजनफल, इष्ट समय होता है। (काल्पनिक) समयदर और मूलधनदर के गुणनफल को इष्ट समय द्वारा विभाजित करते है और (उपार्जित होने वाले विभिन्न) ब्याजों के योग द्वारा गुणित करते है। प्राप्तफल को विभिन्न दिये गये मूलधनों के योग द्वारा फिर से विभाजित करते हैं। इससे इष्ट ब्याज दर प्राप्त होती है। ॥ ७७–७७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में, चार सौ की ४ रकमें अलग-अलग क्रमश. २, ३, ५ और ४ प्रतिशत प्रतिमास की दर से ५, ४, २ और ३ माहों के लिये ब्याज पर लगाई गईं। औसत साधारण अवधि और ब्याजदर निकालो ॥ ७८½ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में वृद्धि विधान नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

(७७ और ७७½) विभिन्न उत्पन्न होने वाले ब्याज वे होते हैं जो अलग-अलग रकमों के, विभिन्न दरों पर उनकी क्रमवार अवधियों के लिये ब्याज होते हैं।

प्रतीक रूप से,
$$\left\{\frac{घ_1 \times अ_1 \times बा_1}{आ \times घा} + \frac{घ_2 \times अ_2 \times बा_2}{आ \times घा} + \ldots\ldots\right\} \div \left\{\frac{घ_1 \times 1 \times बा_1}{आ \times घा} + \frac{घ_2 \times 1 \times बा_2}{आ \times घा} + \ldots\ldots\right\}$$
$= अ_{औ}$ अथवा औसत अवधि,

और
$$\frac{घा \times आ}{अ_{औ}} \times \left\{\frac{घ_1 \times अ_1 \times बा_1}{आ \times घा} + \frac{घ_2 \times अ_2 \times बा_2}{आ \times घा} + \ldots\ldots\right\} \div (घ_1 + घ_2 + \ldots\ldots) = ब_{औ}$$
अथवा औसत ब्याज।

चत्वारि शतानि सखे युतान्यशीत्या नरैर्विभक्तानि ।
पञ्चभिराचक्ष्व त्वं द्वित्रिचतुःपञ्चषड्गुणितैः ॥ ८६½ ॥

इष्टगुणफलानयनसूत्रम्—

भक्तं शेषैर्मूलं गुणगुणितं तेन योजितं प्रक्षेपम् ।
तद्द्रव्यं मूल्यघ्नं क्षेपविभक्तं हि मूल्यं स्यात् ॥ ८७½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

फलगुणकारैर्हत्वा पणान् फलैरेव भागमादाय ।
प्रक्षेपके गुणाः स्युस्त्रैराशिकः फलं वदेन्मतिमान् ॥ ८८½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

स्वफलहृताः स्वगुणघ्नाः पणास्तु तैर्भवति पूर्ववच्छेषः ।
इष्टफलं निर्दिष्टं त्रैराशिकसाधितं सम्यक् ॥ ८९½ ॥

रकम ५ व्यक्तियों में २, ३, ४, ५ और ६ के अनुपात मे विभाजित की गई । हे मित्र ! प्रत्येक के हिस्से में कितनी रकम पड़ी ? ॥ ८६½ ॥

इष्ट गुणफल को प्राप्त करने के लिये नियम—

मूल्यदर को खरीदने योग्य वस्तु (को प्ररूपित करने वाली संख्या) द्वारा विभाजित किया जाता है । तब इसे (दी गई) समानुपाती संख्या द्वारा गुणित करते हैं । इसके द्वारा, हमें योग करने की विधि से समानुपाती भागों का योग प्राप्त हो जाता है । तब दी गई राशि क्रमानुसारी समानुपाती भागों द्वारा गुणित होकर तथा उनके उपर्युक्त योगद्वारा विभाजित होकर इष्ट समानुपात में विभिन्न वस्तुओं के मान को उत्पन्न करती है ।

इसी के लिये दूसरा नियम—

मूल्यदरों (का निरूपण करने वाली संख्याओं) को क्रमश खरीदी जाने वाली विभिन्न वस्तुओं के (दिये गये) समानुपातो को निरूपित करने वाली संख्याओं द्वारा गुणित करते हैं । तब फल को मूल्यदर पर खरीदने योग्य वस्तुओं की संख्याओं से क्रमवार विभाजित करते हैं । परिणामी राशियाँ प्रक्षेप की क्रिया में (चाहे हुए) गुणक (multipliers) होती हैं । बुद्धिमान लोग फिर इष्ट उत्तर को त्रैराशिक द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८८½ ॥

इसी के लिये एक और नियम—

विभिन्न मूल्यदरों का निरूपण करने वाली संख्याएँ क्रमशः उनकी स्वसंबन्धित खरीदने योग्य वस्तुओं का निरूपण करनेवाली संख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं । और तब, इनकी संबन्धित समानुपाती संख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं । इनकी सहायता से, शेष क्रिया साधित की जाती है । इष्टफल त्रैराशिक निर्दिष्ट क्रिया द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त हो जाता है ॥ ८९½ ॥

---

१२० विभाजित की जाती है और परिणामी भजनफल ८ को अलग-अलग समानुपाती अंशों ६, ४, ३, २ द्वारा गुणित करते हैं । इस प्रकार प्राप्त रकमें ६ × ८ अर्थात् ४८, ४ × ८ अथवा ३२, ३ × ८ अर्थात् २४, २ × ८ अथवा १६ हैं । प्रक्षेप का अर्थ समानुपाती भाग की क्रिया भी होता है तथा समानुपाती अंश भी होता है ।

(८७½–८९½) इन नियमों के अनुसार ९०½ वीं और ९१½ वीं गाथाओं का हल निकालने के लिये २, ३ और ५ को क्रमशः ३, ५ और ७ से विभाजित करते हैं तथा ६, ३ और १ द्वारा गुणित

उद्देशकः

द्वाभ्यां त्रीणि त्रिभिः पञ्च पञ्चभिः सप्त मानकैः ।
दाडिमाम्रकपित्थानां फलानि गणितार्थवित् ॥ ९०½ ॥
कपित्थात् त्रिगुणं चाम्रं दाडिमं षड्गुणं भवेत् ।
क्रीत्वानय सखे शीघ्रं त्वं षट्सप्ततिभिः पणैः ॥ ९१½ ॥
दध्याज्यक्षीरघटैर्जिनबिम्बस्याभिषेचनं कृतवान् ।
जिनपुरुषो द्वासप्ततिपलैस्त्रयः पूरिताः कलशाः ॥ ९२½ ॥
द्वात्रिंशत्प्रथमघटे पुनश्चतुर्विंशतिर्द्वितीयघटे ।
षोडश तृतीयकलशे पृथक् पृथक् कथय मे कृत्वा ॥ ९३½ ॥
तेषां दधिघृतपयसां चतुर्विंशतिर्घृतस्य पलानि ।
षोडश पयःपलानि द्वात्रिंशद् दधिपलानीह ॥ ९४½ ॥
वृत्तिस्त्रयः पुराणाः पुंसश्चारोहकस्य तत्रापि । सर्वेऽपि पञ्चषष्टिः केचिन्मृता धनं तेषाम् ॥ ९५½ ॥
संनिहितानां दत्तं लब्धं पुंसा तदैव चैकस्य ।
के संनिहिता मृताः के मम संचिन्त्य कथय त्वम् ॥ ९६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अनार, आम और कपित्थ क्रमशः २ पण में ३, ३ पण में ५ और ५ पण में ७ की दर से प्राप्य हैं। हे गणना के सिद्धान्तों को जानने वाले मित्र! ७६ पणों के फल लेकर शीघ्र आओ ताकि आमों की संख्या कपित्थों की संख्या की तिगुनी हो और अनारों की संख्या ६ गुनी हो ॥ ९०½–९१½ ॥ किसी जिनपुरवासी ने जिन प्रतिमा का दही, घी और दुग्ध से पूरित कलशों द्वारा अभिषेक कराया। इनके ७२ पलों द्वारा ३ पात्र भर गये। प्रथम घट में ३२ पल, दूसरे घट में २४ तथा तीसरे में १६ पल पाये गये। इन दधि, घी, दूध मिश्रित पात्रों में मिश्रित द्रव्यों को अलग-अलग ज्ञात और प्राप्त करो जबकि कुल मिलाकर २४ पल घी, १६ पल दूध और ३२ पल दही है ॥ ९२½–९४½ ॥ एक अश्वारोही सैनिक का वेतन ३ पुराण था। इस दर पर कुल ६५ व्यक्ति नियुक्त थे। उनमें से कुछ मारे गये और उनके वेतन की रकम रणक्षेत्र में शेष रहनेवाले सैनिकों को दे दी गई। इस प्रकार, प्रत्येक मनुष्य को ५ पुराण प्राप्त हुए। मुझे बतलाओ कि रणक्षेत्र में कितने सैनिक शेष रहे और कितने जीवित बचे? ॥ ९५½–९६½ ॥

करते हैं। इस प्रकार हमें ३ × १, २ × १, ३ × १ से क्रमशः ४, ३ और ३ प्राप्त होते हैं। ये समानुपाती भाग हैं। ८८½ और ८९½ सूत्रों में इन समानुपाती भागों के संबंध में प्रक्षेप की क्रिया का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु ८०½ सरल नियम में यह क्रिया पूरी तरह वर्णित है।

इष्टरूपाधिकहीनप्रक्षेपककरणसूत्रम्—

पिण्डोऽधिकरूपोनो हीनोत्तररूपसंयुतः शेषात्। प्रक्षेपककरणमतः कर्तव्यं तैर्युता हीनाः ॥ ९७½॥

अत्रोद्देशकः

प्रथमस्यैकांशोऽतो द्विगुणद्विगुणोत्तराद्भजन्ति नराः।
चत्वारोंऽश. कः स्यादेकस्य हि सप्तषष्टिरिह ॥ ९८½ ॥
प्रथमादध्यर्धगुणात् त्रिगुणाद्रूपोत्तराद्विभाज्यन्ते।
साष्टा सप्ततिरेभिश्चतुर्भिराप्तांशकान् ब्रूहि ॥ ९९½ ॥
प्रथमादध्यर्धगुणाः पञ्चार्धगुणोत्तराणि रूपाणि। पञ्चाना पञ्चाशत्सैका चरणत्रयाभ्यधिका॥१००½॥
प्रथमात्पञ्चार्धगुणाश्चतुर्गुणोत्तरविहीनभागेन।
भक्त नरैश्चतुर्भि. पञ्चदशोनं शतचतुष्कम् ॥ १०१½ ॥

समानुपाती भाग सम्बन्धी नियम, जहाँ मन से चुनी हुई कुछ पूर्णांक राशियों को जोड़ना अथवा घटाना होता है—

दी गई कुल राशि को जोड़ी जाने वाली पूर्णांक राशियों द्वारा ह्रासित किया जाता है, अथवा घटाई जानेवाली पूर्णांक धनात्मक राशियों में मिलाया जाता है। तब इस परिणामी राशि की सहायता से समानुपाती भाग की क्रिया की जाती है, और परिणामी समानुपाती भागों को क्रमश. उनमें जोड़ी जानेवाली पूर्णांक राशियों से मिला दिया जाता है, अथवा, वे उन घटाई जानेवाली पूर्णांक राशियों द्वारा क्रमश ह्रासित की जाती हैं ॥ ९७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार मनुष्यों ने उत्तरोत्तर द्विगुणित समानुपाती भागों में और उत्तरोत्तर द्विगुणित अन्तरों वाले योग में अपने हिस्सों को प्राप्त किया। प्रथम मनुष्य को एक हिस्सा मिला। ६७ बाँटी जाने वाली राशि है। प्रत्येक के हिस्से क्या हैं? ॥ ९८½ ॥ ७८ की रकम इन चार मनुष्यों में ऐसे समानुपाती भागों में वितरित की जाती है जो उत्तरोत्तर प्रथम से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से १½ गुणे हैं और (योग में) जिनका अन्तर एक से आरम्भ होकर तिगुना वृद्धि रूप है। प्रत्येक के द्वारा प्राप्त भागों के मान बतलाओ। ॥ ९९½ ॥ पाँच मनुष्यों के हिस्से क्रमिकरूपेण प्रथम से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से १½ गुने हैं, और योग में अन्तर की राशियाँ वे हैं जो उत्तरोत्तर (पूर्ववर्ती अन्तर) से २½ गुणी हैं। ५१¾ विभाजित की जाने वाली कुल राशि है। प्रत्येक के द्वारा प्राप्त भागों के मान बतलाओ ॥ १००½ ॥ ४०० ऋण १५ को चार मनुष्यों के बीच ऐसे भागों में विभाजित किया जाता है जो पहिले से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से २½ गुणे हैं, और जो उन अंतरों द्वारा ह्रासित हैं जो उत्तरोत्तर पूर्ववर्ती अंतर से ४ गुने हैं। विभिन्न भागों के मानों के प्राप्त करो ॥१०१½॥

(९७½) समानुपाती भाग की क्रिया यहाँ ८७½ से ८९½ में दिये गये नियमों में से किसी भी एक के अनुसार की जा सकती है।

(९८½) हिस्सों में जोड़ी जानेवाली अंतर राशि यहाँ १ है जो दूसरे मनुष्य के संबंध में है। यह दो शेष मनुष्यों में से प्रत्येक के लिये पूर्ववर्ती अंतर की दुगुनी है। यह अंतर दूसरे मनुष्य के लिये स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है जैसा कि इस उदाहरण मे १ उल्लिखित है। १००½ वीं गाथा और १०१½ वीं गाथा के उदाहरण में भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

चत्वारिंशत् सैका समधनसंख्या षडेव चरमार्घः ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं ज्येष्ठधनं किं च कानि मूलानि ॥ १०५½ ॥
समधनसंख्या पञ्चत्रिंशद्भवन्ति यत्र दीनारा ।
चत्वारश्चरमार्घो ज्येष्ठधनं किं च गणक कथय त्वम् ॥ १०६½ ॥

चरमार्घभिन्नजातौ समधनार्घानयनसूत्रम्—

तुल्यापच्छेदधनान्त्यार्घाभ्यां विक्रयक्रयार्घौ प्राग्वत् ।
छेदच्छेदकृतिघ्नावनुपातात् समधनानि भिन्नेऽन्त्यार्घे ॥ १०७½ ॥
अर्धत्रिपादभागा धनानि षट्पञ्चभागकाश्चरमार्घः ।
एकार्घेण क्रीत्वा विक्रीय च समधना जाताः ॥ १०८½ ॥

पुनरपि अन्त्यार्घे भिन्ने सति समधनानयनसूत्रम्—

ज्येष्ठांशद्विहरहति सान्त्यहरा विक्रयोऽन्त्यमूल्यघ्नः ।
नैकोद्व्यखिलहरघ्न स्यात्क्रयसंख्यानुपातोऽथ ॥ १०९½ ॥

जाती हैं वह ६ है । हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि कौन सी सबसे ऊची लगाई गई रकम है और विभिन्न अन्य रकमें कौन-कौन हैं ? ॥ १०५½ ॥ उस दशा में जब कि ३५ दीनार समान धन राशि है, और ४ वह कीमत है जिस पर शेष वस्तुएं बेची जाती हैं, हे गणितज्ञ ! मुझे बतलाओ कि सबसे ऊची लगाई जाने वाली रकम क्या है ? ॥ १०६½ ॥

जब अवशिष्ट कीमत (अन्त्य अर्घ) भिन्नीय रूप में हों तब समान बेचने की रकमें उत्पन्न करने वाली कीमतों के मान निकालने के लिये नियम—

अवशिष्ट-कीमत (अन्त्य अर्घ) भिन्नीय होने पर बेचने और खरीदने की दरों को पहिले की भाँति प्राप्त करते हैं जब कि लगाई गई रकमो और अवशिष्ट-कीमत को समान हर वाला बना कर उपयोग में लाते हैं । यह हर इस समय उपेक्षित कर दिया जाता है । तब इष्ट बेचने और खरीदने की दरों को प्राप्त करने के लिये इन बेचने और खरीदने की दरों को इस हर और हर के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं । तब समान विक्रयोदय (बेचने की रकमों) को त्रैराशिक के नियम द्वारा प्राप्त करते हैं ॥ १०७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापार में $\frac{1}{2}$, $\frac{3}{4}$, $\frac{1}{4}$ तीन व्यक्तियों द्वारा लगाई गई रकमें हैं । अवशिष्ट-कीमत (अन्त्यार्घ) $\frac{6}{5}$ है । उन्हीं कीमतों पर खरीदने और बेचने पर वे समान धन राशि वाले बन जाते हैं । बेचने की कीमत और खरीदने की कीमत तथा समान विक्रय-धन निकालो ॥ १०८½ ॥

जब अवशिष्ट-कीमत (अन्त्यार्घ) भिन्नीय हो तब समान विक्रयोदय (बेचने की रकमों) को निकालने के लिये दूसरा नियम—

सबसे बड़े अंश, दो और (लगाई गई मूल रकमों के प्राप्य) हरों का सतत गुणनफल जब अवशिष्ट-मूल्य के मान के हर में जोड़ा जाता है तब बेचने की दर उत्पन्न होती है । जब इसे अवशिष्ट-मूल्य (अन्त्यार्घ) से गुणित कर और १ द्वारा ह्रासित कर और फिर उत्तरोत्तर दो तथा समस्त हरों द्वारा गुणित किया जाता है, तब खरीदने की दर प्राप्त होती है । तत्पश्चात्, त्रैराशिक की सहायता से बेचने की रकमों (sale-proceeds) का साधारण मान प्राप्त होता है ॥ १०९½ ॥

१०५½) यहाँ आलोकनीय है कि इस नियमानुसार केवल सबसे बड़ी रकम निकाली जाती है । अन्य रकमे मन से चुन ली जाती हैं, ताकि वे सबसे बड़ी रकम से छोटी हों ।

वल्लिकाकुट्टीकारः

इतः परं वल्लिकाकुट्टीकारगणितं व्याख्यास्यामः । कुट्टीकारे वल्लिकागणितन्यायसूत्रम्—
छित्त्वा छेदेन राशिं प्रथमफलमपोह्याप्तमन्योन्यभक्तं
स्थाप्योर्ध्वाधर्यतोऽधो मतिगुणमयुजाल्पेऽवशिष्टे धनर्णम् ।
छित्त्वाधः स्वोपरिघ्नोपरियुतहरभागोऽधिकाग्रस्य हारं
छित्त्वा छेदेन साग्रान्तरफलमधिकाग्रान्वितं हारघातम् ॥ ११५½ ॥

वल्लिका कुट्टीकार

इसके पश्चात् हम वल्लिका कुट्टीकार* नामक गणना विधि की व्याख्या करेंगे ।

कुट्टीकार सम्बन्धी वल्लिका नामक गणना विधि के लिये नियम—

दी गई राशि (समूह वाचक संख्या) को दिये गये भाजक द्वारा विभाजित करो । प्रथम भजनफल को अलग कर दो । तब (विभिन्न परिणामी शेषों द्वारा विभिन्न परिणामी भाजकों के उत्तरोत्तर भाग से प्राप्त विभिन्न) भजनफलों को एक दूसरे के नीचे रखो, और फिर इसके नीचे मन से चुनी हुई संख्या रखो जिससे कि (उत्तरोत्तर भाग की उपर्युक्त विधि में) अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष को गुणित किया जाता है; और तब इसके नीचे इस गुणनफल को (प्रश्नानुसार दी गई ज्ञात संख्या द्वारा) बढ़ाकर या ह्रासित कर और तब (उपर्युक्त उत्तरोत्तर भाग की विधि में अन्तिम भाजक द्वारा) भाजित कर रखो । इस प्रकार वल्लिका अर्थात् बेलि सरीखी अंकों की श्रृङ्खला प्राप्त होती है । इसमें श्रृङ्खला की निम्नतम संख्या को, (इसके ठीक ऊपर की संख्या में ऊपर के ठीक ऊपर की संख्या का गुणन करने से प्राप्त) गुणनफल में जोड़ते हैं । ऐसी रीति को तब तक करते जाते हैं जब तक कि पूरी श्रृङ्खला समाप्त नहीं हो जाती है । यह योग पहिले ही दिये गये भाजक से भाजित किया जाता है । [इस अन्तिम भाजन में 'शेष' गुणक बन जाता है जिसमें, (इस प्रश्न में बतलाई गई विधि में) विभाजित या वितरित की जाने वाली राशि को प्राप्त करने के लिये, पहिले दी गई राशि (समूह वाचक संख्या) का गुणा किया जाता है । परन्तु, जो एक से अधिक बार बढ़ाई गई अथवा ह्रासित की गई हों, ऐसी दी गई राशियों (समूह वाचक संख्याओं) को एक से अधिक समानुपात में विभाजित करना पड़ता है । यहाँ दो विशिष्ट विभाजनों में से कोई एक के सम्बन्ध में प्राप्त] अधिक बड़ा समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक को (छोटे समूह वाचक मान सम्बन्धी) भाजक द्वारा ऊपर बतलाये अनुसार भाजित किया जाता है ताकि उत्तरोत्तर भजनफलों की लता के समान श्रृङ्खला पूर्व क्रम अनुसार इस दशा में भी प्राप्त हो जावे । इस श्रृंखला में निम्नतम भजनफल के नीचे, इस अन्तिम उत्तरोत्तर में भाग में अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष के मन से चुने हुए गुणक को रखा जाता है, और फिर इसके नीचे पहिले बतलाए हुए दो समूह वाचक मानों के अन्तर को ऊपर मन से चुने हुए गुणक द्वारा गुणित कर,

---

*वल्लिका कुट्टीकार कहने का कारण यह है कि इस नियम में समझाई गई कुट्टीकार की विधि लता समान अंकों की श्रृंखला पर आधारित होती है ।

(११५½) गाथा ११७½ वीं का प्रश्न साधित करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा । यहाँ कथन किया गया है कि ७ अलग फलों सहित ६३ केलों के ढेर २३ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हैं । एक ढेर में फलों की संख्या निकालना है । यहाँ ६३ को 'समूह वाचक संख्या' (राशि) कहा जाता है, और प्रत्येक में स्थित फलों के संख्यात्मक मान को 'समूह वाचक मान' कहा जाता है । इसी 'समूह

अन्तिम अयुग्म स्थिति क्रम वाले अल्पतम शेष में जोड़कर परिणामी योगफल को ऊपर की भाजन श्रृंखला के अन्तिम भाजक द्वारा विभाजित करने के पश्चात् प्राप्त संख्या को रखना चाहिये। इस प्रकार इस वाद

वाचक मान² को निकालना इष्ट होता है। अब इस नियम के अनुसार हम पहिले राशि अथवा समूह वाचक संख्या ६३ को छेद अथवा भाजक २१ द्वारा भाजित करते हैं, और तब हम जिस प्रकार दो संख्याओं का महत्तम समापवर्त्य निकालते हैं उसी प्रकार की भाग विधि को यहाँ जारी रखते हैं।

```
२१ ) ६३ ( २
     ४२
     ——
     १७ ) २१ ( १            १
          १७                ९
          ——                १
           ४ ) १७ ( ४       ४
               १६
               ——
                १ ) ४ ( ४
                    ४
                    —
                    ० ) ५ | ४
                        ४
                        —
                        १
```

यहाँ हम पाँचवें शेष के साथ ही भाग रोक देते हैं, क्योंकि वह भाजन की श्रेढ़ियों में अयुग्म स्थिति क्रम वाला अल्पतम शेष है।

१—५१
२—१८
१—११
४—१२
१
८

यहाँ प्रथम भजनफल २ को उपेक्षित कर दिया जाता है अन्य भजनफल बाजू के स्तम्भ में एक पंक्ति में एक के नीचे एक लिखे गये हैं। अब हमें एक ऐसी संख्या चुनना पड़ती है जो जब अन्तिम शेष १ के द्वारा गुणित की जाती है, और फिर ७ में जोड़ी जाती है, तो वह अन्तिम भाजक १ के द्वारा भाज्य होती है। इसलिये हम १ को चुनते हैं, जो श्रृंखला में अन्तिम अंक के नीचे लिखा हुआ है। इस चुनी हुई संख्या के नीचे फिरसे चुनी हुई संख्या की सहायता से, उपर्युक्त भाग में प्राप्त भजनफल लिखा जाता है। इस प्रकार हमें बाजू में प्रथम स्तम्भ के अंकों में श्रृंखला अथवा वल्लिका प्राप्त हो जाती है। तब हम श्रृंखला के नीचे उप अन्तिम अंक अर्थात् १ को लिखकर उसके ऊपर के अंक ४ द्वारा गुणित करते हैं, और ८ जोड़ते हैं। यह ८, श्रृंखला की अंतिम संख्या है। परिणामी १२ इस तरह लिख दिया जाता है ताकि वह ४ के संवादी स्थान में हो। तत्पश्चात् इस १२ को वल्लिका श्रृंखला में उसके ऊपर के अंक १ द्वारा गुणित करते हैं और १ जोड़ने पर (जो कि उसके सही प्रकार नीचे है) हमें ११ एक के संवादी स्थान में प्राप्त होता है। इसी प्रकार, क्रिया को जारी रखकर हमें १८ और ५१ भी प्राप्त होते हैं जो २ और १ के संवादी स्थान में प्राप्त किये जाते हैं। इस ५१ को २१ द्वारा भाजित किया जाता है, और शेष ५ एक गुच्छे में फलों की अल्पतम संख्या दर्शित करती है। निम्नलिखित बीजीय निरूपण द्वारा इस नियम का मूलभूत सिद्धान्त (rationale) स्पष्ट हो जायेगा—

$$\frac{\text{आक}+\text{ब}}{\text{भा}} = \text{न}\ (\text{जो एक पूर्णांक है}) = \text{फ}_1\,\text{क}+\text{प}_1,\quad \text{जहाँ}\ \text{प}_1 = \frac{(\text{भा}-\text{आफ}_1)\,\text{क}+\text{ब}}{\text{भा}}$$

$$\text{क} = \frac{\text{भाप}_1-\text{ब}}{\text{र}_1}$$ (जहाँ $\text{र}_1 = \text{भा} - \text{आफ}_1$ जो प्रथम शेष है) $= \text{फ}_2\,\text{प}_1 + \text{प}_2$, जहाँ $\text{प}_2 = \frac{\text{र}_2\,\text{प}_1 - \text{ब}}{\text{र}_1}$, और फ_2 दूसरा भजनफल है तथा र_2 दूसरा शेष है।

इसलिये $\text{प}_1 = \frac{\text{र}_1\,\text{प}_2 + \text{ब}}{\text{र}_2} = \text{फ}_3\,\text{प}_2 + \text{प}_3$ जहाँ $\text{प}_3 = \frac{\text{र}_3\,\text{प}_2 + \text{ब}}{\text{र}_2}$ और फ_3 तीसरा भजनफल तथा र_3 तीसरा शेष है।

के मिश्रित प्रश्न के हल के लिये इष्ट लता समान अंकों की श्रृङ्खला प्राप्त की जाती है। यह श्रृङ्खला पहिले की भाँति नीचे से ऊपर की ओर बर्ती जाती है और, पहिले की तरह, परिणामी संख्या को इस

इसी तरह, $प_२ = \frac{र_२ प_३ - ब}{र_३} = फ_४ प_३ + प_४$, जहाँ $प_४ = \frac{र_४ प_३ - ब}{र_३}$ है; $प_३ = \frac{र_३ प_४ + ब}{र_४}$ $= फ_५ प_४ + प_५$, जहाँ $प_५ = \frac{र_५ प_४ + ब}{र_४}$ है। इस प्रकार हमें निम्नलिखित सम्बन्ध प्राप्त होते हैं—

$क = फ_२ प_१ + प_२,\ प_१ = फ_३ प_२ + प_३,\ प_२ = फ_४ प_३ + प_४,\ प_३ = फ_५ प_४ + प_५,$

$प_४$ का मान इस तरह चुनते हैं ताकि $\frac{र_५ प_४ + ब}{र_४}$ (जोकि उपर बतलाए अनुसार $प_५$ का मान है), एक पूर्णांक बन जावे। इस प्रकार, श्रृंखला $फ_२$, $फ_३$, $फ_४$, $प_४$ और $प_५$ को जमाते हैं जिससे क का मान प्राप्त हो जाता है, अर्थात् ऊपरी राशि की गुणन विधि को तथा श्रृंखला की निम्नतर राशि की जोड़ विधि को सबसे ऊपर की राशि तक ले जाकर क का मान प्राप्त करते हैं। क का मान इस प्रकार प्राप्त कर, उसे आ के द्वारा विभाजित करते हैं। प्राप्त शेष, क की अल्पतम अर्हा को निरूपित करता है; क्योंकि क के वे मान जो समीकार $\frac{बाक + ब}{आ}$ = कोई पूर्णांक, का समाधान करते हैं, सब समान्तर श्रेढि में होते हैं जहाँ प्रचय (common difference) आ होता है।

इस नियम के द्वारा वे प्रश्न भी हल किये जा सकते हैं जहाँ दो या दो से अधिक दशायें दी गई रहती हैं। ऐसे प्रश्न गाथाओं १२१½ से लेकर १२९½ तक दिये गये हैं। १२१½ वीं गाथा का प्रश्न इस नियम के अनुसार इस प्रकार हल किया जा सकता है—

दिया गया है कि फलों का एक ढेर जब ७ द्वारा ह्रासित किया जाता है तब वह ८ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हो जाता है, और वही ढेर जब ३ द्वारा ह्रासित किया जाता है तब १३ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हो जाता है। अब उपर्युक्त रीति द्वारा सबसे पहिले फलों की अल्पतम संख्या को निकाला जाता है जो प्रथम दशा का समाधान करे, और तब फलों की वह संख्या निकाली जाती है जो दूसरी दशा का समाधान करे। इस प्रकार, हमें क्रमश १५ और १६ समूह वाचक मान प्राप्त होते हैं। अब अधिक बडे समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक को छोटे समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक द्वारा विभाजित किया जाता है ताकि नयी वल्लिका (श्रृंखला) प्राप्त हो जावे। इस प्रकार, १३ को ८ द्वारा विभाजित करने पर और भाग को जारी रखने पर हमें निम्नलिखित प्राप्त होता है—

```
८)१३(१
  ८          १
  ५)८(१      १
    ५        १
    ३)५(१    १
      ३      १
      २)३(१  २
        २
        १)२(१
          १
          १
```

इसके द्वारा वल्लिका श्रृंखला इस प्रकार प्राप्त होती है—

१ को 'मति' चुनकर, और पहिले ही प्राप्त दो समूह मानों के अंतर (१६-१५) को अर्थात् १ को मति और अंतिम भाजक के गुणनफल में जोडते हैं। इस योग को अंतिम भाजक द्वारा भाजित करने पर हमें २ प्राप्त होता है जिसे वल्लिका (श्रृंखला) में मति के नीचे लिखना होता है। तब, वल्लिका के साथ पहिले की रीति करने पर हमें ११ प्राप्त होता है, जिसे प्रथम भाजक ८ द्वारा भाजित करने पर शेष ३ बच रहता है। इसे अधिक बडे समूहमान सम्बन्धी भाजक १३ द्वारा गुणित कर, अधिक बडे समूहमान में जोड़ दिया जाता है (१३ × ३ + १६ = ५५)। इस प्रकार ढेर में फलों की संख्या ५५ प्राप्त होती है।

अत्रोद्देशकः

जम्बूजम्बीररम्भाक्रमुकपनसखर्जूरहिन्तालताली–
पुन्नागाम्राद्यनेकद्रुमकुसुमफलैर्नम्रशाखाधिरूढम् ।
भ्राम्यद्भृंगाब्जवापीशुकपिककुलनानाध्वनिव्याप्तदिक्कं
पान्था श्रान्ता वनान्तं श्रमनुदममलं ते प्रविष्टा प्रहृष्टाः ॥ ११६½ ॥
राशिस्त्रिषष्टिः कदलीफलानां संपीड्य संक्षिप्य च सप्तभिस्तैः ।
पान्थैस्त्रयोविंशतिभिर्विशुद्धा राशेस्त्वमेकस्य वद प्रमाणम् ॥ ११७½ ॥
राशीन् पुनर्द्वादश दाडिमानां समस्य संक्षिप्य च पञ्चभिस्तैः ।
पान्थैर्नरैर्विंशतिभिर्निरेकैर्भक्तांस्तथैकस्य वद प्रमाणम् ॥ ११८½ ॥
दृष्ट्वाम्रराशीन् पथिको यथैकत्रिंशत्समूहं कुरुते त्रिहीनम् ।
शेषे हृते सप्ततिभिस्त्रिमिश्रैर्नरैर्विशुद्धं कथयैकसंख्याम् ॥ ११९½ ॥
दृष्टाः सप्तत्रिंशत्कपित्थफलराशयो वने पथिकैः ।
सप्तदशापोह्य हृते व्येकाशीत्यांशकप्रमाणं किम् ॥ १२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वन का प्रकाशवान और ताजगी लाने वाला सीमास्थ (outskirts) बहुत से ऐसे वृक्षों से पूर्ण था जिनकी शाखायें फल-फूल के भार से नीचे झुक गईं थीं। ऐसे वृक्षों में जम्बू, जम्बीर, रम्भा, क्रमुक, पनस, खजूर, हिन्ताल, ताली, पुन्नाग और आम (समाविष्ट) थे। वह स्थान तोतों और कोयलों की ध्वनि से व्याप्त था। तोते और कोयलें ऐसे झरनों के किनारे पर थीं जिनमें कमलों पर भ्रमर भ्रमण कर रहे थे। ऐसे वनान्त में कुछ थके हुए यात्रियों ने सानन्द प्रवेश किया ॥ ११६½ ॥

केलों की ६३ ढेरियाँ और ७ केले के फल २३ यात्रियों में बराबर-बराबर बाँट दिये गये जिससे कुछ भी शेष न बचा। एक ढेरी में फलों की संख्या बतलाओ ॥ ११७½ ॥

फिर से, अनार की १२ ढेरियाँ और ५ अनार के फल उसी तरह १९ यात्रियों में बाँटे गये। एक ढेरी में कितने अनार थे? ॥ ११८½ ॥

एक यात्री ने आमों की बराबर फलों वाली ढेरियाँ देखीं। ३१ ढेरियाँ ३ फलों द्वारा ह्रासित कर दी गईं। जब शेषफल ७३ व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँट दिये गये तो शेष कुछ भी न रहा। इन ढेरियों में से किसी भी एक में कितने फल थे? ॥ ११९½ ॥

वनमें यात्रियों द्वारा ३७ कपित्थ फल की ढेरियाँ देखी गईं। १७ फल अलग कर दिये गये शेषफल ७९ व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँटने पर कुछ भी शेष न रहा। प्रत्येक को कितने-कितने फल मिले? ॥ १२०½ ॥

है, और तब व का मान सरलता पूर्वक निकाला जा सकता है।

इससे यह देखा जाता है कि जब व का मान निकालने के लिये हम $त_1$ और $स_3$ को कुट्टीकार विधि के अनुसार बर्तते हैं; तब छेद अथवा भाजक को $त_1$ के सम्बन्ध में $\frac{आ_1 आ_2}{प}$ लेना पड़ता है, अथवा, प्रथम दो समीकारों में भाजकों के लघुत्तम समापवर्त्य को लेना पड़ता है।

भक्ता द्वियुक्ता नवभिस्तु पञ्च युक्ताश्चतुर्भिश्च षडष्टभिस्तैः ।
पान्थैर्जनैः सप्तभिरेकयुक्ताश्चत्वार एते कथय प्रमाणम् ॥ १२९½ ॥

अग्रशेषविभागमूलानयनसूत्रम्—

शेषांशाग्रवधो युक् स्वाग्रेणान्यस्तदंशकेन गुणः । यावद्भागास्तावद्विच्छेदाः स्युस्तदग्रगुणाः ॥१३०½॥

समान फलों की संख्या वाली ५ ढेरियाँ थीं, जिनमें २ फल मिलाने के पश्चात् ९ यात्रियों में बाँटने पर कुछ न रहा। ६ ऐसी ढेरियों में ४ फल मिलाने के पश्चात् उसी प्रकार ८ में बाँटने पर, और ४ ढेरियों में १ फल मिलाकर उसी प्रकार ७ में बाँटने पर शेष कुछ न रहा। ढेरी का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥ १२९½ ॥

इच्छानुसार वितरित मूल राशि को निकालने के लिये नियम, जब कि कुछ विशिष्ट ज्ञात राशियों को हटाने पर शेष को प्राप्त किया जाता है —

हटाई जाने वाली (दी गई) ज्ञात राशि और (दी गई ज्ञात राशि को दे चुकने पर) जो शेष विशिष्ट भिन्नीय भाग बच रहता है उसका भिन्नीय समानुपात—इन दोनों का गुणनफल प्राप्त करो। इसके बाद की राशि, इस गुणनफल में पिछले शेष में से निकाली जाने वाली विशिष्ट ज्ञात राशि को जोड़कर प्राप्त की जाती है। और, इस परिणामी योग को उसी प्रकार के ऊपर कथित शेष के शेष रहने वाले भिन्नीय समानुपात द्वारा गुणित किया जाता है। यह उतने बार करना पड़ता है जितने कि वितरण करने पड़ते हैं। तत्पश्चात् इस तरह प्राप्त राशियों के हरों को अलग कर देना चाहिये। हर रहित राशियों और शेष के ऊपर कथित शेष रहने वाले भिन्नीय समानुपात के उत्तरोत्तर गुणनफलों को ज्ञात राशि और (अन्य तत्त्व, जैसे, अज्ञात राशि का गुणाक) अपवर्त्य (तथा भाजक के नाम से वल्लिका कुट्टीकार के प्रश्न में) उपयोग में लाते हैं ॥ १३०½ ॥

(१३०½) यहाँ हटाई जाने वाली ज्ञात राशि अग्र कहलाती है। अग्र के हटाने के पश्चात् जो बच रहता है वह 'शेष' कहलाता है। जो दिया अथवा लिया जाता है ऐसे शेष के भिन्न को अग्रांश कहते हैं, और अग्रांश के दिये अथवा लिये जानेपर जो शेष बच रहता है वह शेषांश अथवा शेष का शेष रहनेवाला भिन्नीय समानुपात कहलाता है, जैसे, जहाँ क का मान निकालना पड़ता है, और 'अ' विभाजित हुए भिन्नीय समानुपात $\frac{१}{३}$ को लेकर प्रथम विभाजन सम्बन्धी अग्र है, वहाँ $\frac{क - अ}{३}$ अग्रांश है और $(क - अ) - \frac{क - अ}{३}$ शेषांश है। १३२½ – १३३½ वीं गाथा के प्रश्न को हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

यहाँ १ पहिला अग्र है, और $\frac{१}{३}$ पहिला अग्रांश है, इसलिये $(१ - \frac{१}{३})$ या $\frac{२}{३}$ शेषांश है। अब, अग्र और शेषांश का गुणनफल $१ \times \frac{२}{३}$ या $\frac{२}{३}$ है। इसे दो स्थानों में लिखो, यथा—

$\left\{ \begin{matrix} २/३ \\ २/३ \end{matrix} \right\}$ . . . . (१)

अब राशियों, $\left\{ \begin{matrix} २/३ \\ २/३ \end{matrix} \right\}$ की पुनरावृत्ति करो; किसी एक राशि में दूसरे अग्र १ को जोड़ दो। तब हमें $\left\{ \begin{matrix} ५/३ \\ २/३ \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होता है। दोनों को दूसरे शेषांश अर्थात् $१ - \frac{१}{३}$ या $\frac{२}{३}$ द्वारा गुणित करो, ताकि $\left\{ \begin{matrix} १०/९ \\ ४/९ \end{matrix} \right\}$ प्राप्त हो। . . . . (२)

इन अंकों को लेकर पहिले की तरह तीसरे अग्र १ को जोड़ो जिससे $\left\{ \begin{matrix} १९/९ \\ ४/९ \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होगा।

अत्रोद्देशकः

आनीतवत्याम्रफलानि पुंसि भागोऽग्रजस्याप पुनस्तदर्धम् ।
गतेऽग्रपुत्रे च तथा कनिष्ठस्तत्राप्यशेषार्धमथो तदन्यः ॥ १३१½ ॥
प्रविश्य जैनं भवनं त्रिपूरुषं भागोऽग्रमभ्यर्च्य जिनस्य पादे¹ ।
शेषत्रिभागं प्रथमेऽनुमाने तथा द्वितीये च तृतीयके च ॥ १३२½ ॥
शेषत्रिभागद्वयतश्च शेषत्र्यंशत्रयं चापि ततस्त्रिभागान् ।
कृत्वा चतुर्विंशतितीर्थनाथान् समर्चयित्वा गतवान् विशुद्धः ॥ १३३½ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे साधारणकुट्टीकारः समाप्तः ।

---

१ हस्तलिपि में पादौ शब्द है जो यहाँ शुद्ध प्रतीत नहीं होता है। B में पादे के लिये के अन्य पाठ है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य द्वारा घर पर आम्र फलों को लाने पर उसके बड़े पुत्र ने पहिले एक फल लिया और तब शेष के आधे लिये। बड़े लड़के के जाने पर छोटे लड़के ने भी शेष में से उसी प्रकार फल लिये; (उसने, तत्पश्चात्, जो शेष रहा उसका आधा लिया); और अन्य पुत्र ने शेष आधे लिये। पिता के द्वारा लाये हुए फलों की संख्या निकालो। ॥ १३१½ ॥ कोई मनुष्य फूल लेकर ऐसे जिन-मंदिर में गया जो मनुष्य की ऊँचाई से तिगुना ऊँचा था। पहिले उसने इन फूलों में से पूजन में जिन भगवान् के चरणों में एक फूल चढ़ाया, और तब पूजन में शेष फूलों के एक तिहाई जिन भगवान् की प्रथम ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये। शेष दो तिहाई फूलों में से उसने उसी प्रकार द्वितीय ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये और तब उसी प्रकार तीसरी ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये। अंत में जो दो तिहाई बचे वे भी तीन बराबर भागों में बाँटे गये और इन भागों में से एक-एक भाग आठ-आठ तीर्थंकरों को (इस प्रकार कुल २४ तीर्थंकरों को) भेंट करने पर उसके पास एक भी फूल न बचा। बतलाओ उसके पास कितने फूल थे? ॥ १३२½–१३३½ ॥

इस प्रकार मिश्रक व्यवहार में साधारण कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

दूसरे शेषांश $१ - \frac{१}{३}$ या $\frac{२}{३}$ द्वारा और अन्तिम अंश या $\frac{१}{३}$ द्वारा गुणित करो जिससे $\left\{ \begin{matrix} १८/८१ \\ ८/८१ \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होगा। (३)

(१) (२), (३) द्वारा दर्शाये गये मिश्रों की इन तीन राशियों में प्रथम मिश्रों के हरों को अलग कर देते हैं और अब वल्लिका कुट्टीकार में क्रमात्मक क्रम निरूपित करते हैं जहाँ इन राशियों में दूसरे मिश्रों में से प्रत्येक अंश और हर क्रमशः भाज्य गुणक और भाजक रूप निरूपण करते हैं। इस प्रकार, $\frac{२ क - १}{३}$ पूर्णांक; $\frac{४ क - १}{९}$ पूर्णांक और $\frac{८ क - १८}{८१}$ पूर्णांक प्राप्त होते हैं। इन तीन दशाओं को समाधानित करनेवाला क का मान फूलों की संख्या होती है।

विषमकुट्टीकारः

इतः परं विषमकुट्टीकारं व्याख्यास्यामः । विषमकुट्टीकारस्य सूत्रम्—
मतिसंगुणितौ छेदौ योज्योनत्याज्यसंयुतौ राशिहृतौ ।
भिन्ने कुट्टीकारे गुणकारोऽयं समुद्दिष्टः ॥ १३४½ ॥

अत्रोद्देशकः

राशिः षट्केन हतो दशान्वितो नवहृतो निरवशेषः ।
दशभिर्हीनश्च तथा तद्गुणकौ[1] कौ ममाशु संकथय ॥ १३५½ ॥

---

१ B गुणकारौ ।

विषम कुट्टीकार*

इसके पश्चात् हम विषम कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे ।

विषम कुट्टीकार सम्बन्धी नियम :—

दिया हुआ भाजक दो स्थानों में लिख लिया जाता है, और प्रत्येक स्थान में मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित किया जाता है । (इस प्रश्न में) जोड़ने के लिये दी गई (ज्ञात) राशि इन स्थानों के किसी एक गुणनफल में से घटाई जाती है । घटाई जाने के लिये दी गई राशि अन्य स्थान में लिखे हुए गुणनफल में जोड़ दी जाती है । इस प्रकार प्राप्त दोनों राशियाँ (प्रश्नानुसार विभाजित की जाने वाली अज्ञात राशियों के) ज्ञात गुणाक (गुणक) द्वारा भाजित की जाती हैं । इस तरह प्राप्त प्रत्येक भजनफल इष्ट राशि होती है, जो भिन्न कुट्टीकार की रीति में दिये गये गुणक द्वारा गुणित की जाती है । ॥ १३४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई राशि ६ द्वारा गुणित होकर, तब १० द्वारा बढ़ाई जाकर और तब ९ द्वारा भाजित होकर कुछ भी शेष नहीं छोड़ती । इसी प्रकार, (कोई दूसरी राशि ६ द्वारा गुणित होकर), तब १० द्वारा ह्रासित होकर (और तब ९ द्वारा भाजित होकर) कुछ शेष नहीं छोड़ती । उन दो राशियों को शीघ्र बतलाओ (जो दिये गये गुणक से यहाँ इस प्रकार गुणित की जाती हैं ।) ॥ १३५½ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में, विषम कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

---

* विषम और भिन्न दोनों शब्द कुट्टीकार के संबंध में उपयोग में लाये गये हैं और दोनों के स्पष्टत एक से अर्थ हैं । ये इन नियमों के प्रश्नों में आने वाली भाज्य (dividend) राशियों के भिन्नीय रूप को निर्देशित करते हैं ।

अत्रोद्देशकः

सप्तोत्तरसप्तत्या युतं शतं योज्यमानमष्टत्रिंशत् । सैकशतद्वयभक्तं को गुणकारो भवेदत्र ॥ १३७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अज्ञात गुणनखंड का भाज्य (dividend) गुणक १७७ है । २४०, स्व में जोड़े जानेवाले अथवा घटाये जाने वाले गुणनफल से सम्बन्धित ज्ञात राशि है, पूरी राशि को २०१ द्वारा भाजित करने पर शेष कुछ नहीं रहता । यहाँ अज्ञात गुणनखण्ड कौन सा है, जिससे की दिया गया भाज्यगुणक गुणित किया जाता है ? ॥ १३७½ ॥ ३५ और अन्य राशियाँ, जो संख्या में १६ हैं, और उत्तरोत्तर मान

प्रश्न है कि जब $\frac{१७७ क \pm २४०}{२०१}$ पूर्णांक है तो क के मान क्या होंगे ? साधारण गुणन खंडों को निरसित करने पर हमें $\frac{५९ क \pm ८०}{६७}$ पूर्णांक प्राप्त होता है । लगातार किये जाने वाले भाग की इष्ट विधि को निम्नलिखित रूप में कार्यान्वित करते हैं—

```
६७)५९(०
   ०              १
  ५९)६७(१         ७
     ५९           २
     ८)५९(७       १
       ५६         १
       ३)८(२      १
         ६        १ + १३ = १४
         २)३(१
           २
           १)२(१
             १
             १
```

प्रथम भजनफल को अलग कर, अन्य भजनफल, श्रृंखला में इस प्रकार लिखे जाते हैं— इसके नीचे १ और १ को अग्रिम लिखा जाता है । ये अन्तिम भाजक और शेष समान होते हैं । यहाँ भी जैसा कि वल्लिका कुट्टीकार में होता है, यह देखने योग्य है कि अन्तिम भाजन में कोई शेष नहीं रहता क्योंकि २ में १ का पूरा-पूरा भाग चला जाता है । परन्तु चूँकि, अन्तिम शेष, श्रृंखला के लिये चाहिये, इसलिये वह अन्तिम भजनफल छोटा से छोटा बनाकर रख दिया जाता है, और अन्तिम संख्या १ में यहाँ, १३ जोड़ते हैं, जो कि ८० में से ६७ का भाग देने पर प्राप्त होता है । इस प्रकार १४ प्राप्त कर, उसे श्रृंखला के अन्त में नीचे लिख दिया जाता है । इस प्रकार श्रृंखला पूरी हो जाती है । इस श्रृंखला के अंकों के लगातार किये गये गुणन और जोड़ द्वारा, (जैसा कि गाथा ११५½ के नोट में पहिले ही समझाया जा चुका है,) हमें ३९२ प्राप्त होता है । इसे ६७ द्वारा विभाजित किया जाता है । शेष ५७ क का एक मान होता है, जब कि ८० को श्रृंखला में अंकों की संख्या अयुग्म होने के कारण ऋणात्मक ले लिया जाता है । परन्तु जब ८० को धनात्मक लिया जाता है, तब क का मान (६७–५७) अथवा १० होता है । यदि श्रृंखला में अंकों की संख्या युग्म होती है, तो क का प्रथम निकाला हुआ मान धनात्मक अग्र सम्बन्धी होता है । यदि यह मान भाजक में से घटाया जाता है तो क का ऋणात्मक अग्र सम्बन्धी मान प्राप्त होता है ।

```
१—३९२
७—३४५
२—४७
१—१६
१—१५
१
१४
```

इस विधि का सिद्धान्त उसी प्रकार है जैसा कि वल्लिका कुट्टीकार के सम्बन्ध में है । परन्तु, उनमें अन्तर यही है कि यहाँ श्रृंखला में दो अन्तिम अंक दूसरी विधि द्वारा प्राप्त किये जाते हैं । अध्याय ६ की ११५½ वीं गाथा के नियम के नोट

अधिकाल्पराश्योर्मूलमिश्रविभागसूत्रम्—

ज्येष्ठघ्नमहाराशेर्जघन्यफलताडितोनमपनीय ।
फलवर्गशेषभागो ज्येष्ठार्घोऽन्यो गुणस्य विपरीतम् ॥ १३९½ ॥

अत्रोद्देशकः

नवाना मातुलुङ्गाना कपित्थाना सुगन्धिनाम् । सप्ताना मूल्यसंमिश्र सप्तोत्तरशतं पुन. ॥१४०½॥
सप्ताना मातुलुङ्गानां कपित्थानां सुगन्धिनाम् । नवानां मूल्यसंमिश्रमेकोत्तरशतं पुन ॥१४१½॥
मूल्ये ते वद मे शीघ्रं मातुलुङ्गकपित्थयो: । अनयोर्गणक त्वं मे कृत्वा सम्यक् पृथक् पृथक् ॥१४२½॥

बहुराशिमिश्रतन्मूल्यमिश्रविभागसूत्रम्—

इष्टघ्नफलैरूनितलाभादिष्टाप्तफलमसकृत् । तैरूनितफलपिण्डस्तच्छेदा गुणयुतास्तदर्घाः स्यु. ॥१४३½॥

बड़ी और छोटी सख्याओ वाली वस्तुओ की कीमतों के दिये गये मिश्र योगों मे से दो भिन्न वस्तुओ की विनिमयशील बड़ी और छोटी संख्या की कीमतो को अलग-अलग करने के लिये नियम—

दो प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक की सवादी बड़ी सख्या द्वारा गुणित उच्चतर मूल्य-योग में से दो प्रकार की वस्तुओं में से अन्य सम्बन्धी छोटी सख्या द्वारा गुणित निम्नतर मूल्य-सख्या घटाओ । तब, परिणाम को इन वस्तुओ सम्बन्धी सख्याओ के वर्गों के अन्तर द्वारा भाजित करो । इस प्रकार प्राप्त फल अधिक संख्या वाली वस्तुओं का मूल्य होता है । दूसरा अर्थात् छोटी सख्या वाली वस्तु का मूल्य गुणकों (multipliers) को परस्पर बदल देने से प्राप्त हो जाता है ॥१३९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

९ मातुलुङ्ग (citron) और ७ सुगन्धित कपित्थ फलों की मिश्रित कीमत १०७ है । पुन. ७ मातुलुङ्ग और ९ सुगन्धित कपित्थ फलों की कीमत १०१ है । हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बताओ कि एक मातुलुङ्ग और एक कपित्थ के दाम अलग-अलग क्या हैं ? ॥ १४०½–१४२½ ॥

दिये गये मिश्रित मूल्यों और दिये गये मिश्रित मानों मे से विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के विभिन्न मिश्रित परिमाणों की सख्याओं और मूल्यो की अलग-अलग करने के लिये नियम—

(विभिन्न वस्तुओं की) दी गई विभिन्न मिश्रित) राशियो को मन से चुनी हुई सख्या द्वारा गुणित किया जाता है । इन मिश्रित राशियो के दिये गये मिश्रित मूल्य को इन गुणनफलों के मानो द्वारा अलग अलग ह्रासित किया जाता है । एक के बाद दूसरी परिणामी राशियों को मन से चुनी हुई सख्या द्वारा भाजित किया जाता है और शेषों को फिर से मन से चुनी हुई संख्या द्वारा भाजित किया जाता है । इस विधि को बारबार दुहराना पड़ता है । विभिन्न वस्तुओं की दी गई मिश्रित राशियों को उत्तरोत्तर ऊपरी विधि में संवादी भजनफलों द्वारा ह्रासित किया जाता है । इस प्रकार, मिश्रयोगों में विभिन्न वस्तुओ के सख्यात्मक मानों को प्राप्त किया जाता है । मन से चुने हुए गुकों (multipliers) को उपर्युक्त लगातार भाग की विधि वाले मन से चुने हुए भाजकों में मिलाने से प्राप्त राशियाँ तथा उक्त गुणक भी दी गई विभिन्न वस्तुओं के प्रकारो में से क्रमश प्रत्येक की एक वस्तु के मूल्यों की सरचना करते हैं । ॥ १४३½ ॥

(१३९½) बीजीय रूप से, यदि अ क + ब ख = म, और ब क + अख = न हो,
तब $अ^{२}क + अ ब ख = अ म$ और $ब^{२}क + अ ब ख = ब न$ होते हैं ।

$क (अ^{२} - ब^{२}) = अ म - ब न,$

अथवा, $क = \frac{अ म - ब न}{अ^{२} - ब^{२}}$ होता है ।

(१४३½) गाथाओं १४४½ और १४५½ के प्रश्न को निम्नलिखित प्रकार से साधित करने पर

अत्रोद्देशकः

अथ मातुलुङ्गकदलीकपित्थदाडिमफलानि मिश्राणि ।
प्रथमस्य सैकविंशतिरथ द्विरमा द्वितीयस्य ॥ १४४½ ॥
त्रिंशतिरथ सुरभीणि च पुनस्त्रयोविंशतिस्तृतीयस्य ।
तेषां मूल्यसमासस्त्रिसप्ततिः किं फलं कोऽर्घः ॥ १४५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ ३ ढेरियों में सुगन्धित मातुलुङ्ग कदली कपित्थ और दाड़िम फलों को इकट्ठा किया गया है। प्रथम ढेरी में २१ दूसरी में २२ और तीसरी में २३ हैं। इन ढेरियों में से प्रत्येक की मिश्रित कीमत ७३ है। प्रत्येक ढेरी में विभिन्न फलों की संख्या और भिन्न प्रकार के फलों की कीमत निकालो। ॥ १४४½ और १४५½ ॥

निम्न स्पष्ट हो जावेगा।

प्रथम ढेरी में फलों की कुल संख्या २१ है।
दूसरी ,, ,, ,, ,, २२ है।
तीसरी ,, ,, ,, ,, २३ है।

मन से कोई भी संख्या जैसे, २ चुनने पर और उससे इन कुल संख्याओं को गुणित करने पर हमें ४२, ४४, ४६ प्राप्त होते हैं। इन्हें क्रमवार ढेरियों के मूल्य ७३ में से घटाने पर शेष ३१, २९ और २७ प्राप्त होते हैं। इन्हें मन से चुनी हुई दूसरी संख्या ८ द्वारा भाजित करने पर भजनफल ३, ३, ३ और शेष ७, ५ और ३ प्राप्त होते हैं। ये शेष, पुनः, मन से चुनी हुई संख्या २ द्वारा भाजित होनेपर भजनफल ३, २, १ और शेष १, १, १ उत्पन्न करते हैं। इन अंतिम शेषों को यहाँ मन से चुनी हुई संख्या १ द्वारा भाजित करने पर भजनफल १, १, १ प्राप्त होते हैं और शेष कुछ भी नहीं। पहिली कुल संख्या के सम्बन्ध में निकाले गये भजनफलों को उसमें से घटाना पड़ता है। इस प्रकार हमें २१ − (३ + ३ + १) = १४ प्राप्त होता है; यह संख्या और भजनफल ३, ३, १ प्रथम ढेरी में भिन्न प्रकारों के फलों की संख्या प्ररूपित करते हैं। इसी प्रकार हमें दूसरे समूह में १६, ३, २, १ और तीसरे समूह में १८, ३, १, १ विभिन्न प्रकार के फलों की संख्या प्राप्त होती है।

प्रथम चुना हुआ गुणक २ और उसके अन्य मन से चुने हुए गुणकों के योग कीमतें होती हैं। इस प्रकार हमें क्रम से इन ४ भिन्न प्रकारों के फलों में प्रत्येक की कीमत २, २ + ८ या १०, २ + २ या ४, और २ + १ या ३, रूप में प्राप्त होती है।

इस रीति का मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित बीजीय निरूपण द्वारा स्पष्ट हो जावेगा—

अक + बख + सग + दघ = प, (१)

अ + ब + स + द = म (२)

मानलो घ = घ; तब (२) को घ से गुणित करने पर हमें घ (अ + ब + स + द) = घम प्राप्त होता है। (३)

(३) को (१) में से घटाने पर हमें अ (क − घ) + ब (ख − घ) + स (ग − घ) = प − घम प्राप्त होता है। (४)

जघन्योनमिलितराश्यानयनसूत्रम्—
पण्यहृताल्पफलोनैश्छिन्द्याडल्पघ्नमूल्यहीनेष्टम् ।
कृत्वा तावत्खण्ड तदूनमूल्य जघन्यपण्यं स्यात् ॥ १४६½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वाभ्या त्रयो मयूरास्त्रिभिश्च पारावताश्च चत्वार. ।
हसा. पञ्च चतुर्भि पञ्चभिरथ सारसा' पट् च ॥ १४७½ ॥
यत्रार्घस्तत्र सखे षट्पञ्चाशत्पणै खगान् क्रीत्वा ।
द्वासप्ततिमानयतामित्युक्त्वा मूल्यमेवादात् ।
कतिभि पणैस्तु विहगा. कति विगणय्याशु जानीया. ॥ १४९ ॥

कुल कीमत के दिये गये मिश्रित मान में से, क्रमशः, मँहगी और सस्ती वस्तुओं के मूल्यों के सख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम —

(दी गई वस्तुओं की दर-राशियो को) उनकी दर-कीमतों द्वारा भाजित करो । (इन परिणामी राशियों को अलग-अलग) उनमें से अल्पतम राशि द्वारा ह्रासित करो। तब (उपर्युक्त भजनफल राशियों में से) अल्पतम राशि द्वारा सब वस्तुओं की मिश्रित कीमत को गुणित करो, और (इस गुणनफल को) विभिन्न वस्तुओ की कुल सख्या में से घटाओ। तब (इस शेष को मन मे) उतने भागों में विभक्त करो (जितने कि घटाने के पश्चात् बचे हुए उपर्युक्त भजनफलो के शेष होते हैं) । और तब, (इन भागो को उन भजनफल राशियों के शेषों द्वारा) भाजित करो । इस प्रकार, विभिन्न सस्ती वस्तुओं की कीमतें प्राप्त होती हैं। इन्हें कुल कीमत से अलग करनेपर खरीदी हुई महँगी वस्तु की कीमत प्राप्त होती है ॥१४६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

"२ पण में ३ मोर, ३ पण में ४ कबूतर, ४ पण में ५ हंस, और ५ पण में ६ सारस की दरों के अनुसार, हे मित्र, ५६ पण के ७२ पक्षी खरीद कर मेरे पास लाओ।" ऐसा कहकर एक मनुष्य ने खरीद की कीमत (अपने मित्र को) दे दी। शीघ्र गणना करके बतलाओ कि कितने पणों में उसने प्रत्येक प्रकार के कितने पक्षी खरीदे ॥ १४७½—१४९ ॥ ३ पण में ५ पल शुण्ठि, ४ पण में

---

(४) को (क — श) से विभाजित करने पर हमें भजनफल अ प्राप्त होता है, और शेष ब (ख — श) + स (ग — श) प्राप्त होता है, जहाँ क — श उपयुक्त पूर्णांक है। इसी प्रकार, हम यह क्रिया अत तक ले जाते हैं।

इस प्रकार, यह देखने में आता है कि उत्तरोत्तर चुने गये भाजक क — श, ख — श और ग — श, जब श में मिलाये जाते हैं, तब वे विभिन्न कीमतों के मान को उत्पन्न करते हैं, प्रथम वस्तु की कीमत श ही होती है, और यह कि उत्तरोत्तर भजनफल अ, ब, स और साथ ही न — (अ + ब + स) विभिन्न प्रकारों की वस्तुओं के मान हैं। इस नियम में, दी गई वस्तुओं के प्रकारों की संख्या से एक कम संख्या के विभाजन किये जाते हैं। अंतिम भाजन में कोई भी शेष नहीं बचना चाहिए।

(१४६½) अगली गाथा (१४७½—१४९) में दिये गये प्रश्न को साधन करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा— दर-राशिया ३, ४, ५, ६ को क्रमवार दर-कीमतों २, ३, ४, ५ द्वारा विभाजित करते हैं। इस प्रकार हमें $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{5}{4}$, $\frac{6}{5}$ प्राप्त होते हैं। इनमें से अल्पतम $\frac{6}{5}$ को अन्य तीन में से अलग-

त्रिभिः पणैः शुण्ठिपलानि पञ्च चतुर्भिरेकादश पिप्पलीनाम् ।
अष्टाभिरेकं मरिचस्य मूल्यं षष्ट्यानयाष्टोत्तरषष्टिमाशु ॥ १५० ॥

इष्टार्घैरिष्टमूल्यैरिष्टवस्तुप्रमाणानयनसूत्रम्—

मूल्यघ्नफलेच्छागुणपणान्तरेष्टप्रयुतिविपर्यासः । छिद्य स्वधनेष्टगुणः प्रक्षेपककरणमवशिष्टम् ॥ १५१ ॥

---

११ पल लम्बी मिर्च, और ८ पण में १ पल मिर्च प्राप्त होती है। ६० पण खरीद के दामों में शीघ्र ही ६८ पल वस्तुओं को प्राप्त करो ॥ १५० ॥

इच्छित रकम (जो कि कुल कीमत है) में इच्छित दरों पर खरीदी गई कुछ विभिन्न वस्तुओं के इच्छित संख्यात्मक-माप को निकालने के लिये नियम—

(खरीदी गई विभिन्न वस्तुओं के) दर-मानों में से प्रत्येक को (अलग-अलग खरीद के दामों के) कुल माप द्वारा गुणित किया जाता है। दर-रकम के विभिन्न माप अलग-अलग समान होते हैं। वे खरीदी गई वस्तुओं की कुल संख्या से गुणित किये जाते हैं। आगे के गुणनफल क्रमवार पिछले गुणनफलों में से घटाये जाते हैं। धनात्मक शेष एक पंक्ति में नीचे लिख लिये जाते हैं। ऋणात्मक शेष एक पंक्ति में उनके ऊपर लिखे जाते हैं। सभी में रहने वाले साधारण गुणनखंडों को अलग कर इस सबको अल्पतम पदों में प्रहासित (लघुकृत) कर लिया जाता है। तब इन प्रहासित अंतरों में से प्रत्येक को मन से चुनी हुई अलग राशि द्वारा गुणित किया जाता है। उन गुणनफलों को जो नीचे की पंक्ति में रहते हैं तथा उन्हें जो ऊपर की पंक्ति में रहते हैं अलग-अलग जोड़ते हैं और दोनों को ऊपर नीचे लिखते हैं। संख्याओं की नीचे की पंक्ति के योग को ऊपर लिखते हैं और ऊपर की पंक्ति के योग को नीचे लिखते हैं। इन योगों को उनके सर्वसाधारण गुणनखंड हटाकर अल्पतम पदों में प्रहासित कर लिया जाता है। परिणामी राशियों में से प्रत्येक को नीचे दुबारा लिख लिया जाता है ताकि एक को दूसरे के नीचे उतनी बार लिखा जा सके जितने कि संवादी एकान्तर योग में घटक तत्व होते हैं। इन संख्याओं को इस प्रकार दो पंक्तियों में जमाकर, उनको क्रमवार दर-कीमतों और चीजों के दर-मापों द्वारा गुणित करते हैं। (अंकों की एक पंक्ति में दर-मूल्य गुणन और अंकों की दूसरी पंक्ति में दर-संख्या का गुणन करते हैं।) इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों को फिरसे उनके सर्वसाधारण गुणनखंडों को हटाकर अल्पतम पदों में प्रहासित कर लिया जाता है। प्रत्येक ऊर्ध्वाधर (vertical) पंक्ति के परिणामी अंकों में से प्रत्येक को अलग-अलग उनके संवादी मन से चुने हुए गुणकों (multipliers) द्वारा गुणित करते हैं। गुणनफलों को पहिले की तरह दो क्षैतिज पंक्तियों में लिख लिया जाना चाहिये। गुणनफलों की ऊपरी पंक्ति की संख्याएँ उस अनुपात में होती हैं जिसमें कि कुल धन वितरित किया गया है। और जो संख्यायें गुणनफलों की निम्न पंक्ति में रहती हैं वे उस अनुपात में होती हैं जिसमें कि संवादी खरीदी गई वस्तुएँ वितरित की जाती हैं। इसलिये अब जो शेष रहती है वह केवल प्रक्षेपक-करण की क्रिया ही है। (प्रक्षेपक-करण क्रिया में त्रैराशिक नियम के अनुसार समानुपातिक विभाजन होता है) ॥ १५१ ॥

संख्या बदलने पर हमें [illegible], [illegible] और [illegible] प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त अल्पतम राशि [illegible] को दी गई मिश्रित कीमत ५६ से ही गुणित करने पर ५६ × [illegible] प्राप्त होता है। कुल पक्षियों की संख्या ७२ में से इसे घटाते हैं। शेष [illegible] को तीन भागों में बाँटते हैं, [illegible], [illegible] और [illegible]। इन्हें क्रमशः [illegible], [illegible] और [illegible] द्वारा भाजित करने पर हमें प्रथम तीन प्रकार के पक्षियों की कीमतें [illegible], १२ और १६ प्राप्त होती हैं। इन तीनों कीमतों को कुल ५६ में से घटाकर पक्षियों के चौथे प्रकार की कीमत प्राप्त की जा सकती है।

(१५१) गाथा १५९–१५१ में दिये गये प्रश्न का साधन निम्नलिखित रीति से करने पर इस

अत्रोद्देशकः

त्रिभिः पारावताः पञ्च पञ्चभि. सप्त सारसाः । सप्तभिर्नव हंसाश्च नवभिः शिखिनस्त्रयः ॥१५२॥
क्रीडार्थं नृपपुत्रस्य शतेन शतमानय । इत्युक्तः प्रहित. कश्चित् तेन किं कस्य दीयते ॥ १५३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कबूतर ५ प्रति ३ पण की दर से बेचे जाते हैं, सारस पक्षी ७ प्रति ५ पण की दर से, हंस ९ प्रति ७ पण की दर से, और मोरें ३ प्रति ९ पण की दर से बेची जाती हैं। किसी मनुष्य को यह कह कर भेजा गया कि वह राजकुमार के मनोरंजनार्थ ७२ पण में १०० पक्षियों को लावे। बतलाओ कि प्रत्येक प्रकार के पक्षियों को खरीदने के लिये उसे कितने-कितने दाम देना पड़ेंगे ? ॥१५२–१५३॥

स्पष्ट हो जावेगा—दर-वस्तुओं और दर-कीमतों को दो पंक्तियों में इस प्रकार लिखो कि एक के नीचे दूसरी हो। इन्हें क्रमशः कुल कीमत और वस्तुओं की कुल सख्या द्वारा गुणित करो। तब घटाओ। साधारण गुणनखंड १०० को हटाओ। चुनी हुई संख्यायें ३, ४, ५, ६ द्वारा गुणित करो। प्रत्येक क्षैतिज पंक्ति में सख्याओं को जोड़ो और साधारण गुणनखंड ६ को हटाओ। इन अंकों की स्थिति को बदलो, और इन दो पंक्तियों के प्रत्येक अक को उतने बार लिखो जितने कि बदली स्थिति के संवादी योग में संघटक तत्व होते हैं। दो पंक्तियों को दर-कीमतों और दर-वस्तुओं द्वारा क्रमशः गुणित करो। तब साधारण गुणनखंड ६ को हटाओ। अब पहिले से चुनी हुई सख्याओं ३, ४, ५, ६ द्वारा गुणित करो। दो पंक्तियों की संख्यायें उन अनुपातों को प्ररूपित करती हैं, जिनके अनुसार कुल कीमत और वस्तुओं की कुल सख्या वितरित हो जाती है। यह नियम अनिर्धारित (indeterminate) समीकरण सम्बन्धी है, इसलिये उत्तरों के कई सघ (sets) हो सकते हैं। ये उत्तर मन से चुनी हुई गुणक (multiplier) रूप राशियों पर निर्भर रहते हैं।

५	७	९	३
३	५	७	९
५००	७००	९००	३००
३००	५००	७००	९००
०	०	०	६००
२००	२००	२००	०
०	०	०	६
२	२	२	०
०	०	०	३६
६	८	१०	०
६			
४			
४			
६			
६	६	६	४
६	६	६	४
१८	३०	४२	३६
३०	४२	५४	१२
३	५	७	६
५	७	९	२
९	२०	३५	३६
१५	२८	४५	१२

यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि, जब कुछ संख्याओं को मन से चुने हुए गुणक (multipliers) मान लेते हैं, तब पूर्णांक उत्तर प्राप्त होते हैं। अन्य दशाओं में, अवाञ्छित भिन्नीय उत्तर प्राप्त होते हैं। इस विधि के मूलभूत सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के लिये अध्याय के अन्त में दिये गये नोट (टिप्पण) को देखिये।

सूर्यरथाश्वेष्टयोगयोजनानयनसूत्रम्—

अखिलाप्ताखिलयोजनसंख्यापर्याययोजनानि स्युः ।
तानीष्टयोगसंख्यानिघ्नान्येकैकगमनमानानि ॥ १५७ ॥

अत्रोद्देशकः

रविरथतुरगा सप्त हि चत्वारोऽश्वा वहन्ति धूर्युक्ताः ।
योजनसप्ततिगतयः के व्यूढाः के चतुर्योगाः ॥ १५८ ॥

सर्वधनेष्टहीनशेषपिण्डात् स्वस्वहस्तगतधनानयनसूत्रम्—

रूपोननरैर्विभजेत् पिण्डीकृतभाण्डसारमुपलब्धम् ।
सर्वधनं स्यात्तस्मादुक्तविहीनं तु हस्तगतम् ॥ १५९ ॥

अत्रोद्देशकः

वणिजस्ते चत्वारः पृथक् पृथक् शौल्किकेन परिपृष्टाः ।
किं भाण्डसारमिति खलु तत्राहैको वणिक्श्रेष्ठः ॥ १६० ॥
आत्मधनं विनिगृह्य द्वाविंशतिरिति ततः परोऽवोचत् ।
त्रिभिरुत्तरा तु विंशतिरथ चतुरधिकैव विंशतिस्तुर्यः ॥ १६१ ॥

सूर्य रथ के अश्वों के इष्ट योग द्वारा योजनों में तय की गई दूरी निकालने के लिए नियम—

कुल योजनों का निरूपण करने वाली संख्या कुल अश्वों की संख्या द्वारा विभाजित होकर प्रत्येक अश्व द्वारा प्रक्रम में तय की जानेवाली दूरी (योजनों में) होती है। यह योजन संख्या जब प्रयुक्त अश्वों की संख्या द्वारा गुणित की जाती है तो प्रत्येक अश्व द्वारा तय की जानेवाली दूरी का मान प्राप्त होता है ॥ १५७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह प्रसिद्ध है कि सूर्य रथ के अश्वों की संख्या ७ है। रथ में केवल ४ अश्व प्रयुक्त कर उन्हें ७० योजन की यात्रा पूरी करना पड़ती है। बतलाओ कि उन्हें ४, ४ के समूह में कितने बार खोलना पड़ता है और कितने बार जोतना पड़ता है ? ॥१५८॥

समस्त वस्तुओं के कुल मान में से जो भी इष्ट है उसे घटाने के पश्चात् बचे हुए मिश्रित शेष में से संयुक्त साझेदारी के स्वामियों में से प्रत्येक की हस्तगत वस्तु के मान को निकालने के लिए नियम—

वस्तुओं के संयुक्त (conjoint) शेषों के मानों के योग को एक कम मनुष्यों की संख्या द्वारा भाजित करो, भजनफल समस्त वस्तुओं का कुल मान होगा। इस कुल मान को विशिष्ट मानों द्वारा ह्रासित करने पर संवादी दशाओं में प्रत्येक स्वामी की हस्तगत वस्तु का मान प्राप्त होता है ॥१५९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार व्यापारियों ने मिलकर अपने धन को व्यापार में लगाया। उन लोगों में से प्रत्येक से अलग-अलग, महसूल पदाधिकारी ने व्यापार में लगाई गई वस्तु के मान के विषय में पूछा। उनमें से एक श्रेष्ठ वणिक ने, अपनी लगाई हुई रकम को घटाकर २२ बतलाया। तब, दूसरे ने २३, अन्य ने २४

$\therefore र - य = \frac{१२}{१४}$ .... (७)

यहाँ (७) और (५) तथा (६) और (३) के सम्बन्ध में संक्रमण किया करते हैं, जिससे य, र, अ और व के मान प्राप्त हो जाते हैं।

क्रयविक्रयलाभैः मूलानयनसूत्रम्—

अन्योऽन्यमूलगुणिते विक्रयभक्ते क्रयं यदुपलब्धं । तेनैकोनेन हृतो लाभ. पूर्वोद्धृत मूल्यम् ॥१६७॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभि क्रीणाति सप्तैव विक्रीणाति च पञ्चभि ।
नव प्रस्थान् वणिक् किं स्याल्लाभो द्वासप्ततिर्धनम् ॥ १६८ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे सकलकुट्टीकार समाप्त ।

सुवर्णकुट्टीकारः

इत पर सुवर्णगणितरूपकुट्टीकारं व्याख्यास्याम । समस्तेष्टवर्णैरेकीकरणेन संकरवर्णानयनसूत्रम्—

कनकक्षयसंवर्गो मिश्रस्वर्णाहृत क्षयो ज्ञेय । परवर्णप्रविभक्तं सुवर्णगुणित फल हेम्न. ॥ १६९ ॥

खरीद की दर, बेचने की दर और प्राप्त लाभ द्वारा, लगाई गई रकम का मान प्राप्त करने के लिये नियम—

वस्तु को खरीदने और बेचने की दरों में से प्रत्येक को, एक के बाद एक, मूल्य दरों द्वारा गुणित किया जाता है। खरीद की दर की सहायता से प्राप्त गुणनफल को बेचने की दर से प्राप्त गुणनफल द्वारा भाजित किया जाता है। लाभ को एक कम परिणामी भजनफल द्वारा विभाजित करने पर लगाई गई मूल रकम उत्पन्न होती है ॥१६७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी ने ३ पण में ७ प्रस्थ अनाज खरीदा और ५ पण में ९ प्रस्थ की दर से बेचा। इस तरह उसे ७२ पण का लाभ हुआ। इस व्यापार में लगाई गई रकम कौन सी है? ॥१६८॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में सकल कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

सुवर्ण कुट्टीकार

इसके पश्चात् हम उस कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे जो स्वर्ण गणित सम्बन्धी है। इच्छित विभिन्न वर्णों के सोने के विभिन्न प्रकार के घटकों को मिलाने से प्राप्त हुए सकर (मिश्रित) स्वर्ण के वर्ण को प्राप्त करने के लिए नियम—

यह ज्ञात करना पड़ता है कि विभिन्न स्वर्णमय घटक परिमाणों के (विभिन्न) गुणनफलों के योग को क्रमश उनके वर्णों से गुणित कर, जब मिश्रित स्वर्ण की कुल राशि द्वारा विभाजित किया जाता है तब परिणामी वर्ण उत्पन्न होता है। किसी सघटक भाग के मूल वर्ण को जब बाद के कुल मिले हुए परिणामी वर्ण द्वारा विभाजित कर, और उस सघटक भाग में दत्त स्वर्ण परिमाण द्वारा गुणित करते हैं तब मिश्रित स्वर्ण की ऐसी सवादी राशि उत्पन्न होती है, जो मान में उसी सघटक भाग के बराबर होती है। ॥१६९॥

---

(१६७) यदि खरीद की दर ब में अ वस्तुएँ हों, और बेचने की दर द में स वस्तुएँ हों, तथा व्यापार में लाभ म हो, तो लगाई गई रकम

$$= \text{म} - \left(\frac{\text{अद}}{\text{बस}} - १ \right)$$ होती है।

अज्ञातवर्णस्य पुनरपि सूत्रम्—

स्वस्वर्णवर्णविनिहतयोगं स्वर्णैक्यदृढहताच्छोध्यम्। अज्ञातवर्णहेम्ना भक्त वर्णं बुधाः प्राहुः ॥१७६½॥

अत्रोद्देशकः

'षड्जलधिवह्निकनकैस्त्रयोदशाष्टर्तुवर्णकैः क्रमश'[1]। अज्ञातवर्णहेम्नः पञ्च विमिश्रक्षयं च सैकदश।
अज्ञातवर्णसंख्यां ब्रूहि सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥ १७८ ॥
चतुर्दशैव वर्णानि सप्त स्वर्णानि तत्क्षये[2]। चतुस्स्वर्णे दशोत्पन्नमज्ञातक्षयकं वद ॥ १७९ ॥

अज्ञातस्वर्णानयनसूत्रम् -

स्वस्वर्णवर्णविनिहतयोग स्वर्णैक्यगुणितदृढवर्णात्।
त्यक्त्वाज्ञातस्वर्णक्षयदृढवर्णान्तराहृतं कनकम् ॥ १८० ॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिचतुःक्षयमानास्त्रिस्त्रि कनकास्त्रयोदशक्षयिक।
वर्णयुतिर्दश जाता ब्रूहि सखे कनकपरिमाणम् ॥ १८१ ॥

---

१. यहाँ रनल के स्थान में वह्नि, और ष्टावृतुक्षयैः के स्थान में ष्टर्तुवर्णकैः आदेशित किया गया है, ताकि पाठ व्याकरण की दृष्टि से और उत्तम हो जावे।

२. हस्तलिपि में पाठ तत्क्षय है, जो स्पष्टरूप से अशुद्ध है।

अज्ञात वर्ण के सम्बन्ध में एक और नियम—

स्वर्ण की विभिन्न सघटक मात्राओं को उनके क्रमवार वर्णों से (respectively) गुणित करते हैं। प्राप्त गुणनफलों के योग को परिणामी वर्ण तथा स्वर्ण की कुलमात्रा के गुणनफल में से घटाते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति कहते हैं कि यह शेष जब अज्ञात वर्णवाले स्वर्ण के वजन द्वारा भाजित किया जाता है तब इष्ट वर्ण उत्पन्न होता है ॥१७६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

क्रमशः १३, ८ और ६ वर्ण वाले ६, ४ और ३ वजन वाले स्वर्ण के साथ अज्ञात वर्ण वाला ५ वजन का स्वर्ण मिलाया जाता है। मिश्रित स्वर्ण का परिणामी वर्ण ११ है। हे गणना के भेदों को जानने वाले मित्र! मुझे इस अज्ञात वर्ण का सख्यात्मक मान बतलाओ ॥१७७½–१७८॥ दिये गये नमूने का ७ वजन वाला स्वर्ण १४ वर्ण वाला है। ४ वजन वाला अन्य स्वर्ण का नमूना (प्रादर्श) उसमें मिला दिया जाता है। परिणामी वर्ण १० है। दूसरे नमूने के स्वर्ण का अज्ञात वर्ण क्या है? ॥१७९॥

स्वर्ण का अज्ञात वजन निकालने के लिये नियम—

स्वर्ण की विभिन्न सघटक मात्राओं को निज के वर्णों द्वारा गुणित करते हैं। प्राप्त गुणनफलों के योग को, स्वर्ण के ज्ञात भारों को अभिनव दृढ़ (durable) परिणामी वर्ण द्वारा गुणित करने से प्राप्त गुणनफलों के योग में से घटाते हैं। शेष को स्वर्ण की अज्ञात मात्रा के ज्ञात वर्ण तथा मिश्रित स्वर्ण के दृढ़ (durable) परिणामी वर्ण के अन्तर द्वारा भाजित करने पर स्वर्ण का वजन प्राप्त होता है ॥१८०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण के तीन टुकड़े जिनमें से प्रत्येक वजन में ३ है, क्रमश २, ३ और ४ वर्ण वाले हैं। ये १३ वर्ण वाले अज्ञात वजन के स्वर्ण में गलाये जाते हैं। परिणामी वर्ण १० होता है। हे मित्र! मुझे बतलाओ कि अज्ञात भारवाले स्वर्ण का माप क्या है? ॥१८१॥

युग्मवर्णमिश्रसुवर्णानयनसूत्रम्—
ज्येष्ठाल्पक्षयसंशोधितपक्षविशेषात्मरूपके भाज्यम् ।
प्रक्षेपमतः कुर्यादेवं बहुशोऽपि वा साध्यम् ॥१८२॥

पुनरपि युग्मवर्णमिश्रसुवर्णानयनसूत्रम्—
इष्टाधिकान्तरं चैव हीनेष्टान्तरमेव च । उभे ते स्थापयेद्व्यस्तं स्वर्णं प्रक्षेपतः फलम् ॥ १८३ ॥

अत्रोद्देशकः

दशवर्णसुवर्णं यत् षोडशवर्णेन संयुतं पक्वम् ।
द्वादश चेत्कनकशतं द्विभेदकनके पृथक् पृथग्ब्रूहि ॥ १८४ ॥

बहुसुवर्णानयनसूत्रम्—
ज्येष्ठैकपक्षानां क्रमशः स्वर्णानीष्टानि कल्पयेच्छेषम् ।
अव्यक्तकनकविधिना प्रसाधयेत् प्राक्तनायेव ॥ १८५ ॥

दिये गये वर्णों वाले स्वर्ण के दो दिये गये नमूनों के मिश्रण के ज्ञात वजन और ज्ञात वर्ण द्वारा दो दिये गये वर्णों के संवादी स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

मिश्रण के परिणामी वर्ण और (अज्ञात संघटक मात्राओं वाले स्वर्ण के) ज्ञात उच्चतर और निम्नतर वर्णों के अन्तरों को प्राप्त करो। १ को इन अन्तरों द्वारा क्रमवार भाजित करो। तब पहिले की भाँति प्रक्षेप क्रिया (अथवा इन विभिन्न भजनफलों की सहायता से समानुपातिक विभाजन) करो। इस प्रकार स्वर्ण की अनेक संघटक मात्राओं की बहुतों को भी प्राप्त किया जा सकता है ॥१८२॥

पुनः, दिये गये वर्ण वाले स्वर्ण के दो दिये गये नमूनों के मिश्रण के ज्ञात वजन और ज्ञात वर्ण द्वारा दो दिये गये वर्णों के संवादी स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

परिणामी वर्ण तथा (स्वर्ण की दो संघटक मात्राओं वाले दो दिये गये वर्णों के) उच्चतर वर्ण के अन्तर को और साथ ही परिणामी वर्ण तथा (दो दिये गये वर्णों के) निम्नतर वर्ण के अन्तर को विलोम क्रम में लिखो। इन विलोम क्रम में रखे हुए अन्तरों की सहायता से समानुपातिक वितरण की क्रिया करने पर प्राप्त किया गया परिणाम (संघटक मात्राओं वाले) स्वर्ण (के इष्ट भारों) को उत्पन्न करता है। ॥१८३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि १ वर्ण वाला स्वर्ण, १६ वर्ण वाले स्वर्ण से मिलाया जाने पर १२ वर्ण वाला १ शतक का स्वर्ण उत्पन्न करता है तो स्वर्ण के दो प्रकारों के वजन के मानों को अलग-अलग प्राप्त करो ॥१८४॥

ज्ञात वर्ण और ज्ञात वजनवाले मिश्रण में ज्ञात वर्ण के बहुत से संघटक मात्राओं वाले स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

एक को छोड़कर सभी ज्ञात संघटक वर्णों के सम्बन्ध में मन से चुने हुए भारों को ले लिया जाता है। तब जो शेष रहता है उसे पहिले जैसी दी गई दशाओं के सम्बन्ध में अज्ञात भार वाले स्वर्ण के निश्चित करने के नियम द्वारा हल करना पड़ता है। ॥१८५॥

---

[१८५] यहाँ दिया गया नियम ऊपर दी गई गाथा १८ में उपलब्ध है।

अत्रोद्देशकः

वर्णाः शरर्तुनगवसुमृडविश्वे नव च पक्ववर्णं हि ।
कनकानां षष्टिश्चेत् पृथक् पृथक् कनकमा किं स्यात् ॥ १८६ ॥

द्वयनष्टवर्णानयनसूत्रम्—
स्वर्णाभ्यां हृतरूपे सुवर्णवर्णाहते द्विष्ठे ।
स्वस्वर्णहृतैकेन च हीनयुते व्यस्ततो हि वर्णफलम् ॥ १८७ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशदशकनकाभ्यां वर्णं न ज्ञायते[1] पक्वम् ।
वर्णं चैकादश चेद्वर्णौ तत्कनकयोर्भवेतां कौ ॥ १८८ ॥

---

१. B में यहाँ यते जुडा है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

सघटक राशियो वाले स्वर्ण के दिये गये वर्ण क्रमश ५, ६, ७, ८, ११ और १२ है, और परिणामी वर्ण ९ है । यदि स्वर्ण की समस्त संघटक मात्राओ का कुल भार ६० हो तो स्वर्ण की विभिन्न सघटक मात्राओं के वजन से विभिन्न माप कौन-कौन होंगे ? ॥१८६॥

जब मिश्रण का परिणामी वर्ण ज्ञात हो, तब स्वर्ण की दो ज्ञात मात्राओ के नष्ट अर्थात् अज्ञात वर्णों को निकालने के लिये नियम—

१ को स्वर्ण के दिये गये दो वजनो द्वारा अलग-अलग भाजित करो । इस प्रकार प्राप्त भजनफलों में से प्रत्येक को अलग-अलग स्वर्ण की सगत मात्रा के भार द्वारा तथा परिणामी वर्ण द्वारा भी गुणित करो । इस प्रकार प्राप्त दोनो गुणनफलों को दो भिन्न स्थानो में लिखो । इन दो कुलकों (sets) में से प्रत्येक के इन फलों में से प्रत्येक को यदि उन राशियों द्वारा ह्रासित किया जाय अथवा जोड़ा जाय, जो १ को संगत प्रकार के स्वर्ण के ज्ञात भार द्वारा भाजित करने पर प्राप्त होती हैं, तो इष्ट वर्णों की प्राप्ति होती है ॥१८७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि सघटक वर्ण ज्ञात न हो, और क्रमश १६ और १० भार वाले दो भिन्न प्रकार के स्वर्णों का परिणामी वर्ण ११ हो, तो इन दो प्रकार के स्वर्ण के वर्ण कौन कौन हैं, बतलाओ ॥१८८॥

---

(१८७) गाथा १८८ के प्रश्न को निम्न रीति से साधित करने पर यह सूत्र स्पष्ट हो जावेगा—

$\frac{१}{१६} \times १६ \times ११$ और $\frac{१}{१०} \times १० \times ११$ दो स्थानों में लिख दिया जाता है ।

इस प्रकार, ११ ११ लिखने पर,
११ ११

$\frac{१}{१६}$ और $\frac{१}{१०}$ को दो कुलकों में प्रत्येक के इन फलों में से प्रत्येक को क्रमानुसार १ को वर्ण द्वारा भाजित करने से प्राप्त राशियों द्वारा जोड़ा और घटाया जाता है—

$\left.\begin{matrix} ११ + \frac{१}{१६} \\ ११ - \frac{१}{१०} \end{matrix}\right\}$ और $\left\{\begin{matrix} ११ - \frac{१}{१६} \\ ११ + \frac{१}{१०} \end{matrix}\right.$ इस प्रकार उत्तरों के दो कुलक (sets) प्राप्त होते हैं ।

चतुरुत्तरदशवर्णं षोडशवर्णं तृतीयस्य । कनकं चास्ति प्रथमस्यैकोनं च द्वितीयस्य ॥ १९४ ॥
अर्धार्धन्यूनमथ तृतीयपुरुषस्य पादोनम् । परवर्णादारभ्य प्रथमस्यैकान्त्यमेव च द्व्यन्त्यम् ॥१९५॥
त्र्यन्त्यं तृतीयवणिजः सर्वशलाकास्तु माषमिताः ।
शुद्धं कनकं किं स्यात् प्रपूरणी का पृथक् पृथक् त्वं मे ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं सुवर्णगणितं हि यदि वेत्सि ॥ १९६$\frac{1}{2}$ ॥

विनिमयवर्णसुवर्णानयनसूत्रम्—

क्रयगुणसुवर्णविनिमयवर्णेष्टघ्नान्तरं पुनः स्थाप्यम् ।
व्यस्तं भवति हि विनिमयवर्णान्तरहृत्फलं कनकम् ॥ १९७$\frac{1}{2}$ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशवर्णं कनकं सप्तशतं विनिमयं कृतं लभते ।
द्वादशदशवर्णाभ्यां साष्टसहस्रं तु कनकं किम् ॥ १९८$\frac{1}{2}$ ॥

---

१४ वर्ण वाला और तीसरे का १६ वर्ण वाला था । पहिले व्यापारी की परीक्षण शलाकाओं के विभिन्न नमूने, नियमित क्रम से, वर्ण में १ कम होते जाते थे। दूसरे के $\frac{1}{2}$ और $\frac{1}{2}$ कम और तीसरे के नियमित क्रम में $\frac{3}{4}$ कम होते जाते थे । पहिले व्यापारी ने परीक्षण स्वर्ण के नमूने को महत्तम वर्णवाले से आरम्भकर १ वर्ण वाले तक बनाये, उसी तरह से दूसरे व्यापारी ने २ वर्ण वाली तक की शलाकाएँ बनाईं और तीसरे ने भी महत्तम वर्ण वाली से आरम्भ कर ३ वर्ण वाली तक की परीक्षण शलाकाएँ बनाईं । प्रत्येक परीक्षण शलाका भार में १ माशा थी । हे गणितज्ञ ! यदि तुम वास्तव में स्वर्ण गणना को जानते हो, तो शीघ्र बतलाओ कि यहाँ शुद्ध स्वर्ण का माप क्या है, तथा प्रपूर्णिका (निम्न श्रेणी की मिली हुई धातु) की मात्रा क्या है ? ॥१९३–११६$\frac{1}{2}$॥

दो दिये गये वर्ण वाले और बदले में प्राप्त स्वर्ण के भिन्न भारों को निकालने के लिये नियम—

पहिले बदले जाने वाले दिये गये स्वर्ण के भार को दिये गये वर्ण द्वारा गुणित करते हैं, और बदले में प्राप्त स्वर्ण का भार तथा बदले हुए स्वर्ण के दो नमूनों में से पहिले के वर्ण द्वारा गुणित करते हैं । प्राप्त गुणनफलों के अंतर को एक ओर लिख लिया जाता है । उपर्युक्त प्रथम गुणनफल को बदले में प्राप्त स्वर्ण का भार तथा बदले हुए स्वर्ण के दो नमूनों में से दूसरे के वर्ण द्वारा गुणित करने से प्राप्त गुणनफल द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त अंतर को दूसरी ओर लिख लिया जाता है । यदि तब, वे स्थिति में बदल दिये जायँ, और बदले हुए स्वर्ण के दो प्रकारों के दो विशिष्ट वर्णों के अंतर के द्वारा भाजित किये जायँ, तो (बदले में प्राप्त दो प्रकार के) स्वर्ण की दो इष्ट मात्रायें होती हैं ॥१९७$\frac{1}{2}$॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१६ वर्ण वाला ७०० भार का स्वर्ण बदले जाने पर, १२ और १० वर्ण वाले दो प्रकार का कुल १००८ भार वाला स्वर्ण उत्पन्न करता है। अब स्वर्ण के इन दो प्रकारों में से प्रत्येक प्रकार का भार कितना कितना है ? ॥१९८$\frac{1}{2}$॥

(१९७$\frac{1}{2}$) यह नियम गाथा १९८$\frac{1}{2}$ के प्रश्न का साधन करने पर स्पष्ट हो जावेगा—

७०० × १६ – १००८ × १० और १००८ × १२ – ७०० × १६ की स्थितियों को बदल कर लिखने से ८९६ और ११२० प्राप्त होते हैं। जब इन्हें १२ – १० अर्थात् २ द्वारा भाजित करते हैं, तो क्रमशः १० और १२ वर्ण वाले स्वर्ण के ४४८ और ५६० भार प्राप्त होते हैं ।

बहुपदविनिमयसुवर्णकरणसूत्रम्—
वर्णघ्नकनकमिश्रस्वर्णेनाप्तं हि लब्धवर्णो भवति ।
प्राग्वत्प्रसाध्य लब्धं विनिमयबहुपदसुवर्णानाम् ॥१९९½॥

अत्रोद्देशकः

वर्णचतुर्दशकनकं शतत्रयं विनिमयं प्रकुर्वन्त । वर्णैर्द्वादशदशवसुनगैश्च शतपञ्चकं स्वर्णम् ।
एतेषां वर्णानां पृथक् पृथक् स्वर्णमानं किम् ॥२०१॥

विनिमयगुणवर्णकनकानयनसूत्रम्—
स्वर्णप्रवर्णयुतिहृतगुणयुतिमूल्यघ्नप्रक्षेपमरूपोनेन । भक्तं लब्धं शोध्यं मूल्यकनकाच्छेषवित्तं स्यात् ॥२०२॥
तद्युतमूल्ययोगाद्विनिमयगुणयोगभाजितं लब्धम् ।
प्रक्षेपकेण गुणितं विनिमयगुणवर्णकनकं स्यात् ॥२०३॥

कई विभिन्न प्रकार के बदले के परिणाम स्वरूप प्राप्त स्वर्ण के विभिन्न भारों को निकालने के लिये नियम—

यदि बदले जाने वाले इस स्वर्ण के भार को उसके ही वर्ण द्वारा गुणित कर उसे बदले में प्राप्त हुए स्वर्ण की मात्रा से भाजित किया जाय तो समस्त औसत वर्ण उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् पूर्व कथित क्रियाओं को प्रयुक्त करने पर, प्राप्त परिणाम बदले में प्राप्त विभिन्न प्रकार के स्वर्ण के इष्ट भारों को उत्पन्न करता है ॥१९९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य १४ वर्ण वाले ३ भार के स्वर्ण के बदले में ५ भार के विभिन्न वर्ण वाले १२, १ ८ और ७ वर्ण वाले स्वर्ण के प्रकारों को प्राप्त करता है। बतलाओ कि इन भिन्न वर्णों में से प्रत्येक का संगत अलग-अलग स्वर्ण कितने-कितने भार का होता है ? ॥२ ½—२ १॥

बदले में प्राप्त स्वर्ण के विभिन्न ऐसे भारों को निकालने के लिये नियम जो ज्ञात वर्ण वाले हैं और विभिन्न गुणकों (multiples) के समानुपात में हैं—

दी गई समानुपाती गुणक (multiple) संख्याओं के योग को (दी गई समानुपाती मात्राओं वाले विभिन्न प्रकार के बदले में प्राप्त) स्वर्ण की मात्राओं को, (उनके विशिष्ट) वर्णों द्वारा गुणित करने पर, प्राप्त गुणनफलों के योग द्वारा भाजित करते हैं। परिणामी भजनफल को बदले जाने वाले स्वर्ण के मूल वर्ण द्वारा गुणित किया जाता है। यदि इस गुणनफल को १ द्वारा ह्रासित कर इसके द्वारा बदले में प्राप्त स्वर्ण के भार में जो बढ़ती हुई है उसे भाजित करें, और प्राप्त भजनफल को स्वर्ण के मूल भार में से घटावें तो (जो बदला नहीं गया है ऐसे) स्वर्ण का शेष भार प्राप्त होता है। यह शेष भार मूल स्वर्ण के भार तथा बदले के कारण भार में हुई वृद्धि के योग में से घटाया जाता है। इस प्रकार प्राप्त परिणामी शेष को बदले से सम्बन्धित समानुपाती गुणक (multiple) संख्याओं के योग द्वारा भाजित किया जाता है और तब उन समानुपाती संख्याओं में से प्रत्येक द्वारा अलग-अलग गुणित किया जाता है। तब बदले में प्राप्त स्वर्ण के विशिष्ट वर्ण वाले और विशिष्ट अनुपात वाले विभिन्न भारों की प्राप्ति होती है ॥२ २—२ ३॥

(१९९½) यहाँ उल्लिखित क्रिया १८५ वीं गाथा से मिलती है।

अत्रोद्देशकः

कश्चिद्वणिक् फलार्थी षोडशवर्णं शतद्वयं कनकम् ।
यत्किंचिद्विनिमयकृतमेकाद्यं द्विगुणितं यथा क्रमशः ॥२०४॥
द्वादशवसुनवदशकक्षयकं लाभो द्विरभ्रशतम् ।
शेषं किं स्याद्विनिमयकास्तेषां चापि मे कथय ॥२०५॥

दृश्यसुवर्णविनिमयसुवर्णमूलानयनसूत्रम्—
विनिमयवर्णेनाप्तं स्वांशं स्वेष्टक्षयघ्नसंमिश्रात् ।
अंशैक्योनेनाप्तं दृश्यं फलमत्र भवति मूलधनम् ॥२०६॥

अत्रोद्देशकः

वणिज कंचित् षोडशवर्णकसौवर्णगुलकमाहृत्य ।
त्रिचतुःपञ्चमभागान् क्रमेण तस्यैव विनिमयं कृत्वा ॥२०७॥
द्वादशदशवर्णैः संयुज्य च पूर्वशेषेण । मूलेन विना दृष्टं स्वर्णसहस्रं तु किं मूलम् ॥२०८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई व्यापारी लाभ प्राप्त करने का इच्छुक है, और उसके पास १६ वर्ण वाला २०० भार का स्वर्ण है। उसका एक भाग, १२, ८, ९ और १० वर्ण वाले चार प्रकार के स्वर्ण से बदला जाता है, जिनके भार ऐसे अनुपात में हैं जो १ से आरम्भ होकर नियमित रूप से २ द्वारा गुणित किये जाते हैं। इस बदले के व्यापार के फलस्वरूप स्वर्ण के भार में १०२ लाभ होता है। शेष (बिना बदले हुए) स्वर्ण का भार क्या है ? उन उपर्युक्त वर्णों के सगत (corresponding) स्वर्ण-प्रकारो के भारों कोभी बतलाओ, जो बदले में प्राप्त हुए हैं ॥२०४–२०५॥

जिसका कुछ भाग बदला गया है ऐसे स्वर्ण की सहायता से, और बदले के कारण बढ़ता देखा गया है ऐसे स्वर्ण के भार की सहायता से स्वर्ण की मूल मात्रा के भार को निकालने के लिये नियम—

बदले जाने वाले मूल स्वर्ण के प्रत्येक विशिष्ट भाग को उसके बदले के सगत वर्ण द्वारा भाजित किया जाता है। प्रत्येक दशा में, परिणामी भजनफल दिये गये मूल स्वर्ण के मन से चुने हुए वर्ण द्वारा गुणित किये जाते हैं, और तब ये सब गुणनफल जोड़े जाते हैं। इस योग में से मूल स्वर्ण के विभिन्न भिन्नीय बदले हुए भागों के योग को घटाया जाता है। अब यदि बदले के कारण स्वर्ण के भार की बढ़ती को इस परिणामी शेष द्वारा भाजित किया जाय, तो मूल स्वर्ण धन प्राप्त होता है ॥२०६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी की १६ वर्ण सोने की एक छोटी गेंद ली जाती है, तथा उसके $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{5}$ भाग क्रमश १२, १० और ९ वर्ण वाले स्वर्ण से बदल दिये जाते हैं। इन बदले हुए विभिन्न प्रकार के स्वर्णों के भारों को मूल स्वर्ण के शेष भाग में जोड़ दिया जाता है। तब मूल स्वर्ण के भार को लेखा में से हटाने से भार में १००० बढ़ती देखी जाती है। इस मूल स्वर्ण का भार बतलाओ ॥२०७-२०८॥

अत्रोद्देशकः

स्वर्णपरीक्षकवणिजौ परस्परं याचितौ ततः प्रथमः ।
अर्धं प्रादात् तामपि गुलिकां स्वसुवर्णे आयोज्य ॥२१३॥
वर्णदशकं करोमीत्यपरोऽवादीत् त्रिभागमात्रतया ।
लब्धे तथैव पूर्णं द्वदाशवर्णं करोमि गुलिकाभ्याम् ॥२१४॥
उभयोः सुवर्णमाने वर्णौ संचिन्त्य गणिततत्त्वज्ञ ।
सौवर्णगणितकुशल यदि तेऽस्ति निगद्यतामाशु ॥२१५॥

इति मिश्रकव्यवहारे सुवर्णकुट्टीकारः समाप्तः ।

विचित्रकुट्टीकारः

इतः परं मिश्रकव्यवहारे विचित्रकुट्टीकारं व्याख्यास्यामः । सत्यानृतसूत्रम्—
पुरुषाः सैकेष्टगुणा द्विगुणेष्टोना भवन्त्यसत्यानि । पुरुषकृतिस्तैरूना सत्यानि भवन्ति वचनानि ।२१६।

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण के मूल्य को परखने में कुशल दो व्यापारियों ने एक दूसरे से स्वर्ण बदलने के लिये कहा । पहिले ने दूसरे से कहा, "यदि अपना आधा स्वर्ण मुझे दे दो, तो उसे मैं अपने स्वर्ण में मिलाकर कुल स्वर्ण को १० वर्ण वाला बना लूँगा ।" तब दूसरे ने कहा, "यदि मैं तुम्हारा केवल $\frac{१}{३}$ भाग स्वर्ण प्राप्त करलूँ, तो मैं पूरे स्वर्ण को दो गोलियों की सहायता से १२ वर्ण वाला बना लूँगा ।" हे गणित तत्वज्ञ ! यदि तुम स्वर्ण गणित में कुशल हो तो सोचविचार कर शीघ्र बतलाओ कि उनके पास कितने-कितने वर्ण वाला कितना-कितना स्वर्ण (भार में) है ? ॥२१३-२१५॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में सुवर्ण कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

विचित्र कुट्टीकार

इसके पश्चात्, हम मिश्रक व्यहार में विचित्र कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे ।

(ऐसी परिस्थिति में जैसी कि नीचे दी गई है, जहाँ दोनों बातें साथ ही साथ सम्भव हैं,) सत्य और असत्य वचनों की संख्या ज्ञात करने के लिये नियम—

मनुष्यों की संख्या को उनमें से चाहे गये मनुष्यों की संख्या को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त संख्या द्वारा गुणित करो, और तब उसे चाहे गये मनुष्यों की संख्या की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित करो । जो संख्या उत्पन्न होगी वह असत्य वचनों की संख्या होगी । सब मनुष्यों का निरूपण करनेवाली संख्या का वर्ग इन असत्य वचनों की संख्या द्वारा ह्रासित होकर सत्य वचनों की संख्या उत्पन्न करता है ॥२१६॥

को पहिले बदले में १६ तक बढाना पडता है । इन दो वर्णों ८ और १६ को, दूसरे बदले में प्रयुक्त करने से, हमें औसतवर्ण $\frac{३६}{३}$ के बदले में $\frac{४०}{३}$ प्राप्त होता है ।

इस प्रकार, दूसरे बदले में हम देखते हैं कि भार और वर्ण के गुणनफलों के योग में (४०-३५) अथवा ५ की बढ़ती है, जबकि पूर्व के चुने हुए वर्णों के सम्बन्ध में घटती और बढ़ती क्रमशः ९ − ८ = १ और १६ − १३ = ३ हैं ।

परन्तु दूसरे बदले में भार और वर्ण के गुणनफलों के योग में बढ़ती ३६ − ३५ = १ है । त्रैराशिक के नियम का प्रयोग करने पर हमें वर्णों में संगत घटती और बढ़ती $\frac{१}{५}$ और $\frac{३}{५}$ प्राप्त होती हैं । इसलिये वर्ण क्रमशः ९ − $\frac{१}{५}$ या ८$\frac{४}{५}$ और १३ + $\frac{३}{५}$ = १३$\frac{३}{५}$ हैं ।

(२१६) इस नियम का मूल आधार गाथा २१७ में दिये गये प्रश्न के निम्नलिखित बीजीय

अत्रोद्देशकः

कामुकपुरुषाः पञ्च हि वेश्यायाश्च प्रियास्त्रयस्तत्र ।
प्रत्येकं सा ब्रूते त्वमिष्ट इति कानि सत्यानि ॥२१७॥

प्रस्तारयोगभेदस्य सूत्रम्—

एकाद्येकोत्तरतः पदमूर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः ।
स्थाप्य प्रतिलोमघ्नं प्रतिलोमघ्नेन भाजितं सारम् ॥२१८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पाँच कामुक व्यक्ति हैं। उनमें से तीन व्यक्ति वास्तव में वेश्या द्वारा चाहे जाते हैं। वह प्रत्येक से अलग-अलग कहती है "मैं केवल तुम्हें चाहती हूँ।" उसके कितने (व्यक्त और उप कथित) वचन सत्य हैं? ॥२१७॥

दी हुई वस्तुओं में (सम्भव) संचयों के प्रकारों सम्बन्धी नियम—

एक से आरम्भकर, संख्याओं को दी गई वस्तुओं की संख्या तक एक द्वारा बढ़ाकर, नियमित क्रम में और व्युत्क्रम में (क्रमशः) एक ऊपर और एक नीचे क्षैतिजपंक्ति में लिखो। यदि ऊपर की पंक्ति में दाहिने से बाईं ओर को लिया गया (एक दो तीन अथवा अधिक संख्याओं का) गुणन फल, नीचे की पंक्ति में भी दाहिने से बाईं ओर को लिये गये (एक दो तीन अथवा अधिक संख्याओं के संगत) गुणनफल द्वारा भाजित किया जाय, तो प्रत्येक दशा में ऐसे संचय की इष्ट राशि फलस्वरूप प्राप्त होती है ॥ २१८ ॥

निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

मानलो कुल मनुष्यों की संख्या अ है जिनमें से ब चाहे जाते हैं। वचनों की संख्या अ है, और प्रत्येक वचन अ मनुष्यों के बारे में है, इसलिये वचनों की कुल संख्या अ × अ = अ² है। अब इन अ मनुष्यों में से ब मनुष्य चाहे जाते हैं, और अ − ब चाहे नहीं जाते। जब ब मनुष्यों में से प्रत्येक को यह कहा जाता है, 'केवल तुम्हीं चाहे जाते हो', तब प्रत्येक दशा में असत्य वचन ब − १ हैं। इसलिये असत्य वचनों की ब वचनों में कुल संख्या ब (ब − १) है　　(१)

जब फिर से यही कथन अ − ब मनुष्यों में से प्रत्येक को कहा जाता है तब प्रत्येक दशा में असत्य कथनों की संख्या ब + १ है। इसलिये अ − ब वचनों में कुल असत्य वचनों की संख्या (अ − ब) (ब + १) है　(२) (१) और (२) का योग करने पर, हमें ब (ब − १) + (अ − ब) (ब + १) = अ (ब + १) − २ ब प्राप्त होता है। यह असत्य वचनों की कुल संख्या को निरूपित करती है। इसे अ² में से घटाने पर, जो कि सब सत्य और असत्य वचनों की कुल संख्या है, हमें सत्य वचनों की संख्या प्राप्त होती है।

(२१८) यह नियम संचय (combination) के प्रश्न से सम्बन्ध रखता है। यहाँ दिया गया सूत्र यह है—

$$\frac{न\,(न-१)\,(न-२)\;\ldots\;(न-र+१)}{१\cdot २\cdot ३\;\ldots\;र}$$ और यह स्पष्ट रूप से $\frac{\lfloor न}{\lfloor र \;\lfloor न-र}$ के तुल्य है।

(२१९) नियम में दिया गया सूत्र बीजीय रूप से निम्न प्रकार है—

$$क = \frac{\frac{अगा}{२} - \sqrt{\left(\frac{अगा}{२}\right)^२ - अगर\,(गा-र)}}{गा-र}$$, जहाँ क = निकाली जाने वाली मजदूरी

अत्रोद्देशकः

वर्णांश्चापि रसानां कषायतिक्ताम्लकटुकलवणानाम् ।
मधुररसेन युतानां भेदान् कथयाधुना गणक ॥२१९॥
वज्रेन्द्रनीलमरकतविद्रुममुक्ताफलैस्तु रचितमालायाः ।
कति भेदा युतिभेदात् कथय सखे सम्यगाशु त्वम् ॥२२०॥
केतक्यशोकचम्पकनीलोत्पलकुसुमरचितमालायाः ।
कति भेदा युतिभेदात्कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥२२१॥

ज्ञाताज्ञातलाभैर्मूलानयनसूत्रम्—

लाभोनमिश्रराशेः प्रक्षेपकतः फलानि संसाध्य । तेन हृतं तल्लब्धं मूल्यं त्वज्ञातपुरुषस्य ॥२२२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ ! मुझे बतलाओ कि छः रस—कषायला, कडुआ, खट्टा, तीखा, खारा और मीठा दिये गये हों तो संचय के प्रकार और संचय राशियां क्या होंगी ? ॥ २१९ ॥ हे मित्र ! हीरा, नील, मरकत, विद्रुम और मुक्ताफल से रची हुई अंतहीन धागे की माला के सचय में परिवर्तन होने से कितने प्रकार प्राप्त हो सकते हैं, शीघ्र बतलाओ ॥ २२० ॥ हे गणित तत्त्वज्ञ सखे ! मुझे बतलाओ कि केतकी, अशोक, चम्पक और नीलोत्पल के फूलों की माला बनाने के लिये सचयों में परिवर्तन करने पर कितने प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ?

किसी व्यापार में ज्ञात और अज्ञात लाभों की सहायता से अज्ञात मूल धन प्राप्त करने के लिये नियम—

समानुपातिक विभाजन की क्रिया द्वारा समस्त लाभों के मिश्रित योग में से ज्ञात लाभ घटाकर अज्ञात लाभों को निश्चित करते हैं । तब अज्ञात रकम लगाने वाले व्यक्ति का मूलधन, उसके लाभ को ऊपर समानुपातिक विभाजन की क्रिया में प्रयुक्त उसी साधारण गुणनखण्ड द्वारा भाजित करने पर, प्राप्त करते हैं ॥ २२२ ॥

अ = ढोया जाने वाला कुल भार, दा = कुल दूरी, द = तय की हुई (जो चली जा चुकी है ऐसी) दूरी, और ब = निश्चित की गई कुल मजदूरी है । यह आलोकनीय है कि यात्रा के दो भागों के लिये मजदूरी की दर एक सी है, यद्यपि यात्रा के प्रत्येक भाग के लिये चुकाई गई रकम पूरी यात्रा के लिए निश्चित की गई दर के अनुसार नहीं है ।

प्रश्न के न्यास (data दत्त सामग्री) सहित निम्नलिखित समीकरण से सूत्र सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है— $\frac{क}{अद} = \frac{ब - क}{(अ - क)\ (दा - द)}$, जहाँ क अज्ञात है ।

अत्रोद्देशकः

समये केचिद्वणिजस्त्रयः क्रयं विक्रयं च कुर्वीरन् ।
प्रथमस्य षट् पुराणा अष्टौ मूल्यं द्वितीयस्य ॥२२३॥
न ज्ञायते तृतीयस्य व्याप्तिस्तैर्नरैस्तु षण्णवतिः । अज्ञातस्यैव फलं चत्वारिंशच्च तेनाप्तम् ॥२२४॥
कस्तस्य प्रक्षेपो वणिजोरुभयोर्भवेच्च को लाभः ।
गणकाग्र्याचक्ष्व सखे प्रक्षेपं यदि विजानासि ॥२२५॥

भाटकानयनसूत्रम्—

भरभृतिगतगम्यहतिं त्यक्त्वा योजनदलघ्नभारकृतेः ।
तन्मूलेन गम्यच्छिन्नं[1] गन्तव्यभाजितं सारम् ॥२२६॥

अत्रोद्देशकः

पनसानि द्वात्रिंशन्नीत्वा योजनमसौ दलोनाष्टौ ।
गृह्णात्यन्तर्भाटकमर्धे भग्नोऽस्य किं देयम् ॥२२७॥

1 M और B में यहाँ छ छूटा है, छंद की दृष्टि से यह आवश्यक है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

समझौते के अनुसार तीन व्यापारियों ने खरीदने और बेचने की क्रिया की। उनमें से पहिले की रकम ६ पुराण, दूसरे की ८ पुराण तथा तीसरे की अज्ञात थी। उन सब तीन मनुष्यों को ९६ पुराण लाभ प्राप्त हुआ। तीसरे व्यक्ति द्वारा अज्ञात रकम पर ४० पुराण लाभ प्राप्त किया गया था। व्यापार में उसने कितनी रकम लगाई थी? अन्य दो व्यापारियों को कितना-कितना लाभ हुआ? हे मित्र! यदि समानुपातिक विभाजन की क्रिया से परिचित हो तो भलीभाँति गणना कर उत्तर दो ॥ २२३–२२५ ॥

किसी दी गई दर पर किसी निश्चित दूरी के किसी भाग तक ढुलाई की गई वस्तुएँ के ढोने के किराये को निकालने के लिये नियम—

ले जाये जाने वाले भार के संख्यात्मक माप और योजन में नापी गई उस दूरी की अर्द्ध राशि के गुणनफल के वर्ग में से ले जाये जाने वाले भार के संख्यात्मक माप, उस दिया गया किराया, पूरी हुई दूरी, इन सब के संतत गुणनफल को घटाओ। तब यदि ले जाये जाने वाले भार के निर्दिष्ट माप (अर्थात् यहाँ व्यक्त भाग) को तय की गई पूरी दूरी द्वारा गुणित कर और उस उपर्युक्त अंतर के वर्गमूल द्वारा ह्रासित कर, तय की जाने वाली (जो अभी शेष है ऐसी) दूरी के द्वारा भाजित किया जाय, तो इष्ट उत्तर प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ एक मनुष्य ऐसा है, जिसे ३२ पनस फलों को १ योजन दूर ले जाने पर मजदूरी में ७½ फल मिलते हैं। वह आधी दूर जाकर बैठ जाता है। उसे तय की गई मजदूरी में से कितनी मिलना चाहिये? ॥२२७॥

द्वितीयतृतीययोजनानयनस्यसूत्रम्—
भरभाटकसंवर्गोऽद्वितीयभृतिकृतिविवर्जितश्छेदः ।
तद्भृत्यन्तरभरगतिहतेर्गति स्याद् द्वितीयस्य ॥२२८॥

अत्रोद्देशकः

पनसानि चतुर्विंशतिमा नीत्वा पञ्चयोजनानि नरः ।
लभते तद्भृतिमिह नव षडभृतिवियुते द्वितीयनृगतिः का ॥२२९॥

बहुपद[1] भाटकानयनस्य सूत्रम्—
संनिहितनरहृतेषु प्रागुत्तरमिश्रितेषु मार्गेषु ।
व्यावृत्तनरगुणेषु प्रक्षेपकसाधित मूल्यम् ॥२३०॥

१. B में यहाँ 'पद' छूट गया है ।

जब पहिला अथवा दूसरा बोझ ढोने वाला थक कर बैठ जाता है, तब दूसरे अथवा तीसरे बोझ ढोने वाले के द्वारा योजनो मे तय की गई दूरियों को निकालने के लिये नियम—

ले जाये जाने वाले कुल वजन और तय की गई मजदूरियों के मान के गुणनफल में से प्रथम ढोने वाले को दी गई मजदूरी के वर्ग को घटाओ । इस अन्तर को तय की गई मजदूरी और पहिले ही दे दी गई मजदूरी के अन्तर, ढोया जाने वाला पूरा वजन, और तय की जानेवाली पूरी दूरी के सतत गुणनफल के सम्बन्ध में भाजक के रूप में उपयोग में लाते हैं । परिणामी भजनफल दूसरे मजदूर द्वारा तय की जाने वाली दूरी होता है ॥२२८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य को २४ पनस फल ५ योजन दूर ले जाने के लिये ९ फल मजदूरी के रूप में प्राप्त हो सकते हैं । यदि प्रथम मनुष्य को इनमें से ६ फल मजदूरी के रूप में दिये जा चुके हो, तो दूसरे ढोने वाले को अब कितनी दूरी तय करना है, ताकि वह शेष मजदूरी प्राप्त करले ? ॥२२९॥

विभिन्न दशाओं की सगत मजदूरियों के मानों को निकालने के लिये नियम, जब कि विभिन्न मजदूर उन विभिन्न दूरियों तक दिया गया बोझ ले जावें—

मनुष्यों की विभिन्न संख्याओं द्वारा तय की गई दूरियों को वहाँ ढोने का काम करने वाले मनुष्यों की सख्या द्वारा भाजित करो । प्राप्त भजनफलों को इस प्रकार संयुक्त करना पड़ता है, कि उनमें से पहिला अलग रख लिया जाता है, और तब बाद के भजनफलों (१, २, ३ आदि) को उसमें जोड़ दिया जाता है । इन परिणामी राशियों को क्रमशः विभिन्न स्थानों पर बैठ जाने वाले मनुष्यों की संख्या द्वारा गुणित करना पड़ता है । तब इन परिणामी गुणनफलों के सम्बन्ध में प्रक्षेपक क्रिया (समानुपातिक विभाजन की क्रिया) करने से विभिन्न स्थानों पर छोड़ने (बैठने) वाले मनुष्यों की मजदूरियाँ प्राप्त होती हैं ॥२३०॥

(२२८) बीजीय रूप से : $दा - द = \frac{(ब - क)\ अ\ दा}{अब - क^2}$, जो पिछले नोट के समीकरण से सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है । यहाँ क अज्ञात राशि है ।

अत्रोद्देशकः

शिबिकां नयन्ति पुरुषा विंशतिरिह योजनद्वयं तेषाम् ।
भृतिर्दीनाराणां विंशत्यधिकं च सप्तशतम् ॥२३१॥
क्रोशद्वये निवृत्तौ द्वावुभयोः क्रोशयोस्त्रयश्चान्ये ।
पञ्च नराः शेषार्धेऽध्यावृत्ताः का भृतिस्तेषाम् ॥२३२॥

इष्टगुणितपोट्टलिकानयनसूत्रम्—

सैकगुणा स्वस्वेष्टं हित्वान्योन्यघ्नशेषमितिः ।
अपवर्त्य योज्य मूलं (विप्णो) कृत्वा व्येकेन मूलेन ॥२३३॥
पूर्वापवर्तराशीन् हत्वा पूर्वापवर्तराशियुतेः ।
पृथगेव पृथक् त्यक्त्वा हस्तगताः स्वधनसंख्याः स्युः ॥२३४॥
ताः स्वस्वं हित्वैव स्वशेषयोगं पृथक् पृथक् स्थाप्य ।
स्वगुणघ्नाः स्वकरगतैरूनाः पोट्टलकसंख्याः स्युः ॥२३५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२० मनुष्यों को कोई पालकी २ योजन दूर ले जाने पर ७२० दीनार मिलते हैं। दो मनुष्य दो कोस दूर जाकर रुक जाते हैं, दो कोस दूर और जाने पर अन्य तीन रुक जाते हैं तथा शेष की आधी दूरी जाने पर ५ मनुष्य रुक जाते हैं। ढोने वाले विभिन्न मजदूरों को क्या-क्या मजदूरी मिलती है? ॥२३१–२३२॥

किसी थैली में भरी हुई रकम को निकालने के लिये नियम, जो कुछ मनुष्यों में से प्रत्येक के हाथ में जितनी रकम है उसमें जोड़ी जाने पर अन्य के हाथों में रखी हुई रकमों के योग की विभिन्न गुणज (multiple) बन जाती है—

प्रश्न में विविध गुणज (multiple) संख्याओं में से प्रत्येक में एक जोड़कर योग राशियाँ प्राप्त करते हैं। इन योगों को एक दूसरे से प्रत्येक दशा में विशेष उल्लिखित गुणज के सम्बन्धी योग को उपेक्षित करते हुए, गुणित करते हैं। इन्हें साधारण गुणनखंडों को हटा कर, अल्पतम पदों में प्रहासित (लघूकृत) करते हैं। तब इन प्रहासित (लघूकृत) राशियों को जोड़ा जाता है। इस परिणामी योग का वर्गमूल प्राप्त किया जाता है जिसमें से एक घटा दिया जाता है। उपर्युक्त प्रहासित राशियों को इस १ द्वारा ह्रासित वर्गमूल द्वारा गुणित किया जाता है। तब इन्हें अलग-अलग उन्हीं प्रहासित राशियों के योग में से घटाया जाता है। इस प्रकार, कई व्यक्तियों में से प्रत्येक के हाथ की रकमें प्राप्त होती हैं। उन व्यक्तियों में से केवल एक के पास के धन के मान को प्रत्येक दशा में जोड़ से वर्जित कर, इन सब हाथ की रकमों की राशियों को एक दूसरे में जोड़ना पड़ता है। इस प्रकार प्राप्त कई योग अलग-अलग लिखे जाते हैं। इन्हें क्रमशः उपर्युक्त उल्लिखित गुणज राशियों द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त कई गुणनफलों में से हाथ की रकमों को अलग-अलग घटाया जाता है। तब हाथ में धरी रकमों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में अलग-अलग थैली की रकम का सही मान प्राप्त होता है ॥२३३–२३५॥

(२३३–२३५) गाथा २३६–२३७ में दिये गये प्रश्न में मानलो क, ख, ग हाथ में रखी हुई तीन व्यापारियों की रकमें हैं; और थैली में प रकम है।

अत्रोद्देशकः

मार्गे त्रिभिर्वणिग्भिः पोट्टलकं दृष्टमाह तत्रैकः ।
पोट्टलकमिदं प्राप्य द्विगुणधनोऽहं भविष्यामि ॥२३६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन व्यापारियों ने सड़क पर एक थैली पड़ी हुई देखी । एक ने शेष उन से कहा, "यदि मुझे यह थैली मिल जाय, तो तुम्हारे हाथ में जितनी रकमें हैं उनके हिसाब से मैं तुम दोनों लोगों से दुगुना धनवान हो जाऊँगा ।" तब दूसरे ने कहा, "मैं तिगुना धनवान हो जाऊँगा ।" तब तीसरे ने कहा, "मैं पांच गुना धनवान हो जाऊँगा ।" थैली की रकम तथा प्रत्येक के हाथ की रकमों को अलग-अलग बतलाओ ॥२३६॥

हाथ की रकमों के मान तथा थैली की रकम निकालने के लिये नियम, जब कि थैली की रकम का विशेष उल्लिखित भिन्नीय भाग दत्त संख्या के मनुष्यों में, प्रत्येक के हाथ की रकम में क्रमशः जोड़ने पर, प्रत्येक दशा में उनके धन की हाथ की रकम के वही गुणज (multiple) हो जावें—

तब
$$\left.\begin{aligned} य + क &= अ\,(ख + ग), \\ य + ख &= ब\,(ग + क), \\ य + ग &= स\,(क + ख), \end{aligned}\right\}$$ जहाँ अ, ब, स प्रश्न में गुणजों का निरूपण करते हैं ।

अब
$$\begin{aligned} य + क + ख + ग &= (अ + १)\,(ख + ग) \\ &= (ब + १)\,(ग + क) \\ &= (स + १)\,(क + ख). \end{aligned}$$

तब
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times (ख + ग) = (ब + १)\,(स + १)\,, \quad . \quad . \; (१)$$

जहाँ ता = य + क + ख + ग है ।

इसी प्रकार,
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times (ग + क) = (स + १)\,(अ + १) \quad . \; (२)$$

और
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times (क + ख) = (अ + १)\,(ब + १) \;.. \quad (३)$$

(१), (२) और (३) को जोड़ने पर,
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times २\,(क + ख + ग)$$
$$= (ब + १)\,(स + १) + (स + १)\,(अ + १) + (अ + १)\,(ब + १) = शा \;. \;\; ..(४)$$

(१), (२) और (३) को अलग अलग २ द्वारा गुणित करके (४) में से घटाने पर—
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times २\,क = शा - २\,(ब + १)\,(स + १),$$
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times २\,ख = शा - २\,(स + १)\,(अ + १),$$
$$\frac{(अ + १)\,(ब + १)\,(स + १)}{ता} \times २\,ग = शा - २\,(अ + १)\,(ब + १),$$

हस्तगताभ्यां युवयोस्त्रिगुणघनोऽहं द्वितीय आहेति ।
पञ्चगुणोऽहं स्वपरः पोट्टलहस्तस्थमानं किम् ॥२१७॥

सर्वतुल्यगुणकपोट्टलकानयनहस्तगतानयनसूत्रम्—

व्येकपदघ्नव्येकगुणेष्टांशकयोर्निहतयुतिगुणघातः ।
हस्तगताः स्युर्मिषति हि पूर्ववदिष्टांशभाजितं पोट्टलकम् ॥२१८॥

प्रश्न में दिये गये सभी उल्लिखित भिन्नों के योग के हर की अपेक्षा कर, उसे (उल्लिखित साधारण) अपवर्त्य संख्या (multiple) द्वारा गुणित किया जाता है। इस गुणनफल में से वे राशियाँ अलग-अलग घटाई जाती हैं, जो साधारण हर में प्रदर्शित उपर्युक्त भिन्नों में से प्रत्येक को एक कम मनुष्यों के मानकों की संख्या और उल्लिखित अपवर्त्य के गुणनफल को एक द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि द्वारा गुणित करने से प्राप्त होती हैं। परिणामी शेष हाथ की रकमों के अलग-अलग मानों को स्थापित करते हैं। पहिले की तरह क्रियायें करने पर और तब प्रश्न में विशेष उल्लिखित भिन्नीय भाग द्वारा विभाजन करने पर थैली की रकम का मान प्राप्त हो जाता है ॥२१८॥

क : ख : ग : : द्वा–२(ब+१)(द+१) : द्वा–२(द+१)(अ+१) : द्वा–२(अ+१)(ब+१)

समानुपात के दाहिनी ओर, (यदि कोई हो तो) साधारण गुणनखंडों को हटाने से हमें क, ख, ग के सबसे छोटे पूर्णांक मान प्राप्त होते हैं। यह समानुपात नियम में सूत्र के रूप में दिया गया है। यह देखने योग्य है कि नियम में कथित वर्गमूल केवल गाथा २१६–२१७ में दिये गये प्रश्न से सम्बन्धित है। यदि शुद्ध रूप से लिखा जाय तो 'वर्गमूल' के स्थान में '१' होना चाहिये। यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि यह प्रश्न तभी सम्भव है, जब कि $\frac{१}{अ+१}$ $\frac{१}{ब+१}$ और $\frac{१}{द+१}$ के कोई भी दो का योग तीसरे से बड़ा हो।

(२१८) नियम में दिया गया सूत्र यह है—

$$\left.\begin{aligned} क &= म (अ+ब+द) - अ (२ म - १), \\ ख &= म (अ+ब+द) - ब (२ म - १), \\ ग &= म (अ+ब+द) - द (२ म - १), \end{aligned}\right\}$$

जहाँ क, ख, ग हाथ की रकमें हैं, म साधारण गुणज (multiple) है, और अ, ब, द दिये गये उल्लिखित भिन्नीय भाग हैं।

ये मान अगले समीकारों से सरलता पूर्वक निकाले जा सकते हैं।

$$\left.\begin{aligned} पा \; अ + क &= म (ख + ग), \\ पा \; ब + ख &= म (ग + क) \\ \text{और } पा \; द + ग &= म (क + ख) \end{aligned}\right\}$$

जहाँ पा, थैली की रकम है।

अत्रोद्देशकः

वैश्यैः पञ्चभिरेक पोट्टलकं दृष्टमाह चैकैकः ।
पोट्टलकषष्ठसप्तमनवमाष्टमदशमभागमाप्त्वैव ॥२३९॥
स्वस्वकरस्थेन सह त्रिगुणं त्रिगुणं च शेषाणाम् ।
गणक त्वं मे शीघ्रं वद हस्तगतं च पोट्टलकम् ॥२४०॥

इष्टांशेष्टगुणपोट्टलकानयनसूत्रम्—

इष्टगुणाग्रान्यांशाः सेष्टाशा सैकनिजगुणहृता युक्ताः ।
व्यनपदघ्नेष्टांशन्यूना. सैकेष्टगुणहृता हस्तगताः ॥२४१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पाँच व्यापारियो ने एक थैली देखी । उन्होने (एक के वाद दूसरे से) इस प्रकार कहा कि थैली की रकम का क्रमशः $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{७}$, $\frac{१}{९}$, $\frac{१}{८}$ और $\frac{१}{१०}$ भाग पाने पर वह अपने हाथ की रकम मिलाकर अन्य व्यापारियो के कुल धन से तिगुना धनी हो जायगा । हे गणितज्ञ ! उनके हाथों की अलग-अलग रकम तथा थैली में भरी हुई रकम को शीघ्र ही वतलाओ ॥२३९–२४०॥

थैली की रकम प्राप्त करने के लिये नियम, जव कि उल्लिखित भिन्नीय भागों को, क्रमशः उन व्यक्तियों के हाथ की रकम जोड़ने पर, प्रत्येक अन्य की कुल रकमों के मान से विशिष्ट गुणा धनी वन जावे—

(इष्ट मनुष्य के भाग को छोड़कर,) शेष सभी से सम्वन्धित उल्लिखित भिन्नीय भागों को साधारण हर में प्रह्रासित कर हर को उपेक्षित कर दिया जाता है । इन्हें (अलग-अलग इष्ट मनुष्य सम्वन्धी) निर्दिष्ट अपवर्त्य (multiple) द्वारा गुणित करते है । इन गुणनफलों में उस इष्ट मनुष्य के भिन्नीय भाग को जोड़ते हैं । परिणामी योगों में से प्रत्येक को अलग अलग उसके सगत उल्लिखित अपवर्त्य (multiple) से एक अधिक राशि द्वारा भाजित करते हैं । तव इन भजनफलो को भी जोडा जाता है । अलग-अलग दशाओं सम्वन्धी इस प्रकार प्राप्त योगों को, दो कम दशाओं की सख्या द्वारा गुणित कर, निर्दिष्ट भिन्नीय भाग द्वारा ह्रासित करते हैं । अन्तर को एक अधिक निर्दिष्ट अपवर्त्य द्वारा भाजित करते है । यह फल (इस विशिष्ट दशा में) हाथ की रकम है ॥२४१॥

---

(२४१) नियम में दिया गया सूत्र इस प्रकार है—

$$क = \left\{ \frac{अ + मब}{न + १} + \frac{अ + मस}{य + १} + \frac{अ + मद}{र + १} + \ldots - (श - २) अ \right\} - (म + १)$$

$$ख = \left\{ \frac{ब + नअ}{म + १} + \frac{ब + नस}{य + १} + \frac{ब + नद}{र + १} + \quad - (श - २) ब \right\} - (न + १) \text{ इत्यादि,}$$

जहाँ क, ख, हाथ की रकमें हैं, अ, ब, स, द भिन्नीय भाग हैं;
म, न, य, र, . विभिन्न अपवर्त्य सख्यायें हैं, और श व्यापार सम्वन्धी व्यक्तियों की सख्या है ।

मार्गे त्रिभिर्वणिग्भि: पोट्टलकं दृष्टमाह तत्राद्यः ।
यद्यस्य चतुर्भागं लभेऽहमित्याह स युवयोर्द्विगुणः ।। २४९ ।।
आह त्रिभागमपरः स्वहस्तधनसहितमेव च त्रिगुणः ।
अस्यार्धं प्राप्याहं तृतीयपुरुषश्चतुर्गुणधनवान् स्याम् ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं किं हस्तगतं च पोट्टलकम् ।। २५०$\frac{१}{२}$ ।।

याचितरूपैरिष्टगुणकहस्तगतानयनस्य सूत्रम्—

याचितरूपैक्यानि स्वसैकगुणवर्धितानि तै प्राग्वत् ।
हस्तगतानां नीत्वा चेष्टगुणघ्नेति सूत्रेण ।। २५१$\frac{१}{२}$ ।।
सदृशच्छेदं कृत्वा सैकेष्टगुणाहृतेष्टगुणयुत्या ।
रूपोनितया भक्तान् तानेव करस्थितान् विजानीयात् ।। २५२$\frac{१}{२}$ ।।

कहा, "यदि मुझे इस थैली का $\frac{१}{४}$ धन मिल जाय, तो मैं अपने हाथ की रकम मिलाकर तुम सभी के कुलधन से दुगुने धनवाला हो जाऊँ।" दूसरे ने कहा, "यदि मुझे थैली का $\frac{१}{३}$ धन मिल जाय, तो उसे मिलाकर मैं तुम सभी के कुल धन से तिगुने धनवाला हो जाऊँ।" तीसरे ने कहा, "यदि मुझे थैली का आधा धन मिल जाय तो उसे मिलाकर मैं तुम दोनों के कुल धन से चौगुने धनवाला हो जाऊँ।" हे गणितज्ञ ! शीघ्र ही उनके हाथ की रकमें तथा थैली की रकम अलग-अलग बतलाओ ।।२४९–२५०$\frac{१}{२}$।।

हाथ की ऐसी रकम निकालने का नियम, जो दूसरे से माँगे हुए धन में मिलने पर दूसरों के हाथ की रकमों का निर्दिष्ट अपवर्त्य बन जाती है :—

माँगी हुई रकमों को अलग-अलग निज की सगत, अपवर्त्य (multiple) राशि में एक जोड़ने से प्राप्तफल द्वारा गुणित करते हैं। इन गुणनफलों की सहायता से गाथा २४१ में दिये गये नियम द्वारा हाथ की रकमों को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त इन राशियों को साधारण हरवाली बनाते हैं। प्रत्येक एक द्वारा बढ़ाई गई अपवर्त्य (multiple) राशियों द्वारा क्रमशः निर्दिष्ट अपवर्त्य राशियों को भाजित करते हैं। तब साधारण हरवाली राशियों को अलग-अलग इन प्राप्त फलों के एकोन योग द्वारा भाजित करते हैं। इन परिणामी भजनफलों को विभिन्न मनुष्यों के हाथों की रकमें समझना चाहिये ।। २५१$\frac{१}{२}$-२५२$\frac{१}{२}$ ।।

(२५१$\frac{१}{२}$–२५२$\frac{१}{२}$) बीजीय रूप से,

$$\left[\text{क} - \left\{ \frac{(\text{अ}+\text{ब})(\text{म}+१)+\text{म}(\text{स}+\text{द})(\text{न}+१)}{\text{न}+१} + \frac{(\text{अ}+\text{ब})(\text{म}+१)+\text{म}(\text{इ}+\text{फ})(\text{प}+१)}{\text{प}+१} + \cdots \right.\right.$$

$$\left.\left. \cdots + \text{इत्यादि}—(\text{श}-२)(\text{अ}+\text{ब})(\text{म}+१) \right\} - (\text{म}+१) \right] - \left(\frac{\text{म}}{\text{म}+१}+\frac{\text{न}}{\text{न}+१}+\frac{\text{प}}{\text{प}+१}-१\right)$$

इसी प्रकार ख, ग के लिये, इत्यादि। यहाँ अ, ब, स, द, इ, फ एक दूसरे से माँगी हुई रकमें हैं।

अत्रोद्देशकः

वैश्यैस्त्रिभिः परस्परहस्तगतं याचितं धनं प्रथमः ।
चत्वार्यथ द्वितीयं पञ्च तृतीयं नरं प्रार्थ्य ॥ २५३½ ॥
द्विगुणोऽभवद् द्वितीयः प्रथमं चत्वारि षट् तृतीयमगात् ।
त्रिगुणं तृतीयपुरुषः प्रथमं पञ्च द्वितीयं च ॥ २५४½ ॥
षट् प्रार्थ्याभूत्पञ्चगुणः स्वहस्तस्थितानि कानि स्युः ।
कथयाशु चित्रकुट्टीमिश्रं जानासि यदि गणक ॥ २५५½ ॥
पुरुषास्त्रयोऽतिकुशलास्ताभ्यामन्योन्यं याचितं धनं प्रथमः ।
स द्वादश द्वितीयं त्रयोदश प्राप्य स त्रिगुणः ॥ २५६½ ॥
प्रथमं दश त्रयोदश तृतीयमभ्यर्थ्य च द्वितीयोऽभूत् ।
पञ्चगुणितो द्वितीयं द्वादश दश याचयित्वायम् ॥ २५७½ ॥
सप्तगुणितस्तृतीयोऽभवदपरो वाञ्छितानि लब्धानि ।
कथय सखे विगणय्य च तेषां हस्तस्थितानि कानि स्युः ॥ २५८½ ॥

अन्त्यस्योपान्त्यगुणस्वधनं दत्त्वा समधनानयनसूत्रम्—

वाञ्छाभक्तं रूपं स उपान्त्यगुणः सरूपसंयुक्तः ।
शेषाणां गुणकारः सैकोऽस्याः करणमेतत्स्यात् ॥ २५९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन व्यापारियों ने एक दूसरे से उनके पास की रकमों में से रकमें माँगीं। पहिला व्यापारी दूसरे से ४ और तीसरे से ५ माँगकर शेष के कुल धन से दुगुना धन वाला बन गया। दूसरा पहिले से ४ और तीसरे से ६ माँग कर शेष के कुल धन से तिगुना धनवाला बन गया। तीसरा पहिले से ५ और दूसरे से ६ माँग कर उन दोनों से पाँचगुना धनवाला बन गया। हे गणितज्ञ, यदि तुम विचित्र कुट्टीकार विधि से परिचित हो तो मुझे शीघ्र ही उनके हाथों की रकमें बतलाओ ॥२५३½-२५५½॥ तीन अति-कुशल पुरुष थे। उन्होंने एक दूसरे से रकमें माँगीं। पहिला पुरुष दूसरे से १२ और तीसरे से १३ लेकर शेष दोनों से ३ गुना धनवाला बन गया। दूसरा पहिले से १० और तीसरे से १३ लेकर शेष दोनों से ५ गुना धनवाला बन गया। तीसरा दूसरे से १२ और पहिले से १० लेकर शेष दोनों से ७ गुना धनवाला बन गया। उनकी वाञ्छाएँ पूर्ण हो गईं। हे मित्र! गणना कर उनके हाथों की रकमों को बतलाओ ॥२५६½-२५८½॥

समान धन राशियों को निकालने के लिये नियम जब कि अन्तिम मनुष्य अपने खुद के धन में से उपान्तिम को उसी के धन के बराबर दे देता है। और फिर, यह उपान्तिम मनुष्य बाद में आनेवाले मनुष्य के सम्बन्ध में यही करता है इत्यादि—

एक के द्वारा दूसरे को दिये जानेवाले धन के सम्बन्ध में मन से चुनी हुई गुणज (multiple) राशि द्वारा १ को विभाजित करो। यह उपान्तिम मनुष्य के धन के सम्बन्ध में गुणज हो जाता है। यह गुणज १ द्वारा बढ़ाया जाकर दूसरे के हस्तगत धनों का गुणज बन जाता है। इस अन्तिम व्यक्ति के इस प्रकार प्राप्त धन में १ जोड़ा जाता है। यही रीति उपयोग में लाई जाती है ॥२५९½॥

(२५ ८) गाथा २५१½ के प्रश्न को निम्नलिखित रीति से हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो

अत्रोद्देशकः

वैश्यात्मजास्त्रयस्ते मार्गगता ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठाः ।
स्वधने ज्येष्ठो मध्यमधनमात्रं मध्यमाय ददौ ॥ २६०$\frac{1}{2}$ ॥
स तु मध्यमो जघन्यजधनमात्रं यच्छति स्मास्य ।
समधनिकाः स्युस्तेषां हस्तगतं ब्रूहि गणक संचिन्त्य ॥ २६१$\frac{1}{2}$ ॥
वैश्यात्मजाश्च पञ्च ज्येष्ठादनुजः स्वकीयधनमात्रम् ।
लेभे सर्वेऽप्येवं समवित्ताः किं तु हस्तगतम् ॥ २६२$\frac{1}{2}$ ॥
वणिजः पञ्च स्वस्वादर्धं पूर्वस्य दत्त्वा तु ।
समवित्ता संचिन्त्य च किं तेषां ब्रूहि हस्तगतम् ॥ २६३$\frac{1}{2}$ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी के तीन लड़के थे । बड़ा, मँझला और छोटा, तीनों किसी रास्ते से कहीं जा रहे थे । बड़े ने अपने धन में से मँझले को उतना धन दिया जितना कि मँझले के पास था । इस मझले ने अपने धन में से छोटे को उतना दिया जितना कि छोटे के पास था । अंत में उनके पास बराबर-बराबर धन हो गया । हे गणितज्ञ ! सोचकर बतलाओ कि आरम्भ में उनके पास (क्रमशः) कितना-कितना धन था ? ॥ २६०$\frac{1}{2}$-२६१$\frac{1}{2}$ ॥ किसी व्यापारी के पाँच लड़के थे । द्वितीय पुत्र ने बड़े से उतना धन लिया जितना कि उसका हस्तगत धन था । बाकी सभी ने ऐसा ही किया । अत में उन सबके पास बराबर-बराबर धन हो गया । बतलाओ कि आरम्भ में उनके पास कितनी-कितनी रकम थी ? ॥ २६२$\frac{1}{2}$ ॥ पाँच व्यापारी समान धन वाले हो गये, जब कि उनमें से प्रत्येक ने अपनी खुद की रकम में से, जो उसके सामने आया, उसे उसी के धन से आधा दे दिया । सोचकर बतलाओ कि उनके पास आरम्भ में कितना-कितना धन था ? ॥ २६३$\frac{1}{2}$ ॥ ६ व्यापारी थे । बड़ों ने, जो कुछ उनके हाथ मे

जावेगा—

१ – $\frac{1}{2}$ या २ उपअंतिम मनुष्य के धन के सम्बन्ध में गुणन (multiple) है । यह २ एक से मिलाने पर ३ हो जाता है, जो दूसरों के धनों के संबंध में गुणज अथवा अपवर्त्य (multiple) हो जाता है ।

अत्र . . . . १, १ ।
उपअंतिम १ को २ से गुणित कर और अन्य को ३ द्वारा गुणित करने से हमें
यह प्राप्त होता है . . . . २, ३ ।
अन्त के अंक में १ जोड़ने पर यह प्राप्त होता है . . . २, ४ ।
अब यह लिखते हैं . . . . २, ४, ४ ।
उपअंतिम ४ को २ द्वारा और अन्य को ३ द्वारा गुणित कर और अंत के अंक में जोड़ने पर हमें यह प्राप्त होता है । . . . . ६, ८, १३ ।
पुनः . . . . ६, ८, १३, १३ ।
ऊपर की तरह, फिर से उन्हीं क्रियाओं को दुहराने पर हमें यह प्राप्त होता है : १८, २४, २६ ४०, ५४, ७२, ७८, ८०, १२१ ।
अंतिम पंक्ति की सख्याएँ ५ व्यापारियों की अलग अलग हस्तगत रकमों का निरूपण करती हैं ।
बीजीय रूप से :— अ – $\frac{1}{2}$ ब = $\frac{3}{2}$ ब – $\frac{1}{2}$ स = $\frac{3}{2}$ स – $\frac{1}{2}$ द = $\frac{3}{2}$ द – $\frac{1}{2}$ इ = $\frac{3}{2}$ इ,
जहाँ अ, ब, स, द, इ पाँच व्यापारियों की हस्तगत रकमें हैं ।

वणिजः षट् स्वधनाद्वित्रिभागमात्रं क्रमेण चान्येभ्यः ।
स्वस्वानुक्रमाय दत्त्वा समवित्ताः किं च हस्तगतम् ॥ २६४½ ॥

परस्परहस्तगतधनसंख्यामात्रधनं दत्त्वा समधनानयनसूत्रम्—
वाञ्छाभक्तं रूपं पदयुतमादावुपर्युपर्येवम् ।
संस्थाप्य सैकवाञ्छागुणितं रूपोनमितरेषाम् ॥ २६५½ ॥

अत्रोद्देशकः

वणिजश्चय परस्परकरस्थधनमेकतोऽन्योन्यम् ।
दत्त्वा समवित्ताः स्युः किं स्याद्धस्तस्थितं द्रव्यम् ॥ २६६½ ॥

था अपने से छोटों को क्रमशः ⅔ रकम (उसकी जो उनके हाथों में अलग-अलग थी) क्रमानुसार दी। बाद में वे सब समान धन वाले हो गये। उन सबके पास अलग-अलग हाथ में कौन-कौन सी रकमें थीं। ॥ २६४½ ॥

हाथ की समान रकमों को निकालने के लिये नियम जब कि कुछ (संख्या के) मनुष्य एक से दूसरे को आपस में ही उतना धन देते हैं जितना कि क्रमशः उनके हाथ में तब रहता है—

प्रश्न में मन से चुनी हुई गुणज (multiple) राशि द्वारा एक को भाजित करते हैं। इसमें इस व्यापार में भाग लेनेवाले मनुष्यों की संगत संख्या जोड़ते हैं। इस प्रकार प्रथम मनुष्य के हाथ का प्रारम्भिक धन प्राप्त होता है। यह और उसके बाद के फल क्रम में लिखे जाते हैं, और उनमें से प्रत्येक को एक द्वारा बढ़ाई गई मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित किया जाता है और फल को तब एक द्वारा ह्रासित करते हैं। इस प्रकार, प्रत्येक के पास का (प्रारम्भ में उसके हाथ का) धन (जितना था उतना) प्राप्त होता जाता है ॥ २६५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४ व्यापारियों में से प्रत्येक ने दूसरों को जितना उनके पास उस समय था उतना दिया। तब वे समान धनवान् बन गये। उनमें से प्रत्येक के पास अलग-अलग आरम्भ में कितनी-कितनी रकम थी? ॥२६६½॥ चार व्यापारी थे। उनमें से प्रत्येक ने दूसरों से उतनी रकम प्राप्त की जितनी कि उसके

(२६५½) गाथा २६६½ में दिये गये प्रश्न को निम्नरीति से हल करने पर नियम स्पष्ट हो जायेगा—

१ को मन से चुने हुए गुणज (multiple) द्वारा भाजित करते हैं। इसमें मनुष्यों की संख्या ३ जोड़ने पर ४ प्राप्त होता है। यह प्रथम व्यक्ति के हाथ की रकम है। यह ४ मन से चुने हुए गुणज १ को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त २ द्वारा गुणित होकर, ८ बन जाता है। जब इसमें से १ घटाया जाता है, तो हमें ७ प्राप्त होता है जो दूसरे आदमी के हाथ की रकम है ॥२६५½॥

यह ७ ऊपर की तरह २ द्वारा गुणित होकर, और फिर एक द्वारा ह्रासित होकर १३ होता है, जो तीसरे आदमी के हाथ की रकम है। यह फल निम्नलिखित समीकरण से सरलता पूर्वक प्राप्त हो सकता है—

४ (अ − ब − स) = २ { २ ब − (अ − ब − स) − २ स } = ४ स − २ (अ − ब − स) −
{ २ ब − (अ − ब − स) − २ स }

वणिजश्चत्वारस्तेऽप्यन्योन्यधनार्धमात्रमन्यस्मात् ।
स्वीकृत्य परस्परतः समवित्ताः स्युः कियत्करस्थधनम् ॥ २६७½ ॥

जयापजययोर्लाभानयनसूत्रम्—

स्वस्वछेदांशयुती स्थाप्योर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः ।
अन्योन्यच्छेदांशकगुणितौ वज्रापवर्तनक्रमशः ॥ २६८½ ॥
छेदांशक्रमवत्स्थिततदन्तराभ्यां क्रमेण संभक्तौ ।
स्वांशहरघ्नान्यहरौ वाञ्छाघ्नौ व्यस्ततः करस्थामिति ॥ २६९½ ॥

अत्रोद्देशकः

दृष्ट्वा कुक्कुटयुद्धं प्रत्येकं तौ च कुक्कुटिकौ। उक्तौ रहस्यवाक्यैर्मन्त्रौषधशक्तिमन्महापुरुषेण ॥२७०½॥

पास की आधी उस (रकम देने के) समय थी । तब वे सब समान धनवाले बन गये । आरम्भ में प्रत्येक के पास कितनी-कितनी रकम थी ? ॥२६७½॥

(किसी जुए में) जीत और हार से (बराबर) लाभ निकालने के लिये नियम—

(प्रश्न में दी गई दो भिन्नीय गुणज) राशियों के अंशों और हरों के दो योगो को एक दूसरे के नीचे नियमित क्रम में लिखा जाता है, और तब व्युत्क्रम में लिखा जाता है । (दो योगों के कुलकों (sets) में से पहिले की) इन राशियों को वज्राप्रवर्तन क्रिया के अनुसार हर द्वारा गुणित करते हैं, और दूसरे कुलक की राशियों को उसी विधि से दूसरी संकलित (summed up) राशि की सगत भिन्नीय राशि के अंश द्वारा गुणित करते हैं । प्रथम कुलक सम्बन्धी प्राप्त फलों को हरों के रूप में लिख लिया जाता है, तथा दूसरे कुलक सम्बन्धी प्राप्त फलों को अशों के रूप में लिख लिया जाता है । प्रत्येक कुलक के हर और अश का अंतर भी लिख लिया जाता है । तब इन अतरों द्वारा (प्रश्न में दिये गये प्रत्येक गुणज भिन्नों के) अश और हर के योग को दूसरे के हर से गुणित करने से प्राप्त फलों को क्रमशः भाजित किया जाता है । ये परिणामी राशियाँ, इष्ट लाभ के मान से गुणित होने पर, (दाँव पर लगाने वाले जुआड़ियों के) हाथ की रकमों को व्युत्क्रम में उत्पन्न करती हैं ॥२६८½–२६९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मन्त्र और औषधि की शक्ति वाले किसी महापुरुष ने मुर्गों की लड़ाई होती हुई देखी, और मुर्गों के स्वामियों से अलग-अलग रहस्यमयी भाषा में मन्त्रणा की । उसने एक से कहा, "यदि तुम्हारा पक्षी जीतता है, तो तुम मुझे दाँव में लगाया हुआ धन दे देना । यदि तुम हार जाओगे, तो मैं तुम्हें दाँव में लगाये हुए धन का $\frac{२}{३}$ दे दूंगा ।" वह फिर दूसरे मुर्गे के स्वामी के पास गया, जहाँ उसने

(२६८½–२६९½) बीजीय रूप से,

$$क = \frac{(स + द) ब}{(स + द) ब - (अ + ब) स} \times प, \text{ और } ख = \frac{(अ + ब) द}{(अ + ब) द - (स + द) अ} \times प,$$ जहाँ

क और ख जुआड़ियों के हाथ की रकमें हैं, और $\frac{अ}{ब}$, $\frac{स}{द}$, उनमें से लिये गये भिन्नीय भाग हैं, और प लाभ है । इसे समीकार से भी प्राप्त किया जा सकता है, यथा—

$$क - \frac{स}{द} ख = प = ख - \frac{अ}{ब} क,$$ जहाँ क और ख अज्ञात राशियाँ हैं ।

जयति हि पक्षी ते मे देहि स्वर्णं द्विचिजयोऽसि दत्ता ते ।
तद्द्वित्र्यंशकमगोऽस्यपरं च पुनः स संहृत्य ॥ २७१½ ॥
त्रिचतुर्थं प्रतियातस्त्युभयस्माद् द्वादशैव लाभः स्यात् ।
तत्कुक्कुटिकंकरस्थं ब्रूहि त्वं गणकमुखतिलक ॥ २७२½ ॥

राशिलब्धच्छेदमिश्रविभागसूत्रम्—

मिश्रादूनितसंख्या छेदः सैकेन तेन शेषस्य ।
भागं हृत्वा लब्धं लाभोनितशेष एव राशिः स्यात् ॥ २७३½ ॥

अत्रोद्देशकः

केनापि किमपि भक्तं सच्छेदो राशिमिश्रितो लाभः ।
पञ्चाशत्त्रिभिरधिका तच्छेदः किं भवेल्लब्धम् ॥ २७४½ ॥

इष्टसंख्यायोज्यत्याज्यवर्गमूलराश्यानयनसूत्रम् —

योज्यत्याज्ययुतिः सरूपविषमा भक्तार्धिता वर्गिता
व्यस्ता यच्च हृता च रूपसहिता स्याद्यैक्यशेषाश्रयो ।

उन्हीं दशाओं में दाँव में लगाये गये धन का ⅔ धन देने की प्रतिज्ञा की। प्रत्येक दशा में उसे दोनों से केवल १२ (स्वर्ण के टुकड़े) लाभ के रूप में मिले। हे गणक मुख तिलक! बतलाओ कि प्रत्येक पक्षी के स्वामी के पास दाँव में लगाने के लिये हाथ में कितना-कितना धन था? ॥२७०–२७२½॥

अज्ञात भाज्य संख्या, भजनफल और भाजक को उनके मिश्रित योग में से अलग-अलग करने के लिये नियम:—

कोई भी सुविधाजनक मनसे चुनी हुई संख्या जिसे दिये गये मिश्रित योग में से घटाना पड़ता है प्रश्न में भाजक होती है। इस भाजक को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त राशि द्वारा, मन से चुनी हुई संख्या को दिये गये मिश्रित योग में से घटाने से प्राप्त शेष को भाजित किया जाता है। इससे इष्ट भजनफल प्राप्त होता है। वही (उपर्युक्त) शेष इस भजनफल से ह्रासित होकर इष्ट भाज्य संख्या बन जाता है ॥२७३½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई अज्ञात राशि किसी अन्य अज्ञात राशि द्वारा भाजित होती है। यहाँ भाजक, भाज्य संख्या और भजनफल का योग ५३ है। वह भाजक क्या है तथा भजनफल क्या है? ॥२७४½॥

उस संख्या को निकालने के लिये नियम जो दत्त संख्या में कोई ज्ञात संख्या को जोड़ने पर वर्गमूल बन जाती है अथवा जो दत्त संख्या में से दूसरी ज्ञात संख्या घटाई जाने पर वर्गमूल बन जाती है—

जोड़ी जाने वाली राशि और घटाई जानेवाली राशि के योग को उस योग की निकटतम युग्म संख्या से ऊपर के अतिरेक (excess above the even number) में एक जोड़ने से प्राप्त संख्या द्वारा गुणित करते हैं। परिणामी गुणनफल को आधा किया जाता है और तब वर्गित किया जाता है। इस वर्गित राशि में से उपर्युक्त सम्बन्ध वाधिक्य (योग की निकटतम युग्म संख्या से ऊपर का अतिरेक—excess) घटाते हैं। यह फल २ द्वारा भाजित किया जाता है, और तब १ में जोड़ा जाता

शेषैक्यार्धयुतोनिता फलमिद राशिर्भवेद्वाञ्छयो–
स्त्याज्यात्याज्यमहत्त्वयोरथ कृतेर्मूलं ददात्येव स ॥ २७५½ ॥

अत्रोद्देशकः

राशिः कश्चिद्दशभि संयुक्त. सप्तदशभिरपि हीन ।
मूलं ददाति शुद्ध तं राशिं स्यान्ममाशु वद गणक ॥ २७६½ ॥
राशि सप्तभिरूनो य सोऽष्टादशभिरन्वितः कश्चित् ।
मूलं यच्छति शुद्धं विगणय्याचक्ष्व त गणक ॥ २७७½ ॥
राशिर्द्वित्र्यंशोनस्त्रिसप्तभागान्वितस्स एव पुन ।
मूलं यच्छति कोऽसौ कथय विचिन्त्याशु तं गणक ॥ २७८½ ॥

है। परिणामी राशि को क्रमशः ऐसी दो राशियों के आधे अन्तर में जोड़ा जाता है, अथवा अर्द्ध अंतर में से घटाया जाता है, जिन्हें कि अयुग्म बनानेवाली अतिरेक राशि द्वारा उन दशाओं में ह्रासित किया जाता है अथवा बढ़ाया जाता है, जब कि घटाई जानेवाली दी गई मूल राशि जोड़ी जानेवाली दी गई मूल राशि से बड़ी अथवा छोटी होती है। इस प्रकार प्राप्त फल वह संख्या होती है, जो दत्त राशियों से इच्छानुसार सम्बन्धित होकर, निश्चित रूप से वर्गमूल को उत्पन्न करती है ॥ २७५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई संख्या जब १० से बढ़ाई अथवा १७ से घटाई जाती है, तब वह यथार्थ वर्गमूल बन जाती है। यदि सम्भव हो तो, हे गणितज्ञ, मुझे शीघ्र ही वह संख्या बतलाओ ॥ २७६½ ॥ कोई राशि जब ७ द्वारा ह्रासित की जाती है अथवा १८ द्वारा बढ़ाई जाती है, तो वह यथार्थ वर्गमूल बन जाती है। हे गणक ! उस संख्या को गणना के पश्चात् बतलाओ ॥ २७७½ ॥ कोई राशि $\frac{२}{३}$ द्वारा ह्रासित होकर, अथवा $\frac{३}{७}$ द्वारा बढ़ाई जाकर यथार्थ वर्गमूल उत्पन्न करती है। हे गणक, सोचकर शीघ्र ही वह सम्भव संख्या बतलाओ ॥ २७८½ ॥

(२७५½) बीजीय रूप से, मानलो निकाली जानेवाली राशि क है, और उसमें जोड़ी जानेवाली अथवा उसमें से घटाई जानेवाली राशिया क्रमशः अ, ब हैं, तब इस नियम का निरूपण करनेवाला सूत्र निम्नलिखित होगा*—

$\left\{\frac{\{(अ+ब)\times(१+१)-२\}^२-१}{४}\right\}+१\pm\frac{अ\sim ब\pm १}{२}$, इसका मूलभूत सिद्धान्त इस प्रकार निकाला जा सकता है। $(न+१)^२-न^२=२न+१$ जो अयुग्म संख्या है, और $(न+२)^२-न^२=४न+४$ जो युग्म संख्या है, जहाँ 'न' कोई भी पूर्णांक है। नियम बतलाता है कि हम $२न+१$ और $४न+४$ से किस प्रकार $न^२+अ$ प्राप्त कर सकते हैं, जब कि हम जानते हैं कि $२न+१$ अथवा $४न+४$ को $अ+ब$ के बराबर होना चाहिये।

(२७८½) गाथा २७५½ के नोट में ब और अ द्वारा निरूपित संख्यायें (जो वास्तव में $\frac{२}{३}$ और $\frac{३}{७}$ हैं), इस प्रश्न में भिन्नीय होने के कारण, यह आवश्यक है कि दिये गये नियम के अनुसार उन्हें

---

* इसे रंगाचार्य ने निम्न प्रकार दिया है जो नियम से नहीं मिलता है।

$$\left\{\frac{(a+b)+(1+1)-२}{4}\right\}^२-1+1\pm\frac{a\sim b\pm 1}{2}$$

इष्टसंख्याहीनयुतवर्गमूलानयनसूत्रम्—

दलितेष्टो यो राशिस्त्ववर्गीकृतसमर्गितोऽथ रूपयुतः। यच्छति मूलं स्वेष्टात्संयुक्ते चापनीते च ॥२७९½॥

अत्रोद्देशकः

दशभिः संमिश्रोऽथ दशभिस्तैर्वर्जितस्तु संशुद्धम्।
यच्छति मूलं गणक प्रकथय संचिन्त्य राशिं मे ॥ २८०½ ॥

इष्टवर्गीकृतराशिद्वयाविष्टघ्नान्तरमूलविधानसूत्रम्—

सैकेष्टघ्नैकेष्टार्धवर्गीकृतौ वर्गितौ राशी। स्वेष्टाविष्टघ्नासम तद्विश्लेषस्य मूलमिष्टं स्यात् ॥२८१½॥

जो किसी ज्ञात संख्या द्वारा बढ़ाई अथवा ह्रासित की जाती है, ऐसी अज्ञात संख्या के वर्गमूल को निकालने के लिये नियम—

दी गई ज्ञात राशि को आधा करके वर्गित किया जाता है और तब उसमें एक जोड़ा जाता है। परिणामी संख्या को जब या तो इच्छित दी हुई राशि द्वारा बढ़ाते हैं अथवा उसी दी हुई राशि द्वारा ह्रासित करते हैं तब यथार्थ वर्गमूल प्राप्त होता है ॥ २७९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक संख्या है, जो जब १० द्वारा बढ़ाई जाती है अथवा १० द्वारा ह्रासित की जाती है, तो यथार्थ वर्गमूल को देती है। हे गणक! ठीक तरह सोच कर वह संख्या बताओ ॥ २८०½ ॥

ज्ञात संख्या द्वारा गुणित इष्ट वर्ग राशियों की सहायता से और साथ ही इन गुणनफलों के अंतर के वर्गमूल के मान को उत्पन्न करने वाली उसी ज्ञात संख्या की सहायता से, उन्हीं दो इष्ट वर्ग राशियों को निकालने के नियम:—

दी गई संख्या को १ द्वारा बढ़ाया जाता है और उसी दी गई संख्या को १ द्वारा ह्रासित भी किया जाता है। परिणामी राशियों को जब आधा कर वर्गित किया जाता है तो दो इष्ट राशियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि इन्हें अलग-अलग दी गई राशि द्वारा गुणित किया जावे तो इन गुणनफलों के अंतर के वर्गमूल से दी हुई राशि उत्पन्न होती है ॥ २८१½ ॥

इस करने की क्रिया द्वारा हटा दिया जाय। इसके लिये वे पहिले एक सी हर वाली बना ली जाती हैं और क्रमशः [illegible] और [illegible] द्वारा निरूपित की जाती हैं। तब इन राशियों को $(२१)^२$ द्वारा गुणित किया जाता है जिससे १९४ तथा १८९ आदि प्राप्त होती हैं, जो प्रश्न में व और अ मान ली गई हैं। इन मानी हुई व और अ राशियों के द्वारा प्राप्त फल को $(२१)^२$ द्वारा भाजित किया जाता है, और भजनफल ही प्रश्न का उत्तर होता है।

(२७९½) यह गाथा २७५ में दिये गये नियम की केवल एक विशिष्ट दशा है, जहाँ अ को व के बराबर लिया जाता है।

(२८१½) बीजीय रूप से, जब दी गई संख्या द होती है, तब $\left(\frac{द+१}{२}\right)^२$ और $\left(\frac{द-१}{२}\right)^२$ इष्ट वर्गित राशियाँ होती हैं।

अत्रोद्देशकः

यौकौचिद्वर्गीकृतराशी गुणितौ तु सैकसप्तत्या । सद्विश्लेषपदं स्यादेकोत्तरसप्ततिश्च राशी कौ ॥
विगणय्य चित्रकुट्टिकगणितं यदि वेत्सि गणक मे ब्रूहि ॥ २८३ ॥

युतहीनप्रक्षेपकगुणकारानयनसूत्रम्—

संवर्गितेष्टशेषं द्विष्ठं रूपेष्टयुतगुणाभ्यां तत् । विपरीताभ्यां विभजेत्प्रक्षेपौ तत्र हीनौ वा ॥२८४॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकसंवर्गः पञ्चदशाष्टादशैव चेष्टमपि । इष्टं चतुर्दशात्र प्रक्षेपः कोऽत्र हानिर्वा ॥२८५॥

विपरीतकरणानयनसूत्रम्—

प्रत्युत्पन्ने भागो भागे गुणितोऽधिके पुनः शोध्यः । वर्गे मूलं मूले वर्गो विपरीतकरणमिदम् ॥२८६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो अज्ञात वर्गित राशियो को ७१ द्वारा गुणित किया जाता है। इन दो परिणामी गुणनफलों के अतर का वर्गमूल भी ७१ होता है। हे गणक, यदि चित्र कुट्टीकार से परिचित हो, तो गणना कर उन दो अज्ञात राशियों को मुझे बतलाओ ॥ २८२½-२८३ ॥

किसी दिये गये गुण्य और दिये गये गुणकार (multiplier) के सम्बन्ध मे इष्ट बढ़ती या घटती को निकालने के लिये नियम (ताकि दत्त गुणनफल प्राप्त हो)—

इष्ट गुणनफल और दिये गये गुण्य तथा गुणस्कार का परिणामी गुणनफल (इन दोनों गुणनफलों) के अंतर को दो स्थानों में लिखा जाता है। परिणामी गुणनफल के गुणावयवों में से किसी एक में १ जोड़ते हैं, और दूसरे में इष्ट गुणनफल जोड़ते हैं। ऊपर दो स्थानों में इच्छानुसार लिखा गया वह अंतर अलग अलग इस प्रकार प्राप्त होने वाले योगो द्वारा व्यस्त क्रम में भाजित किया जाता है। ये उन राशियों को उत्पन्न करते हैं, जो क्रमशः दिये गये गुण्य और गुणकार अथवा क्रमशः उनमें से घटाई जाने वाली राशियों में जोड़ी जाती हैं ॥ २८४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

३ और ५ का गुणनफल १५ है। इष्ट गुणनफल १८ है, और वह १४ भी है। गुण्य और गुणकार में यहाँ कौन सी तीन राशियाँ जोड़ी जाँय अथवा उनमें से घटाई जाँय ? ॥ २८५ ॥

विपरीतकरण (working backwards) क्रिया द्वारा इष्ट फल प्राप्त करने के लिए नियम—

जहाँ गुणन है वहाँ भाजन करना, जहाँ भाजन है वहाँ गुणन करना, जहाँ जोड़ किया गया है वहाँ घटाना करना, जहाँ वर्ग किया गया है वहाँ वर्गमूल निकालना, जहाँ वर्गमूल दिया गया है वहाँ वर्ग करना—यह विपरीतकरण क्रिया है ॥ २८६ ॥

---

(२८४) जोड़ी जानेवाली और घटाई जानेवाली राशियाँ ये हैं—

$\frac{द \sim अब}{द + ब}$ और $\frac{द \sim अब}{अ + १}$,

क्योंकि $\left(अ \pm \frac{द \sim अब}{द + ब}\right)\left(ब + \frac{द \sim अब}{अ + १}\right) = द$, जहाँ अ और ब दिये गये गुणनखंड हैं, और द इष्ट गुणन है।

अत्रोद्देशकः

सप्तहृतो को राशिस्त्रिगुणो वर्गीकृतः शरैर्युक्तः ।
त्रिगुणितपञ्चांशहृतस्त्वर्धितमूलं च पञ्चरूपाणि ॥ २८७ ॥

साधारणशरपरिध्यानयनसूत्रम्—

शरपरिधित्रिकमिश्रं वर्गितमेतत्पुनस्त्रिभिः सहितम् ।
द्वादशहृतेऽपि लब्धं शरसंख्या स्यात्कलापकाविष्टा ॥ २८८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वह कौन सी राशि है, जो ७ द्वारा भाजित होकर तब ३ द्वारा गुणित होकर तब वर्गित की जाकर, तब ५ द्वारा बढ़ाई जाकर, तब $\frac{३}{५}$ द्वारा भाजित होकर तब आधी होकर और तब वर्गमूल निकाले जाने पर ५ होती है ? ॥ २८७ ॥

तरकस के साधारण परिध्यान (common circumferential layer) की संरचना करनेवाले तीरों की दुम्म संख्या की सहायता से किसी तरकस में रखे हुए बाणों की संख्या निकालने के लिये नियम—

परिध्यान बनाने वाले बाणों की संख्या में ३ जोड़ो तब इस परिणामी योग को वर्गित करो, और उस वर्गित राशि में फिर से ३ जोड़ो। यदि प्राप्तफल १२ द्वारा भाजित किया जाय तो अज्ञातक तरकस के तीरों की संख्या का प्रमाण बन जाता है ॥ २८८ ॥

---

(२८८) तीरों की कुल संख्या प्राप्त करने के लिये यहाँ दिया गया सूत्र $\frac{(न + ३)^{२} + ३}{१२}$ है, यहाँ 'न' परिध्यान बाणों की संख्या है। यह सूत्र निम्नलिखित रीति से भी प्राप्त हो सकता है—

रेखागणित (ज्यामिति) से सिद्ध किया जा सकता है कि किसी वृत्त के चारों ओर केवल ६ वृत्त खींचे जा सकते हैं। ऐसे सभी वृत्त तुल्य होते हैं, तथा प्रत्येक वृत्त दो आसन्न वृत्तों को स्पर्श करता हुआ बीच के (केन्द्रीय) वृत्त को भी स्पर्श करता है। इन वृत्तों के चारों ओर फिर से उतने ही नापके १२ वृत्त उसी प्रकार खींचे जा सकते हैं और फिर से इन वृत्तों के चारों ओर केवल ऐसे ही १८ वृत्त खींचे जाना सम्भव है इत्यादि। इस प्रकार, प्रथम घेरे में ६ वृत्त, दूसरे में १२, तीसरे में १८ होते हैं, इत्यादि। इसलिये प वें घेरे में ६ प वृत्त होंगे। अब प घेरों में वृत्तों की कुल संख्या (केन्द्रीय वृत्त से गिनी जाकर) —

$$१ + १ \times ६ + २ \times ६ + ३ \times ६ + \ldots + प \times ६ = १ + ६ (१ + २ + ३ + \ldots + प)$$

$= १ + ६ \frac{प (प + १)}{२} = १ + ३ प (प + १)$ होगी। यदि ६ प का मान 'न' दिया गया हो, तो कुल वृत्तों की संख्या $१ + ३ \times \frac{न}{६} \left(\frac{न}{६} + १ \right)$ होगी जो इस नोट के आरम्भ में दिये गये सूत्र रूप में प्रकाशित की जा सकती है।

अत्रोद्देशकः

परिधिशरा अष्टादश तूणीरस्थाः शराः के स्युः ।
गणितज्ञ यदि विचित्रे कुट्टीकारे श्रमोऽस्ति ते कथय ॥ २८९ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे विचित्रकुट्टीकारः समाप्तः ।

श्रेढीबद्धसंकलितम्

इतः परं मिश्रकगणिते श्रेढीबद्धसंकलितं व्याख्यास्यामः ।

हीनाधिकचयसकलितधनानयनसूत्रम्—

व्येकार्धपदोनाधिकचयघातोनान्वितः पुनः प्रभवः ।
गच्छाभ्यस्तो हीनाधिकचयसमुदायसंकलितम् ॥ २९० ॥

अत्रोद्देशकः

चतुरुत्तरदश चादिर्हीनचयस्त्रीणि पञ्च गच्छः किम् ।
द्वावादिर्वृद्धिचयः षट् पदमष्टौ धनं भवेदत्र ॥ २९१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

परिध्यान शरों की सख्या १८ है । कुल मिलाकर तरकश में कितने शर हैं, हे गणितज्ञ, यदि तुमने विचित्र कुट्टीकार के सम्बन्ध में कष्ट किया है, तो इसे हल करो ॥२८९॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में विचित्र कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

श्रेढीबद्ध संकलित (श्रेणियों का सकलन)

इसके पश्चात् हम गणित में श्रेणियों के संकलन की व्याख्या करेंगे ।

धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेणी के योग को निकालने के लिये नियमः—

प्रथमपद उस गुणनफल के द्वारा या तो घटाया अथवा बढ़ाया जाता है, जो ऋणात्मक या धनात्मक प्रचय में श्रेणी के एक कम पदों की सख्या की अर्द्ध राशि का गुणन करने से प्राप्त होता है । तब यह प्राप्तफल श्रेणी के पदों की सख्या से गुणित किया जाता है । इस प्रकार, धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेणी के योग को प्राप्त किया जाता है ॥२९०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम पद १४ है, ऋणात्मक प्रचय ३ है, पदों की सख्या ५ है । प्रथमपद २ है, धनात्मक प्रचय ६ है, और पदों की सख्या ८ है । इन दशाओं में से प्रत्येक में श्रेणी का योग बतलाओ ॥२९१॥

---

(२९०) बीजीय रूप से, $\left(\frac{न-१}{२} ब \pm अ\right) न = श$, जहाँ न पदों की सख्या है, अ प्रथम पद है, ब प्रचय है, और श श्रेणीका योग है ।

अधिकहीनोत्तरसंकलितधने आद्युत्तरानयनसूत्रम्—

गच्छविभक्ते गणिते रूपोनपदार्धगुणितचयहीने ।
आदिः पदहृतवित्तं चाद्यूनं व्येकपददलहृत् प्रचयः ॥ २९२ ॥

अत्रोद्देशकः

चत्वारिंशद्गणितं गच्छः पञ्च त्रयः प्रचयः । न ज्ञायतेऽधुनादिः प्रभवो द्विः प्रचयमाचक्ष्व ॥२९३॥

श्रेढीसंकलितगच्छानयनसूत्रम्—

आदिविहीनो लाभः प्रचयार्धहृतः स एव रूपयुतः ।
गच्छो लाभेन गुणो गच्छः सर्वसंकलितधनं च संभवति ॥ २९४ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रीण्युत्तरमादिर्द्वे वनिताभिश्चोत्पलानि भक्तानि ।
एकस्या भागोऽष्टौ कति वनिताः कति च कुसुमानि ॥ २९५ ॥

धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेढी के योग के सम्बन्ध में प्रथमपद और प्रचय निकालने के लिये नियम—

श्रेढी के दिये गये योग को पदों की संख्या द्वारा भाजित करो और परिणामी भजनफल में से प्रचय द्वारा गुणित एक कम पदों की संख्या की आधीराशि को घटाओ। इस प्रकार श्रेढी का प्रथमपद प्राप्त होता है। श्रेढी के योग को पदों की संख्या द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी भजनफल में से प्रथम पद घटाते हैं। शेष को जब १ कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा भाजित करते हैं तो प्रचय प्राप्त होता है ॥२९२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

श्रेढी का योग ४० है पदों की संख्या ५ है; प्रचय ३ है; प्रथमपद अज्ञात है। उसे निकालो। यदि प्रथमपद २ हो तो प्रचय प्राप्त करो ॥ २९३ ॥

जो योग को पदों की ज्ञात संख्या से भाजित करने पर भजनफल के रूप में प्राप्त होता है, ऐसे ज्ञात लाभ की सहायता से समान्तर श्रेढी में योग और पदों की संख्या निकालने के लिये नियम—

लाभ को प्रथम पद (आदिपद) द्वारा ह्रासित किया जाता है, और तब प्रचय की आधी राशि द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी राशि में १ जोड़ने पर श्रेढी के पदों की संख्या प्राप्त होती है। श्रेढी के पदों की संख्या को लाभ द्वारा गुणित करने पर श्रेढी का योग प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समान्तर श्रेढी के योग प्ररूपक कोई संख्या के उत्पल फूल लिये गये। २ प्रथमपद है ३ प्रचय है। कोई संख्या की स्त्रियों ने आपस में ये फूल बराबर-बराबर बाँटे। प्रत्येक स्त्री को ८ फूल हिस्से में मिले। स्त्रियाँ कितनी थीं और फूल कितने थे? ॥ २९५ ॥

(२९२) बीजीय रूप से

$अ = \frac{ध}{न} - \frac{न - १}{२} ब$; और $ब = \left(\frac{ध}{न} - अ\right) + \frac{न - १}{२}$

(२९४) बीजीय रूप से, $न = \frac{ल - अ}{ब/२} + १$ जहाँ $ल = \frac{ध}{न}$ जो लाभ है।

(२९५) स्त्रियों की संख्या ही इस प्रश्न में पदों की संख्या है।

वर्गसंकलितानयनसूत्रम्—

सैकेष्टकृतिर्द्विघ्ना सैकेष्टोनेष्टदलगुणिता। कृतिघनचितिसंघातस्त्रिकभक्तो वर्गसंकलितम् ॥ २९६ ॥

अत्रोद्देशकः

अष्टाष्टादशविंशतिषष्ट्येकाशीतिषट्कृतीनां च।
कृतिघनचितिसंकलितं वर्गचितिं चाशु मे कथय ॥ २९७ ॥

इष्टाद्युत्तरपदवर्गसंकलितधनानयनसूत्रम्—

द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहतिषष्ठांशमुखचयहतयुतिः।
व्येकपदघ्ना मुखकृतिसहिता पदताडितेष्टकृतिचितिका ॥ २९८ ॥

एक से आरम्भ होने वाली दी गई संख्या की प्राकृत संख्याओं के वर्गों का योग निकालने के लिये नियम —

दी गई संख्या को एक द्वारा बढ़ाते हैं, और तब वर्गित करते हैं। यह वर्गित राशि २ से गुणित की जाती है, और तब एक द्वारा बढ़ाई गई दत्त राशि द्वारा ह्रासित की जाती है। इस प्रकार प्राप्त शेष को दत्त संख्या की आधी राशी द्वारा गुणित करते हैं। यह परिणाम उस योग के तुल्य होता है जो दी गई संख्या के वर्ग, दी गई संख्या के घन और दी गई संख्या की प्राकृत संख्याओं को जोड़ने पर प्राप्त होता है। इस मिश्रित योग को ३ द्वारा भाजित करने पर (दी गई संख्या की) प्राकृत संख्याओं के वर्ग का योग प्राप्त होता है ॥ २९६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्राकृत संख्याओं वाली कुछ श्रेणियों में, प्राकृत संख्याओं की संख्या (क्रम से) ८,१८,२०,६०,८१ और ३६ है। प्रत्येक दशा में वह योगफल बतलाओ, जो दी गई संख्या का वर्ग, उसका घन, और प्राकृत संख्याओं का योग जोड़ने पर प्राप्त होता है। दी गई संख्या वाली प्राकृत संख्याओं के वर्गों का योग भी बतलाओ ॥ २९७ ॥

समान्तर श्रेणी में कुछ पदों के वर्गों का योग निकालने के लिये नियम, जहाँ प्रथमपद, प्रचय और पदों की संख्या दी गई हो—

पदों की संख्या की दुगुनी राशि १ द्वारा ह्रासित की जाती है, तब प्रचय के वर्ग द्वारा गुणित की जाती है, और तब ६ द्वारा भाजित की जाती है। प्राप्तफल में प्रथमपद और प्रचय के गुणनफल को जोड़ते हैं। परिणामी योग को एक द्वारा ह्रासित पदों की संख्या से गुणित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल में प्रथमपद की वर्गित राशि को जोड़ा जाता है। प्राप्त योग को पदों की संख्या से गुणित करने पर दी गई श्रेढि के पदों के वर्गों का योग प्राप्त होता है ॥ २९८ ॥

---

(२९६) बीजीय रूप से, $\left\{ \frac{२ (न + १^{२} (न + १)}{३} \right\} \frac{न}{२} = धा_{२}$, जो न तक की प्राकृत संख्याओं के वर्ग का योग है।

(२९८) $\left[\left\{ \frac{(२न - १) ब^{२}}{६} + अब \right\} (न - १) + अ^{२} \right] न$ = समान्तर श्रेणी के पदों के वर्गों का योग।

अत्रोद्देशकः

सप्ताष्टनवदशानां षोडशपञ्चाशदेकषष्टीनाम् ।
ब्रूहि चतुःसंकलितं सूत्राणि पृथक् पृथक् कृत्वा ॥ ३०८½ ॥

संघातसंकलितानयनसूत्रम्—

गच्छस्त्रिरूपसहितो गच्छचतुर्भागताडितः सैकः ।
सपदपदकृतिविनिघ्नो भवति हि संघातसंकलितम् ॥ ३०९½ ॥

अत्रोद्देशकः

सप्तकृतेः षट्षष्ट्यास्त्रयोदशानां चतुर्दशानां च ।
पञ्चाग्रविंशतीनां किं स्यात् संघातसंकलितम् ॥ ३१०½ ॥

भिन्नगुणसंकलितानयनसूत्रम्—

समदलविषमखरूपं गुणगुणितं वर्गताडितं द्विष्ठम् ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई संख्याएँ ७, ८, ९, १०, १६, ५० और ६१ हैं। आवश्यक नियमों को विचारकर, प्रत्येक दशा में, चार निर्दिष्ट राशियों के योग को बतलाओ ॥३०८½॥

(पूर्व व्यवहृत चार प्रकार की श्रेढियों के) सामूहिक योग को निकालने के लिये नियम—

पदों की संख्या को ३ में जोड़ते हैं, और प्राप्तफल को पदों की संख्या के चतुर्थ भाग द्वारा गुणित करते हैं। तब उसमें एक जोड़ा जाता है। इस परिणामी राशि को जब पदों की संख्या के वर्ग को पदों की संख्या द्वारा बढ़ाने से प्राप्तराशि द्वारा गुणित किया जाता है, तब वह इष्ट सामूहिक योग को उत्पन्न करती है ॥३०९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४९, ६६, १३, १४ और २५ द्वारा निरूपित विभिन्न श्रेढियों के सम्बन्ध में इष्ट सामूहिक योग क्या होगा ? ॥३१०½॥

गुणोत्तर श्रेढि में भिन्नों की श्रेढि के योग को निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या को अलग अलग स्तम्भ में, क्रमश, शून्य तथा १ द्वारा चिह्नित (marked) कर लिया जाता है। चिह्नित करने की विधि यह है कि युग्ममान को आधा किया जाता है, और अयुग्म मान में से १ घटाया जाता है। इस विधि को तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि अन्ततोगत्वा शून्य प्राप्त नहीं होता। तब इस शून्य और १ द्वारा बनी हुई प्ररूपक श्रेढि को, क्रमवार, अन्तिम १ से उपयोग में लाते हैं, ताकि यह १ साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित हो। जहाँ १ अभिधानी पद (denoting item) रहता है, वहाँ इसे फिर से साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करते हैं। और जहाँ शून्य अभिधानी पद होता है, वहाँ वर्ग प्राप्त करने के लिये उसे साधारण निष्पत्ति द्वारा

(३०९½) बीजीय रूप से, $\left\{ (न+३)\frac{न}{४}+१ \right\}(न^2+न)$ योगों का सामूहिक योग है, अर्थात् नियम २९६, ३०१ और ३०५ से ३०५½ में बतलाई गई श्रेढियों के योगों तथा 'न' तक की प्राकृत संख्याओं के योग (इन सब योगों) का सामूहिक योग है।

इष्टाद्युत्तरगच्छघनसंकलितानयनसूत्रम्—
चित्यादिहतिर्मुखचयशेषघ्ना प्रचयनिघ्नचितिवर्गे ।
आदौ प्रचयादूने वियुता युक्ताधिके तु घनचितिका ॥ ३०३ ॥

अत्रोद्देशकः

आदिस्त्रयश्चयो द्वौ गच्छः पञ्चास्य घनचितिका ।
पञ्चादिः सप्तचयो गच्छः षट् का भवेच्च घनचितिका ॥ ३०४ ॥

संकलितसकलितानयनसूत्रम्—
द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहतिरङ्गाहृता चयार्धयुता । आदिचयाहतियुक्ता व्येकपदघ्नादिगुणितेन ॥
सैकप्रभवेन युता पददलगुणितैव चितिचितिका ॥ ३०५½ ॥

जहाँ प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या को मन से चुना गया है, ऐसी समान्तर श्रेढि के पदों के घनों के योग को निकालने के लिये नियम—

(दी हुई श्रेढि के सरल पदों के) योग को प्रथम पद द्वारा गुणित कर, प्रथम पद और प्रचय के अंतर द्वारा गुणित करते हैं। तब श्रेढि के योग के वर्ग को प्रचय द्वारा गुणित करते हैं। यदि प्रथम पद प्रचय से छोटा हो, तो ऊपर प्राप्त गुणनफलों में से पहिले को दूसरे गुणनफल में से घटाया जाता है। यदि प्रथम पद प्रचय से बड़ा हो, तो ऊपर प्राप्त प्रथम गुणनफल को दूसरे गुणनफल में जोड़ देते हैं। इस प्रकार घनों का इष्ट योग प्राप्त होता है ॥ ३०३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

घनों का योग क्या हो सकता है, जब कि प्रथम पद ३ है, प्रचय २ है, और पदों की संख्या ५ है, अथवा प्रथम पद ५ है, प्रचय ७ है, और पदों की संख्या ६ है ? ॥ ३०४ ॥

ऐसी श्रेढि की दी हुई संख्या के पदों का योग निकालने के लिए नियम, जहाँ पद उत्तरोत्तर १ से लेकर निर्दिष्ट सीमा तक प्राकृत संख्याओं के योग हों, तथा ये सीमित संख्यायें दी हुई समान्तर श्रेढि के पद हों—

समान्तर श्रेढि में दी गई श्रेढि की पदों की संख्या की दुगुनी राशि को एक द्वारा कम करते हैं, और तब प्रचय के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं। यह गुणनफल ६ द्वारा भाजित किया जाता है। प्राप्त फल प्रचय की अर्द्धराशि में जोड़ा जाता है, और साथ ही प्रथम पद और प्रचय के गुणनफल में भी जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग को एक कम पदों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। प्राप्त गुणनफल को प्रथम पद तथा १ में प्रथम पद जोड़ने से प्राप्तराशि के गुणनफल में जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्तराशि को जब श्रेढि के पदों की संख्या की अर्द्ध राशिद्वारा गुणित किया जाता है, तो ऐसी श्रेढि का इष्ट योग प्राप्त होता है, जिसके स्वपद ही निर्दिष्ट श्रेढि के योग होते हैं ॥३०५–३०५½॥

---

(३०३) बीजीय रूप से,

$\pm$ श अ (अ $\sim$ ब) + श^2 ब = समान्तर श्रेढि के पदों के घनों का योग,

जहाँ श श्रेढि के सरल पदों का योग है। सूत्र में प्रथम पद का चिह्न यदि अ > ब हो, तो + (धन), और यदि अ < ब हो, तो – (ऋण) होता है।

अत्रोद्देशकः

आदिः पद् पञ्च चयः पदमप्यष्टादशाय संदृष्टम्।
एकाद्येकोत्तरचितिसंकलितं किं पदाष्टदशकस्य ॥ ३०६½ ॥

चतुरसंकलितानयनसूत्रम्—

सैकपदार्धपदाहतिरश्वैर्निहता पदोनिता व्याप्ता।
सैकपदघ्ना चितिचितिचितिचितिकृतिघनसयुतिर्भवति ॥ ३०७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह देखा जाता है कि किसी श्रेढि का प्रथम पद १ है प्रचय ५ है और पदों की संख्या १८ है। इन १८ पदों के सम्बन्ध में उन विभिन्न श्रेढियों के योगों के योग को बतलाओ जो कि १ प्रथम पद वाली और १ प्रचय वाली है ॥६ ६½॥

(नीचे निर्दिष्ट और किसी दी हुई संख्या द्वारा निरूपित) चार राशियों के योग को निकालने के लिये नियम—

दी गई संख्या १ द्वारा बढ़ाई जाकर, आधी की जाती है और उस निज के द्वारा तथा ७ द्वारा गुणित की जाती है। इस परिणामी गुणनफल में से वही दत्त संख्या घटाई जाती है। परिणामी शेष को ३ द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल जब एक द्वारा बढ़ाई गई उसी दत्त संख्या द्वारा गुणित किया जाता है, तब चार निर्दिष्ट राशियों का इष्ट योग प्राप्त होता है। ऐसी चार निर्दिष्ट राशियाँ क्रमशः, दी हुई संख्या तक की प्राकृत संख्याओं का योग, दी गई संख्या तक की प्राकृत संख्याओं के योगों के योग, दी गई संख्या का वर्ग और दी गई संख्या का घन होती हैं ॥३०७½॥

(३ ५–३ ५½) बीजीय रूप से,
$$\left[\left\{\frac{(२न-१)ब^२}{६}+\frac{ब}{२}+अब\right\}(न-१)+अ(अ+१)\right]\frac{न}{२}$$

यह समान्तर श्रेढि का योग है, जहाँ प्रथमपद किसी सीमित संख्या तक की प्राकृत संख्याओं वाली श्रेढि के योग का निरूपण करता है—ऐसी सीमित संख्या जो किसी समान्तर श्रेढि का ही एक पद है।

(३ ७½) बीजीय रूप से
$$\frac{\frac{न\times(न+१)\times७}{२}-न}{३}\times(न+१)$$

इस नियम में निर्दिष्ट चार राशियों का योग है। यहाँ चार निर्दिष्ट राशियाँ, क्रमशः ये हैं:— (१) 'न' प्राकृत संख्याओं का योग (२) 'न' तक की विभिन्न प्राकृत संख्याओं द्वारा क्रमशः सीमित विभिन्न प्राकृत संख्याओं के योग, (३) 'न' का वर्ग और (४) 'न' का घन।

अत्रोद्देशकः

सप्ताष्टनवदशानां षोडशपञ्चाशदेकषष्टीनाम् ।
ब्रूहि चतुःसंकलितं सूत्राणि पृथक् पृथक् कृत्वा ॥ ३०८½ ॥

संघातसंकलितानयनसूत्रम्—

गच्छस्त्रिरूपसहितो गच्छचतुर्भागताडितः सैकः ।
सपदपदकृतिविनिघ्नो भवति हि संघातसंकलितम् ॥ ३०९½ ॥

अत्रोद्देशकः

सप्तकृतेः षट्षष्ट्यास्त्रयोदशानां चतुर्दशानां च ।
पञ्चाग्रविंशतीनां किं स्यात् संघातसंकलितम् ॥ ३१०½ ॥

भिन्नगुणसंकलितानयनसूत्रम्—

समदलविषमखरूपं गुणगुणितं वर्गताडितं द्विष्ठम् ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई संख्याएँ ७, ८, ९, १०, १६, ५० और ६१ हैं । आवश्यक नियमों को विचारकर, प्रत्येक दशा में, चार निर्दिष्ट राशियों के योग को बतलाओ ॥३०८½॥

(पूर्व व्यवहृत चार प्रकार की श्रेढियों के) सामूहिक योग को निकालने के लिये नियम—

पदों की संख्या को ३ में जोड़ते हैं, और प्राप्तफल को पदों की संख्या के चतुर्थ भाग द्वारा गुणित करते हैं । तब उसमें एक जोड़ा जाता है । इस परिणामी राशि को जब पदों की संख्या के वर्ग को पदों की संख्या द्वारा बढ़ाने से प्राप्तराशि द्वारा गुणित किया जाता है, तब वह इष्ट सामूहिक योग को उत्पन्न करती है ॥३०९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४९, ६६, १३, १४ और २५ द्वारा निरूपित विभिन्न श्रेढियों के सम्बन्ध में इष्ट सामूहिक योग क्या होगा ? ॥३१०½॥

गुणोत्तर श्रेढि में भिन्नों की श्रेढि के योग को निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या को अलग-अलग स्तम्भ में, क्रमशः, शून्य तथा १ द्वारा चिह्नित (marked) कर लिया जाता है । चिह्नित करने की विधि यह है कि युग्ममान को आधा किया जाता है, और अयुग्म मान में से १ घटाया जाता है । इस विधि को तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि अन्ततोगत्वा शून्य प्राप्त नहीं होता । तब इस शून्य और १ द्वारा बनी हुई प्ररूपक श्रेढि को, क्रमवार, अन्तिम १ से उपयोग में लाते हैं, ताकि यह १ साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित हो । जहाँ १ अभिधानी पद (denoting item) रहता है, वहाँ इसे फिर से साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करते हैं । और जहाँ शून्य अभिधानी पद होता है, वहाँ वर्ग प्राप्त करने के लिये उसे साधारण निष्पत्ति द्वारा

(३०९½) बीजीय रूप से, $\left\{ (न+३)\frac{न}{४}+१ \right\}(न^{२}+न)$ योगों का सामूहिक योग है, अर्थात् नियम २९६, ३०१ और ३०५ से ३०५½ में बतलाई गई श्रेढियों के योगों तथा 'न' तक की प्राकृत संख्याओं के योग (इन सब योगों) का सामूहिक योग है ।

अंशाप्तं व्येकं फलमाद्यघ्नं गुणोनरूपहृतम् ॥ ११२½ ॥

अत्रोद्देशकः

दीनारार्धं पञ्चसु नगरेषु चयस्त्रिभागोऽभूत् । आदिस्त्र्यंशः पादो गुणोत्तरं सप्त मिश्रगुणचितिका ।
का भवति कथय शीघ्रं यदि तेऽस्ति परिश्रमो गणिते ॥ ११३ ॥

अधिकहीनगुणसंकलितानयनसूत्रम्—
गुणचितिरन्यादिहृता विपदाधिकहीनसंगुणा भक्ता ।
व्येकगुणेनान्या फलरहिता हीनेऽधिके तु फलयुक्ता ॥ ११४ ॥

गुणित करते हैं। इस क्रिया का फल दो स्थानों में लिखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त, एक स्थान में रखे हुए, फल के अंश को फल द्वारा ही भाजित करते हैं। तब उसमें से १ घटाया जाता है। परिणामी राशि को श्रेढि के प्रथमपद द्वारा गुणित किया जाता है और तब दूसरे स्थान में रखी हुई राशि द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल तब १ द्वारा ह्रासित साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित किया जाता है, तब श्रेढि का इष्ट योग उत्पन्न होता है ॥ ११२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ नगरों के सम्बन्ध में प्रथम पद ½ दीनार है, और साधारण निष्पत्ति ⅓ है। तब उनमें प्राप्त दीनारों के योग को निकालो। प्रथमपद ⅓ है साधारण निष्पत्ति ¼ है और पदों की संख्या ७ है। यदि तुमने गणना में परिश्रम किया हो, तो यहाँ गुणोत्तर मिश्रीय श्रेढि का योग बतलाओ ॥ ११२½-११३ ॥

गुणोत्तर श्रेढि का योग निकालने के लिये नियम जहाँ किसी दी गई ज्ञात राशि द्वारा किसी निर्दिष्ट रीति से पद या तो बढ़ाये या घटाये जाते हों—

जिसके सम्बन्ध में प्रथमपद, साधारण निष्पत्ति और पदों की संख्या दी गई है ऐसी शुद्ध गुणोत्तर श्रेढि के योग को दो स्थानों में लिखा जाता है। इनमें से एक को दिये गये प्रथमपद द्वारा भाजित किया जाता है। इस परिणामी भजनफल में से पदों की दी गई संख्या को घटाया जाता है। परिणामी शेष को प्रस्तावित श्रेढि के पदों में जोड़ी जानेवाली अथवा उनमें से घटाई जानेवाली ज्ञात राशि द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि को १ द्वारा ह्रासित साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित किया जाता है। दूसरे स्थान में रखे हुए योग को इस अन्तिम परिणामी भजनफल राशि द्वारा ह्रासित किया जाता है जब कि श्रेढि के पदों में से दी गई राशि घटाई जाती हो। पर, यदि वह जोड़ी जाती हो तो दूसरे स्थान में रखे हुए गुणोत्तर श्रेढि के योग को उस परिणामी भजनफल द्वारा बढ़ाया जाता है। प्रत्येक दशा में प्राप्तफल निर्दिष्ट श्रेढि का इष्ट योग होता है ॥ ११४ ॥

(११२½) इस नियम में, मिश्रीय साधारण निष्पत्ति का अंश हमेशा १ से लिया जाता है। अध्याय २ की ९४ वीं गाथा तथा उसकी टिप्पणी द्रष्टव्य है।

(११४) बीजीय रूप से, $\pm \left(\frac{\text{स}}{\text{अ}} - \text{न}\right) \text{म} + (\text{र} - 1) + \text{स}$, यह निम्नलिखित रूपवाली श्रेढि का योग है—

अ, अर ± म, (अर ± म) र ± म { (अर ± म) र ± म } र ± म इत्यादि ।

अत्रोद्देशकः

पञ्च गुणोत्तरमादिर्द्वौ त्रीण्यधिकं पदं हि चत्वारः।
अधिकगुणोत्तरचितिका कथय विचिन्त्याशु गणिततत्त्वज्ञ ॥ ३१५ ॥
आदिस्त्रीणि गुणोत्तरमष्टौ हीनं द्वयं च दश गच्छः।
हीनगुणोत्तरचितिका का भवति विचिन्त्य कथय गणकाशु ॥ ३१६ ॥

आद्युत्तरगच्छधनमिश्राद्युत्तरगच्छानयनसूत्रम्—

मिश्रादुद्धृत्य पदं रूपोनेच्छाधनेन सैकेन। लब्धं प्रचयः शेषः सरूपपदभाजितः प्रभवः ॥३१७॥

अत्रोद्देशकः

आद्युत्तरपदमिश्रं पञ्चाशद्धनमिहैव सदृष्टम्। गणितज्ञाचक्ष्व त्वं प्रभवोत्तरपदधनान्याशु ॥३१८॥

संकलितगतिध्रुवगतिभ्यां समानकालानयनसूत्रम्—

ध्रुवगतिरादिविहीनश्चयदलभक्तः सरूपकः कालः।

उदाहरणार्थ प्रश्न

साधारण निष्पत्ति ५ है, प्रथमपद २ है, विभिन्न पदों में जोड़ी जानेवाली राशि ३ है, और पदों की संख्या ४ है। हे गणित तत्वज्ञ, विचार कर शीघ्र ही (निर्दिष्ट रीति के अनुसार निर्दिष्ट राशि द्वारा बढ़ाए जाते हैं पद जिसके ऐसी) गुणोत्तर श्रेढि के योग को बतलाओ ॥ ३१५ ॥

प्रथमपद ३ है, साधारण निष्पत्ति ८ है, पदों में से घटाई जानेवाली राशि २ है, और पदों की संख्या १० है। ऐसी श्रेढि का, हे गणितज्ञ, योग निकालो ॥ ३१६ ॥

प्रथमपद, प्रचय, पदों की संख्या और किसी समान्तर श्रेढि के योग के मिश्रित योग में से प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या का निरूपण करनेवाली मन से चुनी हुई संख्या को दिये गये मिश्रित योग में से घटाया जाता है। तब १ से आरम्भ होने वाली और एक कम पदों की (मन से चुनी हुई) संख्यावाली प्राकृत संख्याओं का योग १ द्वारा बढ़ाया जाता है। इस परिणामी फल को भाजक मान कर, ऊपर कथित मिश्रित योग से प्राप्त शेष को भाजित करते हैं। यह भजनफल इष्ट प्रचय होता है, और इस भाजन की क्रिया में जो शेष बचता है उसे जब एक अधिक (मन से चुनी हुई) पदों की संख्या द्वारा भाजित करते हैं, तो इष्ट प्रथमपद प्राप्त होता है ॥ ३१७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह देखा जाता है कि किसी समान्तर श्रेढि का योग, प्रथमपद, प्रचय और पदों की संख्या में मिलाये जाने पर, ५० होता है। हे गणक, शीघ्रही प्रथमपद, प्रचय, पदों की संख्या और श्रेढि के योग को बतलाओ ॥ ३१८ ॥

सङ्कलित गति* तथा ध्रुव गति से गमन करने वाले दो व्यक्तियों (को एक साथ रवाना होने पर एक जगह फिर से मिलने) के लिये समय की समान सीमा निकालने के लिये नियम—

अपरिवर्तनशील गति को समान्तर श्रेढि वाली गतियों के प्रथम पद द्वारा ह्रासित करते हैं, और तब प्रचय की अर्द्ध राशि द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी राशि में जब १ जोड़ते हैं, तब मिलने

---

(३१७) अध्याय दो की गाथाएँ ८० – ८२ तथा उनके नोट देखिये।

* समान्तर श्रेढि के पदों के रूप में प्ररूपित उत्तरोत्तर गतियों रूप गति।

अत्रोद्देशकः

चत्वार्यादिरष्टोत्तरमेको गच्छत्यथो द्वितीयो ना ।
द्वौ प्रचयश्च दशादिः समागमे कस्तयोः कालः ॥ ३२३½ ॥

वृध्युत्तरहीनोत्तरयोः समागमकालानयनसूत्रम्—

शेषश्चाद्योरुभयोश्चययुतदलभक्तरूपयुत' ।
युगपत्प्रयाणकृतयोर्मार्गे संयोगकालः स्यात् ॥ ३२४½ ॥

अत्रोद्देशकः ।

पञ्चाद्यष्टोत्तरतः प्रथमो नाथ द्वितीयनर' ।
आदिः पञ्चनव प्रचयो हीनोऽष्ट योगकालः कः ॥ ३२५½ ॥

शीघ्रगतिमन्दगत्योः समागमकालानयनसूत्रम्—

मन्दगतिशीघ्रगत्योरेकाशागमनमत्र गम्यं यत् ।
तद्गत्यन्तरभक्तं लब्धदिनैस्तैः प्रयाति शीघ्रोऽल्पम् ॥३२६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक व्यक्ति ४ से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर प्रचय ८ द्वारा बढ़ने वाली गतियो से यात्रा करता है । दूसरा व्यक्ति १० से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर २ प्रचय द्वारा बढ़ने वाली गतियों से यात्रा करता है । उनके मिलने का समय क्या है ? ॥ ३२३½ ॥

एक ही स्थान से रवाना होने वाले और एक ही दिशा में समान्तर श्रेढि में बढ़नेवाली गतियों से यात्रा करने वाले दो व्यक्तियों के मिलने का समय निकालने के लिए नियम, जब कि प्रथम दशा में प्रचय धनात्मक है, और दूसरी दशा में ऋणात्मक है :—

उक्त दो प्रथम पदों के अतर को उक्त दो दिये गये प्रचयों का प्ररूपण करनेवाली सख्याओं के योग की अर्द्ध राशि द्वारा भाजित करने के पश्चात् प्राप्त फल में १ जोड़ा जाता है । यह उन दो यात्रियों के मिलने का समय होता है ॥३२४½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम व्यक्ति ५ से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर प्रचय ८ द्वारा बढ़नेवाली गतियों से यात्रा करता है । दूसरे व्यक्ति की आरम्भिक गति ४५ है और प्रचय ऋण ८ है । उनके मिलने का समय क्या है ? ॥३२५½॥

भिन्न समयों पर रवाना होनेवाले और क्रमशः तीव्र और मद गति से एक ही दिशा में चलनेवाले दो मनुष्यों के मिलने का समय निकालने के लिए नियम—

मदगति और तीव्रगति वाले दोनों एक ही दिशा में गमनशील हैं । तय की जानेवाली दूरी को यहाँ उन दो गतियों के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है । इस भजनफल द्वारा प्ररूपित दिनों में, तीव्र गतिवाला मदगति वाले की ओर जाता है ॥३२६½॥

(३२४½) इसकी तुलना ३२२½ वीं गाथा में दिये गये नियम से करो ।

अत्रोद्देशकः

नवयोजनानि कश्चित्प्रयाति योजनशतं गतं तेन ।
प्रवियुतो प्रयाति पुनस्त्रयोदशाप्नोति कैर्दिवसैः ॥३२७½॥

विषमबाणैस्तूणीरबाणपरिधिकरणसूत्रम्—

परिणाहस्त्रिभिरधिको दलितो वर्गीकृतस्त्रिभिर्भक्तः ।
सैकः शरास्तु परिधेरानयने तत्र विपरीतम् ॥३२८½॥

अत्रोद्देशकः

नव परिधिस्तु शराणां संख्या न ज्ञायते पुनस्तेषाम् ।
अयुतत्रयोदशबाणास्तत्परिणाहशरांश्च कथय मे गणक ॥३२९½॥

मेढीमध्ये इष्टकानयनसूत्रम्—

तरवर्गो रूपोनस्त्रिभिर्विभक्तस्तरेण संगुणितः ।
तरसंकलिते स्वेष्टप्रताडिते मिश्रितं सारम् ॥३३०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई व्यक्ति ९ योजन प्रतिदिन की गति से यात्रा करता है। उसके द्वारा १०० योजन की दूरी पहिले ही तय की जा चुकी है। एक संदेशवाहक उसके पीछे १३ योजन प्रति दिन की गति से भेजा गया। वह कितने दिनों में उससे जाकर मिलेगा? ॥३२७½॥

तरकस में भरे हुए ज्ञात अयुग्म संख्या के बाणों की सहायता से तरकस के बाणों की परिध्यास-संख्या निकालने के लिये (तथा विलोम क्रमेण) नियम—

परिध्यास बाणों की संख्या को ३ द्वारा बढ़ाकर आधा किया जाता है। इसे वर्गित किया जाता है, और तब ३ द्वारा भाजित किया जाता है। इस परिणामी राशि में १ जोड़ने पर तरकस के बाणों की संख्या प्राप्त होती है। जब परिध्यास बाणों की संख्या निकालनी होती है, तो विपरीत क्रिया करनी पड़ती है ॥३२८½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

बाणों की परिध्यास संख्या ९ है। उनकी कुल संख्या अज्ञात है। वह कौन सी है? तरकस में कुल बाणों की संख्या १३ है। हे गणितज्ञ, परिध्यास बाणों की संख्या बतलाओ ॥३२९½॥

किसी भवन की श्रेणीबद्ध (एक के ऊपर दूसरी) इष्टकाओं (ईंटों) की संख्या निकालने के लिये नियम—

सतहों की संख्या के वर्ग को १ द्वारा ह्रासित कर ३ द्वारा भाजित किया जाता है, और तब सतहों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि में वह गुणनफल जोड़ते हैं, जो सबसे ऊपर की सतह की ईंटों को प्ररूपित करनेवाली (मन से चुनी हुई) संख्या और एक से आरंभ होकर ली गई सतहों की संख्या तक की प्राकृत संख्याओं के योग का गुणन करने से प्राप्त होता है। प्राप्तफल इष्ट उत्तर होता है ॥३३०½॥

(३३०½) बीजीय रूप से $\frac{न^2 - १}{३} \times न + अ \times \frac{न(न+१)}{२}$, वह, मनारे की कुल ईंटों की संख्या है, जहाँ 'न' सतहों की संख्या है और 'अ' सर्वोच्च सतह में ईंटों की मन से चुनी हुई संख्या है।

अत्रोद्देशकः

पञ्चतरैकेनाग्र व्यवघटिता गणितविन्मिश्रे । समचतुरश्रेढी कतीष्टका' स्युर्ममाचक्ष्व ॥३३१½॥
नन्द्यावर्ताकारं चतुस्तरा षष्टिसमघटिता । सर्वेष्टका कति स्युः श्रेढीवद्धं ममाचक्ष्व ॥३३२½॥

छन्दः शास्त्रोक्तषट्प्रत्ययानां सूत्राणि—

समदलविषमखरूप द्विगुण वर्गीकृतं च पदसंख्या ।
संख्या विषमा सैका दलतो गुरुरेव समदलत ॥३३३½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ सतहवाली एक वर्गाकार बनावट तैयार की गई है। सबसे ऊपर की सतह में केवल १ ईंट है। हे प्रश्न की गणना जानने वाले मित्र, इस बनावट में कुल कितनी ईंटें हैं ? ॥३३१½॥ नन्द्यावर्त के आकार की एक बनावट उत्तरोत्तर ईंटों की सतहों से तैयार की गई है। एक पंक्ति में सबसे ऊपर की ईंटो का सख्यात्मक मान ६० है, जिसके द्वारा ४ सतहें सम्मितीय बनाई गई हैं। बतलाओ इसमें कुल कितनी ईंटें लगाई गई हैं ? ॥३३२½॥

छन्द (prosody) शास्त्रोक्त छः प्रत्ययों को जानने के लिये नियम—

दिये गये शब्दांशिक छन्द में शब्दांशों (अक्षरों) अथवा पदों की युग्म और अयुग्म संख्या को अलग स्तम्भ में क्रमशः ० और १ द्वारा चिन्हित किया जाता है। (चिन्हित करने की विधि इसी अध्याय के ३११½ वें सूत्र में देखिये।) वह इस प्रकार है : युग्ममान को आधा किया जाता है, और अयुग्म मान में से १ घटाया जाता है। इस विधि को तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि अंततोगत्वा शून्य प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार प्राप्त अकों की श्रृङ्खला में अंकों को दुगुना कर दिया जाता है, और तब श्रृङ्खला की तली से शिखर तक की संतत गुणन क्रिया में, वे अंक, जिनके ऊपर शून्य आता है, वर्गित कर दिये जाते हैं। इस सतत गुणन का परिणामी गुणनफल छन्द के विभिन्न सम्भव श्लोको की संख्या होता है ॥३३३½॥ इस प्रकार प्राप्त सभी प्रकार के श्लोकों में लघु और गुरु

किसी भी सतह की लम्बाई अथवा चौड़ाई पर ईंटों की सख्या, अग्रिम निम्न (नीची) सतह की ईंटों से १ कम होती है।

(३३२½) गाथा में निर्दिष्ट नन्द्यावर्त आकृति यह है— 卐

(३३३½–३३६½) गुरु और लघु शब्दांशों (syllables) के भिन्न-भिन्न विन्यास के सबाटी कई विभेद उत्पन्न होते हैं, क्योंकि श्लोक (stanza) के एक चौथाई भाग को बनानेवाले पद (line) में पाया जानेवाला प्रत्येक शब्दांश या तो लघु अथवा गुरु हो सकता है। इन विभेदों के विन्यासों के लिये कोई निश्चित क्रम उपयोग में लाया जाता है। यहाँ दिये गये नियम हमें निम्नलिखित को निकालने में सहायक होते हैं, (१) निर्दिष्ट शब्दांशों की संख्या वाले छन्द में सम्भव विभेदों की सख्या, (२) इन प्रकारों में शब्दांशों के विन्यास की विधि, (३) स्वक्रमसूचक स्थिति द्वारा निर्दिष्ट किसी विभेद में शब्दांशों का विन्यास, (४) शब्दांशों के निर्दिष्ट विन्यास की क्रमसूचक स्थिति, (५) निर्दिष्ट सख्या के गुरु और लघु शब्दांशों वाले विभेदों की संख्या, और (६) किसी विशेष छन्द के विभेदों का प्रदर्शन करने के लिये उदग्र (लम्ब रूप) जगह का परिमाण।

स्याल्लघुरेवं क्रमशः प्रस्तारोऽयं विनिर्दिष्टः ।
नष्टाङ्कार्धे लघुरथ सस्मैकदले गुरुः पुनः पुनः स्थाप्यम् ॥३३४½॥

अक्षरों (syllables) के विन्यास को इस प्रकार निकालते हैं—

१ से आरम्भ होनेवाली तथा दिये गये छन्दों में श्लोकों की महत्तम सम्भव संख्या के मान में अंत होनेवाली प्राकृत संख्याएँ लिखी जाती हैं। प्रत्येक अयुग्म संख्या में १ जोड़ा जाता है, और तब उसे आधा किया जाता है। जब यह क्रिया की जाती है, तब गुरु अक्षर (syllable) निश्चित रूप से सूचित होता है। जहाँ संख्या युग्म होती है वह तत्काल ही आधी कर दी जाती है जिससे वह लघु अक्षर (syllable) को सूचित करती है। इस प्रकार दशा के अनुसार (उसी समय सम्बन्धी गुरु और लघु

श्लोक ३३०½ में दिये गये प्रश्नों को निम्नलिखित रूप में हल करने पर वे निम्न स्पष्ट हो जायेंगे—

(१) छन्द में ३ शब्दांश होते हैं; अब हम इस प्रकार आगे बढ़ते हैं—

$$\begin{array}{l} 3-1 \quad 2 \\ 2|2 \\ 2-1 \quad 2 \end{array}$$

दाहिने हाथ की ओर के अङ्कों को २ द्वारा गुणित करने पर हमें $\frac{2}{\overset{\bullet}{2}}$ प्राप्त होता है। अध्याय २ के ९४ वें श्लोक (गाथा) की टिप्पणी में समझाये अनुसार गुणन और वर्ग करने की विधि द्वारा हमें ८ प्राप्त होता है। यही विभेदों की संख्या है।

(२) प्रत्येक विभेद में शब्दांशों के विन्यास की विधि इस प्रकार प्राप्त होती है—

प्रथम प्रकार (विभेद) : १ अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश है, इसलिये प्रथम शब्दांश गुरु है। इस १ में १ जोड़ा, और योग को २ द्वारा भाजित करो। भजनफल अयुग्म है, और दूसरे गुरु शब्दांश को दर्शाता है। फिर से इस भजनफल १ में १ जोड़ते हैं, और योग को २ द्वारा भाजित करते हैं परिणाम फिर से अयुग्म होता है और तीसरे गुरु शब्दांश को दर्शाता है। इस प्रकार, प्रथम प्रकार में तीन गुरु शब्दांश होते हैं, जो इस प्रकार दर्शाये जाते हैं ऽऽऽ

द्वितीय प्रकार (विभेद) : २ युग्म होने के कारण लघु शब्दांश सूचित करता है। जब इस २ को २ द्वारा भाजित करते हैं तो भजनफल १ होता है जो अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश को सूचित करता है। इस १ में १ जोड़ो, और योग को २ द्वारा भाजित करो, भजनफल अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश को सूचित करता है। इस प्रकार, हमें यह प्राप्त होता है ।ऽऽ

इसी प्रकार अन्य विभेदों को प्राप्त करते हैं।

(३) उदाहरण के लिये, पाँचवाँ प्रकार (विभेद) ऊपर की तरह प्राप्त किया जा सकता है।

(४) उदाहरण के लिये ।ऽ। प्रकार (विभेद) की क्रमसूचक स्थिति निकालने के लिये हम यह रीति अपनाते हैं—

।ऽ।
१ २ ४

इन शब्दांशों के नीचे जिनकी साधारण निष्पत्ति २ है और प्रथमपद १ है ऐसी गुणोत्तर श्रेढि लिखो। लघु शब्दांशों के नीचे लिखे अंक ४ और १ जोड़ो और योग को १ द्वारा बढ़ाओ। हमें ६ प्राप्त

रूपादिद्विगुणोत्तरतस्तूद्दिष्टे लाङ्कसंयुति सैका ।
एकाद्येकोत्तरत. पदमूर्ध्वाधर्यत. क्रमोत्क्रमशः ॥३३५½॥
स्थाप्य प्रतिलोमघ्न प्रतिलोमघ्नेन भाजितं सारम् ।
स्याल्लघुगुरुक्रियेयं संख्या द्विगुणैकवर्जिता साध्वा ॥३३६½॥

अक्षर देखते हुए), १ जोड़ने अथवा नहीं जोड़ने के साथ आधी करने की क्रिया, नियमित रूप से, तब तक जारी रखना चाहिये, जब तक कि, प्रत्येक दशा मे छन्द के प्रत्ययो की यथार्थ संख्या प्राप्त नहीं हो जाती ।

यदि स्वाभाविक क्रम मे किसी प्रकार के पद का प्ररूपण करनेवाली सख्या, (जहाँ अक्षरों का विन्यास ज्ञात करना होता है) युग्म हो तो वह आधी कर दी जाती है और लघु अक्षर को सूचित करती है । यदि वह अयुग्म हो, तो उसमें १ जोड़ा जाता है और तब उसे आधा किया जाता है : और यह गुरु अक्षर दर्शाती है । इस प्रकार गुरु और लघु अक्षरों को उनकी क्रमवार स्थितिमें बारबार रखना पडता है जब तक कि पद में अक्षरों की महत्तम सख्या प्राप्त नहीं हो जाती । यह, श्लोक (stanza) के इष्ट प्रकार में, गुरु और लघु अक्षरो के विन्यास को देता है ॥३३४½॥

जहाँ किसी विशेष प्रकार का श्लोक दिया होने पर उसकी निर्दिष्ट स्थिति (छन्द में सम्भव प्रकारों के श्लोकों में से) निकालना हो, वहाँ एक से आरम्भ होनेवाली और २ साधारण निष्पत्ति वाली गुणोत्तर श्रेढि के पदों (terms) को लिख लिया जाता है, (यहाँ श्रेढि के पदों की सख्या, दिये गये छन्दों मे अक्षरो की सख्या के तुल्य होती है) । इन पदो (terms) के ऊपर सवादो गुरु या लघु अक्षर लिख लिये जाते हैं । तब लघु अक्षरों के ठीक नीचे की स्थिति वाले सभी पद (terms) जोड़े जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त योग एक द्वारा बढ़ाया जाता है । यह इष्ट निर्दिष्ट क्रमसंख्या होती है ।

१ से आरम्भ होने वाली (और छन्द में दिये गये अक्षरों की संख्या तक जाने वाली) प्राकृत सख्याएँ, नियमित क्रम और व्युत्क्रम में, दो पक्तियों मे, एक दूसरे के नीचे लिख ली जाती हैं । पक्ति की संख्याएँ १, २, ३ (अथवा एक ही बार में इनसे अधिक) द्वारा दाएँ से बाएँ और गुणित की जाती हैं । इस प्रकार प्राप्त ऊपर की पंक्ति सम्बन्धी गुणनफल नीचे की पंक्ति सम्बन्धी सवादी गुणनफलों द्वारा भाजित किये जाते हैं । तब प्राप्त भजनफल, कविता (verse) में १, २, ३ या इनसे अधिक, छोटे या बड़े अक्षरों वाले (दिये गये छन्द में) श्लोकों (stanzas) के प्रकारों की संख्या की प्ररूपणा करता है । इसे ही निकालना इष्ट होता है ।

दिये गये छन्द (metre) में श्लोको के विभेदों की सम्भव सख्या को दो द्वारा गुणित कर एक द्वारा ह्रासित किया जाता है । यह फल अध्वान का माप देता है ।

यहाँ, छन्द के प्रत्येक दो उत्तरोत्तर विभेदों (प्रकारों) के बीच श्लोक (stanzas) के तुल्य अवराल (interval) का होना माना जाता है ॥३३५½–३३६½॥

होता है । इसलिये ऐसा कहते हैं कि त्रि-शब्दांशिक छन्द में यह छठवाँ प्रकार (विभेद) है ।
(५) मानलो प्रश्न यह है २ छोटे शब्दांशों वाले विभेद कितने हैं ?

प्राकृत सख्याओं को नियमित और विलोम क्रम में एक दूसरे के नीचे इस प्रकार रखो : १ २ ३
　　३ २ १
दाहिने ओर से बाईं ओर को, ऊपर से और नीचे से दो पद (terms) लेकर, हम पूर्ववर्ती गुणनफल

अत्रोद्देशकः

संख्यां प्रस्तारविधिं नष्टोद्दिष्टे लगक्रियाध्वानौ ।
पद्मत्स्यांश्च शीघ्रं त्र्यक्षरवृत्तस्य मे कथय ॥३३७३॥

इति मिश्रकव्यवहारे भेदोत्पत्तसङ्कलितं समाप्तम् ।

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ मिश्रकगणितं नाम पञ्चमव्यवहारः समाप्तः ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

३ अक्षरों (syllables) वाले छन्द के सम्बन्ध में ६ प्रश्नों को बतलाओ—

(१) छन्द के सम्भव श्लोकों (stanzas) की महत्तम संख्या (२) उन श्लोकों में अक्षरों के विन्यास का क्रम, (३) किसी दिये गये प्रकार के श्लोकों में अक्षरों (शब्दांशों) का विन्यास, जहाँ छन्द में सम्भव प्रकारों की क्रमसूचक स्थिति ज्ञात है (४) दिये गये श्लोक की क्रमसूचक स्थिति, (५) किसी दी गई लघु या गुरु अक्षरों (शब्दांशों) की संख्यावाले दिये गये छन्द (metre) में श्लोकों की संख्या और (६) अध्वान नामक राशि ३३७३॥

इस प्रकार मिश्रक व्यवहार में भेदोत्पत्तसंकलित नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणितशास्त्र में मिश्रक नामक पञ्चम व्यवहार समाप्त हुआ ।

--

को उत्तरवर्ती गुणनफल द्वारा भाजित करते हैं । भजनफल ३ इष्ट उत्तर है ।

(६) ऐसा कहा गया है कि छन्द के किसी भी प्रकार के गुरु और लघु शब्दांशों के निरूपण करनेवाले प्रतीक, एक अंगुल उदग्र (vertical) जगह के लेते हैं, और कोई भी दो किस्मों के बीच का अंतराल (जगह) भी एक अंगुल होना चाहिये । इसलिये इस छन्द के ८ प्रकारों (किस्मों) के लिये इष्ट उदग्र (vertical) जगह का परिमाण २×८–१ अथवा १५ अंगुल होता है ।

---

७. क्षेत्रगणित व्यवहारः

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्ठेभ्य कृतादर' । अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं नमस्कुर्वे पुनः पुनः ॥ १ ॥

इत' पर क्षेत्रगणितं नाम षष्ठगणितमुदाहरिष्याम' । तद्यथा—

क्षेत्रं जिनप्रणीतं फलाश्रयाद्व्यावहारिक सूक्ष्ममिति ।
भेदाद् द्विधा विचिन्त्य व्यवहार स्पष्टमेतदभिधास्ये ॥ २ ॥
त्रिभुजचतुर्भजवृत्तक्षेत्राणि स्वस्वभेदभिन्नानि । गणितार्णवपारगतैराचार्यैं सम्यगुक्तानि ॥ ३ ॥
त्रिभुजं त्रिधा विभिन्नं चतुर्भुज पञ्चधाष्टधा वृत्तम् । अवशेषक्षेत्राणि ह्येतेषां भेदभिन्नानि ॥ ४ ॥
त्रिभुजं तु सम द्विसमं विषमं चतुरश्रमपि समं भवति ।
द्विद्विसम द्विसमं स्यात्त्रिसमं विषमं बुधाः प्राहु ॥ ५ ॥
समवृत्तमर्धवृत्तं चायतवृत्तं च कम्बुकावृत्तम् । निम्नोन्नत च वृत्त बहिरन्तश्चक्रवालवृत्तं च ॥ ६ ॥

---

७. क्षेत्र-गणित व्यवहार (क्षेत्रफल के माप सम्बन्धी गणना)

अपने इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये मैं मन, वचन, काय से कृतकृत्य और सर्वोत्कृष्ट सिद्धों को वारवार सादर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

इसके पश्चात् हम क्षेत्र गणित नामक विषय की छ. प्रकार की गणना की व्याख्या करेंगे जो निम्नलिखित है—

जिन भगवान् ने क्षेत्रफल का दो प्रकार का माप प्रणीत किया है, जो फल के स्वभाव पर आधारित है, अर्थात् एक वह जो व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये अनुमानतः लिया जाता है, और दूसरा वह जो सूक्ष्म रूप से शुद्ध होता है । इसे विचार में लेकर मैं इस विषय को स्पष्ट रूप से समझाऊँगा ॥ २ ॥ गणित रूपी समुद्र के पारगामी आचार्यों ने सम्यक् (ठीक) रूप से विविध प्रकार के क्षेत्रफलों के विषय में कहा है । उन क्षेत्रफलों में त्रिभुज, चतुर्भुज और वृत्त (वक्ररेखीय) क्षेत्रों को इन्हीं क्रमवार प्रकारों में वर्णित किया है ॥ ३ ॥ त्रिभुज क्षेत्र को तीन प्रकार में, चतुर्भुज को पाँच प्रकार में, और वृत्त को आठ प्रकार में विभाजित किया गया है । शेष प्रकार के क्षेत्र वास्तव में इन्हीं विभिन्न प्रकारों के क्षेत्रों के विभिन्न भेद हैं ॥ ४ ॥ बुद्धिमान लोग कहते हैं कि त्रिभुज क्षेत्र, समत्रिभुज, द्विसम त्रिभुज (समद्विबाहु त्रिभुज) और विषम त्रिभुज हो सकता है, और चतुर्भुज क्षेत्र भी समचतुरश्र (वर्ग), द्विद्विसमचतुरश्र (आयत), द्विसमचतुरश्र (समलम्ब चतुर्भुज जिसकी दो असमानान्तर भुजायें बराबर नापकी हों), त्रिसमचतुरश्र (समलम्ब चतुर्भुज, जिसकी तीन भुजायें बराबर नापकी हों), विषम चतुरश्र (साधारण चतुर्भुज क्षेत्र) हो सकता है ॥ ५ ॥ वक्रसरल क्षेत्र, समवृत्त (वृत्त), अर्द्धवृत्त, आयतवृत्त (ऊनेन्द्र अथवा अंडाकार क्षेत्र), कम्बुकावृत्त (शखाकार क्षेत्र), निम्नावृत्त (नतोदर वृत्तीय क्षेत्र), उन्नतावृत्त (उन्नतोदर वृत्तीय क्षेत्र), बहिश्चक्रवाल वृत्त (बाहर स्थित कङ्कण), एव अंतश्चक्रवाल वृत्त (भीतर स्थित कङ्कण) हो सकता है ॥ ६ ॥

(५–६) इन गाथाओं में कथित विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ अगले पृष्ठ पर दर्शाई गई हैं—

व्यावहारिकगणितम्

त्रिभुजचतुर्भुजक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

त्रिभुजचतुर्भुजबाहुप्रतिबाहुसमासदलहतं गणितम् ।
नेमेर्भुजयुत्यर्धं व्याससगुणं तत्फलार्धमिह बालेन्दोः ॥ ७ ॥

व्यावहारिक गणित (अनुमानतः मापसम्बन्धी गणना)

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफल (अनुमानतः) निकालने के लिये नियम—

सम्मुख भुजाओं के योगों की अर्द्धराशियों का गुणनफल त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफल का माप होता है । कङ्कण सदृश आकृति के चक्र की किनार (rim) का क्षेत्रफल भीतर और

अत्रोद्देशकः

त्रिभुजक्षेत्रस्याष्टौ बाहुप्रतिबाहुभूमयो दण्डा । तद्व्यावहारिकफलं गणयित्वाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥८॥

बाहर की परिधियों के योग की अर्द्धराशि को कङ्कण की चौड़ाई से गुणित करने पर प्राप्त होता है। इस फल का यहाँ बालचन्द्रमा सदृश आकृति का क्षेत्रफल होता है ॥ ७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

त्रिभुज के सम्बन्ध में, भुजा, सम्मुख भुजा, और आधार का माप ८ दंड है, मुझे शीघ्र ही बतलाओ कि इसका व्यावहारिक क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ८ ॥ दो बराबर भुजाओं वाले त्रिभुज के सम्बन्ध

चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफल और अन्य मापों के दिये गये नियमों पर विचार करने पर ज्ञात होगा कि यहाँ कहे गये चतुर्भुज क्षेत्र चक्रीय (वृत्त में अन्तर्लिखित) हैं। इसलिये समचतुरश्र यहाँ वर्ग है, द्वि-द्विसमचतुरश्र आयत है, और द्विसमचतुरश्र तथा त्रिसमचतुरश्र की ऊपरी भुजाएँ आधार के समानान्तर हैं।

(७) यहाँ त्रिभुज को ऐसा चतुर्भुज माना गया है, जिसके आधार की सम्मुख भुजा इतनी छोटी होती है कि वह उपेक्षणीय होती है। इस दशा में त्रिभुज की बाजू की दो भुजाएँ, सम्मुख भुजाएँ बन जाती हैं, और ऊपरी भुजा मान में नहीं के बराबर ली जाती है। इसलिये नियम में त्रिभुजीय क्षेत्र के सम्बन्ध में भी सम्मुख भुजाओं का उल्लेख किया गया है, त्रिभुज दो भुजाओं के योग की अर्द्धराशि समस्त दशाओं में ऊँचाई से बड़ी होती है, इसलिये इस नियम के अनुसार प्राप्त क्षेत्रफल किसी भी उदाहरण में सूक्ष्म रूप से ठीक नहीं हो सकता।

चतुर्भुज क्षेत्रों के सम्बन्ध में इस नियम के अनुसार प्राप्त क्षेत्रफल वर्ग और आयत के विषय में ठीक हो सकता है, परन्तु अन्य दशाओं में केवल स्थूलरूपेण शुद्ध होता है। जिनका एक ही केन्द्र होता है, ऐसे दो वृत्तों की परिधियों के बीच का क्षेत्र नेमिक्षेत्र कहलाता है। यहाँ दिये गये नियम के अनुसार नेमिक्षेत्र के व्यावहारिक क्षेत्रफल का माप शुद्ध माप होता है। बालेन्दु जैसी आकृति का इस नियमानुसार प्राप्त क्षेत्रफल केवल अनुमानित ही होता है।

हस्तौ द्वौ विष्कम्भः पृष्ठेऽष्टापष्टिरिह च संदृष्टा ।
उदरे तु द्वात्रिंशद्बालेन्दोः किं फलं कथय ॥ १८ ॥

वृत्तक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

त्रिगुणीकृतविष्कम्भः परिधिर्व्यासार्धवर्गराशिरयम् ।
त्रिगुणः फलं समेऽर्धे वृत्तेऽर्धं प्राहुराचार्याः ॥ १९ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश वृत्तस्य परिधिः कः फलं च किम् ।
व्यासोऽष्टादश वृत्तार्धे गणितं किं वदाशु मे ॥ २० ॥

आयतवृत्तक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

व्यासार्धयुतो द्विगुणित आयतवृत्तस्य परिधिरायामः ।
विष्कम्भचतुर्भागः परिवेपहतो भवेत्सारम् ॥ २१ ॥

अत्रोद्देशकः

क्षेत्रस्यायतवृत्तस्य विष्कम्भो द्वादशैव तु । आयामस्तत्र पट्त्रिंशत् परिधिः कः फलं च किम् ॥२२॥

भीतरी वक्र ३२ हस्त है। बतलाओ की परिणामी क्षेत्रफल क्या है? ॥ १८ ॥

वृत्त का व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

व्यास को ३ द्वारा गुणित करने से परिधि प्राप्त होती है, और व्यास (विष्कम्भ) की अर्द्ध राशि के वर्ग को ३ द्वारा गुणित करने से पूर्ण वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। आचार्य कहते हैं कि अर्द्धवृत्त का क्षेत्रफल और परिधि का माप इनसे आधा होता है ॥ १९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वृत्त का व्यास १८ है। इसकी परिधि और परिणामी क्षेत्रफल क्या है? अर्द्धवृत्त का व्यास १८ है। शीघ्र कहो कि उसके क्षेत्रफल और परिधि क्या हैं? ॥ २० ॥

आयत वृत्त (ऊनेन्द्र अथवा अंडाकार) आकृति का क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

बड़े व्यास को छोटे व्यास की अर्द्ध राशि द्वारा बढ़ाकर और तब २ द्वारा गुणित करने पर आयतवृत्त (ऊनेन्द्र) की परिधि का आयाम (लम्बाई) प्राप्त होता है। छोटे व्यास की एक चौथाई राशि को परिधि द्वारा गुणित करने पर क्षेत्रफल का माप प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊनेन्द्र आकृति (elliptical figure) के सम्बन्ध में छोटा व्यास १२ है और बड़ा व्यास ३६ है। परिधि और परिणामी क्षेत्रफल क्या हैं? ॥ २२ ॥

---

(१९) परिधि और क्षेत्रफल का माप यहाँ $\left(\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \pi\right)$ का मान ३ लेकर दिया गया है।

(२१) ऊनेन्द्र (आयतवृत्त या अंडाकृति) की परिधि के लिये दिया गया सूत्र स्पष्ट रूप से कोई भिन्न प्रकार का अनुमान है। ऊनेन्द्र का क्षेत्रफल (π अ. ब) होता है, जहाँ अ और ब इस आयत वृत्त की क्रमशः बड़ी और छोटी अर्द्धाक्ष (semiaxes) हैं। यदि π का मान ३ लें तब π. अ. ब = ३ अ ब होता है। परन्तु इस गाथा में दिये गये सूत्र से क्षेत्रफल का माप $\left\{\left(२ \text{अ} + \frac{२ \text{ब}}{२}\right)२\right\} \frac{१}{४} \; २ \text{ब} = २ \text{अब} + \text{ब}^२$ होता है।

शङ्खाकारवृत्तस्य फलानयनसूत्रम्—
वदनार्धोनो व्यासस्त्रिगुण परिधिस्तु कम्बुकावृत्ते ।
वलयार्धकृतिर्व्यंशो मुखार्धवर्गस्त्रिपादयुत ॥ २३ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश हस्ता मुखविस्तारोऽयमपि च चत्वारः ।
कः परिधिः किं गणितं कथय त्वं कम्बुकावृत्ते ॥ २४ ॥

निम्नोन्नतवृत्तयोः फलानयनसूत्रम्—
परिधेश्च चतुर्भागो विष्कम्भगुणः स विद्धि गणितफलम् ।
चस्वाले कूर्मनिभे क्षेत्रे निम्नोन्नते तस्मात् ॥ २५ ॥

शंख के आकार की वक्ररेखीय आकृति का परिणामी क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

शंख के आकार के वक्ररेखीय (curvilinear) आकृति के सम्बन्ध में, सबसे बड़ी चौड़ाई को मुख की अर्द्ध राशि द्वारा ह्रासित और ३ द्वारा गुणित करने पर परिमिति (परिधि) प्राप्त होती है। इस परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग के एक तिहाई भाग को मुख की अर्द्धराशियों के वर्ग की तीन चौथाई राशि द्वारा ह्रासित करते हैं; इस प्रकार क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

उदाहरणार्थ एक प्रश्न

शंख (कम्बुकावृत्त) की आकृति के सम्बन्ध में चौड़ाई १८ हस्त और मुख ४ हस्त है। उसकी परिमिति तथा क्षेत्रफल निकालो ॥ २४ ॥

नतोदर और उन्नतोदर वर्तुल तलों के क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

समझो कि परिधि की एक चौथाई राशि को व्यास द्वारा गुणित करने पर परिणामी क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस प्रकार चस्माक और कछुवे की पीठ जैसे नतोदर और उन्नतोदर क्षेत्रों का क्षेत्रफल प्राप्त करना पड़ता है ॥ २५ ॥

---

(२३) यदि अ व्यास हो और म मुख का माप हो, तब $३ (अ - \frac{१}{२} म)$ परिधि का माप होता है और $\left\{ \frac{३ (अ - \frac{१}{२} म)}{२} \right\}^{२} \times \frac{१}{३} + \frac{३}{४} \times \left(\frac{म}{२} \right)^{२}$ क्षेत्रफल का माप होता है। दिये हुए वर्णन से आकृति का आकार स्पष्ट नहीं है। परन्तु परिधि और क्षेत्रफल के लिये दिये गये मानों से वह एक ही व्यास पर दो और भिन्न-भिन्न व्यास वाले वृत्तों को खींचकर प्राप्त हुई आकृति का आकार माना जा सकता है जो ९ की गाथा के बाद में १२ वीं आकृति में बतलाया गया है।

(२५) यहाँ निर्दिष्ट क्षेत्रफल गोलीय खंड का ज्ञात होता है। प्रतीक रूप से यह क्षेत्रफल $\left(\frac{प}{४} \times व \right)$ के बराबर है जहाँ प छेदीय वृत्त (किनार) की परिधि है और व व्यास है। परन्तु इस प्रकार के गोलीय खंड के तल का क्षेत्रफल ($२ \times \pi \times र \times ऊ$) होता है, जहाँ $\pi = \frac{परिधि}{व्यास}$, र = छेदीय वृत्त (किनार) की त्रिज्या और ऊ गोलीय खंड की ऊँचाई है।

अत्रोद्देशकः

चत्वालक्षेत्रस्य व्यासस्तु भसंख्यकः परिधिः । षट्पञ्चाशद्दृष्टं गणितं तस्यैव किं भवति ॥२६॥

कूर्मनिभस्योन्नतवृत्तस्योदाहरणम्—

विष्कम्भः पञ्चदश दृष्टः परिधिश्च षट्त्रिंशत् ।
कूर्मनिभे क्षेत्रे किं तस्मिन् व्यवहारजं गणितम् ॥ २७ ॥

अन्तश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य बहिश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य च व्यवहारफलानयनसूत्रम्—

निर्गमसहितो व्यासस्त्रिगुणो निर्गमगुणो बहिर्गणितम् ।
रहिताधिगमव्यासादभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ २८ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश हस्ताः पुनर्बहिर्निर्गतास्त्रयस्तत्र ।
व्यासोऽष्टादश हस्तास्त्वान्त पुनरधिगतास्त्रयः किं स्यात् ॥ २९ ॥

समवृत्तक्षेत्रस्य व्यावहारिकफलं च परिधिप्रमाणं च व्यासप्रमाणं च संयोज्य एतत्संयोग-संख्यामेव स्वीकृत्य तत्संयोगप्रमाण राशेः सकाशात् पृथक् परिधिव्यासफलानां संख्यानयनसूत्रम्—

गणिते द्वादशगुणिते मिश्रप्रक्षेपक चतुःषष्टिः । तस्य च मूलं कृत्वा परिधिः प्रक्षेपकपदोनः ॥ ३० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चत्वाल (होम वेदी का अग्निकुण्ड) क्षेत्र के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में व्यास २७ है और परिधि ५६ है । इस कुण्ड का क्षेत्रफल निकालो ॥ २६ ॥

कछुवे की पीठ की तरह उन्नतोदर वर्तुलतल के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

व्यास १५ है और परिधि ३६ है । कछुवे की पीठ की भाँति इस क्षेत्र का व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालो ॥ २७ ॥

भीतरी कङ्कण और बाहरी कङ्कण के क्षेत्रफल का व्यावहारिक मान निकालने के लिये नियम—

भीतरी व्यास को कङ्कणक्षेत्र की चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर जब ३ द्वारा गुणित किया जाता है, और कङ्कणक्षेत्र की चौड़ाई द्वारा गुणित किया जाता है, तब बाहरी कङ्कण का क्षेत्रफल उत्पन्न होता है । इसी प्रकार भीतरी कङ्कण के क्षेत्रफल को कङ्कण की चौड़ाई द्वारा ह्रासित व्यास द्वारा गुणित करने से प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

व्यास १८ हस्त है, और बाहरी कङ्कण क्षेत्र की चौड़ाई ३ है, व्यास १८ हस्त है, और फिर से भीतरी कङ्कण की चौड़ाई ३ हस्त है । प्रत्येक दशा में कङ्कण का क्षेत्रफल निकालो ॥ २९ ॥

वृत्त आकृति की परिधि, व्यास और क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम, जबकि क्षेत्रफल, परिधि और व्यास का योग दिया गया हो—

१२ द्वारा गुणित उक्त तीन राशियों के मिश्रित योग में प्रक्षेपित ६४ जोड़ते हैं, और इस योग का वर्गमूल निकालते हैं । तदुपरांत इस वर्गमूल राशि को प्रक्षेपित ६४ के वर्गमूल द्वारा ह्रासित करने से परिधि का माप प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

---

(२८) अन्तश्चक्रवाल वृत्तक्षेत्र और बहिश्चक्रवाल वृत्तक्षेत्र के आकार ७ वीं गाथा के नोट में कथित नेमिक्षेत्र के आकार के समान हैं । इसलिये वह नियम जो इन सब आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने के लिये है, व्यवहार में समान साधित होता है ।

(३०) यह नियम निम्नलिखित बीजीय निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

अत्रोद्देशकः

परिधिव्यासफलानां मिश्रं षोडशशतं सहस्रयुतं ।
कः परिधिः किं गणितं व्यासः को वा समाचक्ष्व ॥ २१ ॥

यवाकारमर्दलाकारपणवाकारवज्राकाराणां क्षेत्राणां व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—

यवमुरजपणववज्राकृतिसंस्थानप्रतिष्ठितानां तु ।
मुखमध्यसमासार्धं त्वायामगुणं फलं भवति ॥ २२ ॥

अत्रोद्देशकः

यवसंस्थानक्षेत्रस्यायामोऽशीतिरस्य विष्कम्भः । मध्यश्चत्वारिंशत्फलं भवेत्किं समाचक्ष्व ॥२३॥
आयामोऽशीतिरयं दृष्टा मुखमस्य विंशतिर्मध्ये । चत्वारिंशत्क्षेत्रे मृदङ्गसंस्थानके ब्रूहि ॥ २४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वृत्त की परिधि, व्यास और क्षेत्रफल का योग १११६ है, उस वृत्त की परिधि, गणना किया हुआ क्षेत्रफल और व्यास के मापों को प्राप्त करो ॥ २१ ॥

लम्बाई की ओर से फाड़ने से प्राप्त (लम्बायाम छेद के) (१) यवधान्य (२) मर्दल (३) पणव और (४) वज्र आकार की वस्तुओं के व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

यवधान्य, मुरज, पणव और वज्र के आकार के क्षेत्रफलों के सम्बन्ध में इष्ट माप वह है जो अंत और मध्य माप के योग की अर्द्धराशि को लम्बाई द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मृदंग के आकार के क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालो जो लम्बाई में ८ दंड और अंत (मुख) में २ तथा मध्य में ४० दंड हो ॥ २४ ॥ किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में जिसका आकार यवधान्य समान

---

(२१) मान लो प वृत्त की परिधि है। चूँकि π का मान ३ लिया गया है, इसलिये व्यास $= \frac{प}{३}$ और $३ \frac{प^२}{३६}$ वृत्त का क्षेत्रफल है। यदि परिधि, व्यास और वृत्त के क्षेत्रफल इन तीनों, का मिश्रित योग म हो, तो नियम में दिये गये सूत्र $प = \sqrt{१२ म + ६४} - \sqrt{६४}$ को समीकरण $प + \frac{प}{३} + ३ \frac{प^२}{३६} = म$ द्वारा सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं।

(२२) मुरज का अर्थ मर्दल तथा मृदंग भी होता है। गाथा में कथित विभिन्न आकृतियों के आकार निम्नलिखित हैं—
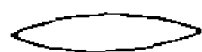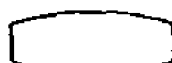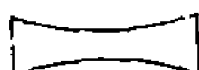
यवाकार क्षेत्र मुरजाकार क्षेत्र पणवाकार क्षेत्र वज्राकार क्षेत्र

समस्त आकृतियों के क्षेत्रफल के माप इस गाथा में दिये गये नियमानुसार अनुमानतः ठीक हैं, क्योंकि नियम इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक आयामवर्ती वक्ररेखा उन सरल रेखाओं के योग के बराबर है जो वक्रों के सिरों (छोरों अथवा अन्तों) को मध्य बिन्दु से मिलाने से प्राप्त होती हैं।

पणवाकारक्षेत्रस्यायामः सप्तसप्ततिर्दण्डाः । मुखयोर्विस्तारोऽष्टौ मध्ये दण्डास्तु चत्वारः ॥ ३५ ॥
वज्राकृतेस्तथास्य क्षेत्रस्य षडग्रनवतिरायामः ।
मध्ये सूचिर्मुखयोस्त्रयोदश त्र्यंशसंयुता दण्डाः ॥ ३६ ॥

उभयनिषेधादिक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

व्यासात्स्वायामगुणाद्विष्कम्भार्धघ्नदीर्घमुत्सृज्य ।
त्वं वद निषेधमुभयोस्तदर्धपरिहीणमेकस्य ॥ ३७ ॥

अत्रोद्देशकः

आयामः षट्त्रिंशद्विस्तारोऽष्टादशैव दण्डास्तु ।
उभयनिषेधे किं फलमेकनिषेधे च किं गणितम् ॥ ३८ ॥

बहुविधवज्राकाराणां क्षेत्राणां व्यावहारिकफलानयनसूत्रम् —

रज्ज्वर्धकृतित्र्यंशो बाहुविभक्तो निरेकबाहुगुणः ।
सर्वेषामश्रवतां फलं हि बिम्बान्तरे चतुर्थांशः ॥ ३९ ॥

है, लम्बाई ७७ दंड, दोनों मुखों में प्रत्येक का माप ८ दंड और मध्य का माप ४ दंड है। इसके क्षेत्रफल का माप बतलाओ ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार, किसी वज्राकार क्षेत्र की लम्बाई ९६ दंड, मध्य में केवल मध्य बिन्दु है, और मुखों में से प्रत्येक का माप १३$\frac{1}{3}$ दंड है। इसका क्षेत्रफल क्या है? ॥ ३६ ॥

उभयनिषेध क्षेत्र के क्षेत्रफल को निकालने के लिये नियम—

लम्बाई और चौड़ाई के गुणनफल में से लम्बाई और आधी चौड़ाई के गुणनफल को घटाने पर उभयनिषेध क्षेत्रफल प्राप्त होता है। जो लम्बाई और आधी चौड़ाई के गुणनफल में से उसी घटाई जाने वाली राशि की अर्द्धराशि घटाई जाने पर प्राप्त होता है, वह एकनिषेध आकृति का क्षेत्रफल होता है ॥ ३७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

लम्बाई ३६ है, चौड़ाई केवल १८ दंड है। उभयनिषेध तथा एक निषेध क्षेत्र के क्षेत्रफलों को अलग अलग निकालो ॥ ३८ ॥

बहुविधवज्र के आकार की रूपरेखा वाले क्षेत्रों के व्यावहारिक क्षेत्रफल के माप को निकालने के लिये नियम—

परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग की एक तिहाई राशि को भुजाओं की संख्या द्वारा भाजित कर, और तब एक कम भुजाओं की संख्या द्वारा गुणित करने पर, भुजाओं से बने हुए समस्त क्षेत्रों के (वज्राकार) क्षेत्रफल का माप प्राप्त होता है। इस फल का चतुर्थांश संस्पर्शी (एक दूसरे को स्पर्श करने वाले) वृत्तों द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल होता है ॥ ३९ ॥

---

(३७) इस गाथा में कथित आकृतियाँ नीचे दी गई हैं—

ये आकृतियाँ किसी चतुर्भुजक्षेत्र को उसके दो विकर्णों द्वारा चार त्रिभुजों में बाँट देने पर प्राप्त हुई दिखाई देती हैं। उभयनिषेध आकृति, इस चतुर्भुज के दो सम्मुख त्रिभुजों को हटाने पर प्राप्त होती है, और एकनिषेध आकृति ऐसे केवल एक त्रिभुज को हटाने पर प्राप्त होती है।
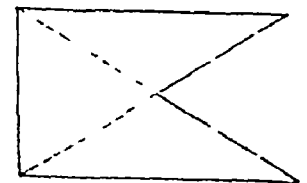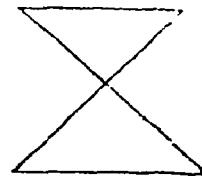
(३९) इस गाथा में कथित नियम कोई भी संख्या की भुजाओं से बनी हुई आकृतियों का

अग्रोद्देशकः

षड्बाहुकस्य बाहोर्विष्कम्भः पञ्च चान्यस्य ।
व्यासश्चमो भुजस्य स्वं षोडशबाहुकस्य वद ॥ ४० ॥
त्रिभुजक्षेत्रस्य मुखं पञ्च प्रतिबाहुरपि च सप्त धरा षट् ।
अन्यस्य षडस्रस्य ह्येकादिषडन्तविस्तारः ॥ ४१ ॥
मण्डलचतुष्टयस्य हि नवविष्कम्भस्य मध्यफलम् ।
षट्पञ्चचतुर्व्यासा वृत्तत्रितयस्य मध्यफलम् ॥ ४२ ॥

धनुराकारक्षेत्रस्य व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—

कृत्येषुगुणसमासं बाणार्धगुणं शरासने गणितम् ।
शरवर्गात्पञ्चगुणाज्ज्यावर्गयुतात्पदं काष्ठम् ॥ ४३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६ भुजाओं वाली आकृति की एक भुजा ५ है और १६ भुजाओं वाली आकृति की एक भुजा ३ है। प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल बताओ ॥ ४० ॥ त्रिभुज के सम्बन्ध में एक भुजा ५ है, सम्मुख (दूसरी) भुजा ७ है और आधार ६ है। दूसरी छः भुजाकार आकृति में भुजाएँ क्रमवार १ से ६ तक हैं। प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल क्या है? ॥ ४१ ॥ जिनमें से प्रत्येक का व्यास ९ है ऐसे चार समान एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल क्या है? तीन एक दूसरे को स्पर्श करने वाले क्रमशः ६, ५ और ४ माप के व्यासवाले वृत्तों के द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल भी बतलाओ ॥ ४२ ॥

धनुष के आकार की रूपरेखा है जिसकी ऐसे आकार वाली आकृति का व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

बाण और ज्या (कृति या डोरी) के मापों को जोड़कर योगफल को बाण के माप की अर्द्ध राशि द्वारा गुणित करने से धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। बाण के माप के वर्ग को ५ द्वारा गुणित कर और तब उसमें कृति (डोरी) के वर्ग को मिलाने से प्राप्त राशि का वर्गमूल धनुष की धनुषाकार काष्ठ की लम्बाई होती है ॥ ४३ ॥

क्षेत्रफल देता है। यदि भुजाओं के मापों के योग की आधी राशि म हो, और भुजाओं की संख्या न हो,
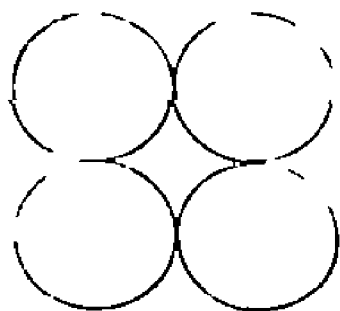
तो क्षेत्रफल $= \frac{म^2}{३} \times \frac{न-१}{न}$ होता है। यह सूत्र त्रिभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, और वृत्त को अनन्त भुजाओं की आकृति मानकर, उनके सम्बन्ध में व्यावहारिक क्षेत्रफल का मान देता है। नियम का दूसरा भाग एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों के द्वारा घिरे क्षेत्र के विषय में है। इस नियमानुसार प्राप्त क्षेत्रफल भी आनुमानिक होता है। पार्श्व में दिया गया चित्र, चार संस्पर्शी वृत्तों द्वारा सीमित क्षेत्र है।

(४३) धनुषाकार क्षेत्र रूपरेखा में, वास्तव में, वृत्त की चाप (खण्ड) पैदा होता है। यहाँ धनुष चाप है धनुष की डोरी (ज्या) चापकर्ण है, और बाण चाप तथा डोरी के बीच की महत्तम लम्ब रूप दूरी होती है। यदि च, ज और ब इन तीनों रेखाओं की लम्बाईयों को निरूपित करते हो, तो गाथा ४३ और ४५ में दिये नियमों के अनुसार यहाँ

अत्रोद्देशकः

ज्या षड्विंशतिरेषा त्रयोदशेषुश्च कार्मुकं दृष्टम् ।
किं गणितमस्य काष्ठं किं वाचक्ष्वाशु मे गणक ॥ ४४ ॥

बाणगुणप्रमाणानयनसूत्रम्—

गुणचापकृतिविशेषात् पञ्चहृतात्पदमिषु समुद्दिष्टः ।
शरवर्गात्पञ्चगुणादूना धनुषः कृतिः पदं जीवा ॥ ४५ ॥

अत्रोद्देशकः

अस्य धनुःक्षेत्रस्य शरोऽत्र न ज्ञायते परस्यापि ।
न ज्ञायते च मौर्वी तद्द्वयमाचक्ष्व गणितज्ञ ॥ ४६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक धनुषाकार क्षेत्र की डोरी २६ है एवं बाण १३ है । हे गणक, शीघ्रही मुझे इसके क्षेत्रफल और झुके हुए काष्ठ का माप बतलाओ ॥ ४४ ॥

धनुषाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में बाणमाप और गुण (डोरी) प्रमाण निकालने के लिये नियम—

डोरी और झुके हुए धनुष के वर्गों के अन्तर को ५ द्वारा भाजित करते हैं । परिणामी भजन फल का वर्गमूल बाण का इष्ट माप होता है । बाण के वर्ग को ५ द्वारा गुणित कर, प्राप्त गुणनफल को धनुष के चाप के वर्ग में से घटाते हैं । इस परिणामी राशि का वर्गमूल डोरी के सवादी माप को देता है ॥ ४५ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

धनुषाकार क्षेत्र के बाण का माप अज्ञात है, और दूसरे ऐसे ही क्षेत्र की डोरी का माप अज्ञात है । हे गणितज्ञ, इन दोनों मापों को निकालो ॥ ४६ ॥

धनुष क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये दिया गया सूत्र, चीन की सम्भवत पुस्तकों को २१३ ईस्वी पूर्व में जलाये जाने की घटना से पूर्व की पुस्तक च्यु—चाग सुआन—सु (नवाध्यायी अंकगणित) में भी इसी रूप में दृष्टिगत होता है ।

$$\text{क्षेत्रफल} = (\text{क} + \text{ल}) \times \frac{\text{ल}}{२}$$

$$\text{धनुष की लम्बाई} = \sqrt{५\text{ल}^२ + \text{क}^२}$$

$$\text{बाण की लम्बाई} = \{\sqrt{\text{च}^२ - \text{क}^२}\}\ १/५$$

यहाँ च = चाप,
क = चापकर्ण,
ल = लम्ब है ।

सूक्ष्म मानों के लिये इस अध्याय की ७३$\frac{१}{२}$ और ७४$\frac{१}{२}$ वीं गाथाओं को देखिये ।

$$\text{पुनः धनुष की डोरी की लम्बाई} = \sqrt{\text{च}^२ - ५\ \text{ल}^२}$$

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (६/९) में तथा त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/२५९८) में यह मान क्रमशः इस प्रकार दिया गया है—

$$\text{जीवा} = \sqrt{(\text{व्यास} - \text{बाण})\ ४\ \text{बाण}}$$

$$\text{व्यास} = \frac{४\ (\text{बाण})^२ + (\text{जीवा})^२}{४\ \text{बाण}}$$

कूलिज के अनुसार पायथेगोरस के साध्य पर आधारित इस सूत्र का उद्गम बाबुल में प्रायः २६०० ईस्वी पूर्व स्फानलिपि ग्रंथों में दृष्टि गत हुआ है । इस सम्बन्ध में तिलोय पण्णत्तिका गणित द्रष्टव्य है ।

सूक्ष्मगणितानयनसूत्रम्—

भुजयुत्यर्धचतुष्काद्भुजहीनाद्घातितात्पदं सूक्ष्मम् ।
अथवा मुखतलयुतिदलमवलम्बगुणं न विषमचतुरश्रे ॥ ५० ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभुजक्षेत्रस्याष्टौ दण्डा भूर्वाहुकौ समस्य त्वम् ।
सूक्ष्मं वद गणितं मे गणितविदवलम्बकाबाधे ॥ ५१ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे त्रयोदश स्युर्भुजद्वये दण्डाः ।
दश भूरस्याबाधे अथावलम्बं च सूक्ष्मफलम् ॥ ५२ ॥
विषमत्रिभुजस्य भुजा त्रयोदश प्रतिभुजा तु पञ्चदश ।
भूमिश्चतुर्दशास्य हि किं गणितं चावलम्बकाबाधे ॥ ५३ ॥

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफलों के सूक्ष्म माप निकालने के लिये नियम—

क्रमशः प्रत्येक भुजा द्वारा ह्रासित भुजाओं के योग की अर्द्धराशि द्वारा निरूपित प्राप्त चार राशियाँ एक साथ गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल का वर्गमूल क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप होता है। अथवा क्षेत्रफल का माप, ऊपरी सिरे से आधार पर गिराये गये लम्ब को आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि से गुणित करने पर प्राप्त होता है। पर यह बाद का नियम विषम चतुर्भुज के सम्बन्ध में नहीं है ॥ ५० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समत्रिभुज की प्रत्येक भुजा ८ दण्ड है। हे गणितज्ञ, उसके क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप तथा शीर्ष से आधार पर गिराये हुए लम्ब और इस तरह प्राप्त आधार के खण्डों के सूक्ष्म मानों को बतलाओ ॥ ५१ ॥ किसी समद्विबाहु त्रिभुज की बराबर भुजाओं में से प्रत्येक १३ दण्ड है और आधार का माप १० है। क्षेत्रफल, लम्ब और आधार की आबाधाओं के सूक्ष्म मापों को निकालो ॥ ५२ ॥ विषम त्रिभुज की एक भुजा १३, सम्मुख भुजा १५ और आधार १४ है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल, लम्ब और आधार की आबाधाओं के सूक्ष्म मान क्या हैं? ॥ ५३ ॥

$$स_1 = \left(स + \frac{अ^2 - ब^2}{स} \right) \times \frac{1}{2},$$

$$स_2 = \left(स - \frac{अ^2 - ब^2}{स} \right) \times \frac{1}{2},$$
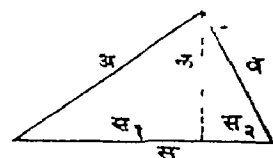
और $ल = \sqrt{अ^2 - स_1^2}$ अथवा $\sqrt{ब^2 - स_2^2}$ होता है। यहाँ अ, ब, स त्रिभुज की भुजाओं का निरूपण करते हैं, $स_1$ $स_2$ ऐसे आधार के दो खंड हैं, जिनकी कुल लम्बाई स है, ल लम्ब है।

(५०) बीजीय रूप से निरूपित करने पर,

किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \sqrt{य (य - अ)(य - ब)(य - स)}$, जहाँ य भुजाओं के योग की आधी राशि है। अ, ब, स भुजाओं के माप हैं।

अथवा, क्षेत्रफल $= \frac{स}{2} \times ल$, जहाँ ल शीर्ष से आधार पर गिराये गये लम्ब का मान है।

वर्गस्त्रयोदशानां त्रिसमचतुर्बाहुके पुनर्भूमिः ।
सप्त चतुश्शतयुक्तं कर्णाबाधावलम्बगणितं किम् ॥ ५८ ॥
विषमचतुरश्रबाहू त्रयोदशाभ्यस्तपञ्चदशविंशतिकौ ।
पञ्चघनो वदनमधस्त्रिशतं कान्यत्र कर्णमुखफलानि ॥ ५९ ॥

इतः परं वृत्तक्षेत्राणां सूक्ष्म फलानयनसूत्राणि । तत्र समवृत्तक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयन सूत्रम्—

वृत्तक्षेत्रव्यासो दशपदगुणितो भवेत्परिक्षेपः ।
व्यासचतुर्भागगुणः परिधिः फलमर्धमर्धे तत् ॥ ६० ॥

अत्रोद्देशकः

समवृत्तव्यासोऽष्टादश विष्कम्भश्च षष्टिरन्यस्य ।
द्वाविंशतिरपरस्य क्षेत्रस्य हि के च परिधिफले ॥ ६१ ॥

---

१३ × २० हैं । ऊपरी भुजा $(५)^3$ है, और नीचे की भुजा ३०० है । विकर्ण से आरम्भ कर सबके मान यहाँ क्या क्या है ? ॥ ५९ ॥

इसके पश्चात् वक्ररेखीय क्षेत्रों के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम दिये जाते हैं । उनमें से समवृत्त के सम्बन्ध में सूक्ष्म मान निकालने के लिये नियम—

वृत्त का व्यास १० के वर्गमूल से गुणित होकर परिधि को उत्पन्न करता है । परिधि को एक चौथाई व्यास से गुणित करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है । अर्द्धवृत्त के सम्बन्ध में यह इसका आधा होता है ॥ ६० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वृत्ताकार क्षेत्र के सम्बन्ध में वृत्त का व्यास १८ है, दूसरे के सम्बन्ध में ६० है, एक और अन्य के सम्बन्ध में २२ है । परिधियाँ और क्षेत्रफल क्या क्या हैं ? ॥ ६१ ॥ अर्द्धवृत्ताकार क्षेत्र

चक्रीय चतुर्भुजों के लिये ठीक हैं । लम्ब अथवा विकर्णों के मानों को पहिले से बिना जाने हुए चतुर्भुज के क्षेत्रफल को निकालने के प्रयत्न के विषय में भास्कराचार्य परिचित थे । यह उनकी लीलावती ग्रन्थ की निम्नलिखित गाथा से प्रकट होता है—

लम्बयो. कर्णयोर्वैकमनिर्दिश्यापरान् कथम् ।
पृच्छत्यनियतत्वेऽपि नियतं चापि तत्फलम् ॥
सपृच्छक. पिशाचो वा वक्ता वा नितरां ततः ।
यो न वेत्ति चतुर्बाहुक्षेत्रस्यानियतां स्थितिम् ॥

(६०) इस गाथानुसार $\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का मान $\sqrt{१०} = ३.१६...$ है । इससे भी सूक्ष्म मान प्राप्त करने के लिये नवीं शताब्दी की धवला टीका ग्रंथों में निम्नलिखित रीति दी है—

$$\frac{१६\ (\text{व्यास}) + १६}{११३} + ३\ (\text{व्यास}) = \text{परिधि}$$ । इस सूत्र के वाम पक्ष के प्रथम पद में से अंश का + १६ हटा देने पर π का मान $\frac{३५५}{११३}$ अथवा ३.१४१५९३ प्राप्त होता है, जिसे चीन में ४७६ ईस्वी पश्चात् त्सु-शुंग-चिह द्वारा उपयोग में लाया गया है । वास्तव में यह सूत्र एक प्रदेश के व्यास के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है । असंख्यात प्रदेशों वाले अंगुल आदि व्यास के माप की इकाइयों के लिये + १६ का मान नगण्य हो जाता है, और चीनी मान प्राप्त हो जाता है । आर्यभट्ट द्वारा दिया गया π का मान $\frac{६२८३२}{२००००} = ३.१४१६$ है । भास्कराचार्य द्वारा भी यह मान ($\frac{३९२७}{१२५०}$) रूप में ह्रासित कर प्ररूपित किया गया है ।

द्वादशविष्कम्भस्य क्षेत्रस्य हि पार्श्ववृत्तस्य ।
षट्त्रिंशद्व्यासस्य च परिधिः किं फलं भवति ॥ ६२ ॥

आयतवृत्तक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

व्यासकृतिषड्गुणिता द्विसंगुणायामकृतियुता (पदं) परिधिः ।
व्यासचतुर्भागगुणश्चायतवृत्तस्य सूक्ष्मफलम् ॥ ६३ ॥

अत्रोद्देशकः

आयतवृत्तायामः षट्त्रिंशद्द्वादशास्य विष्कम्भः ।
कः परिधिः किं गणितं सूक्ष्मं विगणय्य मे कथय ॥ ६४ ॥

शङ्खाकारक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

वदनार्धोनो व्यासो दशपदगुणितो भवेत्परिक्षेपः ।
मुखदलरहितव्यासार्धवर्गमुखचरणकृतियोगः ॥ ६५ ॥
दशपदगुणितः क्षेत्रे कम्बुनिभे सूक्ष्मफलमेतत् ॥ ६५½ ॥

का व्यास १२ है। दूसरे क्षेत्र का व्यास ३६ है। बतलाओ कि परिधि क्या है और क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ६२ ॥

आयतवृत्त (इलिप्स) सम्बन्धी सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

छोटे व्यास का वर्ग ६ द्वारा गुणित किया जाता है और बड़े व्यास की लम्बाई की दुगुनी राशि के वर्ग को उसमें जोड़ा जाता है। इस योग का वर्गमूल परिधि का माप होता है। जब इस परिधि के माप को छोटे व्यास की एक चौथाई राशि द्वारा गुणित करते हैं तब क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इलिप्स के सम्बन्ध में बड़े व्यास की लम्बाई ३६ और छोटे व्यास की १२ है। गणना के पश्चात् बतलाओ कि परिधि क्या है और सूक्ष्म क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ६४ ॥

शंख के आकार की आकृति के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

आकृति की सबसे बड़ी चौड़ाई (छोटे व्यास) को मुख की चौड़ाई की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित कर, और तब १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करने पर परिमाप (perimeter) उत्पन्न होता है। आकृति की महत्तम चौड़ाई की अर्द्धराशि के वर्ग को मुख की आधी चौड़ाई द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि में मुख की चौड़ाई की एक चौथाई राशि के वर्ग को जोड़ते हैं। परिणामी योग को १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करते हैं। प्राप्त राशि शंख आकृति का सूक्ष्म क्षेत्रफल होता है ॥ ६५½ ॥

---

(६३) यदि बड़ा व्यास 'अ' और छोटा व्यास 'ब' हो तो इस नियमानुसार परिधि $\sqrt{६ब^2 + ४अ^2}$ होती है और क्षेत्रफल $= \frac{१}{४}ब \times \sqrt{६ब^2 + ४अ^2}$ होता है। इस गाथा में (हस्तलिपि में) परिधि प्राप्त करने के लिये प्राप्त राशि के वर्गमूल निकालने का कथन छूट गया है। यहाँ दिया गया क्षेत्रफल का सूत्र केवल एक अनुमान है, और वह वृत्त के क्षेत्रफल की समरूपता पर आधारित है, जो $\pi \times ब \times \frac{ब}{४}$ द्वारा प्ररूपित होता है; जहाँ ब व्यास है और (π ब) परिधि है।

(६५½) बीजीय रूप से परिधि $= (अ - \frac{१}{२} म) \times \sqrt{१०}$; तथा

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश दण्डा मुखविस्तारोऽयमपि च चत्वार ।
कः परिधिः किं गणितं सूक्ष्मं तत्कम्बुकावृत्ते ॥ ६६½ ॥

बहिश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य चान्तश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
निर्गमसहितो व्यासो दशपदनिर्गमगुणो बहिर्गणितम् ।
रहितोऽधिगमेनासावभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ ६७½ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश दण्डाः पुनर्बहिर्निर्गतास्त्रयो दण्डाः ।
सूक्ष्मगणितं वद त्वं बहिरन्तश्चक्रवालवृत्तस्य ॥ ६८½ ॥
व्यासोऽष्टादश दण्डा अन्तः पुनरधिगताश्च चत्वारः ।
सूक्ष्मगणितं वद त्वं चाभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ ६९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंख आकृति के वक्ररेखीय क्षेत्र के संबंध में महत्तम चौड़ाई १८ दंड है, और मुख की चौड़ाई ४ दंड है। इसकी परिमिति और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप क्या हैं ? ॥६६½॥

बाहर स्थित और भीतर स्थित (बहिश्चक्रवाल और अंतश्चक्रवाल) कंकण के संबंध में सूक्ष्म मापों को निकालने के लिये नियम—

भीतरी व्यास में चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई जोड़कर, प्राप्त राशि को १० के वर्गमूल तथा चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा गुणित करते हैं। इससे बहिश्चक्रवाल वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। बाहरी व्यास को चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा ह्रासित करते हैं। प्राप्त राशि को १० के वर्गमूल तथा चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा गुणित करने से अंतश्चक्रवाल वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥६७½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चक्रवाल वृत्त का भीतरी अथवा बाहरी व्यास का माप १८ दंड है। चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई ३ दंड है। बहिश्चक्रवाल वृत्त तथा अंतश्चक्रवाल वृत्त का सूक्ष्म माप बतलाओ ॥ ६८½ ॥ बाहरी व्यास १८ दंड है। अंतश्चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई ४ दंड है। अंतश्चक्रवाल वृत्त का सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालो ॥ ६९½ ॥

क्षेत्रफल $= [\{(\text{अ} - \frac{1}{2}\text{म}) \times \frac{1}{2}\}^2 + \left(\frac{\text{म}}{4}\right)^2] \times \sqrt{10}$, जहाँ अ महत्तम चौड़ाई का माप है और म शंख के मुख की चौड़ाई है। गाथा २३ के नोट के अनुसार यहाँ भी इस आकृति को दो असमान अर्द्धवृत्तों द्वारा सरचित किया गया है।

यवाकारक्षेत्रस्य च धनुराकारक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
इषुपादगुणश्च गुणो दशपदगुणितश्च भवति गणितफलम्।
यवसंस्थानक्षेत्रे धनुराकारे च विज्ञेयम्॥ ७०½॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशदण्डायामो मुखद्वयं सूचिरपि च विस्तारः।
चत्वारो मध्येऽपि च यवसंस्थानस्य किं नु फलम्॥ ७१½॥
धनुराकारसंस्थाने ज्या चतुर्विंशतिः पुनः।
चत्वारोऽस्येषुरुद्दिष्टः सूक्ष्मं किं नु फलं भवेत्॥ ७२½॥

धनुराकारक्षेत्रस्य धनुर्ज्याबाणप्रमाणानयनसूत्रम्—
शरवर्गः षड्गुणितो ज्यावर्गसमन्वितस्तु यस्तस्य।
मूलं धनुर्गुणेषुप्रसाधने तत्र विपरीतम्॥ ७३½॥

यवाकार क्षेत्र तथा धनुषाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

धनुष की डोरी को बाण की एक चौथाई राशि द्वारा गुणित करते हैं। प्राप्त फल को १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करने पर धनुषाकार तथा यवाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से ठीक मान प्राप्त होता है॥ ७०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यवधान्य को बीच से काटने से प्राप्त क्षेत्र की आकृति की महत्तम लम्बाई १२ दंड है; दो सिरे सुई-बिन्दु हैं और बीच में चौड़ाई ४ दंड है। क्षेत्रफल क्या है? ॥ ७१½॥ धनुषाकार रूपरेखा वाली आकृति के संबंध में डोरी २४ है तथा बाण ४ है। क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप क्या है? ॥ ७२½॥

धनुष के वक्र काष्ठ तथा बाण को निकालने के लिये नियम, जब कि आकृति धनुषाकार है—

बाण के माप का वर्ग ६ द्वारा गुणित किया जाता है। इसमें डोरी के वर्ग को जोड़ते हैं। परिणामी योग का वर्गमूल धनुष के वक्र काष्ठ का माप होता है। डोरी का माप और बाण का माप निकालने के सम्बन्ध में इसकी विपरीत क्रिया करते हैं॥ ७३½॥

(७०½) धनुष के समान आकृति, वृत्त की अवधा वैसी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यहाँ अवधा का क्षेत्रफल $= ज \times \frac{बा}{४} \times \sqrt{१०}$ है। यह शुद्ध माप नहीं है। अर्द्धवृत्त के क्षेत्रफल को प्राप्त करने के लिये जो नियम है वह इसी की साम्यता पर आधारित है। अर्द्धवृत्त का क्षेत्रफल $= \pi \times २र \times \frac{र}{४}$ है जहाँ र त्रिज्या है। साधारण चापकर्ण के दोनों ओर के धनुष (वृत्त की अवधायें) मिलाने से यवाकार आकृति प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि इस दशा में बाण का माप दुगुना हो जाता है। इस प्रकार यह सूत्र इसके लिये भी प्रयोज्य है।

तिलोयपण्णत्ति में (४/२३७४ भाग १ पृष्ठ ४४२ पर) अवधा का क्षेत्रफल इस रूप से यह है—

$$धनुषक्षेत्र = \sqrt{(\frac{१}{२} बाण \times जीवा)^{२} \times १०}$$

विपरीतक्रियायां सूत्रम्—

गुणचापकृतिविशेषात्तर्कहृतात्पदमिषुः समुद्दिष्टः ।
शरवर्गात् षड्गुणितादूनं[1] धनुषः कृतेः पदं जीवा ॥ ७४½ ॥

अत्रोद्देशकः

धनुराकारक्षेत्रे ज्या द्वादश षट् शरः काष्ठम् ।
न ज्ञायते सखे त्वं का जीवा कः शरस्तस्य ॥ ७५½ ॥

---

१. B और M दोनों में उपर्युक्त पाठ है, पर इष्ट अर्थ "षड्गुणितादूनाया धनुष्कृतेः पदं जीवा" से निकलता है ।

विपरीत क्रिया के सम्बन्ध में नियम—

डोरी के वर्ग और धनुष के वक्रकाष्ठ के वर्ग के अन्तर की $\frac{1}{6}$ भाग राशि का वर्गमूल बाण का माप होता है । धनुषकाष्ठ के वर्ग में से बाण के वर्ग की ६ गुनी राशि को घटाने से प्राप्त शेष का वर्गमूल डोरी का माप होता है ॥ ७४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

धनुषाकार आकृति की डोरी १२ है, और बाण ६ है । झुकी हुई काष्ठ का माप अज्ञात है । हे मित्र, उसे निकालो । इसी आकृति के संबंध में डोरी और उसके बाण के माप को अलग-अलग किस तरह निकालोगे, जब कि आवश्यक राशियाँ ज्ञात हों ? ॥ ७५½ ॥

(७३½–७४½) बीजीय रूप से, चाप $= \sqrt{६ ल^2 + क^2}$, लम्ब $= \sqrt{\frac{च^2 - क^2}{६}}$

और चापकर्ण $= \sqrt{च^2 - ६ ल^2}$

चापकर्ण और बाण के पदों में चाप का मान समीकरण के रूप में देने के लिये अर्द्धवृत्त बनानेवाले चाप को आधार मानना पड़ता है । प्राप्त सूत्र को किसी भी अवधा (वृत्त खंड) के चाप का मान निकालने के उपयोग में लाते हैं । अर्द्धवृत्तीय चाप $= अ \times \sqrt{१०} = \sqrt{१० अ^2} = \sqrt{६ अ^2 + ४ अ^2}$ होता है, जहाँ अ त्रिज्या अथवा अर्द्धव्यास है । इसी सिद्धान्त पर आधारित यह सूत्र किसी भी चाप के लिये है । यहाँ ल = बाण (चाप तथा चापकर्ण के बीच की महत्तम दूरी), और क = जीवा (चापकर्ण) है । जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (२/२४, ६/१०) में धनुषपृष्ठ का सूत्र महावीर के सूत्र समान है,

$$धनुषपृष्ठ = \sqrt{६ (बाण^2) + \{ (व्यास - बाण) \; ४ \; बाण \}} = \sqrt{६ \; (बाण)^2 + (जीवा)^2}$$

त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/१८१) में सूत्र इस रूप में है,

$$धनुष = \sqrt{२ \{ (व्यास + बाण)^2 - (व्यास)^2 \}}$$

बाण निकालने के लिये जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (६/११) तथा त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/१८२) में अवतरित सूत्र द्रष्टव्य हैं ।

अत्रोद्देशकः

पृष्ठं चतुर्दशोदरमष्टौ नेम्याकृतौ भूमौ ।
मध्ये चत्वारि च तद्बालेन्दोः किमिभदन्तस्य ॥ ८१½ ॥

चतुर्मण्डलमध्यस्थितक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

विष्कम्भवर्गराशेर्वृत्तस्यैकस्य सूक्ष्मफलम् ।
त्यक्त्वा समवृत्तानामन्तरजफलं चतुर्णां स्यात् ॥ ८२½ ॥

अत्रोद्देशकः

गोलकचतुष्टयस्य हि परस्परस्पर्शकस्य मध्यस्य ।
सूक्ष्मं गणितं किं स्याच्चतुष्कविष्कम्भयुक्तस्य ॥ ८३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नेमिक्षेत्र के संबंध में बाहरी वक्र १४ है और भीतरी ८ है। बीच में चौड़ाई ४ है। क्षेत्रफल क्या है ? बालेन्दु क्षेत्र तथा इभदन्ताकार क्षेत्र की आकृतियों का क्षेत्रफल भी क्या होगा ? ॥ ८१½ ॥

चार, एक दूसरे को स्पर्श करने वाले, वृत्तों के बीच के क्षेत्र (चतुर्मण्डल मध्यस्थित क्षेत्र) के सूक्ष्म क्षेत्रफल को निकालने के लिये नियम—

किसी भी एक वृत्त के क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप यदि उस वृत्त के व्यास को वर्गित करने से प्राप्त राशि में से घटाया जाय, तो पूर्वोक्त क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ८२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों के बीच का क्षेत्रफल निकालो (जब कि प्रत्येक वृत्त का व्यास ४ है) ॥८३½॥

(कंकण) की चौड़ाई है। इस नेमिक्षेत्र के क्षेत्रफल की तुलना गाथा ७ में दिये गये नोट में वर्णित आनुमानिक मान से की जाय, तो स्पष्ट होगा कि यह सूत्र शुद्ध मान नहीं देता। गाथा ७ में दिया गया मान शुद्ध मान है। यह गलती, एक गलत विचार से उदित हुई मालूम होती है। इस क्षेत्रफल के मान को निकालने के लिये, π का उपयोग $प_1$ और $प_2$ के मानों में अपेक्षाकृत उलटा किया गया है। इसके सम्बन्ध में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (१०/९१) और त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/२५२१–२५२२) में दिये गये सूत्र द्रष्टव्य हैं।

(८२½) निम्नलिखित आकृति से इस नियम का मूल कारण स्पष्ट हो जावेगा।
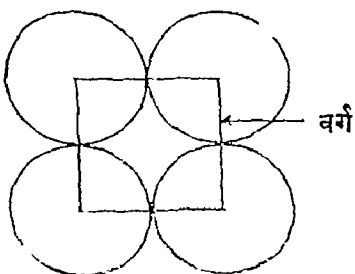
(८४½) इसी प्रकार, यह आकृति भी नियम के कारण को शीघ्र ही स्पष्ट करती है।
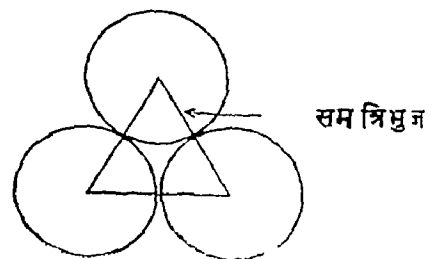
वृत्तक्षेत्रत्रयस्यान्योऽन्यस्पर्शनाज्जातस्यान्तरस्थितक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

विष्कम्भमानसमकत्रिभुजक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलम् ।
वृत्तफलार्धविहीनं फलमन्तरजं त्रयाणां स्यात् ॥ ८४½ ॥

अत्रोद्देशकः

विष्कम्भचतुष्काणां वृत्तक्षेत्रत्रयाणां च । अन्योऽन्यस्पृष्टानामन्तरजक्षेत्रगणितं किम् ॥ ८५½ ॥

षड्भक्षेत्रस्य कर्णावलम्बकसूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

भुजभुजकृतिकृतिवर्गा द्वित्रित्रिगुणा यथाक्रमेणैव ।
श्रुत्यवलम्बककृतिधनकृतयश्च षड्भके क्षेत्रे ॥ ८६½ ॥

अत्रोद्देशकः

भुजषट्कक्षेत्रे द्वौ द्वौ दण्डौ प्रतिभुजं स्याताम् ।
अस्मिन् श्रुत्यवलम्बकसूक्ष्मफलानां च वर्गाः के ॥ ८७½ ॥

तीन समान परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करनेवाले वृत्तीय क्षेत्रों के बीच के क्षेत्र का सूक्ष्म रूप से शुद्ध क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

जिसकी प्रत्येक भुजा व्यास के बराबर होती है ऐसे सम त्रिभुज का सूक्ष्म क्षेत्रफल इन तीन में से किसी भी एक के क्षेत्रफल की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित किया जाता है। शेष ही इष्ट क्षेत्रफल होता है ॥८४½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करने वाले तथा माप में ४ व्यास वाले तीन वृत्तों की परिधियों से घिरे हुए क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल क्या है? ॥८५½॥

नियमित षट्भुज क्षेत्र के संबंध में कर्ण अवलम्ब (लम्ब) और क्षेत्रफल के सूक्ष्म रूप से शुद्ध मानों को निकालने के नियम—

षट्भुज क्षेत्र के संबंध में भुजा के माप को, इस भुजा के वर्ग को तथा इसी भुजा के वर्ग के वर्ग को क्रमशः २, ३ और ३ द्वारा गुणित करने पर उसी क्रम में कर्ण, लम्ब का वर्ग और क्षेत्रफल के माप का वर्ग प्राप्त होता है ॥८६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नियमित षट्भुजाकार आकृति के संबंध में प्रत्येक भुजा २ दण्ड है। इस आकृति के कर्ण का वर्ग, लम्ब का वर्ग और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप का वर्ग बतलाओ ॥८७½॥

(८६½) यह नियम नियमित षट्भुज आकृति के लिये किया गया ज्ञात होता है। यह सूत्र षट्भुज के क्षेत्रफल का मान $\sqrt{३अ^४}$ देता है जहाँ किसी भी एक भुजा की लम्बाई अ है। तथापि शुद्ध मान यह है— $अ^२ \times \frac{३\sqrt{३}}{२}$

वर्गस्वरूपकरणिराशीना युतिसंख्यानयनस्य च तेषां वर्गस्वरूपकरणिराशीना यथाक्रमेण परस्परवियुतितः शेषसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

केनाप्यपवर्तितफलपद्योगवियोगकृतिहताच्छेदात् ।
मूलं पदयुतिवियुती राशीनां विद्धि करणिगणितमिदम् ॥ ८८½ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशषट्त्रिंशच्छतकरणीना वर्गमूलपिण्डं मे । अथ चैतत्पदशेषं कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥८९½॥

इति सूक्ष्मगणितं समाप्तम् ।

कुछ वर्गमूल राशियों के योग के संख्यात्मक मान तथा एक दूसरे में से स्वाभाविक क्रम में कुछ वर्गमूल राशियों को घटाने के पश्चात् शेषफल निकालने के लिये नियम—

समस्त वर्गमूल राशियाँ एक ऐसे साधारण गुणनखंड द्वारा भाजित की जाती हैं, जो ऐसे भजनफलों को उत्पन्न करता है जो वर्गराशियाँ होती हैं। इस प्रकार प्राप्त वर्गराशियों के वर्गमूलों को जोड़ा जाता है, अथवा उन्हें स्वाभाविक क्रम में एक को दूसरे में से घटाया जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग और शेषफल दोनों को वर्गित किया जाता है, और तब अलग अलग (पहिले उपयोग में लाए हुए) भाजक गुणनखंड द्वारा गुणित किया जाता है। इन परिणामी गुणनफलों के वर्गमूल, प्रश्न में दी गई राशियों के योग और अंतिम अंतर को उत्पन्न करते हैं। समस्त प्रकार की वर्गमूल राशियों के गणित के संबंध में यह नियम जानना चाहिये ॥८८½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणिततत्त्वज्ञ सखे, मुझे १६, ३६ और १०० राशियों के वर्गमूलों के योग को बतलाओ, और तब इन्हीं राशियों के वर्गमूलों के संबंध में अंतिम शेष भी बतलाओ। इस प्रकार, क्षेत्र गणित व्यवहार में सूक्ष्म गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥८९½॥

(८८½) यहाँ आया हुआ "करणी" शब्द कोई भी ऐसी राशि दर्शाता है जिसका वर्गमूल निकालना होता है, और जैसी दशा हो उसके अनुसार वह मूल परिमेय (rational, धनराशि जो करणीरहित हो) अथवा अपरिमेय होता है। गाथा ८९½ में दिये गये प्रश्न को निम्न प्रकार से हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

$\sqrt{१६} + \sqrt{३६} + \sqrt{१००}$ और $(\sqrt{१००}) - (\sqrt{३६} - \sqrt{१६})$ के मान निकालना हैं। इन्हें $\sqrt{४}\ (\sqrt{४} + \sqrt{९} + \sqrt{२५})$, $\sqrt{४}\{\sqrt{२५} - (\sqrt{९} - \sqrt{४})\}$ द्वारा प्ररूपित किया जा सकता है।

साधित करने पर,

पूर्व राशि $= \sqrt{४}(२ + ३ + ५)$
$= \sqrt{४}(१०)$
$= \sqrt{४} \times \sqrt{१००}$
$= \sqrt{४००}$
$= २०$;

अपर राशि $= \sqrt{४}\{५ - (३ - २)\}$
" $= \sqrt{४}(४)$
" $= \sqrt{४} \times \sqrt{१६}$
" $= \sqrt{६४}$
" $= ८$

जन्यव्यवहारः

इतः परं क्षेत्रगणिते जन्यव्यवहारमुदाहरिष्यामः । इष्टसंख्याबीजाभ्यामायतचतुरश्रक्षेत्रानयनसूत्रम्—

वर्गविशेषः कोटिः संवर्गो द्विगुणितो भवेद्बाहुः । वर्गसमासः कर्णश्चायतचतुरश्रजन्यस्य ॥ ९०½ ॥

अत्रोद्देशकः

एकद्विके तु बीजे क्षेत्रे जन्ये तु संस्थाप्य । कथय विगणय्य शीघ्रं कोटिभुजाकर्णमानानि ॥९१½॥
बीजे द्वे त्रीणि सखे क्षेत्रे जन्ये तु संस्थाप्य । कथय विगणय्य शीघ्रं कोटिभुजाकर्णमानानि ॥९२½॥

पुनरपि बीजसंज्ञाभ्यामायतचतुरश्रक्षेत्रकल्पनायाः सूत्रम्—

बीजयुतिवियुतिघातः कोटिस्तद्वर्गयोश्च संक्रमणे ।
बाहुश्रुती भवेतां जन्यविधौ करणमेतदपि ॥ ९३½ ॥

जन्य व्यवहार

इसके पश्चात् हम क्षेत्रफल माप सम्बन्धी गणित में जन्य क्रिया का वर्णन करेंगे । मन से चुनी हुई संख्याओं को बीजों के समान लेकर उनकी सहायता से आयत क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

मन से प्राप्त आयत क्षेत्र के संबंध में बीज संख्याओं के वर्गों का अंतर लंब भुजा की संरचना करता है । बीज संख्याओं का गुणनफल २ द्वारा गुणित होकर दूसरी भुजा हो जाता है, और बीज संख्याओं के वर्गों का योग कर्ण बन जाता है ॥९०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

आयतीय आकृति के संबंध में (जिसे मन के अनुसार प्राप्त करना है) १ और २ लिये जानेवाले बीज हैं । गणना के पश्चात् शीघ्र लम्ब भुजा दूसरी भुजा और कर्ण के मापों को शीघ्र बतलाओ ॥९१½॥

हे मित्र २ और ३ को मन के अनुसार किसी आकृति को प्राप्त करने के संबंध में बीज लेकर गणना के पश्चात् लम्ब भुजा अन्य भुजा और कर्ण शीघ्र बतलाओ ॥९२½॥

पुनः बीजों द्वारा निरूपित संख्याओं की सहायता से आयत चतुरस्र क्षेत्र की रचना करने के लिये दूसरा नियम—

बीजों के योग और अंतर का गुणनफल लम्बमाप होता है । बीजों के योग और अंतर के वर्गों का संक्रमण अन्य भुजा तथा कर्ण को उत्पन्न करता है । यह क्रिया जन्य क्षेत्र को (दिये हुए बीजों से) प्राप्त करने के उपयोग में भी लाई जाती है ॥९३½॥

(९०½) "जन्य" का शाब्दिक अर्थ 'में से उत्पन्न' अथवा "में से व्युत्पादित" होता है इसलिये यह ऐसे त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के विषय में है जो दिये गये न्यास (दत्त दशाओं) से प्राप्त किये जा सकते हैं । त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों की भुजाओं की लम्बाई निकालने को जन्य क्रिया कहते हैं ।

बीज, जैसा कि यहाँ वर्णित है साधारणतः धनात्मक पूर्णांक होता है । त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिये दो ऐसे बीज अपरिवर्तनीय ढंग से दिये गये होते हैं ।

इस नियम का मूल आधार निम्नलिखित बीजीय निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

यदि 'अ' और 'ब' बीज संख्यायें हों तो $अ^2 - ब^2$ लम्ब का माप होता है । २ अ ब दूसरी भुजा का माप होता है और $अ^2 + ब^2$ कर्ण का माप होता है जब कि चतुर्भुज क्षेत्र आयत हो । इससे स्पष्ट है कि बीज ऐसी संख्याएँ होती हैं जिनके गुणनफल और वर्गों की सहायता से प्राप्त भुजाओं के मापों द्वारा समकोण त्रिभुज की रचना की जा सकती है ।

(९३½) यहाँ दिये गये नियम में $अ^2 - ब^2$, २ अ ब और $अ^2 + ब^2$ को (अ + ब) (अ − ब),

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकबीजाभ्यां जन्यक्षेत्रं सखे समुत्थाप्य ।
कोटिभुजाश्रुतिसंख्याः कथय विचिन्त्याशु गणिततत्त्वज्ञ ॥ ९४½ ॥

इष्टजन्यक्षेत्राद्बीजसज्ञसंख्ययोरानयनसूत्रम्—
कोटिच्छेदावाप्त्योः संक्रमणे बाहुदलफलच्छेदौ ।
बीजे श्रुतीष्टकृत्योर्योगवियोगार्धमूले ते ॥ ९५½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य च षोडश कोटिश्च बीजे के ।
त्रिंशदथवान्यबाहुर्बीजे के ते श्रुतिश्चतुस्त्रिंशत् ॥ ९६½ ॥

कोटिसंख्यां ज्ञात्वा भुजाकर्णसंख्यानयनस्य च भुजसंख्यां ज्ञात्वा कोटिकर्णसंख्यानयनस्य च कर्णसंख्या ज्ञात्वा कोटिभुजासंख्यानयनस्य च सूत्रम्—
कोटिकृतेश्छेदाप्त्योः संक्रमणे श्रुतिभुजौ भुजकृतेर्वा ।
अथवा श्रुतीष्टकृत्योरन्तरपदमिष्टमपि च कोटिभुजे ॥ ९७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणिततत्त्वज्ञ मित्र, ३ और ५ को बीज लेकर उनकी सहायता से जन्य क्षेत्र की रचना करो, और तब सोच विचार कर शीघ्र ही लम्ब भुजा, अन्य भुजा और कर्ण के मापों को बतलाओ ॥९४½॥

बीजो से प्राप्त करने योग्य किसी दी गई आकृति सबंधी बीज सख्याओं को निकालने के लिये नियम—

लम्ब भुजा के मन से चुने हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल मे संक्रमण क्रिया करने से इष्ट बीज उत्पन्न होते है । अन्य भुजा की अर्द्धराशि के मन से चुने हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल भी इष्ट बीज होते है । वे बीज क्रमश कर्ण और मन से चुनी हुई सख्या की वर्णित राशि के योग की अर्द्धराशि के वर्गमूल तथा अंतर की अर्द्धराशि के वर्गमूल होते हैं ॥९५½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी रैखिकीय आकृति के सबध में लम्ब १६ है, बतलाओ बीज क्या क्या हैं ? अथवा यदि अन्य भुजा ३० हो, तो बीजो को बतलाओ । यदि कर्ण ३४ हो, तो वे बीज कौनकौन हैं ? ॥९६½॥

अन्य भुजा और कर्ण के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम, जब कि लम्ब भुजा ज्ञात हो, लम्ब भुजा और कर्ण को निकालने के लिये नियम, जब कि अन्य भुजा ज्ञात हो, और लम्ब भुजा तथा अन्य भुजा को निकालने के लिये नियम, जब कि कर्ण का सख्यात्मक माप ज्ञात हो—

लम्ब भुजा के वर्ग के मन से चुना हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल के बीच सक्रमण क्रिया करने पर क्रमश कर्ण और अन्य भुजा उत्पन्न होती हैं । इसी प्रकार अन्य भुजा के वर्ग के सबंध में वही सक्रमण क्रिया करने से लम्ब भुजा और कर्ण के माप उत्पन्न होते हैं । अथवा, कर्ण के वर्ग और किसी मन से चुनी हुई सख्या के वर्ग के अंतर की वर्गमूल राशि तथा वह चुनी हुई संख्या क्रमश लम्ब भुजा और अन्य भुजा होती हैं ॥९७½॥

$\frac{(अ+ब)^2-(अ-ब)^2}{२}$ और $\frac{(अ+ब)^2+(अ-ब)^2}{२}$ के द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

(९५½) इस नियम में कथित क्रियाएं गाथा ९०½ में कथित क्रियाओं से विपरीत हैं ।

(९७½) यह नियम निम्नलिखित सर्वसमिकाओं (identities) पर निर्भर है—

अत्रोद्देशकः

कस्यापि कोटिरेकादश बाहुः षष्टिरन्यस्य। श्रुतिरेकषष्टिरन्यास्यानुक्तान्यत्र मे कथय ॥ ९८½ ॥

द्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्यानयनप्रकारस्य सूत्रम्—

जन्यक्षेत्रभुजार्धहारफलजप्रागन्यकोट्योर्युति-

र्भूरास्यं वियुतिर्भुजा श्रुतिरथास्यास्या हि कोटिर्भवेत्।

आबाधा महती श्रुतिः श्रुतिरमूल्यघ्नं फलं स्यात्फलं

बाहुः स्यादवलम्बको द्विसमकक्षेत्रे चतुर्बाहुके ॥ ९९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी आकृति के संबंध में, लम्ब भुजा ११ है, दूसरी आकृति के संबंध में अन्य (दूसरी) भुजा ६० है और तीसरी आकृति के संबंध में कर्ण ६१ है। इन तीन दशाओं में अज्ञात भुजाओं के मापों को बतलाओ ॥ ९८½ ॥

दिये गये बीजों की सहायता से दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने की रीति के संबंध में नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से प्राप्त प्रथम आयत की लम्ब भुजा को दूसरी आकृति (जिसे मूलतः प्राप्त आकृति के आधार की अर्द्धराशि के मान से चुने हुए दो गुणनखंडों को बीज मानकर प्राप्त किया गया है ऐसी आकृति) की लम्ब भुजा में जोड़नेपर दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र का आधार उत्पन्न होता है। इन दो लम्बों के मापों के अन्तर से चतुर्भुज की ऊपरी भुजा उत्पन्न होती है। पूर्व कथित दो प्राप्त आकृतियों का छोटा कर्ण दो बराबर भुजाओं में से किसी एक का माप होता है। उन दो प्राप्त आकृतियों के सम्बन्ध में दो लम्ब भुजाओं में से छोटी भुजा आधार के उस छोटे खंड का माप होती है जो ऊपरी भुजा के अंतों में से किसी एक से आधार पर लम्ब गिराने से बनता है। उन दो प्राप्त आकृतियों के सम्बन्ध में बड़ा कर्ण इष्ट कर्ण का माप होता है। अब दो प्राप्त आकृतियों में से बड़े का क्षेत्रफल इष्ट आकृति का क्षेत्रफल होता है और उन दो आकृतियों में से किसी एक का आधार ऊपरी भुजा के अंतों में से किसी एक से आधार पर गिराये गये लम्ब का माप होता है ॥ ९९½ ॥

$$१)\ \left\{ \frac{(अ^२ - ब^२)}{(अ - ब)^२} \pm (अ - ब)^२ \right\} \div २ = अ^२ + ब^२ \text{ अथवा } २\,अ\,ब \text{ (यथानुसार)}$$

$$२)\ \left\{ \frac{(२\,अ\,ब)^२}{२\,ब^२} \pm २\,ब^२ \right\} \div २ = अ^२ + ब^२ \text{ अथवा } अ^२ - ब^२$$

$$३)\ \sqrt{(अ^२ + ब^२)^२ - (२\,अ\,ब)^२} = अ^२ - ब^२$$

९९½) इस गाथा में कथित नियम के अनुसार साधन किया जाने वाला प्रश्न यह है कि दो दिये गये बीजों की सहायता से दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की रचना किस प्रकार करना चाहिये। भुजाओं कर्णों और ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये लम्बों तथा लम्ब के कारण उत्पन्न हुए खंडों की लम्बाइयाँ दिये गये बीजों की सहायता से संरचित दो आयतों में से निकालना पड़ती है। इनमें से प्रथम आयत क्षेत्र ऊपर गाथा ९०½ में दिये गये नियमानुसार बनाया जाता है। प्रथम आयत के आधार की लम्बाई की अर्द्धराशि के मान से चुने हुए दो गुणनखंडों में से उसी नियम के अनुसार दूसरा आयत क्षेत्र बनता है। (इन दो गुणनखंडों को बीज मान लेते हैं।) इसलिये अब हम प्रथम आयत को दूसरे आयत क्षेत्र से अलग पहिचानने के लिये, प्राथमिक आकृति कहेंगे।

अत्रोद्देशकः

चतुरश्रक्षेत्रस्य द्विसमस्य च पञ्चषट्कबीजस्य ।
मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानि वद ॥ १००½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो बराबर भुजाओं वाले तथा ५ और ६ को बीज मानकर उनकी सहायता से रचित चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध से ऊपरी भुजा, आधार, दो बराबर भुजाओं में से एक, ऊपरी भुजा से आधार पर गिराया गया लंब, कर्ण और आधार का छोटा खंड तथा क्षेत्रफल के मापों को बतलाओ ॥१००½॥

इस नियम का मूल आधार गाथा १००½ में दिये गये प्रश्न के हल को चित्रित करने वाली निम्नलिखित आकृतियों से स्पष्ट हो जावेगा। यहाँ दिये गये बीज ५ और ६ हैं। प्रथम आयत अथवा बीजों से प्राप्त प्राथमिक आकृति अ ब स द है—

[नोट—ये आकृतियाँ पैमाने रहित हैं।] इस आकृति में आधार की लम्बाई की अर्द्धराशि ३० है। इसके दो गुणनखंड ३ और १० चुने जा सकते हैं। इन संख्याओं की सहायता से (उन्हें बीज मानकर) संरचित आयत क्षेत्र इ फ ग ह है—
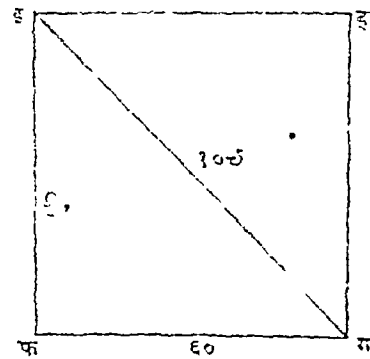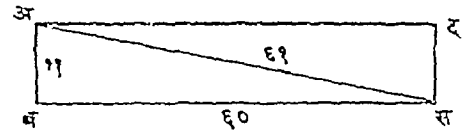
दो बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की रचना के लिये अपने कर्ण द्वारा विभाजित प्रथम आयत के दो त्रिभुजों में से एक को दूसरे आयत की ओर, और वैसे ही दूसरे त्रिभुज के बराबर क्षेत्र को दूसरे आयत की दूसरी ओर से हटा देते हैं जैसा की आकृति ह अ′ फ स′ से स्पष्ट है।

यह क्रिया आकृतियों की तुलना से स्पष्ट हो जावेगी। इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र ह अ′ फ स′ का क्षेत्रफल = दूसरे आयत इ फ ग ह का क्षेत्रफल।

आधार अ′ फ = प्रथम आयत की लम्ब भुजा धन दूसरे आयत की लम्ब भुजा = अ ब + इ फ

ऊपरी भुजा ह स′ = दूसरे आयत की लम्ब भुजा ऋण प्रथम आयत की लम्ब भुजा = ग ह – स द

कर्ण ह फ = दूसरे आयत का कर्ण
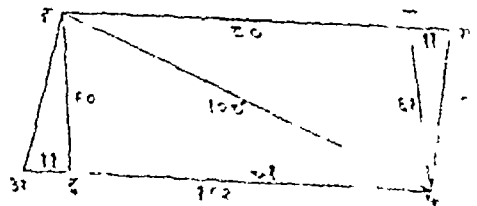
त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रस्य भुजभूमुखावलम्बकर्णाबाधाधनानयनसूत्रम्—
भुजपदहतबीजान्तरहृतवन्यघनाप्तभागहाराभ्याम् ।
सद्भुजकोटिभ्यां च द्विसम इव त्रिसमचतुरश्रे ॥ १०१½ ॥

अत्रोद्देशकः

चतुरश्रक्षेत्रस्य त्रिसमस्यास्य द्विकत्रिकस्वबीजस्य ।
मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानि वद ॥ १०२½ ॥

दिये गये बीजों की सहायता से तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार, कोई भी एक बराबर भुजा, ऊपर से आधार पर गिराया गया लम्ब कर्ण आधार का छोटा खंड और क्षेत्रफल के मापों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये बीजों का अंतर, उन बीजों की सहायता से तत्काल प्राप्त चतुर्भुज क्षेत्र के आधार के वर्गमूल द्वारा गुणित किया जाता है। इस तत्काल प्राप्त प्राथमिक चतुर्भुज के क्षेत्रफल को इस प्रकार प्राप्त गुणनफल द्वारा भाजित किया जाता है। इस क्रिया में बीजों की तरह उपयोग में लाये गये परिणामी भजनफल और भाजक की सहायता से प्राप्त दूसरा चतुर्भुज क्षेत्र रचा जाता है। तीसरा चतुर्भुज, तत्काल प्राप्त चतुर्भुज के आधार और लम्ब भुजा को बीज मानकर बनाया जाता है। तब इन दो अंत में प्राप्त चतुर्भुजों की सहायता से तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की उपर्युक्त भुजाओं आदि के मापों को दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज में प्रयुक्त विधि अनुसार प्राप्त किया जाता है॥१ १½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन बराबर भुजाओं वाले, तथा २ और ३ बीज हैं जिसके ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार तीन बराबर भुजाओं में से एक, ऊपरी भुजा से आधार पर गिराया गया लम्ब कर्ण, आधार का छोटा खंड और क्षेत्रफलों के मापों को बतलाओ॥१ १½॥

आधार का छोटा खंड अर्थात् अ' इ = प्रथम आयत की लंब भुजा
= अ ब

लम्ब इ ई = दूसरे अथवा प्रथम आयत का आधार = ब स = फ ग

चार की प्रत्येक बराबर भुजा अ इ अथवा फ स' = प्रथम आयत का कर्ण अर्थात्, अ स

(१ १½) यदि दिये गये बीज अ और ब द्वारा निरूपित हों, तो तत्काल प्राप्त चतुर्भुज की भुजाओं के माप ये होंगे: लम्ब भुजा = $अ^2 - ब^2$, आधार = २ अ ब कर्ण = $अ^2 + ब^2$ क्षेत्रफल = २ अ ब $\times (अ^2 - ब^2)$।

जैसा कि दो बराबर भुजाओं वाले क्षेत्रफल की रचना के संबंध में गाथा ९९½ का नियम उपयोग कहा गया है उसी तरह यह नियम दो प्राप्त आयतों की सहायता से तीन बराबर भुजाओं वाले इस चतुर्भुज क्षेत्र की रचना में सहायक होता है। इन आयतों में प्रथम संबंधी बीज ये हैं—

$\frac{२ अ ब \times (अ^2 - ब^2)}{\sqrt{२ अ ब} \times (अ ब \mp)}$ अर्थात् $\sqrt{२ अ ब} \times (अ + ब)$ और $\sqrt{२ अ ब} \times (अ - ब)$

गाथा ९ ½ का नियम यहाँ प्रयुक्त करने पर हमें प्रथम आयत के लिये निम्नलिखित मान प्राप्त होते हैं—

लम्ब भुजा = $(अ + ब)^2 \times २ अ ब - (अ - ब)^2 \times २ अ ब$ अथवा $८ अ^2 ब$

विषमचतुरश्रक्षेत्रस्य मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानयनसूत्रम्—
ज्येष्ठाल्पान्योन्यहीनश्रुतिहतभुजकोटी भुजे भूमुखे ते
कोट्योरन्योन्यदोर्भ्यां हतयुतिरथ दोर्घातयुक्कोटिघातः।
कर्णावल्पश्रुतिघ्नावनधिकभुजकोट्याहतौ लम्बकौ ता-
बावाधे कोटिदोर्घ्नावथ वनिविवरके कर्णघातार्धमर्थे. ॥ १०३½ ॥

विषम चतुर्भुज के संबंध में, ऊपरी भुजा, आधार, बाजू की भुजाओं, ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये लम्बों, कर्णों, आधार के खंडों और क्षेत्रफल के मापों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये बीजों के दो कुलकों (sets) संबंधी दो आयताकार प्राप्त चतुर्भुज क्षेत्रों के बड़े और छोटे कर्णों से आधार और (उन्हीं प्राप्त छोटी और बड़ी आकृतियों की) लम्ब भुजा क्रमशः गुणित की जाती हैं। परिणामी गुणनफल इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की दो असमान भुजाओं, आधार और ऊपरी भुजा के मापों को देते हैं। प्राप्त आकृतियों की लम्ब भुजाएँ एक दूसरे के आधार द्वारा गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त दो गुणनफल जोड़े जाते हैं। तब उन आकृतियों संबंधी दो लम्ब भुजाओं के गुणनफल में उन्हीं आकृतियों के आधारों का गुणनफल जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त दो योग, जब उन दो आकृतियों के दो कर्णों में से छोटे कर्ण के द्वारा गुणित किये जाते हैं, तब वे इष्ट कर्णों को उत्पन्न करते हैं। वे ही योग, जब छोटी आकृति के आधार और लम्ब भुजा द्वारा क्रमशः गुणित किये जाते हैं, तब वे कर्णों के अंतों से गिराये गये लम्बों के मापों को उत्पन्न करते हैं, और जब वे उसी आकृति की लम्ब भुजा और आधार द्वारा गुणित होते हैं, तब वे लम्बों द्वारा उत्पन्न आधार के खंडों के मापों को उत्पन्न करते हैं। इन खंडों के माप जब आधार के माप में से घटाये जाते हैं, तब अन्य खंडों के मान प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त प्राप्त हुई आकृति के कर्णों के गुणनफल की अर्द्धराशि, इष्ट आकृति के क्षेत्रफल का माप होती है ॥१०३½॥

आधार $= २ \times \sqrt{२अ ब} \times (अ + ब) \times \sqrt{२अ ब} \times (अ - ब)$ अथवा $४अ ब (अ^२ - ब^२)$
कर्ण $= (अ + ब)^२ \times २अ ब + (अ - ब)^२ \times २अ ब$ अथवा $४ अ ब (अ^२ + ब^२)$
दूसरे आयत क्षेत्र के संबंध में बीज $अ^२ - ब^२$ और $२अ ब$ हैं।
इस आयत के संबंध में
लम्ब भुजा $= ४अ^२ ब^२ - (अ^२ - ब^२)^२$, आधार $= ४अ ब (अ^२ - ब^२)$,
कर्ण $= ४अ^२ ब^२ + (अ^२ - ब^२)$ अथवा $(अ^२ + ब^२)^२$

इन दो आयतों की सहायता से, इष्ट क्षेत्रफल की भुजाओं, कर्णों, आदि के मापों को गाथा ९९½ के नियमानुसार प्राप्त किया जाता है। वे ये हैं—
आधार = लम्ब भुजाओं का योग $= ८अ^२ ब^२ + ४अ^२ ब^२ - (अ^२ - ब^२)^२$
ऊपरी भुजा = बड़ी लम्ब भुजा – छोटी लम्ब भुजा $= ८अ^२ ब^२ - \{४अ^२ ब^२ - (अ^२ - ब^२)^२\}$
$= (अ^२ + ब^२)^२$
बाजू की कोई एक भुजा = छोटा कर्ण $= (अ^२ + ब^२)^२$
आधार का छोटा खंड = छोटी लम्ब भुजा $= ४अ^२ ब^२ - (अ^२ - ब^२)^२$
लम्ब = दो कर्णों में से बड़ा कर्ण $= ४अ ब (अ^२ + ब^२)$
क्षेत्रफल = बड़े आयत का क्षेत्रफल $= ८अ^२ ब^२ \times ४अ ब (अ^२ - ब^२)$
यहाँ देखा सकता है कि ऊपरी भुजा का माप बाजू की भुजाओं में से कोई भी एक के बराबर है। इस प्रकार, तीन भुजाओं वाला इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र प्राप्त होता है।

(१०३½) निम्नलिखित बीजीय निरूपण से नियम स्पष्ट हो जावेगा—

एकस्माज्जन्यायतचतुरश्रादि्द्वसमत्रिभुजानयनसूत्रम्—
कर्णो भुजद्वयं स्याद्बाहुर्द्विगुणीकृतो भवेद्भूमिः ।
कोटिरवलम्बकोऽयं द्विसमत्रिभुजे धनं गणितम् ॥ १०८½ ॥

केवल एक जन्य आयत क्षेत्र की सहायता से समद्विबाहु त्रिभुज प्राप्त करने के लिये नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से संरचित आयत के दो कर्ण इष्ट समद्विबाहु त्रिभुज की दो बराबर भुजाएँ हो जाते हैं । आयत का आधार दो द्वारा गुणित होकर इष्ट त्रिभुज का आधार बन जाता है । आयत की लंब भुजा, इष्ट त्रिभुज का शीर्ष से आधार पर गिराया हुआ लम्ब होती है । उस आयत का क्षेत्रफल, इष्ट त्रिभुज का क्षेत्रफल होता है ॥१०८½॥

ऊपरी भुजा $= (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})(\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})(\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})$

कर्ण $= \{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\, २\,\text{अ}\,\text{ब}\} \times (\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})$; और

$\{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})(\text{स}^{२} - \text{द}^{२}) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times (\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})$

लम्ब $= \{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\, २\,\text{अ}\,\text{ब}\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब}$, और

$\{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})(\text{स}^{२} - \text{द}^{२}) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})$

खंड अवधाएँ $= \{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^{२} - \text{द}^{२}) \times २\,\text{अ}\,\text{ब}\}(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})$, और

$\{(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})(\text{स}^{२} - \text{द}^{२}) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब}$

(१०५½–१०७½) गाथा १०३½ के नोट में कथित मान यहाँ भी भुजाओं आदि के लिये दिये गये हैं, केवल वे कुछ भिन्न विधि से कहे गये हैं । १०३½ वीं गाथा के ही प्रतीक लेकर—

कर्ण $= [\{२\,\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\}\, २\,\text{अ}\,\text{ब} + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})\}(\text{स}^{२} - \text{द}^{२})] \times (\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})$,

और $[\{२\,\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\}(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}) + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})\}(\text{स}^{२} - \text{द}^{२})] \times (\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})$ ।

$$\text{लम्ब} = \frac{[\{२\,\text{स}\text{द} - (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब} + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})\}(\text{स}^{२} - \text{द}^{२})](\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})}{(\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})} \times (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}),$$

$$\text{और } \frac{[\{२\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^{२} - \text{द}^{२})\}(\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२}) + \{२\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^{२} - \text{ब}^{२})\}(\text{स}^{२} - \text{द}^{२})](\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})}{(\text{अ}^{२} + \text{ब}^{२})} \times २\,\text{अ}\,\text{ब} ।$$

उपर्युक्त चार बीजवाक्य १०३½ वीं गाथा में दिये गये कर्णों और लंबों के मापों के रूप में प्रकाशित किये जा सकते हैं । यहाँ आधार के खंडों के माप, खंड की संवादी भुजा और लंब के वर्गों के अन्तर के वर्गमूल को निकालने पर प्राप्त किये जा सकते हैं ।

(१०८½) इस नियम का मूल आधार इस प्रकार निकाला जा सकता है:—मानलो अ ब स द एक आयत है और अ द, इ तक बढ़ाई जाती है ताकि अ द = द इ । इ स को जोड़ो । अ स इ एक समद्विबाहु त्रिभुज है जिसकी भुजाएँ आयत के कर्णों के माप के बराबर हैं, और जिसका क्षेत्रफल आयत के क्षेत्रफल के बराबर है ।

पार्श्व आकृति से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा ।
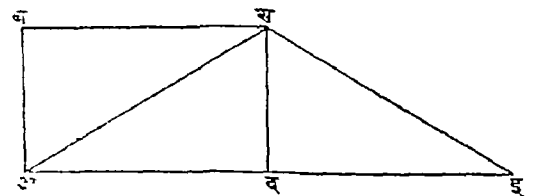
अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकबीजोत्थद्विसमत्रिभुजस्य गणक बाहू द्वौ ।
भूमिमवलम्बकं च प्रगणय्याचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ १०९½ ॥

विषमत्रिभुजक्षेत्रस्य कल्पनाप्रकारस्य सूत्रम्—
जन्यभुजार्धं छित्त्वा केनापिच्छेदलब्धफलजं जाभ्याम् ।
कोटियुतिर्भूः कर्णौ भुजौ भुजा लम्बका विषमे ॥ ११०½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिबीजकस्य क्षेत्रभुजार्धेन चान्यमुत्थाप्य ।
तस्माद्विषमत्रिभुजे भुजभूम्यवलम्बकं ब्रूहि ॥ १११½ ॥

इति जन्यव्यवहारः समाप्तः ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ, ३ और ५ को बीज लेकर उनकी सहायता से प्राप्त समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में दो बराबर भुजाओं, आधार और लंब के मापों को शीघ्र ही गणना कर बताओ ॥१०९½॥

विषम त्रिभुज की रचना करने की विधि के लिये नियम—

दिये गये बीजों से प्राप्त आयत के आधार की आधी राशि को मन से चुने हुए गुणनखंड द्वारा भाजित करते हैं। भाजक और भजनफल को इस क्रिया में बीज मानकर दूसरा आयत प्राप्त करते हैं। इन दो आयतों की लम्ब भुजाओं का योग इष्ट विषम त्रिभुज के आधार का माप होता है। इन दो आयतों के दो कर्ण इष्ट त्रिभुज की दो भुजाओं के माप होते हैं। इन दो आयतों में से किसी एक का आधार इष्ट त्रिभुज के लंब का माप होता है ॥११०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२ और ३ को बीज लेकर उनसे प्राप्त आयत तथा उस आयत के आधे आधार से प्राप्त दूसरा आयत संरचित कर मुझे इस क्रिया की सहायता से विषम त्रिभुज की भुजाओं, आधार और लंब के मापों को बतलाओ ॥१११½॥

इस प्रकार क्षेत्र गणित व्यवहार में जन्य व्यवहार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

(११०½) पार्श्वलिखित रचना से नियम स्पष्ट हो जावेगा—

मानलो अ ब स द और इ फ ग ह दो ऐसे जन्य आयत हैं कि आधार अ द = आधार इ ह। ब अ को क तक इतना बढ़ाओ कि अ क = इ फ हो। यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि द क = ह ग और त्रिभुज ब द क का आधार ब क = ब अ + इ फ, जो आयतों की लंब भुजायें कहलाती हैं। त्रिभुज की भुजायें उन्हीं आयतों के कर्णों के बराबर होती हैं।
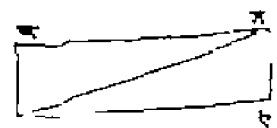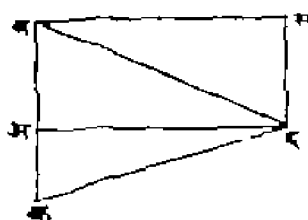
पैशाचिकव्यवहारः

इतः परं पैशाचिकव्यवहारमुदाहरिष्यामः ।

समचतुरश्रक्षेत्रे वा आयतचतुरश्रक्षेत्रे वा क्षेत्रफले रज्जुसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले बाहुसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले कर्णसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले रज्ज्वर्धसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले बाहोस्तृतीयांशसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले कर्णसंख्यायाश्चतुर्थांशसंख्यया समे सति, द्विगुणितकर्णस्य त्रिगुणितबाहोश्च चतुर्गुणितकोटेश्च रज्जोस्संयोगसंख्यां द्विगुणीकृत्य तद्विगुणितसंख्यया क्षेत्रफले समाने सति, इत्येवमादीनां क्षेत्राणां कोटिभुजाकर्णक्षेत्रफलरज्जुषु इष्टराशिद्वयसाम्यस्य चेष्टराशिद्वयस्यान्योन्यमिष्टगुणकारगुणितफलवत्क्षेत्रस्य भुजाकोटिसंख्यानयनस्य सूत्रम्—

स्वगुणेष्टेन विभक्ताः स्वेष्टानां गणक गणितगुणितेन ।
गुणिता भुजा भुजाः स्युः समचतुरश्रादिजन्यानाम् ॥ ११२½ ॥

पैशाचिक व्यवहार (अत्यन्त जटिल प्रश्न)

इसके पश्चात् हम पैशाचिक विषय का प्रतिपादन करेंगे ।

समायत (वर्ग) अथवा आयत के संबंध में आधार और लंब भुजा का संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम जब कि लंब भुजा, आधार, कर्ण, क्षेत्रफल और परिमिति में कोई भी दो मन से समान चुन लिये जाते हैं, अथवा जब क्षेत्र का क्षेत्रफल वह गुणनफल होता है जो मन से चुने हुए गुणकों (multipliers) द्वारा क्रमश उपर्युक्त वस्तुओं में से कोई भी दो राशियों को गुणित करने पर प्राप्त होता है : अर्थात्—समायत (वर्ग) अथवा आयत के सम्बन्ध में आधार और लंब भुजा का संख्यात्मक मान निकालने के लिए नियम जब कि क्षेत्र का क्षेत्रफल मान में परिमिति के तुल्य होता है, अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) आधार के बराबर होता है, अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) परिमिति के मापकी अर्द्धराशियों के तुल्य होता है, अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) आधार की एक तिहाई राशि के बराबर होता है, अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) उस द्विगुणित राशि के तुल्य होता है जो उस राशि को दुगुनी करने पर प्राप्त होती है, और जिसे कर्ण की दुगुनी राशि, आधार की तिगुनी राशि, लंब भुजा की चौगुनी राशि और परिमिति इत्यादि को जोड़ने पर परिणाम स्वरूप प्राप्त करते हैं—

किसी मन से चुनी हुई इष्ट आकृति के आधार के माप को (परिणामी) चुने हुए ऐसे गुणनखंड द्वारा भाजित करने पर, जिसका गुणा आधार से करने पर मन से चुनी हुई इष्ट आकृति का क्षेत्रफल उत्पन्न होता है), अथवा ऐसी मन से चुनी हुई इष्ट आकृति के आधार को ऐसे गुणनखंड से गुणित करने पर, (कि जिसके दिये गये क्षेत्र के क्षेत्रफल में गुणा करने पर इष्ट प्रकार का परिणाम प्राप्त होता है) इष्ट समभुज चतुरश्र तथा अन्य प्रकार की प्राप्त आकृतियों के आधारों के माप उत्पन्न होते हैं ॥११२½॥

(११२½) गाथा ११३½ में दिया गया प्रथम प्रश्न हल करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा—

यहाँ प्रश्न में वर्ग की भुजा का माप तथा क्षेत्रफल का मान निकालना है, जब कि क्षेत्रफल परिमिति के बराबर है । मानलो ५ है भुजा जिसकी ऐसा वर्ग लिया जावे तो परिमिति २० होगी और क्षेत्रफल २५ होगा । वह गुणनखंड जिससे परिमिति के माप २० को गुणित करने पर क्षेत्रफल २५ हो जावे ५/४ है । यदि ५, वर्ग की मन से चुनी हुई भुजा ५/४ द्वारा भाजित की जावे, तो इष्ट चतुर्भुज की भुजा उत्पन्न होती है ।

अत्रोद्देशकः

रज्जुर्गणितेन समा समचतुरश्रस्य का नु भुजसंख्या ।
अपरस्य बाहुसदृशं गणितं तस्यापि मे कथय ॥ ११३½ ॥
कर्णो गणितेन समः समचतुरश्रस्य को भवेद्बाहुः ।
रज्जुर्द्विगुणोऽन्यस्य क्षेत्रस्य धनाच्च मे कथय ॥ ११४½ ॥
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्य च रज्जुतुल्यमिह गणितम् ।
गणितं कर्णेन समं क्षेत्रस्यान्यस्य को बाहुः ॥ ११५½ ॥
कस्यापि क्षेत्रस्य त्रिगुणो बाहुर्धनाच्च को बाहुः ।
कर्णश्चतुर्गुणोऽन्यः समचतुरश्रस्य गणितफलात् ॥ ११६½ ॥
आयतचतुरश्रस्य श्रवणं द्विगुणं त्रिसंगुणो बाहुः ।
कोटिश्चतुर्गुणा ते रज्जुयुतैर्द्विगुणितं गणितम् ॥ ११७½ ॥
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्य च रज्जुरत्र रूपसमः ।
कोटिः को बाहुर्वा पृथ्वीं विगणय्य मे कथय ॥ ११८½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वर्ग क्षेत्र के संबंध में परिमिति का संख्यात्मक माप क्षेत्रफल के माप के बराबर है। आधार का संख्यात्मक माप क्या है? उसी प्रकार की दूसरी आकृति के संबंध में क्षेत्रफल का माप आधार के माप के बराबर है। उस आकृति के संबंध में आधार का माप बतलाओ ॥ ११३½ ॥ किसी समायत (वर्ग) क्षेत्र के संबंध में कर्ण का माप क्षेत्रफल के माप के बराबर है। आधार का माप क्या हो सकता है? दूसरी उसी प्रकार की आकृति के संबंध में परिमिति का माप क्षेत्रफल के माप का दुगुना है। आधार का माप बतलाओ ॥ ११४½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में यहाँ क्षेत्रफल का माप परिमिति के माप के तुल्य है और दूसरे उसी प्रकार के क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का संख्यात्मक माप कर्ण के माप के बराबर है। प्रत्येक दशा में आधार का माप क्या है? ॥ ११५½ ॥ किसी वर्ग क्षेत्र के संबंध में आधार का संख्यात्मक मान क्षेत्रफल के माप से तिगुना है। दूसरे वर्ग क्षेत्र के संबंध में कर्ण का संख्यात्मक माप क्षेत्रफल के माप से चौगुना है। इनमें से प्रत्येक दशा में आधार का माप क्या है? ॥ ११६½ ॥ किसी आयत क्षेत्र में कर्ण के माप से दुगुनी राशि, आधार से तिगुनी राशि तथा लंब भुजा से चौगुनी राशि लेकर उन में परिमिति का माप जोड़ा जाता है। इस प्राप्त योगफल से दुगुनी राशि क्षेत्रफल का संख्यात्मक माप होती है। आधार का माप बतलाओ ॥ ११७½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में परिमिति का संख्यात्मक मान १ है। गणना के पश्चात्

यह नियम दूसरी रीति भी निर्दिष्ट करता है जो व्यावहारिक रूप में उसी प्रकार है। वह गुणनखंड जिससे क्षेत्रफल २५ को गुणित किया जाता है, ताकि वह परिमिति के माप १ के बराबर हो जावे [illegible] है। यदि मन से चुनी हुई आकृति की भुजा (जो माप में ५ मान ली गई है) को इस गुणनखंड से गुणित किया जावे तो इष्ट आकृति की भुजा का माप प्राप्त होता है।

कर्णो द्विगुणो बाहुस्त्रिगुणःकोटिश्चतुर्गुणा मिश्रः ।
रज्ज्वा सह तत्क्षेत्रस्यायतचतुरश्रकस्य रूपसमः ॥ ११९½ ॥
पुनरपि जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य बीजसङ्ख्यानयने करणसूत्रम्—
कोट्यूनकर्णदलतत्कर्णान्तरमुभययोश्च पदे ।
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्येयं क्रिया जन्ये ॥ १२०½ ॥

अत्रोद्देशकः

आयतचतुरश्रस्य च कोटिः पञ्चाशदधिकपञ्च भुजा ।
साष्टाचत्वारिंशत्रिसप्ततिः श्रुतिरथात्र के बीजे ॥ १२१½ ॥
इष्टकल्पितसङ्ख्याप्रमाणवत्कर्णसहितक्षेत्रानयनसूत्रम्—
यद्यत्क्षेत्रं जातं बीजैः संस्थाप्य तस्य कर्णेन ।
इष्टं कर्णं विभजेल्लाभगुणाः कोटिदोः कर्णाः ॥ १२२½ ॥

मुझे शीघ्र बतलाओ कि लम्ब भुजा और आधार के माप क्या-क्या हैं ? ॥ ११८½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में कर्ण से दुगुनी राशि, आधार से तिगुनी राशि और लंब से चौगुनी राशि, इन सबको जोड़ कर, जब परिमिति के माप में जोड़ते हैं, तो योग फल १ हो जाता है । आधार का माप बतलाओ ॥११९½॥

प्राप्त आयत क्षेत्र के संबंध में बीजों का निरूपण करने वाली संख्या को निकालने की रीति संबंधी नियम—

आयत क्षेत्र के संबंध में, उत्पन्न करने वाले बीजों को निकालने की क्रिया में, (१) लंब द्वारा ह्रासित कर्ण की अर्द्ध राशि तथा (२) इस राशि और कर्ण का अंतर, इनके द्वारा निरूपित दो राशियों का वर्गमूल निकालना पड़ता है ॥ १२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

आयत क्षेत्र के संबंध में लंब भुजा ५५ है, आधार ४८ है, और कर्ण ७३ है । यहाँ बीज क्या-क्या हैं ? ॥१२१½ ॥

इष्ट कल्पित संख्यात्मक प्रमाण के कर्ण वाले आयत क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से प्राप्त विभिन्न आकृतियों में से प्रत्येक लिख लिये (स्थापित किये) जाते हैं, और उसके कर्ण के माप के द्वारा दिया गया कर्ण का माप भाजित किया जाता है । इस आकृति की लंब भुजा, आधार और कर्ण, यहाँ प्राप्त हुए भजनफल द्वारा गुणित होकर, इष्ट क्षेत्र की लंब भुजा, आधार और कर्ण को उत्पन्न करते हैं ।

(१२०½) इस अध्याय की ९५½ वीं गाथा का नियम आयत क्षेत्र के कर्ण अथवा लंब अथवा आधार से बीजों को प्राप्त करने की रीति प्रदर्शित करता है । परन्तु इस गाथा का नियम आयत के लंब और कर्ण से बीजों को प्राप्त करने के विषय में रीति निरूपित करता है । वर्णित की हुई रीति निम्नलिखित सर्वसमिका (identity) पर आधारित है—

$$\sqrt{\frac{अ^2+ब^2-(अ^2-ब^2)}{2}} = ब, \text{ और } \sqrt{अ^2+ब^2-\frac{अ^2+ब^2-(अ^2-ब^2)}{2}} = अ,$$

जहाँ $अ^2+ब^2$ कर्ण का माप है, $अ^2-ब^2$ आयत की लम्ब-भुजा का माप है । अ और ब इष्ट बीज हैं ।

(१२२½) यह नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि समकोण त्रिभुज की भुजाएँ कर्ण की अनुपाती होती हैं । यहाँ कर्ण के उसी मापके लिये भुजाओं के मानों के विभिन्न कुलक (sets) हो सकते हैं ।

अत्रोद्देशकः

एकद्विकद्वित्रिकचतुष्कसप्तैकसाष्टकानां च ।
गणक चतुर्णां शीघ्रं बीजैरुत्थाप्य कोटिभुजाः ॥ १२३½ ॥
आयतचतुरश्राणां क्षेत्राणां विषमबाहुकानां च ।
कर्णोऽत्र पञ्चषष्टिः क्षेत्राण्याचक्ष्व कानि स्युः ॥ १२४½ ॥

इष्टजन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य रज्जुसंख्यां च कर्णसंख्यां च ज्ञात्वा तज्जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—

कर्णकृतौ द्विगुणायां रज्ज्वर्धकृतिं विशोध्य तन्मूलम् ।
रज्ज्वर्धे संक्रमणीकृते भुजा कोटिरपि भवति ॥ १२५½ ॥

अत्रोद्देशकः

परिधिः स चतुस्त्रिंशत् कर्णोऽत्र त्रयोदशो दृष्टः ।
जन्यक्षेत्रस्यास्य प्रगणय्याचक्ष्व कोटिभुजौ ॥ १२६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ ! दिये गये बीजों की सहायता से, ऐसे चार आयत क्षेत्रों की लंब भुजाएँ और आधारों के मानों को शीघ्र बतलाओ, जिनके क्रमशः १ और २, २ और ३, ४ और ७, तथा १ और ८ बीज हैं तथा जिनके आधार भिन्न भिन्न हैं। (इस प्रश्न में) यहाँ कर्ण का मान ६५ है। इस दशा में, इन क्षेत्रों के मापों को बतलाओ ॥ १२३½–१२४½ ॥

जिसकी परिमिति का माप और कर्ण का माप ज्ञात है ऐसे जन्य आयत क्षेत्र के आधार और उसकी लम्ब भुजा के संख्यात्मक मापों को निकालने के लिये नियम—

कर्ण के वर्ग को २ से गुणित करो। परिणामी गुणनफल में से परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग को घटाओ। तब परिणामी अंतर के वर्गमूल को प्राप्त करो। यदि यह वर्गमूल आधी परिमिति के साथ संक्रमण क्रिया में लाया जाय, तो इष्ट आधार और लम्ब भुजा भी उत्पन्न होती है ॥ १२५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस दशा में परिमिति ३४ है और कर्ण १३ है। इस जन्य आकृति के संबंध में लंब भुजा और आधार के मापों को गणना के बाद बतलाओ ॥ १२६½ ॥

(१२५½) यदि किसी आयत की भुजाएँ अ और ब द्वारा प्ररूपित हों तो $\sqrt{अ^2+ब^2}$ कर्ण का माप होता है और परिमिति का माप २अ+२ब होता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि

$$\left\{ \frac{२अ+२ब}{२} + \sqrt{२\left(\sqrt{अ^2+ब^2}\right)^2 - \left(\frac{२अ+२ब}{२}\right)^2} \right\} \div २ = अ \text{ और}$$

$$\left\{ \frac{२अ+२ब}{२} - \sqrt{२\left(\sqrt{अ^2+ब^2}\right)^2 - \left(\frac{२अ+२ब}{२}\right)^2} \right\} \div २ = ब ।$$

ये दो सूत्र गणित रीति का यहाँ बीजीय रूप से निरूपण करते हैं।

क्षेत्रफलं कर्णसंख्या च ज्ञात्वा भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—
कर्णकृतौ द्विगुणीकृतगणितं हीनाधिकं कृत्वा ।
मूलं कोटिभुजौ हि ज्येष्ठे ह्रस्वेन संक्रमणे ॥ १२७½ ॥

अत्रोद्देशकः

आयतचतुरश्रस्य हि गणित षष्टिस्त्रयोदशास्यापि ।
कर्णस्तु कोटिभुजयो. परिमाणे श्रोतुमिच्छामि ॥ १२८½ ॥

क्षेत्रफलसख्यां रज्जुसंख्यां च ज्ञात्वा आयतचतुरश्रस्य भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—
रज्ज्वर्धवर्गराशेर्गणितं चतुराहत विशोध्याथ ।
मूलेन हि रज्ज्वर्धे संक्रमणे सति भुजाकोटी ॥ १२९½ ॥

अत्रोद्देशकः

सप्ततिशतं तु रज्जु' पञ्चशतोत्तरसहस्रमिष्टधनम् ।
जन्यायतचतुरश्रे कोटिभुजौ मे समाचक्ष्व ॥ १३०½ ॥

जब आकृति का क्षेत्रफल और कर्ण का मान ज्ञात हो, तब आधार और लम्ब भुजा के सख्यात्मक मानों को प्राप्त करने के लिये नियम—

क्षेत्रफल के माप से दुगनी राशि कर्ण के वर्ग में से घटाई जाती है । वह कर्ण के वर्ग में जोड़ी भी जाती है । इस प्रकार प्राप्त अतर और योग के वर्गमूलो से इष्ट लंब भुजा और आधार के माप प्राप्त हो सकते हैं, जब कि वर्गमूलों में से बड़ी राशि के साथ छोटी (वर्गमूल राशि) के संबंध में सक्रमण क्रिया की जावे ॥१२७½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी आयतक्षेत्र के संबध में क्षेत्रफलका माप ६० है, और कर्ण का माप १३ है । मैं तुमसे लम्ब भुजा और आधार के मानों को सुनने का इच्छुक हूँ ॥१२८½॥

जब आयत क्षेत्र के क्षेत्रफल का तथा परिमिति का सख्यात्मक माप दिया गया हो, तब उस आकृति के सबध में आधार और लम्ब भुजा के संख्यात्मक मानों को प्राप्त करने के लिये नियम—

परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग में से ४ द्वारा गुणित क्षेत्रफल का माप घटाया जाता है । तब इस परिणामी अतर के वर्गमूल के साथ परिमिति की अर्द्धराशि के सम्बन्ध में सक्रमण क्रिया करने से इष्ट आधार और लंबभुजा सचमुच में प्राप्त होती है । ॥१२९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी प्राप्त आयत क्षेत्र में परिमिति का माप १७० है । दिये गये क्षेत्र का माप १५०० है । लंब भुजा और आधार के मानों को बतलाओ ॥१३०½॥

(१२७½) गाथा १२५½ वीं के नोट के समान ही प्रतीक लेकर यहाँ दिया गया नियम निम्नलिखित रूप में निरूपित होता है —दशानुसार

$$\left\{ \sqrt{(\sqrt{अ^2+ब^2})^2 + २ अ ब} \pm \sqrt{(\sqrt{अ^2+ब^2})^2 - २ अ ब} \right\} \div २ = अ \text{ अथवा } ब$$

(१२९½) यहाँ भी, $\left\{ \frac{२ अ + २ ब}{२} \pm \sqrt{\left(\frac{२ अ + २ ब}{२}\right)^2 - ४ अ ब} \right\} \div २ = अ \text{ अथवा } ब$, जैसी दशा हो ।

आयतचतुरश्रक्षेत्रद्वये रज्जुसंख्यायां सदृशायां सत्यां द्वितीयक्षेत्रफलात् प्रथमक्षेत्रफले द्विगुणिते सति अथवा क्षेत्रद्वयेऽपि क्षेत्रफले सदृशे सति प्रथमक्षेत्रस्य रज्जुसंख्याया अपि द्वितीयक्षेत्ररज्जुसंख्यायां द्विगुणायां सत्याम्, अथवा क्षेत्रद्वये प्रथमक्षेत्ररज्जुसंख्याया अपि द्वितीयक्षेत्रस्य रज्जुसंख्यायां द्विगुणायां सत्यां द्वितीयक्षेत्रफलादपि प्रथमक्षेत्रफले द्विगुणे सति, तत्क्षेत्रद्वयस्यानयनसूत्रम्—

स्वास्यद्वतरज्जुघनद्वयकृतिविश्लिष्टैव कोटिः स्यात् ।
व्येका दोस्तुल्यफलेऽन्यत्राधिकगणितगुणितेष्टम् ॥ १२१½ ॥
व्येकं तदूनकोटिः द्विगुणा दोः स्यात्तथान्यस्य ।
रज्ज्वर्धवर्गराशेरिति पूर्वोक्तेन सूत्रेण ।
तद्गुणितरज्जुमितितः समानयेत्तद्भुजाकोटी ॥ १२२ ॥

दो आयत क्षेत्रों के क्रमिक युग्मों को प्राप्त करने के लिये नियम (१) जब कि परिमिति के संख्यात्मक माप बराबर हैं और प्रथम आकृति का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है; अथवा (२) जब कि दोनों आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर हैं और दूसरी आकृति की परिमिति का संख्यात्मक माप प्रथम आकृति की परिमिति से दुगना है अथवा (३) जब कि दो क्षेत्रों के संबंध में दूसरी आकृति की परिमिति का संख्यात्मक माप, प्रथम आकृति की परिमिति से दुगुना है और प्रथम आकृति का क्षेत्रफल दूसरी आकृति के क्षेत्रफल से दुगुना है—

दो इष्ट आयत क्षेत्रों संबंधी परिमितियों तथा क्षेत्रफलों की दी गई निष्पत्तियों में बड़ी संख्याओं को उनकी संवादी छोटी संख्याओं द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफलों को एक दूसरे से परस्पर गुणित कर वर्गित किया जाता है। यही राशि जब दिये गये मन से चुने गुणकार (multiplier) द्वारा गुणित की जाती है तब लंबभुजा का माप उत्पन्न होता है। और उस दशा में जब कि दो इष्ट आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर हों यह लंब भुजा का माप एक द्वारा ह्रासित होकर आधार का माप बन जाता है। परंतु दूसरी दशा में जब कि इष्ट आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर नहीं होते तब बड़ी निष्पत्ति संख्या जो क्षेत्रफलों से संबंधित होती है दिये गये मन से चुने गुणकार द्वारा गुणित की जाती है और परिणामी गुणनफल १ द्वारा ह्रासित किया जाता है। ऊपर प्राप्त लंब भुजा इस परिणामी राशि द्वारा ह्रासित की जाती है और तब २ द्वारा गुणित की जाती है। इस प्रकार आधार का माप प्राप्त होता है। तत्पश्चात् दो इष्ट चतुर्भुज क्षेत्रों में से दूसरे चतुर्भुज के माप को प्राप्त करने के लिए ज्ञात क्षेत्रफल और परिमिति की सहायता से गाथा ११५½ में दिये गये नियमानुसार उसका आधार तथा लंब निकालना पड़ता है ॥१२१½–१२२॥

(१२१½–१२२) यदि प्रथम आयत की दो आसन्न भुजाएँ क और ख हों, तथा दूसरे आयत की दो आसन्न भुजाएँ अ और ब हों, तो इस नियम में दी गई तीन प्रकार की समस्याओं में कथित दशाओं को इस प्रकार से प्रकथित किया जा सकता है—

(१) क + ख = अ + ब; क ख = २ अ ब
(२) २ (क + ख) = अ + ब; क ख = अ ब
(३) २ (क + ख) = अ + ब; क ख = अ ब

इस नियम में दिया गया हल केवल ११४–११६ गाथाओं में दिये गये प्रश्नों की विशेष दशाओं के लिये ही उपयुक्त दिखाई देता है।

अत्रोद्देशकः

असमव्यासायामक्षेत्रे द्वे द्वावथेष्टगुणकारः ।
प्रथमं गणितं द्विगुणं रज्जू तुल्ये किमत्र कोटिभुजे ॥ १३४ ॥
आयतचतुरश्रे द्वे क्षेत्रे द्वयमेवगुणकारः । गणितं सदृशं रज्जुर्द्विगुणा प्रथमात् द्वितीययस्य ॥१३५॥
आयतचतुरश्रे द्वे क्षेत्रे प्रथमस्य धनमिह द्विगुणम् ।
द्विगुणा द्वितीयरज्जुस्तयोर्भुजां कोटिमपि कथय ॥ १३६ ॥

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रयोः परस्पररज्जुधनसमानसंख्ययोरिष्टगुणकगुणितरज्जुधनवतोर्वा द्विसमत्रिभुजक्षेत्रद्वयानयनसूत्रम्—
रज्जुकृतिघ्नान्योन्यधनाल्पाप्तं षड्द्विघ्नमल्पमेकोनम् ।
तच्छेपं द्विगुणाल्पं बीजे तज्जन्ययोर्भुजादयः प्राग्वत् ॥ १३७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो चतुर्भुज क्षेत्र हैं जिनमें से प्रत्येक असमान ऊंचाई और चौड़ाई वाला है। दिया गया गुणकार २ है। प्रथम क्षेत्र का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है, और दोनों में परिमितियाँ बराबर हैं। इस प्रश्न में लंब भुजाएँ और आधार क्या-क्या हैं ?॥१३४॥ दो आयत क्षेत्र हैं और दिया गया गुणकार भी २ है। उनके क्षेत्रफल बराबर हैं परंतु दूसरे क्षेत्र की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है। उनकी लंब भुजाएँ और आधारों को निकालो ॥१३५॥ दो आयत क्षेत्र दिये गये हैं। प्रथम का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है। दूसरी आकृति की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है। उनके आधारो और लंब भुजाओं के मानों को प्राप्त करो ॥ १३६ ॥

ऐसे समद्विबाहु त्रिभुजों के युग्म को प्राप्त करने के लिये नियम, जिनकी परिमितियाँ और क्षेत्रफल आपस में बराबर हों अथवा एक दूसरे के अपवर्त्य हों—

इष्ट समद्विबाहु त्रिभुजों की परिमितियों के निष्पत्तिरूप मानों के वर्गों में उन त्रिभुजों के क्षेत्रफल के निष्पत्तिरूप मानों द्वारा एकान्तर गुणन किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त दो गुणनफलों में से बड़ा छोटे के द्वारा विभाजित किया जाता है। तथा अलग से दो के द्वारा भी गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों मे से छोटा गुणनफल १ के द्वारा ह्रासित किया जाता है। बड़ा गुणनफल और ह्रासित छोटा गुणनफल ऐसे आयतक्षेत्र के संबंध में दो बीजों की संरचना करते हैं, जिनसे इष्ट त्रिभुजों में से एक प्राप्त किया जाता है। उपर्युक्त इन दो बीजों के अंतर और इन बीजों में छोटे की दुगुनी राशि : ये दोनों ऐसे आयत क्षेत्र के संबंध में बीजों की संरचना करते हैं, जिनसे दूसरा इष्ट त्रिभुज प्राप्त किया जाता है। अपने क्रमवार बीजों की सहायता से बनी हुई दो आयताकार आकृतियों में से, इष्ट त्रिभुजों संबंधी भुजाएँ और अन्य बातें ऊपर समझाये अनुसार प्राप्त की जाती हैं ॥१३७॥

---

(१३७) दो समद्विबाहु त्रिभुजों की परिमितियों की निष्पत्ति अ : ब हो, और उनके क्षेत्रफलों की निष्पत्ति स : द हो, तब नियमानुसार, $\frac{६ब^२ स}{अ^२ द}$ और $\frac{२ब^२ स}{अ^२ द}-१$ तथा $\frac{४ब^२ स}{अ^२ द}+१$ और $\frac{४ब^२ स}{अ^२ द}-२$, ये बीजों के दो कुलक (sets) हैं, जिनकी सहायता से दो समद्विबाहु त्रिभुजों के विभिन्न

अत्रोद्देशकः

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रद्वयं तयोः क्षेत्रयोः समं गणितम् ।
रज्जू समे तयोः स्यात् को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १३८ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे प्रथमस्य धनं द्विसंगुणितम् ।
रज्जुः समा द्वयोरपि को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १३९ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे द्वे रज्जुर्द्विगुणिता द्वितीयस्य ।
गणिते द्वयोः समाने को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १४० ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे प्रथमस्य धनं द्विसंगुणितम् ।
द्विगुणा द्वितीयरज्जुः को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १४१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । उनका क्षेत्रफल एक सा है । उनकी परिमितियाँ भी बराबर हैं । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १३८ ॥ दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । पहिले का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है । उन दोनों की परिमितियाँ एक सी हैं । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १३९ ॥ दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । दूसरे त्रिभुज की परिमिति पहिले त्रिभुज की परिमिति से दुगुनी है । उन दो त्रिभुजों के क्षेत्रफल बराबर हैं । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १४० ॥ दो समद्विबाहु त्रिभुज दिये गये हैं । प्रथम त्रिभुज का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है, और दूसरे की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १४१ ॥

इष्ट राशों को प्राप्त कर सकते हैं । इस अध्याय की १०८½ वीं गाथा के अनुसार, इन बीजों से निकाली गई भुजाओं और ऊँचाइयों के मापों को जब क्रमशः परिमितियों की निष्पत्ति में पाई जाने वाली राशियों अ और ब द्वारा गुणित करते हैं, तब दो समद्विबाहु त्रिभुजों की इष्ट भुजाओं और ऊँचाइयों के माप प्राप्त होते हैं । वे निम्नलिखित हैं—

$$(१)\ \text{बराबर भुजा} = \text{अ} \times \left\{ \left(\frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}}\right)^{२} + \left(\frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - १\right)^{२} \right\} ,$$

$$\text{आधार} = \text{अ} \times २ \times २ \times \frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} \times \left(\frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - १\right) ,$$

$$\text{ऊँचाई} = \text{अ} \times \left\{ \left(\frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}}\right)^{२} - \left(\frac{२\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - १\right) \right\} ।$$

$$(२)\ \text{बराबर भुजा} = \text{ब} \times \left\{ \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} + १\right)^{२} + \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - २\right)^{२} \right\} ,$$

$$\text{आधार} = \text{ब} \times २ \times २ \times \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} + १\right) \times \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - २\right) ,$$

$$\text{ऊँचाई} = \text{ब} \times \left\{ \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} + १\right)^{२} - \left(\frac{४\text{ब}^{२}\text{स}}{\text{अ}^{२}\text{द}} - २\right)^{२} \right\} ।$$

अब इन मानों (मानों) से सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि परिमितियों की निष्पत्ति अ : ब और क्षेत्रफलों की निष्पत्ति स : द है, जैसा कि आरम्भ में ले लिया गया था ।

एकद्वयादिगणनातीतसंख्यासु इष्टसंख्यामिष्टवस्तुनो भागसंख्या परिकल्प्य तदिष्टवस्तु-भागसंख्यायाः सकाशात् समचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च समवृत्तक्षेत्रानयनस्य च समत्रिभुजक्षेत्रा-नयनस्य चायतचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम् —

स्वसमीकृतावधृतिहृतधनं चतुर्घ्नं हि वृत्तसमचतुरश्रव्यासः।
षड्गुणितं त्रिभुजायतचतुरश्रभुजार्धमपि कोटिः॥ १४२॥

वर्ग, अथवा समवृत्त क्षेत्र, अथवा समत्रिभुज क्षेत्र, अथवा आयत को इनमें से किसी उपयुक्त आकृति के अनुपाती भाग के संख्यात्मक मान की सहायता से प्राप्त करने के लिये नियम, जब कि १, २ आदि से प्रारम्भ होने वाली प्राकृत संख्याओं में से कोई मन से चुनी हुई संख्या द्वारा उस दी गई उपर्युक्त आकृति के अनुपाती भाग के संख्यात्मक मान को उत्पन्न कराया जाता है—

(अनुपाती भाग के) क्षेत्रफल (का दिया गया माप हस्त में) लिए गए (समुचित रूप से) अनुरूपित (similarised) माप द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल यदि ४ के द्वारा गुणित किया जाय, तो वर्ग तथा वृत्त की भी चौड़ाई का माप उत्पन्न होता है। वही भजनफल, यदि ६ द्वारा गुणित किया जाय, तो समत्रिभुज तथा आयत क्षेत्र के आधार का माप भी उत्पन्न होता है। इसकी अर्द्धराशि आयत क्षेत्र की लम्ब भुजा का माप होती है ॥१४२॥

---

(१४२) इस नियम के अन्तर्गत दिये गये प्रश्नों के प्रकार में, वृत्त, या वर्ग, या समद्विबाहु त्रिभुज, या आयत मन चाहे समान भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक भाग, एक ओर परिमिति के किसी विशिष्ट भाग द्वारा सीमित होता है। जो अनुपात परिमिति के उस विशिष्ट भाग और पूरी परिमिति में होता है वही अनुपात उस सीमित भाग और आकृति के पूर्ण क्षेत्रफल में रहना चाहिए। वृत्त के संबंध में प्रत्येक खंड, त्रैज्यिज्य (sector) होता है; वर्गाकार आकृति होने पर और आयताकार आकृति होने पर वह भाग आयताकार होता है, तथा समत्रिभुज आकृति होने पर वह त्रिभुज होता है। प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल और मूल परिमिति की लम्बाई दोनों दत्त महत्ता की होती हैं। यह गाथा, वृत्त के व्यास, वर्ग की भुजाओं, अथवा समत्रिभुज या आयत की भुजाओं का माप निकालने के लिये नियम का कथन करती है। यदि प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल 'म' हो और संपूर्ण परिमिति की लम्बाई का कोई भाग 'न' हो तो नियम में दिये गये सूत्र ये हैं—

$\frac{म}{न} \times ४ =$ वृत्त का व्यास, अथवा वर्ग की भुजा,

और $\frac{म}{न} \times ६ =$ समत्रिभुज या आयत की भुजा,

और $\frac{म}{न} \times ६$ का अर्द्धभाग $=$ आयत की लंब भुजा की लम्बाई।

अगले पृष्ठ पर दिये गये समीकारों से मूल आधार स्पष्ट हो जावेगा, जहाँ प्रत्येक आकृति के विभाजित खंडों की संख्या 'क' है। वृत्त की त्रिज्या अथवा अन्य आकृति संबंधी भुजा 'अ' है, और आयत की लंब भुजा 'ब' है।

अत्रोद्देशकः

स्वान्तःपुरे नरेन्द्रः प्रासादतले निजाङ्गनामध्ये ।
चिक्षेप स रत्नकम्बलमपीपतत्तच्च समवृत्तम् ॥ १४३ ॥
ताभिर्देवीभिर्धृतमेभिर्भुजयोश्च मुष्टिभिर्लब्धम् ।
पञ्चदशैकस्याः स्युः कति वनिताः कोऽत्र विष्कम्भः ॥ १४४ ॥
समचतुरश्रभुजाः के समत्रिबाहोर्भुजाश्चात्र ।
आयतचतुरश्रस्य हि धरकोटिभुजौ सखे कथय ॥ १४५ ॥

क्षेत्रफले सङ्ख्याते ज्ञाते समचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य चायतचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम्—

सूक्ष्मगणितस्य मूलं समचतुरश्रस्य बाहुरिष्टहृतम् ।
घनमिष्टफले स्यातामायतचतुरश्रकोटिभुजौ ॥ १४६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी राजा ने अपने अंतःपुर के प्रासाद में अपनी रानियों के बीच में ऊपर से फर्श पर समवृत्त आकार वाला बहुमूल्य रत्नकंबल नीचे गिराया। वह उन देवियों द्वारा हाथ में ग्रहण कर लिया गया। उनमें से प्रत्येक ने अपनी दोनों भुजाओं की मुट्ठियों में ७½, ७½ इंच क्षेत्रफल का कंबल ग्रहण कर रखा। यहाँ बतलाओ कि इस नरेन्द्र की वनितायें कितनी हैं, और वृत्ताकार कंबल का व्यास (विष्कंभ) कितना है? यदि वह कंबल वर्गाकार हो, तो इसकी प्रत्येक भुजा कितने माप की होगी? यदि वह समत्रिभुजाकार हो तो उसकी भुजा कितनी होगी? हे मित्र, मुझे बतलाओ कि यदि कंबल आयताकार हो तो उसकी लंब भुजा और आधार का माप क्या होगा? ॥१४३–१४५॥

वर्गाकार आकृति अथवा आयताकार आकृति प्राप्त करने के लिये नियम जबकि आकृति के क्षेत्रफल का संख्यात्मक मान ज्ञात हो—

दिये गये क्षेत्रफल के शुद्ध माप का वर्गमूल इष्ट वर्गाकार आकृति की भुजा का माप होता है। दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई (केवल क्षेत्रफल के वर्गमूल को छोड़कर) कोई भी राशि द्वारा भाजित करने पर परिणामी भजनफल और यह मन से चुनी हुई राशि आयत क्षेत्र के संबंध में क्रमशः आधार और लंब भुजा की रचना करती है ॥१४६॥

वृत्त की दशा में, $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{\pi अ^{2}}{२\pi अ}$, जहाँ $\pi = \frac{परिधि}{व्यास}$;

वर्ग की दशा में $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ}{४अ}$;

समत्रिभुज की दशा में $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ^{2}/\text{[illegible]}}{३अ}$

आयत की दशा में $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ \times ब}{२(अ + ब)}$ जहाँ $ब = \frac{अ}{२}$ लिया गया है।

अध्याय की ७ वीं गाथा में दिये गये नियम के अनुसार समत्रिभुज व क्षेत्रफल का व्यावहारिक मान यहाँ उपयोग में लाया गया है। अन्यथा, इस नियम में दिया गया सूत्र ठीक सिद्ध नहीं होता।

(१४३–१४५) इस प्रश्न में मुष्टिभर का अर्थ चार अंगुल प्रमाण होता है।

अत्रोद्देशकः

कस्य हि समचतुरश्रक्षेत्रस्य फलं चतुष्षष्टिः ।
फलमायतस्य सूक्ष्मं षष्टि के वात्र कोटिभुजे ॥ १४७ ॥

इष्टद्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलसंख्यां ज्ञात्वा, इष्टसंख्यां गुणकं परिकल्प्य, इष्टसंख्याङ्कबीजाभ्यां जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रं परिकल्प्य, तदिष्टद्विसमचतुरश्रक्षेत्रफलवदिष्टद्विसमचतुरश्रानयनसूत्रम्—

तद्धनगुणितेष्टकृतिर्जन्यधनोना भुजाहृता मुखं कोटिः ।
द्विगुणा समुखा भूर्दोर्लम्बः कर्णौ भुजे तदिष्टहृता. ॥ १४८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६४ क्षेत्रफल वाली वर्गाकार आकृति वास्तव में कौन सी है ? आयत क्षेत्र के क्षेत्रफल का शुद्ध मान ६० है । बतलाओ कि यहाँ लंब भुजा और आधार के मान क्या क्या हैं ? ॥१४७॥

दो बराबर भुजाओं वाले ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम, जिसे बीजों की सहायता से आयत क्षेत्र को प्राप्त करने पर और साथ ही किसी दी हुई संख्या को इष्ट गुणकार की तरह उपयोग में लाकर प्राप्त करते हैं, तथा जब (दो बराबर भुजाओंवाले) ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र के क्षेत्रफल के बराबर ज्ञात सूक्ष्म क्षेत्रफल वाले चतुर्भुज का क्षेत्रफल होता है—

दिये गये गुणकार का वर्ग दिये गये क्षेत्रफल द्वारा गुणित किया जाता है । परिणामी गुणनफल, दिये गये बीजों से प्राप्त आयत के क्षेत्रफल द्वारा ह्रासित किया जाता है । शेषफल जब इस आयत के आधार द्वारा भाजित किया जाता है, तब ऊपरी भुजा का माप उत्पन्न होता है । प्राप्त आयत की लंब भुजा का मान, जब २ द्वारा गुणित होकर (पहिले ही) प्राप्त ऊपरी भुजा के मान में जोड़ा जाता है, तब आधार का मान उत्पन्न होता है । इस आयत क्षेत्र के आधार का मान ऊपरी भुजा के अंतरों से आधार पर गिराये गये लंब के समान होता है, तथा व्युत्पादित आयत क्षेत्र के कर्णों का मान भुजाओं के मान के समान होता है । इस प्रकार प्राप्त दो समान भुजाओं वाले चतुर्भुज के ये तत्त्व दिये गये गुणकार द्वारा भाजित किये जाते हैं, ताकि दो समान भुजाओं वाला इष्ट चतुर्भुज प्राप्त हो ॥१४८॥

---

(१४८) यहाँ दिये गये क्षेत्रफल और दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज की रचना संबंधी प्रश्न का विवेचन किया गया है । इस हेतु मन से कोई संख्या चुनी जाती है । दो बीजों का एक कुलक (set) भी दिया गया रहता है । इस नियम में वर्णित रीति दूसरी गाथा में दिये गये प्रश्न में प्रयुक्त करने पर स्पष्ट हो जावेगी । उल्लिखित बीज यहाँ २ और ३ हैं । दिया गया क्षेत्रफल ७ है, तथा मन से चुनी हुई संख्या ३ है ।

इष्टसूक्ष्मगणितफलवत्त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रानयनसूत्रम्—

इष्टधनभक्तधनकृतिरिष्टयुतार्धं भुजा द्विगुणितेष्टम्।
त्रिभुजं मुखमिष्टाप्तं गणितं ह्यवलम्बकं त्रिसमजन्ये ॥ १५० ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य त्रिसमचतुर्बाहुकस्य सूक्ष्मधनम्।
षण्णवतिरिष्टमष्टौ भूबाहुमुखावलम्बकानि वद ॥ १५१ ॥

तीन बराबर भुजाओं वाले ज्ञात क्षेत्रफल के चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम जब कि गुणक (multiplier) दिया गया हो—

दिये गये क्षेत्रफल के वर्ग को दिये गये गुणक के घन द्वारा भाजित किया जाता है। तब दिये गये गुणकार को परिणामी भजनफल में जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग की अर्द्धराशि बराबर भुजाओं में से किसी एक का माप देती है। दिया गया गुणक २ से गुणित होकर, और तब प्राप्त बराबर भुजा (जो अभी प्राप्त हुई है ऐसी समान भुजा) द्वारा ह्रासित होकर, ऊपरी भुजा का माप देता है। दिया गया क्षेत्रफल दिये गये गुणक द्वारा भाजित होकर, तीन बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये समान लंबों में से किसी एक का मान देता है ॥१५०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी ३ बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध मान ९६ है। दिया गया गुणक ८ है। आधार, भुजाओं, ऊपरी भुजा और लंब के मापों को बतलाओ ॥ १५१ ॥

---

(१५०) नियम में कथन है कि दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई दत्त संख्या द्वारा भाजित करने पर इष्ट आकृति संबंधी लंब प्राप्त होता है। क्षेत्रफल का मान, आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि तथा लंब के गुणनफल के बराबर होता है। इसलिये दी गई चुनी हुई संख्या ऊपरी भुजा और आधार के योग की अर्द्धराशि का निरूपण करती है। यदि अ ब स द तीन बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज है, और स इ, स से अ द पर गिराया गया लंब है, तो अ इ, अ द और ब स के योग की आधी होती है, और दी गई चुनी हुई संख्या के बराबर होती है। यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि २अ द × अ इ = (स इ)^2 + (अ इ)^2।

$$\therefore \text{अ द} = \frac{(\text{स इ})^2 + (\text{अ इ})^2}{2\text{अ इ}} = \frac{(\text{स इ})^2}{2\text{अ इ}} + \frac{\text{अ इ}}{2} = \frac{\dfrac{(\text{स इ}^2 \times \text{अ इ}^2)}{(\text{अ इ}^3)} + \text{अ इ}}{2}$$

$$= \frac{\dfrac{(\text{स इ} \times \text{अ इ})^2}{(\text{अ इ})^3} + \text{अ इ}}{2}$$
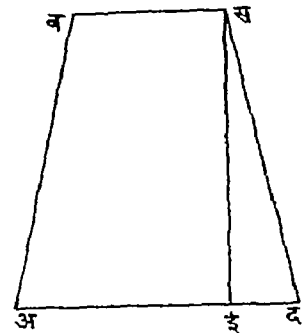
यहाँ स इ × अ इ = चतुर्भुज का दिया गया क्षेत्रफल है। यह अंतिम सूत्र, प्रश्न में तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज की कोई भी एक बराबर भुजा का मान निकालने के लिये दिया गया है।

सूक्ष्मफलसंख्यां ज्ञात्वा चतुर्भिरिष्टच्छेदैश्च विषमचतुरश्रक्षेत्रस्य मुखभूमिभुजाप्रमाणसंख्यानयनसूत्रम्—

घनकृतिरिष्टच्छेदैश्चतुर्भिराप्तैव लब्धानाम् ।
युतिदलचतुष्टयं तैरूना विषमाख्यचतुरश्रभुजसंख्या ॥ १५२ ॥

अत्रोद्देशकः

नवतिर्हि सूक्ष्मगणितं छेदाः पञ्चैव नवगुणः ।
षट्प्रभृतिर्विंशतिपञ्चकृतिरतः क्रमाद्विषमचतुरश्रे ॥
मुखभूमिभुजासंख्या विगणय्य ममाशु संकथय ॥ १५३½ ॥

---

२ दिये गये भाजकों की सहायता से, जब कि इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल ज्ञात है विषम चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम—

दिया गया क्षेत्रफल का वर्ग अलग अलग चार दिये गये भाजकों द्वारा भाजित किया जाता है और चार परिणामी भजनफलों को अलग-अलग किया जाता है। इन भजनफलों के योग की अर्द्धराशि को चार स्थानों में लिखा जाता है, और क्रम में ऊपर लिखे हुए भजनफलों द्वारा क्रमशः ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शेष, विषम चतुर्भुज की असमान नामक भुजाओं के संख्यात्मक मान को उत्पन्न करते हैं ॥ १५२ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विषम चतुर्भुज के संबंध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप ९० है। ५ को क्रमशः ९ १, १८, २ और ११ द्वारा गुणित करने पर चार दिये गये भाजकों की उत्पत्ति होती है। गणना के पश्चात् ऊपरी भुजा, आधार और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मानों को शीघ्र बतलाओ ॥ १५३, १५३½ ॥

---

(१५२) असमान भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल पहिले ही बताया जा चुका है :
$\sqrt{म(म-अ)(म-ब)(म-स)(म-द)}$ = चतुर्भुज का क्षेत्रफल, जहाँ म = परिमिति की अर्द्धराशि है, और अ, ब, स और द भुजाओं के माप हैं (इसी अध्याय की ५० वीं गाथा देखिये)। इस नियम के अनुसार क्षेत्रफल के मान को वर्गित कर और तब चार मन से चुने हुए भाजकों द्वारा अलग-अलग भाजित करते हैं। यदि (म − अ) (म − ब) (म − स) (म − द) को ऐसे चार उपयुक्त चुने हुए भाजकों द्वारा भाजित किया जाय कि म − अ, म − ब, म − स और म − द भजनफल प्राप्त हों, तो इन भजनफलों को जोड़कर और उनके योग को आधा करने पर म प्राप्त होता है। यदि म को क्रम से म − अ, म − ब, म − स और म − द ह्रासित किया जाय, तो शेष क्रमशः विषम चतुर्भुज की भुजाओं के मानों की प्ररूपणा करते हैं।

सूक्ष्मगणितफलं ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवत्समत्रिबाहुक्षेत्रस्य बाहुसंख्यानयनसूत्रम्—

गणितं तु चतुर्गुणितं वर्गीकृत्वा[1] भजेत् त्रिभिर्लब्धम् ।
त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य च समस्य बाहोः कृतेर्वर्गम् ॥ १५४½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि समत्र्यश्रक्षेत्रस्य च गणितमुद्दिष्टम् ।
रूपाणि त्रीण्येव ब्रूहि प्रगणय्य मे बाहुम् ॥ १५५½ ॥

सूक्ष्मगणितफलसंख्यां ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवद्द्विसमत्रिबाहुक्षेत्रस्य भुजभूम्यवलम्बकसंख्यानयनसूत्रम्—

इच्छाप्तधनेच्छाकृतियुतिमूलं दोः क्षितिर्द्विगुणितेच्छा ।
इच्छाप्तधनं लम्बः क्षेत्रे द्विसमत्रिबाहुजन्ये स्यात् ॥ १५६½ ॥

---

1. वर्गीकृत्वा के स्थान में वर्गीकृत्य होना चाहिए, पर इस रूप में वह छंद के उपयुक्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म रूप से ज्ञात क्षेत्रफल वाले समभुज त्रिभुज की भुजाओं के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये क्षेत्रफल की चौगुनी राशि वर्गित की जाती है । परिणामी राशि ३ द्वारा भाजित की जाती है । इस प्रकार प्राप्त भजनफल समत्रिभुज की किसी एक भुजा के मान के वर्ग का वर्ग होता है ॥ १५४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समत्रिबाहु त्रिभुज के संबंध में दिया गया क्षेत्रफल केवल ३ है । उसकी भुजा का माप गणना कर बतलाओ ॥ १५५½ ॥

किसी दिये गये क्षेत्रफल के शुद्ध संख्यात्मक माप को ज्ञात कर, उसी शुद्ध क्षेत्रफल की त्रिभुजाकार आकृति की भुजाओं, आधार और लंब को निकालने के लिये नियम—

इस प्रकार से रचित होने वाले समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में, दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजनफल के वर्ग में, मन से चुनी हुई राशि के वर्ग को जोड़ते हैं। योग का जब वर्गमूल निकाला जाता है, तब भुजा का मान उत्पन्न होता है, चुनी हुई राशि की दुगनी राशि आधार का माप देती है, और मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित क्षेत्रफल लंब का माप उत्पन्न करता है ॥ १५६½ ॥

(१५४½) समत्रिभुज के क्षेत्रफल के लिये सूत्र यह है : क्षेत्रफल $= अ^2\sqrt{\frac{३}{४}}$, जहाँ भुजा का माप अ है । इसके द्वारा यहाँ दिया गया नियम प्राप्त किया जा सकता है ।

(१५६½) इस प्रकार के दिये गये प्रश्नों में समद्विबाहु त्रिभुज के क्षेत्रफल की अर्हा (मान) और मन से चुने हुए आधार की आधी राशि दी गई रहती है । इन ज्ञात राशियों से लंब और भुजा के माप सरलतापूर्वक प्राप्त किये जा सकते हैं ।

प्रश्नोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य द्विसमत्रिभुजस्य सूक्ष्मगणितमिनाः ।
श्रीणीच्छा कथय सखे भुजभूम्यवलम्बकानाशु ॥ १५७½ ॥

सूक्ष्मगणितफलसंख्यां ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलविषमत्रिभुजानयनस्य सूत्रम्—

अष्टगुणितेष्टफलयुतघनमिष्टपदहृदिष्टार्धम् ।
भूः स्यादूनं द्विपदाहृतेऽन्यथो भुजे च सक्रमणम् ॥ १५८½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप १२ है । मन से चुनी हुई राशि ३ है । हे मित्र भुजाओं आधार और लंब के मानों को शीघ्र बतलाओ ॥ १५७½ ॥

विषम भुजाओं वाले तथा दत्त शुद्ध माप के क्षेत्रफल वाले त्रिभुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

दिया गया क्षेत्रफल ८ द्वारा गुणित किया जाता है और परिणामी गुणनफल में मन से चुनी हुई राशि की वर्गित राशि जोड़ी जाती है । इस प्रकार प्राप्त परिणामी योग के वर्गमूल को प्राप्त करते हैं । इस वर्गमूल का घन, मन से चुनी हुई संख्या तथा ऊपर प्राप्त वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है । मन से चुनी हुई राशि की आधी राशि इस त्रिभुज के आधार का माप होती है । पिछली क्रिया में प्राप्त भजनफल इस आधार के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है । परिणामी राशि को उपर्युक्त वर्गमूल तथा २ द्वारा यथा भाजित (मन से चुनी हुई राशि के) वर्ग के संबंध में संक्रमण किया करने के उपयोग में लाते हैं । इस प्रकार भुजाओं के मान प्राप्त होते हैं ॥ १५८½ ॥

(१५८½) यदि त्रिभुज का क्षेत्रफल क हो, और द मन से चुनी हुई संख्या हो, तो इस नियम के अनुसार इष्ट मानों को निम्न प्रकार प्राप्त करते हैं—

$$\frac{द}{२} = \text{आधार; और } \frac{(\sqrt{८क + द^२})^३}{द\sqrt{८क + द^२}} - \frac{द}{२} \pm \frac{द^२}{\sqrt{८क + द^२}} = २ \text{(भुजाएँ)} ।$$

जब किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल और आधार दिये गये रहते हैं, तब शीर्ष का बिन्दुपथ आधार के समानान्तर रेखा होती है, और भुजाओं के मानों के अनेक कुलक (sets) हो सकते हैं । भुजाओं के किसी विशिष्ट कुलक के मानों को प्राप्त करने के लिए, यहाँ स्पष्टतः कल्पना कर ली गई है कि दो भुजाओं का योग आधार और दुगुनी ऊँचाई के योग के तुल्य होता है अर्थात् $\frac{द}{२} + २ \frac{क}{द + ४}$ होता है । इस कल्पना से इस अध्याय की ५ वीं गाथा में दिये गये साधारण सूत्र { किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \sqrt{स(स - अ)(स - ब)(स - स)}$ }, से भुजाओं के माप के लिये ऊपर दिया गया सूत्र प्राप्त किया जा सकता है ।

अत्रोद्देशकः

कस्यापि विषमबाहोस्त्र्यश्रक्षेत्रस्य सूक्ष्मगणितमिदम् ।
द्वे रूपे निर्दिष्टे त्रीणीष्टं भूमिबाहवः के स्युः ॥ १५९½ ॥

पुनरपि सूक्ष्मगणितफलसख्यां ज्ञात्वा तत्फलवद्विषमत्रिभुजानयनसूत्रम्—

स्वाष्टहतात्सेष्टकृतेः कृतिमूलं चेष्टमितरदितरहृतम् ।
ज्येष्ठ स्वाल्पार्धोन स्वल्पार्धं तत्पदेन चेष्टेन ॥ १६०½ ॥
क्रमशो हत्वा च तयोः संक्रमणे भूभुजौ भवतः ।
इष्टार्धमितरदोः स्याद्विषमत्रैकोणके क्षेत्रे ॥ १६१½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वे रूपे सूक्ष्मफलं विषमत्रिभुजस्य रूपाणि ।
त्रीणीष्टं भूदोषौ कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥ १६२½ ॥

सूक्ष्मगणितफलं ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवत्समवृत्तक्षेत्रानयनसूत्रम्—

गणितं चतुरभ्यस्तं दशपदभक्तं पदे भवेद्व्यासः ।
सूक्ष्मं समवृत्तस्य क्षेत्रस्य च पूर्ववत्फलं परिधि ॥ १६३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी असमान भुजाओं वाली त्रिभुजाकार आकृति के सबंध में यह बतलाया गया है कि शुद्ध क्षेत्रफल का माप २ है, और मन से चुनी हुई राशि ३ है। आधार का मान तथा भुजाओं का मान क्या है ? ॥ १५९½ ॥

पुन , विषम भुजाओं वाले तथा दत्त शुद्ध माप क्षेत्रफल वाले त्रिभुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये दूसरा नियम—

दिये गये क्षेत्रफल के माप में ८ का गुणा कर, और तब उसमें मन से चुनी हुई राशि के वर्ग को जोड़कर, प्राप्त योगफल का वर्गमूल प्राप्त किया जाता है। यह और मन से चुनी हुई राशि एक दूसरे के द्वारा भाजित की जाती हैं। इन भजनफलों में से बड़ा, छोटे भजनफल की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शेष राशि और यह छोटे भजनफल की अर्द्धराशि क्रमश ऊपर लिखित वर्गमूल और मन से चुनी हुई सख्या द्वारा गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों के सबध में सक्रमण क्रिया करने पर आधार और भुजाओं में से किसी एक का मान प्राप्त होता है। मन से चुनी हुई राशि की आधी राशि विषम त्रिभुज की दूसरी भुजा की अहो होती है ॥ १६०-१६१½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विषम त्रिभुज के सबध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप २ है। हे गणितज्ञ सखे, आधार तथा भुजाओ के माप बतलाओ ॥ १६२½ ॥

दत्त सूक्ष्म क्षेत्रफल वाले, किसी समवृत्त क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप ४ द्वारा गुणित कर, १० के वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार परिणामी भजनफल के वर्गमूल को प्राप्त करने से व्यास का मान प्राप्त होता है। समवृत्त क्षेत्र के संबध में, ऊपर समझाये अनुसार, क्षेत्रफल और परिधि का माप प्राप्त किया जाता है ॥ १६३½ ॥

(१६३½) इस गाथा में दिया गया नियम सूत्र, क्षेत्रफल $= \frac{ट^2}{४} \times \sqrt{१०}$, जहाँ ट वृत्त का व्यास है, से प्राप्त किया गया है।

अत्रोद्देशक

समवृत्तक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलं पञ्च निर्दिष्टम् ।
विष्कम्भं को वास्य प्रगणय्य ममाशु तं कथय ॥ ११४३ ॥

व्यावहारिकगणितफलं च सूक्ष्मफलं च ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकफलवत्सूक्ष्मगणितफलवद्द्वि-समचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम्—

घनवर्गान्तरपदयुतिवियुतीष्टे भूमुखे भुजे स्वफलम् ।
द्विसमे सपदस्थूलात्पदयुतिवियुतीष्टपदहृते त्रिसमे ॥ ११५३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समवृत्त क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप ५ है। वृत्त का व्यास गणना कर शीघ्र बतलाओ ॥ ११४३ ॥

किसी क्षेत्रफल के व्यावहारिक तथा सूक्ष्म माप ज्ञात होने पर, दो समान भुजाओं वाले तथा तीन समान भुजाओं वाले उन क्षेत्रफलों के माप के चतुर्भुज क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिये नियम—

दो समान भुजाओंवाले क्षेत्रफल के संबंध में क्षेत्रफल के सन्निकट और सूक्ष्म मापों के वर्गों के अन्तर के वर्गमूल को प्राप्त करते हैं। इस वर्गमूल को मन से चुनी हुई राशि में जोड़ते हैं, तथा उसी मन से चुनी हुई राशि में से वही वर्गमूल घटाते हैं। आधार और ऊपरी भुजा को प्राप्त करने के लिये इस प्रकार प्राप्त राशियों को मन से चुनी हुई राशि के वर्गमूल से भाजित करना पड़ता है। इसी प्रकार सन्निकट क्षेत्रफल में मन से चुनी हुई राशि का भाग देने पर समान भुजाओं का मान प्राप्त होता है ॥ ११५३ ॥

(११५३) यदि 'रा' किसी दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के सन्निकट क्षेत्रफल को, और 'र' सूक्ष्म मान को प्ररूपित करते हों और प प मन से चुनी हुई संख्या हो, तो

$$\text{आधार} = \frac{\sqrt{\text{रा}^2 - \text{र}^2} + \text{प}}{\sqrt{\text{प}}}, \quad \text{ऊपरी भुजा} = \frac{\text{प} - \sqrt{\text{रा}^2 - \text{र}^2}}{\sqrt{\text{प}}},$$

$$\text{और प्रत्येक बराबर भुजाओं का मान} = \frac{\text{रा}}{\sqrt{\text{प}}}\ ।$$

यदि दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की भुजाओं के माप क्रमशः अ, ब, स द हों, तो

$$\text{रा} = \frac{\text{अ}(\text{ब}+\text{द})}{2}, \quad \text{प} = \left(\frac{\text{ब}+\text{द}}{2}\right)^2,$$

$$\text{और } \text{र} = \frac{\text{ब}+\text{द}}{2} \times \sqrt{\text{अ}^2 - \frac{(\text{ब}-\text{द})^2}{4}}\ ।$$

आधार और ऊपरी भुजा के लिये ऊपर दिये गये सूत्र रा र और प के इन मानों का प्रतिस्थापन करने पर सरलतापूर्वक सत्यापित किये जा सकते हैं। इसी प्रकार तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के संबंध में भी यह नियम ठीक सिद्ध होता है।
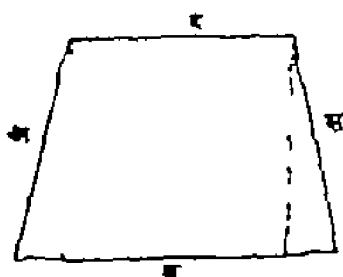
अत्रोद्देशकः

गणितं सूक्ष्मं पञ्च त्रयोदश व्यावहारिकं गणितम् ।
द्विसमचतुरश्रभूमुखदोषः के षोडशेच्छा च ॥ १६६$\frac{1}{2}$ ॥

त्रिसमचतुरश्रस्योदाहरणम् ।

गणितं सूक्ष्मं पञ्च त्रयोदश व्यावहारिकं गणितम् ।
त्रिसमचतुरश्रबाहून् संचिन्त्य सखे ममाचक्ष्व ॥ १६७$\frac{1}{2}$ ॥

व्यावहारिकस्थूलफलं सूक्ष्मफलं च ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकस्थूलफलवत् सूक्ष्मगणितफलवत्सम-त्रिभुजानयनस्य च समवृत्तक्षेत्रव्यासानयनस्य च सूत्रम्—

धनवर्गान्तरमूलं यत्तन्मूलाद्द्विसंगुणितम् ।
बाहुस्त्रिसमत्रिभुजे समस्य वृत्तस्य विष्कम्भः ॥ १६८$\frac{1}{2}$ ॥

सन्निकट क्षेत्रफल का माप, मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित होकर, भुजाओं के मान को उत्पन्न करता है ।

तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की दशा में, ऊपर बतलाये हुए दो क्षेत्रफलों के वर्गों के अंतर के वर्गमूल को क्षेत्रफल के सन्निकट माप में जोड़ते हैं । इस परिणामी योग को विकल्पित राशि मानकर उसमें ऊपर बतलाये हुए वर्गमूल को जोड़ते हैं । पुनः, उसी विकल्पित राशि में से उक्त वर्गमूल को घटाते हैं । इस प्रकार प्राप्त राशियों में वर्गमूल का भाग अलग-अलग देकर, आधार और ऊपरी भुजा प्राप्त करते हैं । यहाँ भी क्षेत्रफल के व्यावहारिक माप को इस विकल्पित राशि के वर्गमूल द्वारा भाजित करने पर अन्य भुजाओं के माप प्राप्त होते हैं ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप ५ है, क्षेत्रफल का सन्निकट माप १३ है, और मन से चुनी हुई राशि १६ है । दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में आधार, ऊपरी भुजा और अन्य भुजा के मान क्या-क्या हैं ? ॥ १६६$\frac{1}{2}$ ॥

तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र संबंधी एक उदाहरण—

क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से शुद्ध माप ५ है, और क्षेत्रफल का व्यावहारिक माप १३ है । हे मित्र, सोचकर मुझे बतलाओ कि तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की भुजाओं के माप क्या-क्या हैं ? ॥ १६७$\frac{1}{2}$ ॥

समत्रिबाहु त्रिभुज और समवृत्त के व्यास को प्राप्त करने के लिये नियम, जब कि उनके व्यावहारिक और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप ज्ञात हों—

क्षेत्रफल के सन्निकट और सूक्ष्म रूप से ठीक मापों के वर्गों के अंतर के वर्गमूल के वर्गमूल को २ द्वारा गुणित किया जाता है । परिणाम, इष्ट समत्रिभुज की भुजा का माप होता है । वह, इष्ट वृत्त के व्यास का माप भी होता है ॥ १६८$\frac{1}{2}$ ॥

(१६८$\frac{1}{2}$) किसी समबाहुत्रिभुज के व्यावहारिक और सूक्ष्म क्षेत्रफल के मानों के लिये इस अध्याय की गाथा ७ और ५० के नियमों को देखिये ।

लम्बकृताविष्टेनासमसंक्रमणीकृते भुजा ज्येष्ठा ।
ह्रस्वयुतिवियुति मुखभूयुतिदलितं तलमुखे द्विसमचतुरश्रे ॥ १७३½ ॥

अत्रोद्देशकः

भूरिन्द्रा दोर्विश्वे वक्त्रं गतयोऽवलम्बको रवयः ।
इष्टं दिक् सूक्ष्मं तत्फलवद्द्विसमचतुरश्रमन्यत् किम् ॥ १७४½ ॥

यदि दिये गये दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के लंब का वर्ग दत्त विकल्पित संख्या के साथ विषम संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाया जाता है, तो प्राप्त दो फलों में से बड़ा मान दो बराबर भुजाओंवाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की बराबर भुजाओं में से किसी एक का मान होता है। दो बराबर भुजाओं वाले दिये गये चतुर्भुज की ऊपरी भुजा और आधार के मानों के योग की अर्द्धराशि को, क्रमशः, उपर्युक्त विषम संक्रमण में प्राप्त दो फलों में से छोटे फल द्वारा बढ़ाकर और ह्रासित करने पर दो बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के आधार और ऊपरी भुजा के माप उत्पन्न होते हैं ॥ १७३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र का आधार १४ है, दो बराबर भुजाओं में से प्रत्येक का माप १३ है, ऊपरी भुजा ४ है, लम्ब १२ है, और दत्त विकल्पित संख्या १० है। दो बराबर भुजाओं वाला ऐसा कौन सा चतुर्भुज है, जिसके सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप दिये गये चतुर्भुज के क्षेत्रफल के बराबर है ? ॥ १७४½ ॥

(१७३½) इस नियम में ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया है, जिसमें ऐसे दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की रचना करना है, जिसका क्षेत्रफल किसी दूसरे दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के तुल्य हो, और जिसकी ऊपरी भुजा से आधार तक की लम्ब दूरी भी उसी के समान हो। मान लो दिये गये चतुर्भुज की बराबर भुजाएँ अ और स हैं, और ऊपरी भुजा तथा आधार क्रमशः ब और द हैं। यह भी मान लो कि लम्ब दूरी प है। यदि इष्ट चतुर्भुज की संवादी भुजाएँ $अ_1$, $ब_1$, $स_1$, $द_1$ हों, तो क्षेत्रफल और लम्ब दूरी, दोनों चतुर्भुजों के संबंध में बराबर होने से हमें यह प्राप्त होता है—

$$द_1 + ब_1 = द + ब \quad \ldots (1),$$

$$\text{और } अ_1^2 - \left(\frac{द_1 - ब_1}{2}\right)^2 = प^2 \ldots \quad (2),$$

$$\text{अर्थात् } \left(अ_1 + \frac{द_1 - ब_1}{2}\right)\left(अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) = प^2 ।$$

$$\text{मानलो } अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2} = ना, \text{ तब } अ_1 + \frac{द_1 - ब_1}{2} = \frac{प^2}{ना},$$

$$\text{और } \left(अ_1 \times \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) + \left(अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) = \frac{प^2}{ना} + ना ।$$

$$\therefore \frac{\frac{प^2}{ना} + ना}{2} = अ_1, \quad \ldots (3)$$

द्विसमचतुरश्रक्षेत्रव्यावहारिकस्थूलफलसंख्यां ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकस्थूलफले इष्टसंख्याविभागे कृते सति तद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रमध्ये तत्तद्भागस्य भूमिसंख्यानयनेऽपि तत्तत्स्थानावलम्बकसंख्यानयनेऽपि सूत्रम्—

खण्डयुतिभक्तवक्त्रमुखकृत्यन्तरगुणितखण्डमुखवर्गयुतम् ।
मूलमधस्तन्मुखयुतदलहृतखण्डं च लम्बकं क्रमशः ॥१७५½॥

जब कोई दत्त व्यावहारिक माप वाला क्षेत्रफल किसी दी गई संख्या के भागों में विभाजित किया जाय, तब दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के उन विभिन्न भागों से आधारों के संख्यात्मक मानों तथा विभिन्न विभाजन बिन्दुओं से मापी गई भुजाओं के संख्यात्मक माप को निकालने के लिये नियम जब कि दो भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के व्यावहारिक क्षेत्रफल का संख्यात्मक मान दिया गया हो—

दो बराबर भुजाओं वाले दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र के आधार और ऊपरी भुजा के संख्यात्मक मानों के वर्गों के अंतर को इष्ट अनुपाती भागों के कुल मान द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल के द्वारा विभिन्न भागों के निष्पत्तियों के मान क्रमशः गुणित किये जाते हैं। प्राप्त गुणनफलों में से प्रत्येक में दिये गये चतुर्भुज की ऊपरी भुजा के माप का वर्ग जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग का वर्गमूल प्रत्येक भाग के आधार के मान को उत्पन्न करता है। प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि द्वारा भाजित होकर इस क्रम में लंब का माप उत्पन्न करता है, जो लम्बित माप के लिये भुजा की तरह बर्ता जाता है ॥ १७५½ ॥

$$\text{और} \quad \frac{द+ब}{२} \pm \frac{\frac{प^२}{ना} - ना}{२} = \frac{द_१+ब_१}{२} \pm \left\{ \frac{\left(अ_१ + \frac{द_१-ब_१}{२}\right) - \left(अ_१ - \frac{द_१-ब_१}{२}\right)}{२} \right\}$$

$$= द_१ \text{ अथवा } ब_१ \qquad (४)$$

यहाँ 'ना' इष्ट अथवा दत्त विकल्पित संख्या है। तीसरे और चौथे सूत्र वे हैं, जो प्रश्न का साधन करने के नियम में दिये गये हैं।

(१७५½) यदि च छ ज झ दो बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज हो, और इफ, गह और कल चतुर्भुज को इस तरह विभाजित करते हों कि विभाजित भाग क्षेत्रफल के संबंध में क्रमशः म, न, प, ल के अनुपात में हों तो इस नियम के अनुसार,

जब भुजा च छ = अ, छ ज = द, ज झ = स और झ च = ब है, तब

$$इफ = \sqrt{\frac{द^२ - ब^२}{म+न+प+ल} \times म + ब^२} \; ;$$

$$गह = \sqrt{\frac{द^२ - ब^२}{म+न+प+ल} \times (म+न) + ब^२} \; ;$$

$$कल = \sqrt{\frac{द^२ - ब}{म+न+प+ल} \times (म+न+प) + ब^२}$$

इत्यादि ।

इसी प्रकार,
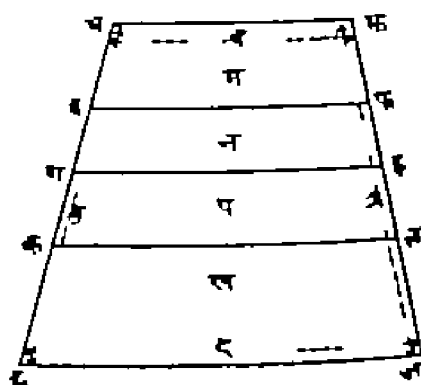
अत्रोद्देशकः

वदनं सप्तोक्तमधः क्षितिस्त्रयोविंशतिः पुनस्त्रिंशत् ।
बाहू द्वाभ्यां भक्तं चैकैक लब्धमत्र का भूमिः ॥ १७६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊपरी-भुजा का माप ७ है, नीचे आधार का माप २३ है, और शेष भुजाओं में से प्रत्येक का माप ३० है। ऐसे क्षेत्र में अंतराविष्ट क्षेत्रफल ऐसे दो भागों में विभाजित किया जाता है कि प्रत्येक को एक (हिस्सा) प्राप्त होता है। यहाँ निकाले जाने वाले आधार का मान क्या है ? ॥ १७६½ ॥

$$\text{चइ} = \frac{\left(\text{अ} \times \frac{\text{द}+\text{ब}}{२}\right) \times \frac{\text{म}}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}}}{\frac{\text{इफ}+\text{चझ}}{२}},$$

$$\text{इग} = \frac{\left(\text{अ} \times \frac{\text{द}+\text{ब}}{२}\right) \times \frac{\text{न}}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}}}{\frac{\text{गइ}+\text{इफ}}{२}},$$

$$\text{गक} = \frac{\left(\text{अ} \times \frac{\text{द}+\text{ब}}{२}\right) \times \frac{\text{प}}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}}}{\frac{\text{कल}+\text{गइ}}{२}};$$

इत्यादि ।

यह सरलतापूर्वक दिखाया जा सकता है कि $\frac{\text{चछ}}{\text{चइ}} = \frac{\text{छज} - \text{चझ}}{\text{इफ} - \text{चझ}}$,

$$\therefore \frac{\text{चछ}\,(\text{छज}+\text{चझ})}{\text{चइ}\,(\text{इफ}+\text{चझ})} = \frac{(\text{छज})^२ - (\text{चझ})^२}{(\text{इफ})^२ - (\text{चझ})^२},$$

परन्तु, $\frac{\text{चछ}\,(\text{छज}+\text{चझ})}{\text{चइ}\,(\text{इफ}+\text{चझ})} = \frac{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}}{\text{म}}$,

$$\therefore \frac{(\text{छज})^२ - (\text{चझ})^२}{(\text{इफ})^२ - (\text{चझ})^२} = \frac{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}}{\text{म}},$$

$$\therefore (\text{इफ})^२ = \frac{\text{म}\,(\overline{\text{छज}}^२ - \overline{\text{चझ}}^२)}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} + (\text{चझ})^२ = \frac{\text{द}^२ - \text{ब}^२}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} \times \text{म} + \text{ब}^२,$$

और $\text{इफ} = \sqrt{\frac{\text{द}^२ - \text{ब}^२}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} \times \text{म} + \text{ब}^२}$ । इसी प्रकार अन्य सूत्र सत्यापित किये जा सकते हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में ग्रंथकार ने केवल यह कहा है कि भजनफल को भागों के मानों से गुणित करना पड़ता है, तथापि वास्तव में भजनफल को प्रत्येक दशा में भागों के मानों से ऊपरी भुजा तक की प्ररूपण करने वाली संख्या के द्वारा गुणित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, पिछले पृष्ठ की आकृति में

भूमिर्द्विषष्टिशतमथ चाष्टादश वदनमत्र संदृष्टम् ।
लम्बाश्च पुरः पतितं क्षेत्रं भक्तं नरैश्चतुर्भिश्च ॥ १७७½ ॥
एकद्विकत्रिकचतुःखण्डान्येकैकपुरुषलब्धानि ।
प्रक्षेपतया गणितं सलम्बावलम्बकं ब्रूहि ॥ १७८½ ॥
भूमिरशीतिर्वदनं चत्वारिंशच्चतुर्गुणा षष्टिः ।
अवलम्बकप्रमाणं त्रीण्यष्टौ पञ्च खण्डानि ॥ १७९½ ॥

स्तम्भद्वयप्रमाणसंख्यां ज्ञात्वा तत्स्तम्भद्वयाग्रे सूत्रद्वयं बद्ध्वा तत्सूत्रद्वयं कर्णाकारेण इतरेतरस्तम्भमूलं वा तत्स्तम्भमूलमतिक्रम्य वा संस्पृश्य तत्कर्णाकारसूत्रद्वयस्पर्शनस्थानादारभ्य अधःस्थितभूमिपर्यन्तं तन्मध्ये एकं सूत्रं प्रसार्य तत्सूत्रप्रमाणसंख्यैव अन्तरावलम्बकसंज्ञा भवति । अन्तरावलम्बकस्पर्शनस्थानादारभ्य तस्यां भूम्यामुभयपार्श्वयोः कर्णाकारसूत्रद्वयस्पर्शनपर्यन्तं आबाधासंज्ञा स्यात् । तदन्तरावलम्बकसंख्यानयनस्य आबाधासंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

स्तम्भौ स्वस्वान्तरभूहतौ स्वयोगाहृतौ च भूगुणितौ ।
आबाधे ते व्यस्तप्रक्षेपगुणोऽन्तरवलम्बः ॥ १८०½ ॥

दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के आधार का माप १६२ है और ऊपरी भुजा का माप १८ है। दो भुजाओं में से प्रत्येक का माप ९० है। इस प्रकार इस आकृति से घिरा हुआ क्षेत्रफल, ४ मनुष्यों में विभाजित किया जाता है। मनुष्यों को प्राप्त भाग क्रमशः १, २, ३ और ४ के अनुपात में हैं। इस अनुपाती विभाजन के अनुसार प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल, आधार और दो बराबर भुजाओं में से एक के मानों को बतलाओ ॥ १७७½–१७८½ ॥ दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र के आधार का माप ८० है, ऊपरी भुजा ४० है तथा दो बराबर भुजाओं में से प्रत्येक ४ × ६० है। हिस्से क्रमशः ३, ८ और ५ के अनुपात में हैं। इन भागों के क्षेत्रफल, आबाधाओं और भुजाओं के मानों को निकालो ॥ १७९½ ॥

ज्ञात ऊँचाई वाले दो स्तंभों में से प्रत्येक के ऊपरी सिरे में दो धागे (सूत्र) बँधे हुए हैं। इन दो धागों में से प्रत्येक इस तरह फैला हुआ है कि वह सम्मुख स्तंभ के मूल भाग को कर्ण के रूप में स्पर्श करता है अथवा दूसरे स्तंभ के पार जाकर भूमि को स्पर्श करता है। उस बिन्दु से, जहाँ दो कर्णाकार धागे मिलते हैं, एक और दूसरा धागा इस तरह लटकाया जाता है कि वह लंब रूप होकर भूमि को स्पर्श करता है। इस अंतिम धागे के माप का नाम अंतरावलम्बक या भीतरी लंब होता है। जहाँ पर यह लम्बरूप धागा भूमि को स्पर्श करता है उस बिन्दु से किसी भी ओर प्रस्थान करने वाली रेखा उन बिन्दुओं तक जाकर (जहाँ कर्ण धागे भूमि को स्पर्श करते हैं) आबाधा अथवा आधार का खंड कहलाती है। ऐसे लम्ब तथा आबाधाओं के मापों को प्राप्त करने के नियम—

प्रत्येक स्तम्भ के माप को स्तम्भ के मूल से लेकर कर्ण धागे के भूमि स्पर्श बिन्दु तक के बीच की लम्बाई वाले आधार के माप द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक भजनफल भजनफलों के योग द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफलों को संपूर्ण आधार के माप द्वारा गुणित करने पर क्रम से आबाधाओं के माप प्राप्त होते हैं। ये आबाधाओं के माप क्रमशः विलोम क्रम में ऊपर दिये गये प्रथम बार में प्राप्त भजनफलों द्वारा गुणित होने पर प्रत्येक दशा में अंतरावलम्बक (भीतरी लम्ब) को उत्पन्न करते हैं ॥ १८०½ ॥

प द का मान निकालने के लिये $\frac{द^2 - ब^2}{म + न + प + फ}$ को केवल म से ही नहीं वरन् म + न से भी गुणित करना पड़ता है।

अत्रोद्देशकः

षोडशहस्तोच्छ्रायौ स्तम्भाववनिश्च षोडशोद्दिष्टौ ।
आबाधान्तरसंख्यामत्राप्यवलम्बकं ब्रूहि ॥ १८१½ ॥
स्तम्भैकस्योच्छ्रायः षट्त्रिंशद्विंशतिर्द्वितीयस्य ।
भूमिर्द्वादश हस्ताः काबाधा कोऽयमवलम्बः ॥ १८२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये स्तंभ की ऊँचाई १६ हस्त है। उस आधार की लम्बाई जो उन दो बिन्दुओं के बीच की होती है, जहाँ धागे भूमि को स्पर्श करते हैं, १६ हस्त देखी गई है। इस दशा में आधार के खंडों (आबाधाओं) और अंतरावलम्बक के संख्यात्मक मानों को निकालो ॥ १८१½ ॥ एक स्तंभ की ऊँचाई ३६ हस्त है, दूसरे की २० हस्त है। आधार रेखा की लम्बाई १२ हस्त है। आबाधाओं और अंतरावलम्बक के माप क्या-क्या हैं? ॥ १८२½ ॥ दो स्तंभ क्रमशः १२ और १५ हस्त हैं, उन दो

(१८०½) आकृति में यदि अ और ब स्तम्भों की ऊँचाईयाँ हों, स स्तंभों के बीच का अंतर हो, और म और न क्रमशः एक स्तम्भ के मूल से लेकर, भूमि को स्पर्श करने वाले, दूसरे स्तम्भ के अग्र से फैले हुए धागे के भूमिस्पर्श बिन्दु तक की लम्बाईयाँ हों, तो नियमानुसार,
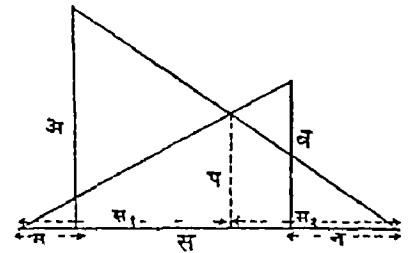
$$स_1 = \left\{ \frac{अ}{स+न} - \frac{अ(स+म)+ब(स+न)}{(स+म)(स+न)} \right\} \times (स+म+न),$$

$$स_2 = \left\{ \frac{ब}{स+म} - \frac{अ(स+म)+ब(स+न)}{(स+म)(स+न)} \right\} \times (स+म+न),$$ जहाँ $स_1$ और $स_2$ सम्पूर्ण आधार के खण्ड हैं।

और $प = स_1 \times \frac{ब}{स+म}$, अथवा $स_2 \times \frac{अ}{स+न}$, जहाँ प अन्तरावलम्बक है। इस आकृति में सजातीय त्रिभुजों पर विचार करने पर यह ज्ञात होगा कि—

$\frac{स_2}{प} = \frac{स+न}{अ}$ और $\frac{स_1}{प} = \frac{स+म}{ब}$।

इन निष्पत्तियों से हमें $\frac{स_1}{स_2} = \frac{अ(स+म)}{ब(स+न)}$ प्राप्त होता है,

$\therefore \frac{स_1}{स_1+स_2} = \frac{अ(स+म)}{अ(स+म)+ब(स+न)}$, $\quad स_1 = \frac{अ(स+म)(स+म+न)}{अ(स+म)+ब(स+न)}$,

क्योंकि $स_1 + स_2 = स+म+न$,

इसी प्रकार, $स_2 = \frac{ब(स+न)(स+म+न)}{अ(स+म)+ब(स+न)}$ $\therefore$ और $प = स_2 \times \frac{अ}{स+न} = स_1 \times \frac{ब}{स+म}$।

समचतुरश्रक्षेत्रं विंशतिहस्तायतं तस्य ।
कोणेभ्योऽथ चतुर्भ्यो विनिर्गता रज्जवस्तत्र ॥ १८८½ ॥
भुजमध्यं द्वियुगभुजे[1] रज्जुः का स्यात्सुसंवीता ।
को वावलम्बकः स्यादाबाधे केऽन्तरे[2] तस्मिन् ॥ १८९½ ॥

---

१. हस्तलिपि में अशुद्ध पाठ भुजचतुर्षु च है ।

२. केऽन्तरे में संधि का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, पर २०४½ वें श्लोक के समान यहाँ ग्रंथकार का प्रयोजन छंद हेतु स्वर सम्बन्धी मिलान है ।

चतुर्भुज की प्रत्येक भुजा २० हस्त है । उस आकृति के चारों कोण बिन्दुओं से, धागे सम्मुख भुजा के मध्य बिन्दु तक ले जाये जाते हैं, यह चारों भुजाओं के लिये किया जाता है । इस प्रकार प्रसारित धागों में प्रत्येक की लम्बाई का माप क्या है ? ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र के भीतर अंतरावलम्बक और उससे उत्पन्न आबाधाओं के माप क्या हो सकते हैं ? ॥ १८८½–१८९½॥

स्तंभ की ऊँचाई का माप ज्ञात है । किसी कारणवश स्तंभ भग्न हो जाता है, और भग्न स्तंभ का ऊपरी भाग भूमि पर गिरता है । (भग्न स्तंभ का) निम्न भाग उन्नत भाग के ऊपरी भाग पर अवलम्बित रहता है । तब स्तंभ के मूल से गिरे हुए ऊपरी अग्र (जो अब भूमि को स्पर्श करता है) की पैठिक (आधारीय) दूरी ज्ञात की जाती है । स्तंभ के मूल भाग से लेकर शेष उन्नत भाग के माप

(१८८½–१८९½) इस प्रश्न के अनुसार दी गई आकृति इस प्रकार है.—

यहाँ भीतरी लम्ब ग ह और क ल हैं । इन्हें प्राप्त करने के लिये पहिले फ इ को प्राप्त करते हैं । टीकानुसार

$$\text{फ इ का माप} = \sqrt{\frac{(\text{सम})^2}{2} - \left\{ (\text{दम})^2 + (\text{दइ}^2) + \tfrac{1}{2}\ \text{दम})^2 \right\}}$$

है । अ ब, फ इ और ब स अथवा अ द को स्तंभ मानकर संकेत में कथित नियम प्रयोग में लाया जा सकता है ।

(१९०½) यदि अ ब स समकोण त्रिभुज है और यदि अस का माप और अ ब तथा ब स के योग का माप दिया गया हो तब, अ ब और ब स के माप इस समीकरण द्वारा निकाले जा सकते हैं कि

$\text{ब स} = (\text{अ ब})^2 + (\text{अ स})^2$, नियम दिया गया सूत्र यह है :—

$$\text{अ ब} = \frac{(\text{अ ब} + \text{ब स})^2 - (\text{अ स})^2}{2\,(\text{अ ब} + (\text{ब स})}$$, यह अहाँ उपर्युक्त समीकरण से सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है ।
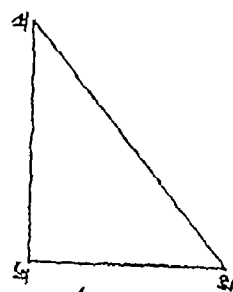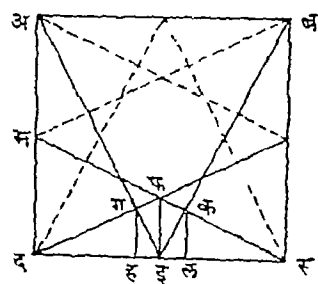
स्तम्भस्योन्नतप्रमाणसंख्यां ज्ञात्वा तस्मिन् स्तम्भे येनकेनचित्कारणेन भग्ने पतिते सति तत्स्तम्भाग्रमूलयोर्मध्ये स्थितां भूसंख्यां ज्ञात्वा तत्स्तम्भमूलादारभ्य स्थितपरिमाणसंख्यानयनस्य सूत्रम्—

निर्गमवर्गोन्तरमितिवर्गविशेषस्य यद्भवेदर्धम् ।
निर्गमनेन विभक्तं तावत्स्थित्वाथ भग्नः स्यात् ॥ १९०½ ॥

अत्रोद्देशकः

स्तम्भस्य पञ्चविंशतिरुच्छ्रायः कश्चिदन्तरे भग्नः ।
स्तम्भाग्रमूलमध्ये पञ्च स गत्वा कियान् भग्नः ॥ १९१½ ॥
वेणूच्छ्राये हस्ताः सप्तदश कश्चिदन्तरे भग्नः ।
भूमिश्च सैकविंशतिरस्य स गत्वा कियान् भग्नः ॥ १९२½ ॥
वृक्षोच्छ्रायो विंशतिरग्रस्थः कोऽपि तत्फलं पुरुषः ।
कर्णाकृत्या व्यक्षिपदथ तन्मूलस्थितः पुरुषः ॥ १९३½ ॥
तस्य फलस्याभिमुखं प्रतिभुजरूपेण गत्वा च ।
फलमग्रहीच्च तत्फलनरयोर्गतियोगसंख्यैव ॥ १९४½ ॥
पञ्चाशद्भूस्तत्फलगतिरूपा कर्णसंख्या का ।
तद्वृक्षमूलगतनरगतिरूपा प्रतिभुजापि कियती स्यात् ॥ १९५½ ॥

का संख्यात्मक मान निकालने के लिये यह नियम है—

संपूर्ण ऊँचाई के वर्ग और ज्ञात आधारीय (basal) दूरी के वर्ग के अंतर की अर्द्ध राशि जब संपूर्ण ऊँचाई द्वारा भाजित होती है तब शेष उन्नत भाग का माप उत्पन्न होता है। जो कुछ संपूर्ण ऊँचाई का शेष बचता है वह भग्न भाग का माप होता है ॥ १९०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्तंभ की ऊँचाई २५ हस्त है। वह मूल और अग्र के बीच कहीं टूटा है। फर्श पर गिरे हुए अग्र (ऊपरी भाग) और स्तंभ के मूल के बीच की दूरी ५ हस्त है। बताओ कि टूटने का स्थान बिन्दु मूल से कितनी दूर है? ॥ १९१½ ॥ (उगने वाले) बाँस की ऊँचाई का माप १७ हस्त है। वह मूल और अग्र के बीच कहीं भग्न हुआ है। आधारीय दूरी २१ हस्त है। वह मूल से कितनी दूरी पर टूटा है ॥ १९२½ ॥ किसी वृक्ष की ऊँचाई २० हस्त है। कोई मनुष्य उसके ऊपरी भाग (चोटी) पर बैठकर कर्णरूप पथ में फल को नीचे फेंकता है (अर्थात् वह फल सरल रेखा में गिरकर, समकोण त्रिभुज का कर्ण बनाता है)। तब दूसरा मनुष्य जो वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है फल तक सरल रेखा में पहुँचता है (यह पथ त्रिभुज की दूसरी भुजा का निर्माण करता है) और उस फल को ले लेता है। फल तथा इस मनुष्य द्वारा तय की गई दूरियों का योग ५० हस्त है। फल द्वारा तय किये गये पथ द्वारा निरूपित कर्ण का संख्यात्मक मान क्या है? मनुष्य द्वारा तय किये गये पथ द्वारा निरूपित अन्य भुजा का माप क्या हो सकता है? ॥ १९३½–१९५½ ॥

ज्येष्ठस्तम्भसंख्यां च अल्पस्तम्भसंख्यां च ज्ञात्वा उभयस्तम्भान्तरभूमिसंख्यां ज्ञात्वा तज्ज्येष्ठसंख्ये भग्ने सति ज्येष्ठस्तम्भाग्रे अल्पस्तम्भाग्रं स्पृशति सति ज्येष्ठस्तम्भस्य भग्नसंख्यानयनस्य स्थितशेषसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

ज्येष्ठस्तम्भस्य कृतेर्ह्रस्वावनिवर्गयुतिमपोह्यार्धम् ।
स्तम्भविशेषेण हृतं लब्धं भग्नोन्नतिर्भवति ॥ १९६½ ॥

अत्रोद्देशकः

स्तम्भः पञ्चोच्छ्रायः परस्त्रयोविंशतिस्तथा ज्येष्ठः ।
मध्यं द्वादश भग्नज्येष्ठाग्रं पतितमितराग्रे ॥ १९७½ ॥

आयतचतुरश्रक्षेत्रकोटिसंख्यायास्तृतीयांशद्वयं पर्वतोत्सेध परिकल्प्य तत्पर्वतोत्सेधसंख्यायाः सकाशात् तदायतचतुरश्रक्षेत्रस्य भुजसंख्यानयनस्य कर्णसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

गिर्युत्सेधो द्विगुणो गिरिपुरमध्यक्षितिर्गिरेरर्धम् ।
गगने तत्रोत्पतित गिर्यर्धव्याससंयुतिः कर्ण. ॥ १९८½ ॥

ऊँचाई में बड़े (ज्येष्ठ) स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान तथा ऊँचाई में छोटे (अल्प) स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान ज्ञात है । इन दो स्तभों के बीच की दूरी का सख्यात्मक मान भी ज्ञात है । ज्येष्ठ स्तभ भग्न होकर इस प्रकार गिरता है, कि उसका ऊपरी अग्र अल्प स्तंभ के ऊपरी अग्र पर अवलम्बित होता है, और भग्न भाग का निम्न भाग, शेष भाग के ऊपरी भाग पर स्थित रहता है । इस दशा में ज्येष्ठ स्तंभ के भग्न भाग की लम्बाई का संख्यात्मक मान तथा उसी ज्येष्ठ स्तंभ के शेष भाग की ऊँचाई के सख्यात्मक मान को प्राप्त करने के लिये नियम—

ज्येष्ठ स्तंभ के संख्यात्मक माप के वर्ग में से, अल्प स्तंभ के माप के वर्ग और आधार के माप के वर्ग के योग को घटाते हैं । परिणामी शेष की अर्द्ध राशि को दो स्तंभों के मापों के अंतर द्वारा भाजित करते हैं । प्राप्त भजनफल भग्न स्तंभ के उन्नत भाग की ऊँचाई होता है । ॥१९६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ ऊँचाई में ५ हस्त है, उसी प्रकार दूसरे ज्येष्ठ स्तंभ ऊँचाई मे २३ हस्त है । उनके बीच की दूरी १२ हस्त है । भग्न ज्येष्ठ स्तभ का ऊपरी अग्र अल्प स्तंभ के ऊपरी अग्र पर गिरता है । भग्न ज्येष्ठ स्तभ के उन्नत भाग की ऊँचाई निकालो ॥ १९७½ ॥

आयत क्षेत्र की ऊर्ध्वाधर (लब रूप) भुजा के सख्यात्मक मान की दो तिहाई राशि को पर्वत की ऊँचाई मानकर, उस पर्वत की ऊँचाई की सहायता से उक्त आयत के कर्ण और क्षैतिज भुजा (आधार) के सख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

पर्वत की दुगुनी ऊँचाई, पर्वत के मूल से वहाँ के शहर के बीच की दूरी का माप होती है । पर्वत की आधी ऊँचाई गगन में ऊपर की ओर की उड़ान की दूरी (उड्डयन) का माप है । पर्वत की आधी ऊँचाई में, (पर्वत के मूल से) शहर की दूरी का माप जोड़ने से कर्ण प्राप्त होता है ॥ १९८½ ॥

(१९६½) यदि ज्येष्ठ स्तम्भ की ऊँचाई अ और अल्प स्तम्भ की ब द्वारा निरूपित हो, उनके बीच की दूरी स हो, और $अ_1$ भग्न स्तम्भ के उन्नत भाग की ऊँचाई हो, तो नियमानुसार,

$$अ_1 = \frac{अ^2 - (ब^2 + स^2)}{2(अ - ब)}$$ ।
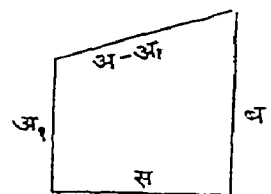
अत्रोद्देशकः

योजनोच्छ्रितशिखरिणि यतीश्वरौ तिष्ठतस्तत्र ।
एकोऽङ्घ्रिचर्ययागादन्योऽप्याकाशचार्यपरः ॥ १९९½ ॥
प्रतिविसमुत्पत्य पुरं गिरिशिखरान्मूलमपरस्त्वाम्यः ।
समगतिकौ संजातौ नगरन्यासः किमुत्पतितम् ॥ २००½ ॥

दोलाकारक्षेत्रे स्तम्भद्वयस्य वा गिरिद्वयस्य वा उत्सेधपरिमाणसंख्यामेव आयतचतुरश्रभुजद्वयं क्षेत्रद्वये परिकल्प्य तद्गिरिद्वयान्तरभूम्या वा तत्स्तम्भद्वयान्तरभूम्या वा आबाधाद्वयं परिकल्प्य तदाबाधाद्वयं व्युत्क्रमेण निक्षिप्य तद्व्युत्क्रमं न्यस्ताबाधाद्वयमेव आयतचतुरश्रक्षेत्रद्वये कोटिद्वयं परिकल्प्य तत्कर्णद्वयस्य समानसंख्यानयनसूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

१ योजन ऊँचाई वाले किसी पर्वत पर २ यतीश्वर रहते थे। उनमें से एक ने पैदल गमन किया। दूसरे आकाश में गमन कर सकते थे। वे दूसरे यतीश्वर ऊपर की ओर उड़े, और तब शहर में कर्ण मार्ग से उतरे। प्रथम यतीश्वर शिखर से पर्वत के मूल तक सीधे नीचे की ओर उदग्र दिशा में उतरे और पैदल शहर की ओर चले। यह ज्ञात हुआ कि दोनों ने समान दूरियाँ तय कीं। पर्वत के मूल से शहर तक की दूरी क्या है, और ऊपरी उड़ान की ऊँचाई कितनी है? ॥ १९९½–२००½ ॥

दोलक (डोल) और उसके दो भूमि पर आधारित स्तंभरूप अवयवों द्वारा निरूपित क्षेत्र में, दो स्तंभों अथवा दो पर्वत शिखरों की ऊँचाइयों के माप दो आयत चतुरश्र क्षेत्रों की क्षैतिज (क्षितिज के समानान्तर) भुजाओं के माप मान लिये जाते हैं। तब इन ज्ञात क्षैतिज भुजाओं की सहायता से और (दृष्टानुसार) दो पर्वत अथवा दो स्तंभ के बीच की आधार रेखा के संबंध में लंब के मिलन बिन्दु द्वारा उत्पन्न आबाधाओं (खंडों) के मानों को प्राप्त करते हैं। इन दो आबाधाओं को विलोम क्रम में लिखते हैं। इस प्रकार विलोम क्रम में लिखे गये (दो आबाधाओं के) मानों को दो आयताकार चतुर्भुज क्षेत्रों की दो लंब भुजाओं के माप मान लेते हैं। (ऐसी दशा में) इन दो आयतों के कर्णों के समान संख्यात्मक मान को प्राप्त करने के लिये नियम —

(१९९½–२००½) आकृति में यदि पर्वत की ऊँचाई 'अ' द्वारा निरूपित है, शहर से पर्वत के मूल की दूरी 'ब' है, और कर्ण मार्ग की लम्बाई 'स' है, तो गाथा १९८½ के नियम की पृष्ठभूमि में की गई कल्पना के अनुसार 'अ' भुजा आ द की ½ है। इसलिये ऊर्ध्व दिशा की उड़ान द या अर्थात् ½ अ है　　　(१)

चूँकि दो साधुओं की उड़ानें बराबर हैं　$स + \frac{१}{२} अ = अ + ब$,

$स = \frac{१}{२} अ + ब$　　　(२)

$स^{२} = \frac{१}{४} अ^{२} + ब^{२} + अ ब$　परन्तु $स^{२} = \frac{९}{४} अ^{२} + ब^{२}$;

$अ ब = २ अ^{२}$।

$ब = २ अ$.　　　(३)

दिये गये नियम में ये ही तीन सूत्र (१) (२) और (३) वर्णित हैं।
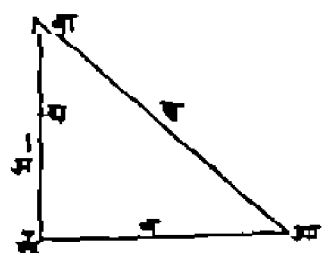
डोलाकारक्षेत्रस्तम्भद्वितयोर्ध्वसंख्ये वा ।
शिखरिद्वयोर्ध्वसंख्ये परिकल्प्य भुजद्वयं त्रिकोणस्य ॥ २०१½ ॥
तद्दोर्द्वितयान्तरगतभूसंख्यायास्तदाबाधे ।
आनीय प्राग्वत्ते व्युत्क्रमतः स्थाप्य ते कोटी ॥ २०२½ ॥
स्यातांतस्मिन्नायतचतुरश्रक्षेत्रयोश्च तद्दोर्भ्याम् ।
कोटिभ्यां कर्णौ द्वौ प्राग्वत्स्यातां समानसंख्यौ तौ ॥ २०३½ ॥

डोल तथा उसके दो लंबरूप अवलंबों द्वारा निरूपित आकृति के सबंध में, दो स्तंभों की अथवा दो पर्वतों की ऊँचाइयों के मापों को त्रिभुज की दो भुजाओं के माप मान लेते हैं। तब, दिये गये स्तभों अथवा पर्वतों की बीच की आधार रेखा के मान के तुल्य इन दो भुजाओं के बीच की आधार रेखा के सबंध में, शीर्ष से आधार पर गिराये गये लंब से उत्पन्न आबाधाओं के मान पहिले दिये गये नियमानुसार प्राप्त करते हैं। यदि इन आबाधाओं (खंडों) के मानों को विलोम क्रम में लिखा जावे, तो वे इष्ट क्रिया में दो आयतों की दो लंब भुजाओं के मान बन जाते हैं। अब, पहिले दिये गये नियमानुसार दो आयतों के कर्णों के मानों को उपर्युक्त त्रिभुज की दो भुजाओं (जो यहाँ आयत की दो क्षैतिज भुजाएँ ली गई हैं) तथा उन दो लंब भुजाओं की सहायता से प्राप्त करते हैं। ये कर्ण समान सख्यात्मक मान के होते हैं ॥ २०१½–२०३½ ॥

(२०१½–२०३½) इस नियम में वर्णित चतुर्भुजों में, मानलो, लंब भुजाएँ अ, ब द्वारा निरूपित हैं, आधार स है, $स_1$, $स_2$ उसके खंड (आबाधायें) हैं, और रज्जु (रस्से) के प्रत्येक समान भाग की लम्बाई ल है।

अब, $अ^2 + स_1^2 = ब^2 + स_2^2$ ।

$\therefore (स_2 + स_1)(स_2 = स_1) = अ^2 - ब^2$, और $स_1 + स_2 = स$,

$$\therefore स_2 = \frac{\frac{अ^2 - ब^2}{स} + स}{2} \text{ ओर } स_1 = \frac{स - \frac{अ^2 - ब^2}{स}}{2} ।$$
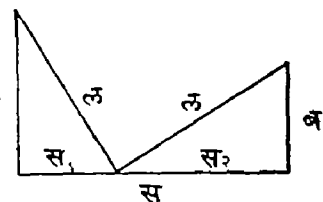
ये मान, अ और ब भुजाओंवाले त्रिभुज के 'स' माप वाले आधार के खंडों के हैं। आधार के खंड शीर्ष से लंब गिराने से उत्पन्न हुए हैं। नियम में यही कथित है। गाथा ४९ का नियम भी देखिये।

(२१०½) यहाँ बतलाया हुआ पथ समकोण त्रिभुज की भुजाओं में से होकर जाता है। इस नियम में दिये गये सूत्र का बीजीय निरूपण यह है—

$क = \frac{ब^2 + अ^2}{ब^2 - अ^2} \times द$, जहाँ क कर्णपथ से जाने पर व्यतीत हुए दिनों की संख्या है, अ और ब क्रमश दो मनुष्यों की गतियाँ हैं, और द उत्तर दिशा से जानेपर व्यतीत हुए दिनों की संख्या है। इस प्रश्न में दत्त व्यास पर आधारित निम्नलिखित समीकरण से यह स्पष्ट है—

$$ब^2 \; क^2 = द^2 \; ब^2 + (फ + द)^2 \times अ^2$$

अत्रोद्देशकः

स्तम्भद्वयोदयोऽत्र पञ्चदशाप्यष्टादशान्तरितः ।
रज्जुर्बद्धा शिखरे भूमीपतिता क[1] आबाधे ॥ २०४ ॥
ते रज्जू समसंख्ये स्यातां तद्रज्जुमानमपि कथय ॥ २०५ ॥
द्वात्रिंशतिरुत्सेधो[1] गिरेस्तथाष्टादशान्यशैलस्य ।
विंशतिरुभयोर्मध्ये तयोश्च शिखरयोःस्थितौ साधू ॥ २०६ ॥
आकाशचारिणौ द्वौ समागतौ नगरमत्र भिक्षार्थे ।
समगतिकौ संयातौ तत्राबाधे कियत्संख्ये ॥
समगतिसंख्या कियती दोलाकारेऽत्र गणितज्ञ ॥ २०७½ ॥
त्रिंशतिरेकस्योन्नतिरुच्छ्रायश्च विंशतिस्तथान्यस्य ।
तन्मध्यं द्वात्रिंशतिरनयोरग्रयोश्च शृङ्गयोः स्थित्वा ॥ २०८½ ॥
आकाशचारिणौ द्वौ तन्मध्यपुरं समायातौ ।
भिक्षार्थे समगतिकौ स्यातां तन्मध्यगिर्यन्तरमध्यं किम् ॥ २०९½ ॥

विषमत्रिकोणक्षेत्ररूपेण हीनाधिकगतिमतोर्नरयोः समागमदिनसंख्यानयनसूत्रम्—

---

१ क आबाधे व्याकरणरूपेण अशुद्ध है क्योंकि द्विवाचक संख्या 'के' और 'आबाधे' के मध्य कोई संधि नहीं हो सकती है। १८९½ में श्लोक की टिप्पणी से मिलान करिये।

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ ऊँचाई में १६ हस्त है। दूसरा ऊँचाई में १५ हस्त है। इनके बीच की दूरी १४ हस्त है। इन दो स्तंभों के ऊपरी सिरों पर बँधा हुआ एक रस्सा (रज्जु) इस तरह नीचे लटकता है कि वह इन दो स्तंभों के बीच की दूरी को स्पर्श करता है। स्तंभों के बीच की आधार रेखा के इस प्रकार उत्पन्न खंडों के माप क्या-क्या हैं? रज्जु के दो लटकते हुए भाग लम्बाई में समान संख्यात्मक माप के हैं। रज्जु का माप भी बतलाओ ॥ २०४½–२०५½ ॥ किसी एक पर्वत की ऊँचाई ३२ योजन है। दूसरे पर्वत की १८ योजन है। इन दो पर्वतों के बीच की दूरी २० योजन है। पर्वत के शिखर पर स्थित हुए दो साधु आकाश में गमन कर सकते हैं। भिक्षा के लिये वे आकाश मार्ग से नीचे आते हैं, और इन पर्वतों के बीच बसे हुए नगर में मिलते हैं। यह ज्ञात है कि वे आकाश मार्ग से समान दूरियाँ तय कर आते हैं। इन दशाओं में दो पर्वतों के बीच की आधारीय रेखा के खंडों के संख्यात्मक माप क्या क्या हैं? हे गणितज्ञ, इस दोलाकार क्षेत्र में तय की गई समान राशियों का संख्यात्मक माप क्या है? ॥ २०६–२०७½ ॥ एक पर्वत की ऊँचाई ३० योजन है और उसी प्रकार दूसरे पर्वत की ऊँचाई २० योजन है। उनके बीच की दूरी ३२ योजन है। दो साधु जो अलग अलग पर्वत के अग्र पर स्थित थे और आकाश में गमन कर सकते थे उन दो पर्वतों के बीच में बसे हुए नगर में भिक्षा के लिए उतरे। वे आकाश से बराबर दूरियाँ तय करते हुए नीचे गये। उस मध्य में बसे हुए नगर और पर्वतों के बीच की दूरी का माप क्या है? ॥ २०८½–२०९½ ॥

विषम त्रिभुज की सीमाद्वारा निरूपित मार्ग पर असमान गति से चलने वाले दो मनुष्यों का समागम होने के लिये हुए दिनों की संख्या का माप निकालने के लिए नियम—

दिनगतिकृतिसंयोगं दिनगतिकृत्यन्तरेण हृत्वाथ ।
हृत्वोदग्गतिदिवसैस्तल्लब्धदिने समागमः स्यान्त्रोः ॥ २१०½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वे योजने प्रयाति हि पूर्वगतिस्त्रीणि योजनान्यपर ।
उत्तरतो गच्छति यो गत्वासौ तद्दिनानि पञ्चाथ ॥ २११½ ॥
गच्छन् कर्णाकृत्या कतिभिर्दिवसैर्नरं समाप्नोति ।
उभयोर्युगपद्गमनं प्रस्थानदिनानि सदृशानि ॥ २१२½ ॥

पञ्चविधचतुरश्रक्षेत्राणां च त्रिविधत्रिकोणक्षेत्राणां चेत्यष्टविधबाह्यवृत्तव्याससंख्यानयनसूत्रम्—

श्रुतिरवलम्बकभक्ता पार्श्वभुजघ्ना चतुर्भुजे त्रिभुजे ।
भुजघातो लम्बहृतो भवेद्बहिर्वृत्तविष्कम्भः ॥ २१३½ ॥

दो मनुष्यों की दैनिक गतियों के संख्यात्मक मानों के वर्गों के योग को उन्हीं दैनिक गतियों के मानों के वर्गों के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल को उनमें से किसी एक के द्वारा उत्तर में यात्रा करते हुए (अन्य मनुष्य से मिलने हेतु दक्षिण पूर्व में जाने के पहिले) व्यतीत हुए दिनों की संख्या द्वारा गुणित करते हैं, इन दो मनुष्यों का समागम इस गुणनफल द्वारा मापे गये दिनों की संख्या के अंत में होता है ॥ २१०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्व की ओर यात्रा करनेवाला मनुष्य २ योजन प्रतिदिन की गति से चलता है, और उत्तर की ओर यात्रा करने वाला दूसरा मनुष्य ३ योजन प्रतिदिन की गति से चलता है। यह दूसरा मनुष्य ५ दिनों तक (इस प्रकार) चलने के पश्चात् कर्ण पर चलने के लिये मुड़ता है। वह पहिले मनुष्य से कितने दिन पश्चात् मिलेगा ? दोनों एक ही समय प्रस्थान करते हैं, और यात्रा में दोनों को समान समय लगता है ॥ २११½–२१२½ ॥

पाँच प्रकार के चतुर्भुज क्षेत्रो तथा तीन प्रकार के त्रिभुज क्षेत्रोंवाली आठ प्रकार की आकृतियों के परिगत वृत्तों के व्यासों के संख्यात्मक मान को निकालने के लिये नियम—

चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में, कर्ण के मान को लंब के मान द्वारा भाजित कर, और तब बाजू की भुजा के मान द्वारा गुणित करने पर, परिगत वृत्त के व्यास का मान उत्पन्न होता है। त्रिभुज क्षेत्र के संबंध में आधार को छोड़कर, शेष दो भुजाओं के मानों के गुणनफल को लंब के मान द्वारा भाजित करने पर, परिगत वृत्त का इष्ट व्यास उत्पन्न होता है ॥ २१३½ ॥

(२१३½) मानलो कि त्रिभुज अ ब स किसी वृत्त में अंतर्लिखित है। अद व्यास है और बइ, अस पर लंब है। बद को जोड़ो। अब त्रिभुज अ ब द और ब इ स के कोण क्रमशः आपस में बराबर हैं (अर्थात् ये त्रिभुज सजातीय [similar] हैं)

∴ अब : अद = बइ : बस, 　अद = $\frac{\text{अब} \times \text{बस}}{\text{बइ}}$ ।

यह सूत्र नियम में चतुर्भुज त्रिभुज के परिगत वृत्त के व्यास को प्राप्त करने के लिये दिया गया है।

अत्रोद्देशकः
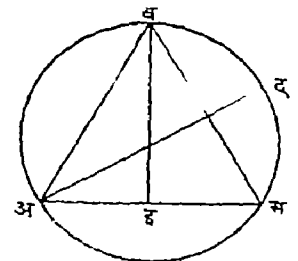
समचतुरश्रस्य त्रिकबाहुप्रतिबाहुकस्य चान्यस्य ।
कोटिः पञ्च द्वादश भुजास्य किं वा बहिर्वृत्तम् ॥ २१४½ ॥
बाहू त्रयोदश मुखं चत्वारि धरा चतुर्दश प्रोक्ता ।
द्विसमचतुरश्रबाहिरविष्कम्भः को भवेदत्र ॥ २१५½ ॥
पञ्चकृतिर्वदनभुजाश्चत्वारिंशच्च भूमिरेकोना ।
त्रिसमचतुरश्रबाहिरवृत्तव्यासं समाचक्ष्व ॥ २१६½ ॥
व्येका चत्वारिंशद्बाहुः प्रतिबाहुको द्विपञ्चाशत् ।
षष्टिर्भूमिर्वदनं पञ्चकृतिः कोऽत्र विष्कम्भः ॥ २१७½ ॥
त्रिसमस्य च षड्बाहुस्त्रयोदश द्विसमबाहुकस्यापि ।
भूमिर्दश विष्कम्भावनयोः कौ बाह्यवृत्तयोः कथय ॥ २१८½ ॥
बाहू पञ्चाभ्युत्तरदशकौ भूमिश्चतुर्दशो विषमे ।
त्रिभुजक्षेत्रे बाहिरवृत्तव्यासं समाचक्ष्व ॥ २१९½ ॥
द्विकबाहुषडश्रस्य क्षेत्रस्य भवेद्विविष्कम्भ कथय त्वम् ।
बाहिरविष्कम्भं मे पैशाचिकमत्र यदि वेत्सि ॥ २२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

(समबाहु चतुर्भुज) वर्गाकृति के संबंध में, जिसकी प्रत्येक भुजा ३ है और अन्य चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में जिसकी लंब भुजा ५ और क्षैतिज भुजा १२ है बतलाओ कि परिगत वृत्त के व्यास के माप क्या-क्या हैं? ॥ २१४½ ॥ दो पार्श्व भुजाओं में से प्रत्येक माप में १३ है, ऊपरी भुजा ४ है और आधार माप में १४ है। इस दशा में ऐसी दो समान भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के परिगत वृत्त के व्यास का माप बतलाओ ॥ २१५½ ॥ ऊपरी भुजा और दो बाजू की भुजाओं में से प्रत्येक माप में २५ है। आधार माप में ३९ है। यहाँ बतलाओ कि ऐसे तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के परिगत वृत्त के व्यास का माप क्या है? ॥ २१६½ ॥ पार्श्व भुजाओं में से किसी एक का माप ३९ है, दूसरी का माप ५२ है; आधार का माप ६० और ऊपरी भुजा का माप २५ है। इस चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में परिगत वृत्त का व्यास क्या है? ॥ २१७½ ॥ किसी समभुज त्रिभुज की भुजा का माप ६ है और समद्विबाहु त्रिभुज की भुजा का माप १३ है। इस दशा में आधार का माप १० है। इन त्रिभुजों के परिगत वृत्तों के व्यासों के मान निकालो ॥ २१८½ ॥ विषम त्रिभुज के संबंध में दो भुजाएँ माप में १५ और १३ हैं, आधार का माप १४ है। इसके परिगत वृत्त के व्यास का मान मुझे बतलाओ ॥ २१९½ ॥ यदि तुम गणित की पैशाचिक विधियाँ जानते हो, तो ठीक तरह सोचकर बतलाओ कि जिसकी प्रत्येक भुजा का माप २ है ऐसे नियमित षड्भुजाकार आकृतिवाले क्षेत्र के परिगत वृत्त के व्यास का मान क्या होगा? ॥ २२०½ ॥

(२२०½) इस गाथा पर लिखी गई कन्नड़ी टीका में प्रश्न को यह सूचित कर हल किया है कि नियमित षड्भुज का विकर्ण परिगत वृत्त के व्यास के तुल्य होता है।

इष्टसंख्याव्यासवत्समवृत्तक्षेत्रमध्ये समचतुरश्राद्यष्टक्षेत्राणां मुखभूभुजसंख्यानयनसूत्रम्—
लब्धव्यासेनेष्टव्यासो वृत्तस्य तस्य भक्तश्च ।
लब्धेन भुजा गुणयेद्भवेच्च जातस्य भुजसंख्या ॥ २२१½ ॥

अत्रोद्देशकः

वृत्तक्षेत्रव्यासस्त्रयोदशाभ्यन्तरेऽत्र संचिन्त्य ।
समचतुरश्राद्यष्टक्षेत्राणि सखे ममाचक्ष्व ॥ २२२½ ॥

आयतचतुरश्रं विना पूर्वकल्पितचतुरश्रादिक्षेत्राणां सूक्ष्मगणितं च रज्जुसंख्या च ज्ञात्वा तत्तत्क्षेत्राभ्यन्तरावस्थितवृत्तक्षेत्रविष्कम्भानयनसूत्रम्—
परिधेः पादेन भजेदनायतक्षेत्रसूक्ष्मगणितं तत् ।
क्षेत्राभ्यन्तरवृत्ते विष्कम्भोऽयं विनिर्दिष्टः ॥ २२३½ ॥

व्यास के ज्ञात संख्यात्मक मान वाले समवृत्त क्षेत्र में अंतर्लिखित वर्ग से प्रारंभ होने वाली आठ प्रकार की आकृतियों के आधार, ऊपरी भुजा और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये वृत्त के व्यास के मान को व्यास से प्राप्त ऐसे वृत्त के व्यास द्वारा भाजित किया जाता है, जो निर्दिष्ट प्रकार की विकल्प से चुनी हुई आकृति के परित. खींचा जाता है। इस मन से चुनी हुई आकृति के भुजाओं के मानों को उपर्युक्त परिणामी भजनफलों द्वारा गुणित करना चाहिए। इस प्रकार, दिये गये वृत्त में उत्पन्न आकृति की भुजाओं के संख्यात्मक मानों को प्राप्त करते हैं ॥ २२१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समवृत्त आकृति का व्यास १३ है। हे मित्र, ठीक तरह विचार कर मुझे बतलाओ कि इस वृत्त में अंतर्लिखित वर्गादि आठ प्रकार की विभिन्न आकृतियों के सबंध में विभिन्न माप क्या-क्या हैं ॥२२२½॥

केवल आयत क्षेत्र को छोड़कर पूर्वकथित विभिन्न प्रकार के चतुर्भुज और त्रिभुज क्षेत्रों के अंतर्गत वृत्तों के व्यास का मान निकालने के लिये नियम, जब कि इन्हीं चतुर्भुज और अन्य आकृतियों के सबध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप और परिमिति का संख्यात्मक मान ज्ञात हो—

(आयत क्षेत्र को छोड़कर अन्य किसी भी) आकृति के सूक्ष्म ज्ञात क्षेत्रफल को (उस आकृति की) परिमिति की एक चौथाई राशि द्वारा भाजित करना चाहिये। यह परिणाम उस आकृति के अंतर्गत वृत्त के व्यास का माप होता है ॥ २२३½ ॥

(२२१½) इष्ट और मन से चुनी हुई आकृतियों की सजातीयता (similiarity) से यह नियम स्वमेव प्राप्त हो जाता है।

(२२३½) यदि सब भुजाओं का योग 'य' हो, अंतर्गत वृत्त का व्यास 'व' हो, और संबंधित चतुर्भुज या त्रिभुजक्षेत्र का क्षेत्रफल 'क्ष' हो, तो

$$\frac{व}{२} \times \frac{य}{२} = क्ष \text{ होता है।}$$

इसलिये नियम में दिया गया सूत्र, $व = क्ष \div \frac{य}{४}$, है।

अत्रोद्देशकः

दश वृत्तस्य विष्कम्भः शिञ्जिन्यभ्यन्तरे सखे ।
दृष्टाष्टौ हि पुनस्तस्याः कः स्याद्धिगमो वद ॥ २२८½ ॥

ज्यासंख्यां च बाणसंख्यां च ज्ञात्वा समवृत्तक्षेत्रस्य मध्यव्याससंख्यानयनसूत्रम्—
भक्तश्चतुर्गुणेन च शरेण गुणवर्गराशिरिपुसहितः ।
समवृत्तमध्यमस्थितविष्कम्भोऽयं विनिर्दिष्टः ॥ २२९½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि च समवृत्तक्षेत्रस्याभ्यन्तराधिगमनं द्वे ।
ज्या दृष्टाष्टौ दण्डा मध्यव्यासो भवेत्कोऽत्र ॥ २३०½ ॥

समवृत्तद्वयसंयोगे एका मत्स्याकृतिर्भवति । तन्मत्स्यस्य मुखपुच्छविनिर्गतरेखा कर्तव्या । तया रेखया अन्योन्याभिमुखधनुर्द्वयाकृतिर्भवति । तन्मुखपुच्छविनिर्गतरेखैव तद्धनुर्द्वयस्यापि ज्याकृतिर्भवति । तद्धनुर्द्वयस्य शरद्वयमेव वृत्तपरस्परसंपातशरौ ज्ञेयौ । समवृत्तद्वयसंयोगे तयोः संपातशरयोरानयनस्य सूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी दिये गये वृत्त के व्यास का माप १० है । साथ ही ज्ञात है कि भीतरी धनुष-डोरी का माप ८ है । हे मित्र, उस धनुष डोरी के संबंध में बाण रेखा का मान निकालो ॥ २२८½ ॥

जब धनुष-डोरी और बाण के संख्यात्मक मान ज्ञात हों, तब दिये गये वृत्त के व्यास के संख्यात्मक मान को निकालने के लिये नियम—

धनुष-डोरी के मान के वर्ग का निरूपण करने वाली संख्या, ४ द्वारा गुणित बाण के मान के द्वारा भाजित की जाती है । तब परिणामी भजनफल मे बाण का मान जोड़ा जाता है । इस प्रकार प्राप्त राशि नियमित वृत्त की, केन्द्र से होकर मापी गई, चौड़ाई का माप होती है ॥ २२९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समवृत्त क्षेत्र के संबंध में, बाण रेखा २ दंड, और धनुष डोरी ८ दंड है । इस वृत्त के संबंध में व्यास का मान क्या हो सकता है ? ॥ २३०½ ॥

जब दो वृत्त परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, तब मछली के आकार की आकृति उत्पन्न होती है । इस मत्स्याकृति के संबंध में मुख से पुच्छ को मिलानेवाली रेखा खींची जाती है । इस सरल रेखा की सहायता से एक दूसरे के सम्मुख दो धनुषों की उत्पत्ति होती है । मुख से पुच्छ को मिलाने वाली सरल रेखा इन दोनों धनुषों की धनुष-डोरी होती है । इन दो धनुषों के संबंध में दो बाण रेखाएँ पारस्परिक अतिछादी (overlapping) वृत्तों से संबंधित दो बाण रेखाओं को बनाने वाली समझी जाती हैं । जब दो समवृत्त परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, तब अतिछादी (overlapping) भाग से संबंधित बाण रेखाओं के मानों को निकालने के लिये नियम—

ग्रासोनव्यासाभ्यां ग्रासे प्रक्षेपकः प्रकर्तव्यः ।
वृत्ते च परस्परतः संपातशरौ विनिर्दिष्टौ ॥ २२१½ ॥

अत्रोद्देशकः

समवृत्तयोर्द्वयोर्हि द्वात्रिंशदशीतिहस्तविस्तृतयोः ।
ग्रासेऽष्टौ कौ बाणावन्योन्यभवौ समाचक्ष्व ॥ २२२½ ॥

इति पैशाचिकव्यवहारः समाप्तः ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ क्षेत्रगणितं नाम षष्ठव्यवहारः समाप्तः ।

प्रतिच्छेदित होने वाले वृत्तों के ऐसे दो व्यासों के दो मानों की सहायता से जिन्हें वृत्तों के अतिछादी (overlapping) भाग की सबसे अधिक चौड़ाई के माप द्वारा ह्रासित करते हैं वृत्तों के अतिछादी भाग की महत्तम चौड़ाई के इस ज्ञात माप के संबंध में प्रक्षेपक क्रिया करना चाहिये । ऐसे वृत्तों के संबंध में इस प्रकार प्राप्त दो परिणामों में से प्रत्येक दूसरे का, अतिछादी वृत्तों संबंधी दो बाणों का माप होता है ॥ २२१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो वृत्तों के संबंध में जिनके विस्तार व्यास क्रमशः ३२ और ८ हस्त हैं । साधारण अतिछादी भाग की महत्तम चौड़ाई ८ हस्त है । यहाँ इन दो वृत्तों के संबंध में बाण रेखाओं के मापों को बतलाओ ॥ २२२½ ॥

इस प्रकार क्षेत्र गणित व्यवहार में पैशाचिक व्यवहार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

इस प्रकार महावीराचार्य की कृति सार संग्रह नामक गणित शास्त्र में क्षेत्रगणित नामक षष्ठम व्यवहार समाप्त हुआ ।

(२२१½) इस नियम में अनुप्रयोगित प्रश्न आर्यभट्ट द्वारा भी साधित किया गया है । उनके द्वारा दिया गया नियम इस नियम के समान है ।

८. खातव्यवहारः

सर्वामरेन्द्रमुकुटार्चितपादपीठं सर्वज्ञमव्ययमचिन्त्यमनन्तरूपम् ।
भव्यप्रजासरसिजाकरबालभानुं भक्त्या नमामि शिरसा जिनवर्धमानम् ॥ १ ॥
क्षेत्राणि यानि विविधानि पुरोदितानि तेषां फलानि गुणितान्यवगाहनानि (नेन) ।
कर्मान्तिकौण्ड्रफलसूक्ष्मविकल्पितानि वक्ष्यामि सप्तममिदं व्यवहारखातम् ॥ २ ॥

सूक्ष्मगणितम्

अत्र परिभाषाश्लोक.—
हस्तघने पांसूनां द्वात्रिंशत्पलशतानि पूर्याणि । उत्कीर्यन्ते तस्मात् षट्त्रिंशत्पलशतानीह ॥ ३ ॥

---

८. खात व्यवहार (खोह अथवा गढ़ा संबंधी गणनाएँ)

मैं सिर झुकाकर उन वर्धमान जिनेन्द्र को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिनका पादपीठ (पैर रखने की चौकी) सभी अमरेन्द्रों के मुकुटों द्वारा अर्चित होता है, जो सर्वज्ञ हैं, अव्यय हैं, अचिन्त्य और अनन्तरूप हैं, तथा जो भव्य जीवों रूपी कमल समूह को विकसित करने के लिये बालभानु (अभिनव सूर्य) हैं ॥ १ ॥ अब मैं खात के संबंध में (विभिन्न प्रकार के) कर्मांतिक, औण्ड्रफल और सूक्ष्म फल का वर्णन करूँगा । ये समस्त प्रकार, उन उपर्युक्त विभिन्न प्रकार की रैखिकीय आकृतियों से गहराई मापने वाली राशियों द्वारा घटित गुणन क्रिया के परिणाम स्वरूप प्राप्त किये जाते हैं । यह सातवाँ व्यवहार, खात व्यवहार है ॥ २ ॥

सूक्ष्म गणित

परिभाषा के लिये एक श्लोक (व्यावहारिक कल्पना के लिये एक गाथा)—

किसी एक घन हस्त माप की खोह को भरने के लिये ३,२०० पल मात्रा की मिट्टी लगती है । उसी घन आयतन वाली खोह में ३,६०० पल मात्रा की मिट्टी निकाली जा सकती है ॥ ३ ॥

---

(२) औण्ड्रफल शब्द में 'औण्ड्र' पद विचित्र संस्कृत शब्द मालूम पड़ता है, और कदाचित् वह हिन्दी शब्द औण्ड से संबंधित है, जिसका अर्थ "गहरा" होता है ।

(३) इस धारणा का अभिप्राय स्पष्ट रूप से यह है कि एक घन हस्त दबी हुई मिट्टी का भार ३,६०० पल होता है, और इतनी जगह को शिथिलता से भरने के लिये ३,२०० पल भार की मिट्टी पर्याप्त होती है ।

खातगणितफलानयनसूत्रम्—

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखाते व्यावहारिकं गणितम् ।
मुखतलयुतिदलमथ सत्संख्याप्तं स्यात्समीकरणम् ॥ ४ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रस्याष्टौ बाहुः प्रतिबाहुकश्च वेधश्च । क्षेत्रस्य खातगणितं समखाते किं भवेदत्र ॥ ५ ॥
त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य द्वात्रिंशद्बाहुकस्य वेधे तु । षट्त्रिंशदृष्टहस्ते षडङ्गुलाग्रस्य किं गणितम् ॥ ६ ॥
अष्टादशव्यासस्य क्षेत्रस्य हि पञ्चषष्टिसहितशतम् ।
वेधो वृत्तस्य त्वं समखाते किं फलं कथय ॥ ७ ॥
आयतचतुरश्रस्य व्यासः पञ्चाग्रविंशतिर्दैर्घ्यः । षष्टिर्वेधोऽष्टाग्रं कथयाशु समस्य खातस्य ॥ ८ ॥

अस्मिन् खातगणिते कर्मान्तिकसंज्ञफलं च औण्ड्रसंज्ञफलं च ज्ञात्वा ताभ्यां कर्मान्तिकौण्ड्रसंज्ञफलाभ्याम् सूक्ष्मखातफलानयनसूत्रम्—

गड्ढों की घनात्मक समाई (अंतर्वस्तु) को निकालने के लिये नियम—

गहराई द्वारा गुणित क्षेत्रफल, नियमित (regular) खात (गड्ढे) की घनात्मक समाई का व्यावहारिक माप उत्पन्न करता है। सभी विभिन्न मुख (ऊपरी) विस्तारों के तथा उनके संवादी निम्न (bottom) विस्तारों के योगों को आधा किया जाता है। तब (उन्हीं अर्द्धित राशियों के) योग को कथित अर्द्धित राशियों की संख्या द्वारा भाजित किया जाता है। औसत समाई को प्राप्त करने के लिये यह किया है ॥ ४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नियमित खात के छेद के प्रतिरूपक समान भुजाओंवाले चतुर्भुज क्षेत्र, के संबंध में भुजाएँ तथा गहराई प्रत्येक माप में ८ हस्त है। इस नियमित गड्ढे (खात) में घनात्मक समाई का माप क्या है ? ॥ ५ ॥ किसी नियमित खात के छेद का निरूपण करनेवाले समत्रिभुज क्षेत्र के संबंध में प्रत्येक भुजा ३२ हस्त है, और गहराई ३६ हस्त ६ अंगुल है। यहाँ समाई कितनी है ? ॥ ६ ॥ किसी नियमित खात के छेद (section) का निरूपण करनेवाले समवृत्त क्षेत्र के संबंध में व्यास १८ हस्त है और खात की गहराई १६५ हस्त है। बतलाओ कि इस दशा में घनफल क्या है ? ॥ ७ ॥ किसी नियमित खात (गड्ढे) के छेद का निरूपण करनेवाले आयत चतुर्भुज क्षेत्र की चौड़ाई २५ हस्त है लंबाई ६० हस्त है और खात की गहराई १०८ हस्त है। इस नियमित खात की घनात्मक समाई शीघ्र बतलाओ ॥ ८ ॥

परिणाम के रूप में प्राप्त कर्मान्तिक तथा औण्ड्र को ज्ञात कर उनकी सहायता से खात संबंधी गणना में घनात्मक समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक माप निकालने के लिये नियम—

(४) इस श्लोक का उत्तरार्द्ध स्पष्टतः उस विधि का कथन करता है जिसके द्वारा हम किसी दिये गये अनियमित खात के समुचित रूप से तुल्य नियमित खात के विस्तारों को प्राप्त कर सकते हैं।

बाह्याभ्यन्तरसंस्थिततत्तत्क्षेत्रस्थबाहुकोटिभुवः ।
स्वप्रतिबाहुसमेता भक्तास्तत्क्षेत्रगणनयान्योन्यम् ॥ ९ ॥
गुणिताश्च वेधगुणिताः कर्मान्तिकसंज्ञगणितं स्यात् ।
तद्बाह्यान्तरसंस्थिततत्तत्क्षेत्रे फलं समानीय ॥ १० ॥
संयोज्य संख्ययाप्तं क्षेत्राणां वेधगुणितं च । औण्ड्रफलं तत्फलयोर्विशेषकस्य त्रिभागेन ॥
संयुक्तं कर्मान्तिकफलमेव हि भवति सूक्ष्मफलम् ॥ ११½ ॥

ऊपरी छेदीय (sectional) क्षेत्र का निरूपण करनेवाली आकृति के आधार और अन्य भुजाओं के मानो को क्रमशः तलो के छेदीय क्षेत्र का निरूपण करनेवाली आकृति के आधार और सवादी भुजाओं के मानो में जोड़ते हैं । इस प्रकार प्राप्त कई योग प्रश्न में विचाराधीन छेदीय क्षेत्रो की सख्या द्वारा भाजित किये जाते हैं । तब भुजाएँ ज्ञात रहने पर, क्षेत्रफल निकालने के नियमानुसार, परिणामी राशियाँ एक दूसरे के साथ गुणित की जाती हैं । तब कर्मान्तिक का घनफल उत्पन्न होता है । ऊपरी छेदीय क्षेत्र और नितल छेदीय क्षेत्र द्वारा निरूपित उन्हीं आकृतियों के संबंध में, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र का क्षेत्रफल अलग-अलग प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त क्षेत्रफलों को आपस में जोड़ा जाता है, और तब योगफल विचाराधीन छेदीय क्षेत्रो की सख्या द्वारा भाजित किया जाता है ॥ ९–११½ ॥

इस प्रकार प्राप्त भजनफल गहराई के मान द्वारा गुणित किया जाता है । यह औण्ड्र नामक घनफल माप को उत्पन्न करता है । यदि इन दो फलों के अन्तर की एक तिहाई राशि कर्मान्तिक फल में जोड़ दी जाय तो इष्ट घनफल का सूक्ष्म रूप में ठीक मान निश्चय रूप से प्राप्त होता है ।

(९–११½) दी गई आकृति में अ ब स द नियमित खात (गढ़े) का ऊपरी छेदीय क्षेत्र (मुख) है, और इ फ ग ह नितल छेदीय क्षेत्र है ।

इस नियम में व्यवहार में लाई गई आकृतियाँ या तो विपाटित (काटे गये) स्तूप (pyramids) हैं, जिनके आधार आयत अथवा त्रिभुज होते हैं, अथवा विपाटित शंखाकार (शंकु के आकार की) वस्तुएँ हैं । इस नियम में खातों की घनाकार समाई के तीन प्रकार के मापों का वर्णन है । इसमें से दो, जैसे कर्मांतिक और औण्ड्र माप, समाइयों के व्यावहारिक मानों को देते हैं । इन मानों की सहायता से सूक्ष्म माप की गणना की जाती है । यदि का कर्मांतिक फल और आ औण्ड्र फल का निरूपण करते हों, तो सूक्ष्म रूप से ठीक माप $\left(\frac{\text{आ} - \text{का}}{३} + \text{का} \right)$ अर्थात् ($\frac{२}{३}$ का + $\frac{१}{३}$ आ) होता है ।

यदि काटे गये तथा वर्ग आधारवाले स्तूप के ऊपरी तथा निम्न तल की भुजाओं का माप क्रमशः 'अ' और 'ब' हो तो घनाकार समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक माप $\frac{१}{३}$ ऊ ($\text{अ}'^{२} + \text{ब}'^{२} + २\,\text{अ}'\,\text{ब}'$) के बराबर बतलाया जा सकता है, जहाँ
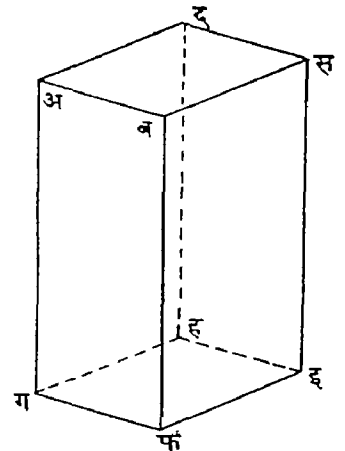
अत्रोद्देशक

समचतुरश्रा वापी विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो नव किं गणितं गणितविदाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ १२½ ॥
वापी समत्रिबाहुर्विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो नव किं गणितं कर्मान्तिकमौण्ड्रमपि च सूक्ष्मफलम् ॥ १३½ ॥
समवृत्तासौ वापी विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो द्वादश दण्डाः किं स्यात्कर्मान्तिकौण्ड्रसूक्ष्मफलम् ॥ १४½ ॥
आयतचतुरश्रस्यायामः षष्टिरेव विस्तारः । द्वादश मुखे तलेऽर्धं वेधोऽष्टौ किं फलं भवति ॥१५½॥
नवतिरशीतिः सप्ततिरायामश्चोर्ध्वमध्यमूलेषु ।
विस्तारो द्वात्रिंशत् षोडश दश सप्त वेधोऽयम् ॥ १६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक ऐसा कूप है जिसका छेदीय (sectional) क्षेत्र समभुज चतुर्भुज है। ऊपरी (मुख) छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक का माप २० हस्त है और निम्न (bottom) छेदीय क्षेत्र की प्रत्येक भुजा १६ हस्त की है। गहराई (वेध) ९ हस्त है। हे गणितज्ञ घनफल का माप शीघ्र बतलाओ ॥ १२½ ॥

समभुज त्रिभुजीय अनुप्रस्थ छेदवाले कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक २० हस्त की और निम्न छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक १६ हस्त की है गहराई ९ हस्त है। कर्मान्तिक घनफल, औण्ड्र घनफल और सूक्ष्म रूप से ठीक घनफल क्या-क्या है ? ॥ १३½ ॥

समवृत्त आकार के छेदीय क्षेत्रवाले कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र का व्यास २० दंड और निम्न छेदीय क्षेत्र का व्यास १६ दंड है। गहराई १२ दंड है। कर्मान्तिक औण्ड्र और सूक्ष्म घनफल क्या हो सकते हैं ? ॥ १४½ ॥

आयताकार छेदीय क्षेत्र वाले खात के ऊपरी छेदीय क्षेत्र की लंबाई ६० हस्त और चौड़ाई १२ हस्त है, तथा निम्न छेदीय क्षेत्र की लम्बाई ऊपर के छेदीय क्षेत्र की आधी है और चौड़ाई भी आधी है। गहराई ८ हस्त है। यहाँ घनफल क्या है ? ॥ १५½ ॥

इसी प्रकार के एक और दूसरे कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र, बीच के छेदीय क्षेत्र और निम्न छेदीय क्षेत्र की लम्बाईयाँ क्रमशः ९० ८० और ७० हस्त हैं तथा चौड़ाईयाँ क्रमशः ३२ १६ और १० हस्त हैं। यह गहराई में ७ हस्त है। इस घनफल का माप दो ? ॥ १६½ ॥

'ऊ' विचारित स्तूप की ऊँचाई है। घनाकार खुदाई के सूक्ष्म माप के लिये दिये गये इस सूत्र का समापन कर्मान्तिक और औण्ड्र फलों के निम्नलिखित मानों की सहायता से किया जाता है।

$$क = \left(\frac{अ' + ब'}{२} \right)^{२} \times ऊ, \quad औ = \frac{(अ)^{२} + (ब')^{२}}{२} \times ऊ$$

इसी प्रकार सम त्रिभुजाकार एवं आयताकार आधारवाले छिन्नक (truncated) स्तूप तथा सम वृत्ताकार आधार वाले छिन्न शंकुओं के संबंध में भी समापन किया जा सकता है।

व्यासः षष्टिर्वदने मध्ये त्रिंशत्तले तु पञ्चदश ।
समवृत्तस्य च वेधः षोडश किं तस्य गणितफलम् ॥ १७½ ॥
त्रिभुजस्य मुखेऽशीति षष्टिर्मध्ये तले च पञ्चाशत् ।
बाहुत्रयेऽपि वेधो नव किं तस्यापि भवति गणितफलम् ॥ १८½ ॥

खातिकायाः खातगणितफलानयनस्य च खातिकाया मध्ये सूचीमुखाकारवत् उत्सेधे सति खातगणितफलानयनस्य च सूत्रम्—

परिखामुखेन सहितो विष्कम्भस्त्रिभुजवृत्तयोस्त्रिगुणात् ।
आयामश्चतुरश्रे चतुर्गुणो व्याससगुणितः ॥ १९½ ॥

समवृत्त आकार के छेदीय क्षेत्र वाले खात के संबंध में मुख व्यास ६० हस्त है, मध्य व्यास ३० हस्त और तल व्यास १५ हस्त है। गहराई १६ हस्त है। घनफल का माप देने वाला गणित फल क्या है ? ॥ १७½ ॥

त्रिभुजाकार के छेदीय क्षेत्रवाले खात के सम्बन्ध में, प्रत्येक भुजा का माप ऊपर ८० हस्त, मध्य में ६० हस्त और तली में ५० हस्त है। गहराई ९ हस्त है। (घनाकार समाई देनेवाला) घनफल क्या है ? ॥ १७½ ॥

किसी खात की घनाकार समाई के मान, तथा मध्य में सूची मुखाकार के समान उत्सेध सहित (ठोस मिट्टी का गोपुच्छवत् एक अंत की ओर घटने वाले प्रक्षेप projetion) सहितखात की घनाकार समाई के मान को निकालने के लिये नियम—

केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई को वेष्टित खात की ऊपरी चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर, और तब तीन द्वारा गुणित करने पर, त्रिभुजाकार और वृत्ताकार खातों की इष्ट परिमिति का मान उत्पन्न होता है। चतुर्भुजाकार खात के सम्बन्ध में, इष्ट परिमिति के इसी मान को, पूर्वोक्त विधि के अनुसार, चौड़ाई को चार द्वारा गुणित करने से प्राप्त करते हैं ॥ १९½ ॥

(१९½–२०½) ये श्लोक किसी भी आकार के केन्द्रीय पुंज के चारों ओर खोदी गई खाईयों या खातों के घनाकार समाई के माप विषयक हैं। केन्द्रीय पुंज के छेद का आकार वर्ग, आयत, समभुज त्रिभुज अथवा वृत्त सदृश हो सकता है। खात (तली में और ऊपर) दोनों जगह समान चौड़ाई का हो सकता है, अथवा घटनेवाली या बढ़नेवाली चौड़ाई का हो सकता है। यह नियम, इन सभी तीन दशाओं में, खात की कुछ लम्बाई निकालने में सहायक होता है।

(१) जब खात की चौड़ाई समान (ऊपर नीचे एक सी) हो, तब खात की लंबाई $= ($ द $+$ ब $) \times ३$ होती है, जब कि सम त्रिभुजाकार अथवा वृत्ताकार छेद हो। यहाँ 'द' केन्द्रीय पुंज की भुजा का माप अथवा व्यास का माप है, और 'ब' खात की चौड़ाई है। परन्तु यह लंबाई $= ($ द $+$ ब $) \times ४$ होती है, जब कि छेद वर्गाकार तथा केन्द्रीय पुंजवाला वर्गाकार खात होता है।

(२) यदि खात तली में या ऊपर जाकर बिन्दु रूप हो जाता हो, तो कर्मांतिक फल निकालने के लिये, लंबाई $= \left(\text{द} + \frac{\text{ब}}{२}\right) \times ३$ अथवा $\left(\text{द} + \frac{\text{ब}}{२}\right) \times ४$ होती है, जब केन्द्रीय पुञ्ज का छेद (section) (१) त्रिभुजाकार या वृत्ताकार अथवा (२) वर्गाकार होता है। औंड्र फल प्राप्त करने के लिए खात की लम्बाई क्रमशः $($ द $+$ ब $) \times ३$ और $($ द $+$ ब $) \times ४$ लेते हैं।

घनफलों निकालने के लिए, इन बीज वाक्यों को खात की आधी चौड़ाई और गहराई से गुणा

सूचीमुखवद्वेधे परिखा मध्ये तु परिखार्धम् ।
मुखसहितमथो करणं प्राग्वत्तत्सूचिवेधे च ॥ २०½ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभुजचतुर्भुजवृत्तं पुरोदितं परिखया परिक्षिप्तम् ।
दण्डाशीत्या व्यासाः परिखाश्चतुरर्भिकास्त्रिवेधाः स्युः ॥ २१½ ॥
आयतचतुरश्रायामो विंशत्युत्तरशतं पुनर्व्यासः ।
चत्वारिंशत् परिखा चतुर्भिका त्रिवेधा स्यात् ॥ २२½ ॥

ऊपर की ओर घटने वाले अथवा बढ़ने वाले अंतोंसहित केन्द्रीय पुंज के (ऐसे खातों के संबंध में) कर्मान्तिक को प्राप्त करने के लिये खात की आधी चौड़ाई को केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई में जोड़ते हैं। औण्ड्रफल को प्राप्त करने के लिये खात की चौड़ाई के मान को केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई में जोड़ते हैं। तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि उपयोग में लाते हैं ॥ २०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्व कथित त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार और वृत्ताकार क्षेत्रों के चारों ओर खाइयाँ खोदी जाती हैं। चौड़ाई ८० दंड है और खाइयाँ ४ दंड चौड़ी और ३ दंड गहरी हैं। घनाकार समाई बतलाओ ॥ २१½ ॥ आयत की लंबाई १२० दंड और चौड़ाई ४० दंड है। आसपास की खाई चौड़ाई में ४ दंड और गहराई में ३ दंड है। घनाकार समाई बतलाओ ॥ २२½ ॥

करना पड़ता है। त्रिभुजाकार और वृत्ताकार छेद वाले खातों के संबंध में उपर्युक्त सूत्र केवल सन्निकट फलों को देते हैं। इस प्रकार प्राप्त खात की कुल लम्बाई की सहायता से, नतिवाली खातों के संबंध में गाथा ९ से ११½ में दिये गये नियम का प्रयोग कर, घन फलों (घनाकार समाई) का मान निकालते हैं।

(२२½) मिट्टी का चतुर्भुज पुंज का छेद आयताकार हो, तो वेष्टित खात की कुल लंबाई को निकालने के लिये भुजाओं के मापों को खात की चौड़ाई अथवा आधी चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर, जोड़ने से (क्रमशः कर्मान्तिक अथवा औण्ड्र) इष्ट फल प्राप्त करते हैं।

इस श्लोक में वर्णित किये गये प्रश्न ये हैं: (अ) उठाये गये स्तूप या शंकु (cone) की कुल ऊँचाई निकालना, (ब) जब किसी काटे गये स्तूप या शंकु की ऊँचाई और ऊपरी तथा नीचे के तलों का विस्तार दिया गया होता है, तब इष्ट गहराई पर छेद (section) के विस्तार को निकालना। तुलनात्मक अध्ययन के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति (१/१९४ ४/१७९०) तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (११/७ २८) देखिये। यदि वर्गाकार आधारवाले दंडित (काटे गये) स्तूप में आधार की भुजा का माप 'अ', ऊपरी तल की भुजा का माप 'ब' और ऊँचाई 'उ' हो, तो यहाँ दिये गये नियमानुसार, कुल स्तूप की ऊँचाई क लेकर

$क = \frac{अ \times उ}{अ - ब}$, और किसी दी गई ऊँचाई $उ_1$ पर स्तूप के छेद की भुजा का माप $= \frac{अ(क - उ_1)}{क}$

होता है। ये सूत्र शंकु के लिये भी प्रयोग्य होते हैं। स्तूप के बिन्दुरूपी भाग को बनानेवाले छेद की भुजा का माप, नियमानुसार दूसरे सूत्र में क या उ से जोड़ा जाता है, क्योंकि कुछ दशाओं में स्तूप वास्तव में बिन्दु में प्रवसित नहीं होता। जहाँ वह बिन्दु में प्रवसित होता है वहाँ इस भुजा का मान शून्य लेना पड़ता है।

उत्सेधे बहुप्रकारवति सति खातफलानयनस्य च, यस्य कस्यचित् खातफलं ज्ञात्वा तत्खात-फलात् अन्यक्षेत्रस्य खातफलानयनस्य च सूत्रम्—
वेधयुतिः स्थानहृता वेधो मुखफलगुणः स्वखातफलं।
त्रिचतुर्भुजवृत्तानां फलमन्यक्षेत्रफलहृत वेधः ॥ २३½ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रक्षेत्रे भूमिचतुर्हस्तमात्रविस्तारे।
तत्रैकद्वित्रिचतुर्हस्तनिखाते कियान् हि समवेधः ॥ २४½ ॥
समचतुरश्राष्टादशहस्तभुजा वापिका चतुर्वेधा।
वापी तज्जलपूर्णान्या नवबाह्वात्र को वेधः ॥ २५½ ॥

यस्य कस्यचित्खातस्य ऊर्ध्वस्थितभुजासंख्यां च अधःस्थितभुजासंख्या च उत्सेधप्रमाणं च ज्ञात्वा, तत्खाते इष्टोत्सेधसंख्याया भुजासंख्यानयनस्य, अधःसूचिवेधस्य च संख्यानयनस्य सूत्रम्—

किसी खात की घनाकार समाई निकालने के लिये नियम, जबकि विभिन्न बिन्दुओं पर खात की गहराई बदलती है, अथवा जबकि घनाकार समाई समान करने के लिये दूसरे ज्ञात क्षेत्रफल के संबंध में आवश्यक खुदाई की गहराई पर खात की घनाकार समाई ज्ञात है—

विभिन्न स्थानों में मापी गई गहराइयों के योग को उन स्थानों की संख्या द्वारा भाजित किया जाता है, इससे औसत गहराई प्राप्त होती है। इसे खात के ऊपरी क्षेत्रफल से गुणित करने पर त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार अथवा वृत्ताकार छेद वाले क्षेत्रफल सम्बन्धी खात की घनाकार समाई उत्पन्न होती है। दिये गये खात की घनाकार समाई, जब दूसरे ज्ञात क्षेत्रफल के मान द्वारा भाजित की जाती है, तब वह गहराई प्राप्त होती है, जहाँ तक खुदाई होने पर परिणामी घनाकार समाई एक-सी हो जाती हो ॥ २३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समभुज चतुर्भुज क्षेत्र में, जिसके द्वारा वेष्टित मैदान विस्तार में (लंबाई और चौड़ाई में) ४ हस्त माप का है, खातें चार भिन्न दशाओं में क्रमशः १, २, ३ और ४ हस्त गहरी हैं। खातों की औसत गहराई का माप क्या है ? ॥ २४½ ॥

समभुज चतुर्भुज क्षेत्र जिसका छेद है, ऐसे कूप की भुजाएँ माप में १८ हस्त हैं। उसकी गहराई ४ हस्त है। इस कूप के पानी से दूसरा कूप, जिसके छेद की प्रत्येक भुजा ९ हस्त की है, पूरी तरह भरा जाता है। इस दूसरे कूप की गहराई क्या है ? ॥ २५½ ॥

जब किसी दिये गये खात के संबंध में ऊपरी छेदीय क्षेत्र की भुजाओं के माप तथा निम्न छेदीय क्षेत्र की भुजाओं के माप ज्ञात हों, और जब गहराई का माप भी ज्ञात हो, तब किसी चुनी हुई गहराई पर परिणामी निम्न छेद की भुजाओं के मान को प्राप्त करने के लिये, तथा यदि तली केवल एक बिन्दु में घटकर रह जाती हो, तब खात की परिणामी गहराई को प्राप्त करने के लिये नियम—

व्यासार्धघनार्धगुणा नव गोलव्यावहारिकं गणितम् ।
तद्दशमांशं नवगुणमशेषसूक्ष्मं फलं भवति ॥ २८½ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशविष्कम्भस्य च गोलकवृत्तस्य विगणय्य ।
किं व्यावहारिकफलं सूक्ष्मफलं चापि मे कथय ॥ २९½ ॥

शृंगाटकक्षेत्रस्य खातव्यावहारिकफलस्य खातसूक्ष्मफलस्य च सूत्रम्—
भुजकृतिदलघनगुणदशपदनवहृद्व्यावहारिक गणितम् ।
त्रिगुणं दशपदभक्तं शृङ्गाटकसूक्ष्मघनगणितम् ॥ ३०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अर्द्ध व्यास के घन की अर्द्धराशि, ९ द्वारा गुणित होकर, गोलाकार क्षेत्र से वेष्टित जगह की घनाकार समाई का सन्निकट मान उत्पन्न करती है। यह सन्निकट मान ९ द्वारा गुणित होकर और १० द्वारा भाजित होकर, शेषफल की उपेक्षा करने पर, घनफल का सूक्ष्म माप उत्पन्न करता है ॥ २८½ ॥

किसी १६ व्यास वाले गोल के संबंध में उसके घनफल का सन्निकट मान तथा सूक्ष्म मान गणना कर बतलाओ ॥ २९½ ॥

शृङ्गाटक क्षेत्र (त्रिभुजाकार स्तूप) के आकार के खात की घनाकार समाई के व्यावहारिक एवं सूक्ष्म मान को निकालने के लिये नियम, जबकि स्तूप की ऊँचाई आधार निर्मित करने वाले समत्रिभुज को भुजाओं में से एक की लंबाई के समान होती है—

आधारीय समभुज त्रिभुज की भुजा के वर्ग की अर्द्धराशि के घन को १० द्वारा गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल के वर्गमूल को ९ द्वारा भाजित किया जाता है। यह सन्निकट इष्ट मान को उत्पन्न करता है। यह सन्निकट मान, जब ३ द्वारा गुणित होकर १० के वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है, तब स्तूप खात की घनाकार समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक माप उत्पन्न होता है ॥ ३०½ ॥

(२८½) यहाँ दिये गये नियमानुसार गोल का आयतन (१) सन्निकट रूप से $\left(\frac{द}{२}\right)^3 \times \frac{९}{२}$ होता है और (२) सूक्ष्म रूप से $\left(\frac{द}{२}\right)^3 \times \frac{९}{२} \times \frac{९}{१०}$ होता है। किसी गोल के आयतन के घनफल का शुद्ध सूत्र $\frac{४}{३}$ π (त्रिज्या)³ है। यह ऊपर दिये गये मान से तुलनायोग्य तब बनता है, जबकि π अर्थात् $\frac{परिधि}{व्यास}$ का अनुपात $\sqrt{१०}$ लिया जावे। दोनों हस्तलिपियों में 'तन्नवमांश दशं गुणं' लिखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म मान, सन्निकट मान का $\frac{१०}{९}$ गुणा होता है। परन्तु यहाँ ग्रंथ में तद्दशमांशं नव गुणं लिया गया है, जो सूक्ष्म मान को, सन्निकट का $\frac{९}{१०}$ बतलाता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि यह गोल की घनाकार समाई के माप के संबंध में सूक्ष्मतर माप देता है, जितना की और कोई भी माप नहीं देता।

(३०½) इस नियमानुसार त्रिभुजाकार स्तूप की घनाकार समाई के व्यावहारिक मान को बीजीय रूप से निरूपित करने पर $\frac{अ^3}{१८} \times \sqrt{५}$ अर्थात् $\frac{अ^3}{१२} \times \sqrt{\frac{२०}{९}}$ प्राप्त होता है, और सूक्ष्म मान

समचतुरश्रा वापी नवहस्तघना नगस्य तले ।
तच्छिखराज्जलधारा चतुरश्राङ्गुलसमानविष्कम्भा ॥ ३५ ॥
पतिताग्रे विच्छिन्ना तया घना सान्तरालजलपूर्णा ।
शैलोत्सेध वाप्या जलप्रमाण च मे ब्रूहि ॥ ३६ ॥
वापी समचतुरश्रा नवहस्तघना नगस्य तले ।
अङ्गुलसमवृत्तघना जलधारा निपतिता च तच्छिखरात् ॥ ३७ ॥
अग्रे विच्छिन्नाभूत्तस्या वाप्या मुखं प्रविष्टा हि ।
सा पूर्णान्तरगतजलधारोत्सेधेन शैलस्य ।
उत्सेधं कथय सखे जलप्रमाण च विगणय्य ॥ ३८½ ॥
समचतुरश्रा वापी नवहस्तघना नगस्य तले ।
तच्छिखराज्जलधारा पतिताङ्गुलघनत्रिकोणा सा ॥ ३९½ ॥
वापीमुखप्रविष्टा साग्रे छिन्नान्तरालजलपूर्णा ।
कथय सखे विगणय्य च गिर्युत्सेधं जलप्रमाणं च ॥ ४०½ ॥

किसी पर्वत के तल में एक वापिका, समभुज चतुर्भुज छेद वाली है, जिसका प्रत्येक विमिति (dimension) में माप ९ हस्त है। पर्वत के शिखर से समाग समभुज भुजावाले १ अंगुल चतुर्भुज छेदवाली एक जलधारा बहती है। ज्योंही जलधारा वापिका में गिरती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है। तिस पर भी, उसके द्वारा वह वापिका पानी से पूरी तरह भर जाती है। पर्वत की ऊँचाई तथा वापिका में पानी का माप बतलाओ ॥ ३५–३६ ॥

पर्वत की तली में समचतुरश्र छेदवाली वापिका है, जिसका (तीन में से) प्रत्येक विमिति में विस्तार ९ हस्त है। पर्वत के शिखर से, १ अगुल व्यास वाले समवृत्त छेद वाली जलधारा बहती है। ज्योंही जलधारा वापिका में गिरना प्रारभ करती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है। उतनी जलधारा से वह वापिका पूरी भर जाती है। हे मित्र, मुझे बतलाओ कि पर्वत की ऊँचाई क्या है, और पानी का माप क्या है ? ॥ ३७–३८½ ॥

किसी पर्वत की तली में समचतुरश्र छेदवाली वापिका है जिसका (तीनो में से) प्रत्येक विमिति में विस्तार ९ हस्त है। पर्वत के शिखर से, प्रत्येक भुजा १ अगुल है जिसकी ऐसे समत्रिभुजाकार छेदवाली जलधारा बहती है। ज्योंही जलधारा वापिका में गिरना प्रारभ करती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है। उतनी जलधारा से वह वापिका पूरी भर जाती है। हे मित्र, गणना कर मुझे बतलाओ कि पर्वत की ऊँचाई क्या है और पानी का माप क्या है ? ॥ ३९½–४०½ ॥

(३५–४२½) यहाँ अध्याय ५ के १५-१६ श्लोक में दिया गया प्रश्न तथा उसके नोट का प्रसग दिया गया है। पानी का आयतन कदाचित् वाहों में व्यक्त किया गया है। (प्रथम अध्याय के ३६ से लेकर ३८ तक के श्लोकों में दिये गये इस प्रकार के आयतन माप के संबध में सूची देखिये)। कन्नडी टीका में यह दिया गया है कि १ घन अंगुल पानी, १ कर्ष के तुल्य होता है। प्रथम अध्याय के ४१ वें श्लोक में दी गई सूची के अनुसार, ४ कर्ष मिलकर एक पल होता है। उसी अध्याय के ४४वें श्लोक के अनुसार १२½ पल मिलकर एक प्रस्थ होता है, और उसी के ३६-३७ श्लोक के अनुसार प्रस्थ और वाह का संबंध ज्ञात होता है।

समचतुरश्रा वापी नवहस्तघना नगस्य तले ।
अङ्गुलविस्ताराङ्गुलबाहुल्ययुगलदीर्घजलधारा ॥ ४१½ ॥
पतिताग्रे विच्छिन्ना वापीमुखसंस्थितान्तरालजलैः ।
सम्पूर्णा स्याद्वापी गिर्युत्सेधो जलप्रमाणं किम् ॥ ४२½ ॥

इति खातव्यवहारे सूक्ष्मगणितम् संपूर्णम् ।

चितिगणितम्

इतः परं खातव्यवहारे चितिगणितमुदाहरिष्यामः । अत्र परिभाषा—
हस्तो दीर्घो व्यासस्तदर्धमङ्गुलचतुष्कमुत्सेधः ।
इष्टस्त्वयेष्टकायास्ताभिः कर्माणि कार्याणि ॥ ४३½ ॥

इष्टक्षेत्रस्य खातफलानयने च तस्य खातफलस्य इष्टकानयने च सूत्रम्—
मुखफलमुदयेन गुणं तदिष्टकागणितभक्तलब्धं यत् ।
चितिगणितं तद्विद्यात्तदेव भवतीष्टकासंख्या ॥ ४४½ ॥

किसी पर्वत की तली में समभुज चतुर्भुज क्षेत्रवाला एक ऐसा कुआँ है जिसकी तीनों विमितियों में विस्तार ९ हस्त है। पर्वत के शिखर से एक ऐसी जलधारा बहती है जो समान रूप से तली में १ अंगुल चौड़ी १ अंगुल बाहु वाले तलों पर और दो अंगुल ऊँचाई में शिखर पर रहती है। ज्योंही जलधारा कुएँ में गिरना प्रारंभ करती है त्योंही शिखर पर जलधारा टूट जाती है। उतनी जलधार से वह कुआँ पूरी तरह भर जाता है। पर्वत की ऊँचाई क्या है? और पानी का प्रमाण क्या है? ॥ ४१½–४२½ ॥

इस प्रकार खात व्यवहार में सूक्ष्म गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

चिति गणित (ईंटों के ढेर संबंधी गणित)

इसके पश्चात् हम खात व्यवहार में चिति गणित का वर्णन करेंगे। यहाँ इष्टका (ईंट) के एकक (इकाई) संबंधी परिभाषा यह है—

(एकक) ईंट लंबाई में एक हस्त, चौड़ाई में उसकी आधी, और मुटाई में ४ अंगुल होती है। ऐसी ईंटों के साथ समस्त क्रियाएँ की जाती हैं ॥ ४३½ ॥

किसी क्षेत्र में दिये गये खात को बनाकर समाई तथा उस बनाकर समाई की संवादी ईंटों की संख्या निकालने के लिये नियम—

खात के मुख का क्षेत्रफल गहराई द्वारा गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल को इकाई ईंट के घनफल द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल, ईंट के ढेर का (घनफल) माप समझा जाता है। वही भजनफल ईंटों की संख्या का माप होता है ॥ ४४½ ॥

(४४½) यहाँ ईंट के ढेर का घनफल माप इकाई ईंट के पदों में दिया गया है।

अत्रोद्देशकः

वेदिः समचतुरश्रा साष्टभुजा हस्तनवकमुत्सेधः ।
घटिता तदिष्टकाभिः कतीष्टकाः कथय गणितज्ञ ॥ ४५½ ॥
अष्टकरसमत्रिकोणनवहस्तोत्सेधवेदिका रचिता ।
पूर्वेष्टकाभिरस्यां कतीष्टकाः कथय विगणय्य ॥ ४६½ ॥
समवृत्ताकृतिवेदिर्नवहस्तोर्ध्वा कराष्टकव्यासा
घटितेष्टकाभिरस्यां कतीष्टकाः कथय गणितज्ञ ॥ ४७½ ॥
आयतचतुरश्रस्य त्वायामः षष्टिरेव विस्तारः ।
पञ्चकृति षड् वेधस्तदिष्टकाचितिमिहाचक्ष्व ॥ ४८½ ॥
प्राकारस्य व्यासः सप्त चतुर्विंशतिरस्तदायामः ।
घटितेष्टकाः कति स्युश्चोच्छ्रायो विंशतिस्तस्य ॥ ४९½ ॥
व्यासः प्राकारस्योर्ध्वे षडधोऽथाष्ट तीर्थक्ता दीर्घः ।
घटितेष्टका. कति स्युश्चोच्छ्रायो विंशतिस्तस्य ॥ ५०½ ॥
द्वादश षोडश विंशतिरुत्सेधाः सप्त षट् च पञ्चाधः ।
व्यासा मुखे चतुस्त्रिद्विकाश्चतुर्विंशतिर्दीर्घः ॥ ५१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समचतुरश्र छेदवाली एक उठी हुई वेदी है, जिसकी भुजा का माप ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है। वह वेदी ईंटों की बनी हुई है। हे गणितज्ञ, बतलाओ कि उसमें कितनी इष्टकाएँ हैं ? ॥ ४५½ ॥

समभुज त्रिभुज छेदवाली किसी वेदी की भुजा का माप ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है। यह उपर्युक्त ईंटों द्वारा बनाई गई है। गणनाकर बतलाओ कि इस संरचना में कितनी इष्टकाएँ हैं ? ॥४६½॥

वृत्ताकार छेदवाली एक वेदी जिसका व्यास ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है, उन्हीं ईंटों की बनी है। हे गणितज्ञ, बतलाओ कि उसमें कितनी ईंटें हैं ? ॥ ४७½ ॥

आयताकार छेदवाली किसी वेदी के सबंध में लंबाई ६० हस्त, चौड़ाई २५ हस्त और ऊँचाई ६ हस्त है। उस ईंट के ढेर का माप बतलाओ ॥ ४८½ ॥

एक सीमारूप दीवाल मोटाई (व्यास) में ७ हस्त, लंबाई (आयाम) में २४ हस्त, ऊँचाई (उच्छ्राय) में २० हस्त है। उसे बनाने में कितनी इष्टकाओं की आवश्यकता होगी ? ॥ ४९½ ॥

किसी सीमारूप दीवाल की मुटाई शिखर पर ६ हस्त और तली में ८ हस्त है। उसकी लंबाई २४ हस्त और ऊँचाई २० हस्त है। उसे बनाने मे कितनी इष्टकाओं की आवश्यकता होगी ? ॥ ५०½ ॥

किसी प्रवण (उतारवाली) वेदी के संबंध में ऊँचाइयाँ तीन स्थानों में क्रमश १२, १६ और २० हस्त हैं; तली में चौड़ाई के माप क्रमश. ७, ६ और ५ तथा ऊपर ४, ३ और २ हस्त है, लंबाई २४ हस्त है। ढेर में इष्टकाओं की संख्या बतलाओ ॥५१½॥

(५०½–५१½) दीवाल की घनाकार समाई प्राप्त करने के लिये उपर्युक्त ४ थे श्लोक के उत्तरार्द्ध में दिये गये नियमानुसार परिगणित औसत चौड़ाई को उपयोग में लाते हैं, इसलिये यहाँ कर्मान्तिक फल का मान विचाराधीन हो जाता है।

(५१½) यह [illegible] वेदी दो अंतों (ends) में दो ऊर्ध्वाधर (लंबरूप) समतलों द्वारा सीमित है।

इष्टवेदिकायां पतितायां सत्यां स्थितस्थाने इष्टकासंख्यानयनस्य च पतितस्थाने इष्टकासंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

मुखतलशेषं पतितोत्सेधगुणं सकलोत्सेधहृत्समुखम् ।
मुखभूम्योर्भूमिमुखे पूर्वोक्तं करणमवशिष्टम् ॥ ५२½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादश दैर्घ्यं व्यासः पञ्चाधश्चोर्ध्वमेकमुत्सेधः ।
पञ्च तस्मिन् पञ्च करा भग्नास्तत्रेष्टकाः कति स्युस्ताः ॥ ५३½ ॥

प्राकारे कर्णाकारेण भग्ने सति स्थितेष्टकानयनस्य च पतितेष्टकानयनस्य च सूत्रम्—

किसी पतित (भग्न होकर गिरी हुई) वेदी के सबंध में स्थित भाग में (तथा अपतित भाग में) तथा पतित-भाग में ईंटों की संख्या अलग अलग निकालने के लिये नियम—

ऊपरी चौड़ाई और तली की चौड़ाई के अंतर को पतित भाग की ऊँचाई द्वारा गुणित करते हैं और पूर्ण ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं । इस परिणामी भजनफल में ऊपरी चौड़ाई का माप जोड़ दिया जाता है । यह पतित भाग के संबंध में आधारीय चौड़ाई का माप तथा अपतित भाग के संबंध में ऊपरी चौड़ाई का माप उत्पन्न करता है। शेष क्रिया पहले वर्णित कर दी गई है ॥ ५२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वेदी के संबंध में लंबाई १२ हस्त है तली में चौड़ाई ५ हस्त है, ऊपरी चौड़ाई १ हस्त है और ऊँचाई सर्वत्र ५ हस्त है । ५ हस्त ऊँचाई का भाग टूट कर गिर जाता है । उस पतित और अपतित भाग में अलग-अलग कितनी ऐष्टिक इकाइयाँ हैं ? ॥ ५३½ ॥

जब किले की दीवाल तिर्यक् रूप से टूटी हो, तब स्थित भाग में तथा पतित भाग में इकाइयों की संख्या निकालने के लिये नियम—

शिखर और पार्श्व तक प्रक्षप (ढाल) है । ऊपरी अभिनत तल के उठे हुए अंत पर चौड़ाई ९ हस्त है, और दूसरे अंत पर चौड़ाई ४ हस्त है (चित्र देखिये) ।

(५२½) स्थित अपतित भाग की ऊपरी चौड़ाई का माप जो वेदी के पतित भाग की निम्न चौड़ाई के समान है बीजीय रूप से $\frac{(अ - ब) द}{स} + ब$ है जहाँ तली की चौड़ाई 'अ' और ऊपरी चौड़ाई 'ब' है संपूर्ण ऊँचाई 'स' है और 'द' वेदी के पतित भाग की ऊँचाई है । यह सूत्र समरूप त्रिभुजों के गुणों द्वारा भी सरलतापूर्वक प्राप्त सिद्ध किया जा सकता है । नियम में कथित क्रिया ऊपर गाथा ४ में पहिले ही वर्णित की जा चुकी है ।

भूमिमुखे द्विगुणे मुखभूमियुतेऽभग्नभूदययुतोने ।
दैर्ध्योदयषष्ठांशघ्ने स्थितपतितेष्टकाः क्रमेण स्युः ॥ ५४½ ॥

अत्रोद्देशकः

प्राकारोऽयं मूलान्मध्यावर्तेन चैकहस्तं गत्वा ।
कर्णाकृत्या भग्नः कतीष्टकाः स्युः स्थिताश्च पतिताः काः ॥ ५६½ ॥

तली की चौड़ाई और ऊपरी चौड़ाई में से प्रत्येक को दुगना किया जाता है । इनमें क्रमशः ऊपर की चौड़ाई और तली की चौड़ाई जोड़ी जाती है । परिणामी राशियाँ, क्रमशः, अपतित भाग की दीवाल की जमीन से ऊपर की ऊँचाई द्वारा बढ़ाई व घटाई जाती है, और इस प्रकार प्राप्त राशियाँ लंबाई द्वारा तथा संपूर्ण ऊँचाई के $\frac{1}{6}$ भाग द्वारा गुणित की जाती हैं । इस प्रकार शेष अपतित भाग तथा पतित भाग में क्रम से ईंटों की संख्याएँ प्राप्त होती हैं ॥ ५४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्वोक्त माप वाली यह किले की दीवाल चक्रवात वायु से टकराई जाकर तली से तिर्यक् रूप से विकर्ण छेद पर टूट जाती है । इसके संबंध में, स्थित और पतित भाग की ईंटों की संख्याएँ क्या-क्या हैं ? ॥ ५५½ ॥ वही ऊंची दीवाल चक्रवात वायु द्वारा तली से एक हस्त ऊपर से तिर्यक् रूप से टूटी है । स्थित और पतित भाग की ईंटों की संख्याएं कौन-कौन हैं ॥ ५६½ ॥

(५४½) यदि तली की चौड़ाई 'अ' हो, ऊपर की चौड़ाई 'ब' हो, 'ऊ' कुल ऊँचाई हो और दीवाल की लंबाई 'ल' हो, तथा 'द' जमीन से नापी गई अपतित दीवाल की ऊँचाई हो, तो $\frac{\text{ल ऊ}}{६}$ (२अ + ब + द) और $\frac{\text{ल ऊ}}{६}$ (२ब + अ − द) राशियाँ स्थित भाग और पतित भाग में ईंटों की संख्याओं का निरूपण करती हैं । इस सूत्र से मिलता जुलता प्रतिपादन चीनी ग्रंथ च्यु-चाग सुआन-चु में है, जिसके विषय में कूलिज की अभ्युक्ति है, "यह विचित्र रूप से वर्णित ठोस (solid) त्रिभुजाकार लंब समपार्श्व (traingular right prism) का समच्छिन्नक है, और हमें यह सूत्र प्राप्त होता है कि यह घनफल समपार्श्व के आधार पर स्थित उन स्तूपों के योग के तुल्य होता है, जिनके शिखर सम्मुख फलक (face) में होते हैं । यह सबसे अधिक हृदय भजक साध्यों में से एक है, जिन्हें हम प्रारम्भिक ठोस ज्यामिति में पढ़ाते हैं । इसके आविष्कार का श्रेय लेजान्ड्र (Legendre) को दिया गया है"—J L Coolidge, A History of Geometrical Methods, p 22, Oxford, (1940) दी गई आकृति गाथा (श्लोक) ५६½ में कथित दीवाल को दर्शाती है, और क ख ग घ वह समतल है जिस पर से दीवाल टूटते समय भग्न होती है ।

इष्टवेदिकायां पतितायां सत्यां स्थितस्थाने इष्टकासंख्यानयनस्य च पतितस्थाने इष्टका-संख्यानयनस्य च सूत्रम्—

मुखतलक्षेपः पतितोत्सेधगुणः सकलवेधहृत्समुखः ।
मुखभूम्योर्भूमिमुखे पूर्वोक्तं करणमवशिष्टम् ॥ ५२१½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादश दैर्घ्यं व्यासः पञ्चाधश्चोर्ध्वमेकमुत्सेधः ।
दश तस्मिन् पञ्च करा भग्नास्तत्रेष्टकाः कति स्युस्ताः ॥ ५२२½ ॥

प्राकारे कर्णाकारेण भग्ने सति स्थितेष्टकानयनस्य च पतितेष्टकानयनस्य च सूत्रम्—

किसी पतित (भग्न होकर गिरी हुई) वेदी के संबंध में स्थित भाग में (शेष अपतित भाग में) तथा पतित-भाग में ईंटों की संख्या अलग अलग निकालने के लिये नियम—

ऊपरी चौड़ाई और तली की चौड़ाई के अंतर को पतित भाग की ऊँचाई द्वारा गुणित करते हैं और पूर्ण ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी भजनफल में ऊपरी चौड़ाई का माप जोड़ दिया जाता है। यह पतित भाग के संबंध में आधारीय चौड़ाई का माप तथा अपतित भाग के संबंध में ऊपरी चौड़ाई का माप उत्पन्न करता है। शेष क्रिया पहले वर्णित कर दी गई है ॥ ५२१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वेदी के संबंध में लंबाई १२ हस्त है तली में चौड़ाई ५ हस्त है ऊपरी चौड़ाई १ हस्त है ऊपरी चौड़ाई १ हस्त है और ऊँचाई सर्वत्र १ हस्त है। ५ हस्त ऊँचाई का भाग टूट कर गिर जाता है। उस पतित और अपतित भाग में अलग-अलग कितनी ऐष्टिक इकाइयाँ हैं ? ॥ ५२२½ ॥

जब किले की दीवाल तिर्यक् रूप से टूटी हो तब स्थित भाग में तथा पतित भाग में इकाइयों की संख्या निकालने के लिये नियम—

शिखर और पार्श्व तक प्रवण (ढालू) है। ऊपरी अभिनत तल के उठे हुए अंत पर चौड़ाई २ हस्त है, और दूसरे अंत पर चौड़ाई ४ हस्त है (चित्र देखिये)।

(५२१) स्थित अपतित भाग की ऊपरी चौड़ाई का माप जो वेदी के पतित भाग की नितल चौड़ाई के समान है बीजीय रूप से $\frac{(अ - ब) द}{स} + ब$ है, जहाँ तली की चौड़ाई 'अ' और ऊपरी चौड़ाई 'ब' है संपूर्ण ऊँचाई 'स' है और 'द' वेदी के पतित भाग की ऊँचाई है। यह सूत्र समरूप त्रिभुजों के गुणों द्वारा भी सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है। नियम में कथित क्रिया ऊपर गाथा ४ में पहिले ही वर्णित की जा चुकी है।

भूमिमुखे द्विगुणे मुखभूमियुतेऽभग्नभूदययुतोने ।
दैर्घ्योदयपष्ठांशघ्ने स्थितपतितेष्टकाः क्रमेण स्युः ॥ ५४½ ॥

अत्रोद्देशकः

प्राकारोऽयं मूलान्मध्यावर्तेन चैकहस्तं गत्वा ।
कर्णाकृत्या भग्नः कतीष्टकाः स्युः स्थिताश्च पतिताः काः ॥ ५६½ ॥

तली की चौड़ाई और ऊपरी चौड़ाई में से प्रत्येक को दुगना किया जाता है। इनमें क्रमशः ऊपर की चौड़ाई और तली की चौड़ाई जोड़ी जाती है। परिणामी राशियाँ, क्रमशः, अपतित भाग की दीवाल की जमीन से ऊपर की ऊँचाई द्वारा बढ़ाई व घटाई जाती है, और इस प्रकार प्राप्त राशियाँ लंबाई द्वारा तथा सम्पूर्ण ऊँचाई के ⅙ भाग द्वारा गुणित की जाती है। इस प्रकार शेष अपतित भाग तथा पतित भाग में क्रम से ईंटों की संख्याएँ प्राप्त होती है ॥ ५४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्वोक्त माप वाली यह किले की दीवाल चक्रवात वायु से टकराई जाकर तली से तिर्यक् रूप से विकर्ण छेद पर टूट जाती है। इसके संबंध में, स्थित और पतित भाग की ईंटों की संख्याएँ क्या-क्या है? ॥ ५५½ ॥ वही ऊँची दीवाल चक्रवात वायु द्वारा तली से एक हस्त ऊपर से तिर्यक् रूप से टूटी है। स्थित और पतित भाग की ईंटों की संख्याएँ कौन-कौन हैं? ॥ ५६½ ॥

(५४½) यदि तली की चौड़ाई 'अ' हो, ऊपर की चौड़ाई 'ब' हो, 'ऊ' कुल ऊँचाई हो और दीवाल की लंबाई 'ल' हो, तथा 'ट' जमीन से नापी गई अपतित दीवाल की ऊँचाई हो, तो $\frac{\text{ल ऊ}}{६}$ (२अ + ब + ट) और $\frac{\text{ल ऊ}}{६}$ (२ब + अ − ट) राशियाँ स्थित भाग और पतित भाग में ईंटों की संख्याओं का निरूपण करती हैं। इस सूत्र से मिलता जुलता प्रतिपादन चीनी ग्रंथ च्यु-चांग सुआन-चु में है, जिसके विषय में कूलिज की अभ्युक्ति है, "यह विचित्र रूप से वर्णित ठोस (solid) त्रिभुजाकार लंब समपार्श्व (traingular right prism) का समच्छिन्नक है, और हमें यह सूत्र प्राप्त होता है कि यह घनफल समपार्श्व के आधार पर स्थित उन स्तूपों के योग के तुल्य होता है, जिनके शिखर सम्मुख फलक (face) में होते हैं। यह सबसे अधिक हृदय भंजक साध्यों में से एक है, जिन्हें हम प्रारम्भिक ठोस ज्यामिति में पढ़ाते हैं। इसके आविष्कार का श्रेय लेजान्ड्र (Legendre) को

दिया गया है"—J L Coolidge, A History of Geometrical Methods, p 22, Oxford, (1940) दी गई आकृति गाथा (श्लोक) ५६½ में कथित दीवाल को दर्शाती है, और क ख ग घ वह समतल है जिस पर से दीवाल टूटते समय भग्न होती है।

अत्रोद्देशकः

विद्याधरनगरस्य व्यासोऽष्टौ द्वादशैव चायामः ।
पञ्च प्राकारतले मुखे तदेकं दशोत्सेधः ॥ ६२ ॥

इति खातव्यवहारे चितिगणितं समाप्तम् ।

क्रकचिकाव्यवहारः

इतः परं क्रकचिकाव्यवहारमुदाहरिष्यामः । तत्र परिभाषा—

हस्तद्वयं षडङ्गुलहीनं किष्काह्वयं भवति ।
इष्टाद्यन्तच्छेदनसंख्यैव हि मार्गसंज्ञा स्यात् ॥ ६३ ॥
अथ शाकाख्यद्व्यादिद्रुमसमुदायेषु वक्ष्यमाणेषु ।
व्यासोदयमार्गाणामङ्गुलसंख्या परस्परघ्नाप्ता ॥ ६४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विद्याधर नगर के नाम से ज्ञात स्थान के संबध में चौड़ाई ८ है, और लबाई १२ है। प्राकार दीवाल की तली की मुटाई ५ और मुख में (ऊपर की) मुटाई १ है। उसकी ऊँचाई १० है। इस दीवाल का घनफल क्या है ? ॥ ६२ ॥

इस प्रकार खात व्यवहार में चिति गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

क्रकचिका व्यवहार

इसके पश्चात् हम क्रकचिका 'व्यवहार (लकड़ी चीरने वाले आरे से किए गये कर्म संबंधी क्रियाओं) का वर्णन करेंगे। पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा —

६ अंगुल से हीन दो हस्त, किष्कु कहलाता है। किसी दी गई लकड़ी को आरम्भ से लेकर अंत तक छेदन (काटने के रास्तों के माप) की सख्या को मार्ग सज्ञा दी गई है ॥ ६३ ॥

तब कम से कम दो प्रकार की शाक (teak) आदि (प्रकारों वाली) लकड़ियों के ढेर के संबंध में चौड़ाई नापने वाली अंगुलों की संख्या और लबाई नापने वाली संख्या, तथा मार्गों को नापने वाली सख्या, इन तीनों को आपस में गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल हस्त अगुलों की सख्या के वर्ग द्वारा भाजित किया जाता है। क्रकचिका व्यवहार में यह पट्टिका नामक कार्य के माप को उत्पन्न करता है। शाक (teak-wood) आदि (प्रकारवाली) लकड़ियों के सबंध में चौड़ाई तथा लंबाई नापनेवाली हस्तो की सख्याएँ आपस में गुणित की जाती हैं। परिणामी गुणनफल राशि मार्गों की संख्या द्वारा गुणित की जाती है, और तब ऊपर निकाली गई पट्टिकाओं की सख्या द्वारा भाजित की जाती है। यह आरे के द्वारा किये गये कर्म का संख्यात्मक माप होता है ॥ ६४-६६ ॥

(६३-६७$\frac{1}{2}$) १ किष्कु = १$\frac{3}{4}$ हस्त। किसी लकड़ी के टुकड़े को चीरने में किसी इष्ट रास्ते अथवा रेखा का नाम मार्ग दिया गया है। किसी लकड़ी के टुकड़े में काटे गये तल का विस्तार, सामान्यतः उसे चीरने में किये गये काम का माप होता है, जब कि किसी विशिष्ट कठोरतावाली (जिसे कठोरता का एकक मान लिया हो ऐसी) लकड़ी दी गई हो। काटे गये तल का यह विस्तार क्षेत्रफल के

९. छायाव्यवहारः

शान्तिर्जिनः शान्तिकरः प्रजानां जगत्प्रभुर्ज्ञातसमस्तभावः[1] ।
यः प्रातिहार्याष्टविवर्धमानो नमामि तं निर्जितशत्रुसंघम् ॥ १ ॥

आदौ प्राच्याद्यष्टदिक्साधनं प्रवक्ष्यामः—

सलिलोपरितलवत्स्थितसमभूमितले लिखेद्वृत्तम् ।
बिम्बं स्वेच्छाशङ्कुद्विगुणितपरिणाहसूत्रेण ॥ २ ॥
तद्वृत्तमध्यस्थतदिष्टशङ्कोश्छाया दिनादौ च दिनान्तकाले ।
तद्वृत्तरेखा स्पृशति क्रमेण पश्चात्पुरस्ताच्च ककुप् प्रदिष्टा ॥ ३ ॥
तद्दिग्द्वयान्तर्गततन्तुना लिखेन्मत्स्याकृतिं याम्यकुबेरदिक्स्थाम् ।
तत्कोणमध्ये विदिशः प्रसाध्याश्छायैव याम्योत्तरदिग्दशार्धजा. ॥ ४ ॥

1. M में तत्व. पाठ है ।

९. छाया व्यवहार (छाया संबंधी गणित)

जो प्रजा को शांति कारक हैं (शाति देने वाले हैं), जगत्प्रभु है, समस्त पदार्थों को जाननेवाले हैं, और अपने आठ प्रातिहार्यों द्वारा (सदा) वर्धमान (महनीय) अवस्था को प्राप्त हैं—ऐसे (कर्म) शत्रु सघ के विजेता श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

आदि में, हम प्राची (पूर्व) दिशा को आदि लेकर, आठ दिशाओं के साधन करने के लिए उपाय बतलाते हैं—

पानी के ऊपरी सतह की भाँति, क्षैतिज समतल वाली समतल भूमि पर केन्द्र में स्थित स्वेच्छा से चुनी हुई लबाई वाली शकु लेकर, उसकी लंबाई की द्विगुणित राशि की लबाई वाले धागे के फन्दे (loop) की सहायता से एक वृत्त खींचना चाहिये ॥ २ ॥

इस केन्द्र में स्थित इष्ट शकु की छाया दिन के आदि मे तथा दिन के अन्त समय में उस वृत्त की परिधि को स्पर्श करती है । इसके द्वारा, क्रम से, पश्चिम दिशा और पूर्व दिशा सूचित होती है ॥३॥

इन दो निश्चित की गई दिशाओं की रेखा मे धागे को रखकर, उसके द्वारा उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत मत्स्याकार (सतरे की कली के समान) आकृति खींचना चाहिए । इस मत्स्याकृति के कोणों के मध्य से जाने वाली सरल रेखा उत्तर और दक्षिण दिशाओं को सूचित करती है । इन दिशाओं के मध्य में (स्थित जगह मे) विदिशायें प्रसाधित की जाती है ॥ ४ ॥

(४) वह धागा जिसकी सहायता से मत्स्याकार आकृति खींची जाती है, गाथा २ में दिये

अससघटरविसंक्रमणप्रवृत्तमैक्यार्धमेव विषुवद्भा ॥ ४½ ॥
लङ्कायां यवकोट्यां सिद्धपुरीरोमकापुर्योः ।
विषुवद्भा नास्त्येव त्रिंशद्घटिकं दिनं भवेत्तस्मात् ॥ ५½ ॥
देशेष्वितरेषु दिनं त्रिंशद्घटिकाभ्यधिकोनं स्यात् ।
मेषघटायनदिनयोस्त्रिंशद्घटिकं दिनं हि सर्वत्र ॥ ६½ ॥
दिनमानं दिनदलभां ज्योतिश्शास्त्रोक्तमार्गेण ।
ज्ञात्वा छायागणितं विद्यादिह वक्ष्यमाणसूत्रौघैः ॥ ७½ ॥

विषुवच्छाया यत्रयत्र देशे नास्ति तत्रतत्र देशे इष्टशङ्कोरिष्टकालच्छायां ज्ञात्वा तत्काल-नयनसूत्रम्—

छाया सैका द्विगुणा तया हृतं दिनमितं च पूर्वाह्णे ।
अपराह्णे तच्छेषं विज्ञेयं सारसंग्रहे गणिते ॥ ८½ ॥

विषुवद्भा (अर्थात् जब दिन और रात दोनों बराबर होते हैं, उस समय पड़ने वाली छाया) वास्तव में उन दिनों के मध्याह्न (दोपहर) समय प्राप्त छायों के मापों के योग की आधी होती है, जब कि सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है, तथा जब वह तुला राशि में भी प्रवेश करता है ॥ ४½ ॥

लंका, यवकोटि, सिद्धपुरी और रोमकपुरी में ऐसी विषुवद्भा (equinoctial shadow) बिलकुल होती ही नहीं है, और इसलिए दिन ३० घड़ी का होता है ॥ ५½ ॥

अन्य प्रदेशों में दिन मान ३० घड़ी से अधिक या कम रहता है। जब सूर्य मेष राशि और तुला (बराबर) राशि में प्रवेश करता है, तब सभी जगह दिन मान ३० घड़ी का होता है ॥ ६½ ॥

ज्योतिष शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार दिन का माप तथा दिन की मध्याह्न छाया का माप समझ लेने के पश्चात् छाया संबंधी गणित निम्नलिखित नियमों द्वारा सीखना चाहिए ॥ ७½ ॥

ऐसे स्थान के संबंध में दिन का वह समय निकालने के लिए नियम, जहाँ विषुवच्छाया नहीं होती हो, तथा किसी दिये गये समय पर (दोपहर के पहिले अथवा पश्चात्) किसी दिये गये शंकु की छाया का माप ज्ञात हो—

किसी वस्तु (शंकु) की ऊँचाई के पदों में व्यक्त छाया के माप में एक जोड़ा जाता है, और इस प्रकार परिणामी योग दुगुना किया जाता है। परिणामी राशि द्वारा पूर्ण दिनमान भाजित किया जाता है। यह समझना चाहिये कि सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र के अनुसार यह प्राप्त फल पूर्वाह्न और अपराह्न के सेव भागों (अथवा दोपहर के पहिले दिन के बीते हुए भाग और दोपहर के पश्चात् दिन के शेष रहने वाले भाग) को उत्पन्न करता है ॥ ८½ ॥

गये त्रिज्या की माप में कुछ अधिक ऊँचाई प्राप्त होना चाहिये। यदि 'क पू' और 'क प' पार्श्व आकृति में क्रमशः पूर्व और पश्चिम दिशा प्ररूपित करते हों तो आकृति उ म द ग, क्रमशः पू और प को केन्द्र मान कर और पू ग तथा प ग त्रिज्यायें लेकर चाप खींचने से प्राप्त होती है, जब कि पू ग और प ग आपस में बराबर हों। मुख्य रेखा जो पूर्वोक्त आकृति के काम का वर्णन करती है, क्रमशः उत्तर और दक्षिण दिशा का प्ररूपण करती है।

(८½) यदि वस्तु की ऊँचाई उ है, और उसकी छाया की ऊँचाई छ है, तो दिन का बीता हुआ
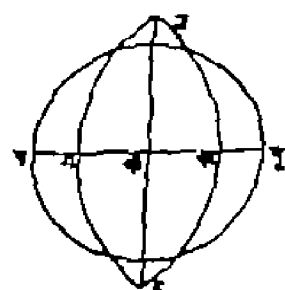
अत्रोद्देशकः

पूर्वाह्ने पौरुषी छाया त्रिगुणा वद किं गतम् ।
अपराह्नेऽवशेषं च दिनस्यांशं वद प्रिय ॥ ९½ ॥

दिनांशे जाते सति घटिकानयनसूत्रम्—

अशहतं दिनमानं छेदविभक्तं दिनांशके जाते ।
पूर्वाह्ने गतनाड्यस्त्वपराह्ने शेषनाड्यस्तु ॥ १०½ ॥

अत्रोद्देशकः

विषुवच्छायाविरहितदेशेऽष्टांशो दिनस्य गतः ।
शेषश्चाष्टांशः का घटिकाः स्युः खाग्निनाड्योऽह्नः ॥ ११½ ॥

मल्लयुद्धकालानयनसूत्रम्—

कालानयनाद्दिनगतशेषसमासोनितः कालः ।
स्तम्भच्छाया स्तम्भप्रमाणभक्तैव पौरुषी छाया ॥ १२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य की छाया उसकी ऊँचाई से ३ गुनी है। हे प्रिय मित्र, बतलाओ कि पूर्वाह्न में बीते हुए दिन का भाग एवं अपराह्न में शेष रहने वाला दिन का भाग क्या है ? ॥ ९½ ॥

दिन का भाग (जो बीत चुका है, या बीतने वाला है) प्राप्त हो चुकने पर घटिकाओं की सवादी संख्या को निकालने के लिये नियम—

दिन मान के ज्ञात माप को, (पहिले ही प्राप्त) दिन के बीते हुए अथवा बीतने वाले भाग का निरूपण करने वाले भिन्न के अंश द्वारा गुणित करने और हर द्वारा भाजित करने से, पूर्वाह्न के संबंध में बीती हुई घटिकाएँ और अपराह्न के संबंध में बीतने वाली घटिकाएँ उत्पन्न होती हैं ॥ १०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऐसे प्रदेश में जहाँ विषुवच्छाया नहीं होती, दिन $\frac{१}{८}$ भाग बीत गया है, अथवा अपराह्न के संबंध में शेष रहने वाला दिन का भाग $\frac{१}{८}$ है। इस $\frac{१}{८}$ भाग की सवादी घटिकाएँ क्या हैं ? दिन में ३० घटिकाएँ मान ली गई हैं ॥ ११½ ॥

मल्लयुद्ध काल निकालने के लिए नियम—

जब दिन के बीते हुए भाग तथा बीतने वाले भाग के योग द्वारा दिन की अवधि ह्रासित कर, उसे घटिकाओं में परिवर्तित किया जाता है, तब इष्ट समय उत्पन्न होता है।

अथवा बीतनेवाला समय (नियमानुसार) यह है—

$$\frac{१}{२\left(\frac{छ}{उ}+२\right)} \text{ अथवा } \frac{१}{२\,(\text{कोस्पआ}+१)},$$

जहाँ कोण आ उस समय पर सूर्य का ऊँचाई निरूपक कोण है। यह सूत्र केवल आ = ४५°, छोड़कर आ के शेष मानों के लिये सन्निकट दिन का समय देता है। जब यह कोण ९०° के निकटतर पहुँचता है, तब सन्निकट दिन का समय और भी गलत होता जाता है। यह सूत्र इस तथ्य पर आधारित है कि किसी समकोण त्रिभुज में छोटे मानों के लिए कोण सन्निकटत सम्मुख भुजाओं के समानुपाती होते हैं।

अत्रोद्देशकः

पूर्वाह्णे शङ्कुसमच्छायायां मल्लयुद्धमारब्धम् ।
अपराह्णे द्विगुणायां समाप्तिरासीत् युद्धकालः कः ॥ १३½ ॥
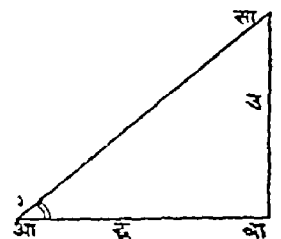
अपरार्धस्योदाहरणम्

द्वादशहस्तस्तम्भच्छाया चतुरुत्तरैव विंशतिका ।
तत्काले पौरुषिकच्छाया कियती भवेद्गणक ॥ १४½ ॥

विषुवच्छायायुक्ते देशे इष्टच्छायां ज्ञात्वा कालानयनस्य सूत्रम्[1]—

शङ्कुयुतेष्टच्छाया मध्यच्छायोनिता द्विगुणा ।
तद्भक्तः शङ्कुरिति पूर्वापरयोर्दिनांशः स्यात् ॥ १५½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्विषुवच्छायाङ्गुलद्वयी ।
इष्टच्छायाष्टाङ्गुलिका दिनांशः को गतः स्थितः ।
त्र्यंशो दिनांशो घटिकाः कास्त्रिंशद्घटिकं दिनम् ॥ १७ ॥

1 किसी भी हस्तलिपि में प्राप्य नहीं है।

किसी स्तम्भ की छाया के माप को स्तंभ की ऊँचाई द्वारा भाजित करने पर पौरुषी छाया माप (उस मनुष्य की छाया का माप उसकी निज की ऊँचाई के पदों में) प्राप्त होता है ॥ १२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई मल्लयुद्ध पूर्वाह्ण में आरम्भ हुआ, जब कि किसी शंकु की छाया उसी शंकु के माप के तुल्य थी। उस युद्ध का निर्णय अपराह्ण में हुआ जबकि उसी शंकु की छाया का माप शंकु के माप से दुगुना था। बतलाओ कि वह युद्ध कितने समय तक चला ? ॥ १३½ ॥

श्लोक के उत्तरार्ध नियम के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी १२ हस्त ऊँचाई वाले स्तंभ की छाया माप में २४ हस्त है। उस समय, हे अंकगणितज्ञ मनुष्य की छाया का माप क्या होगा ? ॥ १४½ ॥

जब किसी भी समय पर छाया का माप ज्ञात हो तब विषुवच्छाया वाले स्थानों में बीते हुए अथवा बीतने वाले दिन के भाग को प्राप्त करने के लिये नियम—

शंकु की ज्ञात छाया के माप में शंकु का माप जोड़ा जाता है। यह योग विषुवच्छाया के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है और परिणामी अंतर को दुगुना कर दिया जाता है। जब शंकु का माप इस परिणामी राशि द्वारा भाजित किया जाता है तब क्रमानुसार पूर्वाह्ण में दिन में बीते हुए अथवा अपराह्ण में दिन में बीतने वाले दिनांश का माप उत्पन्न होता है ॥ १५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१२ अंगुल के शंकु के संबंध में विषुवच्छाया दोपहर के समय (दिन के मध्याह्न में) २ अंगुल है और अवलोकन के समय इष्ट (ज्ञात) छाया ८ अंगुल है। दिन का कौनसा भाग बीत गया है और कौनसा भाग शेष रहा है ? यदि दिन का बीता हुआ भाग अथवा बीतने वाला भाग ⅓ है तो उसकी संवादी घटिकाएँ क्या हैं जबकि दिन ३ घटियों का होता है ॥ १६½–१७ ॥

(१५½) यहाँ दिन के समय के माप के लिये दिया गया सूत्र बीजीय रूप में, $\frac{अ}{२(अ+ब-स)}$

इष्टनाडिकानां छायानयनसूत्रम्—
द्विगुणितदिनभागहृता शङ्कुमिति शङ्कुमानोना ।
युदलच्छायायुक्ता छाया तत्स्वेष्टकालिका भवति ॥ १८ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्य् दलच्छायाङ्गुलद्वयी ।
दशानां घटिकाना मा का त्रिंशन्नाडिक दिनम् ॥ १९ ॥

पादच्छायालक्षणे पुरुषस्य पादप्रमाणस्य परिभाषासूत्रम्—
पुरुषोन्नतिसप्तांशस्तत्पुरुषाङ्घ्रेस्तु दैर्घ्यं स्यात् ।
यद्येव चेत्पुरुष स भाग्यवानङ्घ्रिभा स्पष्टा ॥ २० ॥

आरूढच्छायायाः संख्यानयनसूत्रम्—

घटियों में दिए गये दिन के समय की संवादी छाया का माप निकालने के नियम—

शंकु (style) का माप दिन के दिये गये भाग के माप की दुगुनी राशि द्वारा भाजित किया जाता है । परिणामी भजनफल में से शंकु का माप घटाया जाता है, और उसमें विषुवच्छाया (दोपहर के समय की ऐसे स्थान की छाया, जहाँ दिन रात तुल्य होते हैं) का माप जोड़ दिया जाता है । यह दिन के इष्ट समय पर छाया का माप उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि, किसी १२ अंगुल वाले शंकु के संबंध में, द्युदलच्छाया (विषुवच्छाया) २ अंगुल हो, तो जब १० घटी दिन बीत चुका हो अथवा बीतने वाला हो उस समय शंकु की छाया का माप क्या है ? दिन का मान ३० घटियाँ होता है ॥ १९ ॥

छाया के पाद प्रमाण माप के द्वारा लिए गये मापों संबंधी मनुष्य के पाद माप की परिभाषा—

किसी मनुष्य की ऊँचाई के 1/7 भाग के तुल्य उसके पाद की लंबाई होती है । यदि ऐसा हो, तो वह मनुष्य भाग्यशाली होगा । इस प्रकार पाद प्रमाण से नापी गई छाया का माप स्पष्ट है ॥ २० ॥

ऊर्ध्वाधर दीवाल पर आरूढ़ छाया का संख्यात्मक माप निकालने के लिये नियम—

है, जहाँ 'व' शंकु की विषुवच्छाया की लंबाई है । यह सूत्र ऊपर की गाथा ८½ में दिये गये सूत्र की पाद टिप्पणी पर आधारित है ।

(१८) बीजीय रूप से,

$छ = \frac{उ}{२ घ} - उ + व$, जहाँ घ, दिन के समय का माप घटी में दिया गया है । यह सूत्र श्लोक १५½ वें की पाद टिप्पणी में दिये गये सूत्र से प्राप्त होता है ।

अत्रोद्देशकः

विंशतिहस्तः स्तम्भः षोडश भित्त्याश्रितच्छाया ।
द्विगुणा पुरुषच्छाया भित्तिस्तम्भान्तरं किं स्यात् ॥ २४ ॥

अपरार्धस्योदाहरणम्

विंशतिहस्तः स्तम्भः षोडश भित्त्याश्रितच्छाया ।
कियती पुरुषच्छाया भित्तिस्तम्भान्तरं चाष्टौ ॥ २५ ॥

आरूढच्छायायाः संख्यां च भित्तिस्तम्भान्तरभूमिसंख्यां च पुरुषच्छायायाः संख्यां च ज्ञात्वा स्तम्भप्रमाणसंख्यानयनसूत्रम्—
नृच्छायाघ्नारूढा भित्तिस्तम्भान्तरेण संयुक्ता ।
पौरुषभाहृतलब्धं विदुः प्रमाणं बुधाः स्तम्भे ॥ २६ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडश भित्त्यारूढच्छाया द्विगुणैव पौरुषी छाया ।
स्तम्भोत्सेधः कः स्याद्भित्तिस्तम्भान्तरं चाष्टौ ॥ २७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ २० हस्त ऊँचा है, और दीवाल पर पड़ने वाली छाया के अंश का माप (ऊँचाई) १६ हस्त है। उस समय पुरुष की छाया पौरुषी ऊँचाई से दुगुनी है। स्तंभ और दीवाल के अंतर का माप क्या हो सकता है ? ॥ २४ ॥

नियम के उत्तरार्द्ध भाग के लिए उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई स्तंभ ऊँचाई में २० हस्त है, और दीवाल पर पड़ने वाली उसकी छाया की ऊँचाई १६ है। दीवाल और स्तंभ का अंतर ८ हस्त है। पौरुषी ऊँचाई के प्रमाण द्वारा व्यक्त मानवी छाया का माप क्या है ? ॥ २५ ॥

जब दीवाल पर पड़ने वाली छाया के भाग की ऊँचाई का संख्यात्मक मान, उस स्तंभ तथा दीवाल का अंतर, और मानुषी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानुषी छाया का माप भी ज्ञात हो, तब स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम—

दीवाल पर पड़ने वाली छाया के भाग का माप, मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानवी छाया के माप द्वारा गुणित किया जाता है। इस गुणनफल में स्तंभ और दीवाल के अंतर (बीच की दूरी) का माप जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग को मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानवी छाया के माप द्वारा भाजित करने से जो भजनफल प्राप्त होता है वह बुद्धिमानों के द्वारा स्तंभ की ऊँचाई का माप कहा जाता है ॥ २६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दीवाल पर स्तंभ की छाया पड़ने वाला भाग १६ हस्त है। उस समय मानवी छाया का मान मानवी ऊँचाई से दुगुना है। दीवाल और स्तंभ का अंतर ८ हस्त है। स्तंभ की ऊँचाई क्या है ? ॥ २७ ॥

शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रविभक्तसूत्रम्—
शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रं तु सैकपौरुष्या ।
भक्तं शङ्कुमितिः स्याच्छङ्कुच्छाया तदूनमिश्रं हि ॥ २८ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रं तु पञ्चाशत् ।
शङ्कूत्सेधः कः स्याच्चतुर्गुणा पौरुषी छाया ॥ २९ ॥

शङ्कुच्छायापुरुषच्छायामिश्रविभक्तसूत्रम्—
शङ्कुनरच्छायायुतिर्विभाजिता शङ्कुसैकमानेन ।
लब्धं पुरुषच्छाया शङ्कुच्छाया तदूनमिश्रं स्यात् ॥ ३० ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कोरुत्सेधो दश नृच्छायाशङ्कुभामिश्रम् ।
पञ्चोत्तरपञ्चाशन्नृच्छाया भवति कियती च ॥ ३१ ॥

शंकु की ऊँचाई तथा शंकु की छाया की लंबाई के मापों के दत्त मिश्रित योग में से उन्हें अलग-अलग निकालने के लिए नियम—

शंकु के माप और उसकी छाया के माप के मिश्रित योग को जब १ द्वारा बढ़ाये गये (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया के माप द्वारा भाजित करते हैं, तब शंकु की ऊँचाई का माप प्राप्त होता है। दिये गये योग को शंकु के इस माप द्वारा ह्रासित करने पर शंकु की छाया का माप प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु के ऊँचाई माप और उसकी छाया के लंबाई माप का योग ५० है। शंकु की ऊँचाई क्या होगी, जबकि मानवी छाया उस समय मानवी ऊँचाई की चौगुनी है? ॥ २९ ॥

शंकु की छाया की लम्बाई के माप और (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया के मापके मिश्रित योग में से उन्हें अलग-अलग प्राप्त करने के लिए नियम—

शंकु की छाया तथा मनुष्य की छाया के मापों के मिश्रित योग को एक द्वारा बढ़ाई गई शंकु की ज्ञात ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त भजनफल (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया का माप होता है। उपर्युक्त मिश्रित योग जब मानवी छाया के इस माप द्वारा ह्रासित किया जाता है, तब शंकु की छाया की लंबाई का माप उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी शंकु की ऊँचाई १० है। (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया और शंकु की छाया के मापों का योग ५५ है। मानवी छाया तथा शंकु की छाया की लंबाई क्या-क्या है? ॥ ३१ ॥

(२८ और ३०) यहाँ दिये गये नियम गाथा ११२ के उत्तरार्द्ध में कथित नियम पर आधारित हैं।

स्तम्भस्य अवनतिसंख्यानयनसूत्रम्—

छायावर्गाच्छोध्या नरभाकृतिगुणितशङ्कुकृतिः ।
सैकनरच्छायाकृतिगुणिता छायाकृतेः शोध्या ॥ ३२ ॥
तन्मूलं छायाया शोध्य नरभानवर्गरूपेण[1] ।
भागं हृत्वा लब्धं स्तम्भस्यावनतिरेव स्यात् ॥ ३३ ॥

अत्रोद्देशकः

द्विगुणा पुरुषच्छाया त्र्युत्तरदशहस्तशङ्कोर्भा ।
एकोनत्रिंशत्सा स्तम्भावनतिश्च का तत्र ॥ ३४ ॥

1. हस्तलिपि मे नरभान के लिए नृभावर्ग पाठ है, परन्तु वह छंद की दृष्टि से अशुद्ध है ।

किसी स्तंभ अथवा ऊर्ध्वाधर शंकु की अवनति (झुकाव) के माप को निकालने के लिए नियम—

मानवी छाया के वर्ग और शंकु की ऊँचाई के वर्ग के गुणनफल को दी गई छाया के वर्ग में घटाया जाता है। यह शेष, मानवी छाया की वर्ग राशि में एक जोड़ने से प्राप्त योगफल द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि दी गई छाया के वर्ग में से घटायी जाती है। परिणामी शेष के वर्गमूल को छाया के दिये गये माप में से घटाया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि को जब मानवी छाया की वर्ग राशि में एक जोड़ने से प्राप्त योगफल द्वारा भाजित किया जाता है, तब स्तंभ की शुद्ध अवनति (झुकाव) का माप प्राप्त होता है ॥ ३२–३३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस समय मानवी छाया मानवी ऊँचाई से दुगुनी है। स्तंभ की छाया २९ हस्त है, और स्तंभ की ऊँचाई १३ हस्त है। यहाँ स्तंभ की अवनति का माप क्या है? ॥ ३४ ॥ प्रासाद के भीतर

(३२–३३) मानलो अवनत (झुके हुए) स्तंभ की स्थिति अ ब द्वारा निरूपित है। मानलो वही स्तंभ ऊर्ध्वाधर (लंबरूप) स्थिति में अ द द्वारा निरूपित है। क्रमशः अ स तथा अ इ उनकी छाया हैं। तब उस समय मानव की छाया और उसकी ऊँचाई का अनुपात $\frac{\text{अइ}}{\text{अद}}$ होगी। मानलो यह अनुपात र के बराबर है। ब से अद पर गिराया गया लंब ब ग अवनत स्तंभ अ ब की अवनति निरूपित करता है। यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि
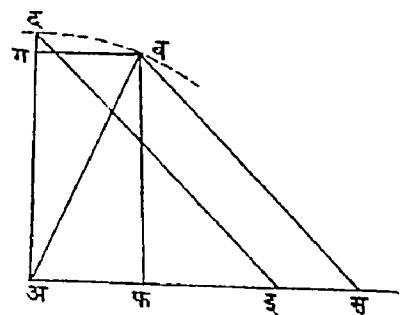
$$\frac{\sqrt{(\text{अ ब})^2 - (\text{ब ग})^2}}{\text{अ स} - \text{ब ग}} = \frac{\text{अ द}}{\text{अ इ}} = \frac{1}{\text{र}}$$ । इससे यह देखा जा सकता है कि

$$\text{ब ग} = \frac{\text{अ स} - \sqrt{(\text{अ स})^2 - \{(\text{अ स})^2 - (\text{अ ब})^2 \times \text{र}^2\}(\text{र}^2+1)}}{\text{र}^2+1}$$ ।

यहाँ दिया गया नियम इसी सूत्र के रूप में प्ररूपित होता है।

अत्रोद्देशकः

शङ्कुप्रदीपयोर्मध्यं षण्णवत्यङ्गुलानि हि ।
द्वादशाङ्गुलशङ्कोस्तु दीपच्छायां वदाशु मे षष्टिर्दीपशिखोत्सेधो गणितार्णवपारग ॥ ४२ ॥

दीपशङ्क्वन्तरानयनसूत्रम्—

शङ्कूनितदीपोन्नतिराप्ता शङ्कुप्रमाणेन ।
तल्लब्धहता शङ्कुच्छाया शङ्कुप्रदीपमध्यं स्यात् ॥ ४३ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुच्छायाङ्गुलान्यष्टौ षष्टिर्दीपशिखोदयः ।
शङ्कुदीपान्तरं ब्रूहि गणितार्णवपारग ॥ ४४ ॥

दीपोन्नतिसंख्यानयनसूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी शंकु और दीपक की क्षैतिज दूरी वास्तव में ९६ अंगुल है। दीपक की लौ की ऊँचाई जमीन से ६० अंगुल है। हे गणितार्णव (गणित समुद्र) के पारगामी, मुझे शीघ्र ही १२ अंगुल ऊँचे शंकु के संबंध में दीपक की लौ के कारण उत्पन्न होने वाली छाया का माप बतलाओ ॥ ४१½–४२ ॥

दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर को प्राप्त करने के लिए नियम—

(जमीन से) दीपक की ऊँचाई को शंकु की ऊँचाई द्वारा ह्रासित किया जाता है। परिणामी राशि को शंकु की ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं। शंकु की छाया के माप को, इस प्रकार प्राप्त भजनफल द्वारा गुणित करने पर, दीपक और शंकु का क्षैतिज अंतर प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु की छाया की लंबाई ८ अंगुल है। दीप शिखा (दीपक की लौ) की (जमीन से) ऊँचाई ६० अंगुल है। हे गणितार्णव के पारगामी, दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर के माप को बतलाओ ॥ ४४ ॥

दीपक की (जमीन से ऊपर की) ऊँचाई के संख्यात्मक माप को प्राप्त करने के लिये नियम—

माप है, 'अ' शंकु की ऊँचाई का माप है, 'ब' दीपक की ऊँचाई का माप है, और 'स' दीपक तथा शंकु के बीच का क्षैतिज अंतर है।

यह सूत्र पार्श्व में दी गई आकृति से स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जा सकता है।

(४३) पिछली टिप्पणी में उपयोग में लाये गये प्रतीकों को ही उपयोग में लाकर, इस नियमानुसार $स = छ \times \frac{ब - अ}{अ}$ होता है।

(४४) अगले ४६–४७ वें श्लोकों के अनुसार शंकु की ऊँचाई का दिया गया माप १२ अंगुल है।
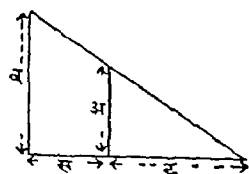
शङ्कुच्छायामक्तं प्रदीपशङ्क्वन्तरं सैकम् ।
शङ्कुप्रमाणगुणितं ह्युच्चं दीपोन्नतिर्भवति ॥ ४५ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुच्छाया द्विनिघ्नैव द्विहस्तं शङ्कुदीपयोः ।
अन्तरं ह्यङ्गुलान्यत्र का दीपस्य समुन्नतिः ॥ ४६ ॥
शंकुप्रमाणमत्रापि द्वादशाङ्गुलकं गते ।
ज्ञात्वोदाहरणे सम्यग्विद्यात्सूत्रार्थपद्धतिम् ॥ ४७ ॥

पुरुषस्य पादच्छायां च तत्पादप्रमाणेन वृक्षच्छायां च ज्ञात्वा वृक्षोन्नतेः संख्यानयनस्य च, वृक्षोन्नतिसंख्यां च पुरुषस्य पादच्छायायाः संख्यानयनस्य च सूत्रम्—
स्वच्छायया भक्तनिजेष्टवृक्षच्छाया पुनस्सप्तभिराहता सा ।
वृक्षोन्नतिः साद्रिहृता स्वपादच्छायाहता स्याद्द्रुमभैव नूनम् ॥ ४८ ॥

दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर के माप को शंकु की छाया द्वारा भाजित किया जाता है। तब इस परिणामी भजनफल में एक जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि जब शंकु की ऊँचाई के माप द्वारा गुणित की जाती है, तब दीपक की (जमीन से ऊपर की) ऊँचाई का माप उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु की छाया की लंबाई उसकी ऊँचाई से दुगुनी है। दीपक और शंकु की क्षैतिज दूरी का माप २ अंगुल है। इस दशा में दीपक की जमीन से ऊँचाई कितनी है? इसी तथा अन्य प्रश्न में शंकु की ऊँचाई १२ अंगुल लेकर नियम के साधन का ढंग भलीभाँति सीख लेना चाहिये ॥ ४६–४७ ॥

जब मनुष्य की (पाद प्रमाण में दी गई) छाया की लंबाई का माप तथा (उसी पाद प्रमाण में दी गई) वृक्ष की छाया की लंबाई का माप ज्ञात हो तब उस वृक्ष की ऊँचाई का संख्यात्मक माप निकालने के लिए नियम तथा जब (उसी पाद प्रमाण में) वृक्ष की ऊँचाई का संख्यात्मक माप तथा मनुष्य की छाया की लंबाई का संख्यात्मक माप ज्ञात हो तब (उसी पाद प्रमाण में) वृक्ष की छाया की लंबाई का संख्यात्मक माप निकालने के लिये नियम—

किसी व्यक्ति द्वारा चुने गये वृक्ष की छाया की लंबाई के माप को निज पाद प्रमाण में नापी गई उसकी निज की छाया के माप द्वारा भाजित किया जाता है। इससे वृक्ष की ऊँचाई प्राप्त होती है। यह वृक्ष की ऊँचाई ७ द्वारा भाजित होकर और निज पाद प्रमाण में नापी गई निज की छाया द्वारा गुणित होकर निस्सन्देह वृक्ष की छाया की पूर्व लंबाई के माप को उत्पन्न करती है ॥ ४८ ॥

---

(४) इसी प्रकार, $\text{द} = \left(\frac{\text{ह}}{\text{छ}} + १\right)\text{भ}$

(४८) यह नियम उपर्युक्त १२२ वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में दिये गये नियम की विलोम रचना है। वहाँ दिये गये नियम में मनुष्य की ऊँचाई और उसके पाद माप के बीच का संबंध उपयोग में लाया गया है।

अत्रोद्देशकः

आत्मच्छाया चतुःपादा वृक्षच्छाया शतं पदाम् ।
वृक्षोच्छ्रायः को भवेत्स्वपादमानेन तं वद ॥ ४९ ॥

वृक्षच्छायायाः संख्यानयनोदाहरणम्—

आत्मच्छाया चतुःपादा पञ्चसप्ततिभिर्युतम् ।
शतं वृक्षोन्नतिर्वृक्षच्छाया स्यात्कियती तदा ॥ ५० ॥
पुरतो योजनान्यष्टौ गत्वा शैलो दशोदयः ।
स्थितः पुरे च गत्वान्यो योजनाशीतितस्ततः ॥ ५१ ॥
तदग्रस्थाः प्रदृश्यन्ते दीपा रात्रौ पुरे स्थितैः ।
पुरमध्यस्थशैलस्यच्छाया पूर्वागमूलयुक् ।
अस्य शैलस्य वेधः को गणकाशु प्रकथ्यताम् ॥ ५२½ ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ छायाव्यवहारो नाम अष्टमः समाप्तः॥

॥ समाप्तोऽयं सारसंग्रहः ॥

उदाहरणार्थ एक प्रश्न

पाद माप में निज की छाया की लम्बाई ४ है। (उसी पाद माप में) वृक्ष की छाया की लम्बाई १०० है। बतलाओ कि (उसी पाद माप में) वृक्ष की ऊँचाई क्या है ? ॥ ४९ ॥

किसी वृक्ष की छाया के संख्यात्मक माप को निकालने के संबंध में उदाहरण—

किसी समय निज की छाया की लम्बाई का माप निज के पाद से चौगुना है। किसी वृक्ष की ऊँचाई (ऐसे पाद-माप में) १७५ है। उस वृक्ष की छाया का माप क्या है ? ॥५०॥ किसी नगर के पूर्व की ओर ८ योजन (दूरी) चल चुकने के पश्चात्, १० योजन ऊँचा शैल (पर्वत) मिलता है। नगर में भी १० योजन ऊँचाई का पर्वत है। पूर्वी पर्वत से पश्चिम की ओर ८० योजन चल चुकने के पश्चात्, एक और दूसरा पर्वत मिलता है। इस अंतिम पर्वत के शिखर पर रखे हुए दीप नगर निवासियों को दिखाई देते हैं। नगर के मध्य में स्थित पर्वत की छाया पूर्वी पर्वत के मूल को स्पर्श करती है। हे गणक, इस (पश्चिमी) पर्वत की ऊँचाई क्या है ? शीघ्र बतलाओ ॥ ५१–५२½ ॥

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सार संग्रहनामक गणित शास्त्र में छाया नामक अष्टम व्यवहार समाप्त हुआ।

इस प्रकार यह सारसंग्रह समाप्त हुआ।

(५१–५२½) यह उदाहरण उपर्युक्त ४५ वें श्लोक में दिये गये नियम को निदर्शित करने के लिये है।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
करिन्	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
कर्मन्	कर्म अथवा कार्य करने का प्रभाव Action · the effect of action as its karma	८	जैन धर्म के अनुसार आठ प्रकार के कर्म (प्रकृतिबंध) होते हैं, अर्थात्, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, नामिक, गोत्रिक और आयुष्क।
कलाधर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
कषाय	संसारी वस्तुओं में आसक्ति Attachment to worldly objects	४	जैन धर्म के अनुसार कर्मों के आस्रव का एक भेद कषाय है, जिसके चार प्रकार हैं, अर्थात्, क्रोध, मान, माया और लोभ।
कुमारवदन	कुमार अथवा हिंदू युद्ध-देव के मुख The faces or Kumāra of the Hindu war-god	६	यह युद्धदेव छः मुखोंवाला माना जाता है। षण्मुख देखिये।
केशव	विष्णु का एक नाम A name of Viṣṇu	९	उपेन्द्र देखिए।
क्षपाकर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
ख	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
खर		६	
गगन	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
गज	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
गति	पुनर्जन्म का मार्ग Passage into rebirth	४	जैन धर्म के अनुसार संसारी जीव चार गतियों में जन्म लेते हैं, अर्थात्, देव, तिर्यञ्च, मनुष्य, नरक। पिथेगोरस का Tetractys इससे तुलनीय है।
गिरि	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
गुण	गुण Quality	३	आदि पदार्थ में तीन गुण माने जाते हैं, अर्थात्, सत्त्व, रजस्, तमस्।
ग्रह	ग्रह A planet	९	हिन्दू ज्योतिष में ९ प्रकार के ग्रह माने जाते हैं, अर्थात्, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, सूर्य और चन्द्रमा।
चक्षुस्	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिप्रेत	उद्गम
अम्बुधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
अम्भोधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
अश्व	घोड़ा A horse	७	सूर्य के रथ में ७ घोड़े माने जाते हैं।
अश्विन्	घोड़े सहित Consisting of horse	७	अश्व देखिए।
आकाश	आकाश The sky		अनन्त देखिए।
इन	सूर्य The sun	१२	वर्ष के बारह मासों के संचारी सूर्यों की संख्या १२ होती है; अर्थात्, धातृ, मित्र, अर्यमन्, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वत, पूषन्, सवितृ, त्वष्टृ और विष्णु। ये बारह आदित्य कहलाते हैं।
इन्दु	चन्द्रमा The moon	१	पृथ्वी के लिये केवल एक चन्द्रमा है।
इन्द्र	इन्द्र देवता The god Indra	१४	चौदह मन्वन्तरों में से प्रत्येक के लिये १ इन्द्र की दर से चौदह इन्द्र होते हैं।
इन्द्रिय	इन्द्रिय An organ of sense	५	इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, आँख, नाक, जीभ, कान और शरीर (स्पर्शन्)।
इभ	हाथी An elephant	८	संसार की आठ दिशा विदिशाओं की रक्षा आठ हाथी करते हुए कहे जाते हैं। ये ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक हैं।
इषु	धनुष An arrow	५	मन्मथ के पाँच बाण माने जाते हैं अर्थात्, अरविन्द, अशोक, चूत, नवमल्लिका और नीलोत्पल।
ईक्षण	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
उदधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
उपेन्द्र	भगवान् विष्णु God Viṣṇu	९	विष्णु के ९ अवतार माने जाते हैं।
ऋतु	ऋतु A season	६	संस्कृत साहित्य के अनुसार वर्ष में ६ ऋतुएँ होती हैं अर्थात् वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् हेमन्त शिशिर।
कर	हाथ The hand	२	मानव के दो हाथ होते हैं।
करणीय	जो किये जाते हैं व्रत That which has to be done: an act of devotion or austerity		जैन धर्म के अनुसार पाँच प्रकार के व्रत होते हैं, अर्थात्, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
करिन्	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
कर्मन्	कर्म अथवा कार्य करने का प्रभाव Action: the effect of action as its karma	८	जैन धर्म के अनुसार आठ प्रकार के कर्म (प्रकृतिबंध) होते हैं, अर्थात्, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, नामिक, गोत्रिक और आयुष्क।
कलाधर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
कषाय	संसारी वस्तुओं में आसक्ति Attachment to worldly objects	४	जैन धर्म के अनुसार कर्मों के आस्रव का एक भेद कषाय है, जिसके चार प्रकार हैं, अर्थात्, क्रोध, मान, माया और लोभ।
कुमारवदन	कुमार अथवा हिंदू युद्ध-देव के मुख The faces or Kumāra of the Hindu war-god	६	यह युद्धदेव छः मुखोंवाला माना जाता है। षण्मुख देखिये।
केशव	विष्णु का एक नाम A name of Visnu	९	उपेन्द्र देखिए।
क्षपाकर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
ख	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
खर		६	
गगन	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
गज	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
गति	पुनर्जन्म का मार्ग Passage into rebirth	४	जैन धर्म के अनुसार ससारी जीव चार गतियों में जन्म लेते हैं, अर्थात्, देव, तिर्यञ्च, मनुष्य, नरक। पिथेगोरस का Tetraotys इससे तुलनीय है।
गिरि	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
गुण	गुण Quality	३	आदि पदार्थ में तीन गुण माने जाते हैं, अर्थात्, सत्त्व, रजस्, तमस्।
ग्रह	ग्रह A planet	९	हिन्दू ज्योतिष में ९ प्रकार के ग्रह माने जाते हैं, अर्थात्, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, सूर्य और चन्द्रमा।
चक्षुस्	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अंकितमान	उद्गम
चन्द्र	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
चन्द्रमस्	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
जलधर पथ	आकाश Sky		अनन्त देखिए।
जलधि	महासागर Ocean	४	अब्धि देखिए।
जलनिधि	महासागर Ocean	४	अब्धि, देखिए।
जिन	वह नाम जिसमें अरिहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं का नाम गर्भित रहता है। The name which implies Arhat, Siddhas, Achryas, Upadhyayas & all Saints.	२४	जैन आगम के अनुसार भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर माने जाते हैं।
ज्वलन	आग Fire	३	अग्नि देखिए।
तत्त्व	तत्त्व Elementary Principles.	७	जैन धर्म में सात तत्त्वों की मान्यता इस प्रकार है : जीव (चेतन), अजीव (अचेतन), आस्रव (कर्मों के आने के द्वार), बंध (कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध) संवर (आस्रव का निरोध), निर्जरा (कर्मों का एक देश नाश) और मोक्ष (आत्मा का पूर्ण रूप से कर्मों से छूटना)।
तनु	काय Body	८	शिव का तनु आठ वस्तुओं से बना हुआ माना जाता है : पृथ्वी अप्, तेजस्, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान।
तर्क	Evidence	६	तर्क के छः प्रकार हैं : प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।
तार्क्ष्यध्वज	विष्णु Visnu	१	उपेन्द्र देखिए।
तीर्थंकर	Tirthankar or Jina	२४	जिन देखिए।
दन्तिन्	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
दुरित	सांसारिक कर्म Worldly action	८	कर्मन् देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
दुर्गा	पार्वती का अवतार Name of Manifestation of Parvati or Durga.	९	दुर्गा के ९ अवतार माने जाते हैं ।
दिक्	दिशा बिन्दु Quarter or a cardinal point of the universe.	८	लोक मे आठ दिशाबिन्दु माने जाते हैं ।
दिक्	दिशाएँ Directions	१०	दस दिशाओं की मान्यता इस प्रकार है कि चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ तथा अधो और ऊर्ध्व दिशाएँ मिलकर दस दिशाएँ होती हैं ।
दिक्	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए ।
दृक्	आँख The eye	२	अक्षि देखिए ।
दृष्टि	" " "	"	" "
द्रव्य	द्रव्य का लक्षण सत् है और जो उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्यता सहित है वह सत् है । Elementary substance whose characteristic is existence implying manifestation, disappearance & permanence.	६	जिनागम के अनुसार ६ द्रव्य हैं : जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, काल और आकाश ।
द्विप	हाथी An Elephant	८	इभ देखिए ।
द्विरद	"	"	"
द्वीप	पृथ्वी में स्थित पौराणिक द्वीप विभाग A puranic insular division of the terrestrial world.	७	इनके सात विभाग हैं जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पौष्कर ।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या	उद्गम
धातु	शरीर के उत्पादक अवयव Constituent principles of the body	७	सप्त धातुएँ ये हैं—रस (Chyle), रक्त, मांस, चर्बी, अस्थि मज्जा, वीर्य।
धृति	छंद का एक विशेष का नाम Name of a kind of metre	१८	इस छन्द में श्लोक के प्रत्येक पद में १८ अक्षर रहते हैं।
–	–		–
नग	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
नन्द	राजाओं के वंश का नाम Name of a dynasty of kings	९	कहा जाता है कि मगध में ९ नन्द राजाओं ने राज्य किया।
नभस्	आकाश Sky		अनन्त देखिये।
नय	वस्तु के एक अंश ग्रहण करने वाला ज्ञान Method of Comprehending things from particular standpoints	२	जिनागम में मुख्यतः दो नयों का निरूपण है : द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।
नयन	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
नाग	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
निधि	खजाना Treasure	९	कुबेर के पास नव प्रसिद्ध निधियाँ मानी जाती हैं : पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व। जिनागम में चक्रवर्ती के भी इनसे भिन्न नव-निधियों का उल्लेख है।
नेत्र	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
पदार्थ	वस्तुओं के विभेद Category of things	९	जिनागम में सात तत्त्व तथा पुण्य और पाप ये दो मिलकर नव पदार्थ होते हैं। तत्त्व देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभियान	उद्गम
पन्नग	सर्प The serpent	७	हिन्दू पुराणों में कभी कभी आठ और कभी कभी सात प्रकार के सर्पों का वर्णन मिलता है।
पयोधि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
पयोनिधि	" "	"	" "
पावक	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
पुर	नगर City	३	हिन्दू पुराणों के अनुसार तीन असुरों के प्ररूपक तीन पुरों ने देवों के प्रति अत्याचार किया और शिव ने उन्हें विनष्ट किया। त्रिपुरान्तक से तुलना करिए।
पुष्करिन्	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
प्रालेयांशु	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
बन्ध	कर्म बंध Karmic bondage	४	जिनागम में बंध के मुख्यतः चार भेद बतलाए गये हैं : प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध।
बाण	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
भ	नक्षत्र A constellation	२७	हिन्दू ज्योतिष में सूर्य पथ पर मुख्यतः २७ नक्षत्रों की गणना की गई है।
भय	डर Fear	७	
भाव	तत्व Elements	५	पांच तत्व या पंच भूत ये हैं : पृथवी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश।
भास्कर	सूर्य The Sun	१२	इन देखिए।
भुवन	लोक The World	३	ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, और अधोलोक, की मान्यता है।
भूत	तत्व Element	५	भाव देखिए।
भूभ्र	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
मद	घमण्ड Pride	८	अष्ट मद के भेद इस प्रकार है : ज्ञान, रूप, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर का मद।
महीध्र	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
मातृका	देवी A goddess	७	साधारणतः सात प्रकार की देवियाँ मानी जाती हैं।
मुनि	साधु Sage	७	मुख्यतः सात प्रकार के ऋषियों का उल्लेख मिलता है : कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ।
मृगाङ्क	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
मृड	शिव या रुद्र का नाम A name of Śiva or Rudra	११	रुद्रों की संख्या ११ मानी गई है।

शब्द	सामान्य अर्थ	कूट संख्यान	उद्गम
यति	मुनि Sage	७	मुनि देखिए।
रजनीकर	चन्द्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
रत्न	रत्ननिधि Trinity	३	जिनागम में मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र का एक होना बतलाया गया है, जिन्हें तीन रत्न भी निरूपित किया गया है।
रत्न	मूल्यवान पत्थर A precious gem	९	नव प्रकार के रत्न माने गये हैं : वज्र, वैडूर्य, गोमेद, पुष्पराग, पद्मराग, मरकत, नील, मुक्ता, प्रवाल।
रन्ध्र	छिद्र Opening	९	मानव शरीर में नव मुख्य रन्ध्र होते हैं।
रस	स्वाद Taste	६	मुख्य रस छः हैं : मधुर, अम्ल, लवण, कटुक, तिक्त, कषाय।
रुद्र	शिव का नाम Name of a Deity	११	भव देखिए।
रूप	आकार Form or shape	१	प्रत्येक वस्तु का केवल एक रूप होता है।
लब्ध	नव शक्तियों की प्राप्ति Attainment of nine powers	९	नव लब्धियाँ निम्नलिखित हैं : अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य। ये कर्मों के क्षय से क्षायिक भाव के रूप प्राप्त होते हैं।
लब्धि	Attainment	९	लब्ध देखिए।
लेश्या		६	
लोक	World	३	भुवन देखिए।
लोचन	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
वर्ण		५	जिनागम में वर्ण के पाँच प्रकार हैं : कृष्ण, नील, पीत, रक्त और श्वेत।
वसु	वैदिक देवताओं की एक जाति A class of Vedic deities	८	ये देवता संख्या में आठ होते हैं।
वह्नि	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
वारण	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
वार्धि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
विधु	चंद्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
विषधि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
विषनिधि	"	"	"

शब्द	सामान्य अर्थ	कल्पित मान	उद्गम
विषय	इंद्रियों के विषय Object of sense	५	पंचेन्द्रियों के विषय पांच हैं : गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द।
वियत्	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
विश्व	वैदिक देवताओं का एक समूह A group of Vedic deities	१३	इस समूह में १३ सदस्य होते हैं।
विष्णुपाद	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
वेद	The Vedas	४	चार वेद ये हैं : ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व।
वैश्वानर	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
व्यसन	बुरी आदत An unwholesome addiction	७	जिनागम में जीव का अहित करने वाले सप्त व्यसन निम्नलिखित रूप में उल्लिखित हैं : द्यूत, मांस भक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, अस्तेय, आखेट।
व्योम	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
व्रत	अणु व्रत या महाव्रत Partial or whole act of devotion or austerity	५	जिनागम में अणु व्रत और महाव्रत ५ हैं। हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह और स्तेय (चोरी) नामक पंच पापों से एक देश विरक्त होना अणुव्रत है। हिंसादि पांच पापों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत है। करणीय भी देखिए।
शङ्कर	रुद्र का नाम Name of Rudra	११	मृड देखिए।
शर	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
शशधर	चंद्र The Moon	१	इन्दु देखिए।
शशलाञ्छन	” ”	”	” ”
शशाङ्क	” ”	”	” ”
शशिन्	” ”	”	” ”
शस्त्र	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
शिखिन्	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
शिलीमुखपद	षट्पद The legs of a bee	६	मधुमक्खी या भौंरे के छः पैर माने जाते हैं।
शैल	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
श्वेत		१	
सलिलाकर	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
सागर	” ”	”	” ”

शब्द	सामान्य अर्थ	[illegible]	वक्तव्य
सायक	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
सिन्धुर	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
सूर्य	The Sun	१२	इन देखिए।
सोम	चंद्र The moon	४	इन्दु देखिए।
स्तम्बेरम	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
स्वर	संगीत का स्वर A note of the musical scale	७	सात शुद्ध स्वर हैं षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। संगीत के प्रारम्भ में इन्हीं सप्त स्वरों के आदि अक्षरों को ग्रहण कर स, रि, ग, म प ध, नि का ज्ञान कराया जाता है।
हय	घोड़ा Horse	७	अश्व देखिए।
हर	रुद्र का नाम Name of Rudra	११	मृड देखिए।
हर नेत्र	Siva's eyes	३	शिव की दो आँखों के सिवाय एक और आँख मस्तक के मध्य में रहती है।
हुतवह	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
हुताशन	” ”	”	” ”
हिमकर	चन्द्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
हिमगु	” ”	”	” ”
हिमांशु	” ”	”	” ”

परिशिष्ट २

अनुवाद में अवतरित संस्कृत शब्दों का स्पष्टीकरण

आबाधा Ābādhā	Segment of a straight line forming the base of a triangle or a quadrilateral.
आढक Ādhak	A measure of grain. परिशिष्ट–४ की सारिणी ३ देखिए।
अध्वान Adhvān	The vertical space required for presenting the long and short syllables of all the possible varieties of metre with any given number of syllables, the space required for the symbol of a short or a long syllable being one *agunla* and the intervening space between each variety being also an angula. अध्याय ६—३३३½ से ३३६½ का टिप्पण देखिए।
आदिधन Ādidhana	Each term of a series in arithmetical progression is conceived to consist of the sum of the first term and a multiple of the common difference The sum of all the first terms is called the *Ādidhan* अध्याय २—६३ और ६४ का टिप्पण देखिए।
आदिमिश्रधन Ādimiśradhana	The sum of a series in arithmetical progression combined with the first term thereof. अध्याय २—८० से ८२ का टिप्पण देखिए।
अगरु Agaru	A kind of fragrant wood, *Amyris agallocha.*
अम्ल वेतस Amla-vētasa	A kind of sorrel, *Rumex vesicarius*.
अमोघवर्ष Amōghvarsa	Name of a king, *lit*: one who showers down truly useful rain
अंश Amśa	A measure of weight in relation to metals परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
अंशमूल Amśamūla	Square root of a fractional part अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए।

अंगुल Aṅgula	A measure of length finger measure अध्याय १—२५ से २९ तथा परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
अंतरावलम्बक Antarāvalam baka	Inner perpendicular the measure of a string suspended from the point of intersection of two strings streched from the top of two pillars to a point in the line passing through the bottom of both the pillars
अंत्यधन Antyadhana	The last term of a series in arithmetical or geometrical progression.
अणु Aṇu	Atom or particle अध्याय १—२५ से ३० तथा परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
अरिष्टनेमि Aristanēmi	The twenty second *Tirthakar*
अर्बुद Arbud	Name of the eleventh place in notation.
अर्जुन Arjuna	Name of a tree *Terminalia, Arjuna* W & A.
असित Asita	Name of a tree *Grislea Tomentosa.*
अशोक Aśōka	Name of a tree *Jonesia Asoka Roxb*
औण्ड्र-औण्ड्र फल Auṇḍra- Auṇḍraphala	A kind of approximate measure of the cubical contents of an excavation or of a solid This kind of approximate measure is called Auttra by Brahmagupta अध्याय ८— का टिप्पण देखिए।
आवलि Āvali	A measure of time परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
अयन Ayana	" " "
बीज Bija	Literally seed here it is used to denote a set of two positive integers with the aid of the product and the squares whereof, as forming the measure of the sides a right angled triangle may be constructed अध्याय ७— ४ का टिप्पण देखिए।

भाग Bhāga	A measure of baser metals. परिशिष्ट ४, सारिणी ६ देखिए । A measure fraction. A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए ।
भागभाग Bhāgabhāga	A complex fraction
भागाभ्यास Bhāgābhyāsa	A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ८—३ का टिप्पण देखिए ।
भागहार Bhāgahāra	Division.
भागमात्र Bhāgamātr	Fractions consisting of two or more of the varieties of *Bhāga, Prabhāga, Bhāgabhāga, Bhāgānubandha* and *Bhāgāpavāha* fractions. अध्याय ३—१३८ का टिप्पण देखिए ।
भागानुबंध Bhāgānubandha	Fractions in association. अध्याय ३—११३ का टिप्पण देखिए ।
भागापवाह Bhāgāpāvāha	Dissociated fractions. अध्याय ३–१२३ का टिप्पण देखिये ।
भागसम्वर्ग Bhāgasaṁvarga	A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए ।
भाज्य Bhājya	The middle one of the three places forming the cube root group , that which has to be divided अध्याय २—५३ और ५४ का टिप्पण देखिए ।
भार Bhāra	A measure of baser metals परिशिष्ट ४, सारिणी ६ देखिए ।
भिन्नदृश्य Bhinnadṛśya	A variety of miscellaneous problems on fraction अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए ।
भिन्नकुट्टीकार Bhinnakuttī-kāra	Proportionate distribution involving fractional quantities पृष्ठ १२३ की पाद-टिप्पणी देखिए ।
चक्रिकाभञ्जन Cakrikābhañ-jana	The destroyer of the cyle of recurring rebirths , also the name of a king of the Rāstrakūṭa dynasty.
चम्पक Campaka	Name of a tree bearing a yellow fragrant flower , *Michelia Champaka*
छन्द Chandas	A syllabic metre
चिति Citi	Summation of series.

- **चित्र-कुट्टीकार Citra-kuṭṭīkāra** — Curious and interesting problems involving proportionate division.
- **चित्र-कुट्टीकार मिश्र Citra kuṭṭīkāra miśra** — Mixed problems of a curious and interesting nature involving the application of the operation of proportionate division.
- **दण्ड Daṇḍa** — A measure of distance परिशिष्ट ४ की सारिणी [illegible] देखिए।
- **दश Daśa** — Tenth place
- **दशकोटि Daśa-kōṭi** — Ten Crore
- **दशलक्ष Daśa Lakṣa** — Ten Lakhs or one million
- **दश सहस्र Daśa-sahasra** — Ten thousand
- **धरण Dharaṇa** — A weight measure of gold or silver ; परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४ और ५ देखिए।
- **दीनार Dīnāra** — A weight measure of baser metals Also used as the name of a coin परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
- **द्रक्षुण Drakṣūṇa** — A weight measure of baser metals. परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
- **द्रोण Drōṇa** — A measure of capacity in relation to grain परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
- **दुण्डुक Duṇḍuka** — Name of a tree
- **द्विरग्रशेषमूल Dviragraśēṣamūla** — A Variety of miscellaneous problems on fractions
- **एक Eka** — Unit place
- **गण्डक Gaṇḍaka** — A weight measure of gold परिशिष्ट ४ की सारिणी ४ देखिए।
- **घन Ghana** — Cubing; the first figure on the right among the three digits forming a group of figures into which a numerical quantity whose cube root is to be found out has to be divided. अध्याय २–५१ ५४ का टिप्पण देखिए।

घनमूल Ghanamūla	Cube root.
घटी Ghatī	A measure of time. परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
गुणकार Gunakāra	Multiplication.
गुणधन Gunadhana	The product of the common ratio taken as many times as the number of terms in a geometrically progressive series multiplied by the first term अध्याय २–९३ का टिप्पण देखिए।
गुञ्जा Guñjā	A weight measure of gold or silver. परिशिष्ट ४ की सारिणिया ४ और ५ देखिए।
हस्त Hasta	A measure of length. परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
हिंताल Hintāla	Name of a tree, *Phaenix* or *Elate Paludosa.*
इच्छा Icchā	That quantity in a problem on Rule-of-Three in relation to which something is required to be found out according to the given rate
इन्द्रनील Indranīla	Sapphire
जम्बू Jambū	Name of a tree, *Eugenia Jambalona.*
जन्य Janya	Trilateral and quadrilateral figures that may by derived out of certain given data called *bījas.*
जिन Jinas	Those who have attained partial or whole success in getting themselves absorbed in the unification of their souls' right faith, right knowledge and right character may be called Jinas
जिनपति Jinapati	The chief of the Jinas, generally, *Tīrthankara.*
जिन-शान्ति Jina-Sānti	The sixteenth *Tīrthankara*
जिन-वर्द्धमान Jina-Vardhamāna	The last or twenty-fourth *Tīrthankara*

कदम्ब
Kadamba
Name of a tree *Nauclea Cadamba*.

कला
Kalā
A weight measure of baser metals.
परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

कलासवर्ण
Kalāsavarṇa
Fraction. अध्याय ३ के प्रथम श्लोक में पृष्ठ ११ पर कलासवर्ण की पाद टिप्पणी देखिए।

कर्म
Karmas
The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech. The molecules and atoms, which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the soul, whereby an infinite number of subtle atoms and ultimate particles are attracted and assimilated by the soul. This assimilated group of atoms is termed as Karma. Its effect is visible in the multifarious conditions of the soul. There are eight main classifications of the nature of Karmas. परिशिष्ट १ में कर्म देखिए।

कर्मान्तिक
Karmāntika
A kind of approximate measure of the cubical contents of an excavation or of a solid. अध्याय ८—९ का टिप्पण देखिए।

कर्ष
Karṣa
A weight measure of gold or silver. परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४ और ५ देखिए।

कार्षापण
Kārṣāpaṇa
A Karṣa.

केतकी
Kētakī
Name of a tree *Pandanus Odoratissimus*.

खारी
Khārī
A measure of capacity in relation to grain.

खर्व
Kharva
The thirteenth place in notation.

किष्कु
Kiṣku
A measure of length in relation to the sawing of wood.

कोटि
Koṭi
Crore, the 8th place in notation.

कोटिका
Koṭikā
A numerical measure of cloths, jewels and canes. परिशिष्ट ४ की सारिणी ७ देखिए।

क्रोश
Krōśa
A measure of length. परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।

कृष्णागरु Krasnāgaru	A kind of fragrant wood ; a black variety of *Agallochum*
कृति Krti	Squaring.
क्षेपपद Ksēpapada	Half of the difference between twice the first term and the common difference in a series in arithmetical progression.
क्षित्या Ksityā	The 21st place in notation.
क्षोभ Ksōbha	The 23rd place in notation.
क्षोणी Ksōnī	The 17th place in notation.
कुडह या कुडब Kudaha or Kudaba	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
कुम्भ Kumbha	" " "
कुङ्कुम Kunkuma	The pollen and filaments of the flowers of saffron, *Croeus sativus*
कुर्वक Kurvaka	Name of a tree , the *Amaranth* or the *Barleria*
कुटज Kutaja	Name of a tree , *Wrightia Antidysenterica*.
कुट्टीकार Kuttikāra	Proportionate division, अध्याय ६–७९½ देखिए।
लाभ Lābha	Quotient or share
लक्ष Laks	Lakh, the 6th place in notation.
लङ्का Lankā	The place where the meridian passing through Ujjain meets the equator
लव Lava	A measure of time. परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
मधुक Madhuka	Name of a tree, *Bassia Latifolia*

मध्यधन Madhya dhana	The middle term of a series in arithmetical progression अध्याय ६–६३ का टिप्पण देखिए।
महाखर्व Mahākharva	The 14th place in notation
महाक्षित्या Mahāksityā	The 22nd place in notation
महाक्षोभ Mahāksōbha	The 24th place in notation.
महाक्षोणी Mahāksoṇi	The 18th place in notation.
महापद्म Mahāpadma	The 16th place in notation
महाशङ्ख Mahāśankha	The 20th place in notation.
महावीर Mahāvīra	A name of Vardhamāna.
मानी Mānī	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ सारिणी १ देखिए।
मर्दल Mardala	A kind of drum for a longitudinal section, see note to chapter 7th, 32nd stanza.
मार्ग Mārga	Section the line along which a piece of wood is cut by a saw
माष Māsa	A weight measure of silver परिशिष्ट ४, सारिणी ५ देखिए।
मेरु Mēru	Name of a tapering mountain forming the centre of *Jambu dvipa* all planets revolving around it.
मिश्रधन Misradhana	Mixed sum. अध्याय २–८ से ८२ का टिप्पण देखिए।
मृदङ्ग Mrdanga	*A kind of drum ; for a longitudinal section see note* to chapter 8th, 32nd stanza.
मुहूर्त Muhūrta	A measure of time परिशिष्ट ४ सारिणी २ देखिए।
मुख Mukha	The topside of a qudrilateral.
मूल Mūla	Square root a variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—१ का टिप्पण देखिए।

मूलमिश्र Mūlamiśra	Involving square root, a variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए ।
मुरज Muraja	A kind of drum, same as Mradaṅga.
नन्द्यावर्त Nandyāvarta	Name of a palace built in a particular form अध्याय ६–३३०½ का टिप्पण देखिए ।
नरपाल Narapāla	King, probably name of a king
नीलोत्पल Nīlotpala	Blue water-lily
निरुद्ध Niruddha	Least common multiple
निष्क Niska	A golden coin.
न्यर्बुद Nyarbuda	The 12th place in notation.
पाद Pāda	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए ।
पद्म Padma	The 15th place in notation.
पद्मराग Padmarāga	A kind of gem or precious stone
पैशाचिक Paiśācika	Relating to the devil, hence very difficult or complex
पक्ष Paksa	A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए ।
पल Pala	A weight measure of gold, silver and other metals परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४, ५, ६ देखिए ।
पण Paṇa	A weight measure of gold, also a golden coin परिशिष्ट ४ की सारिणी ४ देखिए ।
पणव Panava	A kind of drum, for longitudinal section see note to Chapter 7th, 32nd stanza.
परमाणु	Ultimate particle परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए ।
परिकर्मन् Parikarman	Arithmetical operation.
पार्श्व Pārśva	The 23rd Tīrthankara

पाटली Pāṭali	A tree with sweet-scented blossoms *Bignonia Suaveolens*
पट्टिका Paṭṭikā	A measure of saw work. परिशिष्ट ४, सारिणी १० तथा अध्याय ८—११ से ६७½ का टिप्पण देखिए।
फल Phala	A given quantity corresponding to what has to be found out in a problem on the Rule-of Three अध्याय ५—२ का टिप्पण देखिए।
प्लक्ष Plakṣa	Name of a tree; the waved leaf fig-tree, *Ficus Infectoria* or *Religiosa*
प्रभाग Prabhāga	Fraction of a fraction
प्रकीर्णक Prakīrṇaka	Miscellaneous problems
प्रक्षेपक Prakṣēpaka	Proportionate distribution
प्रक्षेपक-करण Prakṣēpaka karaṇa	An operation of proportionate distribution.
प्रमाण Pramāṇa	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए। The given quantity corresponding to *Icchā*, in a problem on Rule-of Three अध्याय ५—२ का टिप्पण देखिए।
प्रपूरणिका Prapūraṇikā	Literally, that which completes or fills; here, baser metals mixed with gold dross.
प्रस्थ Prastha	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ १ और ५ देखिए।
प्रत्युत्पन्न Pratyutpanna	Multiplication
प्रवर्तिका Pravartikā	A measure of capacity in relation to grain.
पुन्नाग Punnāga	Name of a tree; *Rottleria Tinctoria*.
पुराण Purāṇa	A weight measure of silver probably also a coin. परिशिष्ट ४ सारिणी ५ देखिए।
पुष्यराग Puṣyarāga	A kind of gem or precious stone

रथरेणु Ratharēnu	A particle. परिशिष्ट ४ सारिणी १ देखिए।
रोमकापुरी Rōmkāpurī	A place 90° to the west of Lankā.
ऋतु Rtu	Season, here used as a measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
सहस्र Sahasra	Thousand.
शक Śaka	The teak tree.
सकल कुट्टीकार Sakala Kuttī-kāra	Proportionate distribution, in which fractions are not involved.
साल Sāla	The *Sāla* tree, *Shorea Robusta* or *Valeria Robusta*
सल्लकी Sallakī	Name of a tree, *Boswellia Thurifera*.
समय Samaya	The ultimate part of time measure परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
सङ्कलित Sankalita	Summation of series
शङ्ख Śaṅkha	The 19th place in notation
सङ्क्रमण Saṅkramana	An operation involving the halves of the sum and the difference of any two quantities अध्याय ६—२ का टिप्पण देखिए।
सङ्क्रान्ति Sankrānti	The passage of the sun from one zodiacal sign to another
शान्ति Śānti	See Jina-Śānti
सरल Sarala	Name of a tree, *Pinus Longifolia*.
सारस Sārasa	A kind of bird, the Indian crane

सारसंग्रह
Sārasangraha — Literally, a brief exposition of the essentials or principles of a subject here, the name of this work on arithmetic

सर्ज
Sarja — Name of a tree; Same as the *Śāla* tree

सर्वधन
Sarvadhana — The sum of a series in arithmetical progression अध्याय २–११ और १४ का टिप्पण देखिए।

शत
Śata — A hundred

शतकोटि
Śatakōṭi — A hundred crores.

शतेर
Śatera — A weight measure of baser metals परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिये।

शेष
Śēṣa — The terms that remain in a series after a portion of it from the beginning is taken away अध्याय २ के पृष्ठ १२ पर व्युत्कलित का टिप्पण देखिए।
A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–१ का टिप्पण देखिए।

शेषमूल
Śēṣamūla — A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–१ का टिप्पण देखिए।

सिद्धपुरी
Siddhapurī — The antipodes of Laṅkā

सिद्ध
Siddhas — The emancipated souls These souls, due to complete freedom from karmic bondage attain all attributes of soul, viz , infinite perception, power, knowledge, bliss etc कर्मबंध से रहित, सर्वज्ञ, परमपद में स्थित सिद्ध भगवान् आठ गुणों से सम्पन्न हैं – ज्ञानगुण, दर्शनगुण, सम्यक्त्वगुण शक्तिगुण अव्याबाधगुण, अवगाहनागुण सूक्ष्मत्वगुण, अगुरुलघुगुण।

षोडशिका
Ṣōḍaśikā — A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

शोध्य
Śōdhya — One of the three figures of a cubic root group. अध्याय २–५३ और ५४ का टिप्पण देखिए।

श्रावक
Śrāvaka

A lay follower of Jainism, having the following eight chief vows :
abstenance from wine, flesh, honey, partial non-violence, truth and chastity; partial non-thievery and partial setting of limits to possession.

श्रीपर्णी
Śrīparnī

Name of a tree, *Premna Spinosa.*

स्तोक
Stōka

A measure of time परिशिष्ट ८, सारिणी २ देखिए।

सूक्ष्मफल
Sūksmaphala

Accurate measure of the area or of the cubical contents.

सुवर्ण कुट्टीकार
Suvarna-kuttikāra

Proportionate distribution as applied to problems relating to gold.

सुव्रत
Suvrata

The 20th Tirthankara, Munisurata

स्वर्ण
Svarna

A gold coin

स्याद्वाद
Syādavāda

The doctrine of Syādvāda, known as saptabha-nginaya, is represented as being based on the Naya (that which reveals only partial truth) method. This is set forth as follows May be, it is, may be, it is not, may be, it is and it is not, may be, it is indescribable, may be, it is and yet indescribable, may be, it is not and it is also indescribable, may be it is and it is not and it is also indescribable
अध्याय १—८ में पृष्ठ २ पर पादटिप्पणी देखिए।

तमाल
Tamāla

Name of a tree, *Xanthochymus Pictorius.*

तिलक
Tilaka

Name of a tree with beautiful flowers

तीर्थ
Tīrtha — *Tīrtha* is interpreted to mean a ford intended to cross the river of mundane existence which is subject to *karma* and cycle of births and rebirths The Jina, Tīrthankara, may be conceived to be a cause of enabling the souls of the living beings to get out of the stream of *samsāra* or the recurring cycle of embodied existence अध्याय १–१ में पृष्ठ ११ पर टिप्पणी देखिये।

तीर्थंकर
Tīrthankara — Patriarchs endowed with superhuman qualities; those who have attained infinite perception, knowledge power and bliss through supreme concentration and promulgate the truth matchlessly According to Jainism *Tīrthankaras* are always present in *Videha Kṣetra*, but in the *Bharata* and *Airāvata Kṣetras* they are present in the fourth era of the two aeons (i) causing increase and (ii) causing decrease Twenty four *Tīrthankaras* have been in the past fourth era of the aeon, causing decrease Out of them Lord Ṛ*ṣabha* was the first and Lord *Vardhamāna* was the last *Tīrthankara*.

त्रसरेणु
Trasareṇu — A particle परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

त्रिप्रश्न
Tripraśna — Name of a chapter in Sanskrit astronomical works. अध्याय १—१९ में पृष्ठ २ पर पादटिप्पण देखिए।

तुला
Tulā — A weight measure of baser metals

उभयनिषेध
Ubhayaniṣedha — A di-deficient quadrilateral. अध्याय ७—१७ का टिप्पण देखिए।

उच्छ्वास
Ucchvāsa — A measure of time परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।

उत्पल
Utpala — The water-lily flower

उत्तरधन
Uttaradhana — The sum of all the multiples of the common difference found in a series in arithmetical progression. अध्याय २—६१ और ६४ का टिप्पण देखिए।

उत्तरमिश्रधन Uttaramiśra-dhana	A mixed sum obtained by adding together the common difference of a series in arithmetical progression and the sum thereof. अध्याय २—८० से ८२ का टिप्पण देखिए।
वाह Vāha	A measure of capacity in relation to grain.
वज्र Vajra	A weapon of Indra, for longitudinal section *see* note to Chapter 7th, stanza 32
वज्रापवर्तन Vajrāpavartana	Cross reduction in multiplication of fractions अध्याभ ३—२ का टिप्पण देखिए।
वकुल Vakula	Name of a tree ; *Mimusops Elengi*
वल्लिका Vallikā	Proportionate distribution based on a creeper-like chain of figures अध्याय ६—११५½ का टिप्पण देखिए।
वर्द्धमान Vardhamāna	See Jina-Vardhamāna
वर्गमूल Vargamūla	Square root.
वर्ण Varna	Literally colour, here denotes the proportion of pure gold in any given piece of gold, pure gold being taken to be of 16 Varnas.
विचित्र-कुट्टीकार Vicitra-kuttikāra	Curious and interesting problems involving proportionate division. अध्याय ६ में पृष्ठ १४५ पर टिप्पण देखिये।
विद्याधर-नगर Vidyādhara-nagara	A rectangular town is what seems to be intended here.
विषम कुट्टीकार Visama-kuttikāra	Proportionate distribution involving fractional quantities. अध्याय ६ में पृष्ठ १२३ पर विषम कुट्टीकार की पाद टिप्पणी देखिए।
विषम सङ्क्रमण Visama-sankramana	An operation involving the halves of the sum and the difference of the two quantities represented by the divisor and the quotient of any two given quantities अध्याय ६—२ का टिप्पण देखिए।
वितस्ति	A measure of length परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
वृषभ Vrsabha	The first *Tīrthankara*. See *Tīrthankara*

व्यवहाराङ्गुल Vyavahārāngula — A measure of length परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

व्युत्कलित Vyutkalita — Subtraction of part of a series from the whole series in arithmetical progression अध्याय २ में व्युत्कलित की पाद टिप्पणी पृष्ठ १२ पर देखिए।

यव Yava — A kind of grain; a measure of length. परिशिष्ट ४ सारिणी १ देखिए। Longitudinal section of a grain. आकृति के लिये अध्याय ७—१२ का टिप्पण देखिए।

यवकोटि Yavakōṭi — A place 90° to the East of Lankā

योग Yōga — Penance practice of meditation and mental concentration.

योजन Yōjana — A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

परिशिष्ट–३

उत्तरमाला

अध्याय–२

(२) ११५२ कमल (३) २५९२ पद्मराग (४) १५१५१ पुष्यराग (५) ५३९४६ कमल (६) १२५५३२७९४८ कमल (७) १२३४५६५४३२१ (८) ४३०४६७२१ (९) १४१९१४७ (१०) १११११११११ (११) ११००००१०००००११ (१२) १०००१०००१ (१३) १०००००००१ (१४) १११११११११; २२२२२२२२२, ३३३३३३३३३; ४४४४४४४४४; ५५५५५५५५५, ६६६६६६६६६; ७७७७७७७७७, ८८८८८८८८८; ९९९९९९९९९ (१५) ११११११११ (१६) १६७७७२१६ (१७) १००२००२००१ (२०) १२८ दीनार (२१) ७३ सुवर्ण खंड (२२) १३१ दीनार (२३) १७९ सुवर्ण खंड (२४) ८०३ जम्बू फल (२५) १७३ जम्बू फल (२६) ८०२९ रत्न (२७) २७०१४६८१ सुवर्ण खण्ड (२८) २१९१ रत्न (३२) १, ४, ९; १६, २५; ३६, ४९, ६४, ८१; २२५; २५६, ६२५, १२९६, ५६२५ (३३) ११८२४४, २१७२४९२१, ६५५३६ (३४) ४२९४९६७२९६, १५२३९९०२५, १११०८८८९ (३५) ४०७९३७६९, ५०९०८२२५; १०४४४८४ (३७) १, २; ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १६, २८ (३८) ८१, २५६ (३९) ६५५३६, ७८९ (४०) ७९७९; १३३१ (४१) ३६,२५ (४२) ३३३, १११, ९९९ (४८) १, ८, २७, ६४, १२५; २१६, ३४३,'५१२, ७२९, ३३७५, ५६२५, ४६६५६, ८५६५३३, ८८४७३६ (४९) १०३०३०१, १०८८४४८, १३७३८८०९६, ३६८६०१८१३, २८२७०१५५८४ (५०) ९६६३५९७, ७७३०८७७६, २६०९१७१११९, ६१८४७०२०८, १२०७९४९६२५ (५१) ४७४१६३२, ३७९३३०५६, १२८०२४०६४, ३०३४६४४४८, ५१२७०४०००, १०२४१९२५१२, १६२६३७९७७६, २४२७७१५५८४ (५२) ८५९०११३६९९४५९४८८६४ (५५) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १७, १२३ (५६) २४, २३३, ८५२ (५७) ६४६४, ४२४२ (५८) ४२६, ६३९ (५९) १३४४, ११७६ (६०) ९५०६०४ (६५) ५५, ११०, १६५, २२० २७५, ३३०; ३८५, ४४०, ४९५, ५५० (६६) ४० (६७) ५६४, ७५४, ९८०, १२४५, १५५२, १९०४, २३०४ (६८) ४०००००० (७१) ५, ८, १५ (७२) ९, १०, (७७) २, २ (७९) २, ५२०, १०, जब कि चुनी हुई संख्याएँ २ और १० रहती हैं। (८३) २, ३; ५, २, ३, ५।

(८५) १२०, २४, जब कि इष्ट श्रेढि का योग ज्ञातयोग से द्विगुणित होता है। तथा, ३०, ६० जब कि इष्ट श्रेढि का योग ज्ञातयोग से आधा होता है।

(८७) ४६, ४, जब कि योग समान होते हैं। तथा, ३६, २४, जब कि एकयोग दूसरे से द्विगुणित होता है। तथा, ४४, २६, जब कि एकयोग दूसरे से त्रिगुणित होता है।

(८८) १००, २१६, जब कि योग समान हों। तथा, २३२, १९२, जब कि एक योग अन्य से द्विगुणित होता है। तथा, ३४, २२८, जब कि एक योग अन्य से आधा है।

(९०) २१, १७, १३, ९, ५, १, २५; १७; ९, १ (९२) ६, ५, ४, ३, २, १ (९६) ४३७४ स्वर्ण सिक्के (९९) १२७५ दीनार (१००) ६८८८७; २२८८८१८३५९३ (१०२) ४, २.

(८३) २, ३/२, ४/३, जब कि चुनी हुई राशियाँ ६, ८, ९ हों।
(८४) ८; १२, १६, जब कि चुनी हुई राशियाँ ६, ४, ३ हों।
(८६) (अ) १८, ९, जब कि चुनी हुई सख्या ३ हो।
(ब) ३०, १५, जब चुनी हुई संख्या पुनः ३ हो।
(८८) (अ) ६; १२ जहाँ २ चुनी हुई सख्या है।
(ब) ३, १५ " ५ " " " ।
(स) ४६, ९२ " २ " " " ।
(द) २२; ११० " ५ " " " ।
(९०) (अ) ४, २८ (ब) २५, १७५
(९१) १६, २४० (९२) १५१; ३०२०।

(९४) (अ) २२, ४४, ३३, ६६, ५८, ११६, जब कि योग १/४, १/२ और १/४ में विपाटित किया जाता है और चुनी हुई सख्या २ रहती है। (ब) ११, २२; ५९, २३६, १९१, ३८, २०, जब कि योग १/२, १/४, १/२० में विपाटित किया जाता है। (९६) ५२ (९७) २१ (९८) १/५ (१०० से १०२) १ (१०३ और १०४) १ (१०५ और १०६) १ (१०८) ३/२ (११०) १/३, ३/४०, १/३, यदि १/६, १/१२ और १/४ मन से चुनी हुई राशियाँ हैं। (१११) ७ ५/१२ (११२) २/३ (११४) ० (११५) १४ १/८ निष्क (११६) ० (११७) २ द्रोण और ३ माशा (११८) १ ३/४ (११९) २ ४/२१ निष्क (१२०) १ (१२१) १ ३/४ (१२३) १/५; १/१०, १/३, यदि १/२, १/६, १/२ मन से विपाटित किये गये भाग हैं। (१२५) १/७ (१२७) २८ कर्ष (१२८) १/८ (१२९) १ (१३०) १ (१३१) १ (१३३) १/३, १/४, २/३, जब कि १/६, १/१२ और १/४ मन से विपाटित किये गये भाग हैं। (१३४) २/३ (१३७) १/४ जब कि १/५, १/६, १/७, १/८, १/९ आदि के स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों में मन से चुने हुए भिन्न हैं। २/३ जब कि १/४, १/५, १/६, १/७, १/८ ऐसे ही सजातीय भिन्न हैं। (१३९ और १४०) ८ १/१५।

अध्याय—४

(५) २४ हस्त (६) २० मधुमक्खियाँ (भृंग) (७) १०८ कमल (८ से ११) २८८ साधु (१२ से १६) २५२० शुक (१७ से २२) ३४५६ मुक्ता (२३ से २७) ७५६० षट्पद (२८) ८१९२ गाएँ (२९ और ३०) १८ आम (३१) ४२ हाथी (३२) १०८ पुराण (३४) ३६ ऊँट (३५) १४४ मयूर (३६) ५७६ पक्षी (३७) ६४ बन्दर (३८) ३६ कोयलें (३९) १०० हंस (४१) २४ हाथी (४२ से ४५) १०० मुनि (४६) १६४ हाथी (४८) १६ मधुकर (४९) १९६ सिंह (५०) ३२४ हिरण (५३) अंगुल ४८ (५४ और ५५) १५० हाथी (५६) २०० वराह (५८) ९६ या ३२ वाह (५९) १४४ या ११२ मयूर (६०) २४० या १२० हस्त (६२) ६४ या १६ महिष (६३) १०० या ४० हाथी (६४) १२० या ४५ मयूर (६६) १६ कपोत (६७) १०० कपोत (६८) २५६ राजहंस (७०) ७२ (७१) ३२४ हाथी (७२) १७२८ साधु।

अध्याय-५

(३) ६३८ ४/१३ योजन (४) ५ १९/२५ योजन (५) १०५६००००० (६) १० ७/४० दिन (७) ३११० २/५ वर्ष (८) ९ २/४ ६/३ २/० ४/० १/८ वाह (९) ३२ १/७ पल (१०) ५७ ३/२ ४/५ पल (११) १९६ ३/७ भार (१२) ६६५ २/२ ०/३ दीनार

११; १८; २३; २७, १९; २३; ७, ३९, ११; ४४, $\frac{८३}{६८}$; ४१, ५१, ४६; ५९; ३७

(१४०½ से १४२½). ८; ५।

(१४४½ और १४५½)—

	मातुलुंग	कदली	कपित्थ	दाडिम
प्रथम ढेरी	१४	३	३	१
द्वितीय "	१६	३	२	१
तृतीय "	१८	३	१	१
मूल्य	२	१०	४	३

(१४७½ से १४९):—

	मयूर	कपोत	हस	सारस
सख्या	७	१६	४५	४
पणों में मूल्य	$\frac{१४}{३}$	१२	३६	$\frac{१०}{३}$

(१५०)—

	शुण्ठि	पिप्पल	मरिच
परिमाण	२०	४४	४
पणों में मूल्य	१२	१६	३२

(१५२ और १५३) पण ९, २०, ३५, ३६ (१५५ और १५६) जब चुनी हुई सख्या ६ हो तो $\frac{६३}{४}$, $\frac{९१}{४}$, ३, ७ जब चुनी हुई संख्या ८ हो तो ५, ६; १६, ४ (१५८) क्षेत्र की लम्बाई १० योजन, प्रत्येक अश्वको ४० योजन वहन करना पड़ता है।

(१६० से १६२) १०, ९, ८, ५ (१६४) २०, १५ और १२, (१६५ और १६६) ८, २०; ४० (१६८) २४३ पण, (१७० से १७१½), १०½; $\frac{२}{२५}$, $\frac{४}{२५}$, $\frac{२}{७}$, $\frac{१६}{२५}$, $\frac{४०}{२५}$, $\frac{२८}{३}$, $\frac{८०}{७}$ (१७३½) ३२, (१७४½) ८७ $\frac{१}{३}$, (१७७½ और १७८) १४ (१७९) ३, (१८१) २१, (१८४) $\frac{२००}{३}$, $\frac{१००}{३}$, (१८६) २०, ४, ४, ४, ४, २४, (१८८) $\frac{११७}{५६}$; $\frac{१०९}{५०}$, अथवा $\frac{१७५}{५६}$, $\frac{१११}{५०}$, (१९०), $\frac{१३}{२}$, १२; (१९१) ८, १३, १०, $\frac{२९}{२}$, (१९३ से १९६½,) (अ) $\frac{१३}{२}$, $\frac{१००}{७}$, $\frac{१००७}{३२}$, (ब) $\frac{११}{२}$, $\frac{७५}{७}$; $\frac{६८९}{२२}$, (१९८½), ५६०, ४४८(२००½से २०१) $\frac{२००}{७}$, १००, $\frac{१६००}{७}$, $\frac{८००}{७}$, (२०४ और २०५) ४७, १७; ३४, ६८, १३६ (२०७ और २०८) २४००, (२१३ से २१५) ३, २, $\frac{४४}{७५}$; $\frac{५८}{७५}$ (२१७) ११ (२१९) ६, १५, २०, १५, ६, १, ६३ (२२०) ५, १०, १०, ५, १, ३१ (२२१) ४, ६, ४, १, १५ (२२३ से २२५) १०, २४, ३२ (२२७) ४ पनस (Jack fruits) (२२९) २ योजन (२३१ और २३२) १८, ५७, १५५, ४९० दीनारें (२३६ और २३७) १५, १, ३, ५ (२३९ और २४०) २६१, ९२१, १४१६, १८०१, २१०९, ११०८८० (२४२ और २४३) ११, १३, ३० (२४४ और २४६½) ३, ४, ५ (२४५½ और २४७) ५१७७ १०३, १६९, २२३, २६८ (२४८) १४७६० ३५६, ५८५, ४४५, ६२४ (२४९ से २५०½) ५५, ७१, ६६, ८७६ (२५३½ से २५५½) ७, ८, ९ (२५६½ से २५८½) ११, १७ २० (२६०½ और २६१½) ७, ३, २ (२६२½) ८, १२, १८, १५, ३१ (२६३½) ५४, ७२, ७८, ८०, १२१ (२६४½) १८७५, २६२५, २९२५, ३०४५, ३०९३, ५१८७ (२६६½) ४, ७, १३ (२६७½) १२, १६, २२, ३१ (२७० से २७२½) ४२, ४० (२७४½) ५, ८

(१३६) ३२, ८७; ६; २३२ (१३८) ३७, २४, २९; ४० (१३९) १७; १६, १३; २४ (१४०) ६२५, ६७२, ९७०, १९०४ (१४१) २८१; ३२०, ४४२, ८८० (१४३ से १४५) वृत्त २५९२० महिलाएँ, ७२० दण्ड। सम चतुरश्र (वर्ग) ३४५६० महिलाएँ, ७२० दण्ड। समबाहु त्रिभुज ३८८८० महिलाएँ, १०८० दण्ड। आयतचतुरश्र : ३८८८० महिलाएँ, १०८० दण्ड, ५४० दण्ड। (१४७) (i) भुजा ८ (ii) आधार १२, लम्ब ५ (१४९) $\frac{१३}{३}$, $\frac{१३}{३}$, $५\frac{१}{२}$, $४\frac{१}{२}$; ४ (१५१) १३, १३; १३, ३, १२ (१५३ से १५३$\frac{१}{२}$) ३, १६, ११, १२ (१५५$\frac{१}{२}$) $\sqrt[४]{४८}$ (१५७$\frac{१}{२}$) ५, ६, ४ (१५९$\frac{१}{२}$) $\frac{४५}{३०}$, $\frac{८१}{३०}$, $\frac{११६}{३०}$ (१६२$\frac{१}{२}$) $\frac{११६}{३०}$, $\frac{८१}{३०}$; $\frac{४५}{३०}$ (१६४$\frac{१}{२}$) $\sqrt{४०}$ (१६६$\frac{१}{२}$) ७, १; $\frac{१३}{४}$ (१६७$\frac{१}{२}$) $\frac{३७}{८}$, $\frac{१३}{८}$, $\frac{१३}{८}$ $\frac{१३}{८}$ (१६९$\frac{१}{२}$) ६ (१७०$\frac{१}{२}$) १० (१७२$\frac{१}{२}$) १०, १३; (१७४$\frac{१}{२}$) भुजाएँ $\frac{६१}{८}$; मुखभुजा $\frac{३४}{८}$, तलभुजा $\frac{५६}{८}$ (१७६) १७ (१७७$\frac{१}{२}$ से १७८$\frac{१}{२}$) (अ) ३६००, ७२००, १०८००, १४४००, (ब) ५४, ९०, १२६, १६२, (स) १००, १००, १००, १०० (१७९$\frac{१}{२}$) (अ) २७००, ७२००, ४५००; (ब) ५०, ७०, ८०, (स) ६०, १२०, ६० (१८१$\frac{१}{२}$) ८ हस्त, ८ हस्त (१८२$\frac{१}{२}$) $\frac{५४}{७}$ हस्त, $\frac{३०}{७}$ हस्त, $\frac{९०}{७}$ हस्त (१८३$\frac{१}{२}$ और १८४$\frac{१}{२}$) ३ हस्त, ६ हस्त. ९ हस्त (१८५$\frac{१}{२}$) ७ हस्त, ७ हस्त, $\frac{३८}{३}$ हस्त (१८६$\frac{१}{२}$) $\frac{१३}{२}$ हस्त, $\frac{३}{२}$ हस्त, $\frac{३१}{४}$ हस्त (१८७$\frac{१}{२}$) ९ हस्त, १२ हस्त, ९ हस्त (१८८$\frac{१}{२}$ और १८९$\frac{१}{२}$) ८ हस्त, २ हस्त, ४ हस्त (१९१$\frac{१}{२}$) १३ हस्त (१९२$\frac{१}{२}$) २९ हस्त (१९३$\frac{१}{२}$ से १९५$\frac{१}{२}$) २९ हस्त, २१ हस्त (१९७$\frac{१}{२}$) १० हस्त (१९९$\frac{१}{२}$ से २००$\frac{१}{२}$) १२ योजन, ३ योजन (२०४$\frac{१}{२}$ से २०५) ९ हस्त, ५ हस्त, $\sqrt{२५०}$ हस्त (२०६ से २०७$\frac{१}{२}$) ६ योजन, १४ योजन, $\sqrt{५२०}$ योजन (२०८$\frac{१}{२}$ से २०९$\frac{१}{२}$) १५ योजन, ७ योजन (२११$\frac{१}{२}$ से २१२$\frac{१}{२}$) १३ दिन (२१४$\frac{१}{२}$) $\sqrt{१८}$; १३ (२१५$\frac{१}{२}$) $\frac{६५}{४}$ (२१६$\frac{१}{२}$) $\frac{१३५}{३}$ (२१७$\frac{१}{२}$) ६५ (२१८$\frac{१}{२}$) $\sqrt{४८}$, $\frac{९६}{१२}$ (२१९$\frac{१}{२}$) $\frac{६५}{४}$ (२२०$\frac{१}{२}$) ४ (२२२$\frac{१}{२}$) वर्ग : $\sqrt{\frac{१६९}{२}}$ आयत : ५, १२, दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{५३}{८}$, मुख भुजा $\frac{१६}{८}$, तल $\frac{५६}{८}$ तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{३१}{८}$, तल $\frac{१५२१}{१२८}$ असमान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{३९}{८}$, $\frac{५२}{८}$; मुखभुजा ५, तल १२ समबाहु त्रिभुज $\sqrt{\frac{५०७}{४}}$ समद्विबाहु त्रिभुजः—भुजाएँ १२, आधार $\frac{१५}{३}$ विषम त्रिभुज भुजाएँ, १२, $\frac{५२}{८}$, तल $\frac{५६}{८}$ (२२४$\frac{१}{२}$) वर्ग, ३ दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज . $\frac{१०८}{१९}$ तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज : $\frac{५१३}{६९}$ विषम चतुर्भुज : $\frac{४४१}{६८}$, समबाहु त्रिभुज : $\sqrt{१२}$, समद्विबाहु त्रिभुज : $\frac{३०}{३}$, विषम त्रिभुज : ८ षट्कोण : $\sqrt{\frac{१६}{३}}$, यदि क्षेत्रफल इस अध्याय के ८६$\frac{१}{२}$वें श्लोक में दत नियम के अनुसार $\sqrt{४८}$ किया जाता है। (२२६$\frac{१}{२}$) ८ (२२८$\frac{१}{२}$) २ (२३०$\frac{१}{२}$) १० (२३२$\frac{१}{२}$) ६, २।

अध्याय–८

(५) ५१२ घन हस्त (६) १८५६० घन हस्त (७) १४४३२० घन हस्त (८) १६२००० घन हस्त (१२$\frac{१}{२}$) २९२८ घन हस्त (१३$\frac{१}{२}$) १४५८ घन हस्त, १४७६ घन हस्त, १४६४ घन हस्त (१४$\frac{१}{२}$) २९०६ घन हस्त, २९५२ घन हस्त, २९२८ घन हस्त (१५$\frac{१}{२}$) ३०६० घन हस्त (१६$\frac{१}{२}$) $\frac{९८९८०}{९}$ घन हस्त (१७$\frac{१}{२}$) १६१०० घन हस्त (१८$\frac{१}{२}$) १८२८३$\frac{१}{२}$ घन हस्त (२१$\frac{१}{२}$) (i) ३०२४ घन दण्ड, ३०२४ घन दण्ड, ४०३२ घन दण्ड (ii) केन्द्रीय पुञ्ज एक ओर घटता हुआ है १४८८, १४८८, १९८४ घन दण्ड (२२$\frac{१}{२}$) ४०३२, १९८४ घनदण्ड (२४$\frac{१}{२}$) ४० घन हस्त (२५$\frac{१}{२}$) १६ हस्त (२७$\frac{१}{२}$) १२, ३० (२९$\frac{१}{२}$) २३०४, २०७३$\frac{३}{५}$ (३१$\frac{१}{२}$) $\sqrt{७२०}$, $\sqrt{६४८}$ (३४) $\frac{१}{४}$ दिनाश, $\frac{२}{४}$, $\frac{३}{४}$, $\frac{४}{४}$, $\frac{५}{४}$ कुएँ का भाग (३५ और ३६) १३ योजन और ९७६ दण्ड, ३९$\frac{१}{२६६}$ वाह (३७ से ३८$\frac{१}{२}$) १७ योजन, १ कोश

परिशिष्ट—४

माप-सारिणियाँ

१. रेखा-माप *

अनन्त परमाणु	= १ अणु
८ अणु	= १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु	= १ रथरेणु
८ रथरेणु	= १ उत्तम भोगभूमि बाल-माप
८ उ भो बा.	= १ मध्यम भोगभूमि का बाल-माप
८ म. भो. बा.	= १ जघन्य " " "
८ ज. भो. बा	= १ कर्मभूमि का बाल-माप
८ कर्मभूमि का बाल माप	= १ लीक्षा-माप
८ लीक्षा माप	= १ तिल माप या सरसों-माप †
८ तिल माप	= १ यव माप
८ यव माप	= १ अङ्गुल या व्यवहाराङ्गुल
५०० व्यवहाराङ्गुल	= १ प्रमाण या प्रमाणाङ्गुल
वर्तमान नराङ्गुल	= १ आत्माङ्गुल
६ आत्माङ्गुल	= १ पाद-माप (तिर्यक्)
२ पाद	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ हस्त
४ हस्त	= १ दण्ड ‡
२००० दण्ड	= १ क्रोश
४ क्रोश	= १ योजन

२. काल-माप []

असंख्यात समय	= १ आवलि
सख्यात आवलि	= १ उच्छ्वास
७ उच्छ्वास	= १ स्तोक
७ स्तोक	= १ लव

---

* इस सम्बन्ध में तिलोयपण्णत्ती में दिया गया रेखा-माप द्रष्टव्य है १,९३–१३२ ।

† तिलोयपण्णत्ती में लीक्षा के पश्चात् जूं माप है ।

‡ तिलोयपण्णत्ती में दण्ड को धनुष, मूसल या नाली भी बतलाया है ।

[] इस सम्बन्ध में तिलोयपण्णत्ती में दिया गया काल माप द्रष्टव्य है । ४, २८५–२८६

३८½ लव	= १ घटी
२ घटी	= १ मुहूर्त
३० मुहूर्त	= १ दिन
१५ दिन	= १ पक्ष
२ पक्ष	= १ मास
२ मास	= १ ऋतु
३ ऋतु	= १ अयन
२ अयन	= १ वर्ष

३ धारिता-माप (धान्य माप)

४ षोडशिका	= १ कुडह
४ कुडह	= १ प्रस्थ
४ प्रस्थ	= १ आढक
४ आढक	= १ द्रोण
४ द्रोण	= १ मानी
४ मानी	= १ खारी
५ खारी	= १ प्रवर्तिका
४ प्रवर्तिका	= १ वाह
५ प्रवर्तिका	= १ कुम्भ

४ सुवर्ण भार-माप

४ गण्डक	= १ गुञ्जा
५ गुञ्जा	= १ पण
८ पण	= १ धरण
२ धरण	= १ कर्ष
४ कर्ष	= १ पल

५ रजत भार-माप

२ धान्य	= १ गुञ्जा
२ गुञ्जा	= १ माष
१६ माष	= १ धरण
२½ धरण	= १ कर्ष या पुराण
४ कर्ष या पुराण	= १ पल

६ लोहादि भार-माप

४ पाद	= १ कला
६¼ कला	= १ यव

४ यव	= १ अंश
८ अंश	= १ भाग
६ भाग	= १ द्रक्षूण
२ द्रक्षूण	= १ दीनार
२ दीनार	= १ सतेर
१२½ पल	= १ प्रस्थ
२०० पल	= १ तुला
१० तुला	= १ भार

७ वस्त्र, आभरण और वेत्रमाप

२० युगल	= १ कोटिका

८ भूमि-प्रमाण

१ घन हस्त घनीभूत भूमि	= ३६०० पल
१ घन हस्त ढीली (loose) "	= ३२०० पल

९ ईंट-प्रमाण

१ हस्त × ½ हस्त × ४ अङ्गुल ईंट	= इकाई ईंट

१०. काष्ठ-प्रमाण

१ हस्त और १८ अङ्गुल	= १ किष्कु
९६ अङ्गुल लम्बे और १ किष्कु चौड़े काष्ठखंड को आरे से काटने में किया गया कार्य	= १ पट्टिका

११ छाया-प्रमाण

मनुष्य की ⅙ ऊँचाई	= उसका पाद माप

परिशिष्ट—५

ग्रंथ में प्रयुक्त संस्कृत पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण

[हिन्दी-वर्णमाला क्रम में]

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
अगरु				सुगंधित काष्ठ।	Amyris agallocha
अग्र	१२१–१२२	१		आगे अथवा आरम्भ का।	
अज				भचक्र के भेदों में से एक भेद का नाम अज है। ये बारह होते हैं।	
अङ्गुल	२५–२१	१		लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ भी देखिये।
अणु	२५–२७	१		परमाणु या अंत्यमहत्ता को प्राप्त पुद्गल कण।	
अध्वान	१११½–११६½	१		किसी वृत्त संख्या के अक्षरोंवाले छन्द के समस्त सम्भव प्रकारों के दीर्घ और लघु अक्षरों को उपस्थित करने के लिए ऊर्ध्व (vertical) अन्तराल। लघु अथवा दीर्घ अक्षर के प्रतीक का अन्तराल एक अङ्गुल तथा प्रत्येक प्रकार के बीच का अन्तराल भी एक अङ्गुल होता है।	
अन्त्यधन				समान्तर या गुणोत्तर श्रेढि में अंतिम पद।	
अन्तरावलम्बक				भीतरी लम्ब, जो स्तम्भों के शिखर से दोनों स्तम्भों के तल से जाने वाली रेखा में स्थित बिन्दु तक तत (stretched) दो धागों के मिथ-छेदन बिन्दु से लटकने वाले धागे का माप।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
अन्तश्चक्रवाल वृत्त	..	..	...	कङ्कण की भीतरी परिधि।	
अपर	१२३	९	...	उत्तर, बाद की।	
अमोघ वर्ष		.	..	राजा का नाम, (साहित्यिक) : वह जो वास्तव में उपयोगी वर्षा करते हैं।	
अम्लवेतस		..		खट्टी पत्तियों वाली एक प्रकार की जड़ी।	Rumex Vesicarius
अयन		..		काल का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
अरिष्टनेमि	..	...	..	बाईसवें तीर्थंकर।	
अर्जुन	..	.		वृक्ष का नाम।	Ferminalia Arjuna W & A
अर्बुद	..	. .	.	ग्यारहवें स्थान की संकेतना का नाम।	
अवनति	३२	९	..	झुकाव।	
अवलम्ब	४९	७	...	शीर्ष से गिराया हुआ लम्ब।	
अव्यक्त	१२१	३	.	अज्ञात।	
अशोक	.	...		वृक्ष का नाम।	Jonesia Aso ka Roxb.
असित			.	”	Grislea Tomentosa
आढक		.	..	धान्य-माप	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
आदि		.	.	श्रेढि का प्रथम पद।	
आदिधन	६३–६४	२	.	समान्तर श्रेढि के प्रत्येक पद को प्रथम पद एव प्रचय के अपवर्त्य के योग से सयवित मान लेते हैं। समस्त प्रथम पदों के योग को आदिधन कहते हैं।	
आदि मिश्रधन	८०–८२	२	.	प्रथम पद से संयुक्त। समान्तर श्रेढि का योग।	
आबाधा	...	.		किसी त्रिभुज या चतुर्भुज के आधार को संचरित करनेवाली सरल रेखा का खण्ड।	
आयत वृत्त	६	७	.	दीर्घवृत्त (Ellipse)	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
आयाम				लम्बाई।	
आवलि				काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
इच्छा				त्रैराशिक प्रश्न सम्बन्धी वह राशि जिसके सम्बन्ध में दत्त अर्थ (Rate) पर कुछ निकालना इष्ट होता है।	
इन्द्रनील				शनिप्रिय, नीलमणि	Sapphire
इभदन्ताकार	७३	७		हाथी के दाँत (खीस) का आकार।	
उच्छ्वास				काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
उत्तर धन	६३–६४	२		समान्तर श्रेढि में पाये जाने वाले प्रचय के समस्त अपवर्तों का योग।	
उत्तर मिश्रधन	८०–८२	२		समान्तर श्रेढि के प्रचयों तथा श्रेढि के योग को जोड़ने से प्राप्त मिश्र योगफल।	
उत्पल				जल में उगने वाला नलिनी पुष्प।	
उत्सेध				उच्छ्राय या ऊँचाई।	
उन्नत वृत्त	६	७		उठे हुए सममितीय तल वाली आकृति।	
उभय निषेध	३७	७		एक प्रकार का चतुर्भुज।	
ऋतु				काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
एक				इकाई का स्थान।	
औण्ड्र-औण्ड्रफल	२	८		किसी खाई अथवा खात की घनात्मक समाई का व्यावहारिक माप जिसे ब्रह्मगुप्त ने औत्र कहा है।	
कर्ष				धातुओं सम्बन्धी भार का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
कलामूल				भिन्नांश का वर्गमूल।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
कलावर्ग				भिन्नांश का वर्ग।	„ „
कदम्ब				वृक्ष का नाम।	Nauclea Cadamba.
कम्बुक वृत्त	६	७		शंख के आकार की आकृति।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
कर्ण	५०	७		सम्मुख कोण बिन्दुओं को जोड़ने वाली सरल रेखा।	
कर्म			...	जीव के रागद्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्मांग वर्गणारूप जो पुद्गल स्कंध जीव के साथ बंधको प्राप्त होते हैं, उनको कर्म कहते हैं।	परिशिष्ट १ में भी 'कर्म' देखिए।
कर्मान्तिका	९	८		किसी सान्द्र अथवा खात की घनात्मक समाई का व्यावहारिक माप।	
कर्ष				स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४ और ५ देखिये।
कला				कुप्य (base) धातुओं का भार माप।	परिशिष्ट ८ की सूची ६ देखिये।
कला सवर्ण				भिन्न।	अध्याय तीन के प्रारम्भ में पाद-टिप्पणी देखिये।
कार्षापण	...	..	..	कर्ष।	
किष्कु	..	..		काष्ठ चीरने के सम्बन्ध में लम्बाई का माप।	
कुङ्कुम				कुङ्कुम फूलों के पराग एवं अंशु।	Crocus sativus
कुट्टीकार	७९½	६		अनुपाती विभाजन।	
कुडव-कुडहा	..			धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
कुटजा				वृक्ष का नाम।	Wrightia Antidysenterica
कुम्भ			.	धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
कुर्चक	.	...		वृक्ष का नाम।	the Amaranath or the Barleria,
केतकी	...	.		"	Pandanus Odoratissimus

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
कोटि				करोड़ संकलना का आठवाँ स्थान।	
कोटिका				वस्त्र, आभूषण तथा बेंत का संख्यात्मक माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ७ देखिये।
कोश				लम्बाई (दूरी) का माप।	परिशिष्ट १ की सूची १ देखिये।
कृति				वर्ग करने की क्रिया।	
कृष्णागरु				सुगन्धित काष्ठ की काली विभिन्नता।	
खर्व				संकलना का तेरहवाँ स्थान।	
खारी				धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	
गच्छ				श्रेढि के पदों की संख्या।	
गद्याणक				स्वर्ण का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ४ देखिये।
गतनाड्य	१२	१		पूर्वाह्न में बीता हुआ दिनांश।	
गुंजा				स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४ एवं ५ देखिये।
गुण	५	७		धागा।	
गुणकार				गुणा।	
गुणधन	३	२		गुणोत्तर श्रेढि के पदों की संख्या के तुल्य साधारण निष्पत्तियों को लेकर, उनके परस्पर गुणनफल में प्रथम पद का गुणा करने से गुणधन प्राप्त होता है।	
गुण संकलित				गुणोत्तर श्रेढि (Geometrical progression)	
घटी				काल माप	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
घन	५३-५४	२		किसी राशि का घन करना जिस राशि का घनमूल निकालना इष्ट होता है उसे इकाई के स्थान से प्रारम्भ कर तीन-तीन के समूह में विभाजित करते हैं। इन समूहों में से प्रत्येक का दाहिनी ओर का अंतिम अंक घन कहलाता है।	
घन मूल				घनमूल निकालने की क्रिया।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
चक्रिकाभञ्जन	६	१	१	जन्ममरण के चक्र का संहार करनेवाले, राष्ट्रकूट राजवंश के राजा का नाम।	
चतुर्मण्डल क्षेत्र	८२½	७	२०१	मध्य स्थिति	
चम्पक	६	४	६९	पीले सुगन्धित पुष्प वाला वृक्ष	Michelia Champaka
चय	६८	२	२२	प्रचय। वह राशि जो समान्तर श्रेढि के उत्तरोत्तर पदों में समान अन्तर स्थापित करती है।	
चरमार्ध	१०३½	६	११२	शेष मूल्य	
चिति	३०३	६	१६९ २६२	श्रेढि संकलन। ढेर।	
चित्र कुट्टीकार	२१६	६	१४५	अनुपाती विभाजन समन्वित विचित्र एवं मनोरञ्जक प्रश्न।	
चित्र कुट्टीकार मिश्र	२७३½	६	१६०	अनुपाती विभाजन क्रिया के प्रयोग गर्भित विचित्र एवं मनोरञ्जक निश्चित प्रश्न।	
छन्द	३३३½	६	१७७	.. ...	A syllabic metre
जन्य	९०½	७	२०४	'बीज' नामक दत्त न्यास से व्युत्पादित त्रिभुज और चतुर्भुज आकृतियाँ।	
जम्बू	६४	४	८०	वृक्ष का नाम।	Eujenia Jambalona.
जिन	१	६	९१	जिन्होंने घातिया कर्मों का नाश किया है वे सकल जिन हैं इनमें अरहत और सिद्धगर्भित हैं। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एक देश जिन कहे जाते हैं क्योंकि वे रत्नत्रय सहित होते हैं। असंयत सम्यक् दृष्टि से लेकर अयोगी पर्यन्त सभी जिन होते हैं।	जिन्होंने अनेक विषम भवों के गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्म शत्रुओं को जीता है–निर्जरा की है, वे जिन कहलाते हैं।
जिनपति	८३½	६	१०८	तीर्थंकर।	
ज्येष्ठ धन	१०२½	६	११२	सबसे बड़ा धन।	
डुण्डुक	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अनुकृति
तमाल	१९	४	७४	वृक्ष का नाम।	Xanthochymus Pictorius
ताली	११६½	६	११९	वृक्ष का नाम	
तिलक	२१	४	७२	सुन्दर पुष्पों वाला वृक्ष।	
तीर्थ	१	१	११	उपयुक्त स्थान जहाँ से नदी आदि को पार कर सकते हैं।	
तीर्थंकर	१	१	११	तीर्थों को उत्पन्न करनेवाली, चार घातिया कर्मों का नाशकर अर्हंत पद से विभूषित आत्मा।	
तुला	४४	१	६	कुप्य (Baser) धातुओं का भार माप।	
त्रसरेणु	२६	१	४	कण। क्षेत्रमाप।	
त्रिप्रश्न	१२	१	२	संस्कृत ज्योतिष ग्रंथों के किसी अध्याय का नाम।	
त्रिसमचतुरस्र	५	७	१८१	तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र।	
दण्ड	१	१	४	दूरी की माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
दश	६३	१	८	संकेतना का दसवाँ स्थान।	
दश कोटि	६५	१	८	दस करोड़।	
दश लक्ष	६४	१	८	दस लाख (One million)।	
दश सहस्र	६४	१	८	दस हजार।	
द्विरग्रशेषमूल	१	४	६८	भिन्नों के विविध प्रश्नों की एक जाति।	
द्विसम त्रिभुज	५	७	१८	दो समान भुजाओं वाला (समद्विबाहु) त्रिभुज क्षेत्र।	
द्विसम चतुरस्र	,,	,,	१८	दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र।	
द्वि द्विसम चतुरस्र	,,	,,	१८	आयत क्षेत्र।	
दीनार	४१	१	६	कुप्य धातुओं का भार माप। टंक- (सिक्के) का नाम भी दीनार है।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
[illegible] घन	८४	२	२१	घात घन	
द्रक्षुण	४१	१	६	कुप्य धातुओं (Baser metals) का भार माप।	,, ,,
द्रोण	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
धनुषाकार क्षेत्र	४३	७	१९	धनुष के चाप एवं चापकर्ण से सीमित क्षेत्र।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
धरण	३९	१	५	स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४ और ५ देखिये।
नन्द्यावर्त	३३२$\frac{1}{2}$	६	१७७	विशेष प्रकार के बने हुए राजमहल का नाम।	
नरपाल	१०	२	११	राजा, सम्भवतः किसी राजा का नाम।	
निरुद्ध	५६	३	४९	लघुत्तम समापवर्त्य।	
निष्क	११४	३	६१	स्वर्ण टक (सिक्का)।	
नीलोत्पल	२२१	६	१४७	नील कमल (जल में उगने वाली नीली नलिनी)।	
नेमिक्षेत्र	१७ ८०$\frac{1}{2}$	७ "	१८४ २००	दो सकेन्द्र परिधियों का मध्यवर्ती क्षेत्र (Annulus)।	
न्यर्बुद	६५	१	८	सकेतना का बारहवाँ स्थान।	
पट्टिका	६३–६७$\frac{1}{2}$	८	२६७	क्रकच कर्म (Saw-work) का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १० देखिये।
पण	३९	१	५	स्वर्ण का भार माप, स्वर्ण टक (सिक्का)।	परिशिष्ट ४ की सूची ४ देखिये।
पणव (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	डिंडम या भेरी, ...	
पद्म	६६	१	८	संकेतना का पंद्रहवाँ स्थान।	
पद्मराग	३	२	१०	एक प्रकार का रत्न।	
परमाणु	२५	१	४	पुद्गल का अविभागी कण।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
परिकर्म	४७ ४८	१	६	गणितीय क्रियाएँ। इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार (श्लोक १६० १६१) के अनुसार कुन्दकुन्दपुर के पद्मनन्दि (अर्थात् कुन्दकुन्द) ने अपने गुरुओं से सिद्धान्त का अध्ययन किया और षट्खंडागम के तीन खंडों पर परिकर्म नाम की टीका लिखी। यह अनुपलब्ध है। (तिलोय पण्णत्ति भाग २, १९५१ की प्रस्तावना से उद्धृत)।	
पल	३९ ४१ ४४	१	५ ५ ६	स्वर्ण, रजत एवं अन्य धातुओं का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४, ५, ६ देखिये।
पक्ष	३४	१	५	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
पाटली	६ २४	४ ४	६१ ७२	मधुर गंध वाले पुष्पों वाला वृक्ष।	Bignonia Suaveolens.
पाद	२९	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
पार्श्व	८१३	६	१ ८	पार्श्वनाथ, २३वें तीर्थंकर। बाजू में।	
पुन्नाग	१७	४	७१	वृक्ष का नाम।	Rottleria Tinctoria
पुराण	४?	१	६	रजत का भार माप, सम्भवतः सिक्का भी।	परिशिष्ट ४ की सूची ५ देखिये।
पुष्पराग	४	२	१	एक प्रकार का रत्न।	
पैशाचिक	११२½	७	२१५	पिशाच सम्बन्धी इसलिये अत्यन्त कठिन अथवा जटिल।	
प्रकीर्णक	६	४	५८	मिश्रित प्रश्नावलि।	
प्रतिबाहु	७	७	१८९	पार्श्व या बाजू की भुजा।	
प्रत्युत्पन्न	१	२	९	गुणन।	
प्रपूरणिका	१ २	६	१४०	(शाब्दिक) वह जो पूर्ण रूप से भर अथवा पूरा कर देती है, यहाँ स्वर्ण मिश्रित कुप्य धातुएँ, तलछट (dross)।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
प्रभाग	९९	३	५९	भिन्न का भिन्न (भाग का भाग)।	
प्रमाण	२८	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिए।
	२	५	८३	इच्छा की सवादी दत्त राशि जो त्रैराशिक प्रश्नों से सम्बन्धित है।	
प्रवर्तिका	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	
प्रस्थ	३६	१	५	" "	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ३ और ६ देखिये।
प्रक्षेपक	७९½	६	१०८	अनुपाती वितरण।	
प्रक्षेपक करण	७९½	६	१०८	अनुपाती वितरण सम्बन्धी क्रिया।	
प्लक्ष	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम; प्रोदुम्बर।	Ficus Infectoria, or Religiosa.
फल	२	५	८३	त्रैराशिक प्रश्न में निकाली जाने वाली राशि की संवादी दत्त राशि।	
बहिश्चक्रवाल वृत्त	२८ ६७½	७ ७	१८७ १९७	कङ्कण की बाहिरी परिधि।	
वाण	४३	७	१९०	धनुषाकार क्षेत्र में चाप और चापकर्ण की महत्तम उदग्र दूरी। (height of a segment)	
बालेन्दु क्षेत्र	७९½	७	२००	चंद्रमा की कला सदृश क्षेत्र।	
बीज				(साहित्यिक), बोया जाने वाला धान्य आदि।	
	९०½	७	२०४	(यहाँ) इसका उपयोग धनात्मक दो पूर्णाङ्कों के अभिधान हेतु होता है जिनके गुणनफल एवं वर्गों की सहायता से भुजाओं के माप को निकालने पर समकोण त्रिभुज संरचित होता है।	
भाग	४२	१	६	कुप्य (baser) धातुओं का माप	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
भागानुबंध	११३	३	६१	सयव भिन्न (Fractions in association)	
भागापवाह	१२६	३	६३	वियुत भिन्न (Dissociated fractions)	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
भागाभ्यास	१	४	६८	प्रकीर्णक मिश्रों का एक प्रकार।	
भागभाग	१११	१	९	जटिल भिन्न (Complex fraction)।	
भागमातृ	११८	१	५५	भाग, प्रभाग, भागभाग, भागानुबन्ध, और भागापवाह भिन्न जातियों के दो या दो से अधिक प्रकारों के संयोग से संरचित।	
भाग संवर्ग	२	४	६८	प्रकीर्णक मिश्रों की एक जाति।	
भागहार	१८	२	१२	विभाजन क्रिया।	
भाज्य	५३–५४	२	१८	घनमूल समूह की रचना करने वाले तीन स्थानों में से बीच का स्थान। जिसमें भाग देते हैं।	
भार	४४	१	९	कुम्भ (baser) धातुओं का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
मिश्र कुट्टीकार	११४	६	१२१	मिश्रीय राशियों का अन्तर्वारक अनुपाती वितरण।	
मिश्र हरण	१	४	६८	प्रकीर्णक मिश्रों की एक जाति।	
मधूक	२	४	७२	वृक्ष का नाम।	Bassia Latifolia
मध्यधन	६१	२	२१	समानान्तर श्रेढि का मध्य पद।	
मर्दल (अन्त्यायाम छेद)	१२	७	१८८	डिंडिम या भेरी।	
महाखर्व	६६	१	८	संख्या का चौदहवाँ स्थान।	
महापद्म	६६	१	८	संख्या का सोलहवाँ स्थान।	
महावीर	१	१	१	२४वें तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी।	
महाशंख	६७	१	८	संख्या का बीसवाँ स्थान।	
महाक्षिति	६८	१	८	संख्या का बाईसवाँ स्थान।	
महाक्षोभ	६८	१	८	संख्या का चौबीसवाँ स्थान।	
महाक्षोणी	६७	१	८	संख्या का अठारहवाँ स्थान।	
मार्ग	६१	८	११७	छेद (section)- वह अनुरेखा जिस पर से काट का टुकड़ा आरे से	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
मानी	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
माष	४०	१	५	रजत का भार माप टक (सिक्का)।	परिशिष्ट ४ की सूची ५ देखिये।
मिश्रघन	८०–८२	२	२४	सयुक्त या मिला हुआ योग।	
मुख	५०	७	१९३	चतुर्भुज की ऊपरी भुजा (top-side)	शङ्खाकार और मृदङ्ग आकार वाले क्षेत्रों में भी मुख का उपयोग हुआ है।
मुरज	३२	७	१८८	मृदंग के समान डिंडिम या भेरी।	
मुहूर्त	३४	१	५	काल माप	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
मूल	३६	२	१५	वर्गमूल, प्रकीर्णक भिन्नों को एक जाति	
	३	४	६८		
मूलमिश्र	३	४	६८	जिसमें वर्गमूल अंतर्भूत हो; प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
मेरु	५	५	८३	जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित सुमेरु पर्वत। विशेष विवरण के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति भाग २ में (४/१८०२–१८११, ४/२८१३, २८२३) देखिये।	
मृदग (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	एक प्रकार की डिंडिम या भेरी।	
यव	२७	१	४	एक प्रकार का धान्य, लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
	४२	१	६	एक प्रकार का धातु माप।	
यव कोटि	५½	९	२७०	लका के पूर्व से ९०° की ओर एक स्थान।	
योग	४२	४	७५	मन वचन काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चचल होने की क्रिया।	(जैन परिभाषा)
				तपस्या, ध्यान का अभ्यास	(अन्य मत से)
योजन	३१	१	४	लम्बाई का माप	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
रथरेणु	२६	१	४	पुद्गल कण	" "
रूप	९७½	६	१११	पूर्णांक।	
रोमकापुरी	५½	९	२७०	लंका के पश्चिम से ९०° की ओर एक स्थान।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
लंका	५२½	१	१००	यह स्थान जहाँ उज्जैन से निकलने वाला मुख्यवृत्त (meridian) विषुवत् रेखा से मिलता है।	
लव	११	१	५	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
लक्ष	१४	१	८	लाख, संकेतना का छठवाँ स्थान।	
लवम	५	६	१२	भजनफल या हिस्सा (अंश)।	
वकुल	२५	४	७२	वृक्ष का नाम।	Mimusops Elengi.
वज्र (अन्वायाम क्षेत्र)	१२	७	१८८	इंद्र का आयुध।	
वज्रापवर्तन	२	१	१६	भिन्नों के गुणन में तिर्यक् प्रहासन।	
वर्गमूल	११	२	१५	वह इष्ट राशि जिसका वर्ग करने से वह दत्त राशि उत्पन्न होती है जिसका वर्गमूल निकालना इष्ट होता है।	
वर्ण	१६९	६	११५	(साहित्यिक) रंग; शुद्ध स्वर्ण १६ वर्ण का मानकर दत्त स्वर्ण की शुद्धता के अंश का अभिधान वर्ण द्वारा होता है।	
वर्धमान	१	५	८१	चौबीसवें तीर्थंकर।	
वल्लिका / वल्लिका कुट्टीकार	११५½	६	११५	लता सदृश अंकविन्यास पर आधारित अनुपाती वितरण।	
वाह	३८	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	
विचित्र कुट्टीकार	२१६	६	१४५	अनुपाती विभाजन सम्बन्धित विविध एवं मनोरंजक प्रश्नावलि।	
वितस्ति	१	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
विद्याधर नगर	६२	८	२१७	यहाँ आयताकार नगर का प्रयोजन मालूम पड़ता है।	
विषम कुट्टीकार	११४	६	१२१	विभिन्न राशियों का अंतर्धारक अनुपाती (मिश्र कुट्टीकार)।	
विषम चतुरस्र	५	७	१८१	सामान्य चतुर्भुज।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
विषम सक्रमण	२	६	९१	कोई भी दत्त दो राशियों के भाजक और भजनफल द्वारा प्ररूपित दो राशियों के योग एव अतर की अर्द्ध राशियों सम्बन्धी क्रिया।	
वृषभ	८३½	६	१०८	प्रथम तीर्थंकर का नाम।	
व्यवहारांगुल	२७	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
व्युत्कलित	१०६	२	३२	समानान्तर श्रेढि की समस्त श्रेढि में से श्रेढि का अंश घटाने की क्रिया।	
शङ्ख	६७	१	८	संकेतना का उन्नीसवा स्थान।	
शत	६३	१	८	सौ, सैकडा।	
शत कोटि	६५	१	८	सौ करोड़।	
शाक	६४	८	२६७	वृक्ष का नाम (Teak tree)।	
शान्ति	८४½	६	१०८	शान्तिनाथ तीर्थङ्कर।	
शेष	३	४	६८	आरम्भ से श्रेढि के अश को निकाल देने पर शेष बचनेवाले पद।	
शेषनाड्य	१०½	९	२७१	अपराह्न में बीतनेवाला दिनाश।	
शेषमूल	३	४	६८	प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
शोध्य	५३–५४	२	१८–१९	घनमूल समूह के तीन अंकों में से एक।	
श्रावक	६६	२	२२	जैनधर्म का पालन करने वाला गृहस्थ।	
श्रीपर्णी	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम।	Premna Spinosa.
शृङ्गाटक	३०½	८	७५	त्रिभुजाकार स्तूप।	
षोडशिका	३६	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
सकल कुट्टीकार	१३६½	६	१२८	अनुपाती वितरण जिसमें भिन्न अतर्भूत नहीं होते।	
सङ्क्रमण	२	६	९१	दो राशियों के योग एव अन्तर की अर्द्ध राशियों सम्बन्धी क्रिया।	
सङ्कलित	६१	२	२०	श्रेढि का योग निकालने की क्रिया।	
सङ्क्रान्ति	१७	५	८५	सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का मार्ग।	

शब्द	श्लोक	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
सतेर	४१	१	६	कुप्य (baser) धातुओं का भारमाप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
समचतुरस्र	११२½	७	२११	वर्गाकार आकृति।	
सम त्रिभुज	५	७	१८१	वह त्रिभुज जिसकी सब भुजाएँ समान हों।	
समय	१२	१	४	कालमाप। एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रम करने में जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
समवृत्त	६	७	१८१	वृत्त (Circle)।	
सरल	२१	४	७२	वृक्ष का नाम	Pinus Longifolia
सर्ज	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम (शाल वृक्ष के समान)।	
सर्वधन	६१–६४	२	२१	समान्तर श्रेढि का योग।	
सल्लकी	६१	४	८	वृक्ष का नाम।	Boswellias Thurifera
सहस्र	११	१	८	हजार।	
सारस	३६	४	७४	एक प्रकार का पक्षी।	
सार संग्रह	२२	१	३	(साहित्यिक) किसी विषय के सिद्धान्तों का संक्षिप्त प्रतिपादन। (यहाँ) गणित ग्रंथ का नाम।	
साल	२४	४	७२	वृक्ष का नाम।	Shorea Robusta, or Valeria Robusta.
सिद्ध	१	१	११	घातिया और अघातिया कर्मों का नाश कर अष्टगुणों आदि को प्राप्त मुक्त आत्मा।	
सिद्धपुरी	५३		२५	ब्रह्मा के प्रतिमुखस्थ।	
सुमति	७	४	७	पांचवें तीर्थंकर का नाम।	
सुवर्णकुट्टीकार	१६१	६	११६	स्वर्ण सम्बन्धी प्रश्नों में प्रयुक्त अनुपाती वितरण।	
सुव्रत	८३½	६	१ ८	बीसवें तीर्थंकर का नाम।	
सूक्ष्मफल	२	७	१८१	क्षेत्रफल अथवा घनफल का सूक्ष्म माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
स्तोक	११	१	५	कालमाप।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
स्याद्वाद	८	१	२	"कथंचित्" का पर्यायवाची शब्द। (पाद टिप्पणी भी देखिये)।	
स्वर्ण	९६	२	३०	सोने का टक (सिक्का)।	सुवर्ण भी।
हस्त	३०	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
हिन्ताल	२१६½	६	११०	वृक्ष का नाम।	Phaenix or Elate Paludosa.
क्षित्या	६८	१	८	संकेतना का इक्कीसवा स्थान।	
क्षेपपद	७०	२	२२	समान्तर श्रेढि के दुगुने प्रथम पद एवं प्रचय के अतर की अर्द्धराशि।	
क्षोणी	६७	१	८	संकेतना का सत्रहवा स्थान।	
क्षोभ	६८	१	८	संकेतना का तेईसवा स्थान।	

नोट—उपर्युक्त सारणी में सूत्र अध्याय एव पृष्ठ के प्रारम्भ के कुछ स्तम्भ भूल से रिक्त रह गये हैं। उन्हें क्रमानुसार नीचे दिया जा रहा है—

अगरु—९।२।३७। अग्र—६२।
अङ्क—४५।८।७२। अङ्गुल—२७।१।४।
अणु—४। अध्वान—१७७। अन्त्यधन—६३।२।२१।
अन्तरावलम्बक—१८०½।७।२३६।
अन्तश्चक्रवाल वृत्त—६७½।७।१९७।
अपर—२७२। अमोघवर्ष—३।१।१।
अम्लवेतस—६७।८।२६८। अयन—३५।१।५।
अरिष्टनेमि—८४½।६।१०८। अर्जुन—६७।८।२६८।
अर्बुद—६५।१।८। अवनति—२७७।
अवलम्ब—१९२। अव्यक्त—१२२।३।६२।
अशोक—२४।४।७२। असित—६७।८ २६८।
आढक—३६।१।५ आदि—६४।२।२१।
आदिधन—२१। आदि मिश्रधन—२४।
आबाधा—४९।७।१९२। आयतवृत्त—१८१।
आयाम—९।७।१८४। आवलि—३२।१।४।
इच्छा—२।५।८३। इन्द्रनील—२२०।६।१४७।
इभदन्ताकार—८०½।७।२००। उच्छ्वास—३३।१।५।

परिशिष्ट—५

डॉ० हीरालाल जैन ने जब सन् १९२३–२४ मे कारंजा के जैन भण्डारों की ग्रन्थसूची तैयार की थी तभी से उन्हें वहाँ की गणितसार संग्रह की प्राचीन प्रतियों की जानकारी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ के पुनः सम्पादन का विचार उत्पन्न होते ही उन्होंने उन प्रतियों को प्राप्त कर उनके पाठान्तर लेने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उन्हें उनके प्रिय शिष्य व वर्तमान मे पाली प्राकृत के प्राध्यापक श्री जगदीश किल्लेदार से बहुत सहायता मिली। उक्त प्रतियों का जो परिचय तथा उनमें से उपलब्ध टिप्पण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं वे उक्त प्रयास का ही फल है। अतः सम्पादक उक्त सज्जनों के बहुत अनुग्रहीत हैं।

कारंजा जैन भण्डार की प्रतियों का परिचय

क्रमांक—अ० नं० ६३

(१) (मुख पृष्ठ पर) छत्तीसी गणितग्रंथ (?)—(पुष्पिका मे) सारसंग्रह गणितशास्त्र।

(२) पत्र ४९—प्रति पत्र ११ पंक्तियाँ—आकार ११."७५ × ५"

(३) प्रथम व्यवहार पत्र १५, द्वितीय २२ (?), द्वितीय ३२, तृतीय ३७, चतुर्थ ४२

(४) प्रारभ—॥ ८० ॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ अलघ्य त्रिजगत्सार ३०

(५) अन्तिम—(पत्र ४२) इति सारसग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ त्रिराशिको नाम चतुर्थो व्यवहारः समाप्तः ॥

श्रीवीतरागाय नमः ॥ छ ॥ छत्तीसमेतेन सकल ८ भिन्न ८ भिन्नजाति ६ प्रकीर्णक १० त्रैराशिक ४ इंता ३६ नू छत्तीसमे बुदु वीराचार्यरू पेल्हगणितवनु माधव-चंद्रत्रैविद्याचार्यरु शोधिसिदरागि शोध्य सारसंग्रहमेनिषिकोंबुदु ॥ वर्ग्गसंकलिता-नयनसूत्रं ॥

(६) अन्तिम—(पत्र ४९) घनं ३५ अकसंदृष्टिः छ ॥ इति छत्तीसीगणितग्रंथसमाप्तः ॥ छ ॥ छ ॥ श्रीः ॥ शुभं भूयात् सर्वेषा ॥ ॥ : सवत् १७०२ वर्षे माग्र शिर वदी ४ बुधे संवत् १७०२ वर्षे माह श्रुदि ३ शुक्ले श्रीमूलसघे सरस्वतीगछे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदा-चार्यान्वये भ० श्रीसकलकीतिदेवास्तदन्वये भ० श्रीवादिभूषण तत्पट्टे भ० श्रीरामकीर्ति-स्तत्पट्टे भ० श्रीपद्मनंदीविराजमाने आचार्यश्रीनरेंद्रकीर्त्तिस्तच्छिष्य ब्र० श्रीलाड्यका तच्छिष्य ब्र० कामराजस्तच्छिष्य ब्र० लालजि ताभ्या श्रीरायदेशे श्रीभीलोडानगरे श्रीचद्रप्रभचैत्यालये दोसी कुंहा भार्या पदमा तयोः सुतौ दोसी केशर भार्या लाछा द्वितीय सुत दोसी वीरभाण भार्या जितादे ताभ्या स्वज्ञानावर्णिकर्मक्षयार्थे निजद्रव्येण लिखाप्य छत्तीसीगणितशास्त्र दत्तं श्रीरस्तु ॥

(७) प्राप्तिस्थान—बलात्कारगणमदिर, कारंजा, अ० न० ६३

(८) स्थिति उत्कृष्ट, अक्षर स्पष्ट,

(९) विशेषता—पृष्ठमात्रा, टिप्पण—(समास मे)

प्रति क्रमांक—म० नं० ६४

(१) सारसंग्रह गणितशास्त्र ।
(२) पत्रसंख्या १४२ प्रतिपत्र १ ८ पंक्तियाँ—प्रतिपंक्ति ४२ अक्षर आकार ५"४ × ११ ।
(३) प्रथमव्यवहार १७ द्वितीय ७८ तृतीय ९५ चतुर्थ १ ४ पंचम १११ षष्ठ ११२ सप्तम १४० अंतिम १४२ ।
(४) प्रारंभ— ८ ॥ श्री जिनाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ प्रणिपत्य वर्द्धमानं त्रिभुवनेंद्र विश्रुतगुणनिलयं । सूरिं च महावीरं कुर्वे तद्वेदशास्त्रसद्वृत्ति ॥ १ ॥ अलंघ्य इत्यादि ।
(५) अंतिम—कर्णाटकी टीका ग्रंथसंख्या १ ८ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं ॥ स्वस्ति श्री संवत् १६११ वर्षे कार्तिक सुदि ३ गुरौ श्रीगंधारपुरस्थाने श्रीमदादिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे श्रीसरस्वतीगच्छे श्रीबलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ श्रीदेवेंद्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ श्रीविद्यानंदिदेवास्तत्पट्टे भ श्री मल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीलक्ष्मीचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ श्रीवीरचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ श्रीज्ञानभूषणदेवास्तदन्वये आचार्य सुमतिकीर्तिउपदेशात् श्रीहुंब जातीय सोनी सांगा भार्या बाई हरषाई तयो पुत्र सोनी देवर भार्या मरघाई तयोः पुत्रौ सोनी देवजी सोमजी एतेषां मध्ये सोनी देवरकेन इद शास्त्र लिखाप्य प्रदत्त किंचत् भावकैः लिखापितं ॥ छ ॥

आ वीरचभूषणानामिदं ॥

कर्णाटकि गणितनि टिका

संवत् १८४२ मिति वैशाख सुदि ११ भट्टारक श्रीविद्याभूषणाद भवत छत्रसी भट्टारक श्री देवेन्द्र कीर्तिजीभ्यां प्रदत्तं शुभं भूयात् ।

(६) बलात्कार मंदिर आरंभा क ६४ ।

प्रति क्रमांक—म० नं० ६५

(१) सारसंग्रह गणितशास्त्र—प्रशस्ति मे—षट्त्रिंशतिकागणितशास्त्र ।
(२) पत्र ५१ प्रति पत्र १ पंक्तियाँ; आकार ११ × ४"७५ ।
(३) प्रथम व्यवहार १६; द्वितीय १४; तृतीय ४ ; चतुर्थ ४६; पंचम ५१ ।
(४) प्रारंभ—८ ॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥ अलंघ्यं त्रिजगत्सारं इत्यादि ।
(५) अन्तिम—(पत्र ५१) पर्न ॥ इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ वर्गसंकलितादिव्यवहारः पंचमः समाप्तः ॥

संवत् १७२५ वर्षे कार्तिक सुदि १ भौमे श्रीमूलसंघ सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ श्रीसकलकीर्त्यन्वये भ श्रीवादिभूषणदेवास्तत्पट्टे भ श्रीरामकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ श्रीदेवेंद्रकीर्तिगुरूपदेशात् मुनि श्रीमुनकीर्ति शिष्येण मुनि श्रीदेवकीर्तिस्तच्छिष्य आचार्य श्रीकल्याणकीर्तिस्तच्छिष्य मुनि श्रीत्रिभुवन चंद्रेनेदं षट्त्रिंशतिका गणितशास्त्रे कर्मक्षयार्थं लिखितं ।

(७) प्राप्तिस्थान—बघेरवालमंदिर, आरंभा क्र नं ६५ ।
(८) लिपि मध्यम, अक्षर स्पष्ट ।
( ) विशेषता—कन्नड मे टिप्पण; कहिंचत् शुद्धमाण ।

नोट—ऐसा प्रतीत होता है मानो यह माधवचद्र त्रैविद्यदेव का विभिन्न ग्रंथ हो—

१. वर्ग संकलितानयनसूत्रं । २९६–९७ ।
२. घनसंकलितानयनसूत्रं । ३०१–८२ ।
३. एकवारादिसंकलितधनानयनसूत्रं ।
४. सर्वधनानयने सूत्रद्वय ।
५. उत्तरोत्तरचयभवसंकलितधनानयनसूत्रं ।
६. उभयान्तादागत पुरुषद्वयसयोगानयनसूत्रं ।
७. वणिक्करस्थितधनानयनसूत्रं ।
८. समुद्रमध्ये—१–२–३ ।
९. छेदोंशशेषजातौ करणसूत्र ।
१०. करणसूत्रत्रयम् ।
११. गुणगुण्यमिश्रे सति गुणगुण्यानयनसूत्रं ।
१२. बाहुकरणानयनसूत्रं ।
१३. व्यासाद्यानयनसूत्र ।

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ वर्गसंकलितादिव्यवहारः पंचमः समाप्तः ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६२

(१) उत्तरछत्तीसी टीका ।
(२) पत्र १९, प्रति पत्र १३ पंक्तियाँ, आकार ११″×४″·७५ ।
(३) आरंभ—ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो इ० ।
(४) अन्तिम – घनः २९२७७१५५८४ ॥ छ ॥
इति श्रीउत्तरछत्तीसी टीका समाप्ता ॥
* आचार्य श्रीकल्याणकीर्तिस्तच्छिष्य मुनि श्रीत्रिभुवनचंद्रेणेद गणितशास्त्रं लिखितं ॥
उजलो पाषाण सुतारी गज १ समचोरस मण ४८ पालेवो पाषाण गज १ मण ६० षारो पाषाण गज १ मण ४० ।
(५) प्राप्तिस्थान —अ० नं० ६२ ।
(६) स्थिति उत्तम, अक्षर स्पष्ट ।
(७) क्वचित् टिप्पण ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६६

(२) पत्र १५, प्रतिपत्र १४ पक्तियाँ, आकार ११″·५×५″
(३) * ब्रह्म जसवताख्येन स्वपरपठनार्थे स्वहस्तेन लिखितं ।
(५) अ० नं० ६६ ।

प्रति क्रमांक—अ० न० ६०

(२) पत्र २०; प्रतिपत्र ११ पंक्तियाँ, आकार १२″×५″·५ ।
(५) अ० नं० ६० ।

श्लोक १–८ स देवस्य—स जिनस्य। स शासनम् अनेकान्तरूपं वर्धताम्।

श्लोक १–९ स लौकिके—वृद्धिव्यवहारादौ। अ वैदिके—आगमे। स सामायिके—प्रतिक्रमणादौ। अ यः—यः कश्चित् व्यापारः प्रवृत्तिः तत्र सर्वत्र संख्यानं गणितम् उपयुज्यते उपयोगी भवति।

श्लोक १–१० अ अर्थशास्त्रे—जीवादिकपदार्थे।

श्लोक १—११ अ प्रस्तुतम्—कथितम्। अ पुरा—पूर्वम्।

श्लोक १—१२ अ ग्रहचारेषु—संक्रमणेषु। ब सूर्यादिसंक्रमणेषु। स ग्रहणे—चन्द्र-सूर्योपरागे। ब ग्रहसंयुतौ—ग्रहयुद्धे। अ त्रिप्रश्ने—त्रयः प्रश्नाः नष्ट-मुष्टि-चिन्तारूपाः यत्र तत् त्रिप्रश्नम्, होराशास्त्रमित्यर्थः, तस्मिन्। स अथवा त्रयो धातु-मूल-जीवविषयाः प्रश्नाः यत्र तत् त्रिप्रश्नम्। प्रश्नव्याकरणाय सद्भावकेवलज्ञानहोरादिशास्त्रम्। स चन्द्रवृत्तौ—चन्द्रचारे। ब omits बुध्यन्ते (श्लोक १४)। ब omits—यात्रायाः (श्लोक १५)।

श्लोक १—१३ अ परिक्षिपः—परिधिय.।

श्लोक १–१४ अ उत्कराः—समूहाः। अ बुध्यन्ते—ज्ञायन्ते।

श्लोक १—१५ अ तत्र—श्रेणीबद्धादिषु जीवानाम्। अ संस्थानम्—समचतुरस्रादि। अ अष्टगुणादयः—अणिमादय.। अ यात्रायाः—गतिः। अ संहितायाश्च—संधिप्रतिष्ठाग्रन्थो वा।

श्लोक १–१७ अ गुरुपर्वत—गुरुपरिपाटीभ्यः।

श्लोक १–२०—अ कलासवर्णसंरूढलुठत्पाठीनसंकुले—कीदृग्विधे सारसंग्रहवारिधौ। कलासवर्णाः भिन्नप्रत्युत्पन्नादयः ते एव लुठत्पाठीनास्तेषां संकटे संकोचस्थाने।

श्लोक १–२१ अ प्रकीर्णक—अ तृतीयव्यवहारः। अ महाग्राहे—मत्स्यविशेषः। अ मिश्रक—अ वृद्धिव्यवहारादि।

श्लोक १–२२ अ क्षेत्रविस्तीर्णपाताले—त्रिभुज-चतुर्भुजादिक्षेत्राणि एव विस्तीर्णपातालानि यत्र स तस्मिन्। अ खाताख्यसिकताकुले—खाताख्यम् एव सिकताः ताभिः आकुले। अ करणस्कन्धसंबन्धच्छायावेलाविराजिते—करणस्कन्धेन करणसूत्रसमूहेन संबन्धो यस्याः सा करणस्कन्धसंबन्धा, सा चासौ छाया-गणितं (?) करणस्कन्धसंबन्धच्छाया, सा एव वेला, तया विराजिता तस्मिन्।

श्लोक १–२३ अ गुणसंपूर्णे—लघुकरणाद्यष्टगुणसंपूर्णे। करणोपायैः—अ करणानुपयोगोपायैः सूत्रैः।

श्लोक १–२४ अ यत्—यस्मात् सर्वशास्त्रे। संज्ञया—अ परिभाषया।

श्लोक १–२५—अ परमाणुः। परमाणुस्वरूपम्—अणवः कार्यलिङ्गाः स्युर्द्विस्पर्शाः परिमण्डलाः। एकवर्ण-रसाः नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययैः॥ ३४ (?) अप्रदेशिनः इति गोमटसारे। परमाणुपिण्डरहितमिति भावार्थः। कार्यानुमेयाः घट-पटादिपर्यायास्तेषाम् अणूनाम् अस्तित्वे चिह्नम्। सूक्ष्माः वर्तुलाकाराः। कौ द्वौ स्निग्ध-रूक्षयोरन्यतरः शीतोष्णयोरन्यतर.। तथा हि—शीत-रूक्ष, शीत-स्निग्ध, उष्ण-स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष एकाएवापेक्षया एकयुग्मं भवति। गुरु-लघु-मृदु-कठिनाना परमाणुष्वभावात्, तेषां स्कन्धाश्रितत्वात्।

अ तैः—परमाणुभिः। सः—अणुः स्यात्। अत्र सोऽणुः क्षेत्रपरिभाषायाम्। ब परमाणुः—यस्तु तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण छेत्तुं भेत्तुं मोचयितुं न शक्यते, जलानलादिभिर्नाशं नैति एकैकरस-वर्ण-गन्ध-द्विस्पर्शम्। स्निग्ध-रूक्षस्पर्शद्वयमित्युक्तमादिपुराणे। शब्दकारणमशब्दं स्कन्धान्तरितमादि-मध्यावसानरहितमप्रदेशमिन्द्रियैरग्राह्यमविभागि तत् द्रव्यं परमाणु।

स ऋणयोः—ऋणरूपराश्योः । घनयोः—घनरूपराश्योः । भजने—भागहारे । फलम्—गुणित-फलम् । तु—पुनः ।—adds चेयमकसदृष्टिः ।—adds illustrations to explain rules on 50 (stanza).

श्लोक १—५१ स योगः—संयोजनम् । शोध्यम्—अपनेयम् ।

श्लोक १—५२— घ मूले—वर्गमूले । स्वर्णे—धनऋणे स्याताम् । Adds two stanzas after 52. Printed in text at No. 69–70.

लघुकरणोह्यापोह्यानालस्यग्रहणधारणोपायै· ।
व्यक्तिकराङ्कविशिष्टैः गणकोऽष्टाभिर्गुणैर्ज्ञेयः ॥ १ ॥
इति सज्ञा समासेन भाषिता मुनिपुंगवै· ।
विस्तरेणागमाद् वेद्यं वक्तव्यं यदितः परम् ॥ २ ॥

तत्पदम्—ऋणरूपवर्गराशेर्मूलं कथ भवेत् इत्याशङ्कायाम् इदमाह—ऋणराशिः निजऋणवर्गो न भवेत्, किंतु धनरूपेण वर्गो भवेत् । तस्मात् ऋणराशेः सकाशात् मूलं न भवेत्, किंतु धनराशेः सकाशात् ऋणराशेर्मूलं स्यात् ।

स धनराशेः ऋणराशेश्च वर्गो धन भवति । Adds illustrations to explain rules on 52 (stanza). .

श्लोक १—५८ अ ऋतुर्जीवो—षड् जीवाः । कुमारवदनम्—कार्तिक [केय] वदनम् । ब कुमारवदनम्—कार्तिकेयवदनम् ।

श्लोक १—६९ ब शीघ्रगुणन-भजनादिलक्षण लघुकरणम् । अनेन प्रकारेण गुणनादौ कृते सतीप्सितं लब्ध स्यादिति पूर्वमेव परिज्ञानलक्षणः ऊह । इत्थ गुणनादौ कृते सतीप्सितं लब्धं न स्यादिति पूर्वमेव परिज्ञानलक्षणः अपोहः । गुणनादिक्रियाया मन्दभावराहित्यलक्षणमनालस्यम् । कथितार्थलक्षणं ग्रहणम् । कथितार्थस्य कालान्तरेऽप्यविस्मरणलक्षणा धारणा । सूत्रोक्तगुणनादिकमाधारं कृत्वा स्वबुद्धया प्रकारान्तरगुणनादिविचारलक्षणः उपायः । अक व्यक्तं स्थापयित्वा गुणनादिकरणलक्षणो व्यक्तिकराकः । इत्यष्टभिर्गुणै गणितज्ञो भवेदिति ज्ञेयः । इति ।

श्लोक २–१ अ (१) येन राशिना गुण्यस्य भागो भवेत् तेन गुण्य भक्त्वा गुणकारं गुणयित्वा स्थापनालक्षणो राशिखण्डः । येन राशिना गुणगुणकारस्य भागो भवेत् तेन गुणकारं भक्त्वा गुण्यं गुणयित्वा स्थापनालक्षणोऽर्धखण्डः । गुण्य-गुणकारो [रौ] अभेदयित्वा स्थापनालक्षणः तत्स्थ । इति त्रिप्रकारैः स्थितगुण्य-गुणकारराशियुगलं कवाटसंधाणक्रमेण विन्यस्य । (२) राशेरादितः आरम्यान्तपर्यन्तं गुणनलक्षणेन अनुलोममार्गेण । (३) राशेरन्ततः आरम्यादिपर्यन्त गुणनलक्षणेन विलोममार्गेण च गुण्यराशिं गुणकार-राशिना गुणयेत् । (४) 'गुणयेत् गुणेन गुण्य कवाटसंधिक्रमेण संस्थाप्य' इति पाठान्तर—पादद्वयम् । (५) गुण्यगुणकारं यथा व १४४ गुण्यं = प्रत्येक पद्मानि गुणकार इति = ८, २।४

४८
११५२ राशिखण्ड

षड्वर्गः ३६। पचाशत्वर्गः २५०० । द्विशतवर्गः ४०००० । सर्ववर्गसयोगः ४२५३६ । द्विशत-षट्पंचाषड् [०शद्] घातः ११२०० । पंचाशत्-षड्घातः ३०० । तद्विगुण. २२४००।६०० । तेन विमिश्रितः सर्ववर्गसंयोगः ६५५३६ । तेषाम्—द्विप्रभृतिकल्पितस्थानानाम् । क्रमघातेन—द्विस्थानप्रभृतिराशीनाम् अन्त्यस्थानं शेषस्थानैर्गुणयित्वा, पुनः शेषान्त्यस्थान शेषस्थानैर्गुणयित्वा, तेन क्रमेण प्रथमस्थानपर्यन्त गुणनलक्षण क्रमघातः । तेन पुनः द्विस्थानप्रभृतीना राशीनाम्, इत्यभिप्रायेण वर्गरचना स्फुटयति ।

४
३
२

द्विवर्ग ४ त्रिवर्ग ९ चतुर्वर्ग १६ तत्सयोगः २९ तेषा क्रमघातः द्विकत्रिकमिश्रेण चतुष्कं गुणयेत् २० । द्विकेन त्रिकं गुणयित्वा मिश्रितः सन् २६ । द्विगुणो ५२ । अनेन मिश्रितेन वर्ग. ८१ ।

श्लोक २–२१ अ कृत्वान्त्यकृतिम्—कृत्वा ७५ अन्त्यकृतिं ४९'५ अन्त्य द्विगुणमुत्सार्य | ४,'५ / १४ | शेष ५ पदैर्हन्यात् | ४९'५ / ७० | शेषानुत्सार्य | ४९ × ५ / ७० | कृत्वा तस्यकृतिं | ४९२५ / ७० | लब्ध. ५६२५ इति सर्वत्र कर्तव्यः द्वयंकाना वर्गकोष्ठः । पंचाकाना वर्गकोष्ठरचना

	७	×	५
४	९	०	५
	७	२	

६	×	५	×	५	×	३	×	६
६	६	४	३	२	०	०	६	६
६	२	५	३	६	६	९	३	
	५	२	५	०	३			
			३					

लब्धवर्गाः
४२९४९६७२९६॥ उ० १०

स अयमर्थ —अन्त्यराशिं वर्गं कृत्वा पुनरन्त्यराशिं द्विगुणं कृत्वा पुरो गमयित्वा शेषस्थानैर्गुणयेत् । शेषस्थानानि पुरो गमयित्वा पूर्वकथितक्रिया कर्तव्या ।

परिशिष्ट–६

[Reprinted from the First Edition]

PREFACE

Soon after I was appointed Professor of Sanskrit and Comparative Philology in the Presidency College at Madras, and in that capacity took charge of the office of the Curator of the Goverment Oriental Manuscripts Library, the late Mr G H Stuart, who was then the Director of Public Instruction, asked me to find out if in the Manuscripts Library in my charge there was any work of value capable of throwing new light on the history of Hindu mathematics, and to publish it, if found, with an English translation and with such notes as were necessary for the elucidation of its contents. Accordingly the mathematical manuscripts in the Library were examined with this object in view and the examination revealed the existence of three incomplete manuscripts of Mahāvīrācārya's *Gaṇita sāra sangraha.* A cursory perusal of these manuscripts made the value of this work evident in relation to the history of Hindu Mathematics. The late Mr G H. Stuart s interest in working out this history was so great that, when the existence of the manuscripts and the historical value of the work were brought to his notice, he at once urged me to try to procure other manuscripts and to do all else that was necessary for its proper publication. He gave me much advice and encouragement in the early stages of my endeavour to publish it; and I can well guess how it would have gladdened his heart to see the work published in the form he desired. It has been to me a source of very keen regret that it did not please Providence to allow him to live long enough to enable me to enhance the value of the publication by means of his continued guidance and advice; and my consolation now is that it is something to have been able to carry out what he with scholarly delight imposed upon me as a duty

Of the three manuscripts found in the library one is written on paper in Grantha characters, and contains the first five chapters of the work with a running commentary in Sanskrit; it has been denoted here by the letter P The remaining two are palm-leaf

manuscripts in Kanarese characters, one of them containing, like P, the first five chapters, and the other the seventh chapter dealing with the geometrical measurement of areas. In both these manuscripts there is to be found, in addition to the Sanskrit text of the original work, a brief statement in the Kanarese language of the figures relating to the various illustrative problems as also of the answers to those same problems. Owing to the common characteristics of these manuscripts and also owing to their not overlapping one another in respect of their contents, it has been thought advisable to look upon them as one manuscript and denote them by K. Another manuscript, denoted by M, belongs to the Government Oriental Library at Mysore, and was received on loan from Mr. A Mahadeva Sastri, B. A., the Curator of that institution. This manuscript is a transcription on paper in Kanarese characters of an original palm-leaf manuscript belonging to a Jaina Pandit, and contains the whole of the work with a short commentary in the Kanarese language by one Vallabha, who claims to be the author of also a Telugu commentary on the same work. Althought incorrect in many places, it proved to be of great value on account of its being complete and containing the Kanarese commentary, and my thanks are specially due to Mr. A. Mahadeva Sastri for his leaving it sufficiently long at my disposal. A fifth manuscript, denoted by B, is a transcription on paper in Kanarese characters of a palm-leaf manuscript found in a Jaina monastery at Mudbidri in South Canara, and was obtained through the kind effort of Mr. R Krishnamacharyar, M A., he Sub-assistant Inspector of Sanskrit Schools in Madras, and Mr. U. B. Venkataramanaiya of Mudbidri. This manuscript also contains the whole work, and gives, like K, in Kanarese a brief statement of the problems and their answers The endeavour to secure more manuscripts having proved fruitless, the work has had to be brought out with the aid of these five manucripts, and owing to the technical character of the work and its elliptical and often riddle-like language and the inaccuracy of the manuscripts, the labour involved in bringing it out with the translation and the requisite notes has been heavy and trying. There is, however, the satisfaction that all this labour has been bestowed on a worthy work of considerable historical value.

It is a fortunate circumstance about the *Gaṇita sāra saṅgraha* that the time when its author Mahāvīrācārya lived may be made out with fair accuracy. In the very first chapter of the work, we have, immediately after the two introductory stanzas of salutation to Jina Mahāvīra, six stanzas describing the greatness of a king, whose name is said to have been Cakrikā bhañjana, and who appears to have been commonly known by the title of Amōghavarṣa Nṛpatunga, and in the last of these six stanzas there is a benediction wishing progressive prosperity to the rule of this king. The results of modern Indian epigraphical research show that this king Amōghavarṣa Nṛpatunga reigned from A. D. 814 or 815 to A. D. 877 or 878.* Since it appears probable that the author of the *Gaṇita-sāra saṅgraha* was in some way attached to the court of this Rāṣṭrakūṭa king Amōghavarṣa Nṛpatunga, we may consider the work to belong to the middle of the ninth century of the Christian era. It is now generally accepted that, among well known early Indian mathematicians Āryabhaṭa lived in the fifth, Varāhamihira in the sixth, Brahmagupta in the seventh and Bhāskarācārya in the twelfth century of the Christian era and chronologically, therefore, Mahāvīrācārya comes between Brahmagupta and Bhāskarācārya. This in itself is a point of historical noteworthiness, and the further fact that the author of the *Gaṇita sāra saṅgraha* belonged to the Kanarese speaking portion of South India in his days and was a Jaina in religion is calculated to give an additional importance to the historical value of his work. Like the other mathematicians mentioned above, Mahāvīrācārya was not primarily an astronomer, although he knew well and has himself remarked about the usefulness of mathematics for the study of astronomy. The study of mathematics seems to have been popular among Jaina scholars; it forms, in fact, one of their four Anuyōgas or auxiliary sciences indirectly serviceable for the attainment of the salvation of soul-liberation known as mōkṣa.

A comparison of the *Gaṇita sāra saṅgraha* with the corresponding portions in the *Brahmasphuṭa siddhānta* of Brahmagupta is

* Vide *Nilgund Inscription of the time of Amoghavarsa* I, A. D. 866 edited by J. F. Fleet, PH. D., C. I. E. in *Epigraphia Indica* Vol. VI, pp. 98–108.

calculated to lead to the conclusion that, in all probability, Mahāvīrācārya was familiar with the work of Brahmagupta and endeavoured to improve upon it to the extent to which the scope of his *Gaṇita-sāra-saṅgraha* permitted such improvement. Mahāvīrāchārya's classification of arithmetical operations is simpler, his rules are fuller and he gives a large number of examples for illustration and exercise. Pṛthūdakṣvāmin, the well-known commentator on the *Brahmasphuṭa-siddhānta*, could not have been chronologically far removed form Mahāvīrācārya, and the similarity of some of the examples given by the former with some of those of the latter naturally arrests attention. In any case it cannot be wrong to believe, that, at the time, when Mahāvīrācārya wrote his *Gaṇita-sāra-saṅgraha*, Brahmagupta must have been widely recognized as a writer of authority in the field of Hindu astronomy and mathematics. Whether Bhāskarācārya was at all acquainted with the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* of Mahāvīrācārya, it is not quite easy to say. Since neither Bhāskarācārya nor any of his known commentators seem to quote from him or mention him by name, the natural conclusion appears to be that Bhāskarācārya's *Siddhānta-śiromaṇi*, including his Līlāvatī and Bījagaṇita, was intended to be an improvement in the main upon the *Brahmasphuṭa-siddhānta* of Brahmagupta. The fact that Mahāvīrācārya was a Jaina might have prevented Bhāskarācārya from taking note of him, or it may be that the Jaina mathematician's fame had not spread far to the north in the twelfth century of the Christian era. His work, however, seems to have been widely known and appreciated in Southern India. So early as in the course of the eleventh century and perhaps under the stimulating influence of the enlightened rule of Rājarājanarendra of Rajahmundry, it was translated into Telugu in verse by Pāvulūri Mallana, and some manuscripts of this Telugu translation are now to be found in the Government Oriental Manuscripts Library here at Madras It appeared to me that to draw suitable attention to the historical value of Mahāvīrācārya's *Gaṇita sāra-sangraha*, I could not do better than seek the help of Dr. David Eugene Smith of the Columbia University of New York, whose knowledge of the history of mathematics in the West and in the East is known to be wide

and comprehensive, and who on the occasion when he met me in person at *Madras* showed great interest in the contemplated publication of the *Gaṇita sāra sangraha* and thereafter read a paper on that work at the Fourth International Congress of Mathematicians held at Rome in April 1908 Accordingly I requested him to write an introduction to this edition of the *Gaṇita sāra sangraha*, given in brief outline what he considers to be its value in building up the history of Hindu mathematics My thanks as well as the thanks of all those who may as scholars become interested in this publication are therefore due to him for his kindness in having readily complied with my request, and I feel no doubt that his introduction will be read with great appreciation

Since the origin of the decimal system of notation and of the conception and symbolic representation of zero are considered to be important questions connected with the history of Hindu mathematics, it is well to point out here that in the *Gaṇita sārasangraha* twenty four rotational places are mentioned, commencing with the units place and ending with the place called *mahākṣobha* and that the value of each succeeding place is taken to be ten times the value of the immediately preceding place. Although certain words forming the names of certain things are utilized in this work to represent various numerical figures, still in the numeration of of numbers with the aid of such words the decimal system of notation is almost invariably followed If we took the words *moon eye fire* and *sky* to represent respectively 1, 2, 3 and 0, as their Sanskrit equivalents are understood in this work, then, for instance, *fire-sky-moon-eye* would denote the number 2103 and *moon-eye sky-fire* would denote 3021, since these nominal numerals denoting numbers are generally repeated in order from the units place upwards This combination of nominal numerals and the decimal system of notation has been adopted obviously for the sake of securing metrical convenience and avoiding at the same time cumbrous ways of mentioning numerical expressions, and it may well be taken for granted that for the use of such nominal numerals as well as the decimal system of notation Mahāvīrācārya was indebted to his predecessors The decimal system of notation is

distinctly described by Āryabhaṭa, and there is evidence in his writings to show that he was familiar with nominal numerals. Even in his brief mnemonic method of representing numbers by certain combinations of the consonants and vowels found in the Sanskrit language, the decimal system of notation is taken for granted; and ordinarily 19 notational places are provided for therein. Similarly in Brahmagupta's writings also there is evidence to show that he was acquainted with the use of nominal numerals and the decimal system of notation. Both Āryabhaṭa and Brahmagupta claim that their astronomical works are related to the *Brahma-siddhānta*; and in a work of this name, which is said to form a part of what is called Śākalya-saṃhitā and of which a manuscript copy is to be found in the Government Oriental Manuscripts Library here, numbers are expressed mainly by nominal numerals used in accordance with the decimal system of notation. It is not of course meant to convey that this work is necessarily the same as what was known to Ārayabhaṭa and Brahmagupta; and the fact of its using nominal numerals and the decimal system of notation is mentioned here for nothing more than what it may be worth.

It is generally recognized that the origin of the conception of zero is primarily due to the invention and practical utilization of a system of notation wherein the several numerical figures used have place-values apart from what is called their intrinsic value. In writing out a number according to such a sytem of notation, any notational place may be left empty when no figure with an intrinsic value is wanted there. It is probable that owing to this very reason the Sanskrit word *śūnya*, meaning 'empty', came to denote the zero, and when it is borne in mind that the English word 'cipher' is derived from an Arabic word having the same meaning as the Sanskrit *śūnya*, we may safely arrive at the conclusion that in this country the conception of the zero came naturally in the wake of the decimal system of notation: and so early as in the fifth century of the Christian era, Āryabhaṭa is known to have been fully aware of this valuable mathematical conception. And in regard to the question of a symbol to represent this conception, it is well worth bearing in mind that operations with the zero cannot be

carried on–not to say cannot be even thought of easily–without a symbol of some sort to represent it. Mahāvīrācārya gives, in the very first chapter of his *Gaṇita sāra sangraha* the results of the operations of addition, subtraction multiplication and division carried on in relation to the zero quantity; and although he is wrong in saying that a quantity, when divided by zero, remains unaltered, and should have said, like Bhāskarācārya, that the quotient in such a case is infinity, still the very mention of operations in relation to zero is enough to show that Mahāvīrācārya must have been aware of some symbolic representation of the zero quantity Since Brahmagupta, who must have lived at least 150 years before Mahāvīrācārya, mentions in his work the results of operations in relation to the zero quantity, it is not unreasonable to suppose that before his time the zero must have had a symbol to represent it in written calculations That even Āryabhaṭa knew such a symbol is not at all improbable It is worthy of note in this connection that in enumerating the nominal numerals in the first chapter of his work, Mahāvīrācārya mentions the names denoting the nine figures from 1 to 9 and then gives in the end the names denoting zero, calling all the ten by the name of *saṁkhyā*; and from this fact also, the inference may well be drawn that the zero had a symbol, and that it was well known that with the aid of the ten digits and the decimal system of notation numerical quantities of all values may be definitely and accurately expressed What this known zero-symbol was, is, however, a different question.

The labour and attention bestowed upon the study and translation and annotation of the *Gaṇita sāra sangraha* have made it clear to me that I was justified in thinking that its publication might prove useful in elucidating the condition of mathematical studies as they flourished in South India among the Jainas in the ninth century of the Christian era and it has been to me a source of no small satisfaction to feel that in bringing out this work in this form, I have not wasted my time and thought on an unprofitable undertaking The value of the work is undoubtedly more historical than mathematical But it cannot be denied that the step by step construction of the history of Hindu culture is a worthy endeavour

and that even the most insignificant labourer in the field of such an endeavour deserves to be looked upon as a useful worker. Although the editing of the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* has been to me a labour of love and duty, it has often been felt to be heavy and taxing, and I, therefore, consider that I am specially bound to acknowledge with gratitude the help which I have received in relation to it In the early stage, when conning and collating and interpreting the manuscripts was the chief work to be done, Mr. M. B. Varadaraja Aiyangar, B. A, B L., who is an Advocate of the Chief Court at Bangalore, co-operated with me and gave me an amount of aid for which I now offer him my thanks Mr K. Krishnaswami Aiyangar, B. A, of the Madras Christian College, has also rendered considerable assistance in this manner; and to him also I offer my thanks. Latterly I have had to consult on a few occasions Mr. P V Seshu Aiyar, B A, L. T., Professor of Mathematical Physics in the Presidency College here, in trying to explain the rationale of some of the rules given in the work, and I am much obliged to him for his ready willingness in allowing me thus to take advantage of his expert knowledge of mathematics My thanks are, I have to say in conclusion, very particularly due to Mr P. Varadacharya, B A, Librarian of the Government Oriental Manuscripts Library at Madras, but for whose zealous and steady co-operation with me throughout and careful and continued attention to details, it would indeed have been much harder for me to bring out this edition of the *Ganit-sāra-saṅgraha*

February 1912,
Madras

M. RANGACHARYA.

INTRODUCTION

BY

DAVID EUGENE SMITH

PROFESSOR OF MATHEMATICS IN TEACHERS' COLLEGE,
COLUMBIA UNIVERSITY, NEW YORK.

We have so long been accustomed to think of Pāṭaliputra on the Ganges and of Ujjain over towards the Western Coast of India as the ancient habitats of Hindu mathematics, that we experience a kind of surprise at the idea that other centres equally important existed among the multitude of cities of that great empire In the same way we have known for a century, chiefly through the labours of such scholars as Colebrooke and Taylor, the works of Āryabhaṭa, Brahmagupta, and Bhāskara, and have come to feel that to these men alone are due the noteworthy contributions to be found in native Hindu mathematics Of course a little reflection shows this conclusion to be an incorrect one. Other great schools, particularly of astronomy, did exist, and other scholars taught and wrote and added their quota, small or large, to make up the sum total. It has, however, been a little discouraging that native scholars under the English supremacy have done so little to bring to light the ancient mathematical material known to exist and to make it known to the Western world This neglect has not certainly been owing to the absence of material, for Sanskrit mathematical manuscripts are known, as are also Persian, Arabic, Chinese, and Japanese, and many of these are well worth translating from the historical standpoint. It has rather been owing to the fact that it is hard tof ind a man with the requisite scholarship, who can afford to give his time to what is necessarily a labour of love

It is a pleasure to know that such a man has at last appeared and that, thanks to his profound scholarship and great perseverance

we are now receiving new light upon the subject of Oriental mathematics, as known in another part of India and at a time about midway between that of Āryabhata and Bhāskara, and two centuries later than Brahmagupta. The learned scholar, Professor M. Rangācārya of Madras, some years ago became interested in the work of Mahāvīrācārya, and has now completed its translation, thus making the mathematical world his perpetual debtor, and I esteem it a high honour to be requested to write an introduction to so noteworthy a work.

Mahāvīrācārya appears to have lived in the court of an old Rāstrakūta monarch, who ruled probably over much of what is now the kingdom of Mysore and other Kanarese tracts, and whose name is given as Amōghavarsa Nrpatunga. He is known to have ascended the throne in the first half of the ninth century A. D, so that we may roughly fix the date of the treatise in question as about 850.

The work itself consists, as will be seen, of nine chapters like the *Bīja-ganita* of Bhāskara, it has one more chapter than the *Kuttaka* of Brahmagupta. There is, however, no significance in this number, for the chapters are not at all parallel, although certain of the otpics of Brahmagupta's *Ganita* and Bhāskara's *Līlāvatī* are included in the *Ganita-Sāra-Sangraha.*

In considering the work, the reader naturally repeats to himself the great questions that are so often raised :—How much of this Hindu treatment is original ? What evidences are there here of Greek influence ? What relation was there between the great mathematical centres of India ? What is the distinctive feature, if any, of the Hindu algebraic theory ?

Such questions are not new. Davis and Strachey, Colebrooke and Taylor, all raised similar ones a century ago, and they are by no means satisfactorily answered even yet. Nevertheless, we are making good progress towards their satisfactory solution in the not too distant future The past century has seen several Chinese and Japanese mathematical works made more or less familiar to the West, and the more important Arab treatises are now quite satisfactorily known. Various editions of Bhāskara have appeared in India , and in general the great treatises of the Orient

have begun to be subjected to critical study It would be strange, therefore, if we were not in a position to weigh up, with more certainty than before, the claims of the Hindu algebra Certainly the persevering work of Professor Rangācārya has made this more possible than ever before

As to the relation between the East and the West, we should now be in a position to say rather definitely that there is no evidence of any considerable influence of Greek algebra upon that of India The two subjects were radically different It is true that Diophantus lived about two centuries before the first Āryabhaṭa, that the paths of trade were open from the West to the East, and that the itinerant scholar undoubtedly carried learning from place to place But the spirit of Diophantus, showing itself in a dawning symbolism and in a peculiar type of equation, is not seen at all in the works of the East. None of his problems, not a trace of his symbolism, and not a bit of his phraseology appear in the works of any Indian writer on algebra. On the contrary, the Hindu works have a style and a range of topics peculiarly their own Their problems lack the cold, clear, geometric precision of the West, they are clothed in that poetic language which distinguishes the East, and they relate to subjects that find no place in the scientific books of the Greeks With perhaps the single exception of Metrodorus, it is only when we come to the puzzle problems doubtfully attributed to Alcuin that we find anything in the West which resembles, even in a slight degree, the work of Alcuin's Indian contemporary, the author of this treatise.

It therefore seems only fair to say that, although some knowledge of the scientific work of any one nation would, even in those remote times, naturally have been carried to other peoples by some wandering savant, we have nothing in the writings of the Hindu algebraists to show any direct influence of the West upon their problems or their theories

When we come to the question of the relation between the different sections of the East however, we meet with more difficulty What were the relations for example, between the school of Pātaliputra, where Aryabhaṭa wrote and that of Ujjain where both Brahmagupta and Bhāskara lived and taught ? And what was *the relation of* each

of these to the school down in South India, which produced this notable treatise of Mahāvīrācārya ? And, a still more interesting question is, what can we say of the influence exerted on China by Hindu scholars, or *vice versa ?* When we find one set of early inscriptions, those at Nānā Ghāt, using the first three Chinese numerals, and another of about the same period using the later forms of Mesopotamia, we feel that both China and the West may have influenced Hindu science. When, on the other hand, we consider the problems of the great trio of Chinese algebraists of the thirteenth century, Ch'in Chiushang, Li Yeh, and Chu Shih-chieh, we feel that Hindu algebra must have had no small influence upon the North of Asia, although it must be said that in point of theory the Chinese of that period naturally surpassed the earlier writers of India.

The answer to the questions as to the relation between the schools of India cannot yet be easily given. At first it would seem a simple matter to compare the treatises of the three or four great algebraists and to note the similarities and differences. When this is done, however, the result seems to be that the works of Brahmagupta, Mahāvīrācārya, and Bhāskara may be described as similar in spirit but entirely different in detail. For example, all of these writers treat of the areas of polygones, but Mahāvīrācārya is the only one to make any point of those that are re-entrant. All of them touch upon the area of a segment of a circle, but all give different rules. The so called *janya* operation (page 209) is akin to work found in Brahmagupta, and yet none of the problems is the same. The shadow problems, primitive cases of trigonometry and gnomonics, suggest a similarity among these three great writers, and yet those of Mahāvīrācārya are much better than the one to be found in either Brahmagupta or Bhāskara, and no questions are duplicated.

In the way of similarity, both Brahmagupta and Mahāvīrācārya give the formula for the area of a quadrilateral,

$$\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$$

—but neither one observes that it holds only for a cyclic figure. A few problems also show some similarity such as that of the broken tree, the one about the anchorites, and the

common one relating to the lotus in the pond, but these prove only that all writers recognized certain stock problems in the East, as we generally do to-day in the West. But as already stated, the similarity is in general that of spirit rather than of detail, and there is no evidence of any close following of one writer by another

When it comes to geometry there is naturally more evidence of Western influence India seems never to have independently developed anything that was specially worthy in this science. Brahmagupta and Mahāvīrācārya both use the same incorrect rules for the area of a triangle and quadrilateralt hat is found in the Egyptian treatise of Ahmes. So while they seem to have been influenced by Western learning, this learning as it reached India could have been only the simplest. These rules had long since been shown by Greek scholars to be incorrect, and it seems not unlikely that a primitive geometry of Mesopotamia reached out both to Egypt and to India with the result of perpetuating these errors. It has to be borne in mind, however, that Mahāvīrācārya gives correct rules also for the area of a triangle as well as of a quadrilateral without indicating that the quadrilateral has to be cyclic. As to the ratio of the circumference to the diameter, both Brahmagupta and Mahāvīrācārya used the old Semitic value 3, both giving also $\sqrt{10}$ as a closer approximation, and neither one was aware of the works of Archimedes or of Heron. That Āryabhaṭa gave 3·1416 as the value of this ratio is well known, although it seems doubtful how far he used it himself On the whole the geometry of India seems rather Babylonian than Greek This, at any rate is the inference that one would draw from the works of the writers thus far known

As to the relations between the Indian and the Chinese algebra, it is too early to speak with much certainty In, the matter of problems there is a similarity in spirit, but we have not yet enough translations from the Chinese to trace any close resemblance. In each case the questions proposed are radically different from those found commonly in the West, and we must conclude that the algebraic taste the purpose, and the method were all distinct in the

two great divisions of the world as then known. Rather than assert that the Oriental algebra was influenced by the Occidental we should say that the reverse was the case. Bagdad, subjected to the influence of both the East and the West, transmitted more to Europe than it did to India. Leonardo Fibonacci, for example, shows much more of the Oriental influence than Bhāskara, who was practically his contemporary, shows of the Occidental.

Professor Rangācārya has, therefore, by his great contribution to the history of mathematics confirmed the view already taking rather concrete form, that India developed an algebra of her own; that this algebra was set forth by several writers all imbued with the same spirit, but all reasonably independent of one another; that India influenced Europe in the matter of algebra, more than it was influenced in return; that there was no native geometry really worthy of the name; that trigonometry was practically non-existent save as imported from the Greek astronomers, and that whatever of geometry was developed came probably from Mesopotamia rather than from Greece. His labours have revealed to the world a writer almost unknown to European scholars, and a work that is in many respects the most scholarly of any to be found in Indian mathematical literature. They have given us further evidence of the fact that Oriental mathematics lacks the cold logic, the consecutive arrangement, and the abstract character of Greek mathematics, but that it possesses a richness of imagination, an interest in problem-setting, and poetry, all of which are lacking in the treatises of the West, although abounding in the works of China and Japan. If, now, his labours shall lead others to bring to light and set forth mor and more of the classics of the East, and in particular those of early and mediaeval China, the world will be to a still larger extent his debtor.

प्रस्तावना की अनुक्रमणिका